आधुनिक भारतीय इतिहास

एक प्रगत अध्ययन

भाग-2

(1813-1919)

डॉ० एन० छाबड़ा

अनुवादक

एन० डी० त्रिवेदी



स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्राइवेट लि०

नई दिल्ली-110016 बंगलौर-560009 जालंधर-144003

द्वितीय सस्करण की भूमिका

इस पुस्तक के सम्यक सपादन एव गुणात्मक दष्टि स इसम सुधार हेतु, मैं प्रकाशक श्री ओ० पी० घई के परिश्रमिता और दृढ निश्चय के प्रति अनुग्रहीत हू। प्रकाशन के लिए पुस्तक भेजने से पूव लेखक ने इसे पुणरूपेण दुहराया ही नही है बल्कि इसमे तमाम नई और चीजें जोडी हैं। प्रथम सस्करण के प्रकाशनोपरात, भारत के इतिहास के इस क्षेत्र मे जो शोध विद्वानो ने किय है, उन्ह भी दृष्टि मे रखकर इसमे सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है। लेखक का विश्वास है कि तथ्यात्मक दृष्टि से पाठको के विश्वास के अनुरूप यह पुस्तक सिद्ध होगी। वैसे जहा कही भी निष्कष और निणय के क्षणो मे कुछ लिखा गया है वह सब लेखक की अपनी समझ से ही सम्बद्ध है।

—जी०एस० छाबडा

प्रथम सस्करण की भूमिका

जिस काय को इग्लैड के गुप्त शासन नियतको ने वेलजली को नही पूरा करने दिया, वही काय लाड हेस्टिग्स ने ब्रिटिश साम्राज्य की पेष कैमोरिन से सतलज सीमा तक बढाकर किया, जिसके काल से ही पुस्तक का यह भाग प्रारभ किया जा रहा है। इस गवनर जनरल के काल से भारत मे साम्राज्यवादी क्षेत्र मे नयी नीति के युग का श्रीगणेश हुआ। इस काल म क्षेत्र विस्तार पर उतनी दष्टि नही रखी गई जितनी पहले से प्राप्त क्षेत्र को कुशल प्रशासन देने और राजनैतिक रूप से सगठित करने की इस दिशा मे लाड विलियम बैंटिंक और लाड डलहौजी ने महती भूमिकाए अदा की। इसके फलस्वरूप जहा देश के रगो मे ब्रिटिश शान्ति समा गई, वही इसकी निरकुशता ने राजनैतिक दासता से देश को उबा दिया जिसकी प्रति-क्रियास्वरूप ही 1857 का शक्तिशाली विद्रोह प्रकट हुआ। इस सघष ने देश को भारतीय राष्ट्रीय आ दोलन की ओर मोड दिया। इस भावना को लाड लिटन और कजन जैसे गवनर जनरलो की अनुदारवादी नीति न तीव्र ही किया जिससे देश मे विरोध और आ दोलन की प्रवृत्ति और बढी। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना, राष्ट्रीय आ दोलन और 1920 तक के सवैधानिक सुधारो ने जबकि देश के दष्टि पटल पर महात्मा गाधी का आगमन हुआ, भारतीय राजनैतिक ऊहापोह को और आगे बढाया। इस सबका विवरण पुस्तक के इस भाग मे आया है जिसका आधार उपलब्ध और प्रकाशित सभी ग्र थो को बनाया गया है।

—जी०एस० छाबडा

विषय सूची

288
87

1

मार्क्विस हेस्टिंग्स (1813-1823)

चार्टर ऐक्ट, 1813 एव भारतीय राज्यो से युद्ध

फ्रासिस राउडन हेस्टिंग्स, जिसे बाद मे मार्क्विस हेस्टिंग्स कहा गया, 9 दिसबर 1754 को पैदा हुआ। सर डब्लू० डब्लू० हण्टर के मतानुसार उसका प्रशासन काल भारतीय इतिहास मे एक ऐसा युग था जिसमे "ब्रिटेन ने अन्तत महाद्वीपीय भारतीय साम्राज्य पर मुख्य नियत्रण और अविभाजित उत्तरदायित्व प्राप्त किया।" वह जॉन लार्ड राउडन की तृतीय पुत्री लेडी एलिजाबेथ हेस्टिंग्स (हटिंगडन के नवम् अल थियोफिलस की सबसे बडी पुत्री) का सबसे बडा पुत्र था। अपने भाई एव दसवें अल के 1789 में मरने पर उसे उत्तराधिकार म हेस्टिंग्स परिवार की बहुत सी प्रतिष्ठा व जायदाद प्राप्त हुई। इसे उसने अपने पुत्र फ्रासिस को उत्तराधिकार मे दिया जिसने अपने नाम के साथ मा का नाम भी जोड लिया। इस तरह उसने अपने व्यक्तित्व मे दो मुख्य परिवारो का प्रतिनिधित्व व परपरा समेट ली।"[1]

फ्रासिस राउडन 1761 मे, जब वह 7 वष का ही था, उसे लार्ड राउडन के नाम से जाना जाने लगा। हैरो मे उसकी शिक्षा हुई और 17 वष की आयु मे 1771 मे 15वे फूट मे उसे गजटेड उपाधि प्राप्त हुई। इसके थोडे काल ही बाद उसने आक्सफर्ड के यूनिवर्सिटी कालेज से मैट्रीकुलेशन किया। महाद्वीप की यात्रा समाप्ति के बाद उसे 5वें फूट म 1773 मे लेफ्टीनेण्ट बना दिया गया जिसके तुरत बाद वह अमेरिका मे छिडे स्वतन्त्रता सग्राम के विरुद्ध कार्यवाई हेतु रवाना हो गया, जहा उसे ऊचे-ऊचे स्थान प्राप्त हुए। अमेरिका से वापसी पर उसे पता चला कि उसकी अनुपस्थिति मे ही रैण्डलस राउन अन्तरिम कपनी की ओर से आयरलैण्ड के हाउस ऑफ कामन्स का सदस्य चुन लिया गया है। 1783 म उस ब्रिटेन का पियर बना दिया गया। वैसे उसने राजनीति मे बहुत कम रुचि ली,

1 'लडेनबग, मेजर रास द मार्क्विस आफ हेस्टिग्स, सस्करण, सर डब्लू० डब्लू० हटर, पृ० 142।

पर उसे चूंकि प्रिंस आफ वेल्स के निकट जाने का अवसर प्राप्त हो गया, इसलिए उसे इससे अत्यधिक लाभ हुआ। जून 1793 में अपने पिता की मृत्यु के बाद उसे द्वितीय मोयरा के अर्ल की उपाधि सहित उत्तराधिकार मिला और आयरलैण्ड का पियर भी वह बना। दूसरे वर्ष उसे मेजर जनरल का पद प्रदान किया गया। लार्ड मोयरा की 1804 में फ्लोरा से शादी कर दी गई। वह लदन की काउटेस थी जिससे छ बच्चे हुए। 1808 में उसकी मा की मृत्यु की बाद उसे उत्तराधिकार में उसका पद व प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। 1812 में उसे गार्टर का नाइट बनाया गया और लार्ड मिण्टो के इस्तीफे के बाद उसे बगाल का गवनर जनरल और प्रधान सेनापति बनाया गया। "14 अप्रैल 1813 को ही वह पोर्ट्समाउथ से समुद्री पथ से रवाना हुआ और 4 अक्टूबर को कलकत्ता पहुचा। उसी समय उसने कायभार ग्रहण कर लिया।"[1]

1813 का चार्टर ऐक्ट

भारत मे लार्ड हेस्टिंग्स के पहुचने के साथ ही ब्रिटिश ससद ने 1813 का चार्टर ऐक्ट पारित किया। यह ऐक्ट 1793 के ऐक्ट की तुलना म अधिक महत्त्वपूर्ण था। ऐसा इसलिए भी था कि इसके कारण भारत मे कपनी के व्यापार एकाधिकार को अत्यधिक आघात पहुचा। साथ ही इस ऐक्ट ने भारतीय लोगों के हित में भी कुछ काय किया।

इस ऐक्ट ने हेस्टिंग्स एव उसके उत्तराधिकारियो के काल म ब्रिटिश काय शक्ति को प्रभावित किया। इसीलिए भारत की स्थिति और हेस्टिंग्स की समस्याओ को जानने के पूर्व हमें यह जानने की आवश्यकता है कि इस ऐक्ट के पारित होने के समय की परिस्थितिया क्या थी?

19वी सदी का प्रथम दशक यूरोप के इतिहास मे सकट का काल था। महाद्वीप का बहुत-सा भाग इस समय नपोलियन के हाथ चला गया जिसन दृढ निश्चय के साथ 'दूकानदार' ब्रिटिशो को भूखो मारने और नतमस्तक करने के लिए उसके व्यापारियो के लिए यूरोप के बदरगाहों को बद कर दिया। ब्रिटिश व्यापार इस तरह दबाव में आ गया और अग्रेज व्यापारी अपनी क्षतिपूर्ति के लिए यूरोप के बाहर के बाजारो की ओर देखने लगे। इसी समय 1813 मे ससद मे बिल प्रस्तुत किया गया। अवसर पाकर प्राइवेट व्यापारियो ने कपनी के व्यापार एकाधिकार का विरोध किया और भारत से व्यापार की स्वतत्रता चाही। परिस्थिति ने भारत में उनकी शक्ति को ब्रिटिश शासन को यह समझने को बाध्य कर दिया कि, '1800 के बाद वे सहायक से अधिक कुछ नही हैं। वे एक साधन हैं जिनके द्वारा

---

1 प्राइवेट जर्नल मेजर राम द मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स सस्करण सर डब्लू० डब्लू० हटर, पृ० 42।

भारतीय बाजारो मे शाति व व्यवस्था स्थापित करने की आवशक्ता अनुभव की जाती है और जिससे ये बाजार ब्रिटिश उद्योग के काम आते हैं।"[1]

देश के आर्थिक दृष्टि रखने वालो के मस्तिष्क मे ऐडम स्मिथ के "लैसेज फेयर" के सिद्धान्त की लोकप्रियता भी बढ रही थी। यह सिद्धान्त इसपर बल देता था कि एक देश का बेहतर आर्थिक विकास तभी सभव है जब राज्य व्यक्तियो के आर्थिक प्रयासो पर हस्तक्षेप न करे। इस विचारधारा के अनुसार व्यापार का एकाधिकार स्वतत्र राष्ट्र के हित के प्रतिकूल था और इसीलिए इन परिस्थितियो मे कपनी के एकाधिकार को भी पसद नही किया गया।

भारत मे कपनी के आक्रामक युद्धा की भी अनदेखी नही की जा सकती थी। भारत मे सचमुच ऐसी परिस्थितिया थी जिन्होने इसे आवश्यक बना दिया था। मुगलो की पतनवत शक्ति ने भारत मे एक शून्यता स्थापित कर दी थी जिसको भारत मे कपनी के अतिरिक्त कोई अन्य शक्ति भरने की स्थिति मे नही थी। और चूकि पूरा भारत देश एक इकाई था, इस कारण लोगो के मस्तिष्क मे यह बात थी कि देश के किसी एक भाग पर कपनी का अधिकार हो जाता तो स्वाभाविक रूप से देश के शेष भाग पर भी उसका अधिकार हो जाता। कपनी ने इस तरह अपनी शक्ति का विकास किया, पर जितना ही अधिक उसने ऐसा किया उतना ही इग्लैण्ड मे उसका विरोध हुआ। बहुत से लोगो की दृष्टि मे इसका विकास एक कष्ट का विषय था जिसका निदान कपनी की समाप्ति या कम से कम उसके एकाधिकार की समाप्ति था।

इन लोगो को उस समय सुअवसर प्राप्त हुआ जब कपनी की विजय एव युद्ध नीति के कारण इसके ऋण बढ गये और पाच वर्ष के अदर ही 1805 तक ऋण बढकर लगभग दुगुना अर्थात् 2 करोड, 10 लाख पौण्ड हो गया। डाइरेक्टरो को बाध्य होकर ससद से आर्थिक सहायता मागनी पडी। 'हाउस आफ कामन्स' ने इसपर एक जाच समिति नियुक्त की जिसने कीथ[2] के मतनुसार, 'इतने अच्छे ढग से काम किया कि 1812 की इसकी पाचवी रिपोर्ट न्यायिक व पुलिस-व्यवस्था पर एक स्तर का कार्य है। राजस्व व्यवस्था पर भी इसकी स्तरीय रिपोर्ट थी।" इन रिपोर्टों ने ससद के मेजो पर कपनी की व्यवस्था के दोषो को उजागर किया जिससे राज्य का हस्तक्षेप सभव हुआ।

वहा विल्बर फोस के नेतृत्व मे धार्मिक उत्साही भी थे जिन्होंने कपनी के माध्यम से भारत मे ईसाई धर्म फैलाने की माग की। कपनी इसके पक्ष मे नही थी क्योकि इससे लोगो के धार्मिक भावना पर ठेस लग सकती थी और वे चौंक सकते

1 एरिक टी० स्ट्रोक्स द इग्लिश युटीलिटेरियन इन इडिया, पृ० 13।
2 कीथ कांस्टीट्यूशनल हिस्ट्री आफ इडिया पृ० 127।

थे जिससे वहा ब्रिटिश राज्य को खतरा पैदा हो सकता था।

इस तरह 1793 के चार्टर के 20 वर्ष के काल के समाप्त होते-होते डाइरेक्टरों ने 1812 मे इस चार्टर को पुरानी शर्तों पर नवीनीकरण के लिए प्रार्थना पत्र दिया। मन्त्रिमडल ने इसे पूर्ण रूप से अस्वीकार कर दिया। जब इस विषय पर विवाद प्रारम्भ हुआ तो उस समय कपनी के व्यापार के एकाधिकारी प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रार्थना पत्र दिये गये। इगलण्ड के अन्य व्यापारियो तथा वस्तु निर्माताओ ने कपनी की आर्थिक कार्यवाहियो मे भागीदारी की माग की। धार्मिक नेताओ ने पूर्व के देशो मे स्वतन्त्रतापूर्वक धर्म प्रचार के लिए इच्छा व्यक्त की। कम्पनी सरकार की दक्षहीनता की घोर आलोचना की गई और प्रशासकीय क्षेत्र मे सुधार की माग की गई। अपनी स्थिति की रक्षा हेतु कपनी ने तर्क दिया कि चूंकि भारतीय राजस्व प्रशासन चलाने के लिए पर्याप्त नही है इस कारण कपनी के व्यापारिक विशेषाधिकारो को उसके राजनतिक एव प्रशासकीय कार्यों से अलग नही किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कपनी का कहना था कि यदि भारतीय व्यापार सम्पूर्ण अग्रेजो के लिए खोल दिया जायगा तो उनमें से अधिकाश भारत मे जाकर बस जायेंगे। अग्रेज शासकीय जाति का होने एव प्रेसीडेंसी कस्बों मे रहने तथा राजा के दरबार के अभ्यस्त होने के कारण वे भारतीयो के साथ अत्यधिक घृणा का व्यवहार करेंगे जिसपर नियत्रण रखना और जिसे न्याय की परिधि मे लाना कठिन होगा। इस सबध मे कपनी ने अपनी विचारधारा के समर्थन मे वारेन-हेस्टिंग्स, कर्नल मैलकाम, कर्नल मुनरो, चार्ल्स ग्राण्ट एव लार्ड टीनमाउथ के साक्ष्य प्रस्तुत किये।

कपनी के प्रथम तर्क के विरुद्ध इसके विरोधियो ने कहा कि इसके दोषपूर्ण सगठन ने इस लाभ से विरत कर दिया है। उन्होंने आगे बताया कि कपनी के क्षेत्रीय राजस्व ने ही उसके व्यापार को आगे बढाया है। इसपर भी जोर दिया गया कि कपनी भारतीय राजस्व के सम्बन्ध मे ही धन लगाती रही है। दूसरे तर्क के उत्तर मे उन्होंने कहा कि अग्रेजो को भारत मे कुछ प्रतिबधो के साथ जाने की आज्ञा होनी चाहिए।

कपनी के विरोधियो का मत था कि यदि भारतीय व्यापार सभी के लिए खोल दिया जाय तो उससे चार लाभ होगे (1) भारतीय व्यापार को अन्य देशो के हाथ मे जाने से रोका जा सकेगा, (2) ब्रिटिश उद्योग व व्यापार मे अभिवृद्धि होगी (3) व्यापार पर होनेवाला व्यय (रखरखाव व परिवहन) बहुत घट जायगा, एव (4) इग्लैण्ड को भारत से पर्याप्त मात्रा मे कच्चा माल प्राप्त होगा।

यहा पर उस काल के भारतीय व्यापार की परिस्थितियो का आकलन समीचीन होगा और यह जानना भी कि कपनी के विरोधियो के तर्क मे कितना दम था।

सही तो यह था कि अंग्रेजी विधि के अ तगत एकाधिकार प्राप्त कपनी की शक्ति कुछ थी ही नही क्योंकि भारत मे कपनी के कर्मचारी भ्रष्ट एव अनियमित काय करने मे व्यस्त थे। इस काय को वे अपने अधिकारियो से गुप्त रखत थे। अ य कोई माग भी नही था कि वे इस तरह अर्जित धन या सामग्री को अपने देश भेज सकें। इसीलिए वे भारतीय बदरगाहो पर आनेवाले अमेरिकन, पुतगाली, स्वीडिश या अ य युरोपीय व्यापारियो के माध्यम से यह धन अपने यहा भेजते थे। इस धन से ये व्यापारी भारतीय वस्तुए खरीदते थे और युरोपीय बदरगाहो पर लाभ पर बेच देते थे और भारत मे प्राप्त धन को अपने एजेण्टो के द्वारा लदन क बक में जमा करा देते थे। इस तरह कपनी के पास जो भी एकाधिकार था वह कपनी के इग्लैण्ड के व्यक्तिगत व्यापारियो के पार था। युरोपीय व्यापारी इग्लण्ड के व्यापारियो के कीमत पर लाभ ही नही कमाते थे बल्कि लदन को भी उससे हानि थी। इस तरह यदि कपनी का एकाधिकार समाप्त हो जाय तो जो भी वस्तुए युरोपीय व्यापारी भारतीय बदरगाह से खरीदते थे वह ब्रिटिश व्यापारियो के हाथ मे जा सकती थी और फिर लदन पहुच सकती थी जिससे वह 'एशियाई व्यापार का विश्व प्रतिनिधि हो सकता था। इस परिस्थिति म विदेशी राष्ट्रो का या तो व्यापार छोडना पडता "या उन्ह भारत मे अपनी पूजी लगानी पडती जिसस देश की समृद्धि होती।"[1] इस तरह कपनी के एकाधिकार पर घनघोर प्रहार किया गया और प्राइवेट ब्रिटिश व्यापारियो ने भारत से स्वतत्र रूप से व्यापार करने की इच्छा व्यक्त की।

इस तरह इन परिस्थितियो मे कपनी ने चाटर के नवीनीकरण के लिए प्राथना की और ससद मे एक बिल तत्सबधी प्रस्तुत किया गया और 1813 म उसे पारित किया गया। इन परिस्थितियो ने चाटर की धाराओ को भी प्रभावित किया।

ऐक्ट की धाराए—धाराओ के बोड ऑफ कट्रोल की भारतीय कार्यो के सबध म निरीक्षण, नियत्रण व निर्देशन की शक्ति स्पष्ट रूप से परिभाषित तथा पूर्ण रूप से विस्तृत कर दी गई। कपनी की सरक्षण शक्ति घटा दी गई। कोर्ट आफ डाइरक्टस को ताज की सहमति मे गवनर जनरल, सेनापति, गवनरो की नियुक्ति का अधिकार मिला। इसे बोड आफ कट्रोल का अध्यक्ष प्रतिहस्ताक्षरित भी करता था। बोर्ड आफ कट्रोल द्वारा नियत्रित कम्पनी की असैनिक सेवाओ के प्रशिक्षण के लिए 1805 मे हैलीबरी (ब्रिटेन) मे एक विद्यालय खोला गया। यह प्रावधान किया गया कि कोई भी व्यक्ति चार सत्रो की इस विद्यालय की शिक्षा के बिना तथा योग्यता प्राप्त किये बिना लिपिक नही हो सकता था। ब्रिटेन मे आदिसकाम्ब का

---

1 देखें ग्रबट म पी० ई० इण्डिया अडर वेलजली पृ० 169 170।

सनिक विद्यालय बोर्ड द्वारा अनुरक्षित और नियन्त्रित था। कलकत्ता और मद्रास के विद्यालय भी इसी के नियम के अतर्गत चलाये जाते थे।

कपनी के सविधान म परिवर्तन नहीं किया गया। भारत म राजस्व वसूली की सुविधा सहित क्षेत्रीय विस्तार की शक्ति अग्रिम 20 वर्षों के लिए बढा दी गई। पर कपनी के क्षेत्र विस्तार पर ताज की प्रभुसत्ता स्पष्ट रूप से घोषित कर दी गई। सबसे महत्त्वपूर्ण धारा व्यापार के सबध म थी। चीन से चाय का व्यापार कपनी के एकाधिकार म रखा गया। पर भारत स कपनी का व्यापारिक एकाधिकार पूर्णतया समाप्त कर दिया गया। इग्लैंड के व्यक्तिगत व्यापारियो को भारत से व्यापारिक सबध स्थापना की छूट प्रदान की गई। अपवाद मात्र यह था कि कोई भी व्यक्तिगत पानी का जहाज 400 टन से अधिक सामान नहीं ला व ले जा सकता था।

ब्रिटिश व्यापारियो एव मिशनरियो के डाइरेक्टरो या उनके इनकार करने पर बोर्ड स लाइसेन्स लेकर भारत म बसने और अपना काय करने की स्वतन्त्रता दी गई। ऐसा कपनी द्वारा इगित खतरो को ध्यान म रखकर किया गया। भारतीय क्षेत्र को ब्रिटिश सपत्ति माना गया और बिना लाइसेन्स के यहा प्रविष्ट होने वाले ब्रिटिश दस्तदाज माने गये। भारतीय लोगो के विरुद्ध अग्रेजो के यहा अनाधिकृत रूप से प्रवेश करने, उनपर प्रहार करने या छोटा कर्ज लेने के मामलो को 'जस्टिस आफ पीस' के अधीन न्यायाधीन रखा गया। अग्रेज व्यापारी निवासी या प्रेसीडेन्सी स दस मील की दूरी तक अस्थिर सपत्ति रखने वाले नागरिक मुकदमो के लिए सिविल कोर्टों के अधीन रखा गया। फौजदारी मुकदमो के लिए विशेष व्यवस्था की जानी थी। यह भी प्रावधान किया गया कि वे अग्रेजी प्रेसीडेन्सी से 10 मील से अधिक दूरी पर रहते है, उन्हे अपना रजिस्ट्रेशन जिला कोर्ट मे कराना पडेगा। अवध सिक्के ढालने, चोरी करने, झूठी शपथ खाने और धोखाधडी के मुकदमो के फसे लोगो को दडित करने के लिए विशेष धाराए जोडी गई।

क्षेत्रीय लोगो स भिन्न कपनी को अपना व्यापारिक लेखा जोखा तयार रखना पडता था। भारतीय राजस्व के प्रयोग के सबध म स्पष्ट कहा गया कि प्रथम वरीयता सेना की भर्ती, और ब्याज देने दूसरी नागरिक व व्यापारिक क्षेत्र मे काम करने और तीसरी वरीयता कपनी के राजस्व पर होने वाले व्यय को दी जायगी। विशेष परिस्थिति को छोडकर अब कम्पनी के व्यय पर ब्रिटिश ताज को भारत मे 20 हजार सनिक भेजने का अधिकार हुआ। कपनी भारतीय राजस्व द्वारा दय वेतन पर 29 हजार भारतीय सेना रख सकती थी। इस सेना के लिए वह नियम व परिनियम बना सकती थी और उनका कोर्ट मार्शल कर सकती थी। लाभाश 10 5 प्रतिशत का रखा गया व शेषाश का 5/6 प्रतिशत राज्य को देने का

निचश्य हुआ । कपनी के व्यापारिक लाभ से और कोई धन तब तक देय नही होता था जब तक कि लाभाश वितरित नही करा दिया जाता था । राजस्व मे धन के बचने पर विशेष असफलताओ को झेलने हेतु कपनी 10 लाख पौण्ड का धन अलग रख देती थी ।

कम्पनी को कलकत्ता मे एक विशप की नियुक्ति के लिए कहा गया जिसके अधीन तीन आकडेक्स नियुक्त होते थे । यह सुविधा इग्लैंड के धम उत्साहियो के लिये थी । कपनी से यह भी अपेक्षा की गई कि वह प्रतिवप एक लाख रुपये की व्यवस्था कर जिसे "साहित्य को पुनर्जीवित व विकसित करने तथा भारत के विद्वानो को उत्साहित करने व भारत के ब्रिटिश क्षेत्र के नागरिको के मध्य विज्ञान की शिक्षा को स्थापित व उन्नत करने" पर व्यय किया जाय ।

ये महत्वपूण धाराये थी जिससे स्पष्ट था ताज की सप्रभुता भारत के कपनी क्षेत्र पर प्रभावी हो गई । बोड आफ कट्रोल की शक्ति पर्याप्त बढा दी गई, कपनी को ताज व ससद के अधिक अधीन कर दिया गया । नागरिक व फौजी प्रशिक्षण हेतु कपनी के सेवको के प्रशिक्षण पर उनका नियत्रण बोड के नियनण को बढाने मे और सफल हो गया ।

कपनी के एकाधिकार की समाप्ति भी कम महत्त्वपूण नही थी । ब्रिटेन के व्यक्तिगत व्यापारी अब भारत मे आकर बस सकते थे और कपनी के व्यापार से होड ले सकते थे जो इसके पहले नही था । इस तरह व्यापार का मूल्य बढ गया । 1813 म यह एक करोड तीस लाख पौण्ड था जबकि 1865 में बढकर 100 करोड पौण्ड हो गया ।

भारतीय व्यापार का इग्लड के व्यक्तिगत व्यापारियो के लिए खोला जाना जहा एक ओर ब्रिटिशो के अत्यधिक हित मे हुआ जिससे वे नैपोलियन की महाद्वीपीय व्यवस्था का विरोध कर सके, वहा दूसरी ओर भारतीयो का इससे शोषण भी हुआ । भारत का कच्चा माल इग्लड ले जाया जाने लगा जबकि उस देश का पक्का माल भारत के बाजारो म भरा जाने लगा । लकाशायर के उद्योगपति लाखो म यहा आन लगे और भारत का उद्योग, लडखडाने, नष्ट होने और मरने लगा । भारत पर एक अकथनीय विपत्ति आ गई जिससे वह गरीबी और असहायता की मूर्ति हो गया ।

इग्लैंड की ईसाई मिशनरियो को स्वतत्रता पूवक इस देश मे आने और बसने की छूट मिल गई । इस दृष्टि से तो इसका अच्छा प्रभाव पडा कि बहुत से मिशनरी स्कूल और कालेज भारतीयो की शिक्षा के लिए खाल दिए गये । पर इसका एक दुष्प्रभाव यह हुआ कि ये मिशनरिया शीघ्र ही विरोध भाव से ग्रस्त हो गईं और भारतीय परपराओ को उल्टा सीधा ही नही कहने लगी बल्कि बबर की सज्ञा देने लगी । इससे अग्रेजो और भारतीयो के बीच जातीय शत्रु

विकसित हुआ।

एक लाख रुपये भारत में शिक्षा के विकास के लिए अलग से रखा जाना स्वागत योग्य कदम था। इसने भारत में अंग्रेजी तरीके की शिक्षा का प्रारंभ किया जिसने भारतीय मस्तिष्क को अंग्रेजी साहित्य के माध्यम से स्वतन्त्रता और समानता का पाठ पढ़ाया। इंग्लैंड से व्यक्तिगत व्यापारियों के स्वतन्त्रतापूर्वक आने-जाने से भारत में युरोपीय संस्कृति का आयात भी प्रारम्भ हो गया।

युद्ध

इसी एक्ट की पृष्ठभूमि में लार्ड हेस्टिंग्स भारत पहुंचा। नील नपोलियन के पराभव के बाद फ्रांसीसी खतरा टल गया था, 1810 में मारीशस पर अधिकार ने इस खतरे को और कम कर दिया। पर कंपनी की दशा अब भी भयाप्रद थी।

हेस्टिंग्स के भारत आगमन पर भारत में तीन तरह के राज्य थे जिनसे ब्रिटिशों के अलग अलग तरह के सम्बंध थे। एक तरह के राज्य तो ये थे जिनके साथ ब्रिटिशों की सहायता संधियां थी जिसके अंतर्गत ब्रिटिशों ने राज्य के आन्तरिक व बाह्य उत्तरदायित्व ले रखा था। संबंधित राज्यों को इसके लिए सहायतार्थ सेना प्राप्त होती थी जिसका व्यय-वहन उन्हें ही करना पड़ता था। इस संधि के अंतर्गत राज्य को अपनी स्वतन्त्रता बचानी पड़ती थी। राज्यों की दूसरी कोटि वह थी जो ब्रिटिशों पर पहले राज्यों की ही भांति निर्भर करती थी पर इन्हें सहायक सेना की आवश्यकता नहीं थी। राज्यों की अंतिम श्रेणी वह थी जिनकी स्वतन्त्रता ब्रिटिशों द्वारा मान्य होती थी और उनसे संबंध साधारण संधियों पर आश्रित होते थे।

वेलजली के शासन काल में बहुत से राज्य उपरोक्त दो श्रेणियों में ले आये गये। 'मुस्लिम आकांक्षाओं को विशेषतया दबा दिया गया जिससे हेस्टिंग्स का कष्ट कम हो जाय। निजाम को सहायक संधि के अंतर्गत ले आया गया, कर्नाटक को जीत लिया गया, जबकि मैसूर के वंश को बदलकर ब्रिटिशों के अधीन कर दिया गया। वेलजली ने मराठों से भी निबटने की चेष्टा की। पर वह पूर्णतया कुचल दे उसके पहले ही उसे वापस बुला लिया गया और इस क्षेत्र में हेस्टिंग्स की यह एक प्रमुख कठिनाई थी।

मराठे मराठे जिस क्षेत्र में शासन करते थे वह कार्यक्षम न था। सबसे बड़ी बुराई उनकी थी अपने राज्य के शासन के बाहर के क्षेत्रों से चौथ की वसूली। इसके कारण भविष्य में विभिन्न मराठा राज्यों के विरुद्ध संघर्ष संभावित था तथा आपस में श्रेष्ठता के लिए संघर्ष की भी संभावना थी। इस तरह उनमें आपस में द्वन्द्व था जिसमें पेशवा होल्कर द्वारा पराजित कर दिया गया और पेशवा ने ब्रिटिश संरक्षण

1811 से ही यह राज्य एक बच्चे के हाथ में था जिसको लेकर उसकी विधवा माँ और भाग्यशाली सैनिक अमीर खाँ में संघर्ष छिड़ा रहता था। 1812 से ही मिण्टो का भोसला को सहायक संधि के अंतर्गत लाने का प्रयास असफल हो चुका था। होल्कर कमजोर था, पर सिंधिया और भोसला राजा भोपाल पर आक्रमण करने में जुटे हुए थे। पेशवा के गायकवाड़ संबंधी अधिकार पर अभी निर्णय नहीं हुआ था और अब यह बसीन के संधि के अनुसार ब्रिटिशों के हाथ में था। पेशवा सहायक संधि के जुए के नीचे दबा था। पर वह पुनः स्वतंत्रता प्राप्ति और मराठा के बीच प्रतिष्ठा अर्जित करने में लगा था। मराठे बदले की भावना से उबल रहे थे इसलिए हेस्टिंग्स को इन कठिनाई का सामना करना पड़ा।

पिण्डारी मराठों के अतिरिक्त हेस्टिंग्स को अन्य क्षेत्रों से भी कठिनाई का सामना करना पड़ा। इसमें से पिण्डारियों तथा पठानों का विवरण आवश्यक है। पिण्डारी शब्द के उत्पत्ति की जानकारी तो नहीं मिलती, पर यह कहा जाता है कि यह शब्द 1689 में सामने आया। कुछ लोगों के मतानुसार इस शब्द की उत्पत्ति पण्डौर से हुई। पिण्डारियों का स्वयं यह विचार है कि उनके नाम का संबंध पिण्डा शब्द से है जो उनके द्वारा प्रयुक्त मादक द्रव्य का नाम था।[1] कहा जाता है कि पिण्डारी पहले हिन्दू थे जो औरंगजेब के अति कठोर धार्मिक नीति से घबड़ाकर शिवाजी की सेना में सम्मिलित हो गये। उनकी मृत्यु के बाद अनियमित घुड़सवार सेना के रूप में पेशवा के काल में वे स्वयं आक्रमण करते थे। 1761 में तृतीय पानीपत के युद्ध के कुछ काल बाद उन्होंने अपने को दो दलों में विभाजित कर दिया। एक ने अपने को सिंधिया से जोड़कर अपने को सिंधिया शाही कहना प्रारंभ किया जबकि दूसरे ने अपने को होल्कर से जोड़कर निजामशाही कहना प्रारंभ किया। मराठा की शक्ति घटने के साथ पिण्डारियों ने मराठा से अपने को अलग करना प्रारंभ कर दिया और अपने द्वारा स्वतंत्र रूप से लूट-पाट की नीति अपनानी प्रारंभ कर दी। 'नवम्बर के प्रारंभ में वे प्रतिवर्ष एकत्रित होते थे और अपने को योग्यतम व बहादुर नेता की अध्यक्षता में करके विभिन्न दलों में बटकर जो कभी-कभी हजारों का होता था, आगजनी, बर्बादी और लूटपाट की क्रिया में लगा देते थे। उनका इस तरह का क्षेत्र कभी कभी मैसूर से जमुना तक होता था। वे नियमित सेना की रोकथाम की क्रिया को भी असफल कर देते थे।"[2]

---

1 मलकाम सेंट्रल इंडिया, भाग 1 पृ० 433।

2 मार्शमैन पूर्वोद्धृत पृ० 52। देखें राय एम० पी० ओरीजिन, ग्रोथ एण्ड सप्रेसन आफ पिण्डारिज (1973) पृ० 1-2। यह राजस्थान विश्वविद्यालय का एक शोध प्रबंध है जो पिण्डारियों के उत्पत्ति संगठन पद्धति नेतृत्व उनके लूटपाट की कार्यवाहियों तथा लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा उन्हें दबाने की क्रिया का विवरण देता है।

पठान—"क्षेत्रीय संबंधों से अन्यमनस्क और उत्तरदायित्वहीन नेतृत्व" के साथ पठान वे लोग थे जो लूट मार व अव्यवस्था बनाये रखते थे। पिण्डारियों से ये इस दृष्टि से भिन्न थे कि वे अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अव्यवस्थित तौर-तरीके नहीं अपनाते थे। सवैतनिक सैनिक होने के साथ-साथ पठानों के पास घुड़सवारों के अतिरिक्त अच्छी पैदल व तोपसेना भी थी। उनमें अनुशासन भी था और अच्छी आदतें भी। उनके सफल नेताओं में अमीर खां था जिसके पास तीस हजार सेना थी।

स्वतंत्र क्षेत्र—भारत में हेस्टिंग्स के आगमन के पूर्व ही ब्रिटिश प्रभाव दूर-दूर तक फैल चुका था। उत्तर-पश्चिम में सतलज से पार महाराजा रणजीत सिंह का राज्य था। पर ब्रिटिशों का प्रभाव व उत्तरदायित्व भारत के शेष भाग के आधे भाग से अधिक पर व्याप्त हो गया था। केवल एक क्षेत्र जो ब्रिटिश उत्तरदायित्व के क्षेत्र के बाहर था, वह भारत के मध्य में पड़ता था और बम्बई प्रेसीडेंसी को शेष भारत से अलग करता था। 'यह प्रचंड दिल्ली को बड़ौदा से अलग करता था। इसके एक ओर टेढ़ा मेढ़ा क्षेत्र था जिसका केन्द्र गोदावरी नदी के निकट नागपुर के दक्षिण का इलाका था और दूसरी ओर दक्षिण की ओर लम्बा होता मैसूर तक पहुंचता क्षेत्र था जो समुद्र और निजाम के क्षेत्र हैदराबाद के बीच पड़ता था।" भारतीय महाद्वीप का यह मध्य क्षेत्र जो स्वतंत्र था, इसकी सीमाएं ब्रिटिशों के लिए सुरक्षा हेतु अतिविस्तृत थी जिससे विकसित साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में आवागमन कठिन ही नहीं कभी कभी असंभव हो जाता था। पर इससे भी अधिक गहन समस्या यह थी कि देश के इस क्षेत्र की दशा दयनीय थी लोग असंगठित थे और निरंकुश शासकों तथा उनके द्वारा आरोपित करों के नीचे दबे थे। समाज बिखराव के कगार पर पहुंच गया था, क्षेत्र डाकुओं के धमा-चौकड़ी का स्थल बन गया था और साधन-स्रोत शत्रुओं द्वारा बर्बाद किया जा रहा था, सेना तो लगता था कि लूटपाट, कष्ट देने और विद्रोह के लिए ही बनी थी, संक्षेप में सरकार नाम की कोई चीज थी ही नहीं वहां केवल कष्ट और अत्याचार ही था।[1] और जब तक देश के इस क्षेत्र में इस तरह की स्थिति चलती रहती, पास पड़ोस के ब्रिटिश नियंत्रित व सुरक्षित क्षेत्रों में शांति व व्यवस्था की आशा नहीं थी। इसलिए देश के इस स्वतंत्र क्षेत्र के संबंध में कुछ किया जाना आवश्यक था।

आंग्ल-नेपाली युद्ध—और फिर हेस्टिंग्स के लिए नेपाल की ओर से एक समस्या खड़ी थी। इस देश के क्षेत्र के निवासी मंगोलियन थे जिनके बीच राजपूतों के नेतृत्व में हिन्दू बस गये। इन राजपूत सरदारों ने अपने लिए स्थान-स्थान पर शासन-क्षेत्र बना लिए और अनवरत युद्ध करते रहे और क्षेत्र विस्तार के लिए

---

1 त्रिपाठी एवं पूर्वोक्त पृ० 55 60।

अशाति बनाये रखते रहे। प्लासी के लगभग 10 वर्षों के बाद गुरखा नामक एक पहाडी जाति ने अपने को राजपूत वशीय बताते हुए काठमाडू की घाटी पर आक्रमण कर रौंद डाला। सैनिक प्रशिक्षण व अनुशासन मे गुरखे घाटी वासिया से बेहतर होने के कारण जीत गये। उनकी सेना ब्रिटिशो की पद्धति पर प्रशिक्षित थी और लगभग 50 वर्षो मे उन्होने पूरे देश को अपनी शक्ति से अधीन करके उसे अपना नाम दे दिया। पर वे इतने से ही सतुष्ट न हो सके। शक्तिशाली एव युद्ध-प्रिय होने के कारण "उन्हे लगा कि पर्वतीय क्षेत्र का उनका देश काफी छोटा है।" 19वी सदी के प्रारभ से ही शक्तिप्राप्त चीन को उत्तर मे पाकर उन्होने "बगाल और अवध के क्षेत्र मे अनिश्चित सीमा क्षेत्र पर दबाव डालना प्रारभ किया। इसी समय उन्होंने ईस्ट इडिया कपनी द्वारा बताये गये उसके क्षेत्र पर दक्षिण के कुछ निचले भागा पर अधिकार कर लिया।"[1] 1812 म इस झगडे के छानबीन के लिए दोना देशा न कमिश्नरा की नियुक्तिया की। जाच से यह पता चला कि गोरखा ने जिन जगहा पर अधिकार किया है वहा का वह स्वामी नही है। 1813 मे इसीलिए लार्ड मिण्टो ने अत्यन्त शिष्ट भाषा मे एक पत्र लिखकर इन जिलो को नेपाल से छोडने का आग्रह किया। मिण्टो के इस पत्र का उत्तर हेस्टिंग्स को कार्यभार ग्रहण करने पर मिला जिसका आशय यह था कि गोरखा से यदि इस समस्या का समाधान करवाना है तो सेना का प्रयोग करना ही होगा।

1813 में लार्ड हेस्टिंग्स के कार्यभार ग्रहण करने के समय भारत की राजनीतिक दशा इस तरह की थी। हेस्टिंग्स भारत इस निश्चय के साथ आया था कि वह भारत म अपने पूर्ववर्तियो की निहस्तक्षेप की नीति अपनायेगा। पर परिस्थितिया ने उस इस नीति को परिवर्तित करने को बाध्य किया।

नेपाल की समस्या का समाधान पहले आवश्यक था। शातिपूर्ण ढग से समस्या के समाधान न होने पर 34 हजार की एक सेना तैयार की गई और 1814 मे उसे नेपाल के विरुद्ध भेजा गया। वैसे तो गोरखे 12 हजार से अधिक नियमित सैनिक न एकत्रित कर सके और कुछ नई सेना भी उन्हाने एकत्रित की, पर 1814 15 की इस लडाई मे ब्रिटिशों को विनाशकारी विफलता भोगनी पडी। जावा मे युद्ध लडकर प्रसिद्धि प्राप्त गिलेस्पी ने एक पहाडी किले पर आक्रमण किया, पर जीतने को कौन कहे वह अपने 500 साथिया सहित पीछे ढकेल दिया गया और मारा गया। जनरल मार्टिण्डेल जीतक से आगे नही बढ सका, जनरल मार्ले भी कुछ विशेष नही कर सका एव पाल्पा व काठमाडू पर किये जाने वाले आक्रमण पर्याप्त हानि सहित विफल कर दिये गये। पश्चिमी क्षेत्र मे जनरल आक्टरलोनी को कुछ सफलता मिली पर वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण नही थी। जनवरी 1815 के अन्त तक

---

1 राबर्टस हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इडिया, पृ० 280।

ब्रिटिश बुरी तरह असफल हो गये थे और उन्होंने पर्याप्त हानि भी उठाई थी। दूसरी ओर गोरखे सफलता के नशे में प्रत्येक शक्ति का विरोध करने पर आमादा थे और दर्रों पर अब भी अधिकार किये हुए थे।

15 जनवरी को मेटकाफ ने लिखा "हमारा ऐसे शत्रु से सामना हो गया है जिसमें निश्चित रूप में हमारे से अधिक बहादुरी और शक्ति है, और यह कहना असंभव है कि इस तरह की विफलता का क्या परिणाम होगा। कुछ अवसरों पर तो हमारी यूरोपीय और स्थानीय सेना विरोधियों की कम सेना द्वारा डंडे और पत्थरों से खदेड़ दी गई है। कहीं-कहीं पर हमारी सेना को विरोधियों ने तलवार लेकर ऐसे खदेड़ा है जैसे भेड़ों का समूह। हमारी शक्ति का स्रोत हमारी सैनिक उच्चता थी। पर वर्तमान शत्रु के समक्ष वह समाप्त हो गई है। इस युद्ध में, कितनी भयानक बात है, सैनिक संख्या हमारी ओर थी तथा शौर्य व युद्ध-चातुर्य शत्रु सेना की ओर।"[1]

हेस्टिंग्स के आलोचक यह कहते हैं कि इस युद्ध में आने वाली कठिनाइयों के प्रति हेस्टिंग्स सजग नहीं था। पर यह नहीं सोचा गया कि नेपाल एक ऐसा देश है जिसका पथ कंटकाकीर्ण है और जिसके क्षेत्र सुरक्षात्मक खाइयों से भरे हैं जिसका ज्ञान भी अन्य को नहीं है। गोरखा लोग विश्व के अत्यधिक वीर सिपाहियों में से एक थे और वे अपने पहाड़ी क्षेत्र में आक्रामक के विरुद्ध बुद्धिमानी से लाभपूर्ण कदम उठा सकते थे। जबकि आक्रामक सेना को पर्वतीय क्षेत्र में युद्ध का कोई अनुभव नहीं था। साथ ही नेपाल के प्रवेश भाग के दर्रों पर गोरखों का नियन्त्रण था जिससे ब्रिटिशों की कठिनाइयों में वृद्धि हुई। ब्रिटिश सेनापतियों को पहाड़ी क्षेत्र में युद्ध का प्रशिक्षण भी प्राप्त नहीं था।

इसी बीच नेपाल में ब्रिटिशों की असफलता ने भारत में भी दुष्प्रभाव डाला। गोरखों ने पहले ही पिण्डारी नेता के अतिरिक्त रणजीतसिंह, सिंधिया सहित बर्मा और चीन को अपना दूत भेज दिया था। पिण्डारियों ने परिस्थिति से लाभ उठाने की तैयारी की, पठान नेता अमीर खां ने भी कार्यवाई करने की सोची, रणजीत सिंह ने लाहौर में 20 हजार सैनिक एकत्रित कर लिया और कहा जाता है कि उन्हें सतलज तक ले आया। इन सबके अतिरिक्त मराठों को लगा कि अब वह समय आ गया है जब वे ब्रिटिशों के विरुद्ध आक्रामक नीति अपनाकर पुरानी शत्रुता का बदला ले सकते हैं।

पर हेस्टिंग्स हतोत्साहित नहीं हुआ। उसने कठिनाइयों पर विजय प्राप्ति के नवीन साधन खोजे। भाग्य ने भी साथ दिया। रणजीतसिंह पर अफगानिस्तान की ओर से आक्रमण का खतरा पैदा हो गया, पिण्डारियों में आपस में फूट पड़ गई

---

1 मुखर्जी बी० दी० ब्रिटिश स्टेट्समेन इन इण्डिया पृ० 100 द्वारा उद्धृत।

और सिंधिया के सेनापति आपस मे लडने लगे। इस तरह ब्रिटिश शत्रुओ के सग-ठित होने की सभावनाये धूमिल पड गई। नई सेनाए नेपाल की ओर भेजी जाने लगी और सफलता ने ब्रिटिशो के पाव चूमने प्रारभ कर दिये। 1815 के गर्मी के दिनो म गोरखो ने सधि की याचना प्रारभ कर दी। 28 नवबर को गोरखा दूत ने ब्रिटिशो से सगौली मे एक सधि पत्र पर हस्ताक्षर किया। इसके अतगत (1) गोरखा को तराई का अधिकतर भाग अर्थात् नेपाल के दक्षिण का अति उपजाऊ भाग जो गगा नदी से तीस्ता तक फैला हुआ था, ब्रिटिशो को देना पडा। ब्रिटिशो ने कुमायू और गढवाल के जिले भी प्राप्त किये। इस तरह ब्रिटिशो की उत्तर-पश्चिम सीमा पहाडो तक पहुच गई। ब्रिटिशो ने नेपालियो की हानि के लिए क्षति-पूर्ति के रूप मे 2 लाख रुपये देना स्वीकार किया। (2) नेपाल ने सिक्किम के राजा की स्वतत्रता स्वीकार की एव (3) नेपाल ने काठमाडू मे रेजीडेन्ट रखना स्वीकार किया।

9 दिसबर को कलकत्ता की प्रधान ब्रिटिश सरकार ने इस सधि को स्वीकृत किया। पर इसी बीच नेपाली राजा के सहयोगी युद्ध प्रेमियो ने इस सधि को अस्वीकृत कर दिया। नया आक्रमण आवश्यक हो गया और फरवरी 1816 मे नेपाली क्षेत्र मे एक सेना भेजी गई। जब नेपालियो को यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश आक्रामक कार्यवाई को आगे बढायेंगे तो गोरखो की लाल सरकारी सील सगौली के सधि पत्र पर लगा दी गई और उसे ब्रिटिश कैम्प म भेज दिया गया।

जब विजयी हेस्टिंग्स ने यह देख लिया कि नेपाली सधि चाहते है तो उसने उनके प्रति उदार रुख अपनाया जिससे कि भविष्य मे दोनो के मध्य अच्छे सबध रह। अतिम व्यवस्था मे ब्रिटिश सीमाओ का निर्धारण करके वहा जगह-जगह पर खम्भे लगा दिए गए। तराई का अधिकतर भाग नेपाल को वापस कर दिया गया जिसके लिए ब्रिटिशो को नेपाल को प्रतिवष 2 लाख रुपये देने थे। अवध क्षेत्र मे पडने वाले तराई का कुछ भाग अवध के नवाब को दे दिया गया क्योकि उसन 2 करोड रुपये व्यय हेतु दिया था। इस क्षेत्र के बदले 1 करोड का ऋण चुका मान लिया गया। शेष आधा ऋण नवाब को कभी वापस नही किया गया। इसी सदर्भ म हेस्टिंग्स ने डाइरेक्टरो को लिखा "गोरखा युद्ध मे कपनी का एक शिलिंग भी व्यय नही हुआ है।"[1] तराई का एक छोटा सा भाग सिक्किम के राजा को प्रदान किया गया जिसके साथ ब्रिटिशो ने 1817 मे एक सुरक्षात्मक सधि की। इस सधि के अतर्गत भूटान और पूर्वी नेपाल के बीच सीमा-रेखा खीची गई। ब्रिटिशो ने वही क्षेत्र लिया जिससे नेपाल व उसकी सीमा के बीच विवाद की सभावना न रहे। सगौली की सधि उपरोक्त आधारो पर परिवर्द्धित की गई और नेपाल से

1 टाम्सन एडवर्ड द मेकिंग आफ द इडियन प्रिसेज पृ० 187।

अच्छे सबधो की स्थापना हुई। अब से आगे सदा के लिए भारत की उत्तरी सीमा सुनिश्चित हो गई और स्थायी रूप से नेपाल से ब्रिटिशो का सबध अच्छा हो गया। ब्रिटिश सेना म नेपाली भर्ती होने लगे जिससे ब्रिटिशो की शक्ति भी बढी।

1813 के चार्टर ऐक्ट के अनुसार भारतीय व्यापार पर कपनी के एकाधिकार म कटौती के कारण बोर्ड आफ डाइरेक्टस आर्थिक क्षति की कल्पना से आतकित थे। इसी कारण वे हेस्टिंग्स की नेपाल के प्रति नीति को उचित नही मानते थे। पर जब उन्ह यह अनुभव हुआ कि हेस्टिंग्स ने बाध्यतावश इसे किया है और अतत जब उसे विजय भी प्राप्त हो गई तो उन्होने एक स्वर से उसकी प्रशसा की और धन्यवाद दिया। इसी अवसर पर हेस्टिंग्स को मार्क्विस व बैरन की उपाधि दी गई।

पिण्डारी युद्ध—उपरोक्त वर्णित पिण्डारी सभी जगह आतक व विनाशलीला का प्रदर्शन कर रहे थे। लार्ड हेस्टिंग्स ने सदा-सदा के लिए इनकी लूटपाट की रीति नीति को समाप्त करने का सकल्प किया। पर कुत्ता की मौत से शिकार चारो के उत्तेजित होने की आशा थी। इस तरह के किसी प्रयास से मराठा और ब्रिटिशो के बीच सघर्ष की गजाइश थी क्योकि मराठे पिण्डारियो की सहायता करते थे और वे निश्चित ही इस स्थिति से लाभ उठाकर पुरानी शत्रुता का बदला लेने को सोच सकते थे। ब्रिटिश नीति निर्धारक अब भी निहस्तक्षेप की नीति को उचित मानते थे और उन्होने हेस्टिंग्स को "पिण्डारियो को समूल उखाड फेंकने के लिए या उनसे आसन्न खतरे को ध्यान मे रखकर उनके विरुद्ध आक्रामक नीति अपनाने के लिए [1] सावधान किया। वे इस पक्ष मे भी नही थे कि पिण्डारियो से त्रस्त लोगो के हित मे कोई नीति अपनाई जाय या मराठा लूट के विरुद्ध कुछ किया जाय।

लार्ड हेस्टिंग्स इस तरह पिण्डारियो के विरुद्ध कोई कार्यवाई करने के सबध म असहाय था। पर परिस्थितिया शीघ्र ही बदली। ब्रिटिशो की तटस्थ नीति के फलस्वरूप पिण्डारियो की लूटपाट की कार्यवाई और घनीभूत होती जा रही थी। 1815 म उन्होने निजाम के क्षेत्र को लूटा और मद्रास प्रेसीडेन्सी म कृष्णा नदी के आगे तक धावा मारा और तमाम लूट का सामान ले गये। 1816 मे एक ब्रिटिश क्षेत्र उत्तरी सरकार म उन्होने लूटपाट का वह दृश्य उपस्थित किया कि उससे धन की हानि तो हुई ही युवतियो तक को भी वे ले गये। इसी बीच मार्च 1816 म वजीर मुहम्मद का देहान्त हो गया। वह भोपाल का नवाब था और हेस्टिंग्स न उसे सिंधिया और भोसले के विरुद्ध अक्टूबर 1814 मे सुरक्षा के लिए आश्वस्त किया था। उसका पुत्र नासिर मुहम्मद उसका उत्तराधिकारी हुआ।

1 मार्शमन, ज० सी० हिस्ट्री आफ इंडिया (तीन भागो म) 2, पृ 305।

चूंकि वह मराठा व अन्य शत्रुओं से घिरा हुआ था इसलिए उसने भी हेस्टिंग्स से सुरक्षा चाही। पर हेस्टिंग्स उस शुभेच्छा के अतिरिक्त और कुछ न प्रदान कर सका। जब हेस्टिंग्स ने सूचना दी इसके प्रमाण थे कि पिण्डारी, पेशवा और अन्य मराठा नेताओं ने "भारत से ब्रिटिशों को निकाल बाहर करने के लिए"[1] एक गहन षड्यंत्र रचा था। यदि ब्रिटिश समय से कार्यवाई न करते तो उनका भारत में रहना ही समस्याग्रस्त हो जाता। इस तरह इंग्लैंड में बोर्ड आफ कंट्रोल को जब यह बात समझ में आई कि पिण्डारियों को दबाया जाना आवश्यक है और भारत के राजाओं को उनके विरुद्ध सुरक्षा प्रदान कर ब्रिटिश प्रतिष्ठा बढ़ाई जानी है तो उसने हेस्टिंग्स को आवश्यक कार्यवाई हेतु अधिकृत कर दिया।

हेस्टिंग्स ने वृहद तैयारियां प्रारम्भ कीं। चूंकि उसे आशा थी कि मराठे और अन्य भी कठिनाइयां पैदा कर सकते थे इसलिए उसने 1 लाख 20 हजार की एक बड़ी सेना तैयार की और 300 बंदूकों की व्यवस्था की। "ब्रिटिश झंडे के नीचे भारत में एक उद्देश्य के लिए पहली बार इतनी बड़ी सेना तैयार की गई।" इस सेना को दो भागों में बांटा गया। एक हिन्दुस्तानी सेना जिसमें चार डिवीजन थे और जिसका नेतृत्व हेस्टिंग्स स्वयं कर रहा था। दूसरी दक्षिण की सेना जिसमें पांच डिवीजन थे और जिसका नेतृत्व सर टामस हिसलाप कर रहा था। हेस्टिंग्स की योजना यह थी कि वह [illegible] टुकड़ी के साथ पिण्डारियों को घेरेगा तथा दूसरी सेना के साथ यह चेष्टा करेगा कि मराठे पिण्डारियों की सहायता के लिए न आ सकें। पर यह कार्यवाई प्रारम्भ करने से पूर्व उसने भारतीय राजाओं से संबंध सुधारने की चेष्टा की। मध्य भारत के राजाओं तथा राजपूताना के शासकों सहित सिंधिया, होल्कर यहां तक कि अमीर खां से संपर्क स्थापित किया गया। परिणाम-स्वरूप 1817 में मालवा के तमाम राज्यों से सहायक संधि की गई। भोपाल के नाजिर मुहम्मद ने भी सहायक संधि की और इसके अतिरिक्त उदयपुर, जोधपुर और अन्य राज्यों ने भी इसी तरह की संधियां कीं।

पूना के पेशवा बाजीराव ने अमीर की संधि के अनुरूप अधीनता स्वीकार की। पर ब्रिटिशों की सहायता से उसे कुछ अन्य राज्यों पर प्रभुत्व स्थापित करने का अवसर मिला। [illegible]

1 [illegible] 106।

उसने अपने लडके और पेशवा की पत्नी की बहन के बीच विवाह का संबंध तब तोड दिया जब विवाह होने ही वाला था। बाजीराव इससे क्रुद्ध हो गया और इस कारण शास्त्री की हत्या कर दी गई। इस अपराध मे त्रिम्बक जी का सम्मिलित होना तो सिद्ध हो गया, पर पेशवा भी इसमे था, सन्देहास्पद बात थी। पेशवा की परीक्षा के लिए पूना स्थित ब्रिटिश रेजीडेन्ट माउण्ट स्टुअर्ट एलफिन्स्टन, जो एक योग्य राजनयिक विद्वान और कार्यशील व्यक्ति था, ने त्रिम्बक जी के विरुद्ध तुरंत कार्यवाई की माग की। पेशवा कुछ क्षण के लिए तो सहमा, पर रेजीडेन्ट के कडे रुख को देखकर उसने 11 सितम्बर 1815 को त्रिम्बक जी को उसे समर्पित कर दिया। पर त्रिम्बक जी उसकी कैद से एक वर्ष बाद निकल भागने मे सफल हो गया। पेशवा ने इस घटना मे अपना हाथ होना अस्वीकार किया, ब्रिटिशो के प्रति नरमी का रुख अपनाया और फरवरी 1817 मे गायकवाड से मतभेद मिटाते हुए एक तर्कसंगत संधि कर ली। साथ ही ब्रिटिशो की पिण्डारी विरोधी योजना के प्रति सहानुभूतिपूर्ण भावना व्यक्त की।

पर यह सब उसने रेजीडेन्ट की आखो मे धूल झोकने के लिए किया। इस मध्य वह बराबर त्रिम्बक जी के सम्पर्क मे रहा और पिण्डारियो के विरुद्ध ब्रिटिश नीति के सहायतार्थ कर वसूलता रहा। पर रेजीडेन्ट अपरिपक्व राजनीतिज्ञ नही था। उसे षडयन्त्र की जानकारी हुई और उसने तुरन्त पूना के विरुद्ध सैनिक कार्यवाई का आदेश दिया व पेशवा को अपने अंतिम निर्णय की सूचना भिजवा दी। पेशवा आतंकित होकर ब्रिटिश माग मानने को तैयार हो गया और 13 जून 1817 को पूना की संधि ने बसीन की संधि का स्थान ले लिया। नयी संधि ने त्रिम्बक जी को अपराधी माना और उसके परिवार को ब्रिटिशो का बंधक बना दिया। बसीन की संधि मे कुछ परिवर्तन किये गये। पेशवा ने अपने कई शक्तिशाली क्षेत्र ब्रिटिशो को प्रदान किए। दक्षिण के कुछ भाग, कोकण प्रांत के समुद्रतटीय-क्षेत्र, बुंदेलखंड, मालवा और नर्मदा के उत्तर क्षेत्र पर पेशवा को अधिकार त्यागना पडा। मध्य भारत मे षडयन्त्र न करने का उसने वादा किया और मराठा संघ का स्वामित्व का पद भी न मागना स्वीकार किया। उसके क्षेत्र मे सहायक सेना मे वृद्धि कर दी गई।

पर पेशवा ने अपने अनुभव से कुछ सीखा नही। जी०एस० सरदेसाई ने लिखा है कि वह मराठा संघ का नेतृत्व करने की योग्यता प्राप्त करने की क्षमता खो चुका था फिर भी उसने ब्रिटिशो के विरुद्ध गुप्त रूप से नीति चलते रहने दी और उन्हें ऐसी बातों पर नियंत्रण करने मे टालमटोल की। पर राष्ट्र से उसे कोई सहायता नही मिली क्योंकि उसकी बेसीन की संधि के अंतर्गत स्वतन्त्रता बेचकर सहायता स्वीकार करने की बात अनुचित मानी गई थी।[1] नागपुर मे मार्च 1816

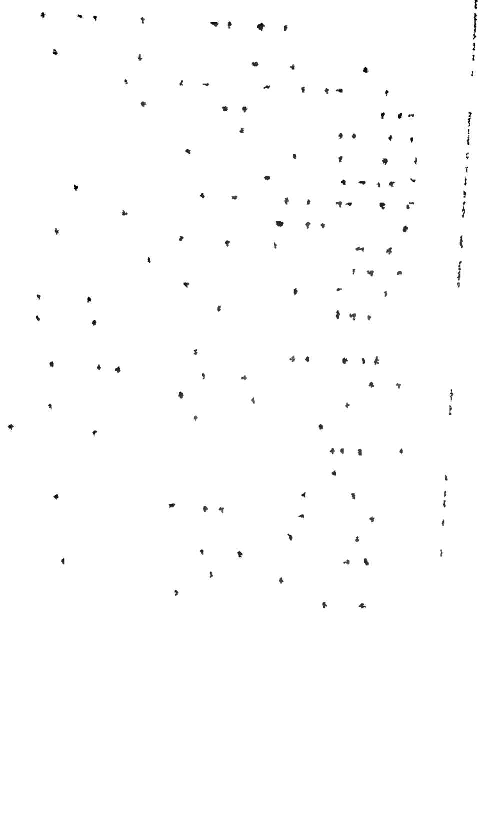
---

1 सरदेसाई जी० एस द मेन करेंट्स आफ मराठा हिस्ट्री पृ० 194।

मे राजा रघुजी की मत्यु हो गई। उसके बाद भोसला शासन का उत्तराधिकारी और उसका दुबल और अधा पुत्र पुरसा जी हुआ। बालक शासन के सरक्षक पद के लिए दरबार मे सघष हुआ जिसमे रघुजी भोसले के भतीजे अपा साहब को अतत सफलता मिली। पर चूकि रघुजी ने असुरक्षा का अनुभव किया, इसीलिए ब्रिटिशो से सहायता सधि के लिए प्राथना की। इस प्राथना को सहर्ष स्वीकार किया गया आर 27 मई 1876 का सधि हो गई। ब्रिटिशा को इससे अत्यधिक लाभ यह हुआ कि उन्हे नवदा के निकट सैनिक शक्ति सजोने का अवसर मिला। जहा से पिण्डारियो को सुविधापूवक दबाया जा सकता था। ब्रिटिशो को एक ऐसा मित्र मिल गया जो अपनी स्थिति से सतुष्ट था, पर जिसकी अभी परीक्षा नही हुई थी और हेस्टिंग्स समझता था कि वह विश्वस्त नही है।

शासक होल्कर अल्पवयस्क था। उसका दरबार अव्यवस्था का केन्द्र था। वहा दो दल थे। एक था होल्कर के पिता की विधवा का तथा दूसरा अमीर खा का। 1816 के अत तक दोना दल खुलेआम भिड गये, पर किसी को एक-दूसरे से ऊपर जाने का मौका न मिला। दौलतराव सिंधिया वैसे तो सगठनहीनता, सेना मे विद्रोही प्रवत्ति तथा आतरिक कठिनाइया से परेशान था, पर वह पिण्डारियो से गुप्त सपक मे भी था और उनसे सहानुभूति भी रखता था। इस स्थिति से वह लाभ उठाना चाहता था। सिंधिया और होल्कर सच मे पिण्डारी लूट पाट की प्रवृत्ति को चलते रहने देना चाहते थे जिससे हेस्टिंग्स की कठिनाइया बढे। हेस्टिंग्स गायकवाड, भोपाल और बहुत से राजपूत राज्या द्वारा कठिनाई पैदा करने की आशा नही करता था। पर वह निजाम के प्रति आश्वस्त नही था। पर सिंधिया और होल्कर को सितबर 1817 मे शक्तिहीन कर दिया गया। सिंधिया से ब्रिटिशो ने कहा कि वह उनकी सेना को अपने क्षेत्र से होकर जाने दे जोकि दक्षिण से नवदा की ओर आगे बढ रही थी। वैसे तो बाह्य तौर पर सिंधिया ने पिण्डारियो के विरुद्ध ब्रिटिश योजना के प्रति सहानुभूति व्यक्त की, पर पशवा के प्रति विश्वस्तता को ध्यान मे रखकर व सेनापतियो के दबाव मे आकर उसने ब्रिटिशा की माग टाल दी। पर लाड हेस्टिंग्स भटकने वाला व्यक्ति नही था। उसने अब और कठोर मार्ग पेश की और सधि-वार्ता पूरी भी न हो पाई थी कि युद्ध प्रारभ हो गया। होल्कर से भी इसी आधार पर सधि-वार्ता हुई और वह भी उसी तरह असफल हो गई।

तृतीय मराठा युद्ध—इस तरह पिण्डारियो की खोजबीन मे तृतीय मराठा युद्ध भी जुड गया। हेस्टिंग्स ने इस बात की कल्पना की थी और इसी कारण इतने विस्तत आधार पर सैनिक तैयारिया की गयी। स्थिति का आकलन कर 1817 के अतिम 3 महीनो म उसने सैनिक कायवाई की। क्लासडेवग मेजर रास ने लिखा है—"पिण्डारियो को मालवा क्षेत्र मे उनके गुप्त स्थलो से निकालकर समाप्त करना था। वे उज्जन के पूरब मे, नवदा के उत्तर, भोपाल तथा सिंधिया व होल्कर



घुडसवार और दो बदूको की सेना लेकर पूना की ओर आगे बढा। पर रास्ते मे उसने अपने को पेशवा की 20 हजार घुडसवार और 8 हजार पैदल सेना से घिरा पाया। इस सेना मे आधे अरब थे। मैदानी युद्ध से बचने के लिए स्टाण्टन निकट ही कोरेगाव पहुचा जिससे मराठा खतरे से बचाया जा सके। पर उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस गाव के प्रमुख स्थानो पर अरब सैनिको का पहले से ही अधिकार है। फिर भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने कुछ भवनो को घेरा। उसकी थोडी थकी, भूखी व प्यासी सेना पर मराठा पैदल सेना ने आक्रमण किया क्योकि वहा पर घुडसवार सेना नही थी और उनका तोपखाना कमजोर था। एक के बाद एक आक्रमण उनपर किया जाता रहा पर प्रत्येक को ब्रिटिश बहादुरी से पीछे हटाते रहे। युद्ध होते होते जब रात होने लगी तो एक ब्रिटिश बदूक पर मराठो ने अधिकार कर लिया। युद्ध लगभग ब्रिटिश हार चुके थे जिसपर उत्साहित अरबो ने ब्रिटिश घायलो को भी कत्ल करना प्रारभ कर दिया। स्टाण्टन ने अतिम चेष्टा की। मराठो पर एक प्रतिआक्रमण किया गया, बदूक वापस ले ली गई और काफी सख्या मे शत्रुओ को मारा गया। ब्रिटिशो को आशा थी कि रात मे मराठो द्वारा पुन आक्रमण होगा, पर भाग्य से निरुत्साहित मराठे हारकर दक्षिण की ओर खिसक गये। स्टाण्टन ने अपना उद्देश्य पूरा करके सिरुर लौट जाना उचित समझा। इस युद्ध मे मराठो ने 700 सैनिक खोये, जबकि ब्रिटिशो ने 8 अफसरो मे से 5 को खो दिया और उनके 271 सैनिक मारे गये।

इसी बीच लार्ड हेस्टिंग्स ने पेशवा पद समाप्त करने का अति महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया। इसके अनेक कारण थे। बाजीराव ने लगातार कई वर्षो से ब्रिटिशो का विरोध किया था। कोई सधि उसे नियन्त्रित नही कर सकी थी। इसके अतिरिक्त उसके पद की कुछ गरिमा और प्रतिष्ठा तो थी ही जिसके इर्द गिर्द असतुष्ट एकत्रित हो जाते थे। उसका अधिकार चूकि उसके क्षेत्र के बाहर के मराठे भी स्वीकार करते थे इस कारण कोई सधि उसके प्रभाव को कम नही कर पाती थी। इसके अतिरिक्त यदि उसके पद की समाप्ति कर दी जाती तो छोटे छोटे नेताओ को इससे शिक्षा भी मिलती। इसलिए पेशवा के पद को समाप्त करने हेतु एक घोषणा पत्र प्रसारित करते हुए, जब कि वह अब भी विद्रोह मे जुटा हुआ था, उसे एक विद्रोही व्यक्ति बताया गया।

साथ ही मराठो को सतुष्ट करने के लिए, शिवाजी के वश के सतारा के राजा को मराठो का नेता स्वीकार किया गया। पर उसकी शक्ति इतनी कम कर दी गई कि वह महत्त्वाकाक्षा का शिकार न हो सके।

जनरल स्मिथ बाजीराव का पीछा कर रहा था और सतारा का राजा बाजीराव के कब्जे मे था। स्मिथ एकाएक अस्ती मे पेशवा के निकट पहुचे

गया। पेशवा अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा आवश्यक समझते हुए अपने सेनापति गोखले को पीछे छोड़कर आगे बढ़ गया। गोखले ने कठोर संघर्ष करते हुए मृत्यु को वरण किया और सौभाग्य से राजा वापस मिल गया। यह पेशवा की बहुत बड़ी हानि थी।

ब्रिटिशों से बचने और इधर-उधर दौड़ने के बाद पेशवा पर वर्धा और पैनगंगा के बीच सवनी नामक स्थान पर ब्रिटिशों ने आक्रमण किया। इस युद्ध में जहां दो ब्रिटिश सैनिक घायल हुए वहां पेशवा के एक हजार सैनिक मारे गये। इसके बाद पेशवा की दो तिहाई सेना ने उसका साथ छोड़ दिया और बिखर गई। पेशवा स्वयं पुनः बच निकलने में सफल हो गया।

यहां से पेशवा सिंधिया के क्षेत्र में शरण लेने के लिए रवाना हुआ। पर उसका रास्ता चूंकि रोक दिया गया था इसलिए उसे मैलकाम के समक्ष आत्म-समर्पण करना पड़ा। मैलकाम वैसे भी उस घेरने की तैयारी कर रहा था। पेशवा की ओर से यह शर्त प्रस्तुत की गई कि उसे उसके साथियों सहित अच्छा व्यवहार मिलेगा। और उसे स्वयं 8 लाख रुपये वार्षिक की पेंशन मिलेगी। मैलकाम ने अपने उत्तरदायित्व पर इसे स्वीकार कर लिया और इस तरह समस्या का समाधान हो गया। पेशवा का विश्वस्त साथी त्रिम्बक जी को बनारस के निकट चुनार के किले में आजीवन कारावास प्रदान किया गया।

हेस्टिंग्स ने बाद में मैलकाम की कार्यवाई को इसलिए अमान्य कर दिया क्योंकि दूसरा को पाठ पढ़ाने की शिक्षा देने के लिए उससे बिना शर्त आत्म-समर्पण चाहता था। इसके अतिरिक्त उसे दी जाने वाली वार्षिक पेंशन भी उसे अधिक लगी। मैलकाम का कहना था कि यदि पेशवा की बातें न स्वीकार की जाती तो वह असीरगढ़ के किले में शरण ले लेता जिसे उस समय घेर सकना सरल न था। और साथ ही जब तक पेशवा को पकड़ा न जाता तब तक दक्षिण में शांति स्थापित न होती और युद्ध की स्थिति बनी रहती।

जो भी हो पेशवा की शक्ति समाप्त हो गई। वी० बी० कुलकर्णी ने लिखा है, "पेशवा के निर्वासन पर महाराष्ट्र में खेद व्यक्त किया गया और इसे राष्ट्रीय पतन का समापन माना गया। पर पेशवा स्वयं कष्ट की इस घड़ी से अप्रभावित रहा। उसने प्रसन्नतापूर्वक और विवाह किये तथा लम्बी और अप्रतिष्ठापूर्ण जिन्दगी धार्मिक कार्यों व प्रचारों में बिताई। जान-बूझकर इतनी महान परम्परा को बर्बाद करने वाले व्यक्ति के लिए अश्रु बहाना भी उचित नहीं लगता।"[1]

इस बीच जनरल स्मिथ सतारा के राजा को सतारा ले गया जहां कमिश्नर के हाथों केन्द्र सरकार की ओर से 11 अप्रैल 1818 को उसे मराठा का नना

---

1 कुलकर्णी पूर्वोद्धृत पृ० 114।

स्वीकार किया गया। पी० ई० राबर्ट्स ने लिखा है कि "इस वंश को प्रदत्त पुनर्जीवन बुरा व अकार्यक्षम्य सिद्ध हुआ, और सतारा भी उन राज्यों में से एक था जिसके ऊपर डलहौजी ने राज्य हड़पने के सिद्धान्त का अस्त्र चलाया।"[1] यह कहना उचित ही है कि राज्य की इस अयोग्यता के लिए जितना राजा उत्तरदायी था उतना ही ब्रिटिश कंपनी। और इस राज्य पर राज्य हड़पने के सिद्धान्त का प्रहार राजा की अयोग्यता के कारण उतना नहीं था जितना डलहौजी के आक्रामक रूख के कारण। इसका विवरण आगे आयेगा।

इस बीच पिंडारियों के विरुद्ध घेरा बड़ा होता गया। पिंडारियों ने अपने नेता करीम, वसील मुहम्मद और चीतू के नेतृत्व में सितम्बर में एक बैठक इस उद्देश्य से की कि ब्रिटिशों के विरुद्ध एक समन्वित नीति अपनाई जाय। पर आपसी ईर्ष्या व विभाजन ने उन्हें असफल कर दिया। पहले के अनुभवों के विपरीत कोई भी भारतीय शासक उनके परिवार को सुरक्षा देने को तैयार नहीं हुआ। त्रस्त और भयभीत वे विलासा के आसपास इस आशा में सुस्त पड़े रहे कि कम से कम उनके सहायतार्थ मराठे तो आएंगे ही। पर मराठे तो वैसे भी दबाये जा चुके थे। अंतत वसील मुहम्मद ने ब्रिटिशों पर इसलिए पहला आक्रमण किया जिससे वह वहां से बचकर भाग सके। उसका साथ उसके समर्थकों ने दिया, पर यह चाल सफल न हो सकी। पिंडारी पहले उत्तर की ओर मुड़े पर रोक दिये गये और वे दक्षिण व पूर्व की ओर भागने को बाध्य हुए। बहुत से काट व मार डाले गये पर कुछ अपनी तीव्र गति के कारण बच भी निकले। पठान नेता अमीर खां युद्ध के प्रारम्भ में ही अपनी सेना समाप्त करने को तैयार हो गया और उसे टोंक की जागीर दे दी गई। पिंडारियों के एक नेता करीम को गोरखपुर में भूमि प्रदान की गई जहां वह अपने परिवार व 600 समर्थकों के साथ शांत नागरिकों की तरह रहने को तैयार हो गया। कुछ अन्य ने भी इसी तरह की शर्तें स्वीकार कर ली पर बहुतों ने ब्रिटिशों की बात मानने में अब भी इनकार कर दिया। वसील सिंधिया के क्षेत्र की ओर भागा पर बाद में पकड़ लिया गया। उसे जेल में डाल दिया गया। जहां उसने *आत्महत्या कर ली। चीतू घुमक्कड़ हो गया और एक जंगल में चीते द्वारा मार* डाला गया। इस तरह पिंडारियों का समूह नष्ट हुआ।

नागपुर में अप्पासाहब, जो अब तक परसा जी को मारकर गद्दी प्राप्त कर चुका था और बच्चे होल्कर की सरकार ने भी आश्चर्य रूप में उस समय विद्रोह कर दिया, जब ब्रिटिश सेना उनके राज्य को घेरने आ रही थी। इन कठिनाइयों के बावजूद ब्रिटिशों ने 27 नवम्बर को सीताबाल्दी में अप्पा साहब की सेना को हरा दिया, जबकि होल्कर की सेना 29 दिसम्बर के महीदपुर के युद्ध में बुरी

1 राबर्टस पूर्वोद्धृत, पृ० 287।

तरह हार गई।

सीताबाल्दी के युद्ध के बाद अप्पासाहब को क्षमा कर दिया गया और उसका राज्य वापस कर दिया गया। पर जसे ही यह किया गया उसने पुन ब्रिटिशो का विरोध प्रारभ कर दिया। उसन चादा मे ब्रिटिशो क विरुद्ध अरब सेना एकत्रित करना प्रारभ किया और अपने किलेदारो व सहायको को यह आदेश भेजा कि जिन किलो को उन्ह समर्पित करने को कहा गया था व उसे न दें। जब बाजीराव के भी अप्पासाहब की ओर आगे बढन की सूचना मिली तो ब्रिटिशो न उनके मिल जाने की कल्पना स त्रस्त होकर कठोर कायवाई की। जेकिन्स अप्पासाहब क विरुद्ध आगे बढा और उसे कैद करके रेजीडेन्सी म तब तक के लिए रख दिया जब तक कि गवनर जनरल उसके भाग्य का निपटारा न कर द। यह सन 1818 के बसन्त मे हुआ। जब तक यह भी पता लग जान पर कि वह पुरसाजी की हत्या मे सम्मिलित था यह तय हुआ कि उसे पद से हटा दिया जाये और इलाहाबाद के किले मे भेज दिया जाय। उसके स्थान पर पुरसा जी के बहन के लडके बाजी राव भोसला को उत्तराधिकारी बनाया जाय। निणय होन के बाद 3 मई को एक सुरक्षा सैनिक के साथ अप्पासाहब को इलाहबाद भेजा गया, पर रास्ते मे अपने दल के कुछ भारतीय सैनिको को उत्कोच देकर वह बच निकला और फिर उसका पता न चला। वसे तो उसका भागना उतने महत्व का न था। पर इसस युद्ध कुछ काल तक के लिए और बढ गया।

बतुल के निकट कुछ असतुष्ट भारतीयो को मिलाकर अप्पासाहब ने पुन सैनिक तैयारी प्रारभ की। वर्षा के कारण माच 1819 तक उसके विरुद्ध काय वाई नही की जा सकी। अप्पासाहब ने पिण्डारी नेता चीतू के सहयोग से असीर गढ म शरण ली जिस 17 माच को घेर लिया गया। किलेदार जिस सिंधिया ने गुप्त रूप से विरोध करने का कहा था, 9 अप्रैल को हार गया। पर अप्पासाहब भागने म पुन सफल हो गया। उसे ब्रिटिशो ने 2 लाख रुपया पशन और ब्रिटिश क्षेत्र म निवास व्यवस्था कर देन को कहा। ठीक वसे ही जैसे पेशवा क साथ किया था, पर वह लौटा नही। वह पजाब चला गया जहा रणजीतसिंह न उससे मिलने से तो इनकार कर दिया पर अपन क्षेत्र म उसका रहना स्वीकार कर लिया। बाद मे वह राजपूताना चला गया जहा उसे परिनिरीक्षण म रहना पडा। इसके बाद अपने मत्यु तक उसन ब्रिटिशो को कोई कष्ट नही दिया।

इस तरह महान क्राति को प्रभावी बनाया गया जिसकी महत्ता तुरत हेस्टिंग्स भी न समझ सका। मध्य भारत म इस आकस्मिक परिवतन से वह स्वय चौक पडा और फरवरी 1818 म अपनी व्यक्तिगत पत्रिका म उसन लिखा कि 'उसके इतना निकट रहकर भी उसे पूणरूप स न समझ सका।" पिण्डारियो को बर्बाद कर दिया गया, सिंधिया बिना प्रहार के और असहाय हो गया पेशवा का पद समाप्त

कर दिया गया, होल्कर का क्षेत्र आधा रह गया एव नागपुर का क्षेत्र घटाकर उसे एक सहायक की श्रेणी प्रदान की गई। कुछ कट्टर शत्रुओ को या तो जेल मे डाल दिया गया या पेशन दे दी गई। राबट्स ने लिखा है "ब्रिटिश राज्य की छाया पुरातन राजपूत राज्यो तक पडने लगी और उसकी सीमायें कैमोरिन स सतलज तट तक फैल गइ मध्य भारत म शाति और व्यवस्था ऐसी स्थापित हो गई जैसी महान् मुगल सम्राटो के बाद दुलभ हो गई थी।"[1]

इनाइसबग मेजर रास ने भी लिखा है, 'सभवत पूव मे ब्रिटिश उत्थान के इतिहास मे इतना रुचिकर काल नही है जिसका वणन ऊपर किया गया है, 1817 के शरत मे प्रारभ होकर अगला जून आते-आते युद्ध समाप्त हो गया। इस सक्षिप्त काल मे देश के विस्तृत क्षेत्र मे जहा स्वतन्त्र स्थानीय राज्यो की भरमार थी तमाम परिवतन हुए, और पूरा महाद्वीप, उत्तर पश्चिम मे सतलज तक कलकत्ता सरकार के अधीन आ गया।"[2]

हेस्टिंग्स द्वारा मराठा या पिण्डारियो के विरुद्ध उठाय गये कदमो की गभीर आलोचना करना कठिन है। चरित्रहीन पिण्डारी बबर युद्ध करके जो विनाशलीला प्रस्तुत करत थ तथा अशाति पैदा करत थे—उनके बर्बादी के विरुद्ध उठाय गये कदम आलोचना का विषय नही हो सकते। और न ही मराठा नताओ को प्राप्त फल ही अस्वाभाविक था। अपनी ईमानदारी व विश्वासपात्रता सिद्ध करने के अनेक अवसर उन्हे दिये गय। पर चूकि वे मूख थे, इस कारण उनमे न तो अपन राष्ट्र के प्रति प्रेम था और न वे अपने स्वाथ से ऊपर सोच सकते थे। उनम सगठन की क्षमता भी न रही थी और न शत्रु से लडकर पराजित करन की योग्यता ही। विशेषकर तब जब उनकी सैनिक सख्या व सैन्य सामान की पूर्ति भी बेहतर थी। और इन दोनो गुणो के अभाव म भी वे ब्रिटिशो के प्रति विश्वस्त न रह सके जिस आधार पर उन्ह उससे अधिक प्राप्त हो जाता, जितना उन्ह प्राप्त हुआ।

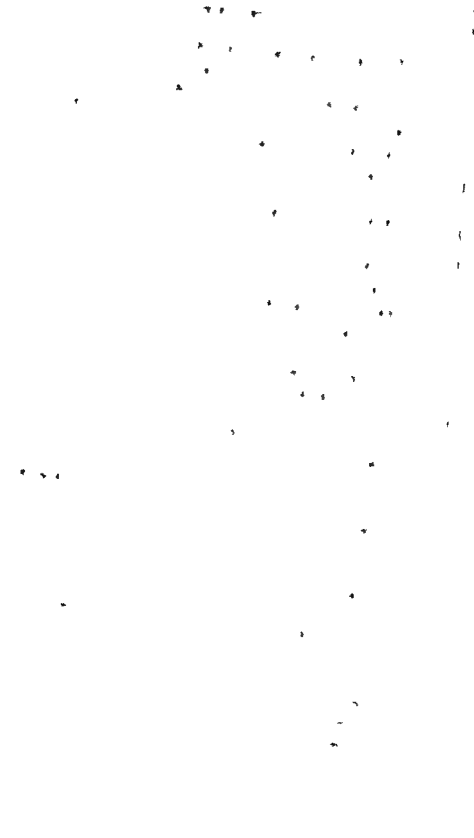
मराठा क्षेत्र की पुनर्रचना

जब पिण्डारियो का पतन हो गया और ततीय मराठा युद्ध जीता जा चुका तो अब इसकी आवश्यकता आ पडी कि ब्रिटिश क्षेत्र मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आनेवाले इन क्षेत्रो की रचना कैसे की जाय। काय बडा था क्योंकि लगभग 5 लाख वग मील क्षेत्र म परिवतन करना था। पर यह काय हेस्टिंग्स न सफलतापूवक किया जिसमे तत्कालीन आग्ल भारतीय समूह के अच्छे प्रशासको मुनरो, मेटकाफ, एलफिन्स्टन, आक्टर लोनी और मलकाम स बडी सहायता मिली।

---

1 राबट पूर्वोद्धत पृ० 288।

2 इनाइसबग पूर्वोद्धत पृ० 44।



पडने पर उस जिले से एक युवा को पकडकर घटना-स्थल पर उसे मौत की सजा दे दी जाती। इससे इतना लाभ होता कि उस सडक पर शाति स्थापित हो जाती। लोग कानवालिस के कोड आफ बगाल को पसद नही करते थे क्योकि इसमे समय, धन, प्रार्थना देने की विधि मे बर्बाद शक्ति, सरकारी टिकट, मुकद्दमा, वकील, न्यायाधीश, कई न्यायालय और अपील तमाम चरणो से होकर गुजरना पडता था। मुनरो ने मद्रास को इससे बचाया और एलफिन्स्टन अपने अधिकार मे आय क्षेत्र को इससे बचाना चाहता था।

एलफिन्स्टन ने इसलिए एक साधारण पुरानी परम्परा प्रारभ कर पचायतो को पुनर्गठित किया और उन्हे अधिक कार्यक्षम्य बनाया। गाव के मुखिया पटेल को बना रहने दिया गया। मजिस्ट्रेटो को न्यायिक राजस्व वसूली, पुलिस की देखभाल आदि सभी अधिकार प्रदान किये गये। पर मत्यु दड देने का अधिकार उन्हे नही प्रदान किया गया। सजा दे दिये जाने पर सदेह का लाभ देकर दड मुक्त करने की विधि को भी प्रारभ किया गया। मुकदमे साधारण रीति से चलते थे और उनका प्रचार अधिक हो इस पर अधिक दृष्टि रखते थे। जब एलफिन्स्टन को यह पता चला कि पूना के सभी यूरोपीयो को मार डालने का षडयन्त्र किया गया है तो उसने सभी नेताओ को पकडवाकर मार डाला। इससे लोगो ने अनुभव किया कि ब्रिटिश सचमुच कुछ करना चाहते है।

एलफिन्स्टन मराठो के बीच काय करना चाहता था, उनके क्षेत्र को पसन्द करता था तथा वहा के सीधे सादे लोगो व प्राकृतिक दृश्यो को प्रेम करता था। 1819 म जब बम्बई के गवनर पद प्राप्ति उसे दक्षिण छोडना पडा तो उसे बहुत खला। उसे थिमरिटस की कविता की पक्तिया उस अवसर पर तुरन्त स्मरण हो आयी।

भोपाल—भोपाल के नवाब नजीर मुहम्मद ने 1817 मे ब्रिटिशो की अधीनता स्वीकार की थी, कि वह उनके प्रति विश्वस्त बना रहा और ब्रिटिशो की पिण्डारी विरोधी योजना मे सहयोग किया। इस कारण उसके छोटे राज्य क्षेत्र मे कुछ क्षेत्र और मिला दिय गये जिससे मालवा मे उसकी राजनैतिक महत्ता बढ जाय।

मालवा—फिलिफ उड्रफ के अनुसार मालवा "छोटे छोटे राज्यो का एक जाल, एक मडल, एक आकाशगगा जिनमे से प्रत्येक अपरिभाषित राजत्व का अपने को स्वामी मानता था।[1] यह क्षेत्र बन्दोबस्त के लिए मैलकाम को सौंपा गया। मालवा का क्षेत्र मराठो और पिण्डारियो के नशस आक्रमणो, हृदयहीन लूटो का शिकार होता रहता था। एक के हाथ विजय के बाद पडता यह राज्य दूसरे के

1 उड्रफ फिलिप पूर्वोद्धत द फाउडस, पृ० 210।

हाथ में पहुंचता रहता था। फिर तीसरा इस पर अधिकार करता, तब तक, पहला फिर आ पहुंचता। इस कारण राज्य की सीमायें सदा टेढ़ी मेढ़ी बनी रहती। और वे एक दशक भी एक तरह की न रह पाती थी। यहां भी उसी तरह की नीतियां अपनाई गई अर्थात पुरानी परम्पराओं और संस्थाओं में कम-से-कम हस्तक्षेप, साधारण पर नियमित राजस्व का एकत्रीकरण, कृषि का प्रोत्साहन तथा उदारतामिश्रित कठोरता की नीति। अवशिष्ट पिण्डारी समूह का पीछा किया गया, विभिन्न राजाओं की सीमाएं निर्धारित की गयीं एवं विभिन्न दलों और लोगों के कर्त्तव्य व उत्तरदायित्व का निर्धारण करके उसे लिखित रूप प्रदान कर दिया गया। देहातों में शांति स्थापित हो गई और किसान सुरक्षापूर्वक खेती करने लगे। जिनका जंगली पशुओं की तरह शिकार किया गया था, उन्हें पालतू बना लिया गया। मैलकाम ने अपनी पत्नी को लिखा, 'मेरी इच्छा है कि काश, तुम यहां यह सब देखने के लिए होतीं। गरीब निवासी इस शांति का सारा श्रेय मुझे ही प्रदान करते हैं जिसे देखकर मैं प्रफुल्लित हो उठता हूं बड़े-बड़े प्रान्त इतने समृद्धिशाली हो गये हैं जितने वर्षों से नहीं रहे हैं।' मैलकाम ने जब एक डाकू सरदार से अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने को कहा तो उसका उत्तर था कि वह यह जानता है कि आपकी प्रतिष्ठा इतनी है कि यदि आपके विरुद्ध तलवार उठाई जायेगी तो हमारे पाप बोझ से उसकी प्रहार शक्ति समाप्त हो जायेगी।"[1]

राजपूताना—राजपूताना में शांति स्थापना हेतु मेटकाफ को नियुक्त किया गया जिसका स्थान 1819 में आक्टरलोनी को प्रदान कर दिया गया। जो कर राजपूतों से अभी तक मराठे और पठान लिया करते थे उसपर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपना अधिकार जताया और इसके बदले निर्धारित शर्तों पर उन्हें ब्रिटिश सुरक्षा प्रदान की गयी। सभी राजपूत राज्यों के साथ समान व्यवहार किया गया। जयपुर, जोधपुर कोटा उदयपुर और अन्य राज्यों के साथ सुरक्षा संधियां की गईं। आक्टरलोनी को जयपुर में कुछ कठिनाइयां हुई पर अन्य स्थानों पर स्थिति ठीक रही। आक्टरलोनी ने अपनी कार्यवाई के संबंध में अपनी सरकार को सूचना प्रेषित की, राजा से रंक तक सभी ब्रिटिश सरकार की कार्यवाई के औचित्य को स्वीकार करते हुए प्राप्त प्रसन्नता के प्रति आभार प्रदर्शित करते हैं। असंतोष और कष्ट की लोगों को जानकारी ही नहीं है। हां, इसके अपवाद हैं उज्जैन व व अन्य कुछ क्षेत्र जहां पर सिंधिया के नातेदारों का अधिकार है।"

होल्कर—प्रत्यक्ष ब्रिटिश नियंत्रण में जो क्षेत्र थे उनके सुधारपूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था ने भारतीय दरबारों तथा सिंधिया और होल्कर के राज्यों, पर भी अच्छा

---

1 उद्धृत फिलिप पूर्वोद्धृत दस्तावेज पृ० 211।

प्रभाव डाला। जनवरी 1818 मे होल्कर से मन्दसौर सधि की गयी। होल्कर शासक के अवयस्क होने के कारण ब्रिटिश प्रभाव से एक योग्य प्रशासक तातिया जोग की नियुक्ति की गयी। वैसे होल्कर व सिंधिया के क्षेत्रो के बीच एक स्पष्ट विभाजन रेखा खीचना सरल न था, पर रेजीडेन्ट ने पूरी चेष्टा की। तातिया जोग के नेतृत्व मे होल्कर के राज्य का राजस्व 4 लाख से बढकर 35 लाख हो गया। 1826 मे तातिया का देहान्त हो गया।

सिंधिया—नवम्बर 1817 मे सिंधिया के साथ जो अस्थायी सधि की गयी थी उसे 1818 की एक स्थायी सधि मे बदल दिया गया जिसके अतगत राजकुमार ने व्यावहारिक रूप से कोई क्षेत्र नही खोया। कुछ स्थानो की अदला बदली अवश्य हुई जिसके अतगत ब्रिटिशो ने अति आवश्यक स्थल अजमेर प्राप्त कर लिया। इसकी प्राप्ति से राजपूताना पर से मराठा प्रभाव जाता रहा और ब्रिटिशो को एक ऐसा केन्द्र स्थल प्राप्त हो गया जहा से उस पूरे क्षेत्र पर वे निगरानी रख सकते थे। सिंधिया ने ब्रिटिशो को उसके शत्रुओ के विरुद्ध सहायता के लिए आश्वस्त किया था। पर ब्रिटिशो को जब उनके दोगली नीति का पता चला जिसके अतर्गत सिंधिया ने असीरगढ के अपने किलेदार को अप्पासाहब को सहायतार्थ कह दिया तो ब्रिटिशो ने इस किले को सदा के लिए अपने अधिकार मे कर लिया। इसके बाद सिंधिया ब्रिटिशो का सदा के लिए अनुगामी बन गया और 1820 मे एक सधि कर ली जो सहायक सधि से बिल्कुल मिलती जुलती थी, बस केवल यह उस नाम से जुडी नही थी।

अन्य—1819 तक के लिए सतारा का राज्य ब्रिटिश प्रशासन के अधिकारियो के हाथ मे रख दिया गया। इस व्यवस्था मे राजा ब्रिटिश नेतृत्व के अतगत कुछ और अधिकार प्राप्त करने मे सफल हुआ। नागपुर मे अप्पासाहब के स्थान पर एक बच्चे के हाथ मे सत्ता सौप दी गयी और वहा की शासन-व्यवस्था रेजीडेन्ट के अधीन ब्रिटिश अधिकारियो को सौप दी गयी। शासन युवा राजकुमार के नाम पर किया जाता था। हेस्टिंग्स के वापसी पर यहा भारतीयो का मन्त्रिमण्डल बनाया गया। पर तब भी नागपुर की सेना ब्रिटिश नियत्रण मे बनी रही।

हैदराबाद के निजाम की राज्य सीमा भी अधिक स्पष्ट रूप से निर्धारित की गयी। उसके राज्य मे मराठा के राज्य की कुछ सीमा मिला दी गयी और उसके बदले मे यहा के शासक ने ब्रिटिशो को कुछ कम मूल्य के स्थान प्रदान किये। इसी तरह का कुछ क्षेत्रीय परिवर्तन बडोदा के गायकवाड के सबध मे भी किया गया। बडोदा का मूर्ख राजा आनदराव के राज्य पर 1819 तक ब्रिटिश शासन चलता रहा, जबतक उसकी मृत्यु न हो गयी। उसका भाई सयाजीराव उसके बाद उत्तराधिकारी हुआ। उसके साथ 1820 मे एक नयी सधि की गयी जिसके अतगत ब्रिटिशो ने राज्य पर नियत्रण बनाये रखते हुए भी नये राज्य को राज्य के

क्षातरिक क्षेत्र म अधिक अधिकार प्रदान किया।

इस तरह नवीन परिवर्तित स्थिति म भारतीय महाद्वीप का दो तिहाई भाग ब्रिटिश के सीधे प्रशासन म आ गया जबकि राज्य का एक तीसरा भाग भारतीय राजाओ के हाथा म होने के बावजूद ब्रिटिश देखभाल म आ गया। प्रिंसप न लिखा है कि, 'कष्ट और हिंसा का अधकार का नाश जो मध्य भारत क उपजाऊ क्षेत्र पर आच्छादित रहा था इस समय स समाप्त हो गया, एक नय युग का प्रारभ हुआ। हमारा विश्वास है, एक नयी आशा की किरण सहित जिसम शाति, समद्धि और उच्च नतिकता की प्रगति समाहित है, एक नया युग प्रारभ होगा।'[1]

हेस्टिंग्स के प्रशासकीय सुधार

न्यायिक—क्षेत्रीय व्यवस्थाओ के अतिरिक्त लाड हेस्टिंग्स न प्रशासन के क्षेत्र म कुछ और महत्त्वपूर्ण सुधार किय। उसके न्यायिक सुधार हम सबस पहल आकृष्ट करते हैं। हेस्टिंग्स के आगमन से पूव न्यायालयो पर काय का भार अधिक होन के कारण मुकदमा के निणय म इतना समय लगता था कि उसके परिणामस्वरूप कचहरी म मुकदमा लडनेवाले पक्ष और विपक्ष के लाग कानून अपन हाथ म ल लेते थे। यह आवश्यक था कि देश मे न्यायालयो की सख्या मे वद्धि की जाय। पर कपनी इस कायवाई से इसलिए भागती थी क्योकि इसम व्यय की अधिक सभावना थी। हेस्टिंग्स हमारी ओर से इसलिए प्रशसा का पात्र है कि उसन नागरिक कानूनो को सामान्य बनाया और बहुत सी औपचारिक कायवाहियो मे कटौती की जिसके तत्कालीन बहुत स कष्टा म कमी हो गयी।

प्रान्तीय अपीलीय न्यायालय की स्वीकृति के आधार पर 1814 म प्रत्येक थाने मे मुसिफ की नियुक्ति का प्रावधान किया गया जिसकी नियुक्ति दीवानी अदालत करती थी। मुसिफ को 64 रुपये तक के मूल्य के मुकदमे करने का अधिकार दिया गया जिसका निणय दीवानी अदालत से स्वीकृत होना आवश्यक था। खराब काय करने या अकाय क्षमता दिखाने पर मुसिफ दीवानी अदालत द्वारा हटाया जा सकता था। मुसिफ के निणय के विरुद्ध अपील भी दीवानी अदालत म ही हाती थी। मुसिफो के अतिरिक्त दीवानी अदालत को प्रान्तीय अपीलीय न्यायालया के स्वीकृति पर प्रत्येक जिले और नगर म सदर अमीन नियुक्त करन का भी अधिकार था। उनकी सख्या क्षेत्र के आवश्यकतानुसार होती थी। ये सदर अमीन 150 रु० तक के मूल्य के मुकदमो का देख सकते थे पर इन्हे यूरोपीय और अमरिकी लोगा के मुकदमे देखन का अधिकार न था। इनके निणय की भी अपील दीवानी अदालत मे होती थी। 1814 के नियमानुसार नीचे के न्यायालयो की

1 प्रिन्सप ईन्डिया 2 पृ० 421।

अपील जब दीवानी अदालत मे होती तो उसकी अपील आगे प्रान्तीय अपीलीय न्यायालय मे होती। पर यदि मुकदमा दीवानी अदालत मे प्रारभ होता तो उसकी अपील सदर दीवानी अदालत मे होती थी। इस काय को और ठीक करने के लिए जिससे काम एकत्रित न होता जाय, यह निश्चय किया गया कि कुछ मुकदमा म अपील हो ही नही सकती थी जबकि अ य मे एक ही अपील करने की आज्ञा थी।

रजिस्ट्रारा को 50 रु० मूल्य तक के मुकदमो को करन का अधिकार था जबकि कुछ अ य विशेष मुकदमे जो 500 रु० मूल्य तक के होते थे दीवानी अदालत इनके पास भेज सकती थी। रजिस्ट्रार के यायालयो से अपील सीधे प्रा तीय अपीलीय यायालयो को जा सकती थी। पाच सौ रुपये से अधिक के मुकदमे जिला दीवानी अदालतो को भेजे जात थे जबकि पाच हजार रुपय से अधिक के मुकदमे सीधे प्रा तीय अपीलीय यायालय मे जाते थे अथवा कुछ निश्चित मुकदमे सदर दीवानी अदालत को भेजे जात थे। सदर दीवानी अदालत को भी यह अधिकार था कि वह नगर या जिला दीवानी अदालत के मुकदमे प्रा तीय अपीलीय याया-लयो को भेज सके।

1821 म कुछ और परिवतन किये गये जिसके अनुसार मुसिफ को 150 रु० तक के मूल्य के मुकदमे देखने का अधिकार हुआ, जबकि सदर अमीन को 500 रु० तक मूल्य के मुकदमे देखन का। और जहा एक मुसिफ से काम न चलता वहा दो या उससे अधिक की नियुक्ति की जाती।

1815 के नियमो के अतगत यह निणय हुआ कि सदर दीवानी अदालत मे वह नियुक्त नही हो सकता था जो प्रान्तीय अपीलीय यायालय मे कम से-कम तीन वर्ष तक काम न कर चुका हो या जिसे याय करने का कम-से-कम 9 वष का अनुभव न हो। 181▮ के कानून के अनुसार मजिस्ट्रेटो को यह अधिकार दिया गया कि वे दो वष तक की सपरिश्रम सजा दे सकत थे और उ ह 30 कोडे की शारीरिक सजा देने का भी अधिकार था।

पर हेस्टिंग्स की और महत्त्वपूण कायवाई फौजदारी याय के प्रशासन क्षेत्रो मे थी। कानवलिस ने यह नियम बनाया था कि मजिस्ट्रेट और कलेक्टर के कार्यालय एक कर दिये जाए। इस नियम को समाप्त कर दिया गया क्योकि राबटस के अनुसार, "लाड हेस्टिंग्स ने सभवत यह अनुभव किया, जो समुचित ही था, कि कम्पनी के नौकरो की नयी पीढी अपने उच्च परपराओ की पृष्ठभूमि मे लालच के विरुद्ध खरी उतरेगी जिसके समक्ष उनके पूवज धराशायी हो गये थे।"[1] पर हम यह ज्ञात नही है कि इस क्षेत्र मे हेस्टिंग्स की भावना और राबटस का इसका पक्ष लेना कहा तक सच सिद्ध हुआ। बाड ऑफ कट्रोल ने यह सस्तुत किया कि

1 राबट स पूर्वोद्धृत पृ० 298।

पुरानी भारतीय संस्थायें पुनर्स्थापित की जानी चाहिए और पंचायतों को अपनी पुरानी शक्ति और अधिकार सहित कार्य प्रारंभ करना चाहिए। बंगाल इन संस्तुतियों को कार्यरूप में तो न बदल सका पर मद्रास और बम्बई में भारतीय न्यायाधीशों का वेतन व स्थिति में पर्याप्त सुधार ला दिया और संस्तुतियों को इस तरह कार्यरूप में बदला। बोर्ड की यह संस्तुतियां इसलिए की गयी जिससे भारत में अंग्रेज न्यायाधीशों की कमी को पूरा किया जा सके। साथ ही उनके ऊपर वाले व्यय आधिक्य से भी बचा जा सके। 1820 में मद्रास के नियुक्त होनेवाले गवर्नर टामस मुनरो ने लिखा " सभी बुराइयों को दूर करने के लिए और अधिक यूरोपीय संस्थाओं की संस्तुति की जाती है। ऐसी संस्था अति महंगी है और यदि ऐसा न भी हो तो कई बार यह स्थानीय संस्थाओं से अयोग्यक्षम्य है मैंने किसी ऐसे यूरोपीय को नहीं देखा जो भाषा ज्ञान के आधार पर योग्य पाया गया हो और लोगों के विचार जानकर उसका मूल्यांकन कर सका हो।" मुनरो ने आगे कहा कि यह सोचना गलत है कि, 'स्थानीय लोग अविश्वास की पराकाष्ठा तक भ्रष्ट हैं विदेशी आक्रान्ताओं ने उन्हें हिंसात्मक त्रास व बेरहमी प्रदान की है हमने अधिक घृणा उनसे किसी ने नहीं की है उन्हें अविश्वासी कहकर हमलोगों से अधिक किसी ने उनकी निन्दा नहीं की है। [1]

रय्यत—हेस्टिंग्स के कुछ अन्य सुधारों का संबंध जमींदारों के विरुद्ध रैय्यतों की अधिकार रक्षा से था। टामस मुनरो ने मद्रास में रय्यतवारी व्यवस्था की स्थापना की जिसके अंतर्गत बिचौलिये को समाप्त कर किसान से सीधे संबंध स्थापित किया गया। इस बंदोबस्त की कहानी रुचिकर है। जब वेलजली भारत आया तो सभी लोग कार्नवालिस द्वारा बंगाल के जमींदारों से किये गये स्थायी बंदोबस्त की सफलता के जादू के शिकार थे। इस आधार पर बिना यह सोचे विचारे कि मद्रास में बंगाल की तरह के जमींदार हैं या नहीं, इसकी निश्चित सफलता की परिकल्पना सहित वेलजली ने इस प्रांत में भी उसी तरह की कार्यवाई के आदेश दे दिये। पर चूंकि मद्रास में जमींदार नहीं थे इसलिए वहां की जमीन ठेकेदारों के हाथों बेची जाने लगी और 1806 तक आधे प्रांत में यह प्रथा लागू कर दी गयी थी जब यह पता चला कि कंपनी ने इस प्रांत के कृषकों के साथ किस तरह का विचित्र व्यवहार किया है जिसके कारण वे ठेकेदारों के हाथों के ग्रास बन गये हैं। इसके बाद मुनरो के नेतृत्व में एक वर्ग ने रय्यतों का समर्थन प्रारंभ किया। जान हाग्सन के नेतृत्व में दूसरे पक्ष ने कहा कि, "बंदोबस्त व्यक्तियों के साथ न करके पूरे गांव के साथ किया जाना चाहिए। अंशधारियों की समिति या गांव

---

1 उद्धृत फिलिप द फाउंडर्स पृ०194 95।

का प्रधान तीन वर्ष, दस वर्ष या सदा के लिए समझौता करें और वे ही तय करें कि गाव के प्रति आदमी को कितना कर देना चाहिए।"[1] ह्यूम्सन की विजय हुई और उसकी प्रथा को तीन वष तक चलाया गया। पर गाव का प्रधान या अशधारियो की समिति सदा दूसरो की ओर से समझौता करने को तैयार नही रहती थी, इसलिए यह प्रथा असफल हो गयी। कामन्स की एक सेलेक्ट कमिटी ने 1812 मे मुनरो के पक्ष मे अपना मत व्यक्त किया और अतत यह तय किया गया कि उपरोक्त रैय्यतवाडी प्रथा प्रारभ की जाय। मुनरो को स्वय अपनी प्रथा मद्रास मे प्रारभ करने हेतु भेजा गया।

1822 मे बगाल मे 'टेनेन्सी ऐक्ट' पारित हुआ जिसके द्वारा खेती से उन्हे बेदखल करने या कर बढाये जाने के विरुद्ध उन्हे सुरक्षा प्रदान की गयी। बम्बई मे एलफिन्स्टन ने कृषको की भूमि की माप कराई और उनके अधिकार व कतव्य को सुनिश्चित किया।

दिल्ली क्षेत्र—इस बीच मेटकाफ दिल्ली क्षेत्र मे काय कर रहा था। उसे 1812 म दिल्ली सम्राट का रेजीडेण्ट नियुक्त किया गया था। पर सम्राट का राज्य लाल किले की दीवारो के बाहर तो था नही। मेटकाफ ही "इग्लैण्ड के उत्तर के छ देशो जितने बडे क्षेत्र पर"[2] रेजीडेन्ट की तरह शासन करता था। मेटकाफ ने, जो इस भाग मे 1819 तक रहा, कुछ महत्त्वपूण सफलताए अर्जित की। मृत्यु दड, जिस पर सम्राट की स्वीकृति की आवश्यकता पडती थी और जो प्राय नहीं दिया जाता था, सुविधा के लिए बद हो गया। यह दिल्ली मे तो हुआ पर इसी काल मे इग्लैण्ड मे 40 शिलिंग की चोरी के लिए भी किसी को फासी दी जा सकती थी। दास प्रथा समाप्त कर दी गयी, सती प्रथा दबाई गई और मेटकाफ ने "तलवारें व भाले एकत्रित किये, उन्हे फालो मे परिवर्तित किया और उसे उनके मालिको को वापस कर दिया।"[3]

शिक्षा—लाड हेस्टिंग्स के काल मे शिक्षा विकास के क्षेत्र मे भी कुछ कदम उठाये गये। यह बताने से पूव कि इस क्षेत्र मे क्या किया गया, यह जान लेना आवश्यक है कि इग्लैण्ड मे इसी समय सरकार शिक्षा के क्षेत्र मे कुछ करना अपना उत्तरदायित्व नही समझती थी। भारत की ही भाति वहा चच या ईसाई ज्ञान बढाने वाली सस्थाए ही यह काय करती थी। 1833 मे पहली बार ससद ने 20 हजार पौंड शिक्षा विकास के लिए निर्धारित किया। पर 1854 मे कही जाकर सरकार ने यह जाचा कि यह धन किस तरह व्यय किया गया है।

---

1 उद्धृत फिलिप द फाउडर्स पृ० 233।
2 वही पृ० 270।
3 वही।

इन परिस्थितियो मे, यह आश्चयजनक नही है कि उसी ब्रिटिश ससद ने 1813 मे ईस्ट इडिया कम्पनी के लिए जब चाटर का नवीनीकरण किया तो ऐक्ट मे साथ ही यह भी जोड दिया कि कपनी को प्रति वप "साहित्य के उत्थान व विकास के लिए और विद्वान भारतीयो के प्रोत्साहन के लिए तथा विज्ञान के ज्ञान के आरभ व उन्नति के लिए" एक लाख रुपय की व्यवस्था करना है।

सयोग से भारत मे उस समय कुछ उदबुद्ध उत्साही विद्वान थे जैसे एलफिन्स्टन। वे 1819 म बम्बई के गवनर नियुक्त हुए थे और अग्रेजी, लैटिन, ग्रीक, इटलियन और फारसी के ज्ञाता थे। उन्होने अपने देश से भी तेजी स काय किया और बम्बई प्रान्त के लोगो को अपने ही अफसरो की उपेक्षा और परेशानी से बचाया तथा उन की शिक्षा के लिए विस्तृत योजनाए बनाइ। उन्होने अपने अधिकारियो को आदेश देकर स्कूल खुलवाने को बाध्य किया शिक्षा को पारितोषिक के माध्यम से प्रोत्साहित किया तथा इसे नौकरी का दरवाजा बनाया। एलफिन्स्टन ने लिखा भी कि कम आयु म विवाह, ऋण, सुधार का विरोध "इन सब के लिए एक ही निदान है और वह है शिक्षा।"[1]

लाड हेस्टिग्स ने स्वय बताया "सरकार इस गलत धारणा का शिकार कभी नही होगी कि लोगो के बीच सूचनाए अधिक पहुचेगी तो वे सरकार से दूर होते जायेंगे और अधिकारियो के समक्ष कम आदर व्यक्त करेंगे ।' भारत म पुरोहितो न इस क्षेत्र म जो कुछ किया उसको प्रोत्साहित किया गया और हेस्टिंग्स ने कलकत्ता के निकट भारतीयो की शिक्षा के लिए कुछ वर्नाक्युलर स्कूल खोले।

प्रेस—लार्ड हेस्टिंग्स के ही काल मे प्रथम वर्नाक्युलर अखबार निकला। उसने अखबारो को डाक से भेजने के लिए कम टिकट लगाने की आज्ञा भी प्रदान की। सच म उसके काल मे प्रेस के प्रति अपनाई गई अभी तक की नीति को उलट दिया गया। यहा पर प्रेस के पुराने इतिहास को प्रस्तुत करना और हेस्टिंग्स ने इसे अपनी नीति से कैसे प्रमाणित किया, बताना समीचीन लगता है।

वैसे तो यह कहा जाता है कि मुगलो के काल मे वाकयानवीस होते थे जो सरकारी कमचारियो पर निगाह रखते थे और अपने क्षेत्र के लोगो पर भी दृष्टि रखते थे। साथ ही उनके सबध म केन्द्र को नवीनतम समाचारो से अवगत कराते थे। पर जिस प्रेस की उत्पत्ति की बात हम आज करते हैं, वह ईस्ट इडिया कम्पनी के काल ही मे हमारे समक्ष प्रस्तुत हुई। इसका प्रारभ हिकी नामक व्यक्ति ने 1780 म एक साप्ताहिक अखबार बगाल गजट छापकर किया। हिकी के रास्ते पर और लोगो ने काय किया और 'कलकत्ता गजट' व 'द इडियन वल्ड' का

---

1 उद्धृत फिलिप, द फाउडस पृ० 242 43।
2 ओडनबर्ग पूर्वोद्धृत पृ० 45।

प्रकाशन हुआ। पर ये अखबार भारतीयो के लिए नही थे और न ही इन्होंने उन्हे जाग्रत किया। इनका प्रकाशन अंग्रेजी मे, सपादन अंग्रेजो द्वारा, अंग्रेज पाठको के लिए होता था। भारतीय स्थिति का अध्ययन करने के स्थान पर व उनके जीवन के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के स्थान पर ये अखबार इग्लैंड और यूरोप के अखबार से सामग्री लेकर छापते थे जैसे कि उनका उद्देश्य मात्र भारतीयो को दुनिया के उस क्षेत्र की जानकारी कराना हो। पर कभी कभी ये अखबार भारतीय सरकार और उनकी नीतियो की बडी साहसपूर्ण आलोचना भी छापते थे।

अंग्रेजो के प्रबन्ध मे होने के कारण इन्हे पर्याप्त स्वतन्त्रता भी थी, पर वारेन हेस्टिंग्स जिसके समय में प्रेस स्थापित हुआ, उदार विचारो का नही था। प्रेस ने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि उसके काल मे वे बेलगाम नही रह सकते। उदाहरणस्वरूप हिकी जिसका विचार था कि "प्रेस की स्वतत्रता अंग्रेजो के जीवन तथा स्वतत्र सरकार के लिए आवश्यक है।" इस क्षेत्र मे अपने विचारो की उदारता के कारण उसे अपने अखबार मे श्रीमती हेस्टिंग्स के विषय मे निंदा लेख छापने पडे और उसने हेस्टिंग्स की भारतीय नीति की आलोचना भी सरकार को भेजी। और शीघ्र ही उसे हेस्टिंग्स की तलवार का प्रहार झेलना पडा। उसके अखबार पर रोक लग गयी और उसे कैद कर लिया गया। इस तरह 1780 मे प्रारभ होने वाला 'बगाल गजट' 1782 मे बद कर दिया गया। वारेन हेस्टिंग्स का उत्तराधिकारी कार्नवालिस बेहतर नही सिद्ध हुआ। 'द इडियन वर्ल्ड' के सम्पादक डुवाने को दडित करके यूरोप भेज दिया गया। कार्नवालिस के उत्तराधिकारी सर जानशोर ने मैकेनली पर प्रतिबन्ध लगाया जिसने अपने अखबार 'द टेलीग्राफ' में 1796 मे कुछ सरकारी कर्मचारियो के कार्य-पद्धति की आलोचना की थी। 'द कलकत्ता गजट' मे फ्रासीसी गणतत्र और कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के बीच हुए पत्र व्यवहार को प्रकाशित करने पर उसे फटकार बताई गई।

इस तरह प्रेस के जन्म-काल से ही उसे अपने जीवन और मृत्यु के प्रश्नो की चुनौती स्वीकार करनी पडी। पर प्रेस की असली परीक्षा की घडी लार्ड वेलजली के समय मे आई। प्रेस के जीवन के इतिहास मे पहली बार 'प्रेस ला' बनाये गये। शक्तिशाली और साम्राज्यवादी वेलजली जब भारत पहुचा तो उसे लगा कि ब्रिटिश शाति को चारो ओर से खतरा है। भारत मे फ्रासीसी खतरा उस समय घनीभूत हो गया जब यह पता चला कि टीपू सुल्तान का उनसे पत्र व्यवहार चल रहा है। मराठो की महत्त्वाकाक्षा करवटे लेने लगी थी और निजाम भी ब्रिटिशो के विरुद्ध जाने के सोच विचार मे था। इन परिस्थितियो मे वेलजली को प्रेस की स्वतत्रता से खतरा नजर आया जो उसके मतानुसार अपने अनुत्तरदायी विचारो से वातावरण को और खराब कर सकते थे।

इसलिए उसने 1799 मे प्रेस को नियमित नियन्त्रण मे लाने के लिए पाच नियम प्रसारित किये। और ये इस क्षेत्र मे प्रथम निश्चित नियम थे। इन नियमो के अन्तगत सभी अखबारो पर एक निश्चित मात्रा म रोक थाम लगा दी गयी। अखबारो के मालिको व सम्पादको को अखबार पर अपना नाम छापने को कहा गया। उन्ह यूरोप म होने वाले युद्ध के विषय मे कुछ भी प्रकाशित न करने के आदेश मिले, जिसकी सूचना सरकार की ओर से ही जनता को देने के लिए कहा गया। छुट्टी के दिन अखबार न छापने को कहा गया। इन नियमो का उल्लघन करने वालो को तुरन्त यूरोप भेज दिये जाने की सजा मिलती थी। वेलजली के मतानुसार चाल्स मैकलीन ने जो 'द बगाल हरकारु' का सम्पादक था प्रेस के द्वारा न्याय के क्षेत्र मे टीका टिप्पणी की थी और एक सरकारी अधिकारी जिसने अपने पद पर कुछ काय किये थे उसकी आलोचना की थी' उसे दण्ड-स्वरूप इग्लैण्ड वापस भेज दिया गया। टाम्सन ने वेलजली के सबध मे लिखा है 'प्रेस को वही लिखने का अधिकार था जिसे वह स्वीकार करता था। यदि व वैसा नही करते थे तो उन्ह भारत छोडना पडता था।"[1]

पर चाल्स मैकलीन स्वतन्त्रता प्रेमी था। इसीलिए इग्लैण्ड वापस जाने पर भी उसने वेलजली के भारत विरोधी आक्रामक नीति के विरुद्ध अपनी कलम की लडाई जारी रखी। इसी के फलस्वरूप उसे अतत उस देश म अपने उच्च पद से त्याग-पत्र देना पडा।

लार्ड मिण्टो ने वेलजली की नीति चलती रहने दी। पर उसका उत्तराधिकारी लार्ड हेस्टिंग्स उदार व प्रेस स्वतन्त्रता प्रेमी था। कुछ ब्रिटिश अधिकारियो के विरोध के बावजूद उसने प्रेस पर से रोक थाम की नीति समाप्त कर दी। पर उसने सावधानी के तौर पर कुछ कदम इसलिए उठाये कि कही प्रेस अनुत्तरदायी न हो जायें। इसीलिए उसने 1818 म कुछ नये नियम प्रसारित किये। इनके अन्तगत यह कहा गया कि प्रेस गवनर जनरल, कौसिल सदस्यो, न्यायाधीशो और कलकत्ता के विषय के विरुद्ध कोई अशोभनीय या अनर्गल बातें नही छापेंगे। उन्हे यह भी निर्देश हुआ कि वे भारतीय सरकार की यहा के विषय में कोई ऐसी राजनैतिक कायवाई नही छापेगे जो आपत्तिजनक हो। यही बात भारत के सबध मे इग्लैण्ड से चलने वाली कायवाई पर भी लागू होगी। य भारतीय धम मे ब्रिटिश हस्तक्षेप के सबध मे कुछ नही लिखेंगे और न ही ऐसी व्यक्तिगत आपत्तिजनक बातें ही छापेंगे जिसके कारण समाज पर दुष्प्रभाव पड सकता हो। उपरोक्त सदर्भित कोई बात यूरोप के अखबारो से लेकर भी उन्ह छापने का अधिकार नही प्रदान किया गया।

लार्ड हस्टिंग्स की प्रेस पर रोक थाम न रखने की उदार नीति ने प्रेस के

1 टाम्सन लार्ड मेटकाफ पृ० 317।

विकास मे बडा योग दिया। उसके काल मे कुछ नये समाचार पत्र व पत्रिकाए देशी भाषा तक मे प्रकाशित हुए। इनम से 'समाचार दपण' और 'सम्वाद कौमुदी' वर्नाक्युलर भाषा मे थे और 'द कलकत्ता जर्नल' अंग्रेजी मे। 'द कलकत्ता जनल' जे० एस० बकिंघम द्वारा 1818 में स्थापित किया गया। वह एक साहसी पत्रकार थे जिन्होने किसी को भी आलोचना के पाश मे लेने से नही छोडा, जैसे कलकत्ता के लाड बिशप, मद्रास के गवनर, सुप्रीम कोट के मुख्य न्यायाधीश। इस कारण इह भी इग्लण्ड वापस भेज दिया गया जहा उन्होने बडा नाम कमाया। पर यह सब कुछ 1823 मे ऐडम्स के काल में हुआ जो लाड हेस्टिंग्स का उत्तराधिकारी था। ऐडम्स प्रेस के मसले पर कम उदार था और भारत के अपने अल्पकालिक शासन मे उसने यही नीति अपनाई।

लाड ऐडम्स के काल मे भारत मे प्रेस स्वतत्रता हनन के लिए भारत सरकार ने सर टामस मुनरो को इस बात के लिए नियुक्त किया कि वे इस सम्बन्ध म आख्या दे। मुनरो भी प्रेस स्वतत्रता का प्रेमी नही था। इस कारण उसने रिपोट म कहा कि यूरोपीय पत्रकारो पर प्रतिबन्ध व रोक थाम पुन प्रारम्भ होना चाहिए और नियमो का पालन न करने पर उन्ह इग्लैण्ड वापस भेज दिया जाना चाहिए। भारतीय प्रेस के सम्बन्ध मे उसने कहा कि कुछ खतरा इससे भी है। यह भारतीय सेना का बेईमान बना देगा जिससे ब्रिटिश शक्ति समाप्त हो जाएगी। यह लोगो मे स्वतन्त्रता का सिद्धान्त फैलाएगा और भारत के विदेशी अजनबी शासको को भगाने के लिए प्रोत्साहन देगा और उनके स्थान पर एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की आर माग प्रशस्त करेगा।

आख्या की पष्ठभूमि मे माच 1823 मे सुप्रीम कोट के समक्ष एक नियम रजिस्ट्रेशन हतु प्रस्तुत किया गया। इसके अन्तगत कोई पत्र या पुस्तक प्रकाशित करने के लिए पहले से अनुमति लेना अनिवाय कर दिया गया। इनकी प्रतिया जाच-पडताल के लिए सरकार के समक्ष पेश होती थी जिनमे से किसी को गवनमेंट गजेट मे एक सूचना प्रकाशित करके पचलन से रोका जा सकता था। भारतीयो के विचार निश्चित रूप से इसके विरुद्ध जाते थे। द्वारकानाथ टैगोर जैसे लोगो ने सरकार की इस नीति की घोर आलोचना की। पर इसका कोई परिणाम नही निकला और नियमो का रजिस्ट्रेशन 15 अप्रैल 1823 को हो गया। इस तरह लाड हेस्टिंग्स के सेवा निवत्ति के दो महीने के भीतर ही प्रेस के प्रति उसकी उदार नीति दफना दी गयी।

पुन लाड हेस्टिंग्स के सुधारा की ओर आते हुए यह कहा जा सकता है कि उसने सडका, नहरा और पुलो का निर्माण किया और उनकी मरम्मत कराई। दिल्ली मे एक नहर जो अब प्रयोग मे नही आती थी उसे ठीक करके नगर के लिए पया प्त पानी की व्यवस्था की गई। कलकत्ता नगर का सौन्दर्यीकरण किया गया।

क्लेडेन्सबग ने लिखा है कि, "सक्षेप मे उसका प्रशासन देश के आ तरिक विकास मे, जब उसका आर्थिक ढाचा रास्ते पर लाया गया, महत्त्वपूण स्थान है। इसी काल म भारत को एक राष्ट्रीय परिवार के परिधि मे भी लाया गया और इसी काल म गृह सुधारो की आधार शिला भी रखी गई।"[1]

विदेश सबध

हेस्टिग्स के विदेश सबध की सक्षिप्त व्याख्या की ही आवश्यकता है। पूव मे बर्मा के उत्तेजनात्मक कायवाहियो के बावजूद उस देश से मित्रतापूण सबध बनाए रखने मे वह सफल रहा। यह महत्त्वपूण है कि 1818 19 म भारतीय सनिको की सहायता से लका पर पूण अधिकार कर लिया गया। जावा बिना शत डचो को वापस कर दिया गया। पर डचो ने गलत लाभ प्राप्त कर उस द्वीप पर विदेशी सामान की बिक्री पर रोक लगा दी तो हेस्टिग्स ने ब्रिटिश हितो की सुदर पूव म रक्षा के लिए और चीन मे सुरक्षित व्यापार माग के लिए सिगापुर पर अधिकार कर लिया जो उस समय जीवनहीन द्वीप था। हालैण्ड और इगलैण्ड के बीच कुछ मतभेद भी पैदा हो गये जो 1824 तक चले और फिर उनमे एक सधि हुई जिसके अन्तगत दोनो के प्रभाव क्षेत्रो में विभाजन कर दिया गया।

समुद्री डाकू कोकण से लेकर कच्छ तक के क्षेत्र मे अव्यवस्था नदियो से फलाते रहते थे। 1819 20 मे कुछ विशेष तरह के अभियान प्रारम्भ किये गये और 1822 तक भारतीय समुद्र तट पर होने वाली अव्यवस्था का अत हो गया।

भारत म रणजीतसिंह के साथ मित्रतापूण सबध चलता रहा। सिंध के अमीर के साथ सबध मे कुछ कठिनाइया आयी पर उन्हे दूर किया गया। कच्छ से बार-बार ब्रिटिश सरक्षित राज्यो पर किया जाने वाला आक्रमण एक समस्या बन गया था। 1822 मे उस पर आक्रमण करके जीत लिया गया और के द्र सरकार के अतगत ब्रिटिश भारत का अग बना दिया गया पर हेस्टिग्स के काल मे एक दुभाग्य पूण घटना घटी जिसके कारण अ तत उसे इस्तीफा दना पडा। इसका सबध 'विलियम पामर एण्ड कम्पनी' से था जिसने गवनर जनरल के कहने पर निजाम को कुछ ऋण दिया था। ऐसा एक प्रश्न उठा कि क्या वह सस्था जिसने ऋण प्रदान किया है, वह 1796 मे ससद के ऐक्ट की धारा के अपवाद म है? हेस्टिग्स ने इस आर्थिक ऋण को स्वीकृति प्रदान करने म उस क्षेत्र के भूतपूव रेजीडेण्ट के निणय का आधार बनाया था। डाइरेक्टर ने जो हेस्टिग्स की भारत नीति के विरुद्ध थे इस अवसर का लाभ उठाया। वसे उसपर प्रत्यक्ष आरोप नही लगाया गया, पर अप्रत्यक्ष रूप से यह कहा गया कि गवर्नर जनरल ने इस काय म व्यक्तिगत सबध

1 क्लेडेन्सबग पूर्वोद्धृत, पृ० 45।

के आधार पर सब कुछ किया है। भावुक हेस्टिंग्स इसे बरदाश्त नही कर सका और 1821 मे अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। वैसे वह इस पद पर 1 जनवरी, 1823 तक काय करता रहा।

और इस तरह भारतीय इतिहास के एक काल का अत हुआ। इस पुस्तक के वतमान लेखक का बिना क्षमा याचना के रॉस-ब्लेडेनबर्ग की पुस्तक से उसकी पुस्तक 'मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स' के उस अश को यहा प्रस्तुत करने म सकोच नही है जिसम हेस्टिंग्स की महत्त्वपूण सफलताओ का आकलन किया गया है। उसने लिखा है कि जब हेस्टिंग्स "कलकत्ता पहुचा अग्रेजो के अधिकार टूटे और बिखरे थे, लबी सीमाओ की सुरक्षा व व्यवस्था की जानी थी, एक भाग से दूसरे भाग मे आवागमन का साधन कठिन और अनिश्चित था, तमाम प्रान्तो मे शीघ्र पहुचना कठिन था। इन क्षेत्रो का कठिन व विरोधी पडोसिया मे सपक था जिससे हिंसा का विनाशकारी प्रभाव पडता था और उचक्को और डाकुओ के द्वारा विनाश व कष्ट का पहाड प्रस्तुत किया जाता रहता था। मराठे निरकुश हो गय थे उनका शासन विनाश का पर्याय था, यह धीरे धीरे खत्म हो रहा था और वस्तुस्थिति के ठीक करने का प्रयास इनकी ओर से नही हो रहा था। लूट खसोट करने वालो के गिरोह और सैनिक प्रजा को दबा रहे थे जिससे कपनी के शासन की कठिनाइया बढ गई थी। विकास रुक गया था शाति लापता थी और ब्रिटिशो का अस्तित्व उतरने या अपमानित होने के खतरे से ग्रस्त था।"

"हेस्टिंग्स ने इन सबमे परिवतन किया। नेपाल विरोध पर विजय पायी गयी और उत्तर की सीमा सुनिश्चित की गयी। ब्रिटिशो के विरुद्ध मराठा के सगठन और कपनी के राज्य-क्षेत्र को तबाह करने वाली लूट-पाट की प्रणाली का समाप्त किया गया। मध्य भारत व्यवस्थित व शात किया गया। सक्षेप मे स्वतत्र देशी राज्यो की 1813 की यह धारणा कि वे अग्रेजो को खदेड देंगे, झुठला दी गई। 1823 तक सतलज तक के क्षेत्र के प्रत्येक राजा को कलकत्ता की सरकार का अनुगामी बना लिया गया।"[1]

विजित क्षेत्रो का नियोजन चालाकी से किया गया। प्रशासकीय क्षेत्र मे हेस्टिंग्स की प्रशसा ही करनी होगी कि उसने जमीदारो के विरुद्ध किसानो को अधिकार दिलाय, विजित देशो को शात किया तथा कपनी के न्याय विभाग म भारतीयो को नवीन आशा की किरण के दशन कराये। राबट स ने लिखा है 'वह एक योग्य प्रशासक, परिश्रमी व समझदार कायकत्ता था। उसकी आदमियो की पहचान उत्तम थी। उसका नाम व उसकी प्रतिष्ठा श्रेष्ठ गवनर जनरलो के छोटे

1 रॉस-ब्लेडेनबर्ग पूर्वोक्त, पृ० 216-17।

और जब ब्रिटिश आक्रमण की आंधी बहनी प्रारंभ हुई तो वे खर-पतवार की तरह उड़ गये।

यदि मराठा राजा विदेशी संबंधों में अशान्त थे तो अपने आन्तरिक मामलों में भी वे बेहतर स्थिति में नहीं थे। उनका प्रशासन बेईमानीपूर्ण और अक्षम्य था। घूसखोरी, भ्रष्टाचार और झूठेपन का बाजार गर्म हो गया। किसान दबा दिया गया और शासक व शासित के बीच संबंध मात्र राजस्व वसूली के माध्यम से हुआ। क्षेत्र में शांति और व्यवस्था की समाप्ति हो गई। न्याय में देर ही नहीं की गयी, उसे बेचा भी जाने लगा। लोग भूखों मरने लगे, जबकि सरकारी अधिकारी और जमींदार विलासिता में मग्न थे।

मराठा की आर्थिक व्यवस्था भी संगठित न थी। भूमि अनुपजाऊ थी और वर्षा कम होती थी। लूट और चौथ उनकी आय का प्रमुख स्रोत था। चौथ की प्रथा का प्रारंभ शिवाजी के काल में ही हो गया था। और डा० सेन[1] ने लिखा है कि यह सैनिक नेता को प्रजा की ओर से देय एक सहयोग था, रानाडे के अनुसार इसे किसी के आक्रमण से बचाने के आश्वासन के लिए लिया जाता था जिसकी तुलना वेलजली की सहायक संधि प्रथा से की जा सकती है। जबकि जदुनाथ सरकार[3] का कहना है कि इसके कारण किसी क्षेत्र में मराठा सैनिक व नागरिक कर्मचारी अनुपस्थित रहते थे। इसके कारण शिवाजी पर उस क्षेत्र के बाहर से आक्रमण या आंतरिक क्षेत्र में अराजकता का उत्तरदायित्व नहीं आता था। इस व्यवस्था का जो भी आधार रहा हो, पर यह स्पष्ट है कि यह धन दूसरे लोगों द्वारा अधिकारित क्षेत्र से लिया जाता था। इसकी वसूली का कोई भी प्रतिष्ठित शक्ति स्वागत नहीं करती थी। मराठों की इसी तरह की कार्यवाहियों ने राजपूतों को ब्रिटिश चरणों में ढकेल दिया। इतना ही नहीं, ये दो स्रोत भी अधिक दिनों तक नहीं चले। जैसे-जैसे शांति की स्थापना होती गई, लूट के द्वारा धन प्राप्ति का साधन कम होता गया। जैसे जैसे मराठा साम्राज्य बढ़ता गया, चौथ, प्राप्ति की सीमा भी घटती गयी। कृषि उत्थान के लिए कुछ नहीं किया गया और न ही उद्योग के विकास व उत्थान के लिए। और जब जीवन व धन की सुरक्षा सबसे कम रही, तो व्यापार व उद्योग के विकास का प्रश्न ही नहीं था। इसीलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि मराठा नेताओं को आर्थिक कठिनाइयां झेलनी पड़ी। वस्तुतः उनके अपने विलासी जीवन के लिए उनके पास पर्याप्त धन था, पर साथ ही वे अपने नौकरों व सैनिकों का वेतन तक नहीं दे पाते थे। वे बैंक वालों से धन उधार लेते थे। अति

1 एस० एन० सेन द ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम आफ द मराठाज।
2 रानाडे एम० जी० राइज आॅफ मराठा पावर।
3 सरकार, जे० एन० शिवाजी ऐण्ड हिज टाइम्स।

प्रसिद्ध और श्रेष्ठ महादाजी सिंधिया ने अपने समृद्धि के दिनों में भी ऐसा ही किया। बैंक वाले जब अपना धन वापस मांगते तो अजीब अव्यवस्था फैल जाती। यह कल्पना की बात थी कि ऐसी सरकार कितने दिन तक चल सकती थी।

इसीलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि 20 जून 1818 को कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स को इन्हीं परिस्थितियों में हेस्टिंग्स ने लिखा "पेशवा के कम्पनी के राज्य क्षेत्र में जाने से जो सुविधा व सुरक्षा प्राप्त है उसे लोग जान गए हैं, और सच में उन्होंने नयी व्यवस्था को व उसकी कल्पना को अपनी इच्छा से स्वीकार किया है।"[1]

इसके अतिरिक्त मराठा लोगों में अनेक तरह के लोग थे। वे विभिन्न जातियों व वर्गों में बटे हुए थे। ब्राह्मण अब्राह्मणों से घृणा करते थे और अन्य लोग ब्राह्मणों से घृणा करते थे। ब्राह्मण स्वयं भी देशस्थ, कोंकण, चितपावन आदि भागों में बटे हुए थे। वे आपस में झगड़ते भी थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है "शिवाजी पुरानी परंपरा को जीवित रखना और बचाना चाहते थे उस हिन्दू समाज को भी वे बचाना चाहते थे जिसके दृष्टव्य भेद भाव व जाति आदि ही उनके जीवन के आधार थे। वह इस भेद भावमय समाज को पूरे भारत में विजयी बनाना चाहते थे। पर वे बालू की रस्सी बनाने के चक्कर में थे।'

मराठा शासकों ने जनता के बीच शांति और सभ्यता पल्लवित करने की कोई चेष्टा नहीं की। सामाजिक जीवन के उत्थान के लिए कुछ नहीं किया गया। शिक्षा को लोगों में प्रसारित करने की चेष्टा नहीं की गई जिससे वे अपने को बुद्धिमान ही न बना सकें बल्कि भेद भाव और अंधविश्वास से अपने को दूर कर सकें। और इसी कारण सर जदुनाथ सरकार ने ठीक ही लिखा, "मराठा राज्य में लोगों की एकता का आधार संगठन नहीं था बल्कि यह बनावटी व एकाएक प्रस्तुत हो जाने के कारण कष्टदायी था यह शासक के आश्चर्यजनक व्यक्तित्व पर निर्भर करता था।"[2] रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि धार्मिक कट्टरता के आधार पर 'अस्थायी उत्साह पूरे देश पर छा जाता था और हम यह कल्पना करने लगते थे कि यह एक हो गया है।'

मराठों की सबसे बड़ी सफलता उनके द्वारा अपनायी गयी छापामार युद्ध की नीति थी। पर यह विधि उनके लिए तभी ठीक पड़ती थी जब वे सुरक्षात्मक कदम उठा रहे हों और उनके अपने छोटे छोटे जंगलों व पहाड़ों से घिरे राज्य क्षेत्र में रहना हो। मराठों के उत्थान व साम्राज्य विस्तार के साथ युद्ध की यह विधि बेकार हो गई। समय बदल गया था उन्हें अब आक्रामक लड़ाइयां लड़नी पड़ती थी। पर

---

1 नेहरूक पूर्वोद्धृत पृ० 52।

2 सरकार ज० एन० शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स पृ० 429 32।

मराठो ने अपने को समय के साथ नही बदला। उन्होने युद्ध की विभिन्न कलाओ की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास नही किया और न ही अपनी सेना मे अनुशासन रखने का प्रयास किया। बालाजी ने पर्याप्त वेतनभोगी सैनिक रखे और सैनिक क्षेत्र मे पश्चिम की विधि अपनाई। पर प्रयास इतने आधे मन से किये गये थे तथा इसमे अकायक्षमता का इतना पुट था कि उसके सैनिक नया तो कुछ सीख न सके साथ ही पुरानी पद्धति भी भूल गये। मराठा सेना मे इतनी अनुशासनहीनता थी कि उनके सेनापति महत्वाकाक्षी और आदेशावरोधी हो गय। यदि हम अपनी लेखनी सदाशिव दिनकर की ओर मोड लें तो उस स्थिति की सच्ची जानकारी हम प्राप्त हो जायेगी।

1788 मे मथुरा मे नाना फडनीस के एक सहायक ने उसे तत्कालीन श्रेष्ठ मराठा नेता महादाजी सिंधिया की सेना की स्थिति का विवरण इस तरह भेजा। उसने लिखा "महादाजी ने 10 लाख रुपया प्राप्त किया है, पर आपको यह जानकर आश्चय होगा कि इस धन का व्यय कैसे किया गया है। जहा तक सेना पर किये जानेवाले व्यय का सबध है, मराठा सेना दक्षिण से ही अवणनातीत कठिनाइयो स ग्रस्त है। वे अपने घोडो को बेचकर भी अपना ऋण चुकाने की स्थिति मे नही है। एक सैनिक को मुश्किल से 10 रु० मासिक मिलता है, उसका भरण पोषण इसस कैसे हो सकता है? महादाजी ने अपनी नवीन पदल सेना पर अपार धन-राशि व्यय की है पर उसमे मराठा जो गोहद और ग्वालियर के युद्ध मे मारे गये, उन्होने बडी आर्थिक कठिनाइया भोगी। महादाजी इस बात की परवाह नही करते है कि उसके रेजीमेन्ट के भर्ती सभी सैनिक युद्ध मैदान म उपस्थित है या नही। छानबीन करने, उपस्थिति लेने और सैनिको पर व्यय करने की सही व्यवस्था नही है। सैनिक के हाथ धन पहुचने के स्थान पर बिचौलिये के हाथ मे पहुच जाता है। यहा अत्यधिक अव्यवस्था और गोलमाल है।"

जी० एस० सरदेसाई ने लिखा है "राष्ट्र के स्वतत्रता की रक्षा कायक्षम सेना ही कर सकती है। वह सेना जो उचित प्रशिक्षण प्राप्त किये हुए हो, जिसके पास आधुनिक हथियार हो और जिनका नेतृत्व अच्छे सेनापतियो के हाथ मे हो।"[1] पर मराठा के पास इनमे से कुछ नही था।

मराठा तोपखाने की स्थिति भी कोई बेहतर नही थी। वे स्वय बदूकें नही बनाते थे। इन्हें बाहर स मगाया जाता था और इनकी पूर्ति प्राय समय पर न हो पाती थी। इस विभाग की सेवा का उत्तरदायित्व भी प्राय विदेशियो के हाथ म था। मराठो ने अपने पर्याप्त सनिको को इस क्षेत्र मे प्रशिक्षित नही किया।

मराठो की जासूस व्यवस्था भी कायक्षम न थी। वे मात्र कल्पना के आधार

1 सर देसाई जी० एस० पूर्वोद्धत प० 177।

पर काय करते थे। वे कूटनीति म ही पिछडे नही थे बल्कि उनका भूगोल-ज्ञान भी बहुत कम था। सेना के प्रस्थान के समय तक आवश्यक भौगोलिक जानकारी नहीं प्राप्त की जा पाती थी। इसीलिए प्राय आगे बढते समय या शत्रु सेना से बचकर भागते समय उन्हें रास्ते में नदी का सामना हो जाता था और तब वे किसी घाट या नाव की व्यवस्था के लिए सोचने लगते थे। तबतक शत्रु सेना बेहतर स्थिति म हो जाती थी और ऐसे म मराठो को बिना लडे ही पराजित हो जाना पडता था या भागते हुए पकडे जाने पर मौत के घाट उतरना पडता था।

इसके विपरीत इतने दूर से आकर भारत म साम्राज्य स्थापित करने वाले ब्रिटिश भिन्न कोटि के थे। उन्हे यूरोप म भिन्न भिन्न भाति की लडाइयो का अनुभव ही नही था बल्कि भारत में भी लडने का अनुभव था। वे जो भी करते थे, योजनाबद्ध तरीके से करते थे। आख मूदकर कोई कदम नही उठाया जाता था। उनके जासूसा का जाल दूर दूर तक फला हुआ था। उन्होने भारतीयो स निकट सपक स्थापना के लिए उनकी भाषा सीखी। देश म कहीं भी आक्रमण करने से पूव वे वहा की पूण भौगोलिक जानकारी प्राप्त करते थे। कोई भी चीज सयोग और कल्पना पर आधारित नही थी। इसमे सदेह नही कि वे विज्ञान के ज्ञान म आगे थे। राजवाडे के इस मत का किसी सीमा तक हम भी समथन कर सकत है "1818 के प्रारभ म यदि पेशवा बाजीराव द्वितीय के किसी भागत हुए सैनिक से इसका कारण पूछा जाता कि वह क्यो जनरल स्मिथ के नेतत्व म ब्रिटिश सना को देखकर भाग रहा है तो वह बिना रोक टोक के कहता कि वह गोरो से नही डरता बल्कि उनकी लम्बी लम्बी बन्दूका से डरता है तथा डरता है उनके वैज्ञानिक अस्त्रो से जिनका प्रयोग वे युद्ध म करते हैं।' पर यही निश्चित रूप से मराठा के पराजय और ब्रिटिशो के विजय का कारण नही था। वैज्ञानिक उपकरणो के अतिरिक्त उनकी सना का अनुशासन भी उनके विजय का कारण था। किर्की और कोरेगाव के युद्धा से यह प्रमाणित है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नही है कि यदि वे वैज्ञानिक प्रणाली उतनी न भी जानते तो भी उनकी अनुशासित सेना मराठो को पराजित कर देती।

एक पराजित मराठा सैनिक यह जानता था कि पराजय के बाद वह अपने गाव जाकर कभी भी एक नागरिक की तरह रह सकता था। पर एक ब्रिटिश सनिक या कमचारी के लिए बात अलग थी। उन्ह युद्ध म विजय प्राप्त करनी ही थी। यदि वे पराजित हो जाते तो उन्ह सिर छुपाने के लिए और जीवन रक्षा के लिए जगह न मिलती। उनके लिए यह एक विजय या मृत्यु का खेल था। इसीलिए वे साहसी थे और कठिन परिस्थितियो म भी लडकर विजयी हो गये।

जी० एस० सरदेसाई ने लिखा है कि 'पूर्वी नीति की एक गम्भीर कमी उसकी विनाशात्मक पैतृक-सेवा और पदो की प्रथा थी जो हमारे समाज म राज्य और

व्यक्तिगत जीवन दोनो का आधार थी।" लेखक ने आगे लिखा है कि, "40 दिन की आयु के माधवराव द्वितीय को पेशवा का पद सौंप दिया गया जिसका परिणाम भयानक हुआ।"[1] मराठो के विपरीत ब्रिटिश-व्यवस्था व्यक्ति पर आधारित न होकर सगठन पर आधारित थी। सबसे योग्य व्यक्ति को गवनर जनरल नियुक्त किया जाता था। यदि वह अपने पद के अनुरूप न सिद्ध होता तो उसे पद से मुक्त कर दिया जाता था। मराठो मे अकमण्य यहा तक कि 40 दिन तक के बच्चे को शासक बना देना बर्दाश्त कर लिया जाता था। मराठो मे कुर्सी व्यक्तिगत सपत्ति मानी जाती थी जब कि अग्रेजो मे इसके साथ कतव्य का भाव जुडा हुआ था। परिणाम स्वाभाविक थे।

मराठे सच मे अनुशासन व व्यवस्था मे विश्वास नही करते थे। उनमे प्रजातान्त्रिक भाव नही के बराबर था। प्रत्येक सरकारी कमचारी अपने क्षेत्र मे निरकुश था। इसके नेता घमडी और अक्खड थे। जनता को दबाते और उनकी समस्याओ की ओर ध्यान न देते थे। इन परिस्थितिया मे हिन्दू और मुसलमान दोनो असतुष्ट थे और दोना ब्रिटिशो से सहायता मागते थे।

शिवाजी की मृत्यु के बाद जागीरदारी प्रथा प्रारभ हो गयी और इस प्रथा के अन्तगत, जैसा मध्यकाल मे अनुभव किया गया था, राज्य का पतन होना ही था। जागीरदारो म से प्रत्येक को अपना वतन प्यारा था जब कि मातभूमि का स्थान उनके लिए गौण था। राज्य के अतगत राज्य का निर्माण हो गया था और राष्ट्रीयता की भावना का लोप हो गया था जिससे पतन होना स्वाभाविक था।

पहले के मराठा नेता अधिक योग्यता वाले थे। अहिल्या बाई, महादाजी सिंधिया और नाना फडनीस बुद्धिमान थे और अपने साधन व परिस्थिति का लाभ उठाते थे। महादाजी तो मुगल सम्राट तक को अपने नियत्रण मे लाने मे सफल हो गया था। पर अपनी शक्ति के बाद वाले दिनो मे मराठो ने हर व्यावहारिक योग्यता को गवा दिया। बाजीराव द्वितीय, जसवन्तराव होल्कर और दौलतराव सिंधिया सभी की अपनी कमिया थी। उनमे ईमानदारी और उत्तरदायित्व का भाव नही था। उन्होने युद्ध के लिए सही समय नही चुना। वे भी झूठेपन और जालफरेब मे विश्वास करते थे जैसे कि साम्राज्य न हुआ जादू का खेल हो गया। वे छोटे मोटे झगडो मे अपनी शक्ति गवा देते थे। वे मैकियावली के दशन म भले ही विश्वास करते थे, पर वे अपनी कमठता समाप्त कर चुके थे। जब सिंधिया, होल्कर और पेशवा आपसी सघष मे व्यस्त थे तभी वेलजली ने उन पर आक्रमण कर लाभ उठाया। पेशवा नमित कर दिया गया और मराठा अत का प्रारभ कर दिया गया।

जब आपस मे शक्ति प्राप्ति हेतु सघष और विभाजन हुआ तो स्वाभाविक रूप

1 सरदेसाई जी० एस० निव हिस्ट्री आफ मराठाज III, पृ० 515।

से हिन्दू नेताओं की आपस में मिलकर हिन्दू राष्ट्र की स्थापना की कल्पना काफूर हो गयी। और यह इसलिए कि इसके अतिरिक्त कोई और चारा नहीं था। जब मराठे लूट मचाते थे तो वे शत्रु और मित्र में भेद भाव नहीं करते थे। और इसलिए उनके आस-पास के सभी नेता और लोग उनके विरुद्ध हो गये। उदाहरण के लिए पानीपत के तृतीय युद्ध के समय जिसे उन्होंने अहमद शाह अब्दाली के विरुद्ध लड़ा, किसी भी राजपूत नेता ने सहयोग नहीं किया। बल्कि गंगा और दोआब के हिन्दू नेताओं ने विदेशी आक्रमण की उनकी योजना में बाधा डाली। ऐसा इन्होंने मराठों के लूट की नीति के कारण ही किया। इन परिस्थितियों में मराठों का हिन्दू साम्राज्य की स्थापना के लिए कोई सहयोग नहीं प्राप्त हुआ।

और इसके अतिरिक्त, दैवी शक्ति भी लगता है मराठों के साथ नहीं थी। उनके पतन के इन कारणों में मराठों के प्रमुख नेताओं की असामयिक मृत्यु ने भी कम महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं अदा की। जब शिवाजी की मृत्यु हुई मुगल शक्ति का प्रहार मराठों पर तेज कर दिया गया। बाजीराव की अकाल मृत्यु ने निजाम के राज्य की निश्चित समाप्ति को बचा लिया। पेशवा माधवराव की मृत्यु ने मराठों के आंतरिक और बाह्य अनेकता को संघर्ष रूप में सामने ला खड़ा किया। 1795 में माधवराव द्वितीय की मृत्यु ने शक्ति बाजीराव द्वितीय के हाथ में सौंप दी जिसके न होने पर संभवतः मराठा राज्य कुछ और दिना तक चलता।

मराठों के अंतिम दिनों में जल सेनाशक्ति की एकदम अनदेखी कर दी गयी जिसके फलस्वरूप समुद्र शक्ति पर निर्भर करने वाले ब्रिटिशों से लड़ने में उनकी कठिनाइयां बढ़ी। ब्रिटिशों के पास भारत में और भारत के बाहर अपार साधन थे। यदि भारत में कोई वस्तु कम पड़ जाती थी तो वह तुरंत बाहर से आ जाती थी। और मराठे अपनी जल सेना की कमजोरी के कारण उनके विरुद्ध कोई कार्यवाई नहीं कर सकते थे।

और अंतिम बात यह थी कि मराठे इस दृष्टि से दुर्भाग्यशाली थे कि वे 1818 में किसी और जाति के स्थान पर अंग्रेजों से लड़ रहे थे। राजवाड़े ने लिखा है "एक अंग्रेज अत्यन्त मजबूत दिखने के बावजूद जन्मजात राजनीतिज्ञ होता है और हृदय से दुष्ट होता है। जहां तक राजनीति का प्रश्न था वह अपने पिता को भी नहीं छोड़ सकता था इसलिए आश्चर्य नहीं कि हम आध्यात्मिक उच्चता का ढोंग करते हुए अल्पकाल ही में अंग्रेजों के समक्ष धाराशायी हो गये।"[1]

जनवरी 1823 में जब हेस्टिंग्स पद मुक्त हुआ तो उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। पर उसकी व्यक्तिगत आर्थिक स्थिति डावाडोल थी। रेक्सेल ने उसे "वर्तमानकाल

1 नाडकर्णी पूर्वोद्धृत प 375-84।

का टाइमन पुकारा है जिसकी बहादुरी व स्वस्थ स्वभाव ने एक शानदार भाग्य को पूर्णतया वश में कर दिया था।"[1] उसने अपने अंतिम दिन माल्टा के गवर्नर के पद पर बिताये। 1826 में वह अपने घोड़े से गिरकर बुरी तरह से घायल हो गया। "दवा के लिए उसे एच० एम० एस० रिवेन्ज ले जाया गया जहां नेपिल्स की खाडी में 28 नवम्बर 1826 को उसकी मृत्यु हो गयी। उस समय वह लगभग 72 वर्ष का था।"

"लम्बा, ऊंचा, शक्तिशाली और कसरती शरीर के अतिरिक्त घनी काली मूंछों वाला हेस्टिंग्स इंग्लैण्ड में सबसे भद्दा आदमी माना जाता था। पर उसका व्यक्तित्व उसके मिलनसारी व भद्रता के गुण से संतुलित हो जाता था। भारत में उसने अपनी ईमानदारी और कार्यक्षम्य शासन की छाप छोड़ी।"[2]

---

1 मेरसी, विसकाउण्ट द वायसरायज ऐण्ड गवनर्स जनरल आफ इंडिया पृ० 45
2 वही।

2
लार्ड एमहर्स्ट (1823-28)

लार्ड एमहर्स्ट के आगमन से पूर्व सात महीने के लिए गवर्नर जनरल के पद पर कलकत्ता कौंसिल के एक वरिष्ठ सदस्य जान ऐडम्स हेस्टिंग्स के उत्तराधिकारी रहे। अपने संक्षिप्त काल में ऐडम्स ने पामर ऐण्ड कम्पनी को आदेश दिया कि वह निजाम को धन का ऋण न दे। जो धन निजाम ने कम्पनी से ले लिया था उस ऋण को चुकाने के लिए धन देने का आदेश दिया गया। ऐडम्स के पद पर नियुक्ति से पूर्व प्रेस पर कठोर प्रतिबन्ध लग चुके थे। 'कलकत्ता जनल' के सम्पादक बकिंघम को सरकार की आलोचना करने के कारण इंग्लण्ड भेजा जा चुका था। भाग्य से ऐडम का शासन अधिक दिनों तक नहीं चला। 1823 में एमहर्स्ट को इस पद पर नियुक्त किया गया।

एमहर्स्ट 1773 में एक ऐसे सम्पन्न परिवार में पैदा हुआ जिसके ऊंचे राजनैतिक सम्बन्ध थे। एमहर्स्ट ऐसे सौभाग्यशालियों में थे जिन्हें सफलता के लिए दृढ़ इच्छा और निश्चय के माध्यम से सफलता प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। बालक एमहर्स्ट में अपनी प्रतिभा और शक्ति के भरोसे एक निश्चित दिशा में जाने की क्षमता थी। परिस्थितियों के पक्ष में होने के कारण उसका उत्थान सरल था। 1797 में क्राइस्ट चर्च कॉलेज आक्सफोर्ड से उसने एम० ए० की उपाधि पाई और इसके तुरन्त बाद वह धनीमानी परिवार के बच्चों की तरह महाद्वीपीय यात्रा पर निकल पड़ा। 1800 में उसने अपनी इच्छा से एक विधवा से विवाह कर प्रसन्नतापूर्ण वैवाहिक जीवन प्राप्त किया। 1809 में उसे सिसली का विशेष दूत बनाकर भेजा गया। 1815 में उसे प्रीवी काउंसिलर और कुछ ही दिनों बाद इंग्लैण्ड में चीन का दूत व पूर्णाधिकारी बनाकर भेजा गया। ये पद महत्वपूर्ण थे जिन्हें उसने योग्यतापूर्वक संभाला। 1823 में उसे भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया। 1 अगस्त, 1823 को वह सपत्नीक कलकत्ता पहुंचा।

एमहर्स्ट के भारत पहुंचने पर ब्रिटिश सत्ता पर्याप्त विस्तार पा चुकी थी। विरोधियों का एक-एक करके बर्बाद किया जा चुका था और अंग्रेजों की सत्ता असीमित और विजय पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी। एमहर्स्ट के आगमन से बीस

वप पूव ईस्ट इडिया कम्पनी के अतगत लेक ने उत्तर पश्चिम के प्रान्तो को अपने अधिकार मे ले लिया था और ब्रिटिश अधिकारियो को दिल्ली सम्राट का सरक्षक नियुक्त किया था। वेलजली न मद्राम प्रेसीडेन्सी के जिला पर विजय पायी और लाड हस्टिग्स ने वम्बई प्रेसीडेन्सी के क्षेत्र को कम्पनी मे मिलाया। "नेपाल और वर्मा को छाडकर सतलज और सिंध के पूव का शेप भारतीय भाग ब्रिटिश के अधीन था। राजपूताना, मालवा, गुजरात, अवध, बुन्देलखड, इन्दौर, भोपाल, बरार, हैदराबाद, मैसूर और ट्रावनकोर सभी स्थाना पर कम्पनी के रेजीडेन्ट या अन्य एजेन्ट ही सवशक्तिमान थे।"

नवीन गवनर जनरल शान्तिमय नीति अपनाने के पक्ष मे था।[1] पर अधिक दिना तक भारत मे वह यह नीति नही अपना पाया। और जब परिस्थितिया परिवर्तित हुई, परिणाम वही हुआ, जो एक कमजोर इच्छा वाले व्यक्ति से अपेक्षित थी। लाड एमहस्ट के व्यक्तिगत जीवन मे इसके कारण कष्ट और दुखान्त स्थिति आ गयी।

प्रथम बर्मा युद्ध (1824-26)

"लगभग उसी क्षण से जब लाड एमहस्ट ने अपना कायभार सम्भाला, वर्मा के साथ युद्ध की स्थिति मे उसके विचार उलझ गये।"

जब ब्रिटिश ने बगाल पर अधिकार किया उस समय कई ऐसे क्षेत्र उनके सपक मे आये जिनपर बर्मा के सम्राट या तो अपना अधिकार रखते थे या उसकी प्रभुसत्ता के अपने को अधिकारी बताते थे। उत्तर म काफी दूर रगपुर जिले से बाहर आसाम की घाटी पर उत्सुक निगाहो क्या, लालच की निगाहा से वे देखते थे। दक्षिण म ब्रिटिश का सिलहट जिला काचर से जुडा था। बगाल के समुद्र तट पर चटगाव सवस दूर पडता था और यही से दक्षिण की ओर पुराना अराकान का राज्य पडता था।

और बहुत सी बातें थी जिससे ब्रिटिश और वर्मियो मे कठिनाइया प्रारम्भ हुई। 18वी सदी के अन्त म बर्मा के सम्राट ने एक सेना भेजकर अराकान पर अधिकार कर लिया और पुराने बडे साम्राज्य का अन्त कर दिया। पर राष्ट्रीयता की भावना से प्रभावित हाकर तथा बर्मी कुशासन से क्षुब्ध होकर इस क्षेत्र के कुछ लोग नफ मुहाने को पारकर जो चटगाव और अराकान के बीच सीमा रेखा थी, ब्रिटिश क्षेत्र मे आने लगे। कुछ सीमा पर ही रुककर अपनी मातृभूमि पर आक्रमण करने लगे। एसे लोगा के एक समूह का पीछा करती हुई बर्मा की एक सेना

1 हटर, डब्लू० डब्लू० (सस्करण) लाड एमहस्ट पृ० 25।
2 हटर पूर्वोद्धत, पृ० 66।

ब्रिटिश क्षेत्र मे घुस आई और अपने देशवासियो के वापसी की माग करने लगी। सर जानशोर जो शातिप्रिय थे, ने युद्ध होने की जगह पर सघष की बात मान ली और ब्रिटिश क्षेत्र म आये बर्मियो को वापस करने को भी तैयार हो गया यदि व अपनी सेनाए वापस बुला लें। हमे डब्लू० डब्लू० हण्टर की यह बात समझ म नही आती कि ऐसा 'उच्च नैतिक आधारो" पर किया गया। पर इसमे स देह नही है कि इससे ब्रिटिश प्रतिष्ठा को आघात पहुचा। बाद मे कैप्टेन सीम्स को एक मैत्री मिशन पर आवा भेजा गया। इससे भी ब्रिटिशो द्वारा प्रदर्शित उस कमजोरी की क्षति की पूर्ति नही हो सकी जिसका प्रदशन शोर न किया था।

इससे बर्मी उत्साहित हुए। चटगाव म जाने वाले भगोडो की सख्या बढी। बर्मी सेना न उनका पीछा करते हुए पुन ब्रिटिश क्षेत्र मे प्रवश किया। एक ब्रिटिश सेना उ हे पीछे हटाने के लिए भेजी गयी पर उसे पीछे हटना पडा। यह घटना वेलजली के समय मे हुई जो अ य स्थानो पर युद्ध म व्यस्त था इसीलिए वह इस पराजय या अपमान की ओर ध्यान न दे सका। पर उसन यह अवश्य किया कि जो वर्मी ब्रिटिश क्षेत्र म आ गए थे उ ह बडे व्यावसायिक गेवो म बसा दिया। इससे ब्रिटिशो और बर्मियो के मतभेद बढ गये। एक ओर तो बर्मा से आय हुए लोगो की वह भावनात्मक पवित्रता थी जिसम व कहते थे "हम कभी भी अराकान वापस नही जायेंगे, चाह आप हम मार ही क्यो न डालें। दूसरी ओर बर्मा के सम्राट का कहना था "यदि आप अपन देश म मेरे दोस्तो को शरण देते है तो दोनो का सबध बिगड ही जायगा।"

1811 मे इनके सबधो को बिगाडन वाली स्थिति और खराब हो गयी। खेन ब्यान, जिसे एग्लो इण्डियन लोगो ने राजा बेरिंग नाम दिया है, नामक व्यक्ति अराकान से भागने वालो के साथ ब्रिटिश क्षेत्र मे आ गया। वह अराकान के एक जिलाधिकारी का लडका था जिसने अपना क्षेत्र बर्मा को दे दिया था और जिसके कारण जनता म वह अलोकप्रिय हो गया था। इस कलक को धोने के लिए यह बर्मा क्षेत्र छोडने वालो मे सम्मिलित हो गया, उ हे एक लडाकू सगठन म परिवर्तित किया और अराकान पर आक्रमण किया और इसके के द्र स्थान पर अधिकार कर लिया। अराकान के राजा ने ब्रिटिशो को इसका उत्तरदायी बताया। पर कलकत्ता के अधिकारियो ने इस सम्बन्ध म अनभिज्ञता प्रकट की और उन्होने कप्टेन कैनिंग को बर्मा के राजा को सतुष्ट करने के लिए भेजा पर कैनिंग का मिशन सफल नही हुआ और उसे बधक बना लिय जाने की स्थिति से बचने के लिए जेल से भागना पडा। आवा के राजा के साथ ब्रिटिशो का यह अतिम शाति स्थापना का प्रयास था।

थोडे ही दिनो म एक शक्तिशाली बर्मी सेना आयी और राजा बेरिंग को चटगाव ले गयी। इस तरह एक त्रिकोणात्मक सघष की शुरुआत हो गयी। बचारे

राजा वेरिंग की तलाश अराकान वाले और साथ ही-साथ ब्रिटिश भी करने लगे। इसके कारण आग्ल-वर्मा सीमा पर अशाति बनी रही। इसी बीच 1815 मे राजा वेरिंग की मृत्यु हो गयी। इससे वर्मा का राजा अपने को और शक्तिशाली अनुभव करने लगा जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी से गभीर झगडे की सभावनाए बढ गयीं।

1817 में वर्मा के राजा ने ब्रिटिशो को सूचित किया कि अराकान के भगोडो को तुरन्त वापस कर दिया जाय। "समुद्र और पृथ्वी का अधिपति" (बर्मी राजा यह विरद अपने लिए प्रयुक्त करता था) बर्मी सम्राट ने कहा कि ऐसा न होने पर वह ढाका, चटगाव, कासिमबाजार और मुर्शिदाबाद पर अपना अधिकार जतायगा जो निस्सदेह अराकान क्षेत्र के अग थे। ब्रिटिश उत्तर सीधा पर कडा था। ब्रिटिशो ने राजा की बात नही मानी और उससे कह दिया कि वह जो चाहे करे। पर 1819 मे राजा की मृत्यु हो गयी। अपने पीछे वह और भयानक परिस्थिति छोड गया।

तीसरी विकट स्थिति तब पैदा हुई जब नये बर्मी सम्राट ने आसाम मे सेना भेज दी, वहा के राजा का हटा दिया और वहा का राज्य अपने ही एक विशेष व्यक्ति को दिला दिया। आसाम के राजा को भूटान मे भेज दिया गया जहा से कठिन प्रयासो के बाद उसे आसाम पुन प्राप्त हो गया। पर उसकी सफलता अल्पकालिक थी। उसे पुन भागना पडा और एक पडोस के ब्रिटिश जिले मे वह पहुचा। परिस्थिति उस समय सचमुच गभीर हो गयी जब बर्मी सेना ने ब्रिटिश क्षेत्रो मे घुसकर राजा को पकडने को कहा।

एक अन्य घटना तो एमहर्स्ट के पहुचते-पहुचते घटी। एक पूर्व सधि के अनुसार ब्रिटिशो ने मणिपुर के राजा को अपने सरक्षण मे लिया था। इसी राजा की सहायता वर्मा के विरुद्ध करने की चेष्टा ब्रिटिशो ने की, पर वे इसमें अधिक सफल न हुए। एमहर्स्ट के भारत मे पहुचने से तुरन्त पहले, "हम बर्मियो को चाचर की ओर आगे बढता हुआ पाते है जो कुछ मनपुरी राजकुमारो का पीछा कर रहे थे जिन्होने अपनी मातृभूमि छोडकर यहा शरण ले रखी थी। पुन भगोडो की माग ब्रिटिशो से की गयी और पुन कडाई से इससे इनकार कर दिया गया और इस तरह जब 1823 का वर्ष निकट आया उसी समय एक बर्मी सिलहट सीमा पर मरा टगा पाया गया।"[1] 1822 म उन्होने स्याम को जीता था जिससे उनका घमण्ड और बढ गया था, वे सोचने लगे थे कि कोई भी सेना उनके रास्ते मे नही आ सकती।

पहला गम्भीर टकराव 17 जनवरी, 1824 को हुआ जब लगभग चार हजार बर्मी और आसामी पहाडो को पार कर आगे बढ आये और सिलहट के ४५ मील पूर्व विक्रमपुर के पास एकत्रित हो लडाई करने की स्थिति पैदा कर दी। एक

1 हटर, इम्पू० ड न्० पर्वोद्ध त, पृ० 76।

दूसरी सेना स्थानीय लोगों को पराजित कर मणिपुर से आगे बढ़ी।

जैसा पहले ही बताया जा चुका है लार्ड एमहर्स्ट शांति नीति को मानने वाला व्यक्ति था। वैसे तो उसने बर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की, पर उसकी कार्रवाइयां अस्पष्ट और दृष्टिकोण सुस्त और अनिर्णायक थे। न तो युद्ध की तैयारियां ही पर्याप्त थी और न सहायकों को सूचनाएं स्पष्ट। इसीलिए युद्ध का संचालन उत्तम नहीं था। ब्रिटिशों ने आक्रामक रुख नहीं अपनाया, और वैसे तो बर्मी अंततः पराजित हुए, पर युद्ध अधिक समय तक चला। प्रारम्भ में ब्रिटिशों को कई बार पराजित भी होना पड़ा जिसमें होनेवाले धन का व्यय अत्यधिक था। ब्रिटिशों को इस पर डेढ़ करोड़ रुपये व्यय करने पड़े। और चूंकि उनकी 1822 23 की पूर्ण वार्षिक आय दो करोड़ तीस लाख से थोड़ी ही अधिक थी, इससे स्पष्ट है कि युद्ध की विभीषिका के कारण कितनी आर्थिक कठिनाइयां बढ़ गयी होंगी।

पर इस सबके लिए लार्ड एमहर्स्ट पर ही आरोप लगाना अन्याय होगा। हजारों मील दूर बैठे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टर अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप किया करते थे जिस सम्बन्ध में घटनास्थल पर होनेवाले व्यक्ति को अधिक जानकारी होती थी। यह सच है कि उन्होंने प्रारम्भ में युद्ध को अनावश्यक बताया और लार्ड एमहर्स्ट को युद्ध समाप्ति के पूर्व वापस बुलाने के सम्बन्ध में तमाम हल्की फुल्की बातें हुई। स्पष्टतया उसके सर पर खुली तलवार लटकी हुई थी और यों तो हम यह कह सकते हैं कि लार्ड एमहर्स्ट ने कोई सफल मजबूती का कदम नहीं उठाया और अपने मालिकों को अपने सम्बन्ध में अच्छा सिद्ध करने का अवसर नहीं दिया, पर प्रश्न यह है कि क्या कोई दृढ़निश्चयी व्यक्ति भी उन परिस्थितियों में इससे बेहतर कार्य कर सकता था?

याडबू की संधि—1826 में युद्ध समाप्त होने पर बर्मा और भारत सरकार के बीच याडबू की संधि हुई जिसके अन्तर्गत 10 लाख रुपए क्षतिपूर्ति के, बर्मा द्वारा देने का कहा गया। बर्मा ने आवा में अपने व्यय पर ब्रिटिश रेजीडेंट रखना स्वीकार किया। अराकान और तेनसरीम प्रांत कम्पनी को प्रदान किये गये। काचर और आसाम से बर्मा की सेना वापस बुला ली गई और मणिपुर की स्वतंत्रता स्वीकार कर ली गई। एक व्यापारिक संधि भी की गई जिसके अन्तर्गत ब्रिटिशों ने कई व्यापारिक अधिकार प्राप्त किए जो अस्पष्ट भाषा में लिपिबद्ध किए गए और जो आगे संघर्ष के कारण बने। पर ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि प्रथम बर्मा युद्ध ने बर्मा में ब्रिटिश रुचि को जाग्रत किया और यह ब्रिटिशों का बर्मा की पूर्ण विजय की दिशा में प्रथम पग सिद्ध हुआ।

एमहर्स्ट के अंतर्गत भारतीय राज्य

भारतीय राज्यों के प्रति एमहर्स्ट की नीति आक्रामक नहीं थी। वह यथास्थिति

मे विश्वास करता था जिसके लिए उसे कभी-कभी सैनिक कारवाई करनी पडती थी। पर उसकी इन कारंवाइयो से उसे कुछ लाभ ही होता था।

कित्तूर—बर्मा के युद्ध मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रारम्भिक असफलताओ ने भारतीय राज्यो को स्वतन्त्र होने के लिए प्रोत्साहित किया। 1824 मे एक ऐसी ही घटना कित्तूर म घटी। यह दक्षिणी मराठा देशो म एक छोटा-सा राज्य था। इसका शासक बिना उत्तराधिकारी के मर गया। विधवा ने एक बच्चे को गोद ले लिया पर जिला कलेक्टर ने इसे स्वीकृति नही प्रदान की। बम्बई की सरकार ने तत्सम्बन्ध मे छानबीन करने को कहा और इस बीच सरकार व खजाने के सारे अधिकार अपने हाथ मे लेने का आदेश दिया। कुछ समय तक तो सब कुछ ठीक से चलता रहा, पर एक दिन कुछ ब्रिटिश अधिकारियो को किले मे प्रविष्ट होने से रोक दिया गया। हाथापाई मे इनमे से कुछ मार डाले गये जिससे ब्रिटिश-अधिकारी चकित रह गय और कारवाई करने को सोचने लगे। शीघ्र ही एक शक्तिशाली ब्रिटिश सेना आ पहुची और विद्रोही नेताओ को हथियार डालने को बाध्य कर दिया जिससे वहा शाति की स्थापना हो गई।

कोल्हापुर—कोल्हापुर म कठिनाई तब उपस्थित हुई जब वहा के युवा शासक ने पेशवा के प्रदत्त कुछ राज्यो पर अपना अधिकार जताया। ये राज्य अभी तक सिंधिया के एक सम्बन्धी के हाथ मे थे। सिंधिया ने कोल्हापुर से विरोध प्रकट किया जबकि बम्बई सरकार शातिपूवक देखती रही। पर जब यह नीति असफल हो गई और कोल्हापुर की सेना आगे बढी और विवादग्रस्त क्षेत्र पर अधिकार कर लिया तो एक ब्रिटिश सेना स्थिति को ठीक करने के लिए भेजी गई। किले पर अधिकार कर लिया गया और राजा को 'विजित लूटे गए क्षेत्र को वापस करना पडा, ब्रिटिश रक्षा सेना का स्वागत करना पडा, शासन पर प्रतिबध स्वीकार करना पडा और भविष्य मे अच्छे व्यवहार के लिए आश्वस्त करना पडा। आश्चय यह था कि वह अपनी बात पर अटल बना रहा।'[1]

कच्छ—कच्छ मे थोडी सी कठिनाई आई। यहा के कुछ सामन्ता को जब अपने क्षेत्र से निकाल दिया गया तो व सिंध मे प्रविष्ट हुए। सिंध के अमीरो ने उनका स्वागत किया और उन्ह कुछ सैनिक सहायता भी प्रदान की जिसके कारण उन्होने कच्छ पर आक्रमण कर दिया। पर इस आक्रमण का विरोध किया गया और कच्छ म ब्रिटिश रक्षक सेना की शक्ति बढा दी गई।

भरतपुर पर अधिकार—लार्ड एमहर्स्ट के भारतीय राज्यो के सबध म सबसे महत्त्वपूर्ण घटना भरतपुर से सबधित थी जिसपर उसने अधिकार किया। भरतपुर मे एक राज्य अपहर्ता ने गम्भीर कठिनाइया उत्पन्न कर रखी थी और अलवर तथा

1 हटर पूर्वोद्धत पृ० 131 32

जयपुर की सहायता से ब्रिटिश शासन को ही उखाड फेंकने की धुन म था।

1825 के प्रारम्भ मे भरतपुर के राजा बलदेव सिंह का देहान्त हो गया। वे अपन पीछे बलवत सिंह को अपना उत्तराधिकारी छोड गये। 1824 मे दिल्ली के राजनैतिक एजेण्ट सर डेविड आक्टर लोनी ने उसे एक परम्परागत राजवस्त्र खिलअत प्रदान किया "जा इस बात का प्रतीक था कि वही राज्य का उत्तराधिकारी है।' बच्चे को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ और प्रारम्भ म विरोध का कोई लक्षण नही दिखाई पडा। पर कुछ ही सप्ताहो के बाद कठिनाई प्रारम्भ हुई जब बलदेव के छोटे भाई के पुत्र दुजनसाल ने सेना की सहायता लेकर किले पर आक्रमण कर दिया, ब्रिटिश एजेण्ट को मार डाला और अपन को शासक घोषित कर दिया।

एमहर्स्ट की पत्नी न लिखा है "इस घटना के तुरन्त बाद, डेविड आक्टर लोनी ने पास पडोस से सेना एकत्रित की और सरकार की आर स एक अनाक्रामक घोषणा प्रसारित की सैनिको को सहेजना प्रारम्भ किया और अभी तक अनछुए भरतपुर के किले की ओर आगे बढने लगा। सरकार न उनकी इस नीति को अनुचित बताकर उसे अपनी घोषणा वापस लेने और सेना को आगे न बढाने का आदेश दिया।" आक्टर लोनी की कारवाई को रोकने के लिए सरकार ने दो कारणो से आदेश दिये। प्रथम तो यह कि भरतपुर का किला अपनी शक्तिशालिता के लिए प्रसिद्ध था जिसपर लेक जैसा सेनापति भी अधिकार न कर सका था और दूसरे अभी कुछ पहले लाड एमहर्स्ट के बर्मा के युद्ध की नीति से असतोष व्यक्त किया था और अब वे एक अन्य ऐसा युद्ध नही करना चाहते थे जो उनकी प्रतिष्ठा को भारत मे आघात पहुचाये।

इसी कारण सरकार ने आक्टर लोनी की कारवाई को ही अस्वीकार नही किया बल्कि उसे सेवा निवृत्त करने का ही निश्चय कर लिया। आक्टर लोनी ने पहले ही एक अवसर पर पदमुक्ति की कामना की थी। इसमे लाभ उठाकर मेटकाफ को उसका उत्तराधिकारी बनाकर भेज दिया गया। पर मेटकाफ के आक्टर लोनी के पास पहुचने से पूव ही जुलाइ 1825 मे आक्टर लोनी की मत्यु ने उसे कष्ट व अपमान से बचा लिया।

पर आक्टर लोनी की घोषणा न चाह वह सही रही हो या गलत, काय करना प्रारम्भ कर दिया। इसे जनता के बीच प्रसारित किया गया था कि वह दुजनसाल के अवधानिक कारवाइयो के समक्ष घुटने न टेके। उसने वैध शासक का समथन भी करने का कहा था। इसी के परिणामस्वरूप दुजनसाल न युवा राजा को मारा नही और यह घोषणा की कि उसन युवा राजा के हित म ही यह कारवाई की है। उसन राजा बनन के प्रति अनिच्छा प्रकट की और कहा कि वह अवयस्क राजा का सरक्षक मात्र ही बना रहेगा। जब मटकाफ न अधिकार ग्रहण किया तो उस

आक्टर लोनी की कारवाई को स्वीकृति प्रदान करनी पडी और अतत उसने गवनर जनरल को यह समझाने म सफलता प्राप्त की कि भरतपुर म हस्तक्षेप किया जाय। 16 सितम्बर को इस नीति के पक्ष म एक प्रस्ताव पारित किया गया और यह घोषित किया गया कि "यदि भरतपुर मे वतमान अव्यवस्था शीघ्रता से शा त नही की जाती तो इससे अपरइडिया मे तहलका मच जायगा।" प्रस्ताव मे मेटकाफ को अधिकार प्रदान किया गया कि "वह वैध उत्तराधिकारी के हित म शक्ति का भी प्रयोग करे।"

जब ब्रिटिश आपत्ति पर ध्यान नही दिया गया तो सेना तैयार की गई। जब दुजनसाल न समपण नही किया तो आक्रमण कर दिया गया। प्रसिद्ध किला घेर लिया गया। नगर विनाशलीला का शिकार हुआ और किले की विजय के लिए किये गये प्रयास सबके लिए आश्चयजनक रहे। दुजनसाल को कैद करके इलाहाबाद भेज दिया गया। 20 जनवरी 1826 का सेनापति लाड काम्बरमियर और मेटकाफ न किले मे एक दरबार किया और बलवत सिंह को मसनद पर बिठाया। उसकी मा को उसका व्यक्तिगत सरक्षण प्रदान किया गया और अय कार्यों पर नियत्रण हेतु ब्रिटिश रेजोडेन्ट रखा गया। हटर ने लिखा है, "वह किले ब दी जो अभी तक हमारी युद्ध-नीति के लिए निराशा और शत्रु के लिए आशा का आधार रही थी, समाप्त हो गई।"

"भरतपुर के घेरे की कथा अपने म इतनी उत्साहजनक और शानदार थी कि यह प्रश्न बनावटी लगता है कि इसकी ऐतिहासिक महत्ता क्या है।" प्रथम तो इस पर विजय ने सिंध तक का रास्ता साफ कर दिया और दसरे अब ब्रिटिशो का यह अधिकार स्वीकृत मान लिया गया कि सारे देश पर शा ति और व्यवस्था का उत्तरदायित्व उ ही का है। और तीसरे, मराठो पर शानदार सफलता के बाद इस घटना ने निष्कप रूप मे उत्तरी भारत पर ब्रिटिश महत्ता को सिद्ध कर दिया।

अलवर—अलवर का शासक भी कठिनाइया पैदा करन का प्रयास कर रहा था। भरतपुर पर अधिकार के बाद ब्रिटिशो का कुछ ऐसे कागजात मिले जिससे यह सिद्ध हुआ कि दुजनसाल का अलवर से सबध था और यह राज्य ब्रिटिशो के विरुद्ध उसे सहायता देने को तैयार था। पर भरतपुर किले के पतन के कारण जैसे ही ब्रिटिश सेनायें इस राज्य की ओर आगे बढी, यहा के शासक ने तुरत आत्म-समपण कर दिया।

बैंरकपुर मे विद्रोह

लाड एमहर्स्ट के काल मे बैंरकपुर मे भारतीय सिपाहियो का विद्रोह सबसे दु खद दुघटना थी। इस विद्रोह के अनेक कारण थे। चूंकि समय पर इन कारणो की ओर ध्यान नही दिया गया इसलिए अन्तत यह अग्निज्वाला भडक उठी।

सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि सरकार के ऊपर बर्मी युद्ध के कारण अधिक बोझ बढ़ गया था। अपने सेवा शर्तों के अनुसार सिपाहियों का अपना सामान को अपने साधनों से ही ले जाने की व्यवस्था करनी पड़ती थी जो कठिनाईपूर्ण था क्योंकि उनके पास वजनी सामान होता था। चूंकि सरकार की आवश्यकता अधिक आवश्यक थी और सैनिक इसके लिए अधिक मूल्य चुका सकते थे इसलिए सरकार ने लोअर बंगाल के तमाम लद्दू जानवरों को अपने प्रयोग में ले लिया। जो भी जानवर बच रहे उनकी कीमत उनके मालिकों ने बढ़ा दी जिसे सैनिक नहीं चुका सकते थे। दूसरी ओर सरकार सेवा शर्तों का मखौल उड़ाती रही। सैनिक समुद्र से ले जाये नहीं जा सकते थे क्योंकि उसमें उनका भारतीय संस्कार व्यवधान उपस्थित करता था।

रामू में बर्मियों के विरुद्ध ब्रिटिश असफलता को इतना बढ़ा चढ़ाकर बताया गया था कि भारतीय सिपाही ब्रिटिश उच्चता के जादू से अपने को स्वतन्त्र करने को आतुर थे। पुनश्च उन्होंने ब्रिटिशों के लिए लड़कर पिंडारियों और मराठों के विरुद्ध शानदार सफलता प्राप्त की थी। और इस कारण बंगाल के सैनिकों पर सरकार का अनुग्रह बढ़ गया था जिसने उनमें दर्प भाव को शक्तिशाली कर दिया था और अपने शासकों के प्रति ईर्ष्याभाव को जन्म दे दिया था।

ऐसा अंधविश्वास सैनिकों में धीरे धीरे जोर पकड़ता जा रहा था कि बर्मा के राजा में जादू की शक्ति थी और वह अजेय था। भारत की सीमा के बाहर युद्ध करने के प्रति इनमें आतंक भाव था। भारतीय सेना में पुनर्गठन जिसमें पुरानी रेजीमेण्ट प्रणाली को समाप्त किया जा रहा था और बटालियनों को नये अधिकारियों के अंतर्गत रखा जा रहा था, सैनिकों के लिए इसलिए स्वागत योग्य नहीं था क्योंकि अधिकारी उनके स्वभाव व विश्वास से भिन्न नहीं थे जिसके कारण उनकी स्वामिभक्ति नहीं जीत पाते थे।

साथ ही लद्दू जानवरों की बड़ी कमी ही नहीं हो गई थी बल्कि सामान ढोने वाले कुलियों ड्राइवरों और सेवकों की भी कमी हो गई थी। सेवा में लाने के लिए कुलियों को इतना पारिश्रमिक मिलता था जो ऊंची जाति के सैनिकों से अधिक होता था। इससे ऊंची जाति के सैनिक ईर्ष्या करते थे। इस कठिनाई का अनुभव कुछ रेजीमेण्ट के अधिकारी करते थे पर अन्य लोगों पर जूं नहीं रेंग रहा था।

हण्टर ने लिखा है कि ठीक इसी समय 'वह आपदा आ गई जब अत्यधिक विश्वस्तता की आवश्यकता थी।' अराकान में इतनी कठिनाइयां थीं कि सैनिक इसे प्लेग क्षेत्र के नाम से पुकारते थे। सैनिक प्रशासन सैनिकों के लिए सफाई व औषधि की व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दे रहा था और इसीलिए उन्होंने

अराकान जाने से इनकार कर दिया।[1]

समस्या की उग्रता 31 अक्टूबर 1824 को तब और बढ़ गई जब 47वें नेटिव इन्फैन्ट्री के सैनिकों ने जाने से तब तक के लिए इनकार कर दिया जब तक कि उनका वेतन न बढ़ा दिया जाय। सैनिकों न अपने अफसरों के विरोध की भी घोषणा की। यह घटना बैरकपुर मे हुई जो हुगली के तट पर कलकत्ता से 16 मील उत्तर मे था। यही पर एक महल मे धूल धक्कड़ से बचने के लिए गवनर जनरल भी था। सेनापति डाल्जेल ने तुरन्त गवनर जनरल को सूचना भेजी। रात मे 62वें रेजीमेण्ट के नेटिव इन्फन्टी के 200 और 26वें रेजीमेण्ट के 30 सैनिक जब विद्रोह मे और सम्मिलित हो गये तो विद्रोह ने एक गम्भीर रूप धारण कर लिया।

पर अधिकारियो को इस सारी स्थिति से निबटने मे विशेष कठिनाई नही हुई। श्रीमती एमहर्स्ट ने विवरण दिया है कि, "आवश्यकतानुसार विद्रोहियो के विरुद्ध तोप दमदम के मैदान मे दागने के लिए रखी गई कैप्टन मार्कन और अन्य दो अधिकारियो को उनके पास भेजा गया। उसने विद्रोहियो के समक्ष उन्ही की भाषा मे बडी मुलायमियत से भाषण दिया कोई तक वितक नही हुआ। उनके नेता उसपर हंसे और उसके सेनापति को रिपोर्ट देने पर मृत्यु की घटी बजी कई बार गोलाबारी हुई " बहुत से तुरन्त भगे, चार या पाच मारे गये या घायल हुए और कई सौ कैद कर लिये गये। तुरन्त कोर्ट माशल की व्यवस्था की गई। विद्रोही नेताओ मे से छह को दूसरे दिन प्रात फासी दे दी गई। कई सौ और दोषी पाये गये और उन्हे मृत्यु दड दिया गया। यह मृत्यु दड बाद मे 14 वष के सपरिश्रम कारावास मे बदल दिया गया। सनिको से यह सूचना पाने के बाद कि उन्हे भारतीय अधिकारियो ने उत्तेजित करके विद्रोह कराया था, अधिकारियो को पदमुक्त कर दिया गया। और सना से उस रेजीमेण्ट का नाम समाप्त कर दिया गया।

इस तरह अत हुआ बैरकपुर के विद्रोह का। ऐसा लगता है कि सैनिको का नेतृत्व अच्छे लोगो के हाथ म नही था जो परिस्थिति के अनुकूल युद्धनीति बना सकते। क्योकि उनके लिए सबसे अच्छा होता कि व अपने ही निकट रह रहे गवनर जनरल या सेनापति को घेर लेते जो कठिन नही था। और ऐसा करके वे कोई भी माग मनवा सकते थे।

उपरोक्त घटना के तुरन्त बाद, 39वी नेटिव इन्फैन्ट्री और 60वी नेटिव इन्फैन्ट्री ने स्वय यह इच्छा व्यक्त की कि वह कही भी आदेश पाने पर जाने को

1 दखें हटर पूर्वोद्धत पृ० 149 50

2. वही, पृ० 162 63।

तैयार है। बाद में इन्हीं रेजीमेण्टों ने बर्मा में अपनी उच्च कुशलता का परिचय दिया। और इसीलिए उन लोगों को भी क्षमा कर दिया गया जिन्हें 14 वर्ष की कारावास की सजा हुई थी और उन्हें अपने-अपने घर जाने की आज्ञा मिल गई।

बरकपुर के विद्रोह ने लार्ड एमहर्स्ट और डाइरक्टरों का संबंध बिगाड़ दिया। प्रथम तो उसपर यह आरोप लगाया गया कि उसने विद्रोह के कारणों की जाँच की रिपोर्ट शीघ्र उन्हें नहीं भेजी। दूसरे, रिपोर्ट के आधार पर खींचे गये निष्कर्ष व तत्संबंधी सत्यता या असत्यता की उसकी व्यक्तिगत व्याख्या न पाने पर भी बुरा माना गया। और तीसरे, सिपाहियों को तुरन्त क्षमा न करने के लिए भी बुरा माना गया क्योंकि ऐसा करने में सिपाहियों की विश्वस्तता में देरी लगी। लार्ड एमहर्स्ट को इंगलैण्ड से एक पत्र मिला कि वह गवर्नर जनरल के पद से वापस बुलाया ही जाने वाला है। बाद में एमहर्स्ट ने जो उत्तर भेजा उससे डाइरेक्टर्स संतुष्ट हो गये और उसकी व सेनापति की कारवाई पर उन्होंने स्वीकृति प्रदान कर दी।

लार्ड एमहर्स्ट को भारत में किसी महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय सफलता के लिए स्मरण नहीं किया जाता। बर्मा युद्ध तथा ऐसी ही घटनाओं ने उसकी आर्थिक समस्याएं बढ़ाईं। फिर भी पूर्वी और पश्चिमी यमुना नहर योजना की ओर वह गम्भीरता से ध्यान लगाये रहा। पर यह काम उसके काल में पूरा नहीं हो सका। इसके अतिरिक्त सामाजिक सुधारों और ठगी के दमन के सम्बन्ध में हम तत्कालीन अखबारों से सूचनायें मिलती है। लार्ड एमहर्स्ट ने मेड और भील जैसी खूंखार जातियों से भी निबटने की चेष्टा की। उसने सेना में मेडों की एक बटालियन ही अलग से बना दी। इस तरह एक चोर को दूसरे चोर से पकड़वाने की व्यवस्था हो गई। खानदेश के भीलों से भी निबटा गया।

उसने देश में शिक्षा के प्रसार में भी सहयोग किया। उसके समय में दिल्ली और आगरा में विद्यालय खोले गये। 1813 के चार्टर ऐक्ट के अन्तर्गत स्वीकृत शिक्षा पर व्यय होने वाली धनराशि व्यय नहीं हुई थी। लार्ड एमहर्स्ट ने 1823 में कलकत्ता में 'जनरल कमिटी ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन्स' की स्थापना की जिसे शिक्षा के विकास का रास्ता बताने को कहा गया और यह बताने को कहा गया कि 1813 में जो एक लाख रुपये शिक्षा पर व्यय के लिए रखे गए थे उस कैसे व्यय किया जाय। यह धन प्रतिवर्ष व्यय होना था पर यह एकत्रित होता जा रहा था।

लार्ड एमहर्स्ट पुरातनवादी था और अपने पूर्ववर्तियों की नीति के ही आधार पर उसने 1823 में कलकत्ता में संस्कृत कालेज की स्थापना की। पर इस समय तक परिस्थिति विशेष बदल चुकी थी। यहाँ तक कि राजा राममोहन राय जैसे भारतीय विद्वान भी ऐसी संस्थाओं की अनुपयोगिता स्वीकार करते थे। राजा ने

इसीलिए 1823 मे एक लम्बा पत्र गवनर जनरल को लिखा जिसमे उन्होन कहा, "सस्कृत प्रथा पर आधारित शिक्षा निश्चित रूप से देश को अधेरे मे रखने म सफल होगी और ब्रिटिणो की यही नीति भी है। पर चूकि भारतीयो का उत्थान सरकार का उद्देश्य है इसलिए अपेक्षा यह है कि वह उदार व उद्बुद्ध शिक्षा की व्यवस्था करे जिसमे गणित, दशन, रसायनशास्त्र, अनाटमी और अय उपयोगी विज्ञान की शिक्षा सम्मिलित हो। इसके लिए युरोप मे पढे कुछ विद्वान बुलाय जाए और यहा अच्छे पुस्तकालय, सामग्री और विज्ञान की वस्तुओ से सपन कॉलिज खोले जाए।"[1]

18 फरवरी 1824 का कोट ऑफ डाइरेक्टस का पत्र भी पहली बार पश्चिमी शिक्षा के पक्ष मे आया। पर इसम इस निर्णायक मत का अभाव था कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो। 'जनरल कमिटी ऑफ पब्लिक इ स्ट्रक्श स' ने इस नीति का अत्यन्त कमजोर विरोध प्रस्तुत किया। पर बाद के पत्रो मे यह नीति और स्पष्ट होती गई। पर बर्मी युद्ध के कारण यह मामला टल गया और लाड बैंटिक के काल मे ही इस पर कारवाई हुई।

भारत मे लाड एमहस्ट का काल भारत का वह काल है जब यहा के शासक कठिनाइयो म घिरे रहने पर भी अनिणायक और कच्छप गति वाले बने रह। 1825 से एमहस्ट भी कठिनाइयो के समुद्र मे गोत लगाता रहा। यह अफवाह कि वह वापस बुलाया जाने वाला है, सदा गम रहती थी। वैसे यह कैबिनेट और कलकत्ता कौंसिल उसे अपना समथन देती थी आर प्रारभिक कुछ दिना तक डयूक विलिंगटन भी उसके पक्ष म हस्तक्षेप करता था, पर दुभाग्यणाली गवनर जनरल सदा परेशानी मे रहता था और इसी कारण किसी भी क्षेत्र मे वह अपनी छाप नही छोड पाया। अतत अगस्त 1826 मे उसन बुरे स्वास्थ्य के आधार पर स्तीफा देने का निश्चय किया। मई 1827 को कोट आफ डाइरेक्टस की आर से उसे एक पत्र लिखा गया जिसमे एक प्रस्ताव द्वारा धयवाद देते हुए उसके स्तीफे को स्वीकार किया गया था। माच 1828 मे एमहस्ट ने कलकत्ता छाडा और इस तरह गवनर जनरल का उसका कायकाल समाप्त हुआ।

1835 मे लाड एमहस्ट इगलैंड से कनाडा का गवनर जनरल नामित किया गया। पर शीघ्र ही व्हिग शक्ति मे आ गये जिससे उसका नामकरण रद्द कर दिया गया। 1838 म उसकी पत्नी का देहात हो गया और अगले वष, जब वह 66 वष का था, उसन दूसरा विवाह किया। उसकी नवीन पत्नी एक सपन उच्च कुल की विधवा थी। एमहस्ट पदमुक्ति के बाद काफी दिनो तक जीवित रहा और 13 मई 1857 को 84 वष की आयु मे उसकी मत्यु हुई।

---

1 ब्रिटिश परामाउण्टसी ऐण्ड इण्डियन रिलेशा भाग 2 पृ० 35।

3
लार्ड विलियम बैंटिक (1828-1835)

विलियम कवेंडिश बैंटिक एक ऊंचे ह्विग परिवार म 14 सितम्बर 1774 में पैदा हुआ। उसके पिता विलियम हेनरी पोर्टलैण्ड के तृतीय ड्युक थे और प्रधान मंत्री रह चुके थे। उसकी मा डोरोथी कैवेंडिश डेवेशायर के चतुर्थ ड्युक की पुत्री थी। वह भी प्रधानमंत्री रह चुका था। बैंटिक ने अपना जीवन सेना मे प्रारम्भ किया। कोल्ड स्ट्रीम गार्ड म 1791 म उसे मजटेंड पद प्राप्त हुआ। 1794 म उसकी पदोन्नति लेफ्टीनेन्ट कर्नल के पद पर हो गई, 1796 म वह कमेलफोर्ड स एम० पी० चुन लिया गया, 1799 म उसे फ्रांसीसियो से लडने के लिए भेजा गया जहा उसने कई युद्धो मे भाग लिया।

1803 मे 29 वर्ष की ही अवस्था म बैंटिक को मद्रास का गवनर नियुक्त किया गया। उसी वर्ष उसका विवाह गेंसफोर्ड के प्रथम अर्ल आर्थर की पुत्री मरी एचीसन स हो गया। बैंटिक ने अपने प्रान्त मे कार्नवालिस के 1793 म प्रारम्भ किये गये स्थायी बदोबस्त को प्रविष्ट नही होने दिया। बगाल मे जमीदारो का एक वर्ग था जिनके साथ रैय्यतो की परवाह किये बिना यह बदोबस्त किया गया था। पर मद्रास म बगाल जमीदार नाम की कोई चीज नही थी और बैंटिक किसी एसी चीज को स्वीकार करने को भी तैयार नही था। वह रैय्यतो से बन्दोबस्त करने के पक्ष म था। बैंटिक का मद्रास मे अभी काम समाप्त भी नही हुआ था कि 1806 मे वेलौर मे सैनिको ने विद्रोह कर दिया। उसका सेनापति सर जान क्रडाक इसके लिए मुख्य रूप स उत्तरदायी था। पर डाइरेक्टरो ने बैंटिक को भी इस कार्य के लिए उत्तरदायी बताया क्योकि उनके मतानुसार उसने "इस सबध में चतुराई का प्रदर्शन नही किया था जिसके कारण इस क्षेत्र के अनेक कोटि के विचित्र लोगो ने समस्यायें उत्पन्न की।"[1] उसे क्रैडाक सहित वापस बुला लिया गया। बैंटिक ने इसका विरोध किया और कहा कि डाइरेक्टर मामले की जाच करके य बतायें कि इसके लिए कौन उत्तरदायी है। विद्रोह के अनेक कारण बताये गये और बैंटिक इनम स प्रत्येक के लिए उत्तरदायी नही था।

---

1 एन्ग्री एस्सनी चार्ल्स ग्रान्ट पृ० 238।

जैसा भी हो, बैंटिक इगलण्ड वापस लौट गया और जल्दी ही उसे मेजर जनरल बना दिया गया और उसे पेनिनसुलर युद्ध म भाग लेने के लिए भेज दिया गया। 1811 में उसे सिसली में राजदूत बनाकर भेजा गया और उसे अपनी जी० एल० बी० युद्ध के बाद प्राप्त हुई। वह रोम मे लगभग 10 वर्षों तक नौकरी-विहीन रहा जब इसे 1827 म बगाल का गवनर जनरल बनाया गया।

उसके इस पद की प्राप्ति के समय भारतीय प्रशासन आर्थिक कठिनाइयो से ग्रस्त था। नेपाल युद्ध, तृतीय मराठा युद्ध एव बर्मी युद्ध जो लार्ड हेस्टिंग्स एव लार्ड एमहर्स्ट के नतत्व म लड़ा गया था, इसने ईस्ट इडिया कपनी के आर्थिक ढाचे को ही हिला दिया था। आवश्यक था कि राष्ट्रीय ऋण को कम करने तथा खाली खजाने को पूरा करने के लिए कुछ कठोर कदम उठाये जायें। इसके अतिरिक्त अय बहुत से प्रशासकीय एव सामाजिक समस्यायें भी थी जिस ओर ध्यान दिया जाना था।

जिस काल मे बैंटिक ने भारत पर शासन किया वह काल यूरोप म उदारता का था। फ्रास की क्राति हो चुकी थी जो अपने प्रारभिक चरणो मे इगलैण्ड मे "नव युग का उषाकाल" के रूप म स्वीकारी गई थी। स्वतत्रता, समानता एव भ्रातत्व' का नारा अब भी पवन के झकोरो मे था जिसन इगलण्ड के सामाजिक, साहित्यिक और राजनैतिक दशन को प्रभावित किया और कूपर, बर्स, कालरिज वडसवथ, शेली एव बायरन जैसे लेखको और कवियो को जम दिया। इनमे से प्रत्येक यह कहता पाया जाता था, 'इस युग मे रहना एक वरदान है और युवा होना तो स्वग के समान है।" अग्रेजी ससद उदारवादियो से भरा था जिन्होने 1832 के ससदीय सुधार नियम को पास कराया। कपनी के चाटर के नवीनीकरण की तिथि भी निकट आती जा रही थी और डाइरेक्टस यह अनुमान करते थे कि यदि भारत मे सुधार नही किये जायेग तो कठिनाइया बढेगी।

इसके अतिरिक्त मराठो के पतन के उपरात ब्रिटिशो ने अपनी महत्ता को पहचान लिया था और भारत मे सावभौम शासक के उत्तरदायित्व का भान भी उन्हे हो गया था। इसके कारण इस देश मे अपनी कारवाइयो के सबध मे उन्हे नया दृष्टिकोण अपनाना पडा। यह सब जब विलियम बैंटिक के उदारवादी दृष्टिकोण से जुड गया तो भारत के आतरिक प्रशासन मे एक नयी चेतना ही आ गई। रैम्जेम्योर ने इसी सदभ मे लिखा है कि "यह दो दिशाओ मे गया जिसम प्राय आपस मे टकराव दिखाई दी। एक ओर तो भारतीय कानून और परम्परा का आदरपूण अध्ययन एव मूल्याकन प्रारभ हुआ जो वारेन हेस्टिंग्स के काल से चलता आ रहा था और साथ ही एक शक्तिशाली दृष्टिकोण था जिसके अतगत ब्रिटिश सरकार का कतव्य था कि वह भारत मे पश्चिमी कारवाइयो के परिणामो

का जानने का अवसर दे।"[1]

भारतीय कारवाइया के सदभ म इससे पूव बबर अत्याचार हुए थे, पर अब समय आ गया था जब लाड बटिंक के मतानुसार उन्ह न दुहराया जाय। उसने कहा "प्रथम बार विश्वजनीन शांति के आशीवचन की आशा की जा सकती थी।" भारत के भाग्य से यहा पर उच्च अधिकारिया का एक ऐसा समूह था जो बैंटिक के विचारा का समयन करता था। मद्रास क गवनर मुनरो के 1824 के मिनिट (न० 102) म यह स्पष्ट लिखा है कि 'ब्रिटिश प्रशासक। के कुछ योग्य लोगा की दष्टि मे भारतीय प्रशासन भारतीय लोगा के स्वशासन की दिशा म एक कदम था।" बटिक के य उद्देश्य निश्चित ही दूरगामी थे और साथ ही उसन प्राच्य निरकुशता म ब्रिटिश स्वतत्रता की भावना भर दी। इन्ह विभिन्न शीपका मे पढा जा सकता है।

बैन्टिक के सुधार

आर्थिक सुधार—प्रशासन सभालने के शीघ्र बाद ही लाड विलियम बटिंक ने सरकार के सनिक व असनिक व्यया की जाच के लिए दो समितिया बनायी। इन्ह यह भी बताना था कि व्यय मे कमी कैसे की जाय। इन समितिया न विस्तृत छानबीन की। इनकी सस्तुति पर बटिक ने कई अनावश्यक नौकरिया समाप्त कर दी और तमाम असैनिक सेवा मे लोगो का वेतन और भत्ता कम कर दिया।

पर सैनिक क्षेत्र म बैंटिक अधिक नही कर सका। एक ही महत्वपूण आर्थिक सुधार जो किया जा सका, वह था सेना मे काम करने वालो के भत्ते म आधे की कटौती। भत्ता वतन के अनुसार इसके अतिरिक्त पदानुसार प्रदान किया जाता था। ईस्ट इडिया कपनी क डाइरेक्टरो ने इससे पहले भी इसे घटाने की चेष्टा की थी पर भत्ता पाने वालो के कडे विराध के कारण यह सभव नही हुआ था। बटिक के लिए भी यह काय सरल नही था। पर उसने कदम उठाया और कलकत्ता से 400 मील के अन्दर के लोगो का भत्ता आधा घटा दिया। इसके विरुद्ध कडा विरोध हुआ। इसकी आशा भी थी। आग्ल भारतीय प्रेस न उसकी खुली कडी आलोचना की पर बैंटिक अपने निणय पर अडिग रहा और अतत अपने मतव्य मे सफल हो गया।

उसके यायिक सुधारो एव प्रातो के अपीलीय सरकिट यायालयो की समाप्ति न धन की पर्याप्त बचत की। इसका विवरण आगे आयेगा।

पर उसका एक महत्वपूण आर्थिक सुधार अपील के सबध मे व्यापार सबधी नियम बनाना था। चीन और पूर्वी द्वीप समूह म अफीम की माग बढ रही थी। वैसे

1 रम्जम्योर मकिंग आफ ब्रिटिश इडिया पृ० 277 78।

2 वही पृ० 279 80।

तो एक सभ्य देश के लिए अफीम जैसी वस्तु के व्यापार के सबध मे नियम बनाना नैतिक दृष्टि से उचित नही था, तो भी भारत के ब्रिटिश अधिकारी इस राजस्व स्रोत का लाभ उठा रहे थे। जहा तक बैंटिक का प्रश्न है उसने भी इस क्षेत्र मे पूर्णरूपेण और कार्यक्षम ढग से कार्य किया। वारेन हेस्टिंग्स ने भी इस स्रोत का उपयोग किया था। और जब बैंटिक ने प्रशासन का कार्य-भार सभाला, बनारस तथा बिहार मे ईस्ट इडिया कपनी के नियत्रण मे अफीम उगाई जा रही थी।

मालवा म भी अफीम उगाई जाती थी पर ब्रिटिश अधिकारी अभी तक इससे कोई लाभ नही उठा सके थे जिसका कारण यह था कि इसे बम्बई भेजने से रोक दिया गया था। इसी कारण यह कराची होकर पुर्त्तगाली द्वीप दमन व दीव पहुचने लगा। यहा से पुर्तगाली इसे पूरब के बाजारो मे ले जाने लगे और पर्याप्त लाभ प्राप्त करने लगे। बैंटिक ने मात्र इतना किया कि उसने मालवा से बम्बई अफीम जाने की अनुमति दे दी। इसके लिए एक कार्यक्षम लाइसेंस प्रथा प्रारभ की गई जिससे सरकार की आय अत्यधिक बढ गई।

खजाने मे धन वृद्धि के लिए बैंटिक ने ऐसी भूमि पर फिर से लगान लगाया जो लोगो को मुफ्त मे प्राप्त थी। 1765 मे बगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी के प्राप्ति के समय कपनी ने कुछ लोगो तथा सस्थाओ को मुफ्त भूमि प्रदान की थी जो इसके पूर्व इस तरह की भूमि अपने अधिकार मे रखते थे। पर इनमे से बहुत सी भूमि के कागजात जाली और नकली पाये गये तथा कुछ भूस्वामियो के पास तो उन्हे दिये गये भूमि का प्रमाण भी नही रहा इसलिए 1793 एव 1819 मे नियम बनाया गया जिसके अतर्गत कलेक्टरो को यह अधिकार दिया गया कि वे इन जमीनो की कानूनी स्थिति जाच लें और यदि इसके प्रमाण उन्हे न मिले तो उस भूमि पर कर लगा दिया जाय। भूस्वामियो को असैनिक न्यायालयो से अपील का अवसर दिया गया। इस तरह इस नवीन नियम के अतर्गत बहुत-सी भूमि पर कर लगा दिया गया।

पर चूकि कार्य सतोषजनक ढग से नहीं चल रहा था, इसलिए बैंटिक ने 1828 मे रेग्युलेशन तृतीय पास किया जिसके द्वारा कलेक्टरो को अपने कार्य के प्रति अधिक गभीर कर दिया गया और विशेष कमिश्नरो की नियुक्ति की गई जो कलेक्टरो के यहा की अपीलें सुनते थे। भूस्वामियो की यह दलील कि चूकि भूमि उन्हे बहुत पहले प्राप्त हो चुकी थी इसलिए वे कागजात खो चुके हैं, इसे नही माना गया और इस तरह बहुतो को अपनी पैतृक भूमि से हाथ धोना पडा। इससे सरकार को लगभग 30 लाख रुपये की आय हुई। सरकार के लिए यह अच्छा पारितोषिक था। इससे जनता म असतोष का भाव जगा जो बैंटिक के उत्तराधिकारियो के काल म बढा और अतत 1857 के विद्रोह का एक प्रमुख कारण सिद्ध हुआ।

एक अन्य सुधार, जो उसने प्रारभ किया, वह उत्तर पश्चिम प्रान्त मे भू राजस्व

बंदोबस्त से संबंधित था। यह प्रांत अवध से काटकर और सिंधिया से प्राप्त क्षेत्र को मिलाकर बना था। पर अब तक ऐसी कोई कार्यक्षम राजस्व व्यवस्था नहीं स्थापित हो पायी थी जो सरकार के उद्देश्य की पूर्ति कर सके एवं जनता को कृषि की ओर आकृष्ट कर सके। लार्ड वेलजली के पंचवर्षीय बन्दोबस्त से कोई निदान नहीं हुआ। संक्षिप्त काल होने के कारण लोग अपनी भूमि का विकसित करने का प्रयास नहीं करते थे क्योंकि इससे उनके अतिरिक्त आय के उस पांच साल के बाद भू राजस्व के बढ़ जाने के कारण लुट जाने की संभावना बनी रहती थी। बैंटिक ने उनकी कठिनाई समझी और महत्त्वपूर्ण बुद्धिजीवियों से इस कठिनाई को दूर करने के संबंध में परामर्श किया। भूमि को नापा गया और उसका नक्शा तैयार किया गया और नियमित रिकार्ड तैयार किये गये। सबसे महत्त्वपूर्ण कदम उसने यह उठाया कि यह बन्दोबस्त 30 वर्ष के लिए किया गया, जमीन चाहे रैय्यत की हो, जमींदार की हो या ग्रामवासी की हो। बन्दोबस्त की यह योजना 1833 में कानून बन गई।

इस व्यवस्था से जहां राज्य को लाभ हुआ वहां जनता को भी। इससे राज्य का राजस्व बढ़ा और वह लम्बी अवधि की योजनाओं के बनाने में समर्थ हो सकी। दूसरी ओर जो लोग खेती करते थे वे यह जान गये कि एक निश्चित लम्बी अवधि तक के लिए उन्हें एक निश्चित धनराशि देनी है और इस तरह उन्हें अपनी भूमि में उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित होने का अवसर मिला। नियमित रजिस्टर और रिकार्ड बनाये गये और व्यवस्था में अस्पष्टता समाप्त की गई। पर इस व्यवस्था में अब भी एक दोष था कि राज्य की मांग आशा से अधिक थी। पर यह स्वीकार किया गया कि पुरानी व्यवस्था से अब बेहतर स्थिति है।

कंपनी की सेवा में भारतीयों के लिये जाने से भी धन की बचत हुई। जैसे जैसे अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ, अधिक भारतीय सस्ते वेतनों पर अंग्रेजों की जगह लेने लगे। बैंटिक ने इससे भी लाभ उठाया। इसकी चर्चा आगे की जायेगी।

इन सभी आर्थिक कदमों का परिणाम यह हुआ कि 10 लाख का घाटा 15 लाख पौंड के लाभ में बदल गया। राज्य के बजट से यह स्पष्ट था।[1]

प्रशासकीय सुधार—बैंटिक के काल में पारित 1833 के चार्टर एक्ट में घोषणा की गई थी कि 'भारत का कोई भी नागरिक धर्म, जन्म स्थान, वंश या रंग भेद के कारण किसी स्थान कार्यालय या नौकरी पाने से वंचित नहीं किया जायगा।' बैंटिक ने पूर्ण रूप से इसी आधार पर कार्य करने की चेष्टा की। सर चार्ल्स मेटकाफ ने इस संस्तुति के आधार पर कहा कि भारतीयों को सभी

---

1 राबर्टस पी॰ ई॰ पूर्वोद्धृत पृ॰ 300 05।

विभागो मे काय करने का अवसर प्राप्त होना चाहिए। इनके ऊपर एक सुपरिटेंडेंट नियुक्त किया जाना चाहिए जिसे पूरे जिले की स्थानीय शक्ति प्राप्त होनी चाहिए तथा उन्हे न्यायालया, राजस्व तथा पुलिस अधिकार सगठित रूप से प्राप्त करना चाहिए। इनके ऊपर कमिश्नर और उनके ऊपर बोड होना चाहिए जिसके ऊपर सरकार का नियन्त्रण होना चाहिए।

बैंटिक न इन सस्तुतियो को स्वीकार किया और कुछ परिवतन भी इसमे जोडे। इसके पूव भारतीयो मे विश्वास नही किया जाता था और यह सरकार की निश्चित नीति थी, जैसा कि लाड कानवालिस ने किया, कि राज्य की सेवाओ मे युरोपीय लोगा को ही रखा जाय। पर युरोपीयो पर व्यय बहुत करना पडता था। पर जैसा हम बता आये है अग्रेजी शिक्षा प्रसार के साथ एसे भारतीय उपलब्ध हो गये जो लिपिक या समकक्ष स्थानो पर अग्रेजा के स्थान पर कम वेतन मे काय कर सकते थे। भारतीय सेवा म अवसर न पाने स खिन्न भी थे और उनकी इस समस्या का निदान भी आवश्यक था।

बैंटिक ने निम्न श्रेणी की सेवाओ मे भारतीयो को लेने के लिए कदम उठाये। उसन अपनी महत्त्वपूण योजना के अन्तगत न्यायिक सेवा को तीन श्रेणियो मे विभाजित कर उसमे भारतीयो को भी रखने की योजना बनाई। इनमे से सबसे ऊचा सदर अमीन कहलाता था जिसे 750 रुपये मासिक वेतन प्राप्त होता था।

बैंटिक के ये कदम महत्त्व के थे। भारतीयो की एक समस्या का इससे आशिक निदान ही नही हो गया बल्कि साथ-ही-साथ कुछ आर्थिक बचत भी हो गई।

न्यायिक सुधार—बैंटिक द्वारा किये गये न्यायिक सुधारा के परिचय के पूव यह वाछित है कि हम तत्कालीन न्याय व्यवस्था सम्बन्धी कुछ जानकारी करे। उसके दोषो को देखें जिसके कारण सुधार की आवश्यकता हुई। लाड कानवालिस के राज्य मे जिसन 1786 से 1793 के बीच गवनर जनरल के रूप मे काय किया, बगाल, बिहार व उडीसा को चार डिवीजना मे बाटा गया था। प्रत्येक डिवीजन मे कपनी के प्रतिज्ञाबद्ध कमचारिया के नेतृत्व मे सरकिट कोट स्थापित की गई। यह न्यायालय अपने-अपन डिवीजनो मे चलती फिरती रहती और तुरन्त उसी स्थान पर निणय देती रहती थी। उनके निणय का पालन जिला मजिस्ट्रेट करता था और छोटे छोट मुकदमे स्वय देखता था। गभीर मुकदमो के अपराधी जेल मे रख दिये जाते थे और जिले मे सरकिट कोट के आन पर उनका निणय होता था। मृत्यु दड या आजीवन कारावास की सजा के लिए सदर निजामत अदालत से स्वीकृति प्राप्त करनी पडती थी।

इसके अतिरिक्त इन तीन प्रान्ता के लिए अपीलीय न्यायालय कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, ढाका और पटना म स्थापित किय गय थ। इन न्यायालया म से प्रत्यक म कम्पनी के तीन प्रतिज्ञाबद्ध कमचारी होते थे। इस न्यायालय म मुकदमा दायर

भी हो सकता था और अपील भी हो सकती थी। एक हजार रुपये तक के मुकदमों में इनका निर्णय अंतिम होता था। और बड़े मुकदमों के लिए कलकत्ता में सदर दीवानी अदालत में अपील करनी पड़ती थी। यह न्यायालय न्यायिक प्रशासन की देखभाल भी करता था और सीधे पांच हजार रुपये से अधिक के मुकदमे भी सुनता था।

उपरोक्त परम्परा में बहुत से दोष थे जिनकी ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक था। इसका पहला दोष यह था कि कम्पनी की सीमायें बढ़ गई थीं और कलकत्ता वहां से दूर पड़ता था। दूसरे प्रान्तों के अपीलीय एवं सरकिट कोर्ट में गंभीर अकार्यक्षमता और अनियमितता थी। बटिंक के अनुसार ये न्यायालय "उन लोगों के लिए विश्रामगृह थे जो ऊंची सेवाओं के अयोग्य थे।" इन न्यायालयों में न्यायाधीशों को विशेष ज्ञान नहीं था और इस कारण उनका काम एकत्रित होता जा रहा था। अपराधियों को जेलखाने में सरकिट कोर्ट बैठने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी और तब न्याय हो पाता था। इसके अतिरिक्त ये अपराधी पुलिस की यातना भोगते थे जिससे सरकिट कोर्ट उन्हें मुक्त नहीं करा पाता था।

पूरी व्यवस्था व्ययसाध्य थी, साथ ही इसमें देर भी होती थी और कठिनाई भी। भारतीयों को जिला व नगर न्यायालयों में केवल मुंसिफ का पद प्राप्त होता था जबकि उच्च उत्तरदायित्व के पदों पर उन्हें नियुक्त नहीं किया जाता था। फारसी न्यायालय की भाषा थी और मुकदमे वाले अपनी भाषा में अपनी कठिनाइयां नहीं प्रस्तुत कर सकते थे।

सर चार्ल्स मेटकाफ, हाल्ट मैकेन्जी और बटर वर्थ बेली की सहायता से बटिंक ने उपरोक्त दोषों को दूर करने के लिए कुछ कदम उठाये। उसने पहला कार्य यह किया कि प्रान्तों के अपीलीय और सरकिट न्यायालय को समाप्त कर दिया। इसके स्थान पर वही कार्य करने के लिए राजस्व एवं सरकिट के लिए अलग-अलग कमिश्नर नियुक्त किये गये। बंगाल प्रेसीडेंसी को इस कार्य के लिए 20 भागों में विभक्त किया गया। प्रत्येक भाग को कमिश्नर के अधीन किया गया। समाप्त न्यायालयों का काम करने के अतिरिक्त कमिश्नरों को अपने क्षेत्र के पुलिस और राजस्व विभाग की भी देखभाल करनी पड़ती थी। राजस्व के सम्बन्ध में वे स्वयं बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के अधीन कर दिये गये और फौजदारी मुकदमों के लिए उन्हें सदर निजामत अदालत के नियंत्रण में काम करना पड़ता था।

1829 में एक कानून बनाया गया जिसके अन्तर्गत मजिस्ट्रेट को 2 वर्ष का सपरिश्रम कारावास का दंड देने का अधिकार मिला। इसकी अपीलें उस क्षेत्र के कमिश्नर के यहां हो सकती थीं। 1831 के कानून के अन्तर्गत कलेक्टरों को यह अधिकार दिया गया कि वे लगान सम्बन्धी मुकदमों का तुरन्त निर्णय कर सकें। इन मुकदमों में किसी ऊंची अदालत में अपील नहीं हो सकती थी। पर इसके लिए

एक तरीका था कि कलेक्टर के विरुद्ध ही असैनिक न्यायालय मे मुकदमा दायर कर दिया जाय।

उसी वर्ष 1831 मे कमिश्नरो का सेशन का काम न्यायाधीशो को सौप दिया गया और इस तरह सेशन व जिला जज प्रथा की उत्पत्ति हुई।

1831 मे एक अन्य रेग्युलेशन पारित किया गया जिसके अन्तर्गत प्रतिष्ठित भारतीयो का जिला और नगर न्यायालयो मे नियुक्ति देने का निश्चय किया गया। उन्हें मुन्सिफ कहा जाता था, वह निश्चित वेतन पाता था और 300 रुपये तक के मुकदमे देखता था। 1831 के कानून मे यह भी था कि कौंसिल मे गवनर जनरल प्रतिष्ठित भारतीयो को सदर अमीन के पद पर नियुक्त कर सकता है जो जिला और नगर न्यायालयो से अपीलें सुनेंगे और भारतीय मूल के सर्वोच्च न्याय पद पाने वाले होंगे। मुन्सिफो की भाति वे भी निश्चित और नियमित रूप से वेतन पाने को थे। पर यह निश्चित रूप से स्पष्ट कर दिया गया कि युरोपीयो एव अमेरिकीयो के मुकदमे मुन्सिफ व सदर अमीन नही देख सकेंगे।

1832 मे इलाहाबाद मे सदर दीवानी अदालत और सदर निजामत अदालत की अलग अलग स्थापना की गई। 1832 के कानून के अन्तर्गत बगाल मे जूरी की तरह ही नई व्यवस्था की गई। इसका मूल उद्देश्य यह था कि युरोपीय न्यायाधीशो को भारतीयो का सहयोग प्राप्त हो सके। कानून मे यह भी प्रावधान किया गया कि न्यायाधीश इन मुकदमो को पचायतो के पास भी भेज सकते थे जिसम प्रतिष्ठित भारतीय होंगे और जो न्यायाधीशो को अपनी रिपोर्ट भेजेंगे। न्यायाधीशो को भारतीय निर्धारक नियुक्त करने का भी अधिकार हुआ जिनसे वे अलग से रिपोर्ट माग सकते थ।

लार्ड विलियम बैंटिक का सुधार भारतीय न्यायपालिका के इतिहास मे एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। जहा प्रान्त की अपीलीय व सरकिट न्यायालयो की समाप्ति और उनके स्थान पर कमिश्नरो की नियुक्ति ने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को बढावा दिया, वही साथ ही इससे पुलिस के अत्याचार मे कमी आई और अपराधियों के सशय की स्थिति मे भी सुधार हुआ। इसके अतिरिक्त न्यायालयो मे भारतीय तत्त्वो का समावेश अति महत्त्वपूर्ण तथा सेना के भारतीयकरण की ओर महत्त्वपूर्ण कदम था। बगाल के न्यायाधीश को न्यायालयो से सहायता प्राप्त करने की प्रथा का प्रारम्भ कर जहा बैंटिक ने एक ओर देश मे जूरी प्रथा के विकास मे सहयोग दिया वहा साथ ही स्थानीय समस्याओ व ज्ञान को भी न्याय पर प्रभाव जमाने का अवसर प्रदान किया। वसे तो यह कहना सच न होगा कि इन सुधारो ने भारतीयो के लिए सेवा का दरवाजा खोल दिया, पर इसमे कोई अत्युक्ति भी नही है कि यह कारवाई उस दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण कदम थी। नर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व मे इस दिशा म एक आदोलन का पथ प्रशस्त हो गया और भारत

उस गन्तव्य की ओर आगे बढ चला।

शैक्षिक सुधार—उसके जीवन कथाकार डेमेट्रियस सी० बोल्जर के अनुसार "लार्ड विलियम बैंटिक के प्रशासन सम्बन्धी सभी कारवाइयों में 1834 में प्रारम्भ की गई उसकी नवीन शिक्षा-नीति सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली थी। जिसका आधार था भारत में अंग्रेजी का कार्यालयीय भाषा का स्थान प्रदान करना।"[1] यह समीचीन ही होगा कि बैंटिक की शिक्षा-नीति की व्यवस्था के पूर्व इसके पूर्व के शिक्षा विकास के सम्बन्ध में कुछ कह लें।

"यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि गौतम बुद्ध व महावीर जैन से लेकर हर्ष के राज के काल तक प्राचीन भारत आधुनिक मापदण्ड में एक अपार शिक्षित देश था।"[2] नालन्दा और तक्षशिला जैसे भारतीय विश्वविद्यालय प्रसिद्ध थे और बहुत से विदेशी छात्र भी यहां उच्च शिक्षा प्राप्त करने आते थे। हिन्दू शक्ति के पतन के साथ भारत का प्राचीन गौरव भी जाता रहा। पर शिक्षा पूरी तरह नहीं पिछड़ी। इसके लिए राज्य का सहयोग तो घट गया पर व्यक्तिगत स्तर पर लोगों ने पर्याप्त सहयोग दिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जब अपनी शक्ति की यहां स्थापना की उस समय धार्मिक स्थानों से सबद्ध अन्यान्य पाठशालायें थीं तथा मजिस्ट्रेटों से लगे अनेक मकतब थे जो देश के बच्चों को शिक्षा प्रदान करते थे। पर ये शैक्षिक संस्थाएं पूर्ण नहीं थीं। इनके ऊपर राज्य का कोई नियंत्रण नहीं था और न ही अध्यापक नियमित पेशे के अनुसार कार्य करते थे।

ब्रिटिशों के अधीन शिक्षा को गम्भीरता से प्रशासकीय विभाग के अन्तर्गत 1854 में लाया गया। 1854 से 1871 तक इसकी मुख्य विशेषता हायर सेकेण्डरी स्कूलों की स्थापना थी जिससे इससे तैयार होकर बच्चे विश्वविद्यालयीय परीक्षा में बैठ सकें। 1871 के बाद प्राइमरी शिक्षा पर जोर दिया जाने लगा। पर उच्च शिक्षा का प्रभाव अब भी अधिक था।"[3] पर इसका अर्थ यह नहीं कि 1854 से पूर्व शिक्षा की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया। सच तो यह है कि शिक्षा का स्वस्थ आधार इसी काल में डाल दिया गया जिसके ऊपर भवन की रचना 1854 के उपरान्त की गई।

कम्पनी की शक्ति के विकास के साथ प्रारम्भ में शिक्षा पद्धति में कोई हस्त-क्षेप नहीं किया गया और राजाओं के तत्सम्बन्धी वृत्तिदान को स्वीकृत किया गया। पहली बार वारेन हेस्टिंग्स के मन में इस सम्बन्ध में रुचि जागी और उसने 1772 में कलकत्ता में 'कलकत्ता मदरसा' नामक एक विद्यालय खोला जिसका उद्देश्य मुसल-

---

1 बोल्जर डमेट्रियस सी० लार्ड विलियम बैंटिक (1890) पृ० 149।

2 ठाकार वी० के० इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन टू द डान आफ द रिसपांसिबल गवर्नमेंट, पृ० 339।

3 टाम्सन ई० सी० मेसे इण्डिया आफ टुडे, 1913, पृ० 183।

मानो को कम्पनी की सेवा के लिए तैयार करना था। 1785 मे ऐतिहासिक शोध के लिए सर विलियम जोन्स ने 'बगाल एशियाटिक सोसायटी' की स्थापना की। 1791 म बनारस निवासी डकन ने इसी नगर मे एक सस्कृत कॉलेज खोला जिसका उद्देश्य देश के कानून, साहित्य और धर्म की रक्षा एव विकास था। इसका काय हिदुओ के लिये वही था जो मदरसा का मुसलमानो के लिए। साथ ही यह सस्था यूरोपीय न्यायाधीशो के लिए हिदू सहायक भी इस सस्था से तैयार करती थी।" बगाल रेजीडेंसी के जान आवेन का यह प्रयास कि अग्रेजी पढाने के लिए एक विद्यालय खोलने का प्रयास किया जाय, सफल नही हुआ।

1793 मे कम्पनी के चाटर के नवीनीकरण के समय हाउस ऑफ कामन्स म जब विवाद प्रारम्भ हुआ तो विल्बरफोस ने सदन को यह मनवाने के लिए प्रयास किया कि भारतीयो को शिक्षा देने हेतु मिशनरी और शिक्षक भेजे जाय। पर इसम उसे सफलता प्राप्त नही हुई। दो वर्षों के बाद कम्पनी के डाइरेक्टरो मे से एक चाल्स ग्राण्ट ने भी यह चेष्टा की कि भारत मे अग्रेजी साहित्य और भाषा वैसे ही लायी जाय जैसे मुसलमान यहा फारसी लाये थे। और 1811 मे लाड मिण्टो ने यह शिकायत भी की कि भारत मे विज्ञान और साहित्य का विकास एकदम से रुका हुआ है। इसी तरह की बात उसके साथी टी० लम्सडेन ने भी की।

इन्ही परिस्थितियो मे 1813 का चाटर ऐक्ट पारित हुआ जिसमे भारत सरकार को निर्देश दिया गया कि "प्रति वष कम-से-कम एक लाख रुपया साहित्य के सृजन व विकास के लिए तथा विज्ञान के प्रारभ और उसकी ज्ञान की वद्धि के लिए भारत निवासियो पर व्यय किया जायगा।" पर 20 वष से अधिक काल तक शिक्षा विकास की किसी निश्चित योजना के अभाव मे प्रतिवष यह धन एकत्रित होता गया और प्रयोग मे नही आ सका।

पर इस बीच अग्रेजी शिक्षा के विकास के लिए व्यक्तिगत और स्थानीय प्रयास चलते रहे और इसके कुछ परिणाम भी हुए। राजा राममोहन राय ने एक परिषद की स्थापना की, जिसका उद्देश्य भारतीयो को पश्चिमी दशन और भाषा की शिक्षा देना था। 1819 मे एक हिदू कालेज खोला गया। पश्चिमी सस्कृति व दशन के प्रति बढते उत्साह को देखकर हिदू और मुसलमानो को अग्रेजी दशन की शिक्षा देने हेतु 1818 मे कलकत्ता के बिशप ने एक सस्था स्थापित की। इस क्षेत्र मे एक अन्य नेता बम्बई मे एलफिन्स्टन थे जिनके प्रयास से बम्बई मे एक विद्यालय खोला गया और दूसरा पूना मे। इन सस्थाओ मे अग्रेजी के माध्यम स विज्ञान और कला की शिक्षा दी जाती थी।

इन प्रयासो के फलस्वरूप अग्रेजी भाषा और शिक्षा का विकास हुआ और यह लोकप्रिय हुई। इसकी माग बढी, जबकि सस्कृत और अरबी के लिए माग घटी। इसीलिए इन भाषाओ की शिक्षा देने वाली सस्थाओ ने भी अग्रेजी पढानी प्रारभ

कर दी जिससे उनकी लोकप्रियता पर आच न आए।

एक प्रश्न उठा कि इस देश म अंग्रेजी शिक्षा या प्राच्य शिक्षा, किसका विकास हो? एक लाख की निर्धारित धनराशि अभी तक कही व्यय नहीं हो पायी थी। 1823 म एडम्स ने 'कमिटी आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन्स' की स्थापना करके इस विषय पर अपनी राय मागी, पर प्रथम बर्मी युद्ध ने व्यवधान उपस्थित कर दिया और कुछ नही हो सका। 1833 के चार्टर ऐक्ट के अनुसार एक लाख की धनराशि दस लाख मे बदल दी गई और अब लार्ड बैंटिक को इस प्रश्न को गभीरता से लेना पडा और उसे योजनाबद्ध ढग से इस धन को व्यय करने के लिए सोचना पडा। एक बडा विवाद इसी बीच यह उठ खडा हुआ कि किस तरह की शिक्षा सरकार विकसित करे। इस सम्बन्ध मे दो तरह की विचारधारायें उभरकर सामने आइ। एक का नेतत्व एच० एच० विल्सन कर रहा था जो प्राच्य शिक्षा का समथन कर रहा था तथा दूसरे का नेतत्व सर चार्ल्स ट्रेवेलियन कर रहा था जिसके समथन म बाद म सर चार्ल्स मैकाले और राजा राममोहन राय ने किया। इनकी इच्छा अंग्रेजी शिक्षा के समथन की थी।

प्राच्यवादियो का यह कहना था कि 1813 के एक्ट के अतगत जो एक लाख रुपय वार्षिक शिक्षा पर व्यय हेतु रखा गया था, वह प्राच्य शिक्षा के लिए था। इसलिए इस धन का प्रयोग कही और नही किया जा सकता था। प्राच्य शिक्षा प्राच्यविदा के लिए सबसे उत्तम थी जो उनकी इच्छा व दृष्टि के अनुरूप थी जो उनमे गुणो का विकास करती थी। साथ ही अंग्रेजी शिक्षा का विकास तत्कालीन पाठशालाओ और मदरसो की शिक्षा का विनाश कर देगी, ऐसा वे सोचते थे। सस्कृत और अरबी साहित्य सपन्न भी था। प्राचीन हिन्दू दशन के खजाने मे ऐसी निधियां थी जिसे भुलाया नही जा सकता था। पर एक सीमा तक यह अवश्य था कि अंग्रेजी का अज्ञान भारतीयो को ब्रिटिशो के समक्ष झुकने को बाध्य करेगा।

दूसरी ओर अंग्रेजी समथको का तक भी कमजोर नहीं था। 1835 मे लार्ड मैकाले के सभापतित्व मे नियुक्त एक समिति की सस्तुतियां ता रक दी गईं पर मैकाले ने अलग स अंग्रेजी पढाई की महत्ता को स्पष्ट किया। उसने दृढता से यह तक किया कि 1813 के एक्ट के रचनाकारो ने अंग्रेजी शिक्षा के ही लिए धन का निधारण किया था। उसने बताया कि कोई इससे इनकार नही कर सकता कि "यूरोप की एक शेल्फ का अच्छा पुस्तकालय पूरे भारतीय साहित्य के समान था।" इसके अतिरिक्त "कानून और धम के भाषा के रूप म भी सस्कृत या अरबी को प्रोत्साहित नही किया जा सकता था।" पर दूसरो का यह कहना था कि अंग्रेजी शिक्षा भारतीयो को अंग्रेजी व्यवस्था स ही परिचित करायगी और सस्ते लिपिको को तैयार करेगी। अंग्रेजी सस्कृति के फलाव स देश म अंग्रेजी वस्तुओं की माग बढेगी जिससे अंग्रेजी उद्योग आगे बढेंगे। प्राच्यविदो का यह तक भी उन्ह नही ठीक

लगता था कि अंग्रेजी शिक्षा भारतीयो को अंग्रेजो का अनुगामी बना देगी। इस सबध मे मैकाले ने घोषणा की कि "क्या हम भारतीयो को अनुगामी न बनाये रखने के लिए उन्हे अशिक्षित ही बना रहने दें?" उसने कहा कि युरोपीय ज्ञान के आधार पर यदि भविष्य मे कभी युरोपीय सस्थाओ की माग की गई तो वह "अंग्रेजी इतिहास मे अति महत्त्व का दिन होगा।"

अंग्रेजी समाज मे पैदा होने और पाला-पोसा जाने वाला मैकाले प्राचीन भारत की विद्वता के विषय मे कितना ज्ञान रखता था, इसकी जानकारी हमे नही है। पर भारत के प्रति और उसके भूतकाल के प्रति उसकी समझ निश्चित रूप से अनादरपूर्ण थी। यदि ऐसी बात न होती तो वह ऐसा मत न व्यक्त करता कि भारत के पास अपना कुछ ऐसा नही है जिसपर वह घमड कर सके। यह भी स्पष्ट नही है कि उसने *1813 के चार्टर ऐक्ट की व्याख्या अपने ढग से किस आधार पर कर ली।* 'साहित्य का पुनरुत्थान और विकास' का अर्थ निश्चित ही दूसरा निकलता है जो मैकाले के अर्थ से भिन्न था।

जो भी हो इसमे सदेह नही कि आधुनिक पश्चिमी शिक्षा का अपना गुण है। लार्ड विलियम बैंटिक मैकाले और साथियो से प्रभावित हुए बिना न रहा और *अतत 7 मार्च 1835 को उसने कौंसिल मे यह प्रस्ताव पारित कराया,* "सरकार के पास जो भी धन है उससे उसे अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान की शिक्षा भारतीयो को देने पर व्यय किया जायगा।"

"प्राच्य शिक्षा के विद्यालयो को बद तो नही किया गया, पर ऐसे छात्रो की शिक्षा मे सहायता को रोक दिया गया" और "प्राच्य शिक्षा की पुस्तको के प्रकाशन पर धन व्यय करना भी रोक दिया गया।"

बाद मे जब कलकत्ता के मुसलमानो ने लार्ड विलियम बैंटिक को एक प्रार्थना-पत्र मे यह भय व्यक्त किया कि इस नवीन नीति से भारतीयो के ईसाई हो जाने का खतरा है, तो गवर्नर जनरल ने निश्चित रूप से यह घोषणा की कि "ईसाई धर्म की शिक्षा और शिक्षा-प्रणाली को मिलाया नही जायगा और छात्रो के धार्मिक *विश्वास से छेड़छाड़ नही की जायगी। पर विद्यार्थियो को ईसाई धर्म की शिक्षा* दी गई।

अंग्रेजी शिक्षा के गुण दोष पर विस्तार मे विचार की जानकारी सभी को है। इसके पक्ष मे यह कहा जा सकता है कि इसने अंग्रेजी ज्ञान की बाढ ला दी और पूरे देश मे इससे क्राति मच गई। एक नवीन प्रकार का साहित्य सामने आया जो अंग्रेजो के स्वतत्रता और *प्रजातात्रिक विचारो से प्रभावित हो भारत मे उसी तरह* के अधिकारो की माग करने लगा। एक भाषा और एक विचार ने भारतीयो को राजनैतिक एकता प्रदान की जो भारत के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण थी। पर दूसरी ओर पश्चिमी चमक दमक व आत्म प्रशसात्मक शिक्षा के कारण भारत ने प्राचीन दर्शन

की विशेषता खोनी प्रारभ कर दी जिसम कर्तव्य, सेवा और आभार की भावना प्रधान थी। भारत म अंग्रेजी शिक्षा के प्रभावस्वरूप भारतीय जीवन पद्धति और व्यवहार म परिवर्तन हो गया। भारत ने खाने, वस्त्र व आदतो म पश्चिम की नकल प्रारभ कर दी और इसके कारण इस देश म अंग्रेजी सामानो का प्रयोग बढ़ गया। भारत का आर्थिक शोषण और बढ़ गया।

सती— 'लार्ड विलियम बैंटिंक की सरकार क काल का स्मृति योग्य काय, जिसके लिए इतिहास म उसका नाम सदा स्मरण किया जायगा, वह था जीवित विधवाओ का जलाय जाने स रोकना।"[1]

सती शब्द की उत्पत्ति सभवत 'सत' शब्द से हुई है जिसका अर्थ होता है सत्य। सतीप्रथा की उत्पत्ति, जिसम विधवायें अपने पति की चिता पर जल मरती थी, की निश्चित जानकारी नही मिलती। महात्मा गाधी के व्यक्तिगत सचिव प्यारे लाल ने इसकी उत्पत्ति के विषय म कुछ सूचनायें प्रस्तुत की हैं। प्राचीन काल म आर्यों मे स्त्रियो का अपना पति चुनने की पर्याप्त स्वतत्रता थी और प्राय वह कम आयु म ही किसी के प्रेम म आबद्ध हो जाती थी जिसे बाद म पता चलता था कि यह वह पुरुष नही है जिसके साथ वह सारा जीवन बिता सकती। इसी कारण वह दूसरे पुरुष के प्रेमपाश म बध जाती और अपने पहले पति को विष दकर रास्ते स हटाने का प्रयास करती। जस जैस इस तरह की घटनायें बढती गई और विवाहित पुरुष युवावस्था म मरने लगे, बडे-बूढ़ो ने यह निश्चय किया कि अब आग किसी स्त्री का पति बच्चा पैदा होने से पूर्व ही मर गया तो उसकी पत्नी को अपने पति के साथ चिता पर जलना होगा। इस तरह सती प्रथा का प्रारभ हुआ। पर हम यह नही मालूम कि कसे समय बीतने के साथ यह पवित्र हो गया और इसे गुणी विधवा के पवित्रता का चिह्न मान लिया गया।

ब्रिटिश काल मे सती ऊची जाति मे प्रचलन मे था जसेकि युनानियो मे, जर्मनो म, स्लावो म और अन्य जातियो म था। इस अवसर पर काव्य-पाठ होता और धार्मिक काय किये जाते थे। यह अनिवार्य नही था और मध्य व पश्चिम एशिया की प्रथा से भिन्न था जहा पर पति के मरने के बाद उसकी विधवा व दासियो की मत्यु सस्कार स्थल पर ही विक्री होती थी। सती होने के समय विधवा अपना वस्त्र व आभूषण से शृगार करती थी और अपने को सजाती थी। उसके सभी गहने और मूल्यवान वस्त्र ब्राह्मण को प्राप्त होते थे। रणजीत सिंह के मत्यूपरान्त पजाब के वजीर जवाहिर सिंह के विधवाओ के सती होने की घटना की

---

1 बूल्जर पूर्वोद्धत पृ० 77।

2 कण पी० वा० हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र भाग 2 पार्ट 1 पृ० 625 कुलकर्णी वी०बी० पूर्वोद्धत पृ 127 28 द्वारा उद्धृत।

सूचना हमे प्राप्त होती है। इस अवसर पर वहा उपस्थित सिख रक्षको के विषय मे लतीफ ने लिखा है, "उन्होने विधवाओ को बिना प्रायश्चित के लूटा और चूंकि दुर्भाग्यशाली विधवायें चिता पर चढने वाली थी अत उनके नाक और कान के गहनो को, जो उन्होने अपने धर्म के अनुसार पहन रखा था, नोच लिया चिता पर जाते समय उनके छल्ला और कसीदे के सामान को छीन लिया।'[1]

जो भी हो, स्पष्ट है कि इस प्रथा को स्वार्थी तत्वो ने प्रारभ किया था जिनका उद्देश्य इस बुराई को समाप्त न करने देना था। अकबर ने इस क्षेत्र म सुधार की चेष्टा की थी पर असफल हो गया था। इसी तरह गोवा का अल्बुकर्क भी असफल हो गया। 1823 म कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने इसकी समाप्ति की ओर इगित किया, पर वे चाहते थे कि इस सुधार का विरोध न हो। एमहर्स्ट ने इस सबध म अपने अधिकारियो की मे राय मागी पर उनकी राय मे एकमतता न थी।

जब बैंटिक आया तो यह प्रथा जोरो पर थी। "सतियो की सख्या तेजी से बढी कभी-कभी पूर्वी प्रान्तो मे 1 वर्ष मे ही जीवित जल जाने वाली विधवाओ की सख्या 800 तक हो गई। जबकि 1828 से पहले दस वर्षों मे जान देने वाली विधवाओ की सख्या का औसत भी 600 से कम नही था।" विलियम बैंटिक इस अपराध को समाप्त करने का निश्चय कर चुका था। पर एक बुद्धिमान व्यक्ति की तरह उसने इसम सावधानी बरती क्योकि यह मामला धर्म से जुडा होने के कारण पेचीदा था। इस मसले को हाथ मे लेने से पूर्व वह इस बात के लिए आश्वस्त होना चाहता था कि लोग विशेषकर सेना की ओर से इसका कोई विरोध न हो। 49 महत्त्वपूर्ण अधिकारियो से उसने इस मसले पर उनका मत मागा जिनमे से पाच ने किसी हस्तक्षेप की राय नही दी, बारह ने इसे समाप्ति की राय दी पर सरकार की ओर से किसी कदम के उठाने के पक्ष मे ये नही थे, आठ ने यह कहा कि मजिस्ट्रेटो और अन्य अधिकारियो के अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप से इसे समाप्त किया जाय जबकि शेष ने इस अपराध की पूर्ण और तुरत रोकथाम की आवश्यकता बताई।

1828 मे इस मसले ने उस समय जोर पकडा जब निजामत अदालत के पाच न्यायाधीशो मे चार ने यह लिखित मत दिया कि इस अपराध को इस समय दबाया जा सकता है। राममोहन राय जैसे कुछ प्रबुद्ध भारतीयो ने इसका समर्थन किया। विलियम बैंटिक ने 8 नवम्बर 1829 के सती सबधी अपने एक प्रस्ताव मे घोषित किया, "मैं हृदय से हिन्दुओ के हित की कामना करता हूं। इनके भविष्य के उत्थान के लिए मुझे इससे अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ नही दिखाई देता कि उनका विश्वास

1 लतीफ मुहम्मद हिस्ट्री आफ पजाब पृ० 536 37।
2 बूल्जर पूर्वोद्धृत, पृ० 78।

चाहे जो कुछ हो उनमे शुद्ध नैतिकता का विकास होना चाहिए एव ईश्वर की ओर न्यायपूर्ण शक्ति की उपासना होनी चाहिए।"[1] दिसबर 1829 म कानून पारित किया गया जिसमे सती को 'निंदनीय जीवहत्या" करार दिया गया।

इसकी प्रतिक्रिया मे कुछ स्थानो पर, विशेषकर बगाल मे चलते हुए। न्यायालय मे भी इस ले जाया गया। लदन की प्रीवी कौसिल म भी इस भेजा गया तथा राजा के पास प्रेषण हेतु एक प्रार्थनापत्र तैयार किया गया। पर ये चीजे इसलिए कमजोर पड गई क्योकि द्वारकानाथ टैगोर और राममोहन राय ने सरकार की कारवाई के समथन म पत्र लिखे।

ठगी—ठगो के अखिल भारतीय सगठन थे जो 300 या उससे अधिक के समूह म घूमा करते थे और आपात काल म य और अधिक सख्या मे कही भी एकत्रित हो सकते थे। वे स्थानीय सरदारो, जमीदारो और अधिकारियो की गुप्त सहायता से सगठित अपराध करते थे। व यात्रियो के साथ मीलो यात्रा किया करते थे जब तक कि किसी स्थान पर उनका मतव्य पूरा न हो जाय। उनके अपराध का यह विशिष्ट तरीका था कि वे किसी को लूटन से पूव उसकी गला कसकर हत्या कर देते थे।

1799 म श्री रगपट्टम पर अधिकार करने के बाद ही अग्रेजो ने पहले यह अनुभव किया कि ठगो का अखिल भारतीय दल है। थानटन और कैप्टेन स्लीमैन, जिन्हे इस सबध मे खोज बीन के लिए नियुक्त किया गया था, ने यह बताया कि इनके प्रत्येक समूह म सभी का वर्गीकरण था और उनका नेतत्व सक्षम प्रशिक्षित व्यक्ति करता था। उदाहरण के लिए इस सगठन मे जमादार के पद की नियुक्ति के पूव उसम कुछ योग्यता होनी आवश्यक थी। जसे उसे घूमखोरी या आखो मे धूल फाकने मे माहिर होना चाहिए जिससे स्थानीय अधिकारियो को प्रभावित किया जा सके या उस ऐसे परिवार का होना चाहिए जिसके पूवज इस पेशे मे बहुत पहले से काय करते चले आ रहे हो या उस गला कसकर व्यक्तियो को मार डालने मे महारथ हासिल हो तथा उसमे स्वाभाविक नेता के गुण हो। यदि उसमे इनमे से कोई योग्यता न हो तो उसे जमादार नही नियुक्त किया जा सकता था। मात्र प्रमुख और अनुभवी सदस्य को सूबेदार नियुक्त किया जा सकता था।

यह भी पता चला कि उनम लूट का माल बाटने के लिए बडी अच्छी प्रथा थी। नेता के लिए विशेष भाग अलग से निश्चित रहता था दूसरा विशेष भाग स्थानीय नेता के लिए निर्धारित होता था यह दूसरा भाग उस स्थानीय अधिकारी को भी दिया जा सकता था जिसके सहयोग स लूट-पाट म सहायता प्राप्त होती थी। लूट का कुछ भाग धार्मिक समारोहो के लिए भी निर्धारित था जो अति

1 कूपर पूर्वोक्त पृ० 110।

आवश्यक माना जाता था। कैप्टेन स्लीमन बताता है कि ठगो का यह विश्वास था कि इस आपराध मे देवी काली का सहयोग था जो अपने भक्तो की सहायता करती थी। इस तरह यदि देवी प्रसन्न रहती और ठगो के नियमो का पालन होता रहता तो कोई कठिनाई नही आ सकती थी। इसके बाद लूट का माल सदस्यो मे बराबर-बराबर बाट दिया जाता था, पर व्यक्ति की जो हत्या करता था उसे एक भाग अधिक प्राप्त होता था।

इनके विषय मे कुछ जानकारी के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी की सरकार ने इन अपराध को दबाने का निश्चय किया। पर इस सम्बन्ध म कारवाई ढीली-ढाली और अन्यमनस्क रही। साथ ही कम्पनी अभी भारत मे सप्रभु शक्ति भी नही हो पायी थी जिससे दूर-दूर तक उसके अधिकार को मान्यता प्राप्त हो सके और अखिल भारतीय स्तर की समस्या का वह समाधान कर सके। इसलिए यह काय लगता है, कि विलियम बटिंक के लिए छोड दिया गया था जिसके समय म भारत म ब्रिटिश शक्ति के सगठित हो जाने के बाद कोई कारवाई की जा सके।

1829 म बैंटिंक ने नवदा क्षेत्र म अपने एजेण्टो को आदेश दिया कि व इस तरह के गलत तत्त्वो को अपने क्षेत्र म जहा] भी पाए गम्भीर कारवाई करे। कैप्टन स्लीमैन जिसे इस सम्बन्ध म अपार ज्ञान प्राप्त था, उनके सहायताथ भेजा गया। इसके अतिरिक्त पूरे देश मे सरकारी अधिकारियो के पास एक विशेष आदेश भेजा गया कि वे इस तरह के सभी मामलो की सूचना भेजे तथा वे क्या करते ह, यह भी बतायें। पूरी सरकारी मशीन को इस सम्बन्ध मे सावधान कर दिया गया।

चूकि पूरे देश म स्थिति गम्भीर हो गई थी इसलिए केन्द्र मे तमाम सूचनाए आने लगी। विभिन्न जिला मजिस्ट्रेटो द्वारा कई कठिनाइया सामने लायी गई। अन्य अधिकारियो ने भी सूचनाए भेजी। ये कठिनाइया उन्ह ठगी की समस्या के समाधान म भोगनी पडी। यह सूचित किया गया कि स्थानीय अधिकारियो और जमीदारो के अपराधियो के सहयोग के कारण समस्या समाधान मे कठिनाई हो रही है। बुदलखड के एक मामले म बताया गया कि स्थानीय अधिकारियो की निश्चित रूप से ठग व अपराधियो से मिलीभगत थी। इस तरह का सहयोग कभी-कभी पराकाष्ठा को पहुच जाता था। एक फूटे हुए ठग गवाह ने बताया कि वे ग्वालियर राज्य को कर देते थे।

अपराधियो की पहचान म यह कठिनाई भी थी कि वे अच्छे पेशो मे कायरत थे और अवसर-अवसर पर अपराध करते थे। जब भी वे अपराध करते थे तो वे अपने निवास के 30 मील के भीतर यह काय नही करते थे। कभी कभी तो वे कई दिनो तक लगातार 12 वष से नीची उम्र के बच्चो के साथ सदेह मुक्त होने के

लिए सैकडो मील की बैलो और खच्चरा सहित सौदागरो के रूप म यात्रा करते थे। यह अपराध निजन स्थानो पर किय जात थे। जैसा कि थानटन न लिखा है, 'बीहड जगलो के बीच से जाती हुई सुनसान सडके, कब्र खोदने के लिए मुलायम भूमि या मारे जाने वाला को छिपाने के लिए घने जगल या जहा स्थानीय अधिकारी मरे हुआ की लाशा की ओर ध्यान न दें आदि उनके प्रियस्थल थे।"

थानटन इस बात का भी रुचिकर विवरण देता है कि वे किस तरह लोगा को गला फसाकर मार डालते थे। "यात्रा के समय इनका समूह लूट जाने वाले व्यक्ति के गले मे एकाएक एक रस्सी या कपडा डाल देना और एक व्यक्ति इसका एक कोना पकड लेता तथा दूसरा कोना एक अन्य सह-अपराधी पकड लेता। मृत्यु का अस्त्र पीछे गदन मे गले मे घुसता जाना जिसे धीरे धीरे और कडा कर दिया जाता। दो ठग लूटन वाले व्यक्ति के माथे का रस्सी स दबाकर आगे खीचते तभी एक तीसरा अपराधी जो यात्री के पीछे तैयार खडा रहता उसका पैर पकड लता जिससे वह गिर पडता। इस स्थिति म यात्री के विरोध का प्रश्न ही नही था। इस बीच उसकी नाक पर इतना तीव्र प्रहार किया जाता कि वह बुरी तरह घायल हो जाता और कुछ ही क्षणो म मृत्यु को प्राप्त हो जाता।" चूकि लोगो की हत्या हो जाती थी इसलिए सूचना प्राप्त होन म और अपराधिया का पता लगान म कठिनाई होती थी।[1]

सबस बडी कठिनाई यह थी कि कम्पनी का कानून किसी व्यक्ति क विरुद्ध कारवाई करने म निश्चित प्रमाण चाहता था। केवल सदेह मात्र स कोई सहायता नही मिलती थी। और उपरोक्त परिस्थिति म अपराध का कोई प्रमाण नही मिलता था।

उपरोक्त कठिनाइया का दूर करने के लिए इसी कारण 1830 म एक कानून बनाया गया जिसके अतगत किसी व्यक्ति का किसी ठग मे सपक ही उसके कैद का कारण बन सकता था चाहे उसन कोई अपराध किया हो या न किया हो। इस कानून के बन जाने के बाद, इस मसले पर अधिक गम्भीरता से कदम उठाने का अवसर मिला और इसके कुछ वर्षो के अदर ही हजारा ठग पकड लिय गये और मौत की सजा के भागी हुए या कालापानी की सजा प्राप्त की अथवा उन्हे जबलपुर के सुधार-गृह मे भेज दिया गया। इस तरह इस अपराध की समाप्ति हुई जिसने अधिकारिया को परेशान कर रखा था।

बटिक के काल के कुछ अन्य सुधार सावजनिक निर्माण विभाग स सबधित थे। बम्बई से आगरा को मिलाने के लिए एक सडक का निमाण प्रारम्भ हुआ। उत्तरी पश्चिमी प्रान्ता म नहरा की खुदाई प्रारम्भ हुई और कलकत्ता व दिल्ली के

1 धू.वर पूर्वोद्धृत पृ० 122।

बीच ग्रण्ड ट्रक रोड की मरम्मत का काय प्रारम्भ हुआ।

हिन्दू धम छोडकर ईसाई धम स्वीकार करने वाला को अपनी पैतक सपत्ति प्राप्त करन का अधिकार प्रदान किया गया। इससे ईसाई धम स्वीकार करने वाला की सुविधाए बढ गयी।

भारतीय राज्यो से सबध

भारतीय राज्यो से उसके सम्बध, जिसके विषय मे सरसरी तौर पर बताया जा रहा है, इस तरह के थे जिससे कि उसकी उच्चकोटि की कूटनीतिज्ञता सामने आती है। उसे ज्ञात था कि अपनी कम्पनी का अधिक से-अधिक लाभ कैसे किया जाय। उसकी नीति को निहस्तक्षेप की नीति मानना उचित नही है। भले ही यह आक्रामक न रही हो। उसकी नीति ब्रिटिश हिता के पक्ष म आक्रामकता की सीमा तक नही जाती थी।

1829 म हैदराबाद के निजाम सिकन्दर शाह की मत्यु हो गई और नजीरुद्दौला उसका उत्तराधिकारी हुआ। नजीरुद्दौला ने बैंटिक की सरकार स उसके कुछ ब्रिटिश अधिकारियो को वापस बुलाने के लिए कहा जिनके ऊपर राज्य म कुछ कठिनाइया पैदा करने का सदेह था। बैंटिक ने इसे स्वीकार कर लिया।

जयपुर मे भी कठिनाइया थी। रानी और उसके प्रेमी को 1835 म मार डाला गया और ब्रिटिश रेजीडेण्ट की उसकी कुछ कारवाइयो के लिए आलोचना की गइ। पर गवनर जनरल ने इसमे हस्तक्षेप करना उचित नही समझा। इसी तरह की नीति भोपाल के सम्बध म भी अपनाइ गई। यहा पर सिकन्दर बेगम के राज्य पर नियत्रण करने के समय कुछ गम्भीर समस्याए आईं।

मैसूर और कुग के सम्बध मे प्रभावी हस्तक्षेप किया गया। मैसूर राज्य के प्रधान के विरुद्ध वहा की जनता ने इसलिए विद्रोह कर दिया क्योकि उसकी नीतिया अदूरदर्शी और कठिनाई उत्पन्न करने वाली थी। गवनर जनरल ने स्थिति का कुछ काल तक आकलन करने के बाद राज्य का प्रशासन अपने हाथ मे ले लिया जो बैंटिक के भारत से वापसी के बाद भी ब्रिटिश हाथा मे कुछ समय चलता रहा। कुग के शासक ने अपनी दबाने वाली और पागलपन की नीति के अतगत अपने परिवार के सभी पुरुष सदस्या को मार डाला। बैंटिक न उस राज्य पर से ब्रिटिश सरक्षण समाप्त कर दिया। पर इसपर भी जब उसे सफलता न मिली तो उसन इस राज्य को समाप्त करके इसे ब्रिटिश राज्य का एक भाग बना लिया।

26 अक्टूबर 1831 को वह रूपड मे रणजीत सिंह से मिला और अपनी नीति से उसन उसे जहा असावधानी की स्थिति मे कर दिया वहा दूसरी ओर उसने पोटिंजर को सिंध म सिख हितो को हानि पहुचाने के लिए भेज दिया तथा

लिए उत्तरदायी था। ऐसा इसलिए था कि प्रशासन विकसित हो रहा था, केन्द्र की आवश्यकता म वृद्धि हो रही थी, राज्यो और विदेशो से सम्बन्ध पर भी धन के व्यय की आवश्यकता थी। यह केन्द्र ही था जो गृह विभाग के अधिकारियो के प्रति आर्थिक मामला मे उत्तरदायी था। और ब्रिटिश पूजीपतियो का विश्वास, जिनसे देश की आवश्यकताओ मे धन लगाये जाने की आशा थी, भी बनाये रखना था। इन सभी ने आर्थिक केन्द्रीयकरण को आवश्यक बना दिया।

जहा तक प्रेसीडेन्सिया का सम्बन्ध था इस ऐक्ट के अन्तगत यह तय हुआ कि बम्बई और मद्रास के गवनर के कौसिल के सदस्यो की सख्या घटाकर दो कर दी जाए। केन्द्र के नियन्त्रण मे बम्बई और मद्रास के लिए अलग-अलग सेनापतियो के नेतृत्व म सेना रखने को कहा गया। कानून रचना के सम्बन्ध म प्रेसीडेन्सिया को केन्द्र के अधीन कर दिया गया। ऐसा ही आर्थिक मसला पर भी किया गया जिस सम्बन्ध मे साधारण व्यय के लिए भी केन्द्र से अनुमति के लिए कहा गया। एक्ट के माध्यम से यह भी निश्चित हुआ कि मद्रास, कलकत्ता एव बम्बई म भारतीय ईसाइयो के हित मे बिशपो की नियुक्ति की गई। यह भी तय हुआ कि बगाल की प्रेसीडेन्सी को दो भागा म बाट दिया जाय—एक बगाल प्रेसीडेन्सी और दूसरी आगरा प्रेसीडेन्सी। पर 1835 के ऐक्ट के द्वारा इस धारा को स्थगित कर दिया गया और उसके स्थान पर उत्तर पश्चिम प्रान्तो (अब उत्तर प्रदेश) के लिए लेफ्टीनेन्ट गवनर का पद बनाया गया। बगाल का गवनर जनरल ही भारत का गवनर जनरल माना गया।

सामान्य धाराओ म इस ऐक्ट की 87वी धारा महत्वपूण थी जिसमे यह बताया गया था कि 'भारत का कोई नागरिक या सम्राट की प्रजा कोई स्थान पाप्त करने या नौकरी पाने के लिए धम जन्म स्थान वश या रग के आधार पर नही रोका जाएगा।"यह धारा इसलिए महत्वपूण थी क्योकि इसने सभी भेद भाव समाप्त कर दिया। वैसे यह धारा तुरन्त तो नही लागू की गई, पर यह भविष्य म आन्दोलन का आधार बन गई। लोग तब तक सन्तुष्ट नही हुए जब तक कि उन्हें जिसके लिए आश्वस्त किया गया वह नही प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त इस ऐक्ट ने भारत सरकार से यह अपेक्षा भी की कि वह पूरे देश म दासता की परम्परा को समाप्त करेगी।

एक मूल्याकन—स्पष्टतया 1833 का चाटर एक्ट एक महत्वपूण कदम था। कम्पनी को भारत और चीन म व्यापारिक आधिपत्य से वचित कर दिया गया और इस तरह 1813 के ऐक्ट का काय पूरा हो गया क्योकि अब कम्पनी के काय की प्रकृति व्यापारिक न रहकर प्रशासनिक और राजनतिक हो गई। केवल व्यापारी भाव से प्रत्येक वस्तु म लाभ की कल्पना से अच्छा प्रशासन सम्भव नही था। इसके परिणामस्वरूप कोट ऑफ डाइरेक्टर्स की प्रकृति बदल गई। मार्शमैन

लिखता है, "राज्य के काय को आर्थिक दायित्वो से अलग कर दिया गया जिससे कोट ऑफ डाइरेक्टस के विचार और नीति को एक उच्चता प्राप्त हो गई तथा प्रशासन चुस्त और कायक्षम हो गया।"[1] बोड ऑफ कट्रोल का अध्यक्ष जो अब भारतीय कार्यों के लिए पूणरूपेण उत्तरदायी माना गया, एक महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी था। इसकी सहायता के लिए कामन्स मे एक सचिव भी रहता था। निश्चित रूप से राजनैतिक काय ने व्यापारिक काय को अपने घेरे मे ले लिया। युरोपीयो को भारत मे आने और बसने की जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई उससे उनका व्यक्तिवादी चरित्र व स्पष्ट मस्तिष्क भारतीय लोगो के परिवारो और दाशनिक चरित्र के सम्पक मे आया। पुरानी रूढिवादी प्रवृत्ति तिरोहित होने लगी और वैसे तो कुछ युरोपीय व्यवहार मूखता की सीमा तक दिखे, पर सम्पूण परिणाम लाभपूण ही था।

वैधानिक, आर्थिक और सामान्य प्रशासकीय केन्द्रीयकरण भी कम महत्त्व-पूण नही था। विस्तृत होता हुआ क्षेत्र और प्रशासकीय समस्यायें, जो धीरे धीरे बन्ती गईं, उन्हें एक स्वर के अन्तगत लाया जाना था। यह काय इस ऐक्ट ने किया। क्षेत्रा के सगठित होने की सम्भावनायें ततीय मराठा युद्ध के बाद पहली बार सम्भव दिखाई पडी। स्थानीय और विभाजित दृष्टि रखने वाली समस्याओ पर राष्ट्रीय लाभ और एकता की भावना हावी हो गई। और चूकि अब समस्याओ का स्वभाव स्थानीय से राष्ट्रीय हो गया, इसलिए सगठित राष्ट्रीय दष्टि रखकर उन्ह हल करने की आवश्यकता पडी जिसके कारण भारतीय राष्ट्रवाद का विकास हुआ और राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात हुआ।

कानून की एकरूपता भी कम ,महत्त्व की न थी। इसमे बताया गया कि "एक क्षेत्र मे रहने वाले सभी निवासियो के लिए जो कानून लागू हो सकते हो, तत्सबध म यहा के लोगो के अधिकार, विचार और आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर उन्ह बनाया जाए। और सभी कानून और प्रथायें जो वहा लागू हो उनका पता लगाकर उन्हे एकत्रित किया जाए और यदि आवश्यक हो तो उसमे सशोधन किया जाए।" इस काय के लिए एक आयोग बनाया गया और मैकाले को पूरे देश मे लागू करने के लिए कानून रचना का काय सौंपा गया। मैकाले ने इस काय का वहन उचित रीति से किया। लायल के अनुसार इण्डियन पेनल कोड "मैकाले के विधायी बौद्धिक क्षमता और कायकुशलता" का परिणाम है।[2] सिविल और फौज-दारी कानून भी इसी तरह रचे गये और इनकी महत्ता का भी मूल्याकन आवश्यक है। पूरे देश के लिए सभी के लिए एक तरह का कानून एक वरदान था जो

1 माशमन हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० 115।

2 लायल ए० द ब्रिटिश डामीनियन्स इन इडिया, प० 412।

एक शक्तिशाली तत्त्व के रूप में उभरकर सामने आया और राष्ट्रीय हित में सहयोग दिया।

दासता की समाप्ति की धारा भी आदरणीय थी। पर इस ऐक्ट की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी 87वीं धारा थी जिसमें नियुक्ति हेतु योग्यता को ही सबसे प्रधान स्थान दिया गया। रैम्जे म्योर ने लिखा है कि यह धारा "एक विवादहीन सिद्धान्त तथा उच्च आदर्श था जिसके अन्तर्गत यहाँ के बाशिन्दों को योरोपीय की तुलना में योग्यता के आधार पर आँका गया। क्या इतिहास में ऐसा प्रमाण मिलता है कि एक विजित जाति ने अपनी जीती हुई जनता की सुविधा हेतु ऐसी घोषणा की हो?"[1] यह ऐक्ट के बनाने वालों का दोष नहीं था कि इसे कार्य रूप में बदलने वालों ने देश में विधिवत् लागू नहीं किया। इस ऐक्ट ने एक निश्चित स्तर के आधार पर कार्य का प्रारम्भ किया जो यदि तुरन्त नहीं प्राप्त हो सका तो भी कम से कम इसकी याद दिलाता रहा कि इसे प्राप्त करना है। इस सम्बन्ध में प्राप्त पूर्ण सफलता तो पूर्ण स्वतन्त्रता के समान ही होती पर भविष्य में भारतीयों के आन्दोलन का यह एक अच्छा आधार बन गया कि अंग्रेज अपने ही दिये गये वादे को पूरा नहीं कर रहे हैं।

इस ऐक्ट में कुछ दोष थे, विशेषकर इसकी केन्द्रीयता में। विस्तार लिये हुए देश, उनकी विभिन्न बस्ती व जनसंख्या, उसकी भिन्न भिन्न स्थानीय भाषा तथा अलग-अलग आर्थिक ढाँचा निश्चित ही केन्द्र के लिए प्रशासकीय समस्याएं लेकर खड़ा था। विशेषकर आर्थिक क्षेत्र में इस ऐक्ट ने केन्द्र व प्रान्तों के बीच भेदभाव किया, केन्द्र ने प्रान्तों को छूट भी कम दी और वह भी समय से नहीं तथा प्रान्तों ने केन्द्र से बिना देर किये अधिक की माँग की। सुस्त और भले गवर्नर तो परेशान हुए पर हिसाबादियों ने आर्थिक क्षेत्र में केन्द्र से बहुत कुछ प्राप्त किया। यह आम आरोप था कि गवर्नर जनरल चूंकि बंगाल से विशेष रूप से सम्बद्ध है इसलिए वह उसकी तरफदारी करता है। ये आरोप पूर्णतया गलत भी नहीं थे। इस ऐक्ट ने प्रान्तों में अनुत्तरदायित्वता की भावना को भी जन्म दिया। यदि स्थानीय आवश्यकताओं के लिए अधिक माँग रखी जाती तो केन्द्र से अधिक अनुदान की प्राप्ति होती। पर इस तरह से प्राप्त होने वाला धन चूंकि आवश्यकता से अधिक होता इसलिए वह बर्बाद हो जाता।

पर देश की तात्कालिक आवश्यकता चूंकि केन्द्रीयकरण की थी इसलिए यह कहा जा सकता है कि इस आवश्यकता की पूर्ति इस ऐक्ट ने की। किसी भी दृष्टि से देखा जाए तो यह ऐक्ट 1909 तक ब्रिटिश संसद में पारित होने वाले ऐक्टों में प्रमुख था। 1813, 1853, 1858 आदि का कोई ऐक्ट महत्ता में

1 म्योर रम्जे पूर्वोद्धृत पृ० 234।

इसके समान नही था। 1813 के चार्टर ऐक्ट ने कम्पनी के व्यापारिक स्वभाव को अभी तक बनाये रखा था, 1853 के ऐक्ट ने प्रशासन के क्षेत्र मे कुछ साधारण परिवर्तन किया, जबकि 1858 के ऐक्ट ने वही प्रस्तुत कर दिया जो देश मे था। अन्य विधायी कारवाइयो का 1833 के ऐक्ट के समक्ष कोई स्थान ही नही था। यह निश्चित रूप से एक महत्त्वपूर्ण घटना थी और इग्लैण्ड की ससद का यह एक प्रमुख सफलतापूर्ण सुधार था।

राजा राममोहन राय और उनका ब्रह्मसमाज

बैंटिक के काल का कोई भी विवरण तब तक नही पूरा हो सकता जब तक कि ब्रह्मसमाज और उसके नेता राजा राममोहन राय की चर्चा न कर ली जाय। रोमा रोला के मतानुसार वे "एक महान व्यक्तित्व के धनी थे। यह हमारे लिए शर्म की बात है कि न तो युरोप और न ही एशिया के किसी स्मारक भवन पर उनका नाम सुरक्षित है। पर उन्होने भारत की भूमि पर अपने सुधारो का हल चलाया और 60 वर्ष के परिश्रम के बाद उसमे परिवर्तन-सा उपस्थित किया। और बगाल की भूमि से कर्म और व्यक्तियो की फसल भी पैदा हो गई। उनकी ही प्रेरणा से टैगोरो का आगमन हुआ।"[1]

राजा राममोहन राय "जिनके बनाये जीवन्त पुल पर भारत ने अनजाने भूत को त्याग अगणित भविष्य की ओर पग रखा, जिनकी निर्मित मेहराब के बीच पुरातन जाति और आधुनिक मानवता की खाली जगह उन्होंने भरी, जिन्होंने अन्धविश्वास व विज्ञान, निरकुशता और प्रजातन्त्र, स्थिर परम्परा और अनुदार प्रगति, भ्रमित करने वाले बहुदेववाद और विशुद्ध ईश्वरवाद के बीच की खाई पाटी" उनका जन्म 1774 मे बगाल मे एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ। उनका परिवार रूढ़िवादी तो था पर साथ ही सम्पन्न भी था। इसीलिए राजाजी का प्रारम्भिक जीवन सम्पन्नता मे गुजरा। बचपन से ही उनकी धार्मिक पुस्तको के अध्ययन मे रुचि थी। पर उन्होने रूढ़िवादी अध्ययन का रास्ता नही अपनाया क्योकि 15 वर्ष पूर्व ही उन्होंने बगाली मे एक पर्चा लिखा जिसमे यह घोषित किया कि वैदिक दर्शन मे मूर्ति-पूजा का कोई स्थान नही है। अत्यधिक रूढ़िवादी समाज मे इस तरह के उद्देश्यो तथा उदारवादी विचारो का भला स्वागत कहा हो सकता था। इसी कारण यह आश्चर्यजनक नही कि उनके परिवार ने उन्हे घर से निकाल दिया।

पर यह लगता है कि राजा उस 15 वर्ष की कम आयु मे भी एक साहसी बालक हो चुके थे। इस तरह से घर से निकाले जाने के बावजूद वे कायरता

---

1 रोला, रोमा — लाइफ आफ रामकृष्ण पृ० 108।

दिखाए, इसके स्थान पर इस काल को उन्होंने अपने बुद्धि का प्रशिक्षण-काल बना लिया। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ज्ञान की तलाश में घूमते रहे, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, लैटिन ग्रीक, हीब्रू, संस्कृत, फारसी और अरबी भाषा सीखकर इस क्षेत्र के खजाने को लूटते रहे और शीघ्र ही इस अध्ययन से उन्होंने विश्वधर्म की एक उदबुद्ध विचारधारा का विकास किया।

लगभग दो वर्षों तक उन्होंने कम्पनी की सेवा में बिताया पर बाद में कलकत्ता में ही रहकर उदारतापूर्ण कार्य करने में सारा समय दिया। उन्होंने दिल्ली के मुगल बादशाह का समर्थन करते हुए ब्रिटिशों से कहा कि वे उसे अपने पद और विशेषाधिकार का प्रयोग करते रहने दें। इसी कारण सम्राट ने उन्हें राजा की उपाधि प्रदान की। 1831 में राजा ने इंग्लैण्ड की यात्रा सम्राट के पक्ष-समर्थन के लिए की। इंग्लैण्ड में ब्रिस्टल में उनकी 27 सितम्बर, 1833 को मृत्यु हुई।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि वे राजा राममोहन राय ही थे जिन्होंने "भारत में आधुनिक युग का प्रारम्भ किया।" राजनैतिक क्षेत्र में, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में, राजा वे प्रथम भारतीय थे जिन्होंने देश के उत्थान के लिए संघर्ष किया। राजनैतिक दृष्टि से उनका विश्वास था कि भारत में ब्रिटिश दैवी कृपा से आ गये थे। भारत में उन्हें एक विशेष उद्देश्य प्राप्ति के लिए भेजा गया था इसलिए उन्हें वहां तब तक रहना था जब तक वह उद्देश्य पूरा न हो जाए। वे इस पक्ष में थे कि भारतीयों को राजनैतिक अधिकार प्राप्त हों पर साथ ही उनका यह भी कहना था कि उन्हें वही अधिकार प्राप्त होना चाहिए जिसके योग्य वे हों। दूसरे शब्दों में वे भारत में सुधारों के पक्षधर थे। पर उनका यह भी कहना था कि देश में इसके लिए आवश्यक राजनैतिक स्थिति पैदा की जानी चाहिए। इसी कारण उन्होंने देश में अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन किया। उनका विचार था कि इससे भारत में अंग्रेजों के उदार और प्रजातांत्रिक विचारों का प्रसार होगा। 1819 में उन्होंने भारतीयों को आधुनिक आधारों पर शिक्षा देने हेतु एक हिन्दू कॉलेज की स्थापना में सहयोग किया। उन्होंने अलेक्जाण्डर डफ और जान विलसन को अंग्रेजी विद्यालय खोलने के लिए भी सहयोग दिया।

राजा ने भाषण और भाव की स्वतन्त्रता की लिए भी संघर्ष किया। उन्होंने 1821 में प्रथम वर्नाक्युलर अखबार 'संवाद कौमुदी' प्रारम्भ किया और देश में इस तरह पहला प्रेस स्थापित किया। उन्होंने 1823 के प्रेस रेग्युलेशन की आलोचना की और इसके विरुद्ध कठोर संघर्ष किया। इसके विरुद्ध उन्होंने उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक प्रार्थना पत्र भी दिया। सम्भवतः उनके राजनैतिक विचार प्रसिद्ध अंग्रेजी दार्शनिक बेकन और बेंथम से प्रभावित थे। वे देश के तत्कालीन प्रशासकीय व्यवस्था में सुधार के लिए आतुर थे। वे पहले भारतीय थे जिनसे भारत के संबंध में ब्रिटिश संसद ने परामर्श किया। उन्होंने ब्रिटिश

हाउस ऑफ कामन्स की एक सेलेक्ट कमिटी के समक्ष गवाही भी दी।[1]

राजा हिन्दू समाज मे सुधार करने के विशेष पक्षधर थे। उन्होंने एक बार घोषणा की, "जातिगत भेदभाव और वह भी उनमे भाग व उपभाग के कारण, उनकी राजनैतिक धारणा का लोप हो गया था। असख्य धार्मिक सस्कार और काय तथा लोगो को पवित्र बनाने की बनावटी कारवाई ने उन्ह कठिन काय हाथ म लेने से विरत कर दिया था।" इसी कारण उन्होने जाति के भेदभाव को मिटाने का समथन किया और उत्साहपूवक लाड विलियम बटिक के सती प्रथा समाप्त करने की कारवाई का समथन किया। कट्टर हिन्दुओ द्वारा उनके ऊपर आक्रमण किया गया पर वे अपने विश्वास पर अडिग बने रहे। यहा तक कि कुछ कट्टर हिन्दुओ ने जब प्रीवी कौसिल के समक्ष सती प्रथा के समाप्त करने के विरुद्ध प्राथना पत्र दिया तो उन्होने स्वय सती-प्रथा के समाप्ति के पक्ष मे मत दिया। उन्होंने नारी स्वतन्त्रता का समथन किया, विधवा प्रथा का विरोध किया और बहुविवाह को भी अमान्य किया। वे कम आयु मे विवाह के पक्ष मे भी नही थे।

पर उनका सबसे बडा काय धार्मिक क्षेत्र मे था। उन्होने ईसाई, इस्लाम और हिन्दू धम के महान पुस्तको का अध्ययन किया। उन्होने प्रत्येक धम मे एक तरह के सिद्धान्तो को पाया और उनमे समन्वय लाने की चेष्टा की। उन्होने आधारभूत सत्य म विश्वास किया। इसी कारण वे ईसाइयो के बीच म ईसाई और मुसलमानो के बीच म मुसलमान थे। पर वे हिन्दुओ म एक वेदान्ती के रूप मे प्रसिद्धि पा चुके थे। वे ऐसे व्यक्ति थे जिन्होने आगे बढते हुए भारत की नीति का समथन किया और "ईस्ट इडिया कपनी द्वारा उत्पन्न की गई बगाल म बेहोशी की स्थिति"[2] से उबारा।

अपने विश्वास और आदश के प्रचार प्रसार के लिए राजा ने 1828 म ब्रह्म-समाज की स्थापना की। समाज के सम्बन्ध मे के० टी० पाल ने लिखा है "भारत तब तक भारत नही होगा जब तक कि उसका राष्ट्रीय आन्दोलन धम के धरातल पर प्रारम्भ न हो। ब्रह्मसमाज का जन्म ब्रिटिश म सम्बन्ध का परिणाम था।" और पुन राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज "पश्चिम के विचार व परम्पराओ स प्रभावित भारतीय धार्मिक जीवन व दशन के प्रस्फुटीकरण का एक प्रयास था।" यह "पश्चिम की विचारधारा क प्रभाव के उत्तर का प्रथम सोपान था।"[4]

---

1 देखे पजाब सेन्सस रिपोट 1881 पृ० 533 34।
2 वही पवत टा० वी० मेकस आफ माडन इडिया, दिल्ली 1964 [illegible] का दर्ये।
3 बनेर्जी एन० इडिया ए नेशन पृ० 72 73।
4 पाल के० टी० द ब्रिटिश कनेक्शन विद इडिया 1927, पृ० 39।

20 अगस्त, 1828 को राजा ने ब्रह्मसभा की स्थापना की थी जिसे बाद में ब्रह्मसमाज के नाम से जाना गया। 23 जनवरी 1830 को इस आन्दोलन के प्रथम मन्दिर की स्थापना हुई जिसमें सभी को पूजा का अवसर दिया गया। केशव चन्द्र सेन (1834 84) ने इस आन्दोलन को देश के और क्षेत्रों में फैलाया। उन्होंने '1864 में मद्रास में वेद समाज की स्थापना की और 1867 में बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना की।" एम० जी० रानाडे और सर आर० जी० भंडारकर जिन्होंने बम्बई प्रेसीडेंसी में सामाजिक और शैक्षिक सुधारों के क्षेत्र में बहुत कुछ किया वे भी प्रार्थना समाज के सदस्य थे।[1]

इसके पूर्व कि हम समाप्त करें बेंटिक के व्यक्तित्व और सफलताओं के विषय में दो शब्द आवश्यक है। बेंटिक की सफलताओं के विषय में अलग-अलग तरह के मत व्यक्त किए गए हैं। पी० ई० राबर्टस ने लिखा है कि बैंटिक "की तुलना उसके उत्तराधिकारी अति उदार गवर्नर जनरल रिपन से की जा सकती है।" पर उसके "चरित्र में कुछ सीमा तक वह माधुर्य और सौन्दर्य नहीं दिखाई पड़ता।'

एच० पी० प्रिंसेप ने, जो बेंटिक के निकट सम्पर्क में था, लिखा है, "वह परिवर्तन के लिए अति प्रेम दिखाता था एवं संस्थाओं तथा परम्पराओं में जो चलती रहती होती थी उनमें हस्तक्षेप अवश्य करता था। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि उसके कुछ परिवर्तन लाभकारी थे। पर वह चूंकि प्रायः परिवर्तन के लिए मामलों में फंस जाता था इसलिए उसमें सुधार भी कर लेता था। पर वह सरकारी मशीन को सही स्थिति में लाने के लिए बहुत सारा कार्य अपने उत्तराधिकारियों के लिए भी छोड़ देता था।'[3]

जहां तक प्रथम तर्क की बात है हम कह सकते हैं कि पी० ई० राबर्टस ने विलियम बैंटिक के चरित्र का सम्भवतया अधिक निकट से अध्ययन किया था जिसके कारण उसने यह लिखा कि उसके चरित्र में "माधुर्य और सौम्य का अभाव था।" पर बैंटिक के उपरोक्त अध्ययन के बाद, एच० पी० प्रिंसेप के तर्क को तब तक समझना कठिन है जब तक हम यह न जान लें कि प्रिंसेप बेंटिक का समकालीन था और उसके काल में प्रत्येक व्यक्ति बैंटिक की तरह उदारवादी और दूरदर्शी नहीं था। हो सकता है उसने कुछ भूलें की हों क्योंकि मानव से वे सम्भव ही हैं। पर उस आधार पर हम उसके पूरे जीवन की भर्त्सना नहीं कर सकते। बल्कि इसके विपरीत हम कह सकते हैं कि मद्रास के गवर्नर की हैसियत से हो सकता है उसने

---

1 देखें रघुवंशी वी० पी० एस इण्डियन नेशनल मूवमेंट एण्ड थाट पृ 27 31 शास्त्री शिवनाथ हिस्ट्री आफ ब्रह्मसमाज।

2. राबर्टस पूर्वोद्धृत पृ० 300-01।

3 प्रिंसेप ओरीजिन ऑफ द सिख पावर इन पंजाब (1834) पृ० 224।

कुछ गलतिया की हो[1] जिसके कारण कुछ समकालीन लोगो का मस्तिष्क भ्रमित हो गया हो। पर भारतीय गवनर जनरल के रूप मे व प्रशासक के रूप मे वह प्रशसा का पात्र है क्योकि वह जिस पर भी हाथ रखता था उसे सफलता के सोपान तक पहुचा देता था जिसकी सफलता से सर्वोच्च मस्तिष्क वालो को भी ईर्ष्या हो जाती थी।

बैंटिक की आर्थिक बचत की योजना और सुधार, उसकी सरकारी नौकरिया मे भारतीयो की भर्ती की योजना जिससे दो लाभ हुए—एक धन की बचत तथा दूसरे भारतीयो की एक माग की पूर्ति हुई, उसके यायिक सुधार जिसके फलस्वरूप कि यह प्रभावी ही नही हुआ बल्कि जन माधारण को भी यह सुलभ हो सका, भारत मे उसके नवयुग का सूत्रपात करने वाले शैक्षणिक सुधार, प्राचीन भारत के चेहरे पर कालिख पोतने वाले ठगी तथा अ य सामाजिक बुराइयो का दूर करने का उसका प्रयास—यह ऐसी कुछ बातें है जिसके लिए भारत को उसका ऋणी होना पडेगा। भारत मे हम, हो सकता है उसकी शिक्षा नीति के लिए उसकी आलाचना करे, पर उसके आ तरिक शासन मे अ य सब कुछ, यदि हम आधुनिक सफलताओ को अपना मापदड न बना लें, प्रशसनीय है।

विलियम बैंटिक ने भारत 1835 मे छोडा और उसका जीवन गाथाकार डेमेट्रियस सी० बूल्जर लिखता है कि, "20 माच को उसकी वापसी, जबकि भारत मे सुधार के सब काय वह पूरा कर चुका था, और अब अगली पीढी तक इस सम्ब ध मे कोई काय नही होना था, मद्रास की उस स्थिति से बिल्कुल भि न था जबकि 1806 मे उसे एकाएक वहा से हटा दिया गया था। सेवाओ म उसके हस्तक्षेप से जिन सुधारो ने कुछ को कष्ट पहुचाया था वे भी अपने का यह कहने से नही रोक पाये कि उसने भारत म अच्छा काय किया है तथा हमारी सरकार के भारतीय प्रशासन के इतिहास म उसने एक युग स्थापित किया है।"[2]

इग्लैण्ड पहुचने पर उसे 'पीरेज' प्रदान किया गया उसने जिसे लेने से इनकार कर दिया। ग्लासगो से वह उदारवादी के रूप मे एम० पी० चुना गया। पर उसका स्वास्थ्य ठीक नही था और 17 जून, 1839 मे पेरिस मे उसकी मत्यु हो गई। उसका कोई उत्तराधिकारी पुत्र नही था।

हम विस्काउण्ट मेरेसी के शब्दो मे निष्कष रूप मे यह कह सकते हैं, "बैंटिक एक शानदार व्यक्तिगत जीवन वाला पुरुष था जिसने बिना किसी पारितोषिक की आशा के देश की सेवा की। अच्छे परिवार का होने के बावजूद उसके पास कोई

1 ये गलतियां तकनीकी थीं जिसे उसके सहायका ने किया था और उसे उत्तरदायी बनाया गया था।

2. बूल्जर पूर्वोद्धत, पृ० 202-03।

विशेष बौद्धिक योग्यता नहीं थी। पर लम्बे अनुभव ने सरकार चलाने के विषय में उसे पर्याप्त जानकारी प्रदान कर रखी थी जिसे उसने उदार मस्तिष्क से प्रयुक्त किया। विचारों व सरक्षण म शुद्ध भाव रखने वाला शानदार ढग से सहायक बैंटिक के विषय म कहा जाता है कि उसने कोई भी कदम अपनी पत्नी से राय लिये बिना नहीं उठाया। कलकत्ता के गवनमेंट हाउस म लटकने वाला गवनर जनरल का चित्र उसकी पत्नी ने ही बनाया।"[1]

---

1 मरसी विस्काउण्ट पूर्वोद्धत पृ० 54।

4
आकलैण्ड (1836-1842)

आकलैण्ड का लाड और अल जिनके वचपन का नाम जाज एडेन था, वह 25 अगस्त, 1784 को बेकेनहेम मे पैदा हुआ। उसका पिता आकलैण्ड का प्रथम लाड विलियम एडेन था और उसकी मा एलिनार सरगिलवट इलियट की पुत्री थी। भारत का गवनर जनरल लाड मिण्टो जाज का मामा था और उसकी सबसे वडी वहन छोट पिट की पत्नी थी। जाज को ईटन मे शिक्षा प्राप्त हुई और उसके बाद क्राइस्ट चच मे। मात्र 25 वप की आयु मे वह वुड स्टाक से एम० पी० हो गया। यह जगह उसके बडे भाई की मृत्यु से खाली हुई थी। 1810 मे अपने पिता की मृत्यु के बाद वह लाड्स का सदस्य हो गया। 1830 मे ग्रे के मन्त्रिमडल काल मे वह वोड आफ ट्रेड का प्रेसीडेन्ट बना दिया गया, 1834 मे लाड मेलबोन के नेतत्व मे उसे ऐडमिरैल्टी का प्रथम लाड वना दिया गया और 1835 मे उसे भारत का गवनर जनरल नियुक्त कर दिया गया।

लाड विलियम बैंटिक का उत्तराधिकार कम्पनी के एक अति योग्य कमचारी सर चाल्स मेटकाफ को सौंपा गया। उसका सबसे महत्त्वपूण काय भारतीय प्रेस के ऊपर से प्रतिबन्ध का हटाना था जिसके कारण वह स्थायी नही हो सका। उसे वापस बुला लिया गया और आकलैण्ड ने उसका स्थान ग्रहण किया।

"शात, मितभाषी, शर्मीला, अच्छे स्वभाव व व्यक्तित्व से पूण, बनावटीपन का विरोधी और नियमित कार्यालयीय कामो मे रुचि लेने वाला लाड आकलण्ड स्वभाव और अनुभव से शात काल के सभी कत्तव्यो के योग्य था।"[1] साथ ही वह युद्ध और विजया के लिए अत्यन्त अकुशल था। उसने भारत के गवनर जनरल का पद 1836 मे सम्भाला।

---

1 ट्राटर कप्टेन द अल आफ आकलण्ड, 1893।

आन्तरिक सुधार

काला कानून—उसके शासनकाल के कार्यों में से प्रमुख उसकी कौंसिल के कानून मन्त्री मैकाले द्वारा बनाया गया वह कानून था जिसे भारत की युरोपीय जाति ने काले कानून का नाम दिया। इस कानून के पूर्व एक युरोपीय को अपना दीवानी मुकदमा मुफस्सिल या देशी न्यायालय में ले जाना होता था जिसकी अपील सदर अदालत या कम्पनी के ऊंचे न्यायालय में करने की जगह पर उसे सम्राट के सुप्रीम कोर्ट में करने का अधिकार प्राप्त था। यह एक विचित्रता ही थी कि सदर अदालत जिसके न्यायाधीश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चुने हुए सदस्य थे वे लाखों भारतीयों के लिए न्याय तो कर सकते थे पर थोड़े से बसे हुए युरोपीयों के लिए नहीं। न्यायाधीश अत्यधिक योग्य, ईमानदार और कार्यक्षम थे और यदि ऐसा था तो इसका कोई आधार नहीं था कि क्यों युरोपीय जातियों का मुकदमा वहां न निर्णीत हो।

ऐसी ही स्थिति को ठीक करने के लिए मैकाले ने उपरोक्त कारवाई की। भारत में युरोपीय जाति के लोग उच्चता के विशिष्टभाव से ग्रस्त थे। उन्हें यह भला नहीं लगा। ऐसी आशा भी थी। उन्होंने इसके विरुद्ध आवाज उठाई और मैकाले को गालियां देनी प्रारम्भ की। उसे धूर्त, धोखेबाज झूठा और झांसा देने वाला कहा गया। पर मैकाले साहस और दृढ़ता से अपने रास्ते पर चलता रहा। युरोपीय लोगों ने अपना आन्दोलन स्थल कलकत्ता से इंगलैण्ड के हाउस आफ कामन्स में कर दिया जहां पर 1838 में एक जांच समिति की रचना इसके निमित्त हो गई। पर चूंकि मलबोर्न मन्त्रिमंडल ने मैकाले की नीति का समर्थन किया था इसलिए विरोधी कुछ नहीं कर सके।

शिक्षा—आकलैण्ट के नेतृत्व में 'कमिटी आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन्स' के अध्यक्ष की हैसियत से मैकाले ने शिक्षा के क्षेत्र में उत्तम कार्य किया। इस क्षेत्र में आकलैण्ड का एक प्रमुख कार्य यह था कि उसने कुछ सरकारी विद्यालयों में कुछ वजीफा की व्यवस्था कराई जिससे पढ़ने वाले भारतीयों को सुविधा हुई।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य यह था कि जनता की शिक्षा के लिए वर्नाक्युलर को शिक्षा का माध्यम बनाया गया। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स बार बार इसके पक्ष में अपना अभिमत व्यक्त कर रहे थे। मकाले समिति ने इसकी आवश्यकता का अनुभव करते हुए गवर्नर जनरल को एक घोषणा-पत्र भेजा और पूछा कि इससे इस क्षेत्र में कैसे सफलता मिल सकती है। आकलैण्ड ने प्राइमरी विद्यालयों के लिए वर्नाक्युलर को स्वीकार कर लिया और इस नीति को कार्य रूप में बदलने के लिए उस सीमा तक आदेश दे दिया जिस सीमा तक धन की कठिनाई न हो।

बेंटिंक ने कलकत्ता में एक मेडिकल कालेज की स्थापना की। देश में औषधि-

विज्ञान की शिक्षा का प्रचार हो इसके लिए आक्लड ने मद्रास और बम्बई मे भी ऐसे ही विद्यालय खोले। इस तरह जहा तक परिस्थितियो न सहायता की, शिक्षा के प्रसार के लिए आधारशिला रख दी गई।

इसके पूव ही वर्णित लाडं बैंटिक की 7 माच के प्रस्ताव के फलस्वरूप कुछ भारतीय विद्यालयो को अनुदान देना रोक दिया गया क्योकि वे केवल पूव की महत्त्वपूण भाषाओ की ही शिक्षा दे रहे थे। इसके कारण इन विद्यालयो म पढ रहे विद्यार्थियो को गम्भीर कठिनाइया हुई। भारत की कुछ ईसाई मिशनरियो के विरोध के बावजूद 1839 मे लाड आक्लैण्ड ने यह घोषणा की कि सरकारी वजीफे अब इन विद्यालयो के छात्रो को भी प्रदान किये जायेंगे।

एक भयानक दुर्भिक्ष—1837-38 के जाडे मे दिल्ली से इलाहाबाद के दोआब क्षेत्र मे एक ऐसा भयानक दुर्भिक्ष पडा कि सारी भूमि भूरी, रेतीली और बेकार हो गई। लोगो का भूख पर इतना तक नियन्त्रण न रहा कि वे कूडे, कचरे यहा तक कि सेना के घोडो की लीदो के दानो तक से पेट भरने के लिए आतुर रहने लगे। दुर्भिक्ष की भयानकता का अन्दाज इसी से लगता है कि 8 लाख लोग भूख या बीमारी से मर गये।

आक्लैण्ड की सरकार ने सस्थाओ द्वारा दान देने की प्रथा को प्रोत्साहित किया और सरकार के व्यय पर ही लोगो के लिए सहायता की व्यवस्था की। आकलैण्ड न इस मद मे अपने पास से भी धन दान मे दिया और उसकी नकल इस मामले म और लोगो ने भी किया।

दुर्भिक्ष की रोकथाम के लिए बगाल के इजीनियरिंग विभाग के कनल जान कौल्वन ने आक्लैण्ड के समक्ष एक महत्त्वाकाक्षी सिंचाई की योजना प्रस्तुत की। मेजर काउटले (बाद मे सर प्रोबी काउटले के नाम से प्रसिद्ध) को भूमि की पैमाइश के लिए नियुक्त किया गया जिसके फलस्वरूप 1840 की रिपोट प्रस्तुत हुई। कोट ऑफ डाइरेक्टस ने योजना को स्वीकार कर लिया और इसके तुरन्त बाद ईस्ट इडिया कम्पनी ने तीन अच्छे अधिकारिया—ऐबट, बेकर और काउटले की एक समिति बनाई जिन्हे यह सस्तुति देना था कि इस योजना को किस तरीके से आगे ले जाया जाय। प्रथम अफगान युद्ध ने याजना को खटाई मे डाल दिया जिसके कारण इसका शेष भाग लाड हार्डिंग के काल मे पूरा हुआ।

धार्मिक—आक्लैण्ड के समय के पूव कुछ भारतीय मन्दिरो और धर्मादाओ का प्रबन्ध अग्रेज अधिकारी करते थे। भारतीय त्योहारा पर ब्रिटिश फौज-परेड करती व आदर व्यक्त करती तथा हिन्दू देवी-देवताओ के समक्ष ईस्ट इडिया कपनी की ओर से चढावा चढता। दुर्गा और जगन्नाथ को विशेष आदर प्रदान किया जाता। पर अब समय बदल चुका था। हिन्दुओ को फुसलाने की आवश्यकता अब नही रही थी क्योकि यह विभिन्न जातियो और धर्मों का देश था जिससे धर्मनिरपेक्ष

नीति की आवश्यकता थी। लार्ड आकलैण्ड ने परिस्थिति का अनुभव किया और अप्रैल 1840 में ये आदेश प्रसारित किये गये कि मन्दिरों की आय पुजारियों को एक प्रबन्ध समिति को सौंपी जायगी या किसी और उचित संगठन को प्रदान की जाएगी। यह भी कहा गया कि किसी भारतीय त्योहार के अवसर पर कम्पनी की सेना उपस्थित नहीं रहेगी और न ही हिन्दू देवताओं को भेंट प्रदान की जायेगी। इस तरह अपने धर्म के मामलों में लोगों को स्वतन्त्र कर दिया गया।

लार्ड आकलैण्ड ने तीर्थ-यात्रा-कर भी समाप्त कर दिया जिसके कारण कम्पनी के राजस्व में तीस हजार पौण्ड वार्षिक की हानि हुई।

मानव बलि—लार्ड आकलैण्ड के समय में भारत के विभिन्न भागों में फैली हुई मानव बलि की प्रथा के विरुद्ध भी कार्यवाई की गई। हिमालय के आस-पास के क्षेत्रों में यह प्रथा प्रचार में थी। नीलगिरि के टोडा और बजारों में, जो पूरे देश में पशुओं के समूह लेकर घूमा करते थे और अन्य कबीले, इस भयानक प्रथा को टिड्डी दलों से बचने, सूखे से मुक्ति और अन्य प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए, प्रचलन में रखे हुए थे। कुछ बड़े जमींदारों और सामन्तों ने भी इस प्रथा को प्रकृति की बुराइयों से बचने के लिए पाल रखा था। उदाहरणार्थ 1830 में कन्नार के शासक ने देवताओं को प्रसन्न कर अपने हित साधन के लिए 25 लोगों की मानव-बलि दिलवाई। पूना में प्रति वर्ष एक व्यक्ति बलि चढ़ा दिया जाता एवं सतारा के राजा के यहां भी यह प्रथा थी कि वह जब भी प्रतापगढ़ जाता तो वह एक बुढ़िया की बलि देता।

यह प्रथा अलग अलग लोगों में अलग-अलग तरह की थी। खान्द लोगों में, जो उड़ीसा, मद्रास व बंगाल क्षेत्रों में फैले हुए थे, इस सम्बन्ध में रुचिकर प्रथा थी। इन लोगों का मुख्य पेशा शिकार था, बस ये थोड़ी-बहुत खेती-बाड़ी भी करते थे। बलि दिये जाने वाले उठा लाये गये होते थे, या कुछ मां-बापों के द्वारा अपने शेष बच्चों के भरण-पोषण के लिए बेच दिये गए होते थे। इन्हें मेडिया कहा जाता था। इन्हें गांव वाले खिला खिलाकर वर्षों खूब मोटा करते थे। जब आवश्यकता होती थी तो इनकी बलि दी जाती थी। ये बलि इसलिए देते थे जिससे तितर-बितर हुए बादल वापस आ जाएं और पानी बरसाएं।

फिलिफ उड्रफ लिखता है कि "यह संस्कार दो या तीन दिनों तक चलता था। शिकार को उदारता से मदिरा पिलाकर एक खम्भे से बांध दिया जाता था। नाच होती थी और उसका माथा धोया जाता था और आश्चर्यचकित करने वाली प्रार्थनाएं होती थीं। अलग अलग कबीलों में अलग-अलग तरह से लोग मारे जाते थे। एक परम्परा के अनुसार शिकार चाहे पुरुष, स्त्री, लड़का या लड़की कोई भी हो उसका बाल खम्भे से बांध दिया जाता और उसे एक कब्र के ऊपर सपाट टांग दिया जाता था दूसरी परम्परा के अनुसार उसको लकड़ी के गट्ठर से

बाध दिया जाता था जो लोहे की एक नुकीली कीली पर घूमा करता था और गाव वाले उसपर कुल्हाडी से प्रहार करते थे। बलि की हर विधि मे शिकार के देह से मास का टुकडा निकालकर खेतो मे गाड दिया जाता था। जिस पानी से सिंचाई होती थी उसमे गडे खम्भे पर इसे बाधा जाता था। पर बलि की प्रत्येक विधि मे शिकार को मदिरा अवश्य पिलाई जाती थी।"[1]

यह अपराध ब्रिटिशो की दृष्टि मे पहली बार 1830 मे आया। पर 1836 मे लाड आकलैण्ड के समय मे जब मद्रास के एक असैनिक कर्मचारी रसेल ने इस सम्बन्ध म विस्तृत रिपोर्ट भेजी तब स्पष्ट बाते सामने आई। सरकार ने तुरत कारवाई की। पर उसके प्रारम्भिक कदम सावधानीपूर्ण थे जिससे कि जनता की धार्मिक भावनाओ को आघात न पहुचे। उडीसा की पहाडियो मे कैप्टेन कैम्पबेल को भेजा गया जिसने समझा-बुझाकर व डरा धमकाकर इस भयानक बलि प्रथा को छुडवाया। उसने लोगो से यह भी कहा कि अब वे मानव की जगह पर जानवरो की बलि दें और अपने देवताओ से अप्रसन्न न होने की विनती करे।

प्रारम्भिक कदम फूक फूककर रखने के बाद सरकार ने कठोर कदम उठाये और इस बीच हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। जब पूरा गाव मानव बलि देने के उत्साह मे पागल हुआ रहता था और मानव का गला काटा जाने वाला होता था तभी सरकार कारवाई करती और यह बताती कि उसका उद्देश्य इस बुराई को समूल उखाड फेकना है। इस तरह यह अपराध शीघ्र ही समाप्त होने लगा।

भारतीय राज्यो से सम्बन्ध

लाड आकलैण्ड ने ब्रिटिश भारतीय क्षेत्र मे कोई अभिवृद्धि नही की। भारतीय राज्यो के साथ उसकी नीति ब्रिटिश हित साधन की थी। इसके लिए वह ईमानदारी, कभी-कभी आक्रामक अथवा बनावटी और क्रूर नीति भी अपनाता था।

अवध—अवध के साथ उसके सम्बन्ध हमारा विशेष ध्यान आकृष्ट करते हैं। 7 जुलाई 1837 को अवध के नवाब नासिरुद्दीन की मृत्यु हो गई। सम्भवत उसे उसकी दत्तकी मा बादशाही बेगम ने इसलिए विष दिलवा दिया था क्योंकि उसने उसके लडके मुन्नू जान को नही अपनाया था। उसकी मृत्यु के बाद अवध मे ब्रिटिश रेजीडेण्ट जान लो ने मुस्लिम कानून के अनुसार अधिकारी नवाब के चाचा को गद्दी दिलाने की चेष्टा की। पर बेगम ने उसके अधिकार प्राप्ति का विरोध किया। इस पर ब्रिटिश सेनाए बुला ली गई और चेतावनी के बाद गोलाबारी प्रारम्भ कर दी गई। लगभग 40 विरोधी तुरत मार डाले गये और शेष भाग खडे हुए। बेगम को अपने नामित व्यक्ति सहित बंद कर लिया गया और दोनो

1 उद्धृत, फिलिप : पूर्वोद्धृत द फाउडर्स, पृ० 249 50।

को चुनार म कैद कर लिया गया। ब्रिटिश समर्थक मुहम्मद अली को गद्दी प्रदान की गई। इसके बदले म उसने लो द्वारा तैयार किय गय एक समझौते पर हस्ताक्षर किया जिसमे यह तय किया गया था कि ब्रिटिशो के साथ भविष्य म किसी भी सधि पत्र पर हस्ताक्षर करना अनिवाय होगा।

शीघ्र ही सधि की शर्तें तैयार की गइ। नये नवाब ने अयमनस्कता से ही सही इसपर हस्ताक्षर कर दिया जिसके फलस्वरूप 1801 की वेलजली की सधि पर भी कुछ प्रभाव पडा। नवीन सधि ने भूतकालीन बुराइया को समाप्त करने के नाम पर राज्य के राजस्व पर कुछ बोझ डाला जिसके फलस्वरूप बुराइया घटने की जगह पर कुछ बढ ही गइ।

सधि के अतगत निश्चित हुआ कि अवध म नवाब अपनी ही एक लाख साठ हजार पौण्ड वार्षिक के व्यय पर दो रेजीमेण्ट घुडसवारो, पाच पैदल और ब्रिटिशो के नतत्व मे अनुशासित और सगठित दो बटरिया रखेगा। इस सेना का प्रयोग "साधारण राजस्व वसूली" के लिए नही लिया जाएगा। सधि म यह भी तय हुआ कि यदि अवध का कोई जिला आतक और कुशासन म फसा तो उसे अनिश्चित काल के लिए ब्रिटिश अधिकारियो के नेतृत्व म सौंप दिया जाएगा। वहा के राजस्व का बचा हुआ भाग क्षेत्र की जनता के हित म व्यय किया जाएगा और उसके बाद जो बचेगा उसे नवाब के खजाने मे भेज दिया जायेगा।

सधि का तकपूण आधारो पर न होना स्पष्ट है। ब्रिटिश सेना पर व्यय के लिए नवाब को राजस्व और अय करो म वद्धि करनी पडी। धन का अभाव कायक्षम प्रशासन के लिए एक समस्या था जबकि दूसरी ओर अधिक कर देने वाली जनता की ओर से शोर शराबा अलग से मच जाता था। इसका मूल परिणाम अव्यवस्था, आतक और कुशासन था जिसके फलस्वरूप प्रशासन मे ब्रिटिश हस्तक्षेप बढ जाता था।

नवाब पर आकलण्ड द्वारा आरोपित इस कठोर तथा तकहीन सधि का लोगो ने विरोध किया। उसका कहना था कि इससे भूतकालीन बुराइया दूर होने के स्थान पर स्थिति की विकरालता म वद्धि होगी। कोट ऑफ डाइरेक्टस ने भी इसे स्वीकार नही किया। 1839 के डिस्पैच मे उसने इस सधि को अस्वीकार कर दिया और इसकी सूचना तुरत नवाब को भिजवाने के लिए कह दिया। पर आकलण्ड इस सधि की तकपूणता के प्रस्ताव को मानने को तैयार नही था। वैसे तो उसने नवाब को सूचित कर दिया कि वह सहायक सेना रखने से मुक्त हो गया है पर साथ ही उसने उससे यह भी कह दिया कि सधि की कुछ शर्तें अब भी लागू है। कोट आफ डाइरेक्टस को भी इस मामले मे धोखे मे रखा गया।

ट्रायर ने लिखा है कि "लाड आकलैण्ड के सच्चाई को छिपाने की रीति ने भारत म उसके देशवासियो को भी गलतफहमी मे रखा तथा साथ-ही साथ इग्लैण्ड

के लोगो को भी जानकारी नही प्रदान की। न तो 1847 मे लार्ड हार्डिंज और 1854 मे कर्नल स्लीमैन यह जान पाये कि यह सधि बेकार हो चुकी है। इस सत्यता की खोज लार्ड डलहौजी ने की जिसे उस काल के कौसिल सदस्य लो ने स्वयं जाना। इस सम्बन्ध म इण्डिया हाउस को सूचना भेजी गई कि लार्ड आकलैण्ड ने किसी सीमा तक अपने अधिकारियो की आज्ञा की अवहेलना की थी।"[1]

सतारा—शिवाजी के वश के एक युवा प्रतिनिधि को लार्ड हेस्टिंग्स ने 1819 म गद्दी दिलाई। 1822 मे युवा महाराज वयस्क होकर स्वय शासन की देख रेख करने लगा। पर शीघ्र ही उसके ऊपर यह आरोप लगाया गया कि वह गोवा के पुर्तगालियो और बरार के पदावनत राजा अप्पासाहब के साथ मिलकर ब्रिटिशो के विरुद्ध षडयन्त्र कर रहा है। यह आरोप लगाया गया कि उसकी इच्छा ब्रिटिशो से मुक्त होने की थी। इसके लिए उसको कई बार चेतावनी दी गई पर वह रास्ते पर नही आया।

1839 मे बम्बई के गवनर सर जेम्स कार्लं ने षडयन्त्रो के प्रमाण सहित राजा से अपनी गलतियो को स्वीकारने को कहा तथा यह चाहा कि वह भविष्य मे अच्छे व्यवहार का आश्वासन दे। ऐसा न करने पर उसको इसका कुफल भोगने को तैयार रहने को कहा गया। चूकि राजा ने इसका विरोध किया इसलिए आक्लैण्ड ने एक घोषणा के माध्यम से उसे पद से हटा दिया। उसे कैद करके बनारस जेल मे भेज दिया गया और उसके भाई शाहजी को गद्दी दे दी गई।

राजा के समर्थको न भारत मे गवनर जनरल के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। इण्डिया हाउस के समक्ष भी इस मामले को लाया गया। 1845 मे ह्यूम ने ससद म यह प्रस्ताव पेश किया कि इस मामले की ससदीय छानबीन की जाए। फिर इस मसले पर जब मत पडा तो ह्यूम का मन्तव्य पूरा नही हुआ।

सिंधिया—महाराज जनकोजी सिंधिया का आक्लैण्ड के साथ अच्छा सम्बन्ध था। उसने आक्लैण्ड की इच्छानुसार ग्वालियर सेना मे सुधार करना स्वीकार किया और इसके बदले मे आक्लैण्ड ने 1837 मे खानदेश के वे दो जिले वापस कर दिये जो दौलतराव के समय मे ले लिये गये थे। ठगो के दमन मे और इसी तरह के अनेक कार्यों मे महाराजा ने ब्रिटिशो का भरपूर समथन किया। 1838 मे जब एक नेपाली प्रतिनिधि मडल अग्रेजो के विरुद्ध उससे मिलने आया तो उसने उसे निकाल दिया। जब आक्लण्ड ने पेशावर के दोस्त मुहम्मद के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की तो सिंधिया ने अपने दरबार मे अफगान राजदूत को कैद कर लिया।

आक्लण्ड महाराजा की स्वामिभक्ति से अति प्रसन्न था और इसी को ध्यान म रखते हुए शिमला से वापसी के समय 1840 मे उसने ग्वालियर मे कुछ दिन

---

1 ट्रॉटर पूर्वोद्धृत, पृ० 29।

निवास किया।

इन्दौर—इन्दौर का हरिराव होल्कर अक्षम हो गया था। उसके कुप्रबंध के आधार पर आकलैण्ड ने यह चेतावनी 1837 में महाराजा को दी कि वह अपने यहां की स्थिति ठीक कर ले अन्यथा ब्रिटिश स्वयं उसके राज्य का शासन भार संभाल लेंगे। इस चेतावनी का प्रभाव हुआ और राजा ने बिजली की गति से स्थिति ठीक की। प्रशासन में सुधार हुआ और आकलैंड ने इसके लिए उसे बधाई दी।

कर्नूल—कर्नूल के नवाब के विरुद्ध यह आरोप था कि उसने 1838 में ब्रिटिशों के विरुद्ध षड्यंत्र किया। मद्रास के सैनिकों ने आगे बढ़कर नवाब को बंदी बना लिया। उसे त्रिचनापल्ली भेज दिया गया जहां जल्दी ही उसे एक कट्टर मुसलमान ने मार डाला। उसके परिवार को पेन्शन दे दी गई, उसका राज्य छीन लिया गया जिसे विद्रोह के बाद 'रेग्युलेशन' नियम के अन्तर्गत रख दिया गया और इसे मद्रास प्रेसीडेन्सी का एक कलेक्टोरेट बना दिया गया।

निजाम—बैंटिक ने निजाम द्वारा अपना शासन स्वयं चलाने के अधिकार को मान्य किया था। आकलैण्ड के काल में निजाम के राज्य में पर्याप्त अव्यवस्था व्याप्त थी। पर इसमें हस्तक्षेप नहीं हो सका। इसी बीच अफगान-युद्ध छिड़ गया और आकलैंड को उधर की ओर ध्यान देना पड़ा।

प्रथम आंग्ल अफगान युद्ध

आधुनिक भारत के इतिहास में आंग्ल-अफगान सम्बन्ध एक अति नाटकीय अध्याय के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। इंगलैण्ड और रूस के साम्राज्यों के बीच अफगानिस्तान का राज्य था जिसने ब्रिटिशों के अजेयता की शक्ति को जड़ से हिला दिया था और विश्व को दिखा दिया था कि एक स्वतन्त्रता प्रेमी देश उत्तम सैनिक शक्ति वाले देश के विरुद्ध भी क्या कर सकता है।

पर दुर्भाग्य से बहादुर और दृढ़ अफगान जाति उस बुराई का शिकार भी थी जो ऐसे लोगों में द्रष्टव्य है। यदि किसी विदेशी शक्ति के लिए उन्हें जीतना और उनपर शासन करना कठिन था तो साथ ही किसी आन्तरिक शक्ति के लिए उन्हें एक बनाये रखना भी सरल नहीं था क्योंकि वह उन्हें संगठित, अच्छे तरह से अनुशासित, राज्य के प्रति आज्ञाकारी नहीं बना सकती थी। आंतरिक संघर्ष और असैनिक युद्ध उनका चरित्र था। कोई आकर्षक व्यक्तित्व ही उनकी परम्परा वादिता पर नियन्त्रण करके उसे सामान्य हित में प्रयोग में ला सकता था। पर यह भी अल्पकाल के ही लिए संभव था। अफगानों की आपसी ईर्ष्या की अग्नि सदा प्रज्वलित रहती थी।

इस युद्ध की परिस्थितियों के ज्ञान के लिए हम 18वीं सदी के अन्त के प्राप्त

विवरणो को सक्षेप मे देखना पडेगा । हमे यह मालूम है कि अहमदशाह द्वारा स्थापित अफगानिस्तान का महत्त्वाकाक्षी साम्राज्य पतनवत होने लगा था । तैमूरशाह (1773-1793), जमानशाह (1793-1800) और महमूदशाह (1800-1803) सभी शासक कूटनीति मे पिछडे और अकार्यक्षम थे। 1803 मे गद्दी प्राप्त करनेवाला शाहशुजा भी कोई बेहतर शासक नही था । इन सभी अफगान शासको के काल मे आतरिक विद्रोह और अव्यवस्था व्याप्त रही । 1809 मे सिखो और अग्रेजो के बीच जब सधि हुई तभी एलफिन्स्टन ने शाहशुजा से सधि भी की । पर अभी एलफिन्स्टन ने पेशावर छोडा भी नही था कि शाहशुजा के भाई महमूदशाह ने कधार पर अधिकार कर लिया और नीमला म शाहशुजा को पराजित कर उसे अफगानिस्तान से बाहर ढकेल दिया ।

इसके बाद वहा एक लम्बा आतरिक सघर्ष प्रारम्भ हुआ । पहले तो महमूदशाह के परिवार—सदोजाई परिवार मे यह सघर्ष प्रारम्भ हुआ और बाद म सदोजाई एव बरकजाई परिवारो के बीच। अतत बरकजाई लोगो ने सदोजाई लोगो को पराजित कर दिया और पूरा देश आपस मे बाट लिया । परिवार के सबसे योग्य व्यक्ति दोस्त मुहम्मद ने गजनी और काबुल पर अधिकार कर लिया, कोहिनदिल खा ने कधार पर कब्जा कर लिया और सुल्तान मुहम्मद ने पेशावर पर। महमूदशाह के पास केवल हेरात रह गया। सिख सेना ने जब पेशावर पर अधिकार कर लिया तो उसने सिखो के समक्ष समर्पण कर दिया ।

साधन विपन्नता, स्वतत्रताप्रिय जनता और फैले हुए पहाडियो के कारण उस क्षेत्र मे प्रवेश कठिन था। इस कारण ब्रिटिश द्वारा इस क्षेत्र पर अधिकार करने की बडी आशा नही थी। पर टुकडो मे बटे और आतरिक सघर्ष मे फसे अफगानिस्तान से रूस जैसे देश के किसी भी दल को समर्थन देकर हस्तक्षेप की आशा बढ गई थी । इसी बात से भारत मे अग्रेज बहुत घबराते थे।

जब आकलैण्ड भारत पहुचा तो अफगानिस्तान मे स्थिति भयावह थी। अफगानिस्तान के मुख्य भागो का शासक दोस्त मुहम्मद था । पर उसकी स्थिति सुरक्षित नही थी। "उत्तर मे बल्ख मे विद्रोह चल रहा था, दक्षिण मे उसका एक भाई कधार म उसके विरुद्ध डटा हुआ था, पूर्व मे उसे रणजीत सिंह परेशान कर रहा था जिसकी पृष्ठभूमि मे शाहशुजा और ब्रिटिश थे, पश्चिम में महमूदशाह था और हेरात मे था कामरान । फारस छिपकर षडयन्त्र कर रहा था और रूस दूर से यह सब देख रहा था।" उसकी कठिनाइयो म यह वृद्धि भी हो गई थी कि शाहशुजा रणजीत सिंह के हाथ अपने प्रसिद्ध कोहिनूर के छिन जाने के बाद ब्रिटिश के सरक्षण मे चला गया था और उनसे पचास हजार रुपये की पेन्शन भी लेकर लुधियाना में रह रहा था। वह अकेले ही यह दण्ड नहीं भुगत रहा था बल्कि अफगानिस्तान का पुराना अधा सम्राट जमानशाह भी उसी की स्थिति मे

था। ब्रिटिश उनकी सहायता कोई उदारता के कारण नहीं कर रहे थे। 1765 में घुमक्कड़ शाहआलम से क्लाइव ने दीवानी का अधिकार प्राप्त किया था जिसके आधार पर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पड़ी। और ब्रिटिश और रणजीत सिंह इन भूतपूर्व अफगान शासकों से दोस्त मुहम्मद के विरुद्ध कोई लाभ न उठायें, इसकी आशा नहीं थी।

अफगान गद्दी पर शाहशुजा को बिठाने के कई प्रयास इससे पूर्व हुए थे। रणजीत सिंह ने इसमें अत्यधिक रुचि दिखाई थी जिसके कई कारण थे। इन कारणों का संक्षिप्त विवरण यहां आवश्यक है। डेरा गाजी खां को छोड़कर रणजीत सिंह का अटक के आगे के किसी क्षेत्र पर अधिकार नहीं था। पेशावर पर उसका अधिकार भी संदेहपूर्ण था। सिंध नदी के तट पर अटक से रावलपिंडी की सीमा तक युसुफजाई अशांति पैदा किये हुए थे जिससे महाराजा की कठिनाइयां बढ़ गई थीं। डेरा इस्माइल खां में भी उसके स्वत्व को ठीक से नहीं स्वीकार किया गया था। और अंततः अफगानिस्तान की अव्यवस्था भी उसके लिए चिन्ता की बात थी। रणजीत सिंह के लिए इन सभी समस्याओं का समाधान यह था कि अफगानिस्तान पर उसी का समर्थित कोई व्यक्ति शासक हो। इसी कारण अफगान-गद्दी के लिए वह शाहशुजा का समर्थन कर रहे थे। यदि सिख सैनिकों की सहायता से शाहशुजा को अफगान-गद्दी मिल जाती तो उत्तर पश्चिम में सिख हितों की रक्षा की आशा थी। इसीलिए 1826 में रणजीत सिंह ने शाह को सहायता करने को कहा। पर चूंकि ब्रिटिशों ने इस योजना को स्वीकृति नहीं दी इसलिए शाह ने इसे स्वीकार नहीं किया। शाह को सिखों पर विश्वास भी नहीं था। पुनः 1829 में और फिर तीसरी बार 1830 में सिख और शाह के संयुक्त प्रयास की चेष्टा सफल नहीं हो पायी। पर 1832 में सिखों की सहायता से शाह की सेना के अफगानिस्तान में प्रवेश की योजना पक्की हो गई। मध्य पूर्व में बढ़ते रूसी खतरे को देखकर ब्रिटिशों ने भी इस योजना को स्वीकृति दे दी। शाह ने अफगानिस्तान में अपनी सेना घुसेड़ दी। पर चूंकि दोस्त मुहम्मद उससे बहुत शक्तिशाली था इस कारण युद्ध में पराजित होने के पूर्व ही वह भाग खड़ा हुआ। पर शाहशुजा का दोस्त मुहम्मद के लिए खतरा अब भी टला नहीं था। इस सम्बन्ध में विवरण आगे है।

अफगानिस्तान में जब यह स्थिति थी तब लार्ड आकलैंड भारत का गवर्नर जनरल होकर आया। दोस्त मुहम्मद ने यह सोचकर कि नया गवर्नर जनरल, हो सकता है उसके प्रति बेहतर नीति अपनाये, उसके पास मई 1836 में एक पत्र लिखा और उसको उच्च पद पर नियुक्ति के लिए बधाई दी। इस पत्र में उसने अपनी कठिनाइयां बताईं सिख समस्या का विवरण दिया और यह आशा व्यक्त की कि इन कठिनाइयों को दूर करने में वह उसकी सहायता करेगा। उसने रणजीत सिंह से उसे पेशावर दिलवाने का भी आग्रह किया। पर उसे जो उत्तर मिला, वह

निराशाजनक था। लाड आकलैंड ने लिखा, "मित्र, तुम्हे यह मालूम है कि ब्रिटिश सरकार की नीति स्वतन्त्र राज्यो के कारवाइयो मे हस्तक्षेप की नहीं है।"

इस तरह निराश दोस्त मुहम्मद को अपनी समस्याओ के समाधान के लिए अन्य तरीका अपनाना पडा। उसने एक ओर तो फारस के शाह से दोस्ती का हाथ बढाया और दूसरी ओर अपने पुत्र अकबर खान के नेतत्व मे एक सेना पशावर सिखो से छीनने के लिए भेजा। प्रथम बात के लिए तो वह उतना गम्भीर नही था क्योकि उसे अफगानिस्तान के विरुद्ध फारस के महत्वाकाक्षा का ज्ञान था। फारस के रूस के प्रभाव मे होने के कारण उसे यह ज्ञात था कि ब्रिटिश उसके शत्रु हो जाएगे। साथ ही वह यह भी जानता था कि रूस से भी कम खतरा नही था क्योंकि मध्यपूर्व क्षेत्र मे उसकी भी क्षेत्रीय आकाक्षा कम नही थी। इस कारण फारस से उसका मत्री के लिए हाथ बढाना मात्र एक कूटनीतिक चाल थी। पेशावर-प्राप्ति के लिए सिखो के विरुद्ध उसका प्रयास सफल नही हुआ। इस तरह इस विधि से भी उसकी समस्याओ का समाधान नही हुआ जिससे वह अनावश्यक विवाद मे फस गया।

बर्न का व्यापारिक शिष्टमडल—इसी बीच ब्रिटिशो के लिए भी स्थिति म परिवर्तन हुआ। आग्ल रूस सम्बन्ध खराब हो गए और मध्यपूर्व म बढती रूसी महत्वाकाक्षा तथा पामर्स्टन की शक्तिशाली रूस-विरोधी नीति ने गृह सरकार को अतत कोई कारवाई करने को बाध्य किया जिससे कि रूसी विस्तारवाद सफल होकर भारत के दरवाजे को खटखटाने न लगे। नवम्बर 1836 मे लाड आकलैड ने बर्न्स के नेतत्व म एक व्यापारिक शिष्टमडल काबुल भेजा। वैस तो इस शिष्टमडल का घोषित उद्देश्य भारत और अफगानिस्तान के बीच व्यापार की सभावनाए खोजना था, पर सच्चाई मे इसका उद्देश्य पूणतया राजनैतिक था। 8 जनवरी, 1838 के लाड आकलैड के पत्र से यह बात सिद्ध हो गई। व्यापारिक एजेण्टो के वेश मे राजनैतिक खेल खेलने के लिए यह पद्धति अपनाने की राय आकलैड को सर जान मैलकाम ने दी। यह भी कहा जाता है कि आकलड न बन्स को व्यापारिक शिष्टमडल मे अपन उत्तरदायित्व पर भेजा। पर यह सही नही है। जून 1836 को डाइरेक्टरो की गुप्त समिति के एक प्रेषण से, जो 1894 म जान रसेल कालिवन द्वारा प्रथम बार प्रकाश मे लाया गया, यह स्पष्ट हो गया कि यह राय डाइरेक्टरो की ओर से पहले आई और इसके परिणामो के लिए मात्र आकलैड को ही उत्तरदायी नही माना जा सकता। इस प्रेषण मे स्पष्ट रूप से आकलड को निर्देश दिया गया, "क्या कदम सही और अपेक्षित है इसका निणय आप ही करें, अभी तक जो दृष्टि इस ओर रखी जाती थी उससे अधिक सतकता से उस ओर देखें, अफगानिस्तान म जो कुछ हो रहा है उसका प्रतिरोध करके रूसी प्रभाव घटाए क्योंकि हमारे पडोस म यदि यह प्रभाव बढ गया तो फिर घटेगा नही।

इस समस्या के समाधान की विधा की बात है हम चाहे तो दोस्त मुहम्मद के
। काबुल एक गुप्त दूत भेजकर वहा से गुप्त सूचनाए प्राप्त कर सकते है, या
चाहे तो शासक से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं या प्रारंभ म मात्र
पारिक सम्बन्ध रखने के लिए प्रयास कर सकते हैं। हम इस आप पर छोडते हैं
आप जिस रीति से चाहे अफगानिस्तान के सम्बन्ध म हस्तक्षेप करें। इस तरह
हस्तक्षेप निश्चित रूप स आवश्यक है चाहे इसस उस क्षेत्र म फैलनेवाला
रूसी प्रभाव घटे और चाहे रूसी हस्तक्षेप कम हो।"

आकबोल्ड लिखता है कि सच म आकलण्ड "न दूसर के विचारो की आधार
कर कारवाई की यदि वह अपने विचारो के आधार पर काम कर सका
ा तो वह अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण होता।"[1]

बर्न्स अपने को पूणतया व्यापारिक दूत बताते हुए सिंध से होकर पजाब नाव
पहुचा तथा वहा से पेशावर पार करता हुआ सितबर 1837 म काबुल पहुचा।
त मुहम्मद ने उसका शानदार स्वागत किया। दोस्त मुहम्मद और ब्रिटिशो के
र सधि के लिए वार्ता प्रारम्भ हुई। अभी किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुच पाये
के बर्न्स के शिष्टमण्डल के राजनैतिक स्वरूप का विवाद जोर पकड गया।
09 म ब्रिटिशो ने फारस से एक सधि की थी जिसके अनुसार उन्होंने रूस से
से विरोध होने पर उनकी सहायता का आश्वासन दिया था। पर जब 1826
रूस ने फारस पर आक्रमण किया तो अग्रेजो ने आश्वासन पूरा करने से इनकार
दिया जिसके फलस्वरूप उसे 1828 मे रूस से तुर्कोमानचाई की सधि करनी
ी। विद्वान केयी के अनुसार फारस को तुर्कोमानचाई रूस का देना पडा। पर
स्या ब्रिटिशो के लिए तब परेशानी की हो गई जब नवम्बर 1837 म फारस
शाह मुहम्मद मिर्जा ने हेरात पर घेरा डाल दिया। और चूकि फारस रूस के
क्षण मे था इसलिए यह समझा गया कि यह अफगानिस्तान मे रूसी महत्वाकाक्षा
प्रतीक है।

मध्य एशिया की समस्याओ के प्रति दोस्त मुहम्मद अनदेखी नहीं कर रहा
। इसीलिए हेरात पर होनेवाले घेरे की समस्या को गम्भीरता से न लकर वह
न को और शक्तिशाली बना रहा था। उसने अति इच्छा स ब्रिटिशो स सधि
ना स्वीकार किया, पर इसके लिए उसने दो शर्तें रखी। प्रथम तो यह कि
ों से पेशावर वापस दिलाने मे वे उसकी सहायता करेंगे और द्वितीय वे फारस
ाबुल या कधार पर आक्रमण के समय उसकी सहायता करेंगे। ब्रिटिश दूसरी
ता मान सकते थे पर वे पहली शत कस मानते।

कम्ब्रिज हिस्टी आफ इडिया भाग 5 पृ० 490।

केयी हिस्ट्री आफ वार इन अफगानिस्तान भाग 1 पृ० 151 56।

वन ने दोस्त मुहम्मद के विचारो से आकलैंड को परिचित कराया। उसने उसम अपना यह मत भी जोडा कि यदि ब्रिटिश रणजीत सिंह के ऊपर कुछ दबाव पेशावर छोडने के लिए डालें तो सभवत वह मान जाय। उसके अनुसार रणजीत सिंह की सिंध उस पार की नीति के कारण उसे धन और जीवन दोनो की हानि उठानी पड रही थी और कूटनीति के सहारे इस समस्या का निदान दोस्त मुहम्मद के पक्ष मे किया जा सकता था। पर वन्स के तक आक्लैंड को नही भाये क्योंकि वह यह जानता था कि रणजीत सिंह सतलज के इस पार के क्षेत्र तथा सिंध मे ब्रिटिश-आक्रामक नीति से अप्रसन्न था। यदि अब ब्रिटिश उसे पेशावर अफगानिस्तान को वापस करने की वकालत करते तो रणजीत सिंह के सहिष्णुता का भाडा फूट सकता था। इसके अतिरिक्त यदि दोस्त मुहम्मद को पेशावर वापस दिलाने मे सहायता की जाती तो भी उसकी मित्रता के प्रति आश्वस्त नही हुआ जा सकता था। आक्लैंड सिखो की मित्रता का बलिदान अफगान की अविश्वस्त दोस्ती के लिए नही करना चाहता था। वह यह भी नही चाहता था कि पेशावर को लेकर सिखो और अफगानो की समस्या का समाधान हो जाय क्योंकि ऐसा होने पर उत्तर-पश्चिम म फमी सिख सेना भारत की ओर आ जाएगी जिससे वह ब्रिटिश के विरुद्ध बहादुर हो जायगा और अपनी सारी सैनिक शक्ति उनके विरुद्ध लगा देगा। इस कारण इन परिस्थितियो म ब्रिटिश मात्र यह चाहते थे कि दोस्त मुहम्मद फारस और रूस से अपना सम्बन्ध तोड ले। पर इसके बदले म वे उसकी इस स्थिति से उत्पन्न शत्रु देशो से उसकी रक्षा करने को भी तैयार नही थे और न ही पेशावर सिखो से उसे दिलाने को तैयार थे।

इस तरह जब इन प्रस्तावो के प्रति ब्रिटिश नीति स्पष्ट होती गई तो दोस्त मुहम्मद की ब्रिटिशो के प्रति मित्रता कम होती गई। रूस का एजेंट विक्टेविच काबुल मे उपस्थित था। प्रारम्भ मे दोस्त मुहम्मद ने उसके प्रति उचित व्यवहार न किया था पर अब उसने उसको बुलाया और विशेष आदर प्रदान किया। बन के शिष्टमडल का उद्देश्य जब पूरा नही हुआ तो वह 26 अप्रैल 1838 को भारत वापस लौट आया।

इस बीच इस सबके प्रति प्रतिक्रिया अच्छी नही रही। अपने 12 मई, 1838 के मिनिट म उसने स्थिति का आकलन किया और बताया कि वतमान स्थिति मे ब्रिटिश के समक्ष तीन ही रास्ते है। प्रथम अफगानिस्तान और फारस को उनके भाग्य पर छोड दिया जाना चाहिए और ब्रिटिश का अपनी शक्ति सिंध क्षेत्र मे केन्द्रित करनी चाहिए। द्वितीय, काबुल और कान्धार के अमीरो की आर्थिक सहायता की जानी चाहिए और अफगानिस्तान को रूस की महत्त्वाकाक्षा का व्यवधान स्थल न बनाया जाना चाहिए। और तीसरे, रणजीत सिंह को शाहशुजा के नतत्व म एक सेना तैयार करके अफगानिस्तान पर आक्रमण करने के लिए

प्रोत्साहित करना चाहिए। इन तीन बातों में यदि प्रथम बात को स्वीकार किया जाय तो पहले से चली आ रही नीति समाप्त हो जाती जिसका अर्थ होता मध्य-एशिया में ब्रिटिश नीति की राजनैतिक हत्या। दूसरी नीति का अनुगमन किया गया था पर वह सफल नहीं रही थी। अब केवल तीसरा रास्ता ही शेष बचता था जिसका अनुगमन लार्ड आकलैंड को करना था। इस सम्बन्ध में गृह अधिकारियों को संस्तुति भेजी गई और स्वीकृति प्राप्त की गई।

त्रिपक्षीय संधि—जैसाकि बताया जा चुका है शाहशुजा ने 1832 में अफगान गद्दी प्राप्त करने के लिए चेष्टा की थी, पर वह सफल नहीं हुआ था। इस असफलता का एक कारण ब्रिटिशों एवं रणजीत सिंह द्वारा दी गई आधे मन से सहायता थी। बदली हुई परिस्थितियों में ब्रिटिशों ने स्वयं यह कार्य अपने हाथ में लिया और ब्रिटिशों, सिखों और शाहशुजा के बीच एक त्रिपक्षीय संधि की व्यवस्था की जिससे शाहशुजा को अफगान गद्दी प्राप्त हो सके। इस संधि की शर्तें यह थीं कि (1) शाहशुजा और उसका उत्तराधिकारी भविष्य में सिंध नदी के दोनों तटों के क्षेत्रों पर अधिकार नहीं जताएगा और पेशावर पर रणजीत सिंह का अधिकार स्वीकार किया जायेगा। (2) तीनों शक्तियां किसी भी एक के क्षेत्र के भगोड़े को शरण नहीं देंगी। (3) रणजीत सिंह को अपने फतेहगढ़ के किले में खैबर के नाला से पानी लेने की छूट दी जाएगी। (4) महाराजा का क्षेत्र जहां सिंध का छूता था वहां की सिंध नदी पर उनका अधिकार होगा। (5) अंग्रेजों और सिखों के बीच सिंध के विषय में जो समझौता हुआ रहेगा उसे शाहशुजा स्वीकार करेगा। (6) तीनों आपस में एक दूसरे के साथ समानता का व्यवहार करेंगे। (7) अफगान व्यापारियों को लाहौर और अमृतसर से व्यापार करने की अनुमति होगी और रणजीत सिंह उनके लिए पूर्ण सुरक्षा प्रदान करेगा तथा अपने क्षेत्र से शालों और चावल को बाहर भेजने की आज्ञा देगा। (8) जब दो देशों के सैनिक आपस में मिलेंगे तो वे मवेशियों की हत्या नहीं करेंगे। (9) अफगानिस्तान और पंजाब जल्दी जल्दी शिष्टमंडल का आदान प्रदान करेंगे। (10) आंतरिक अशांति और बाह्य खतरे की स्थिति में दोनों एक दूसरे की सहायता करेंगे (11) एक का शत्रु अन्य दो का भी शत्रु माना जायेगा। (12) काबुल की गद्दी शाहशुजा को दिलाने के लिए रणजीत सिंह 500 सैनिकों की व्यवस्था करेगा और इसके बदले में दो लाख रुपये प्राप्त करेगा। (13) ब्रिटिशों और सिखों की अनुमति के बिना शाहशुजा किसी विदेशी शक्ति से सम्बन्ध नहीं रखेगा। वह अपने क्षेत्र अफगानिस्तान होकर किसी विदेशी सेना को नहीं जाने देगा। (14) हेरात स्वतंत्र रहेगा और (15) काबुल में शाहशुजा के पास एक राजदूत भेजा जायेगा।

ऐसा विचार किया गया कि ब्रिटिश शाहशुजा की सहायता के लिए अपने सैनिक नहीं भेजेंगे। बल्कि इसके स्थान पर वे उसे कुछ सहायता करेंगे जिससे

सेना तैयार की जा सके। ब्रिटिश अधिकारी शाह की सेना को निर्देश हेतु भेजे जाएगे। रणजीत सिंह अपनी सेना अलग से अपनी योजनानुसार इस काय के लिए भेजेगा। जैसाकि डॉक्टर आर० आर० सेठी का विचार है कि दूसर शब्दा मे ब्रिटिशो ने "शाह के लिए सधि मे धन की सहायता से अधिक, ब्रिटिश अधिकारियो ने अपनी सेना से अधिक और एजेंटो न सेना का साथ देने से अधिक की नही सोचा।"[1]

य सभी शर्तें महाराजा के स्वीकार करने योग्य थी। पर बाद मे जब उससे यह स्पष्ट किया गया कि उसकी शिकारपुर पर अधिकार की चेष्टा को स्वीकार नही किया जायेगा, सिंध सभी तीन शक्तिया स स्वतन्त्र रहेगा और जलालाबाद पर उसे अधिकार करने की आज्ञा नही दी जायेगी, और इस सबके अतिरिक्त जब ब्रिटिशा न शाह के समथन के लिए सेना भेजन का निणय किया तो रणजीत सिंह को सधि मे कुछ दूसरी चीज दिखी और उसने सधि पर हस्ताक्षर करने स इनकार कर दिया। पर जब ब्रिटिशा न अकेले ही सधि पर हस्ताक्षर करन को कहा तो महाराजा को भी इसे मानना पडा।

1838 मे सधि पर हस्ताक्षर हुए। पर इसके पहले कि शाहशुजा अफगानिस्तान पर आक्रमण कर सके, 9 सितम्बर, 1838 को हरात से फारस पीछे हट गया और रूस का एजेट विकटेविच वापस बुला लिया गया और रूसी सरकार ने उसके शिष्टमडल को गैर सरकारी बताया। इस तरह अफगानिस्तान आक्रमण के मारे तक बेकार हो गय और गह अधिकारियो न सावधानी बरतन को कहा। पर गम-जोशी से भरा आकलड चूकि दोस्त मुहम्मद को पाठ सिखाना चाहता था इसलिए उसने अपनी योजना का निश्चय के आगे बढाने की घोषणा की जिसम 'अफ-गानिस्तान के पूर्वी प्रान्ता के विद्रोही शक्ति के स्थान पर कोई मैत्री शक्ति स्थापित करने और उत्तर-पश्चिम सीमा पर आक्रामक योजना का रोकने के लिए स्थायी सीमा की व्यवस्था करना" था।

युद्ध—नवम्बर के अन्त मे 'सिंध की सेना' नामक एक बडी सेना जिसम एक ब्रिगेड तोपखाना और घुडसवार पाच ब्रिगड पैदल सेना फीरोजपुर म एकत्रित की गई। सेनापति सर हेनरी फेन जिन्होंने इस आक्रमण का विरोध किया था उन्ह स्वास्थ्य के आधार पर पदमुक्त कर दिया गया और उनके स्थान पर जान कीन को नियुक्त किया गया। बगाल की सेना का सेनापति सर विलाबाय काटन को बनाया गया। मक्नाटन को शाहशुजा के दरबार म ब्रिटिश दूत नियुक्त किया गया और सर अलेक्जाण्डर बर्न्स का आक्रमण म राजनतिक कार्यों का नेतत्व सौंपा गया।

---

1 सेठी आर० आर० द माइटी एण्ड अयूड महाराजा प० 214 19।

2 देखें, कनिघम हिस्ट्री आफ द सिक्ख प० 192।

इसके अतिरिक्त इस आक्रमण के साथ कूटनीतिज्ञ भी जाने थे जिन्हे मध्य-एशिया की शक्तियां के साथ अनेक सधियां करनी थी। चूंकि रणजीत सिंह ने पंजाब होकर सेना जाने देने से इकार कर दिया था इस कारण यह निश्चय किया गया कि सेना बहावलपुर, सिंध, बलूचिस्तान, बोलन और खैबर दर्रे पार करके जायगी। डॉक्टर वी० ए० स्मिथ के अनुसार यह एक ऐसी योजना थी जो 'सभी स्वस्थ युद्ध नीति की स्थिति का उल्लघन करती थी तथा एक ऐसी राजनीतिज्ञ की रचना मालूम होती थी जिसमे चालाकी की जगह बेवकूफी अधिक नजर आती थी।"[1] सिंध के अमीरो की कमजोरी का पूर्ण लाभ उठाया गया। न तो नैतिकता और न ही भूतकालीन राजनैतिक बंधनो का आक्लैंड के रास्ते में ध्यान दिया गया। अमीरो के विरोध का अनुपयोगी उछल कूद की सज्ञा दी गई और ब्रिटिश सेनाएं सिंध का सीना चीरती अफगानिस्तान की ओर आगे बढी।

इसके बाद होने वाले आक्रमण की कहानी का संक्षिप्त विवरण यहां दिया जा सकता है। 6 मार्च,1839 को पूरी सेना क्वेटा पहुंची। कट्टर अफगान कबीलो को घूस देकर रास्ता तय किया गया। शाहशुजा कन्धार में अप्रैल में प्रविष्ट हुआ और 7 अगस्त को वह आराम से काबुल पहुंच गया जिस स्थान को दोस्त मुहम्मद चार दिन पूर्व ही छोड़ चुका था। पर दोस्त मुहम्मद चूंकि जनता में लोकप्रिय था इस कारण काबुल में शाहशुजा के प्रवेश का स्वागत नही किया गया। केयी ने लिखा है कि उसका प्रवेश ऐसा था "जैसे मृत्यु का जुलूस जा रहा हो।" नवम्बर 1839 को दोस्त मुहम्मद ने मैकनाटन के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया जिसके बाद उसे कलकत्ता में एक प्रतिष्ठित कैदी की तरह रखा गया। इस तरह अफगानिस्तान पर ब्रिटिश विजय पूरी हो गई।

समस्याएं और भूलें—इसके आगे अफगानिस्तान में ब्रिटिशो की कहानी युद्ध सम्बन्धी और नैतिक भूलो की है। सफलता प्राप्ति के बाद सबसे बड़ी समस्या यह थी कि उस जिसे इतनी सफलता से अपने अधिकार में कर लिया गया, किस तरह अपने अधिकार में बनाये रखा जाय। शाहशुजा लोगो में इस कारण अत्यधिक अलोकप्रिय था क्योंकि अपने साथ इस देश में वह इस्लाम के शत्रुओं को ले आया था। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सैनिको के वहां की वापसी से शाह की स्थिति तो बिगड़ती ही, ब्रिटिश प्रतिष्ठा को भी आघात पहुंचता। जबकि दूसरी ओर ब्रिटिश सेना का अफगानिस्तान में लगातार रुके रहना सैनिक और आर्थिक दोनो दृष्टि से एक अनाकर्षक प्रस्ताव था। इस स्थिति में ब्रिटिशो को अधिक व्यय ही नही करना पड़ता बल्कि उन्हें अफगानो के आकस्मिक आक्रमणो को भी झेलना पड़ता। वर्षों

1 स्मिथ आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया पृ० 603-06।
2 केयी हिस्ट्री आफ वार इन अफगानिस्तान भाग I पृ० 124।

तो अफगान अच्छे अस्त्रा से दवाये जा सकते थे पर उन्ह भयभीत नही किया जा सकता था और न ही लम्ब असे तक पराधीन ही। स्थिति कठिनाई उत्पन्न करने वाली थी।

अतत यह निश्चय किया गया कि अफगानिस्तान म 10 हजार सैनिक रखे जायें जिन्ह काबुल, कधार, गजनी और जलालाबाद नामक स्थाना पर विभाजित कर दिया जाय। शेष सना भारत वापस कर देने का निश्चय हुआ। पर जैसे ही थाडा काल बीता, ब्रिटिश बेवकूफी की सीमा तक ढीले पड गये। 1839 मे रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई। यह घटना तब हुई जब शाहशुजा काबुल मे घुसा भी नही था। "उसकी मृत्यु ने ब्रिटिशा की सचार व्यवस्था को भी खतरे म डाल दिया क्योकि सिख इसके बाद अलगाववाद की ओर आग बढे।' कुछ सिख तो अफगाना के साथ मिलकर पडयत्र करने लगे। खैवर असुरक्षित हो गया क्योकि इसके चारा ओर बसनेवाली जातिया केवल शक्ति और घूस के अस्त्र का लोहा मानती थी जिसमे से किसी को भी अधिक काल के लिए नही प्रयुक्त किया जा सकता था। पजाब से होकर रास्ता रोक देने के कारण, और सभवत अब पजाब विद्रोही हो जाने के कारण ब्रिटिशो को अलग थलग पड जाने का भय हुआ होगा। साथ ही ब्रिटिशो और शाहशुजा की दुहरी सरकार ने बहुत से अफगान सरदारो की राजनैतिक शक्ति और प्रतिष्ठा का अपहरण कर लिया था जिससे उनके बीच धीमी धीमी कपकपी प्रारम्भ हो गई थी। इन परिस्थितियो मे सरकार का केवल यह काय था कि जनता को कोई लाभ प्रदान किये बिना वह राजस्व वसूल कर रही थी जिससे उनमे असतोष व्याप्त हो रहा था। अफगानिस्तान मे भारतीय सेना भी विश्वस्त नही थी पर फिर भी ब्रिटिशो का व्यय भी दिन प्रतिदिन बढता ही जा रहा था। चूकि भारतीय सरकार पर आर्थिक बोझ असहनीय ढग से बढ गया था और अफगानिस्तान मे आर्थिक साधन कम थे, इस कारण अफगान कबीलो को मिलन वाली अधाधुध घूस मे भी कमी आ गइ जिससे ब्रिटिशा की अफगानिस्तान मे स्थिति और खराब हो गई फिर भी मस्तिष्क के ढीले ढाले कस जसे कुछ ब्रिटिश अधिकारियो की स्वेच्छाचारिता मे वद्धि हो गई। आश्चय यह था कि आकलैण्ड जिसकी गध पा सका उसकी सूचना गह विभागा के अधिकारिया को हो गई। इसीलिए उन्हाने अपने 1840 के प्रेषण मे आकलण्ड को राय दी कि या तो वह अफगानिस्तान मे अपनी सैनिक शक्ति बढाये या पूरी तरह से वहा से वापस निकल आये। पर या तो लापरवाही के कारण या जोड-घटाने की बेवकूफी के कारण आकलण्ड ने इस ओर ध्यान नही दिया।

इसी समय ब्रिटिशा की कुछ भूला ने अफगानिस्तान मे उनका विनाश ला उपस्थित किया। अप्रल 1841 मे एक बुजुग और शरीर से क्षत व्यक्ति जनरल एलफिन्स्टन को जो कठिनाई से चल सकता था, सर विलाबी काटन का उत्तरा-

धिकारी बनाया गया। आकबोल्ड लिखता है कि यह "आक्लैण्ड की ओर स की गई भयानकतम भूल थी। क्रोधी होते हुए भी दृढ इच्छा और साधन वाला व्यक्ति नाट अधिक उत्तम उत्तराधिकारी हो सकता था।"[1] इसके अतिरिक्त काबुल की सेना को नगर के बाहर एक खराब बने और अच्छी तरह से किलबन्दी न हुए स्थान वाले कैण्टोनमेंट म रखा गया। उन्हे इसके स्थान पर बालाहिसार म रखा जा सकता था। काबुल का किला, जिसम राजभवन भी था, शाहशुजा को सौंप दिया गया था। सेना रसद विभाग दूर पर अलग बनाया गया जो एक गम्भीर भूल था और इसके लिए कॉटन और मैक्नाटन उत्तरदायी थे। मैक्नाटन की सनिक गतिविधियों के विषय म अज्ञानता और लापरवाही सचमुच चिन्तनीय थी। टाम्सन और गरेट लिखते है कि उसने हर सैनिक केन्द्र से हल्की चेतावनी दिलाई जबकि काबुल के हर क्षेत्र म षडयन्त्र का बाजार गम था। उसन एक छोटे पर गभीर लडाई के विषय मे उस समय लिखा जबकि विनाश निकट था कि 'काम पूरा होन वाला है विद्रोही शक्ति समाप्त होने वाली है '

यह मूल्यांकित किया जाता है कि यदि ब्रिटिश अफगानिस्तान म ऐसे ही बने रहते तो उन्ह प्रतिवष 12 5 लाख रुपये व्यय करना पडता और शाहशुजा इतना व्यय नही कर सकता था। चूकि गह विभाग के अधिकारियो द्वारा फिजूलखर्ची न करने को कहा गया था और दुभाग्य और दुर्बुद्धि से अपव्यय रोकन का माग अफगान नताओ को दी जानेवाली धनराशि मे कटौती के माध्यम मे पाया गया, जब कि इसी के द्वारा उनसे सहायता अर्जित की गई थी। इस कारवाई की प्रतिक्रिया हुई। गिलजाई सरदार काबुल छोडकर जलालाबाद के निकट पहुचे और लूट मार प्रारम्भ कर दी। एक षडयन्त्र पहले ही प्रारम्भ हो गया था जिसम विभिन्न कबीलो के लाग सम्मिलित थ और सामान्य विद्रोह की अफवाह गम थी। पर आश्चय यह था कि ब्रिटिशो की निद्रा तब खुली जब तूफान तीव्र गति पकड चुका था और उस रोकना कठिन हो गया था। विश्वजनीन, धार्मिक, और राष्ट्रीय विचार-धारा सभी इसके विरुद्ध थी कि शाहशुजा एक विदेशी शक्ति की सहायता से अफगानिस्तान पर अधिकार करने के लिए आया। ब्रिटिश उनके शत्रु है जो उनकी प्रतिष्ठा को बर्बाद करने आये है इस प्रचार ने धीरे धीरे जोर पकडा। अकबर खा जो दोस्त मुहम्मद का पुत्र था और अति साहसी था और जिसमें आकबोल्ड के मतानुसार "अपनी खूखार जाति की सभी विशेषताए थी '[3] उसे ही विद्रोह का नता मान लिया गया। प्रारम्भ मे तो विद्रोही अग्नि सुलगी और फिर

---

1 कम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया भाग 5 पृ० 491 92।

2 टाम्सन एण्ड गरेट राइज एण्ड फुलफिलमेण्ट आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया, प 309।

3 कम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया भाग 5 पृ० 491 92।

प्रज्वलित हा गई।

विनाश—नवम्बर 1841 मे सौ अफगाना की एक भीड ने काबुल मे ब स के निवास पर आक्रमण करके उसे मार डाला। सचार साधन के अभाव मे काधार मे उपस्थित जनरल काबुल नही जा सका। गडमक मे उपस्थित जनरल सेल जलालाबाद की ओर आग बढा। 23 नवम्बर को बामारू म अग्रेज पराजित हा गये और मैकनाटन को बाध्य होकर 11 दिसम्बर 1841 को एक अपमानजनक सधि पर हस्ताक्षर करना पडा जिसकी शर्तें थी ब्रिटिश 22 दिसम्बर तक अफगानिस्तान छोडकर चले जायेंगे, दोस्त मोहम्मद और अ य अफगान जो कैद कर लिये गये है उ ह छोड दिया जायेगा, शाहशुजा को अफगानिस्तान मे साधारण नागरिक की तरह रहने या अग्रेजा के साथ वापस चले जाने की छूट होगी तथा चार ब्रिटिश अधिकारी अफगाना के पास बधक रखे जायेंगे।

इस सधि पर हस्ताक्षर के बाद मैकनाटन ने जान-बूझकर अफगानिस्तान छोडने मे देर की जिससे उसे अपना जीवन गवाना पडा। इससे ब्रिटिशो मे एक आतक फैल गया। उ होंने जनवरी 1842 को इस सधि को पुन स्वीकृति प्रदान की, अपन हथियार अफगाना को सौंपे और 6 जनवरी को 16 हजार ब्रिटिश सैनिका की अफगानिस्तान से वापसी प्रारम्भ हुई। उ होन अकबर खा पर अपनी सुरक्षा के लिए निभर किया पर वह या तो इसके योग्य नही था या उसकी इच्छा ही नही थी जिसका परिणाम यह हुआ कि गिलजाई और अ य खूखार जातिया न वापसी के रास्ते को घेर लिया और वापस होती हुई सेना पर प्रहार प्रारम्भ कर दिया। ब्रिटिश सेना मे इतनी अव्यवस्था फैल गई कि उ होने साधारण-से साधारण बात का भी ध्यान नही रखा जिससे कि वे अपने को बचा सकते। एक के बाद दूसरा सेनापति अफगान षड्य त्र का शिकार होता रहा, सामा य सैनिको का उत्साह भग हो गया। उ होने पोटिंजर, एलफि स्टन और कुछ अ य अधिकारिया स्त्रिया व बच्चो को अकबर खा के पास ब धक के रूप मे प्रस्तुत किया और शेष को गोली की बौछार झेलते हुए आगे बढना पडा। वापसी का पथ हत्या का केन्द्र लगने लगा। अपने को बचाने के लिए ब्रिटिशो ने जगदलक दर्रे पर अ तिम चेष्टा की पर वे भयानक विनाश से नही बच सके। अकबर खा के हाथ मे जो 120 ब दी थे उनके अतिरिक्त 16 हजार लोगो म से केवल डॉ० ब्राइडन पूरी तरह थके, अधभरे घावो से पूरित मुश्किल से जलालाबाद पहुच सके। आहो, कष्टो और विनाश से पूण ऐसा भयानक व हृदयद्रावक दश्य था उन ब्रिटिश सैनिका का जो वापसी के पथ पर थे।

सामा यतया ब्रिटिश लेखका ने अकबर खा के षड्य त्र की भत्सना की है जिससे वापस आते ब्रिटिश सैनिका का विनाश हुआ, पर डॉ० ईश्वरी प्रसाद और सूबेदार का मत है कि हमारी "सहानुभूति जा अफगानिस्तान मे मारे गये ब्रिटिश

सैनिको के प्रति उभरती है उसके कारण हमे उस बात की अनदेखी नही करनी चाहिए कि ऐसी स्थिति पैदा करने का श्रेय उन सैनिको के बंधु-बांधवों को ही था।"[1] इन लेखकों के अनुसार कांधार, गजनी और जलालाबाद मे उपस्थित ब्रिटिश सैनिको ने जब एलफिस्टन द्वारा हस्ताक्षरित संधि को मानने से इनकार कर दिया तो अफगान रुष्ट हो गये। ब्रिटिश अधिकारियों का यह कहना था कि सनिको के स्थान-त्याग की बात एलफिस्टन की सेना पर ही लागू होती थी और एलफिस्टन अपनी इच्छा और सैनिको पर नही लाद सकता था। जबकि दूसरी ओर अफगानो का कहना था कि संधि मे ब्रिटिश सनिकों के वापसी की बात थी, किसी विशेष सेनापति के सेना की नही। पर इन लेखको के मत को पूर्णतया स्वीकार नहीं किया जा सकता। सच यह था कि दोस्त मुहम्मद के स्थान पर एक लोकप्रिय का थोपा जाना अफगानो को अपनी आत्म प्रतिष्ठा पर आघात जैसा लगा। इसी कारण उन्होंने ब्रिटिशो को पाठ पढाने का निश्चय कर लिया जिससे कि वे उनकी मातृभूमि की ओर दृष्टि न कर सकें। यह भी नहीं कहा जा सकता कि अफगान षड्यन्त्र करने की स्थिति मे नही थे। इस तरह उपरोक्त बातो के संदर्भ म तथा एलफिन्स्टन की अपनी भयंकर भूलों के कारण और इस कठिन परिस्थिति म ब्रिटिश सेना मे साहस बुद्धि व अनुशासन का अभाव आदि ही एलफिन्स्टन की सेना के पतन का कारण बना।

एलेनबरो—जबकि एलफिन्स्टन की सेना को उपरोक्त दुर्भाग्य का शिकार होना पडा, दूसरी ओर जनरल नाट कांधार पर अधिकार बनाये रखने म सफल रहा। जनरल इगलण्ड जो उसे मुक्त करने के लिए भेजा गया था, हुक्लजाई म पराजित कर दिया गया। पर जनरल इगलैण्ड और जनरल नाट की सेनाओं ने मिलकर स्थिति सुधारी। पामर के हाथ मे पडे गजनी को इसके बाद घेर लिया गया। जरनल सेल को जलालाबाद मे घेर लिया गया, पर वहा पर वह तब तक अधिकार बनाये रखने मे सफल रहा जबतक कि पोलक के नेतत्व मे नयी सेना नही आ गई। पोलक के पूर्व विल्ड के नेतत्व म एक सेना सहायतार्थ भेजी गई थी जो खैबर मे घुसी और अली के किले पर अधिकार भी कर लिया, इधर इसे पराजित होकर पीछे हटना पडा। और इसीलिए पोलक की सफलता ने ब्रिटिशो के पक्ष मे स्थिति को सुधार दिया।

पर पोलक की सफलता लार्ड एलेनबरो के भाग मे चली गई जो लार्ड आकलैंड के वापस बुला लिये जाने पर उसके स्थान पर नियुक्त किया गया। फरवरी 1842 मे लार्ड एलेनबरा उत्तराधिकारी हुआ और भारत आया। राबर्ट्स उसके विषय म कहता है कि वह "प्रतिष्ठा प्राप्त और निःसंदेह अपने पूर्वाधिकारी से

1 प्रसाद एवं सुबेदार द हिस्ट्री आफ माडर्न इंडिया प 217।

बेहतर व्यक्ति था। वह अलङ्कृत भाषा का प्रयोग कर बिना तैयारी का भाषण-कर्त्ता था। वह आत्मविश्वासी भावुक और दृढ था। इसी कारण उसके मित्र ड्यूक ऑफ विलिंगटन ने उसे सावधान रहने के लिए चेतावनी दी।"[1]

भारत में पहुचते ही एलेनबरो की पहले भावना यह थी कि किसी भी तरह अफगानों को पराजित कर ब्रिटिश प्रतिष्ठा को ऊचा उठाया जाय। पर एक माह भी नहीं बीता जब इसे हुक्लजाई में जनरल इगलैंड के पराजय और गजनी में पामर के आत्मसमर्पण की सूचना मिली जिससे वह अति दुखी हुआ। इस विषय में गहन विचार किये बिना उसने तुरन्त ब्रिटिश सेना की वापसी का आदेश दिया। पोलक को पेशावर आ जाने को कहा गया और नॉट से काधार छोड देने को कहा गया। सेनापतियों को यह आदेश बिजली की गरज की तरह सुनाई पडा। सच यह था कि पोलक और सेल का जलालाबाद में गठजोड, नॉट का काधार पर अधिकार ही न बनाये रखना बल्कि अफगानों को अपार हानि भी पहुचाने से अफगानिस्तान में स्थिति काफी बदल गई थी। पर लार्ड एलेनबरो चूकि भावनाओं के आधार पर काय करता था इस कारण उसने इसकी अनुभूति न की। पर सेनापतियों ने बुद्धिमत्ता का परिचय देते हुए सचार साधनो के अभाव का बहाना बनाकर अपनी वापसी को कुछ समय के लिए रोक दिया। इसी बीच गवनर जनरल द्वारा विशेषण मत तिलाजलि दे भारत की प्रतिष्ठा खोने की नीति अपनाने और अफगानिस्तान में प्राप्त लाभ से फायदा न उठाने के लिए जब शोर मचा तो एलेनबरो को सत्यता का भान हुआ। ऐसी स्थिति में उसने प्रत्यक्ष रूप से नये आदेश दिया और सेनापतियों से परिस्थितियों के अनुकूल काय करने को कहा। इस तरह के आदेश को एलेनबरो के आलोचकों ने उसके उत्तरदायित्व से बचने की नीति का नाम दिया। पर युद्ध मैदान में सेनापतियों ने नयी स्थितियों को स्वीकार करते हुए अपनी सैनिक स्थिति में और सुधार किया। एलेनबरो में भी शक्ति-सचय हुआ और काबुल व गजनी की सभावित विजय की ओर इगित करते हुए उन्हे उसने लिखा कि यदि "तुम लोग आगे बढो और जीतो तो महमूद गजनी की कब्र के ऊपर लटकी हुई गदा लेते आना तथा साथ ही इसका दरवाजा भी लेते आना जो सोमनाथ मदिर से ले जाया गया था। ये तुम्हारी सफल विजयो की ट्राफियां होगी।"

पोलक और नॉट जैसे अनुभवी और बुद्धिमान सेनापतियों के लिए यह इशारा पर्याप्त था। नॉट काधार से बाहर निकला और पोलक जलालाबाद से तथा दोनो काबुल में मिले। अकबर खां को तेज़ीन में पराजित कर पोलक 15 सितम्बर को काबुल पहुचा जबकि नॉट दो दिन बाद उससे जा मिला। काबुल के रास्ते में नॉट ने गजनी के किले को नष्ट किया और वहा के दरवाजे को भारत लाया जो 1024

---

1 राबटस हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इडिया, पृ॰ 322।

मे सोमनाथ स ल जाय गये थे। विजयी ब्रिटिश सेनाओ ने यूरोपीय कैदियो को भी मुक्त कराया जिनके रक्षक एक स्थान से दूसरे स्थान पर उन्ह लेकर भागते फिर रह थे। पर इन सफलताओ के नशे म सेनापतियो ने नैतिकता के हर सिद्धान्त का परित्याग कर दिया। 12 अक्तूबर को उन्होने एक ऐसा मूर्खताभरा और बबर अपराध किया जिसके लिए उन्ह कभी क्षमा नही किया जाएगा। रावर्ट्स ने लिखा है कि "यह एक अक्षम्य गुण्डागर्दी थी। काबुल की बडी बाजार को उडा दिया गया।"[1] और पूरे नगर को बुरी तरह लूटा गया। इसके बाद ब्रिटिश प्रतिष्ठा की वापसी की क्रूर भावना से सतुष्ट होकर उन्होने वह क्षेत्र खाली कर दिया।

इस बीच भारत मे एलेनबरो ने ब्रिटिशो की प्रतिष्ठा बचाने के लिए कुछ घोषणाए की। यह छिपाने के लिए कि ब्रिटिश अफगानिस्तान म रहने के एकदम अयोग्य ह उसने यह घोषित किया कि ब्रिटिशो की अफगानिस्तान मे कोई क्षेत्रीय महत्त्वाकाक्षा नही है और वे अपनी प्राकृतिक सीमा से ही सतुष्ट हैं। इसलिए 10 अक्तूबर को उसने घोषणा की कि ब्रिटिश 'अफगानो के ऊपर ही यह छोड़ते हैं। कि वे अपने अव्यवस्थित स्थिति मे जैसी सरकार चाह बनावें।'

एक दूसरी घोषणा मे जिसे उसे करना ही चाहिए था, उसने भारतीय राजाओ और सरदारो से कहा कि ब्रिटिश सोमनाथ का दरवाजा वापस ले आय है और इस तरह 800 वर्ष पुरानी शत्रुता का बदला ले लिया है। इस घोषणा ने प्रसन्न कम को किया खिन्न बहुतो को हिन्दू इसलिए प्रसन्न नही हुए क्योकि जो दरवाजा लाया गया था वह सचमुच सोमनाथ वाला नही था। दूसरी ओर भारत के मुसलमान गवनर जनरल के एकतरफा कारवाई से बहुत असतुष्ट थे। फीरोजपुर मे एक शानदार विजय-समारोह किया गया। यही पर गवनर जनरल ने अफगानिस्तान से वापस आयी सेना का स्वागत किया। यह सारा प्रयत्न केवल इसलिए था जिससे कि अफगानिस्तान पराजय के अपमान के आसू को पोछा जा सके। ब्रिटिशो की स्थिति सच्चाई मे अफगान युद्ध स पहले की स्थिति से बदतर थी। दोस्त मुहम्मद अपने स्थान पर आ गया जबकि शाहशुजा को अफगान गद्दी ब्रिटिश नही दिला सके। उसे सदा के लिए वे खो बैठे। 5 अप्रैल 1842 को खुराफाती शाहशुजा एक हत्यारे के हाथ का शिकार हुआ। वसे तो उसके न रहने से ब्रिटिशो को बडी क्षति नही हुई पर व एक ऐसे मित्र को खो बैठे जिसके आधार पर मध्य एशिया के देशो म वे बडी आशाए लगाये बैठे थे।

केयी ने प्रथम अफगान युद्ध का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि "इतनी कायरतापूर्ण, दिल दहला देनेवाली असफलता इतिहास के पृष्ठो मे कम मिलती है। पूरे विश्व के इतिहास मे इससे अधिक अच्छा, आकर्षक और शानदार

---

1 राबर्ट्स पूर्वोद्धृत पृ० 324।

पाठ पढाने वाली घटना भी नही मिलती।" जब ब्रिटिशो ने उस देश को त्यागा तो वे उसके मित्र नही थे। केयी ने पुन लिखा है कि उन्होने "अफगानिस्तान के प्रत्येक कस्बे और गाव मे अपार शत्रु पैदा कर दिये। उस देश मे ब्रिटिशो ने जो विनाश किया उससे फारसी आक्रामक रुख को बढावा मिला तथा उससे मास्को की ओर झुकने की स्थिति पैदा हो गई।" भारत को भी कम हानि नही हुई। "यह कहा जाता है कि इस विनाशकारी युद्ध ने भारत से जो कीमत ली वह लगभग 15 लाख रुपय थी। यह सब भार भारत के राजस्व पर पडा और लम्बे कालावधि तक इस बोझ से दबा कराहता रहा।"[1] 20 हजार लोग मारे गये जो एक बहुत बडी क्षति थी। ट्राटर ने लिखा है कि "चाहे जिस दृष्टि से देखा जाए वह नीति भूल और अपराध दोनो थी। शाहशुजा ने बार बार राजा की हैसियत से काबुल मे पुनप्रवेश से अनिच्छा व्यक्त की थी। उसका ताज ब्रिटिश अस्त्रा पर आधारित था। मिस एडेन के अनुसार सिखो से हमारी मैत्री 'वद्ध पियक्कडलपट' (रणजीत सिंह) की इच्छा पर निभर करती थी जिसकी मृत्यु कभी भी सम्भावित थी। सिंध से होकर जाने वाली हमारी सेना के कारण सधि की शर्तों के अनुसार, उस क्षेत्र के शासको को पथ प्रदशन करना होता था और वाहन व वस्तुओ की भी व्यवस्था करनी होती थी। सिंध क्षेत्र की सेना को अपने साधनो पर तो निभर होने के साथ-साथ उस क्षेत्र के शासको की सहायता पर भी निभर करना पडता था। राजाओ से सहायता लेने के लिए वही नीति अपनानी पडती थी जो शक्तिशाली लोग कमजोरो के लिए अपनाते थे। यहा तक की बहावलपुर के मैत्री रखने वाले नवाब को दबाकर और भाषण देकर सामग्री की सहायता करने को बाध्य किया गया। दूसरी ओर बस खैरपुर के अमीर को जो अपर सिंध का रहने वाला था, उसे अपने मित्रो की सहायता करने के लिए आज्ञापालन का पाठ सिखाने पर उतारू था"।[2]

प्रारम्भ से अ त तक अफगान-युद्ध की पूरी योजना मूखतापूण नीति पर आधारित थी। इतना ही नही इसे मूखतापूण ढग से चलाया भी गया और उसी तरह उसका अन्त भी हुआ। इस बारे म लाड आकलैण्ड ने बिना अपनी कौंसिल को विश्वास मे लिये काय किया। इतना ही नही उसने अपने सेनापति के मत की अवमानना की और बोड ऑफ कन्ट्रोल की इच्छाओ का भी अनादर किया। और इसके अतिरिक्त मध्य एशिया म रूसी खतरे का बढा चढाकर बताया गया। फारस सम्बधी ब्रिटिश मत्री मैक्लीन न 1836 मे कहा कि रूसी रेजीमेण्ट "जहा पर केन्द्रित था वह कैस्पियन के पश्चिमी किनारे के छोर पर था। यह मास्को वापस आने के लिए उतना ही दूर था जितना सिंध पर अटक। यह पीटसबग से लाहौर

1 देखें, केया पूर्वोद्धत पृ० 131 33 राबट्स पूर्वोद्धत।
2 ट्राटर एस० ज० द अन आफ आकलड, पृ० 75 76।

से भी दूर पडता था जो सिखा की राजधानी थी।"[1] और ब्रिटिश यह जानते थे कि उन दिनो इतने दूर युद्ध करना सरल काय नही था। पर मध्य एशिया के देश के सदभ मे रूस का नाम आ जाना ही ब्रिटिशा के अदूरदर्शिता का कारण बन गया जिसके फलस्वरूप उन्हाने परिपक्वता से काम नही किया। दुर्भाग्य से आकलैण्ड भी इसके लिए अपवाद नही था। 1839 के नवम्बर मे खीव पर पूण असफल रूसी आक्रमण से यह सिद्ध हो गया कि आखिर रूसी शक्ति के प्रति ब्रिटिश आतक कितना बढा चढाकर देखा गया था।

हेरात पर फारस का घेरा भी अनुचित नही था। हेरात के शासक कामरान ने बार बार फारस से हुई सधि को तोडा था और उसके क्षेत्र मे आक्रमण किया था। इस कारण फारस के शाह द्वारा हेरात पर आक्रमण उचित था। वह उस क्षेत्र को अपने राज्य मे मिलाना भी नही चाहता था। ट्राटर ने लिखा है कि यदि वह सफल भी हो जाता ' तो वह नगर कान्धार के नेताओ को सौंप दिया जाता जो इसे काबुल रह रहे अपने बडकजाई कबीले के एक भाई के लिए चाहते थे।'

राबट्स ने लिखा है कि "इस नीति को बनाने वाला ने आक्रमण के जो बेतुके बहाने बनाये वे सब घटनाओ की धारा मे पता नही कहा लापता हो गये जिससे उनका उद्देश्य भी पूरा न हो पाया।"[3] फारस की खाडी मे कर्राक पर ब्रिटिश आक्रमण ने फारस के शाह को चौंका दिया जिसके फलस्वरूप 9 सितम्बर 1838 को उसने हेरात का घेरा उठा लिया। दबाव मे रूस ने इगलैंड से अपना दूत वापस बुला लिया। विक्टेविच, जब अपमानित पीटसबग वापस लौटा तो उसने भी गोली मारकर आत्महत्या कर ली। यही वह सही समय था जब ब्रिटिश प्रतिष्ठासहित अफगानिस्तान से वापस लौट सकते थे। पर चूकि आकलैंड के सर पर लडाई का भूत नाच रहा था इसलिए यह अवसर भी खो दिया गया जिसके फलस्वरूप विनाशकारी घटनाए हुइ।

दोस्त मुहम्मद भी जिसके स्थान पर वे शाहशुजा को अफगान गद्दी पर नियुक्त करना चाहते थे अयोग्य शासक नही था। वह अफगाना मे लोकप्रिय था और साथ मे स्वतत्र भी जिसके आन्तरिक या बाह्य नीति मे ब्रिटिशो को हस्तक्षेप करन का अधिकार नही था। दोस्त मुहम्मद के विरुद्ध युद्ध का जो औचित्य आकलैंड ने अपने 1 अक्तूबर 1838 के मिनिट मे प्रस्तुत किया वह सत्य नही है। सर हरबट एडवडस ने लिखा है कि यहा दोस्त मुहम्मद खा के विचारो और कार्यो को गलत पेश किया गया। इस सम्बन्ध मे उसका मत इतना कठोर था कि रूस के लोग भी उससे ईर्ष्या

1 देखें नारिस जे० ए० द फस्ट अफगान वार 1838 42।
2 ट्राटर पूर्वोद्धत प० 79।
3 राबटस पूर्वोद्धत प० 317।

कर सकते थे।" दूसरी ओर शाहशुजा का मूल्यांकन बहुत बढा-चढाकर किया गया था। वह अफगानो का विश्वास नही प्राप्त किये हुए था और वे उसके अफगान-गद्दी प्राप्त करने के प्रयास को घृणा से देखते थे क्योकि इस काय के लिए वह अग्रेजो और सिखो की सहायता ले रहा था। 1809 मे वह अफगानिस्तान से निकाला गया था और उसने वापसी का दो बार प्रयास किया था पर असफल रहा था। सच मे वह एक साधारण योग्यता का व्यक्ति था। इस तरह ब्रिटिशो का दोस्त मुहम्मद के स्थान पर शाहशुजा को गद्दी दिलाने का प्रयास अफगान राष्ट्र के प्रति एक धोखा था।

इगलैंड के कुछ तत्कालीन महान राजनेताओ ने आकलैंड की इस नीति के लिए उसे उस समय ही चेतावनी दे दी थी जब युद्ध भी नही प्रारम्भ हुआ था। इनमे लाड बैंटिक, वेलजली, सर चार्ल्स मेटकाफ और एलफिन्स्टन ने अफगानिस्तान मे ब्रिटिश हस्तक्षेप की असफलता की भविष्यवाणी की थी। ड्यूक ऑफ वेलिंगटन की भविष्यवाणी सबसे ढग की थी। उसने चेतावनी दी कि यदि एक बार ब्रिटिश सेना ने सिन्ध नदी पार कर अफगानिस्तान मे सरकार बनवाने का प्रयास किया तो इसके बाद उन्हे "उस देश मे लगातार चलते"[1] रहना होगा। यह सच्चा सिद्ध हुआ पर अपने उत्तेजना मे आकलैंड दोस्त मुहम्मद से बदला लेने पर आमादा था और इन चेतावनियो की ओर उसने ध्यान नही दिया।

अफगानिस्तान के ब्रिटिश कारवाइयो की योजना शीघ्रता मे बनाई गई और उसे शीघ्रता मे ही काय रूप मे बदला गया। ऐसा लगता है कि अफगान युद्ध से सम्बन्धित आकलैंड के सभी निणय और इससे भी अधिक उसके उत्तराधिकारी लाड एलेनबरो के निणय भावनाओ पर अधिक आधारित थे, जान-बूझकर कम किये गये थे। ट्राटर लिखता है कि "आकलैंड ने जिन सेनापतियो को इस काय के लिए चुना वे इस काय के योग्य नही थे। मैकनाटन की प्रसन्नमुख विश्वसनीयता, एलफिन्स्टन की शारीरिक और मानसिक क्षति, शेल्टन का मूखतापूण दुराग्रह, सैनिक और असनिक शक्तियो के बीच गूढ मतभेद, सेल की सामयिक सहायता की वापसी आदि सभी ने मिलकर आकलैंड की योजना को और असफलता की ओर ढकेल दिया।"[2] आकलैंड की इस नीति को भी क्षमा नही किया जा सकता था जो उसने सेना के सामग्री जुटाने के लिए उस बीहड देश मे व्यवस्था नही की तथा साथ ही सनिक हित को मैकनाटन जैसे राजनीतिज्ञ के हाथ मे इसे देकर गौण स्थान प्रदान कर दिया।

आकलैंड द्वारा चुने गये गलत सेनापतियो ने अफगानिस्तान म जो भूलें कीं

---

1 देखें नारिस जे० ए० पूर्वोद्धत।

2 ट्राटर पूर्वोद्धत पृ० 79 80।

उसके कारण अंततः ब्रिटिशों का विनाश हुआ। अफगानिस्तान में स्थापित दुहरी सरकार जिसका काम केवल वहां कर वसूलना था और जो वहां के लोगों के विचारों का आदर नहीं कर रही थी, यह नीति उचित नहीं थी। ब्रिटिश की ओर से वहां के असंतुष्ट जनमत की ओर ध्यान न दिया जाना और अफगानों की षडयंत्रकारी कारवाइयों की सूचना प्राप्ति के लिए जासूसी व्यवस्था न स्थापित करना भी एक भयानक भूल थी। उनका अपनी सेना को काबुल में एक खराब स्थान पर नगर के बाहर ले जाना तथा काबुल के किले जैसे राजभवन वाला हिसार को शाहशुजा को वापस करना मूर्खतापूर्ण बात थी। इसके अतिरिक्त उत्तरदायी ब्रिटिश अधिकारियों की गैर जिम्मेदारीपूर्ण कारवाई यथा बर्न्स जैसे व्यक्ति की इस परिस्थिति में भी लालची प्रवृत्ति एक ऐसा अपराध था जिसे क्षमा नहीं किया जा सकता था।

सेनापतियों और उत्तरदायी अधिकारियों की गलतियों का यहीं अंत नहीं था। सैनिकों में अनुशासन पैदा करने के लिए कुछ नहीं किया गया जिससे खतरे की घड़ी में साहस खो देने से विनाश की स्थिति पैदा हो जाती थी। "असफलता भयानक सैनिक भूलों के कारण विनाश में परिवर्तित हो जाती थी।"[1] यदि ऐसा न होता तो ब्रिटिश प्रतिष्ठा को इतना आघात न लगता।

इसके अतिरिक्त जिस भांति ब्रिटिश सेनायें भोपाल और सिंध होकर आगे बढ़ीं और जिस क्रूर विधि से उनकी गई संधियों का उल्लंघन किया गया वह आकलैंड के लिए कोई प्रतिष्ठा की बात नहीं थी। वी० ए० स्मिथ ने लिखा है "आकलैंड में सत्य जानने की क्षमता नहीं थी क्योंकि उसने मात्र छह वर्ष पूर्व की गई संधि को ही नहीं तोड़ दिया, बल्कि कमजोरों को परेशान किया और एक कट्टर नीति अपनाई, युद्ध की कला के सिद्धान्तों को तोड़ा, कमजोर सेनापतियों के नेतृत्व में हजारों का जीवन समाप्त करवा दिया, और अंततः चुपचाप संसद को सूचित किये जाने वाले कागज को गड़बड़ कर भेज दिया।'

आकलैंड "काम धाम में अच्छा व्यक्ति था . . . मनोयोग से समाचार पत्र पढ़ता था . . ." आगे स्मिथ लिखता है 'पर वह शीघ्र निर्णय करने में अक्षम था। वह हमेशा उत्तरदायित्व के बोझ से दबा रहता था जिसके कारण उसके द्वारा लिखे गये निर्देश इतने अपूर्ण होते थे कि एजेंटों को कठिनाई के अवसर पर अपने मन से बहुत कुछ करने को मिल जाता था।"[3]

लार्ड आकलैंड ने "अपने प्राइवेट सेक्रेटरी (जान कॉल्विन) के हाथों में बहुत

---

1 रैम्जे म्योर, मेकिंग आफ ब्रिटिश इंडिया पृ० 309।
2 स्मिथ, पूर्वोक्त पृ० 603-06।
3 स्मिथ, पूर्वोक्त पृ० 356।

कुछ छोड रखा था, जो अवसरो पर उससे विवाद करता रहता था जबकि आकलैंड अपने हाथ सिर पर पीछे रखा बैठा रहता था। इसीलिए युवा कर्मचारियो ने उसे लार्ड काल्विन का नाम दे रखा था।"

लार्ड एलेनबरो भी इस क्षेत्र मे बेहतर नही सिद्ध हुआ। उसकी दो घोषणायें उसकी कमजोरियो का सबूत थी और साथ ही आत्म विश्वास के कमी का प्रमाण। इस सम्बन्ध मे लाड आकलैंड ने कहा कि "वह ठीक से जानता है कि लाड एलेनबरो भारत पहुचते ही पागल हो गया है।" घोषणाओ की मूर्खतापूर्णता तब और सिद्ध हो गई जब यह पता चला कि तथाकथित सोमनाथ का दरवाजा सच मे सोमनाथ मदिर का नही है।

भारत मे लाड एलेनबरो की कारवाइयो की चर्चा करते हुए लाड मैकाले न 19 माच 1843 को हाउस ऑफ कामन्स मे कहा, "हम लोगो ने कुछ ऐसे गवनरो को भेजा है जिसे वे प्रेम करते हैं, कुछ से वे डरते हैं, पर इसके पहले कभी भी ऐसा गवनर नही गया जिसपर वे हसते रहे हो।"

इन्स ने लिखा है कि प्रथम अफगान युद्ध सचमुच "पूरे ब्रिटिश भारत के इतिहास मे घटने वाली भयानक भूल थी।"[1] पर जब यह सब कहा जाता है तो हमे यह नही भूलना चाहिए कि एलेनबरो ने जो कुछ किया वह पुरानी भूलो का सुधारन के लिए किया जो लाड आकलैंड के काल मे की गई थी। और इसके अतिरिक्त उन नीतियो को जिन्हे भारत मे चालू किया वह मात्र ही उसके लिए उत्तरदायी नही था। आकबोल्ड के इस मत मे दम है जिसके अनुसार यदि उस काल के कागजात का अध्ययन ध्यान से किया जाय तो पता चलेगा कि आकलैंड की नीति गृह अधिकारी उसके ऊपर आरोपित करते थे। और इस तरह यदि उसे अपने ढग से काय करने का अवसर प्रदान किया जाता तो वह अधिक बुद्धिमान सिद्ध हो सकता था।

लाड आकलैंड को भारत से 1842 मे वापस बुला लिया गया। इगलैंड पहुचने के कुछ ही दिनो बाद लाड रसेल ने उसे अपने मत्रिमडल मे स्थान दिया और उसे प्रथम लाड आफ ऐडमिरैल्टी का पद प्रदान किया। पर अफगान असफलता ने उसके स्वास्थ्य को अत्यधिक प्रभावित किया था और [इसी कारण 1 जनवरी 1849 को उसकी मृत्यु हो गई। चूकि वह अविवाहित था इसलिए उसका अल का पद जब्त कर लिया गया।

चाल्स ग्रेनविल ने आकलड के सम्बन्ध मे कहा, "उसकी समझदारी की शक्ति शानदार थी, उसका स्वभाव शान्त था, उसकी रुचि उत्कृष्ट थी, ऊपर से गम्भीर

---

1 कम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया, पृ० 490 और देखें, वही, अध्याय XXVIII केयी पूर्वोद्धत, भाग 1।

दिखने के बावजूद वह प्रसन्न मनोवृत्ति का था। ऊपर से रूखा दिखने वाले आकलैंड में दयालुता का भाव छिपा था। वह स्नेह, दान और दया की भावना भी रखता था।"[1] पर जहां उसके 'काले कानून', शिक्षा नीति, दुर्भिक्ष और धार्मिक नीति ने जो उसने गृह क्षेत्र में अपनाई, उसे प्रशंसा दिलाई, वहीं उसकी अवध के प्रति मक्कारीभरी नीति ने तथा अफगानिस्तान पर युद्ध खुले आक्रमण नीति ने उसे आलोचना का शिकार बनाया। ऊपर बताया जा चुका है कि वह एक ऐसा व्यक्ति था जो शान्ति काल में अधिक सफलता प्राप्त कर सकता था, जबकि युद्ध और अधिक आपात काल में वह अपना न्याय संतुलन खो बैठता था जिससे प्रसिद्धि के स्थान पर बदनामी नसीब होती थी।

---

1 देखें केयी हिस्ट्री आफ वार इन अफगानिस्तान भाग 1 पृ० 123।

5

राजा रणजीत सिह (1780-1839)

राजा रणजीत सिह का शक्ति प्राप्त करना

लाड आकलड के काल की एक महत्त्वपूण घटना 1839 मे रणजीत सिह की मृत्यु थी। भारत के दूसरे गवनर जनरल के अध्ययन के पूव यह रुचिकर होगा कि हम पजाब के इस शासक की शक्ति प्राप्त करने के तथा अय विवरणो के विषय मे जानकारी प्राप्त कर लें। रणजीत सिह बहादुर और साहसी युवा सुकरचकिया सरदार महासिह का पुत्र था जिसका जम 2 नवम्बर, 1780 को हुआ। वह बच्चा ही था तभी उसपर चेचक का प्रकोप हुआ। वह बच तो गया पर चेचक ने उसके शरीर पर स्थायी चिह्न छोडे और इसमे उसकी एक आख जाती रही। जसाकि गाडन न लिखा है "एकाक्षी लडका लम्बाई मे भी कम था और मिस्ल के प्रतिनिधि के रूप मे जाटो के मध्य वह खिलवाड ही लगता था।"[1]

बालक की पुस्तको मे अधिक रुचि नही थी। उसके शिक्षको—भाई फागन सिह और दौलासिह न उसे शिक्षित करने की पूण चेष्टा की पर असफल रहे और इसी कारण "उसने बचपन मे जो सारी जानकारी प्राप्त की वह खेल और युद्ध कला के सम्बध मे थी। इन दोनो क्षेत्रो मे उसने अति योग्यता का परिचय दिया जिसके आधार पर उसका भावी जीवन बना।"[2] सच मे इस क्षेत्र मे उसके पिता की उसके सम्बध म ऊची राय थी जिसे वह कई आक्रमणो मे अपने साथ ले गया। इस सम्बध म उसने कहा "गुजरानवाला राज्य मेरे वीर लडके के लिए छोटा पडेगा। एक दिन वह अपने लिए एक बडा साम्राज्य तैयार कर लेगा।"

रणजीत सिह 12 वष की आयु का ही था जब उसके पिता का देहान्त हो गया। चूकि वह बहुत छोटा था इसलिए राज्य का कायभार उसकी मा और

1 गाडन द सिक्स पृ० 83।

2 पेने ए शाट हिस्ट्री आफ द सिक्स, पृ० 71।

दीवान लखपत राय के हाथ मे आया। चूकि इनमे से कोई भी प्रशासन के योग्य नही था इसलिए प्रशासन की प्रतिष्ठा घटी। जब रणजीत सिंह 17 वष की आयु का हो गया तो उसने सीधे शासन अपने हाथ मे ले लिया और अपने दिग्भ्रमित करनेवाले सरक्षको को पद मे हटा दिया। रणजीत सिंह के पिता के मामा दल सिंह को राज्य का प्रधानमत्री नियुक्त किया गया और युवा रणजीत ने अपना राजनैतिक जीवन प्रारम्भ किया।

प्रिसेप ने लिखा है कि पजाब मे जो कुछ सुदर था, रणजीत सिंह के जम के उपरात वह समाप्त हो चुका था। और जब रणजीत सिंह सिंहासनासीन हुआ तो पजाब म अव्यवस्था का ही साम्राज्य था। मुगल साम्राज्य के पतन और पजाब पर अहमदशाह अब्दाली के होने वाले हमलो ने इसे टुकडे टुकडे कर दिया था। अलग अलग सिख नताओ ने अलग-अलग स्थानो पर अपने लिए राज्य बना लिये थे। स्थिति यह थी कि जब रणजीत सिंह ने शासन सभाला तो पजाब मे छोटे छोटे बारह राज्य थे जिहे मिस्ल भी कहा जाता था। इसी मे से एक रणजीत सिंह का सुकरचकिया मिस्ल था। इसके अतिरिक्त सात छोटे छोटे मुस्लिम राज्य थे, एक छोटा हिदू राज्य था और तमाम छोटे छोटे बटे क्षेत्र थे।[1] सच म इस समय पजाब छोटे छोटे राज्यो का समूह था और अय लडनेवाली जातिया साहस दिखाने को स्वतत्र थी। रणजीत सिंह जैसा महत्त्वाकाक्षी व्यक्ति भी इही परिस्थितियो के बीच था। परिस्थितियो ने उसका पक्ष लिया और उसकी महत्त्वाकाक्षा ने उसे प्रोत्साहित किया। रणजीत सिंह आगे बढा, लडा और जीता तथा छोटी छोटी शक्तियो को समाप्त करके पूरे पजाब मे अपन राजतत्र का झडा ऊचा किया।

रणजीत सिंह के अधिकार और विजय के विषय मे विस्तार म बताना यहा स्थानाभाव के कारण सभव नही है। इसीलिए उसका अति सक्षिप्त विवरण दिया जा सकता है। जैसे ही रणजीत सिंह ने शासन शक्ति प्राप्त की, जमानशाह ने पजाब पर चौथा आक्रमण किया और लाहौर पर अधिकार कर लिया। पर रणजीत सिंह के भाग्य से, जब जमानशाह पजाब मे विजय की ओर अग्रसर था उसी समय उसे उसके सौतेले भाई महमूद के विद्रोह के कारण काबुल वापस बुला लिया गया। वह पजाब को अव्यवस्था और अनिश्चितता की स्थिति म छोडकर चला गया जिसका लाभ रणजीत सिंह ने पूर्णरूप से उठाया। कहैया मिस्ल की नता और अपनी सास सदा कौर की सहायता स रणजीत सिंह लाहौर की ओर आगे बढा और उसपर 16 जुलाई 1799 को अधिकार कर लिया, जिसपर अभी तक भगी

---

1 टाबडा जी० एम० हिस्ट्री आफ पजाब भाग 2 पृ० 18 30।
2 वही भाग 2 पृ० 31 82।

सरदारो का अधिकार था। पंजाब की राजधानी होने के कारण लाहौर पर किया गया अधिकार युवा रणजीत के लिए एक महान सफलता थी। इसका राजनैतिक महत्त्व भी था और मनोवैज्ञानिक भी। अब पजाब के कुछ अति महत्त्वपूर्ण शक्तियो ने सगठित होकर इस उगते हुए सितारे का विरोध करने का निश्चय किया। लाहौर के पूर्व भसीन गाव मे 1800 के प्रारम्भ मे एक सेना एकत्रित हुई। रणजीत सिंह इनसे मुकाबले के लिए तैयार हुआ। पर युद्ध प्रारम्भ होने स पूर्व ही शत्रु सैनिको म आपस म अनबन प्रारम्भ हो गई। इसी बीच इनका एक नेता गुलाब सिंह भगी अत्यधिक भाग पीकर मर गया। इसके बाद ये सभी तितर बितर हो गये और भविष्य मे पुन कभी लडने के लिए सगठित नही हुए। भाग्य-पुत्र रणजीत सिंह के लिए यह और सुनहरा अवसर था जब वह साहस और महत्त्वाकाक्षा से भरा प्रत्येक दिशा म अपनी नगी तलवार लेकर दौड पडा और जल्दी ही पूरा पजाब उसके पावो तले आ गया।

1805 आते-आते जम्मू, नरवल, मिरोवल, अकलगढ, कसूर, कागडा, पिंडी, भाटिया, धन्नी, चिनियोट दस्का, फगवाडा, झग, कर्ला और कठिया, अमृतसर तथा इसी तरह के अन्य स्थान या तो जीत लिए गये या उन्हे राज्य म मिला लिया गया या उन्हे अपना सहायक बना लिया गया। 1805 म जनरल लेक के पीछा किये जाने पर होल्कर रणजीत सिंह की शरण मे आया जिससे ब्रिटिशो से उसकी रक्षा हो सके। महाराजा चूकि मुल्तान जीतने की तैयारी मे व्यस्त था इसे अधकचरा ही छोडकर वापस आ गया और अमृतसर से स्थिति के मुकाबले की तयारी करने लगा। गुरुमता[1] की अन्तिम बैठक बुलाई गइ जिसने उसे ब्रिटिशो से झगडा न मोल लेने की सलाह दी। महाराजा ने उनकी सलाह मानी और 1806 मे ब्रिटिशो से एक मैत्री सधि की, गुरुमता सगठन को समाप्त किया और उसकी शक्ति स्वय ग्रहण की। कुछ समय तक शात रहने के बाद उसने पुन अपनी विजय और छीना झपट की नीति प्रारम्भ कर दी।

1806 और 1809 के बीच कसूर पर अतत अधिकार किया गया। पठानकोट, जसरोटा, छम्ब, बसोली, गुजरात, शेखपुरा, कागडा आदि को या तो छीन लिया गया या उन्हे सहायक बना लिया गया। पजाब से गुरखा शक्ति सदा के लिए समाप्त कर दी गई। 1806, 1807 और 1808 मे रणजीत सिंह ने सतलज नदी के पूर्व के क्षेत्रो पर आक्रमण किया जिसका उद्देश्य यह था कि दक्षिणपूर्व के सिख राज्यो को भी वैसे ही सगठित किया जाय जैसे सतलज के उत्तर पश्चिम। पर यहा ब्रिटिशो ने उसकी महत्त्वाकाक्षा को प्रतिबधित किया। महाराजा से कहा

---

1 सिखों की राष्ट्रीय सभा जिसमे मिस्लो के प्रतिनिधियों और अन्य लोगो ने भाग लिया।

गया कि वह 1809 की अमृतसर की सधि के अतगत सतलज क उस पार ही तक अपनी कारवाइयो को सीमित रखे और सतलज के इधर के क्षेत्र को ब्रिटिशो के लिए छोड दे। अमृतसर की सधि ने महाराजा को ब्रिटिशो की ओर से करारी कूटनीतिक पराजय प्रदान की जिसके कारण वह अपने झडे के नीचे गुरु गोविन्द सिह के पूरे खाल्से को सगठित नही कर सका। पर तब भी एक दृष्टि से यह उपयोगी सिद्ध हुआ। ब्रिटिशो स सधी के बाद वह सतलज के उत्तर पश्चिम म बिना रोक टोक के अपनी शक्ति को सगठित कर सकता था। सही तो यह था कि 1809 के बाद ही मुल्तान कश्मीर और पशावर जसे क्षेत्रो म उसने महत्त्वपूण विजय प्राप्त की थी।[1]

इन सभी विजयो के बाद जब 1839 मे रणजीत सिह की मृत्यु हुई तो उसने अपने उत्तराधिकारियो के लिए एक लाख चालीस हजार वगमील का राज्य छोडा जिसकी सीमाए उत्तर की ओर लद्दाख तक थी और दूसरी ओर सुलेमान पवता तक थी। दक्षिण-पूव म इसकी सीमा सतलज तक और दक्षिण पश्चिम मे शिकारपुर के निकट तक थी। इस तरह रणजीत सिह ने मुगल साम्राज्य के खडहरो मे से एक राज्य का निर्माण किया और अफगान आक्रमणो से जो अव्यवस्था उत्पन्न की गई वह "पजाब की शक्ति, सैनिक सगठन और कायक्षमता की दृष्टि से निश्चित ही उत्तर के मुसलमानो से बेहतर सिद्ध हुई।"

आग्ल-सिख सम्बन्ध

रणजीत सिह के नेतत्व म आग्ल सिख सम्बन्धो का सक्षिप्त विवरण यहा दिया जा रहा है। रणजीत सिह और ब्रिटिशो के बीच नियमित सम्बध 1800 मे हुआ। उत्तरी और दक्षिणी भारत के कुछ भागो पर अधिकार के बाद और विशेषकर आग्ल अवध मैत्री सधि के बाद ब्रिटिशो ने पजाब की ओर ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त लाड वेलजली के नेतत्व म जो घटनाए हुइ उसके कारण ब्रिटिशो को इस दिशा म देखना पडा। यह वह काल था जब भारत पर जमानशाह के आक्रमण का खतरा था। इस अफगान शासक को टीपू सुल्तान ने आमत्रित किया था। टीपू ब्रिटिशो का शत्रु था। सावधानी के तौर पर ब्रिटिशो ने मुशी युसुफ अली को रणजीत सिह के दरबार मे भेजा। वह रणजीत सिह के लिए अच्छी भेंटें भी ले गया जिससे कि महाराजा ब्रिटिश लोगो के साथ आ जाय। पर शीघ्र ही जैसे जमानशाह के आक्रमण का भय जाता रहा वैसे ही युसुफ अली को वापस बुला लिया गया।

---

1 चोपण औ० एन० पजाब एज ए सावरेन स्टट प 238।

2 ग्रावडा पूर्वोद्धत भाग 2 प० 45 83।

दूसरा सम्बन्ध 1805 मे उस समय हुआ जब मराठा नेता होल्कर भागता हुआ पजाब मे घुस आया। जनरल लेक उसका पीछा कर रहा था। होल्कर रणजीत सिंह की सहायता चाहता था। जनरल लेक ने रणजीत सिंह को पत्र लिखा कि होल्कर को यदि वह सहायता देगा तो यह ब्रिटिश शक्ति के लिए एक चुनौती माना जायेगा। महाराजा ने पजाब के प्रमुख सिख नेताओ की सभा बुलाई जिन्होंने ब्रिटिशो का विरोध न करने को कहा। इस कारण मैत्री सम्बन्ध स्थापना हेतु उसने ब्रिटिशो से 1 जनवरी, 1806 को एक नियमित समझौता किया। इसमे यह भी निश्चित हुआ कि वह होल्कर की सहायता नही करेगा और ब्रिटिशो से मित्रता रखेगा।

उसका ब्रिटिशो से तीसरा सम्बन्ध 1808 09 मे हुआ। 1806 और 1807 मे रणजीत सिंह ने सतलज के इस पार के क्षेत्रो पर आक्रमण किया जिससे वह वहा नियत्रण स्थापित कर सके। इस क्षेत्र के राजाओ का एक प्रतिनिधि मडल दिल्ली के रेजीडेंट सेटन से मिला और महाराजा से अपनी रक्षा हेतु निवेदन किया। ब्रिटिश स्वय भी कुछ काल से इस सम्बन्ध मे ऐसा करने को सोच रहे थे पर वे यह कदम इसलिए नही उठा पा रहे थे क्योकि उन्हे डर था कि कही वह नैपोलियन से न मिल जाय जो भारत के विरुद्ध आगे बढने के लिए भी सोच रहा था। 1807 मे जब नैपोलियन ने रूस के जार के साथ सधि कर ली तो भारत के लिए यह खतरा और स्पष्ट हो गया। इसीलिए 1808 मे मेटकाफ को महाराज के दरबार मे उसे ब्रिटिश पक्ष मे करने के लिए भेजा गया। रणजीत सिंह न इस अवसर का लाभ उठाकर ब्रिटिशो से सतलज के उस पार के क्षेत्रो पर अधिकार करने मे सहायता के लिए कहा और इसी बीच इस क्षेत्र पर तीसरा तूफानी आक्रमण करके वहा पर अधिकार कर लिया। यह कहने की आवश्यकता नही है कि ब्रिटिशो ने महाराजा के इस व्यवहार को नापसन्द किया और उनके भाग्य से जब इस बीच नैपोलियन कही और व्यस्त हो गया तो भारत पर उसके आक्रमण का भय जाता रहा। इसके बाद 1809 म ब्रिटिशो न महाराजा से अमृतसर की सधि करने को कहा। इस सधि के अतगत सतलज नदी को सीमा माना गया जिसके दक्षिण पूव म राजा किसी क्षेत्र मे कोई रुचि नही लेगा। वे क्षेत्र इसके अपवाद होग जिनपर इस सधि से पूव महाराजा का अधिकार रहा होगा।

इस तरह दक्षिण-पूव मे रोक दिए जाने पर महाराजा ने उत्तर, उत्तर-पश्चिम और मध्य पजाब मे अपने क्षेत्र को सगठित कर लिया। जैसाकि लाड एलेनबरो के अध्याय म हम पूरी गाथा दे आये हैं, महाराजा की महत्त्वाकाक्षा को सिंध क्षेत्र मे उस समय ठेस लगी जब ब्रिटिशो न 1832 मे उस देश के अमीरो के साथ एक व्यापारिक सधि कर ली जिसका फल सिंध पर उनके अधिकार के रूप मे सामने आया। महाराजा को अफगानिस्तान मे भूतपूव शासक शाहशुजा स भी लाभ

उठाने का अवसर नहीं प्रदान किया गया जिसका विवरण आगे आएगा। सच तो यह है कि अमृतसर में महाराजा के कूटनीतिक पराजय के बाद, महाराजा आगे दिन व दिन ब्रिटिश सम्बन्धों के कारण कमजोर ही होता गया। उसके कुछ अत्यधिक तत्पूर्ण अधिकार जो सिस सतलज क्षेत्र में थे जैसे मन्नी और फिरोजपुर, इस संधि के द्वारा अस्वीकृत कर दिए गये सिंध में उसकी महत्वाकांक्षा पर प्रतिबंध लगा दिया गया, अफगानिस्तान में उसकी रुचि पर प्रहार किया गया। 1829 में जैकमाट ने लिखा कि महाराजा का यह स्पष्ट मत था कि ब्रिटिश जन्ता का मुकाबला करने की स्थिति में नहीं है। उसने एक बार कहा भी कि नक्शे पर ब्रिटिशों का रंग लाल है और एक समय ऐसा आयगा जब पूरे देश का नक्शा ही लाल हो जाएगा। 1839 में जब महाराजा की मृत्यु हुई तो वह अपने मन में आश्वस्त था कि उसके राज्य के दिन गिने चुने हैं।

अफगानिस्तान से सम्बन्ध

जब रणजीत सिंह ने अपने मिस्ल का उत्तरदायित्व संभाला उस समय पंजाब में ऐसे भी क्षेत्र थे जिसपर अफगानों के विजय के बाद उन्हें नेताओं के अधीन सौंप दिया गया था जो अब उन्हें कर तो नहीं देते थे पर अफगानिस्तान के शासकों को अपना शासक मानते थे। इन क्षेत्रों में से महत्त्वपूर्ण थे कश्मीर, मुल्तान, डेरा इस्माइल खां, डेरा गाजी खां और झंग आदि। इस तरह स्वाभाविक रूप से यदि महाराजा पूर्ण पंजाब का संगठित करना चाहते तो इन छोटे छोटे राज्यों से भी लड़ना पड़ता। रणजीत सिंह ने 1807 में कसूर जीता और 1818 में मुल्तान पर अधिकार किया और इस तरह के राज्यों पर धीरे धीरे अधिकार कर लिया। पर इनमें से किसी भी विजय ने उसे अफगानिस्तान के संपर्क में नहीं पहुंचाया।

कश्मीर की विजय—वह अब बड़े राजनैतिक खेल में लगना चाहता था अर्थात् वह कश्मीर और पेशावर पर अधिकार करना चाहता था जिसके फलस्वरूप वह सीधे अफगान शासकों के संपर्क में आ गया। 1809 के बाद अफगानिस्तान में गद्दी के लिए गम्भीर संघर्ष प्रारम्भ हुआ। उस वर्ष एलफिन्स्टन ने जैसे ही शाहशुजा से संधि पूरी की उसी समय उसके सौतेले भाई महमूद शाह ने कांधार पर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही नीमला में उसे पराजित कर अफगानिस्तान से बाहर खदेड़ दिया। शाहशुजा ने कश्मीर के अफगान गवर्नर अता मुहम्मद की सहायता से अपनी गद्दी प्राप्त करने की चेष्टा की पर पराजित हुआ। वह शरण के लिए पहले कश्मीर पहुंचा वहां से लाहौर और अंततः ब्रिटिशों ने उसे लुधियाना में शरण दी।

अफगानिस्तान में अपने को स्थापित करने के बाद महमूद शाह ने वजीर फतेह खां को कश्मीर पर आक्रमण कर अता मुहम्मद को दंडित करने का आदेश दिया।

1812 मे फतह खा एक सेना सहित आगे बढा पर वह घाटी मे प्रवेश करे उसके पहले उसे एक सूचना मिली कि इसी समय रणजीत सिंह की सेनाए भी कश्मीर पर आक्रमण व विजय के लिए आ रही ह। रणजीत सिंह और फतेह खा रोहतास मे मिले और यह समझौता किया कि दोना मिलकर कश्मीर पर आक्रमण करेंग और बाद मे लूट के माल और क्षेत्र मे से 1/3 भाग सिखो को दिया जायेगा।[1] पर जैसे ही सम्मिलित सेनाए आगे बढी एक स्थान पर पहुचकर फतेह खा ने सिखा को धोखा दे दिया और उन्ह पीछे छोडकर आगे बढ गया। सिखो को कुछ नही दिया गया न तो लूट सामग्री मे से और न ही क्षेत्र मे से। फतेह खा ने घाटी को जीता और यहा पर शक्तिशाली गवनर के रूप म अपने भाई आजिम खा को नियुक्त किया।

पर रणजीत सिंह कूटनीति मे कोई अचेतन नही था। उसने अता मुहम्मद के एक भाई अटक के शासक जहादाद खा मे सपक किया। सिंध के दक्षिण मे अटक एक महत्त्वपूर्ण जगह थी। इस सभावना से कि कही कश्मीर की तरह अटक पर भी फतेह खा अधिकार न कर ले उसने इस किले पर शातिपूवक सिखो का अधिकार हो जाने दिया। रणजीत सिंह ने जहादाद खा को उसके सैनिका का वेतन चुकाने के लिए एक लाख रुपये दिये। और इस तरह सिख राजा ने एक बडा इनाम प्राप्त किया। अटक के किले की युद्ध की दृष्टि से बडी महत्ता थी। मध्य एशिया के भारत के आक्रमणकारियो के रास्ते मे यह किला पडता था जो पजाब की रक्षा का अच्छा काय कर सकता था। इस किले के हाथ म होने से रणजीत सिंह अपने क्षेत्र को बढाकर खैबर दर्रे तक ले जा सकता था।

जब फतेह खा को इसकी सूचना मिली तो वह अति दुखी हुआ और उसने तुरत अपने छोटे भाई, दोस्त मुहम्मद के नेतृत्व मे सिख चुनौती से निबटने के लिए एक शक्तिशाली सेना भेजी। इस तरह रणजीत सिंह के समय प्रथम सिख अफगान लडाई चुच म हुई जिसमे सिखा को इतनी पूण विजय प्राप्त हुई कि उन्होने और आगे बढकर अफगान कैम्प हजरो को लूटा। दोस्त मुहम्मद ने अपने साहस और बहादुरी का परिचय तो दिया पर उसके साथी निराश हो गये जिसके फल-स्वरूप फतेह खा को निराश अफगानिस्तान वापस लौटना पडा।

चूकि रणजीत सिंह और अफगानिस्तान के बीच यह पहला सघष था इस-लिए सिखा की विजय न इन्हे उत्तर पश्चिम मे अपने साम्राज्य विस्तार की नीति अपनाने को प्रोत्साहित किया। पर इससे भी अधिक सिख विजय की महत्ता यह थी कि यदि फतेह खा अफगानिस्तान और कश्मीर पर विजय प्राप्त कर सगठन कर सकता और 'सिखो पर भी विजय प्राप्त कर सकता"। डॉ० एन० के० सिन्हा के शब्दो

---

1 सन्धि की शर्तों के सम्बन्ध मे अलग अलग मत हैं। देखें छाबडा हिस्ट्री आफ पजाब भाग 2 पृ० 61।

मे "निश्चित ही वह अहमद शाह अब्दाली की सत्ता को भारत म पुनर्स्थापित करन की चेष्टा मे सफल होता।"[1] रणजीत सिंह का कश्मीर पर दूसरा आक्रमण 1814 मे हुआ। पर चूकि आजिम खा ने अपनी शक्ति सगठित कर ली थी इसलिए इस घाटी मे विजय सरल न थी। बाद मे जब अफगानिस्तान मे फतेह खा की हत्या कर दी गयी तो आजिम खा को उसका स्थान लेने के लिए जाना पडा। जाने से पूव एक कमजोर व्यक्ति जब्बर खा को उसन अपना उत्तराधिकारी गवनर बनाया। इसी कारण इसी साल मे तीसरी बार 1819 ई० म मिस्र दीवान चद के नतृत्व म एक सेना भेजी गयी जिसने लगभग बिना रुधिरपात किय विजय प्राप्त कर ली और कश्मीर पर अधिकार कर लिया।

पेशावर की विजय—पेशावर को कभी अफगानो द्वारा सिखो से छीना जाना इस दृष्टि से अधिक महत्वपूण था कि पजाब से अफगानो को हटाने के बाद, यह अफगान क्षेत्र पर अधिकार का एक नवीन प्रयास था। पेशावर पर प्रथम सिख आक्रमण ठीक उसी तरह की परिस्थिति मे हुआ जिस तरह कश्मीर पर हुआ था। काबुल का वजीर फतेह खा शक्तिशाली होता जा रहा था और खैबर के इस आर पेशावर, नौशेरा आदि क्षेत्र उसने अपने भाइयो सदर यार मुहम्मद खा, सुल्तान मुहम्मद खा और दोस्त मुहम्मद खा को सौप दिया। फतेह खा की बढती शक्ति काबुल के शासक शाह महमूद के आखो मे गड रही थी जिसके लडके कामरान ने वजीर की हत्या करा दी। इसका विवरण ऊपर आ चुका है। इसी घटना के कारण फतेह खा का भाई आजिम खा कश्मीर से दृश्य स्थल पर पहुचा। शाह महमूद और कामरान दोनो कद कर लिय गय और आजिम खा ने शाह महमूद के भतीजे शाह अयूब को गद्दी दिलाई और स्वय वजीर हो गया। इन परिस्थितियो ने रणजीत सिंह को यह अवसर प्रदान किया कि वह पेशावर पर 1818 मे आक्रमण कर द।

जैसे ही सिख सेनाए आगे बढी, यार मुहम्मद और दोस्त मुहम्मद जो कश्मीर के एक साथ गवनर थे, कश्मीर नगर से भाग खडे हुए और युसुफजाई पवतो म शरण ली। पेशावर पर रणजीत सिंह का अधिकार हो गया पर उसने प्रत्यक्ष रूप से शासन करना स्वीकार न कर बुद्धिमानी का परिचय दिया। रणजीत सिंह ने 25 हजार रुपये का नजराना प्राप्त किया और नगर अपने पुराने अटक के मित्र जहादाद खा के हाथो सौप दिया और उसे अपना सहायक बना लिया। पर इसके कुछ समय ही बाद यार मुहम्मद खा ने नगर पर पुन अधिकार कर लिया और जहादाद खा को खदेड दिया। रणजीत सिंह को तुरत आक्रमण करना पडा। पर अब की बार यार मुहम्मद ने स्वय सिखो का सहायक बनना स्वीकार कर लिया

---

1 सिन्हा एन० के० रणजीत सिंह पृ० 52।
2 छाबडा पूर्वोद्धृत भाग 2 पृ० 59 65।

और 50 हजार रुपये का नजराना प्रदान किया जिससे सिख सेनाए वापस बुला ली गयी।

यह सब काबुल के वजीर अजीम खा को अच्छा नही लगा। 1823 मे दशहरे के अवसर पर जब रणजीत सिंह ने उसके भाई यार मुहम्मद से वार्षिक कर वसूला तो वह क्रुद्ध हो गया। उसने एक बडी सेना एकत्रित कर सिख शक्ति को चुनौती दी और अटक तथा पेशावर के बीच बसने वाली कट्टर जातियो को जेहाद के लिए उभारा। समाचार पाकर रणजीत सिंह ने भी तैयारी की और एक शक्तिशाली सेना के साथ आगे बढा। इस सेना मे हरि सिंह नलवा, घना सिंह मलवाई, अत्तर सिंह सधनवालिया और दीवान किरपाराम जैसे प्रसिद्ध सेनापति थे। वह मिस्र दीवान चद के साथ पीछे पीछे चला। दोनो सेनाए नौसेरा मे मिली। अफगान अपने कट्टरता से भरे साहस और बहादुरी के कारण कुछ समय तक तो अफगान जीतते दिखते थे। अकाली फूला सिंह मार डाले गये और सिख साहस खो ही रहे थे कि इसी समय रणजीत ने गुरु गोवि द सिंह की पूजा की और सिखो के समक्ष हिंसापूण भाषण दिया और 'सत श्री अकाल' का नारा लगाया। इससे सिख उत्साहित हुए और अफगानो ने यह अनुभव किया कि सिखो की कोई नयी सेना आ गई है और वे भाग खडे हुए। ब स ने लिखा है कि, "सिखो ने विजय 'सत श्री अकाल' शब्दो के उच्चारण के कारण प्राप्त की।"[1]

इस युद्ध म सिखो के 2000 सैनिक मारे गये जबकि पठानो के 4000 सैनिक मारे गये। कुछ अति उत्तम सिख अधिकारी जैसे अकाली फूला सिंह, गुरखा जनरल बालु बहादुर और गभ सिंह भी मारे गये। पर अजीम खा बहुत निराश हुआ। "वह रोने लगा और उसने अपनी दाढी नोचनी प्रारम्भ कर दी, उसने अपने साथियो के धोखेबाजी की आलोचना की जो उसके ऊपर इतनी बडी आफत ले आये।"[2]

रणजीत सिंह ने विजयोल्लास मे पेशावर नगर मे फिर से प्रवेश किया जहा तमाम नागरिको ने उसका स्वागत किया। यार खान जो अफगान सेनाओ को देख कर भाग गया था, वापस आया और पेशावर का फिर से गवनर नियुक्त किया गया। अब उसे एक लाख दस हजार वार्षिक का कर देना था। नौसेरा मे रणजीत सिंह की विजय अति महत्त्व की थी। जिस तरह चुच की विजय ने सिंध के पूव मे उसकी शक्तिशालिता को सिद्ध किया था ठीक उसी तरह "इस युद्ध ने सिंध और पेशावर के बीच उसकी महत्ता को सिद्ध कर दिया था।"

पर इस विजय के तीन वष के अ दर ही रणजीत सिंह को पेशावर मे एक अन्य

---

1 ब स ट्रेवेल्स पृ० 124।

2 लतीफ सय्यद मुहम्मद हिस्ट्री आफ द पजाब प० 430-31।

चुनौती का सामना करना पड़ा। 1827 में एक अफगान कट्टरपंथी सैय्यद अहमद, जो मग्रेगर के अनुसार "अपने बिरादरी के अन्यों की भांति खतरनाक और षड्यन्त्रकारी था"[1] और जो कुछ के मतानुसार ब्रिटिश के हाथ की कठपुतली था, ने अपने को पैगम्बर घोषित किया, यार खां को चुनौती दी, पशावर पर अधिकार किया और अफगानों को रणजीत सिंह के विरुद्ध जेहाद छेड़ने के लिए कहा। हरिसिंह नलवा को भेजा गया जिसने अफगानों को युद्ध में पराजित किया। पर इसके कुछ ही दिनों बाद पठान पुनः एकत्रित हुए, यार मुहम्मद को मार डाला और पेशावर पर पुनः अधिकार कर लिया। एक समय तो ऐसा लगा कि पेशावर सिखों के हाथ से निकल गया है। पर एक शक्तिशाली सिख सेना पुनः प्रकट हुई जिसका नेतृत्व सेनापति वेनतुरा और शेरसिंह कर रहे थे। इसने नगर पर अधिकार कर लिया। डॉ० आर० आर० सेठी के अनुसार, 'रणजीत सिंह को उस व्यक्ति की प्रशासकीय योग्यता पर भरोसा न रहा जो सुदूर देश के इस नगर को संभाल सकता क्योंकि यहां के लोगों और सिखों में जन्मजात शत्रुता थी।'[2] इसलिए उसने यार मुहम्मद के भाई सुलतान मुहम्मद को पुरानी शर्तों पर पेशावर का शासक नियुक्त किया।

1833-34 में रणजीत सिंह की सहायता प्राप्त कर अफगानिस्तान का भूतपूर्व शासक शाहशुजा अफगानिस्तान की ओर आगे बढ़ा। इसका विवरण नीचे दिया जा रहा है। जब अफगानिस्तान का तत्कालीन शासक दोस्त मुहम्मद इस युद्ध से निबटने में लगा और चूंकि कुछ समय से हरिसिंह नलवा उत्तर पश्चिम सीमा पर आगे बढ़ने की नीति का समर्थन कर रहा था, रणजीत सिंह ने पेशावर जीतकर अपने नियन्त्रण में रखने का निश्चय किया। फलस्वरूप अप्रैल 1834 में एक शक्तिशाली सिख सैनिक आक्रमण नौनिहाल सिंह के नाम मात्र के नेतृत्व में किया गया क्योंकि असलियत में हरिसिंह नलवा और फ्रांसीसी सेनापति वेनतुरा तथा कोर्ट इसके सेनापति थे। इस सेना ने चमकानी पहुंचकर आक्रमण के लिए स्थिति संभाली। बड़कजाई सरदारों ने अपने परिवारों को भेजकर स्थिति से निबटने की तैयारी कर ली थी। बहाना यह किया गया कि कर देने में देरी की गई है और इससे भी आश्चर्यजनक यह था कि नौनिहाल सिंह की उपस्थिति व नेतृत्व में यह मांग की गई कि कर बढ़ा दिया जाय। मांग को तुरन्त स्वीकार कर लिया गया। पर तुरन्त ही एक नया आश्चर्य पैदा करने वाला संवाद मिला कि चूंकि नौनिहाल सिंह नगर में आना चाहता है इसलिए सुल्तान मुहम्मद को कुछ काल के लिए इसे त्याग देना चाहिए। सुल्तान मुहम्मद ने ऐसा ही किया और बाग नदी के तट पर शेखां नामक अपने गांव चला गया। सिखों ने पेशावर पर 6 मई 1834 को

---

1 मग्रेगर : हिस्ट्री आफ द सिक्ख्स, भाग 1, पृ० 162।

2 सेठी आर० आर० : द माइटी एण्ड द श्रीउड महाराजा, पृ० 168।

अधिकार कर लिया जिसे औपचारिक रूप से रणजीत सिंह के राज्य मे मिला लिया गया और हरिसिंह नलवा को इसका प्रथम गवनर नियुक्त किया गया।

जब दोस्त मुहम्मद को यह समाचार मिला तब वह शाहशुजा के साथ युद्ध मे व्यस्त था। पशावर की हानि ने उसे क्रुद्ध कर दिया आर उसने अपन शत्रु पर भयानक आक्रमण करके पराजित कर दिया, जिसके फलस्वरूप शाहशुजा को अपने सैनिको सहित भागना पडा। इस प्रथम विजय के उत्साह मे दोस्त मुहम्मद ने रणजीत सिंह को लिखा और परामश दिया कि, "यदि आप कृपा करके, दया व उदारता की भावना मे पेशावर हमे वापस कर दें तो हम आपके दरबार मे सुल्तान खा को भेजेंगे।" इसके साथ ही उसने यह भी कहा कि यदि उन्होने ऐसा नही किया तो वे युद्ध के लिए तैयार रहे। रणजीत सिंह ने इसे मानने से सीधे इनकार कर दिया जिसके फलस्वरूप 18 सितम्बर, 1834 को अफगाना न युद्ध की घोषणा कर दी और इसके उत्तर मे महाराजा न उतनी ही मजबूत सेना उसके उत्तर के लिए भेज दी।

पर सिखा के विरुद्ध सफलता बिना विशेष तयारी के सभव नही थी। अफगान शासक ने इसीलिए इस युद्ध को धार्मिकता का रग देने का निश्चय किया। पर यह इसलिए सभव नही हुआ क्योकि वह अपने नाम से सिक्के नही ढलवा सकता था और चूकि दोस्त मुहम्मद साधन के अभाव मे तथा अपने विरोधी भाइयो के ईर्ष्यावश राजा की उपाधि नही प्राप्त कर सका था इसलिए उसके नाम से खुत्बा भी नही पढा जा सका। पर कुछ सोच विचार के बाद दोस्त मुहम्मद ने अन्तत यह सब करने का निश्चय किया। 4 दिसम्बर 1834 को काबुल के मुख्य मुल्ला मीर वायज ने उसे अमीरुल मोमिन घोषित किया। उसने दूसर दिन गाजी की पदवी धारण की और जेहाद के लिए तैयारी प्रारम्भ की। पर साधन के अभाव मे उसे जनता का शोषण करना पडा जिसके कारण थोडे ही काल म पूरा क्षेत्र "शोषण और कष्ट का चित्र" दिखाई पडने लगा। पर जब इससे भी पूरा नही पडा तो दोस्त मुहम्मद ने तमाम सरदारो से सहायता की अपीलें की। कधार, कुन्दूज के मुहम्मद मुराद बेग और सिन्ध के अमीरा से भी सहायता की अपीलें की गयी। सिन्ध के अमीर न सहायता के लिए बडी बडी शर्तें भेजी। केवल बिजनौर के मीर आलम खा और पजशीर के फतेह खा युसुफजाई ने कुछ सेना भेजने का कहा। ब्रिटिशा से भी दोस्त मुहम्मद ने रूस का भय दिलाकर सहायता की अपील की। लुधियाना मे ब्रिटिश एजेण्ट वाडे न गवनर जनरल के पास सस्तुति प्रेषित कर दी। पर गवनर जनरल ने सीधा इनकार करते हुए एजेण्ट को लिख भेजा कि अफगान शासक से मैत्री का पत्र-व्यवहार ता जारी रखा जाय पर उसे किसी सहायता का आश्वासन न दिया जाय।

इस बीच रणजीत अपनी युद्ध की तैयारी करता रहा और अप्रैल 1835 म

पच्चीस हजार सिख सैनिक आगे बढ़े। दोनो सेनाए अपनी-अपनी सीमा पर खडी रही और किसी ने भी युद्ध प्रारम्भ नही किया। महाराजा ने कूटनीतिक चाल का ध्यान मे रखकर देरी की जबकि दोस्त मुहम्मद ब्रिटिशो से अब भी निश्चित उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा। रणजीत सिंह अतत अपने कूटनीतिक खेल म सफल हुआ। वाडे ने लिखा है कि, "यह एक एसा क्षेत्र था जिसम वह सर्वोच्च था।" महाराजा ने अपनी सेवा म एक अमेरिकी हरलान के साथ फकीर अजीजुद्दीन को दोस्त मुहम्मद के साथ सधि करने के लिए भेजा। पर असल मे इन्हे उसके दरबारियो का घूस देकर फोडने के लिए भेजा गया था। दोस्त मुहम्मद स्तभित रह गया। उसके भाई सुल्तान मुहम्मद को फुसलाकर अपनी ओर मिलाया गया जिसने दोस्त मुहम्मद के सिख एजेंटो का कैद करने के प्रयास को भी विफल कर दिया। इस बीच गुलाब सिंह और अविताविले को कोहाट की ओर भेज दिया गया था और वेंतुरा महाराजा से अटक म जा मिला था। इस बीच कुछ सेना आगे इसलिए बढाई गई जिससे दोस्त मुहम्मद को सिख तोपखाने के दायरे मे लाया जा सके। एसी स्थिति म दोस्त मुहम्मद के पास या तो तुरन्त लडने का रास्ता था या युद्ध क्षेत्र से तुरन्त भाग खडे होने का। 11 मई, 1835 की रात को वह भाग खडा हुआ। इस तरह "सिख शासक के षडयत्र ने, जिसके कारण अमीरो के गृह क्षेत्र मे दरार पैदा हो गई रात भर मे अफगान तयारी को नस्त नाबूद कर दिया जिसकी ओर सिख सगठन और सेना भय से देख रहे थे।"[1]

सुल्तान मुहम्मद और उसके भाइयो—पीर मुहम्मद और सय्यद मुहम्मद न जब पशावर पर अपना अधिकार त्याग दिया तो उन्हे कर के बदले हश्तनगर, कोहाट और तनको प्रदान किया गया। इन्हे यह भी काय सौंपा गया कि वे सिखो के विरुद्ध दोस्त मुहम्मद की भविष्य की योजनाओ पर निगाह रखें।

इस सदमे से उबरने मे दोस्त मुहम्मद को समय लगा। इस बीच 1836 के बीच मे सिखो न शबकदर म एक किला पूरा कर लिया जिसने उन्हे पवतीय क्षेत्र मे तोपें ढोन के लिए पशावर से जलालाबाद तक रास्ता प्रदान किया। एक अन्य किले के निर्माण का काय जमरूद म प्रारम्भ किया गया जो खैबर के निकट ही था।

पशावर पर अतत शक्ति स अधिकार बनाये रखने के पव सिखो को अफगानो से एक बार और लडना पडा। 1837 मे राजकुमार नौनिहाल सिंह का विवाह होना तय हुआ। हरि सिंह नलवा ने इस अवसर के लिए सेनाए भेजी। फास्ट नामक व्यक्ति जो भारत मे ब्रिटिशो की सेवा म था और दोस्त मुहम्मद के पुत्र अकबर खा का मित्र था जमरूद से होकर इस समय जा रहा था। उसका उद्देश्य अकबर

1 सेठी पूर्वोद्धृत प० 181।

से भेंट करना था । उसने जमरूद के किले को असुरक्षित देखा था और उसने अकबर से इस अवसर का लाभ उठाने को कहा। अकबर ने सिखो से झगडे का बहाना खोजा और एक नाले से पानी लेने का झगडा 30 अप्रैल, 1837 के ऐतिहासिक युद्ध मे बदल गया जिसमे अतत अफगान पराजित हो गए।

पर सिख हानि भी कम नही हुई । सिखो का महान सेनापति हरि सिंह नलवा किले की रक्षा करता हुआ, महाराजा को घटना की सूचना भेजने के बाद मारा गया। पर यह सदेश रणजीत सिंह के षड्यन्त्रकारी डोगरा सरदारो द्वारा रणजीत सिंह को नहीं दिया गया जिसके फलस्वरूप युद्ध-स्थल पर सिख सेना प्रेषित नही की जा सकी। इस तरह य़ो तो महाराजा की यह विजय भी महान थी जिसके बाद पेशावर बराबर उसके हाथो मे बना रहा, पर एकाकी सम्राट की हानि भी छोटी नही थी। जब रणजीत सिंह को हरि सिंह नलवा के मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ तो वह उदास हो गया।

शाहशुजा और रणजीत सिंह

अफगानिस्तान से रणजीत सिंह के सम्बन्ध का एक दूसरा पहलू भी था जिसम अतत वह ब्रिटिश कूटनीतिज्ञता से पराजित हो गया। यह बात अफगानिस्तान के भूतपूर्व शासक शाहशुजा के सम्बन्ध मे थी जिसे रणजीत सिंह ने पुन गद्दी दिलाने मे सहायता के लिए आश्वस्त किया।

जैसा हम बता आए हैं, शाहशुजा 1809 मे उस समय अफगानिस्तान स भगा दिया गया जब उसके सौतेले भाई महमूद शाह ने अफगान-गद्दी पर अधिकार कर लिया। कुछ कठिनाइया के बाद शाहशुजा न कश्मीर म शरण ली जहा उसे नजरबन्द कर दिया गया। उसकी पत्नी लाहौर की ओर आगे बढी जहा महाराजा ने उसे शरण भी दी और अच्छी मासिक पेंशन भी बाध दी। बाद मे इस महिला ने महाराजा से अपने पति को छुडवाने मे सहायता के लिए याचना की और यह वादा किया कि ऐसा हो जान पर इसके बदले लाहौर सम्राट को प्रसिद्ध हीरा कोहिनूर प्रदान किया जाएगा। यह भी एक कारण था जिससे महाराजा ने 1812 मे कश्मीर पर आक्रमण किया था। इसमे रणजीत सिंह को फतेह खा न धोखा दिया पर वह शाहशुजा को सुरक्षित वापस लाने म सफल हुआ। अफगान राज-परिवार को अब कोहिनूर दन के लिए बुलाया गया जिसम उन्होने आनाकानी की और यह कहा कि वह हीरा तो उनके पास है ही नही। पर महाराजा को झासा नही दिया जा सका और शाहशुजा को कोहिनूर (प्रकाश के पवत यह कोहिनूर का साहित्यिक अथ था) मे अलग होना पडा।

हीरे को गवाने के बाद और कुछ अन्य दुर्भाग्या को झेलता शाहशुजा बचकर ब्रिटिश क्षेत्र म चला गया जहा ब्रिटिश सरकार न उसके लिए पचास हजार रुपये

की प्रति वर्ष की व्यवस्था कर दी। यह धन उसके भरण पोषण, खान कपडे के लिए पर्याप्त था और साथ ही उस गद्दी की पुनर्प्राप्ति का स्वप्न देखने का भी अवसर मिला। इस स्वप्न को साकार करने का प्रयास उसने 1818 में कश्मीर के अजीम खा की सहायता से करने की चेष्टा की पर उसे सफलता न मिली।

रणजीत सिंह ने 1818 में पेशावर पर अधिकार किया था। पर इस पर सीधे अधिकार करने के स्थान पर अफगानो के भय से, उसने इसे एक सहायक राज्य के ही रूप में अपने पास रखा। अफगान शासको की ओर से इसे वापस लेने का बराबर प्रयास चल रहा था और इस प्रयास में 1823 के बाद भी कमी नही आई जब सिखो के हाथो नौशेरा में अजीम खा बुरी तरह पराजित किया गया। इन्ही परिस्थितियो में 1826 में महाराजा ने शाहशुजा को अफगानिस्तान का पुन शासक बनाए जाने का समर्थन किया जिससे उसे आशा थी कि सिंध के उस पार की तमाम समस्याए सुलझ जायेगी। इससे युसुफजाई कबीले की समस्या भी सुलझ जायगी जो लगातार कठिनाइया पैदा करते रहते थे।

इसलिए शाहशुजा को लाभपूर्ण शर्तें भेजी गई पर शाहशुजा उन्हे स्वीकार करने को तैयार नही था क्योकि उसे महाराजा में अभी पूर्ण विश्वास नही था। ब्रिटिश भी इस योजना के पक्ष में नही दिखाई पड रहे थे जो इसलिए आवश्यक था कि उनका सरक्षण उस पर बना रहे।

पर शीघ्र ही इस अवसर को खो देने के लिए शाहशुजा पछताया। और जब सैय्यद अहमद ने पेशावर में जेहाद की घोषणा करके भी असफलता प्राप्त की तो शाहशुजा ने रणजीत सिंह से सपर्क किया और यह पूछा कि क्या वह अब भी उसे सहायता करने को तैयार है। रणजीत सिंह तो उसकी सहायता को तयार हो गया, पर ब्रिटिशो की चेतावनी के कारण मामला ठण्डा पड गया।

1830 में शाहशुजा का एक ऐसा ही प्रयास फिर असफल हो गया। पर 1832 में चूकि परिस्थितिया बदल गयी इसलिए पुराने शासक के लिए अनुकूल अवसर आया। रूस की सहायता से फारस का शासक अब्बास मिर्जा अफगानिस्तान की ओर अपने क्षेत्र के विस्तार का प्रयास कर रहा था। चकि अफगान शासक ऐसे शक्तिशाली शासक का मुकाबला करने की स्थिति में नही थे इसलिए शाहशुजा आश्वस्त था कि यदि इस परिस्थिति में वह शक्तिशाली सेना जुटा सके जिससे अफगान शत्रुओ का विरोध सभाला जाय तो अफगान उसका फिर से शासक के रूप में स्वागत करेंगे। सिंध के अमीरो ने जो अफगानो के अति साधारण सार्वभौमिकता में आते थे कुछ शर्तो पर शाहशुजा को सहायता करना स्वीकार किया। अफगान नेताओ द्वारा भी उसे उसी तरह का सहायता देने का निमत्रण मिला। इन परिस्थितियो में शाहशुजा ने एक बार फिर महाराजा से सपर्क स्थापित किया। इस बार महाराजा ने शाहशुजा से बातचीत की जगह पर ब्रिटिशो से

सपक कर यह जानना चाहा कि क्या वे भी इस तरह की योजना मे [illegible] को तैयार हैं। पर रूसी खतरे के बावजूद ब्रिटिशो ने इस सम्बन्ध मे [illegible] दिया।

पर रणजीत सिह ने इस ओर से अभी कदम नहीं खींचा। [illegible] इस शत पर आर्थिक सहायता देने को कहा कि [illegible] विभाजन सिखो के साथ कर लेगा। पर यह एक ऐसी [illegible] ने नही माना और बताया कि अमीर अफगानों के [illegible] न ही अफगान गद्दी प्राप्ति मे इसे बीच मे लाया [illegible] समझौता नही हो सका।

पर शाहशुजा ने ब्रिटिशो से इस सम्बन्ध मे [illegible] के लिए 16 हजार रुपये देने को तैयार हो गए। [illegible] गया जो इस शत पर आर्थिक सहायता देने [illegible] अफगान क्षेत्रो से अपने अधिकार का [illegible] मे सिखो के अधिकार मे आ गय हैं। [illegible] सधि की गई और इस तरह सहायता [illegible] तैयार की।

मेरे ही समर्में।"

इसने ब्रिटिश कारवाई म तीव्रता ला दी। रणजीत सिंह और शाहशुजा दोना को बुलाकर एक त्रिपक्षीय सधि की गई जिसम यह तय किया गया कि दोस्त मुहम्मद के स्थान पर शाहशुजा को शासक बनाया जाय। 1838 म सधि पर हस्ताक्षर हुए जिसकी शर्तों का परीक्षण हम 'प्रथम अफगान युद्ध' के अध्याय म ही कर आये हैं।[1]

सधि की शर्तें रणजीत सिंह के स्वीकार करने योग्य थी। पर जब बाद म उसे पता चला कि शिकारपुर पर उसका अधिकार नही माना जाएगा और न ही उसे जलालाबाद पर अधिकार करने दिया जाएगा और इसके अतिरिक्त जब ब्रिटिशो न आपात काल के लिए सिंध के तट पर सेनाएं भेजने का निश्चय किया तो रणजीत सिंह को दाल म कुछ काला नजर आया और उन्होंने सधि पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। कनिंघम लिखता है[2] कि जब ब्रिटिशो न अपने बलबूत पर इस योजना को आगे बढाने को कहा तो महाराजा को सधि-पत्र पर बाध्य होकर हस्ताक्षर करना पडा।

इस तरह जो महाराजा शाहशुजा को अफगान गद्दी पर लाने के लिए सबसे अधिक उत्सुक था समय आने पर इस मामले म अनिच्छुक हो गया। सभवत महाराजा की यह इच्छा थी कि अफगान गद्दी पर जो व्यक्ति बैठे वह अफगानो पर सिख-सहायता और सदिच्छा से ही शासन करे। यदि ऐसा हो सकता तो जिन अफगान क्षेत्रो पर सिखो का अधिकार था उसे पक्का कराया जाता और सिखो की महत्वाकाक्षा को उत्तर-पश्चिम के क्षेत्र मे और आगे तक ले जाया जा सकता, पर ऐसा हुआ नही। ब्रिटिशो ने उसके उद्देश्य को नकार दिया और इसके पूर्व कि शाहशुजा अफगान गद्दी पर अधिकार कर सके, रणजीत सिंह की 1839 म मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय महाराजा ब्रिटिश आक्रामक नीति स निराश और त्रस्त था। अफगानिस्तान मे ब्रिटिशो की कारवाइ का विवरण हम पहले ही दे आए हैं। शाहशुजा को गद्दी प्रदान भी की गई तो शीघ्र ही वह मार डाला गया। ब्रिटिशों को स्वय भी विनाश का सामना करना पडा। इस सम्बन्ध मे मग्रेगर लिखता है, 'यदि रणजीत सिंह जीवित होता और शाह की सफलता म अपनी महत्त्वाकाक्षा के दर्शन करता तो शायद ही उसे कोई प्रसन्नता होती। पर यदि ब्रिटिशो का विनाश देखने के लिए जीवित रहता तो निश्चित ही वह इस स्थिति से लाभ उठाने की कोशिश करता।[3]

---

1 देख अध्याय 4।

2 कनिंघम सिखो का इतिहास, पृ० 198।

3 मग्रगर पूर्वोद्धत भाग 2 पृ० 45।

उत्तर-पश्चिम सीमा-नीति

इससे पूर्व कि हम सिख अफगान सम्बन्धों की चर्चा समाप्त करें, यह रुचिकर होगा कि हम रणजीत सिंह की उत्तर-पश्चिम सीमा नीति पर विचार कर लें। भारत के इतिहास में इस सीमा की रक्षा और उचित प्रशासन भारतीय शासकों के लिए एक सिर-दर्द रहा है। रणजीत सिंह इसमें अपवाद नहीं था। कुछ लेखक सोचते हैं कि महाराजा की महत्त्वाकांक्षा अफगानिस्तान पर स्वयं अधिकार करने की थी और इस तरह "विधिवेत्ता के उस भविष्यवाणी को वह सच करेगा और चन्दन का दरवाजा वापस लायगा। यह एक ऐसा कार्य होगा जो रणजीत सिंह के और कार्यों में चार चांद लगा देगा।" और साथ ही भारत पर आक्रमण करके खून बहाने वालों से वह बदला भी ले लेगा और यह इस बात से सिद्ध है कि रणजीत सिंह ने अफगान गद्दी पर अपना ही व्यक्ति रखने की हमेशा चेष्टा की।[1]

रणजीत ने वाडे से स्वयं एक बार कहा, "फ्रांसीसी अफसर मुझसे यह कहते हैं कि यदि मैं 90 नियमित बटालियनें, दो या तीन घुड़सवारों का रेजीमेंट और कुछ तोपखाना उन्हें दे दूं तो वे काबुल जीत लेंगे और पूरे अफगानिस्तान को मेरे अधिकार में ला देंगे।" महाराजा का सबसे अच्छा सेनापति हरि सिंह नलवा भी इस मामले में कम उत्साही नहीं था। सच तो यह था कि वह अरसे से इस सीमा पर आगे बढ़ने की नीति की वकालत कर रहा था। पर तथ्य यह है कि महाराजा स्वयं इस तरह की विजय की योजना को गम्भीरता से नहीं लेता था क्योंकि उस क्षेत्र में काफी दिनों से अव्यवस्था फैली हुई थी। इस नीति में कई कारण थे। इनमें से प्रथम यह था कि वहां की स्थानीय भौगोलिक, क्षेत्रीय और जलवायु सम्बन्धी स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह स्वयं या उसके सेनापति और सैनिक उसमें सुविधा से रह सकें। महाराजा ने एक बार कश्मीर में विनाश का सामना किया था और इस कारण इस तरह की योजना को वह पुनः अपने मन में न लाया होगा। दूसरे वह इसके लिए अपने को पर्याप्त शक्तिशाली भी नहीं समझता था क्योंकि इस नीति को अपनाने के बाद ब्रिटिश की ईर्ष्या और विरोध का उसे सामना करना पड़ता। तीसरे, रूस भी इस ओर रणजीत सिंह के प्रभाव का बढ़ना हुआ न बर्दाश्त करता और न ही रणजीत सिंह अपने राज्य की सीमा से रूस की सीमाओं के निकट ले जाना पसन्द करता। और अन्तिम रूप से, उस क्षेत्र के शक्तिशाली कबीले शक्तिशाली सिख साम्राज्य के अनुगामी कभी न होते, इस बात की भी अनदेखी नहीं की जा सकती थी। इसके बिना अफगानिस्तान पर सिखों का अधिकार केवल विनाश सा उपस्थित करता।[2]

---

1 सिन्हा एन० के० पूर्वोक्त पृ० 62।
2 सेठी पूर्वोक्त पृ० 229-30।

रणजीत सिंह डेरा इस्माइल खां, डेरा गाजी खां, बन्नू, कोहाट, टांक और पेशावर आदि अफगान क्षेत्रों पर अधिकार करके ही संतुष्ट था। पर यहां पर उसने अपने करदाता शासकों के माध्यम से शासन करना अधिक उचित समझा, सीधे शासकीय नियन्त्रण द्वारा नहीं। पेशावर के मामले में यह बात स्पष्ट हो गई। महाराजा ने यहां पर जो सावधानियां बरतीं उससे सिद्ध है कि वह कितना योग्य राजनयज्ञ था। 1834 तक इस क्षेत्र में वह मुस्लिम गवर्नरों के माध्यम से शासन करता रहा। यह उसने तब तक किया जब तक कि उस स्थान पर सीधे शासन करने की स्थिति में वह नहीं हो गया। उस स्थिति में एक आक्रमण द्वारा वह उस स्थान पर अधिकार कर लेता। पर राज्य छीनने के बाद भी प्रशासन में परिवर्तन कम से कम किया जाता और स्थानीय अधिकारियों को सीधे लोगों से संपर्क का अवसर प्रदान किया जाता। स्थानीय खानों और सरदारों को कर, अर्थ दंड और दंड देने के अधिकार नयी स्थिति में भी प्राप्त हो जाते। यहां तक कि मौत की सजा तक वे दे सकते थे।

रणजीत सिंह की सीमा के कबीलों के प्रति नीति में विचारहीनता या मध्य मार्गहीनता का पुट नहीं था। इन कबीलों के प्रति उसकी नीति को 'टिप एण्ड रन' की नीति का नाम दिया गया है जिसे ब्रिटिशों ने उत्तर पूर्व के नागाओं के साथ और बाद में उत्तर पश्चिम में इन कबीलों के साथ स्वयं अपनाया। इस नीति का उद्देश्य था समय समय पर शक्तिशाली आक्रमण करके उनमें भय भर देना पर साथ ही इस बात का कभी प्रयास न करना कि वे नियमित रूप से सरकार के नियन्त्रण में आ जायें। रणजीत सिंह ने इस क्षेत्र में कई किलों का निर्माण किया। इससे अफगानिस्तान के विरुद्ध जहां एक ओर पंजाब सुरक्षित हुआ वहां दूसरी ओर कर वसूली में भी सुविधा हुई। इससे कबीलों को भी शान्त रखा जा सका। ये किले दमा, नारा, माकू और सताना आदि में बनाये गए। मचीन और मिचनी में जो किले बने उससे पेशावर शक्तिशाली हुआ। इसके अतिरिक्त जहांगीरा, खैराबाद, शबकदर और अटक में भी किले बनाये गए। साथ ही हरिपुर, नवाशर और मनशेरा में भी किलों का निर्माण किया गया। इसके अतिरिक्त शक्तिशाली सेना भी संगठित की गई जो घूम फिरकर कबीलों पर निगाह रखती थी और उन्हें शान्त रखती थी।

पर इस सबके बावजूद देश के इस क्षेत्र में शान्ति स्थापित नहीं की जा सकी। इन कबीलों से बार बार संघर्ष होता था। दीवान राम दयाल, अमरसिंह कला और अत्तारसिंह जैसे योग्य सेनापति इन्हीं से लड़ते हुए मारे गये। पेशावर में भी शान्ति नहीं बनी रह सकी। जब कभी अफगानिस्तान में इनका कोई नेता सिखों के विरुद्ध जेहाद छेड़ता तो इस जाति की धार्मिक भावना सिखों के प्रति उमड़ पड़ती। सैयद अहमद ने ऐसा ही किया। पर इस जाति के द्वारा इस तरह की समस्याएं

खडी करने से महाराजा को क्षेत्रीय हानि नही के बराबर ही होती। मासन ने मई 1835 मे एक भविष्यवाणी की कि "पेशावर मिस्र की भूमि की तरह है पेशावर के कबीले इसराइल की सतानो की भाति हैं और रणजीत सिंह फरोह की तरह है। अटक नदी नील की तरह लाल हो जायेगी, यदि कोई मोजेज आकर फरोह को उसमे डुबो दे।" पर ऐसा कभी नही हुआ।[1]

---

1 मासन पूर्वोद्धृत भाग 6 पृ० 45।

6

रणजीत सिंह और सिख राज्य(1780-1839) सतत

नागरिक प्रशासन

सर लेपेल ग्रीफिन ने लिखा है कि "प्रशासन करना कला है जो बिना विशेष प्रशिक्षण के भी अति बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत की जा सकती है।"[1] और रणजीत सिंह की इसी तरह के व्यक्तियों व शासकों में गिनती की जायगी।

कुछ लेखकों के अनुसार रणजीत सिंह अपने हाथों में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्ति संजोकर क्रूर तानाशाह बन गया था। पर यह उसके चरित्र का बड़ा क्रूर मूल्यांकन है। अपने स्वभाव से ही रणजीत सिंह तानाशाह होने लायक नहीं था। इसे हम उसकी आदतों और कारवाइयों में देख सकते हैं। परम्परा से यह पता चलता है कि जब उसने अमृतसर के स्वर्णमन्दिर की यात्रा की तो अकाली फूलासिंह ने उसे रास्ते में इसलिए रोका क्योंकि उसने कुछ सिख नियमों और परम्पराओं की अवहेलना की थी। इस पर महाराजा ने तुरन्त कोड़े का दंड भोगने के लिए अपनी पीठ खोल दी।

रणजीत सिंह की नम्रता कहावत बन गई थी। वह ऊंची उपाधियां नहीं धारण करता था और न ही सरकार अपने नाम से चलाता था। उसने अपने सरकार का नाम सरकार ए खालसा रखा था। उसके सिक्कों पर नानक सहाय या गोबिन्द सहाय लिखा होता था। सहाय शब्द का अर्थ रक्षा था। उसके राज्य के सील पर 'श्री अकाल सहाय' लिखा होता था। कनिंघम उसके विषय में लिखता है 'चाहे खुले पांव किसी धार्मिक प्रतिनिधि के समक्ष सर झुकाने जाना हो, या लम्बे दाढ़ी वाले किसी सैनिक को पारितोषिक देना हो, चाहे कट्टर अकालियों पर रोक लगानी हो अथवा किसी प्रान्त पर अधिकार करना हो—वह सदा यह दिखाने की चेष्टा करता था कि सभी कुछ गुरु के लिए किया जा रहा है, खालसा के लाभ के लिए

1 ग्रिफिन, सर लेपल रणजीत सिंह पृ 129।

किया जा रहा है और ईश्वर के नाम पर किया जा रहा है।"[1]

गुरु गोविन्दसिंह के पास 'रणजीत नगाडा' नामक एक ढोल थी और रणजीत सिंह कहता था कि वह स्वय गुरु की ढोल है। पेन के अनुसार वह 'राजशाही की कुछ वाह्य चीजें ही प्रयोग मे लाता था। उसके वस्त्र अति साधारण होते थे। वह जिन गहना का प्रयोग करता था वे थे कमर मे बाधने वाला मोतियो का पिरोया हुआ गहना तथा कलाई पर बधा हुआ कोहिनूर। उसने माथे पर कोई राजसी वस्त्र नही धारण किया और न ही गद्दी का प्रयोग किया।" एक बार उसने बैरन वान ह्यूजेल से कहा, "मेरी तलवार मेरे पास बनी रहे बस इतना ही मैं चाहता हू।"[3]

इस तरह स्पष्ट है कि रणजीत सिंह का व्यवहार तानाशाह की तरह का नही था। पर यदि ऐसा होता भी तो परिस्थितिया इसके अनुकूल नही थी। गुरु गोविन्द सिंह ने सिखो के अनेक तरह के तत्त्वो को एक मे मिलाया था। इसके अन्तगत 'पजपियारा' की स्थिति गुरु से भी अच्छी थी। इस सबके कारण सिखो म तानाशाही को स्थान मिलने का प्रश्न नही था। अपने प्रयासा के बावजूद महाराजा अकालिया को अनुशासित कर सकना था जो कि अमृतसर के सशस्त्र प्रहरी थे और सिख नैतिकता के पोषक थे। पजाब के सरदार कमजोर तो हो गये थे, पर उनके पास अब भी ऐसी शक्ति थी जिससे महाराजा उन्हे वचित नही करा सका। लाहौर मे दरबार मे शक्तिशाली डोगर परिवार के समक्ष कभी वह अपने को असहाय पाता था।

सैनिको की शक्ति और स्वतन्त्रता की भावना तथा पजाब के लोगो की इसी तरह के गुणा को भी कम नही आका जा सकता था। उन्होने क्षेत्रा पर विजय महाराजा की व्यक्तिगत इच्छा की पूर्ति के लिए नही की बल्कि इसलिए की जिससे कि खाल्सा और गुरु का नाम आगे बढे। प्राय महाराजा अपनी इच्छा के विपरीत विजय करने के लिए जाता था जिससे कि सैनिक उसके विरुद्ध खडे होन की जगह उसी मे व्यस्त रह। जनता म विशेषकर सिख सभी जवान और बूढे सैनिक थे। उन्होने युद्ध के युग देखे थे फिर भी हथियार नहीं डाला था। उनका चरित्र ही एसा था कि तानाशाह होने के लिए वहा कोई स्थान नही था।

फिर भी, जब यह सब कहा जा रहा है तो इससे इनकार नही किया जा सकता कि रणजीत सिंह एक शक्तिशाली सम्राट था। एक ही बात स्मरणीय है कि वह शक्तिशाली था, जन सेवक था और जनता उससे प्रेम करती थी। रणजीत सिंह

1 कनिघम हिस्ट्री आफ द सिक्स प० 233।
2 पेने ए शाट हिस्ट्री आफ पजाब प० 117।
3 ह्यूजेल ट्रेवेल्स इन पजाब एण्ड कश्मीर प० 286।

उनका नेता था और गाधी जी का एक कथन इस सदभ म यहा प्रस्तुत किया जा सकता है, "यहा जनता जा रही है। मुझे उसके पीछे चलना चाहिए क्योंकि मैं उनका नेता हू।"

केन्द्रीय सरकार

केन्द्र म राजा ही प्रशासन का केन्द्र बिन्दु था और वह जिसम चाहता सलाह लेता और जो चाहता वह करता। वैसे वह इसके प्रति सावधान रहता कि उसे क्या पसन्द करना चाहिए और क्या नापसन्द। उस पाच मन्त्री सहायता करते थे। मुख्य मन्त्री सबसे ऊचा था। इस पद पर राजा के अति विश्वासपात्र जस राजा ध्यानसिंह जस लोग काय करते थे। दूसरा महत्त्वपूण मत्रिपद विदेश मत्री का था जिसपर फकीर अजीजुद्दीन का नियुक्त किया गया था। महाराजा उसम अपने व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध मे भी राय लेता था। इसके बाद रक्षा मत्री था जो महाराजा की सेना के सेनापति की तरह की शक्ति रखता था। दीवान मोहकम चन्द, मिस्र दीवान चन्द, और हरि सिंह नलवा इस पद का सुशोभित कर चुके थे। भवानी दास या दीनानाथ को अथ मत्री के पद पर भी नियुक्त किया गया था। सदर ए ड्योढी का पद भी महत्त्वपूण था क्योंकि इस पद पर काम करने वाला व्यक्ति महत्त्वपूण था क्योंकि वह महाराजा के निकट सपक म आता था जिसम उसकी उन्नति सरलता से हो सकती थी। राजा ध्यानसिंह भी इसी पद स आग बढे थे।

केन्द्र म 12 प्रशासकीय विभाग थे जिनम स प्रमुख निम्नलिखित थे—(1) दफ्तर ए अबवाब उल माल—इस विभाग मे भू राजस्व विभाग का लेखा जोखा रहता था। इसके अतिरिक्त कर और आय के स्रोतो का विवरण यहा होता था, (2) दफ्तर ए-ताजिहात—इसम राज परिवार के व्यय आदि की व्यवस्था थी। हरम के व्यय का भी प्रबन्ध यही से होता था, (3) दफ्तर ए मवाजाब—यह विभाग सनिक और असैनिक कमचारियो के वेतन का हिसाब रखता था, (4) दफ्तर ए रोजनामचा खच—इस विभाग म महाराजा के प्रतिदिन के व्यय का लेखा जोखा होता था।

स्थानीय प्रशासन

राज्य चार प्रान्तो मे बाटा गया था। कश्मीर या जन्नत ए नाजिर मुल्तान या दारुल अमन पेशावर और लाहौर। इसके अतिरिक्त पवतीय क्षेत्र थे जो महाराजा को कर प्रदान करते थे। ऐसे सरदार और नवाब भी थे जिनसे उनका राज्य छीन लिया गया था। पर उन्हे उदार जागीर प्रदान की गई थी जिसके अन्तगत उन्हें शासन-अधिकार प्रदान किय गय थ।

प्रत्येक सूबा परगना मे बटा था, परगने तालुका मे बट थे और प्रत्येक तालुका मौजा म बटा था जो 50 से 100 सख्या मे होते थे। जिन सिद्धान्तो पर विभाजन किए गए वे प्रशासन की सुविधा के लिए थे। इसके अतिरिक्त राजस्व प्राप्ति सुविधा और रहने वालो की भिन्नता के बनाये रखने के लिए भी यह आवश्यक था।

प्रत्येक सूबे के अधिकारी को नाजिम कहत थे। यह पद उसे ही प्राप्त होता था जो महाराजा का बडा विश्वस्त व्यक्ति होता था। दूसरा पदाधिकारी करदार कहलाता था। वह प्रान्त के एक भाग का नेता होता था। वह दिन प्रतिदिन शासन को देखन के कारण एक महत्त्वपूण व्यक्ति होता था। नाजिम का कार्यालय अपीलीय था इस कारण दूसरे पदाधिकारी की महत्ता और बढ जाती थी। अपने प्रभाग मे करदार के अधिकार विस्तत थे और वह अपने क्षेत्र मे राजकीय छाया ही मालूम पडता था। करदार ही भू-राजस्व बदोबस्त की देखभाल करता था और राजस्व कलेक्टरी की तरह काय करता था। वह लेखाधिकारी भी था और खजाची भी, न्यायाधीश भी था और मजिस्ट्रेट भी, वह कस्टम अधिकारी भी था और इक्साइज आफिसर भी। वह अपने प्रभाग म प्रशासन के सभी क्षेत्रा की देख-भाल करता था। उसके निणय के विरुद्ध अपीलें भी नाजिम के यहा कम ही जाती थी क्योकि अपन क्षेत्र का वह सर्वेसर्वा होता था।

एक दूसर मत के अनुसार जिसका समथन डॉ० सिन्हा[1] ने भी किया है, प्रदेश प्रान्ता की जगह पर जिला म बटा हुआ था। तीन तरह के लोगा का इन जिला का प्रशासन काय सौंपा गया। प्रथम, वे जो केन्द्र से नियुक्त किय गये और जिन्हें करदार कहा गया। दूसरे वे जो स्थानीय क्षेत्र म प्रभावशाली थ जसे मुल्तान के दीवान सावनमल जिन्हें पैतक आधार पर पद प्रदान किया गया। वे वार्षिक कर देत और केन्द्र को अपनी आन्तरिक स्थिति के विषय म बहुत कम सूचित करत। और तीसरे वे जो सैनिक नता थ और जिनके पास जमीदारी थी। इसके बदले वे आवश्यकतानुसार एक निश्चित सख्या मे सैनिका की व्यवस्था करत थे। अपन क्षेत्र मे उनकी शक्ति असीमित थी।

स्थानीय प्रशासन का सबस प्रमुख पहलू पचायत थी जो प्रत्यक गाव मे थी। अपन क्षेत्र मे इसके पास अत्यधिक अधिकार थे। डॉ० सिन्हा ने लिखा है कि, "इन पचायता को इतनी महत्ता प्राप्त थी कि इनके समक्ष कोई असत्य बोलने का साहस नही कर सकता था।'[2] प्रत्यक गाव आत्म निभर था। गाव म जमीन बहुत रहने वाला द्वारा भाई चारा के आधार पर मिल-जुलकर प्रयोग म लायी जाती थी।

1 सिन्हा एन० के० रणजीत सिंह पृ० 139।
2 वही पृ० 140।

लाहौर नगर का प्रशासन अन्य प्रभागों के प्रशासन से अलग और स्वतंत्र था। यह मुहल्ला मे बटा था जो वहा के एक प्रभावशाली व्यक्ति के हाथ म सोपा गया था। कोतवाल मुख्य पुलिस अधिकारी था जिसके पास शाति और व्यवस्था कायम करने के विस्तत अधिकार थे। यह स्थान प्राय मुसलमान को मिलता था। इस महत्त्वपूर्ण पद पर मिया इमाम बख्शी नियुक्त हुआ था। मुसलमाना के नागरिक मुकदमा की देखभाल के लिए काजी की नियुक्ति की जाती थी।

आर्थिक प्रशासन

रणजीत सिंह के काल के पजाब म आधुनिक अर्थ के सिद्धान्ता की जानकारी की आशा नही की जा सकती। बजट की प्रथा नही थी। आवश्यकता पडने पर धन की व्यवस्था की जाती थी।

भू राजस्व—राज्य की पूर्ण आय का, जो तीन करोड रुपये थी, दो करोड रुपये भू राजस्व से आता था। यह आय का प्रमुख स्रोत था। राजस्व निर्धारण की विधि के लिए महाराजा के काल म विविध प्रयोग किये गये। ये विधिया कुछ विशेष कोटि की भूमि के लिए बनी और कुछ विशेष लोगा के लिए।

बटाई—यह प्रथा रणजीत सिंह ने मुगला से ली और यह 1823 तक चलती रही। इस प्रथा के अन्तगत भू राजस्व तब निश्चित होता था जब फसल कटकर आ जाती और उससे अनाज निकाला जाना होता। इस विधि मे कर वस्तु के रूप मे लिया जाता था। इस प्रथा मे एक दोष था। इसके अन्तगत पर्याप्त सख्या म कर्मचारियो की आवश्यकता पडती थी जो फसल बोने से लेकर कटने के काल के बीच कृषक की निगरानी रखते रह जिससे कि वह फसल का कोई भाग प्राप्त न कर ले। यह प्रथा महगी भी थी और कठिनाईपूर्ण भी।

कनकूत प्रथा—कुछ कमियो के कारण 1824 म बटाई प्रथा समाप्त करके कनकूत प्रथा प्रारम्भ की गयी। इसके अन्तगत राजस्व का निर्धारण फसल खडी रहने पर होता था। इसके प्रतिनिधि के साथ पैदावार का अनुमान लगाया जाता था और उसका कुछ भाग फसल के रूप मे करके लिया जाता था। नयी प्रथा इस दृष्टि से ठीक थी कि अब कर निर्धारण पहले ही हो जाता था जिसके कारण फसल कटने तक कृषक की देखभाल करने की आवश्यकता नही थी। फिर भी इस प्रथा मे भी दोष थ। फसल का सही मूल्याकन इतना पहल नही हो सकता था। इसी कारण 1835 के बाद राज्य ने एक नयी विधि अपनाई जिसके अन्तगत भूमि को 3 से [illegible] वर्ष के लिए सबसे अधिक बोली बोलने वाले को सौंप दी गयी।

नकद देना—रणजीत सिंह के शासन के अतिम दिनो म कनकूत प्रथा के बाद नकद प्रथा लायी गई। इसके अन्तगत वस्तु के रूप मे कर प्राप्ति को नकदी मे बदल दिया गया। पर राज्य ने इस मामले म कोई कडाई नही बरती जिसके

फलस्वरूप लोग पुराने रिवाज के अनुसार ही काय कर सकते थे।

मिली जुली प्रथा—कुछ स्थानो पर मिली जुली प्रथा भी थी। इसके अन्तगत कुछ फसलें तो कर के रूप मे स्वीकार की जाती थी पर कुछ जैसे गन्ना, कपास और तम्बाकू जिसका सही मूल्याकन नही हो पाता था, इसका कर रुपये मे ही देना पडता था।

वे शर्तें जिनके आधार पर कर का निधारण होता था, तरह तरह की थी। पजाब के कुछ भागो मे जैसे अटक जिले मे जमीन का कर-निर्धारण बीघे के आधार पर किया जाता था। यही मूल्याकन उस क्षेत्र मे प्रत्येक बीघे के लिए स्वीकार कर लिया जाता था। कर निर्धारण हो जाने के बाद उस निर्धारित वस्तु का मूल्य निश्चित किया जाता जो गाव को रुपय उधार देनेवाले से ले लिया जाता। इसके बदले मे करदार रुपये देनेवाले को उसके बदले किसानो से उसे अनाज वसूल करवाता। कुछ स्थाना पर कर निर्धारण हल पीछे किया जाता था। ऐसी स्थिति मे बीघे को आधार न बनाकर हल पीछे 15 एकड जमीन का औसत मानकर जो एक जोडी बैल जोत वो लेते थे, कर निर्धारित किया जाता था। सिंचित भूमि पर एक मुश्तराशि अलग से कर के रूप मे लगा दी जाती और यह दर हर सिंचित भूमि पर लागू की जाती।

विभिन्न जिला की विभिन्न बन्दोस्त रिपोर्टों से पता चलता है कि अलग-अलग तरह की भूमि पर अलग-अलग तरह की प्रथाए थी। पर देश के प्रमुख भागो मे रणजीत सिंह के प्रारम्भिक शासन मे बटाई प्रथा ही प्रचलन मे थी जिसका स्थान बाद मे कनकूत ने और उसके बाद नकद प्रथा ने ले लिया।

कर निर्धारण के सिद्धान्त के सम्बन्ध मे डॉ० जी० एस० ढिल्लो न कहा है कि सरकार की माग "भूमि पर राज्य के अधिकार के आधार को" देखकर किया जाता था जिसके अन्तगत समय पर कर न देने पर किसान से भूमि छीन ली जाती थी। डा० ढिल्लो, सिन्हा और चोपडा के अनुसार सरकार की कर-माग उत्पादन का 50 प्रतिशत तक होती थी। पर कम उपजाऊ भूमि पर लाड लारेन्स के मता-नुसार उत्पादन का 2/5 या 1/3 या 1/4 लिया जाता था। यदि भूमि पर किसी राज्य कमचारी, जैसे मुकद्दम जो कि कर वसूलने मे सहायता करता था, का अधिकार होता था तो यह और नीचा होता था। कभी-कभी तो परा ताल्लुक ही करदार को दे दिया जाता था जो एक निश्चित धनराशि देता था और किसाना से अपने ढग का बन्दोबस्त करता था।

डॉ० ढिल्ला न लिखा है कि किसान "अपने सामथ्य के अनुसार कर देता था और इस तरह ऐडम स्मिथ का कर सिद्धान्त अर्थात् 'बलिदान मे समानता' प्रभावी

ढंग से लागू थी।"[1]

कर एकत्रीकरण और जमा करना—भू राजस्व वर्ष में दो बार एकत्रित किया जाता था। यह फसल तैयार होने के एक माह के बाद मुकद्दम चौधरी की सहायता से प्राप्त करता था। इस तरह वसूला गया कर करदार को दिया जाता था जो इसे जिले के खजाने में जमा कर देता था। यहां पर स्थानीय व्यय काटकर सारा धन हुण्डी के रूप में लाहौर भेज दिया जाता था जो सहमत अली के अनुसार अमृतसर में बैंकों के नाम होता था।

सीमा शुल्क और आबकारी—भू राजस्व के अतिरिक्त सीमा शुल्क और आबकारी राजस्व के प्रमुख स्रोत थे जिससे रणजीत सिंह को 16 लाख रुपये प्रति वर्ष का लाभ था। 1849 के पंजाब ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट से पता चला कि सिख राज्य में जगह जगह पर तमाम चुंगियां स्थापित की गई थीं। सभी वस्तुओं के उत्पादन पर उनके उत्पादन और गन्तव्य स्थल को ध्यान में रखे बिना उत्पादन-कर देना पड़ता था। इस सम्बन्ध में विलासिता और आवश्यकता की वस्तुओं में भी अन्तर नहीं किया जाता था। यहां तक कि कृषि उत्पादन की वस्तुएं भी इससे नहीं बचती थीं। इसके अतिरिक्त इन वस्तुओं पर कर एक ही बार नहीं लगता था। जैसे-जैसे ये वस्तुएं देश के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती थीं, प्रत्येक स्थान पर सीमा शुल्क लगाया जाता था। इससे जिस स्थान से जिस दाम पर एक वस्तु चलती थी उसका दाम गन्तव्य तक पहुंचते पहुंचते दुगुना या उससे भी अधिक हो जाता था।

पर फिर भी सीमा शुल्क उतने कठिनाईपूर्ण न रहे होंगे क्योंकि डा० सिन्हा का विचार है कि सौदागर बड़ी आसानी से रास्ता बदलकर उस स्थान 'पर अपना सामान पहुंचा देते रहे होंगे जहां के क्षेत्र में इन्हें कम सीमा शुल्क देना पड़ता रहा होगा।'[2] इस प्रथा का मूल्यांकन तत्कालीन यूरोपीय स्तर से और आधुनिक स्तर से नहीं किया जा सकता था। उस काल के आर्थिक नियमों के अन्तर्गत जो उस समय जाने जाते थे, रणजीत सिंह की प्रथा का उद्देश्य पूरा हो जाता था क्योंकि यह स्पष्ट है कि इस व्यवस्था में चाहे जो बुराई रही हो, देश का व्यापार समृद्धि पर था।

आय के अन्य स्रोत—आय के अन्य स्रोत जागीरें थीं जो उत्तम सेवाओं और सेना में बहादुरी दिखाने के लिए प्रदान की जाती थीं और जिससे सहमत अली[3] के

---

1 सेन्टीनरी वाल्यूम ऑफ रणजीत सिंह अमृतसर सिन्हा पूर्वोद्धृत प 142 चोपड़ा पूर्वोद्धृत प० 123।

2 सिन्हा पूर्वोद्धृत प० 144।

3 सहमत अली सिख ऐन्ड अफगान्स पृ० 22।

मतानुसार 87,54,590 रुपये का राजस्व प्राप्त होता था। वैस प्रिंसेप ने बताया है कि इससे 1,09,28,000 रुपये प्राप्त होते थे। राज्य एकाधिकार से भी राजस्व मिलता था। आठ नमक के खानो म से चार चलती थो जिनके एकाधिकार से आठ लाख राजस्व का लाभ था। स्प्रिट बनाने के एकाधिकार से और दवाओ के निर्माण से भी कुछ लाभ होता था।

प्रिंसेप[1] के अनुसार न्यायालयो से प्राप्त मोहराना नामक आय से प्रति वष 5,77,000 रुपये का लाभ था। भू राजस्व के साथ इसके अतिरिक्त लगन वाले छोटे मोटे अबवाब नामक कर पाच प्रतिशत से लेकर प द्रह प्रतिशत तक होते थे।

इसके अतिरिक्त पेशो पर कर था। जुलाहो, लोहारो, चमडे का काम करने वाले कारीगरो को घर पीछे एक रुपया प्रति वष देना पडता था। छोटे कमचारी, जिन्ह कमीन कहा जाता था, उन्ह आधा रुपया देना पडता था और व्यापारियो को ढाई रुपया देना पडता था।

जागीरें व्यक्ति का केवल उसके जीवन काल तक के लिए दी जाती थी और उसकी मृत्यु के बाद राज्य उसे वापस ले लेता था। और जब कभी आपात काल होता था तो राज्य कमचारी तक को इसके लिए धन देना पडता था। उदाहरण के लिए 1825 मे महाराजा की सेना मे फ्रासीसी सेनापतियो और उनके रेजीमेण्टो से दो माह का वेतन ले लिया गया।

व्यय—राज्य चूकि विकासावस्था मे था इस कारण आय का सबसे महत्वपूण भाग सना पर व्यय होता था। सहमत अली[3] के मतानुसार इस मद पर प्रति वष 1,27,96,482 रुपये व्यय होते थे। और इसके बाद नागरिक प्रशासन और अन्य मदो पर धन व्यय होता था।

आधुनिक पाठक के लिए उपरोक्त कर व्यवस्था भद्दी लग सकती है। पर डॉ० जी० एस० ढिल्लो के मतानुसार "उस काल की स्थिति को ध्यान मे रखते हुए जिसमे यह लागू किया गया, इस तरह के निष्कष निकालने की आवश्यकता नही है।"[4] चकि महाराजा की सरकार एक राष्ट्रीय सरकार थी इसलिए रुपया इस हाथ से उस हाथ मे चला जाता था। यदि यह एक हाथ से लिया जाता तो दूसरे हाथ से वापस दे दिया जाता जिससे कि जनता का धन जनता के ही हाथ म बना रहे। इसे बाहर भेजा भी नही जाता था, इसलिए यदि यह कुछ कष्टकारक भी रहा हो तो भी बर्दाश्त करने योग्य था।

1 प्रिंसेप पूर्वोक्त, पृ० 235।
2 गुजरानवाला डिस्ट्रिक्ट गजेटियर।
3 सहमत अली पूर्वोक्त, पृ० 23।
4 सेन्टीनरी वाल्यूम ऑफ रणजीत सिंह, ए० एस० बा

न्यायिक प्रशासन

रणजीत सिंह के काल मे कोई लिखित सविधान या कानून नही था । न्याय का आधार प्रथाए और परम्पराए थी । इसके पीछे धर्म उत्साहवर्धन का काम करता था । कभी कभी न्यायाधीश की सनक भी महत्त्व की हो जाती थी । पर सभी को यह स्वतंत्रता थी कि वह चाहे तो ऊचे अधिकारियो को अपील कर सके । वैसे यह आजकल की भाति नही थी । आश्चय की बात तो यह थी कि शताब्दियो के सिख मुस्लिम सघर्ष की पृष्ठभूमि मे भी महाराजा ने धर्म निरपेक्ष न्याय व्यवस्था की स्थापना की जिसमे प्रत्येक जाति के लोगो को अपनी परम्परा के आधार पर न्याय प्राप्त हुआ । इस सम्बन्ध म कोई हस्तक्षेप नही किया गया ।

इस तरह मुसलमानो को काजियो से न्याय मिलता रहा । य काजी उनका विवाह-सस्कार कराते मुसलमानो के धार्मिक उत्सवो म भी भाग लत थे, स्थानीय परम्पराओ को आगे बढाते और लिखित बातो की घोषणा करते ।

इस तरह न्याय स्थानीय अधिक था और राष्ट्रीय कम । और यह मुख्य रूप से आय का एक स्रोत था क्योकि इस सम्बन्ध में रुपये प्राप्त करने का कोई अवसर गवाया नही जाता था । वसे यह चेष्टा होती थी कि जहा तक सभव हो ईमानदारी बरती जाय ।

न्याय का अजस्र स्रोत राजा स्वय था जो राज्य की बडी से बडी अदालत की अपीले सुनता था और यह चेष्टा करता था कि उसके हस्तक्षेप स ही सही न्याय हो । उसके बाद न्याय का दूसरा केन्द्र अदालत ए-आला अथवा केन्द्रीय न्यायालय या उच्च न्यायालय होता था जो राज्य की राजधानी लाहौर मे स्थित था । यह न्यायालय नाजिमो और करदारो के न्यायालयो की अपीलें सुनता था जिसके बाद वे राजा के पास जाती थी । इसके अतिरिक्त अमृतसर और पेशावर म विशेष अदालती न्यायालय थे जो इन नगरो के फौजदारी और दीवानी मुकदमे देखते थे ।

प्रान्तो म सबसे उच्च न्यायालय नाजिम का होता था । यह अपीलीय न्याया-लय था जो करदार के न्यायालयो की अपीलें सुनता था । करदार का न्यायालय हर जिले के केन्द्र पर था जो फौजदारी और दीवानी मुकदमो की सुनवाई करता था । ग्राम पचायतें गावो मे न्याय करती थीं । इन्हे राज्य की ओर से विशेष रूप से अधिकार और प्रतिष्ठा प्रदान की गई थी ।

इसके अतिरिक्त जागीरदारो के जागीरदारी न्यायालय भी होते थे । ये हिन्दू, मुसलमान और सिख—सभी के होत थे और अपने क्षेत्र म तानाशाही अधिकारो का प्रयोग करते थे । इन्हें दीवानी और फौजदारी दोनो तरह के मुकदमे देखने का अधिकार था । जागीरदारो के क्षेत्र के लोग साधारणतया राज्य के न्यायालयो म अपीलें नही ले जा सकते थ ।

दण्ड—रणजीत सिंह की दण्ड-व्यवस्था बहुत कष्टकारी नही थी । मृत्यु दण्ड

की बात उत्तर पश्चिम मे पेशावर मे कही कही सुनाई पडती थी। लोगो को बन्दी कम ही बनाया जाता था। अधिकतर गम्भीर मुकदमो मे अपराधी के शरीर के भाग काट लिये जाते थे। पर शायद ही कोई अपराध रहा हो जिसका दण्ड आर्थिक आकार न ले सकता रहा हो।

आसबान के अनुसार महाराजा जिन मुकदमो को देखते हैं उसका दण्ड "शीघ्र और साधारण होता है और उस पर अमल शीघ्र होता है। कुल्हाडी का एक प्रहार, इसके बाद खून रोकने के लिए तेल का प्रयोग, फिर लाश के सस्कार करने की व्यवस्था आदि ही वे बातें थी जिसकी न्याय म वह आवश्यकता समझता था। वह स्वय ही आरोप लगाने वाला, न्यायाधीश और ज्युरी सब है और लाहौर मे उसके मुकदमे का सबसे लम्बा काल पाच मिनट है।"[1] एक मुकदमे, जिसका प्रत्यक्षदर्शी आसबोन भी था, मे दो व्यक्तियो को महाराजा के समक्ष उपस्थित किया गया। इन्हें हरम के दरवाजे पर उद्दण्डता करते पाया गया था। महाराजा ने उन्हें देखा, उसने उनम से एक की नाक कटवा ली और दूसरे का कान और इसके बाद मुकदमा समाप्त।

न्याय मुख्यतया आय का स्रोत भी था। शायद ही कोई अपराध रहा हो जिससे मुक्ति के लिए रुपया आधार न रहा हो। विशेष रुचिकर बात यह थी कि मुकदमे मे जीतने और हारने वाले दोनों लोगो को पैसा देना पडता था। हारने वाला जुर्माना देता था और जीतने वाला नजराना देता था। यदि मुकदमा अधिक समय तक चलता तो दोषी पार्टी को न्यायाधीश का समय रद्द करने के लिए तैखाना देना पडता था। चुराई वस्तु यदि मिल जाती थी तो उसका 1/4 न्यायाधीश को शुकाना देना पडता था। कभी कभी पूरे गाव को, जिसके निकट कोई अपराध किया जाता था और उसका कोई पता नही चल पाता था, अपराध का मूल्य चुकाना पडता था।

रणजीत सिंह की न्याय-व्यवस्था मे दोष तो थे, पर इनमे बडे सुधार भी किये गये। चार्ल्स मासन जो एक यात्री था और जो पजाब होकर गुजरा, लिखता है, "ऐसा समय था कि सिख और डाकू दोनो एक ही शब्द माने जाते थे। अब कम चोरियां होती हैं। अब कभी नहीं या बहुत कम वह घटनाए भी होती हैं जिसे सरदार करने के आदी थे।"

रणजीत सिंह की प्रशासकीय व्यवस्था मे कई दोष गिनाये गए है। यह कहा जाता है कि उसकी सरकार उसके व्यक्तिगत मत पर आधारित थी। रणजीत

1 आसबोर्न कोर्ट एण्ड कम्प आफ रणजीत सिंह पृ० 67।
2 मासन पूर्वोद्धत भाग 1 पृ० 423।

सिंह एक तानाशाह थे जिनकी इच्छा ही उनके देश के लिए कानून थी। जो शक्ति उसने दूसरों को दे रखी थी उसका दुरुपयोग होता था, भ्रष्टाचार व्याप्त था और रणजीत सिंह के कर्मचारी अपढ़ और अनजान जनता का शोषण करते थे। रणजीत सिंह की कर-व्यवस्था की आलोचना कपूरथला डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ने भी की है जिसके अनुसार उसने "उतना सभी जनता से लिया जो संभव था और हर अवसर पर इसे प्राप्त किया।" जे० एम० डोई के अनुसार कर-निर्धारण इतना कष्टकर था कि "गांव वाले कर वसूलने वाले अधिकारियों को घूस देते थे जिससे कि उनसे कम धन वसूला जाय।"[1] कला के प्रोत्साहन के लिए देश में कुछ नहीं किया गया, शिक्षा के विकास की कोई विशेष व्यवस्था नहीं की गई और उसके दरबार में कोई भी प्रसिद्ध विद्वान नहीं था। उत्तम प्रशासन के स्थान पर उसका व्यक्तिगत प्रभाव ही अधिक देश और उसके लोगों में एकता स्थापित किए हुए था। जिस क्षण यह चुम्बकीय व्यक्तित्व लोगों के बीच से उठ गया उसी समय अपकेन्द्री शक्तियां शक्तिशाली हो गई और सभी चीजें थोड़े ही काल में गायब हो गईं।

यह कठिनाई से ही कहा जा सकता है कि महाराजा की प्रशासकीय मशीनरी में पूर्णता थी। पर पूर्णता ऐसा गुण है जो ईश्वरीय गुणों वाला व्यक्ति ही पूरा कर सकता है। और कमियों के बावजूद महाराजा अपने को खालसा का साधारण सेवक ही मानते थे। पर यह आवश्यक है कि महाराजा का मूल्यांकन करते समय, जिस युग और परिस्थिति में वे रहते थे, उसको भी देखा जाय। आधुनिक मूल्यांकन के तराजू पर उनके प्रति न्याय नहीं हो सकता। और यह तर्कपूर्ण भी है कि उसके बहुत से आलोचक उसकी शासन परम्पराओं की बुराइयों को एकत्रित कर जो मूल्यांकन करते हैं उससे हम सही निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते।

इसपर भी जोर नहीं दिया जा सकता कि कुछ ही अच्छाइयां उस समय थीं जिस ओर हमें ध्यान देना चाहिए। "सैनिक निरंकुशता के रूप में यह सरकार उदार है और संघीय एकता की दृष्टि से इसे शीघ्रता में जोड़-तोड़कर एक कर दिया गया है। यह शक्तिशाली और कार्यक्षम है।' टेम्पुल ने लिखा है कि "उस समय विप्लव नहीं हुए और न अधिकार तथा धन के लिए अव्यवस्था पैदा की गई।' बर्न्स ने भी लिखा है, "अपने राज्य के संगठित क्षेत्र में उसने वह सुधार किये जो ऊंचे मस्तिष्कों से निकलते हैं और हम यहां पर देखते हैं उदारतापूर्ण निरंकुशता, क्रूरताहीन निरंकुश-तंत्र और एक ऐसा शासन-तंत्र जो पूर्व में दुर्लभ भी था और यूरोप के निकट भी नहीं था सामने आया।"[3] देश में वस्तु निर्माण और

---

1 डोई सेटिलमेण्ट मनुअल।

2 कपूरथला डिस्ट्रिक्ट सेटिलमेण्ट रिपोर्ट।

3 बर्न्स ट्रेवेल्स भाग 1 पृ० 285।

व्यापार में सफलता तथा लाहौर व अमृतसर में बढ़ता धन, जिसकी स्वीकृति 'एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ द पंजाब (1849 51)', में भी प्राप्त होती है, इस बात का प्रमाण है कि वह जनता और उसकी समृद्धि के लिए कितना प्रेम रखता था।

उसके प्रशासन के गुणों की चर्चा करते हुए हम महाराजा रणजीत सिंह के काल में स्थापित सिख राज्य के टिमटिमाते उदीयमान पंजाबी राष्ट्रवाद की अनदेखी नहीं कर सकते। बिना भेदभाव के अपने अफसरों को चुनने के लिए वह हमारी प्रशंसा का पात्र है। डॉक्टर नारंग[1] ने भी इसकी ओर इंगित किया है। गुण पहचानने में उसकी आख बड़ी तीव्र थी और जब वह अपने अधिकारियों को चुनता था तो धर्म, जाति और जन्म को आधार नहीं बनाता था। साधारण-से-साधारण नागरिक को उच्च-से-उच्च पद पर पहुंचने का अधिकार था। मोहकम चंद, राजा ध्यान सिंह और हरि सिंह नलवा आदि में से कोई भी ऊंचे परिवार में नहीं पैदा हुआ था, पर वे सभी राज्य के विश्वस्त कर्मचारी थे और यह इसलिए था कि वे योग्य थे।

सिख मत के विषय में यह कहना नितान्त गलत है जैसाकि सर लेपेल ग्रिफिन ने लिखा है कि, "सिख धर्म का मूल उद्देश्य इस्लाम धर्म का विनाश है। इसीलिए मुसलमानों को नमस्कार करना गैर-कानूनी था। उनसे मिलना या समझौता करना भी उचित नहीं माना जाता था।"[2] पर यह नीति मुस्लिम निरंकुशता के विरुद्ध जमकर लोहा लेनेवाले गुरु गोबिन्द सिंह और बंदा बहादुर ने भी नहीं अपनाई। रणजीत सिंह तो इसमें विश्वास तक नहीं करता था। इसके नेतृत्व में सिखों ने अपने हाथ में सभी राजनैतिक शक्ति अर्जित कर ली और यदि वे चाहते तो मुसलमानों के साथ वैसा ही दुर्व्यवहार कर सकते थे जैसाकि अपने उत्थान के काल में उन्होंने किया था। महाराजा ने अपने प्रशासन और अधिकारियों के चुनाव में पूर्णतया भेदभाव की नीति का परित्याग कर दिया और केवल योग्यता को आधार बनाया। जाट प्रशासन में उतने अच्छे नहीं थे जितने लड़ने में। वैसे तो महाराजा भी जाट थे पर उन्होंने अपने मंत्रियों में कोई जाट नहीं रखा। सिख, जो लड़ाकू थे उन्होंने महाराजा की सेना में अधिक स्थान प्राप्त किया जबकि हिन्दू जोकि आर्थिक क्षेत्र में अधिक ज्ञान रखते थे, महाराजा के अर्थ विभाग में अधिक थे जैसे दीवान भिवानी दास और मोती राम। मुसलमान कूटनीतिज्ञता और गुप्तता में आगे थे जो राज्य का आधार थी। महाराजा ने इस तरह के पद उन्हें प्रदान करने में कोई हिचक नहीं दिखाई। उदाहरणार्थ फकीर अजीजुद्दीन रणजीत सिंह का विदेश मंत्री था, यहां तक कि लाहौर में पुलिस के नेतृत्व का स्थान एक

---

1 नारंग जी० सी० ट्रांसफार्मेशन आफ सिखिज्म

2 ग्रिफिन पूर्वोद्धृत पृ० 25।

मुसलमान मिया इमाम बख्श के हाथ मे था। यह स्मरणीय है कि लाहौर राज्य की राजधानी थी। वस्तुओ को लेकर उसके बदले धन देने, विक्रय और ठेकेदारी के मामलो का परामर्श राज्य मे मुफ्ती मुहम्मद शाह देता था। अमृतसर में गोविन्दगढ के किले का उत्तरदायित्व इमामुद्दीन के हाथ मे था।

महाराजा की सहिष्णुता की नीति एक कहावत बन गई थी। कर निर्धारण मे सैय्यदो का स्थान दिया जाता था। उलेमा और अन्य पवित्र मुसलमान राज्य से अनुदान पाते थे। जो कोई भी याद करके पूरा कुरान सुना देता था उसे एक निश्चित इनाम दिया जाता था।

महाराजा राजत्व के दैवी सिद्धान्त मे भी विश्वास नही करता था। उसने स्वय कोई ऊची लगने वाली उपाधिया नही ग्रहण की और अपनी सफलता के लिए ईश्वर एव खालसा को उत्तरदायी बताया। यदि इस सबके बावजूद महाराजा एक निरकुश व्यक्ति था तो ऐसा इसलिए था कि उसके ऊपर लोगो का विश्वास था। राज्य चूकि निर्माणावस्था म ही था इस कारण सैनिको पर निर्भरता स्वाभाविक थी। पर यदि कुछ विद्वानो की बात मान भी ली जाय कि उसका शासन सैनिक तानाशाही ही था तो भी इसे उदार तानाशाही का ही नाम दिया जाएगा। हमारे समक्ष मोहकम चन्द जसे लोगो का उदाहरण है जो फिल्लौड के दरवाजे पर खडा रहता था और महाराजा के साथ अग्रेजो को नही जाने देता था। मोहकम चन्द कहा करता था कि जब तक वह जीवित है वह ऐसा नही होने देगा। इसके बाद वह स्वय महाराजा के समक्ष उपस्थित होकर अपना सर कटवाने को तैयार हो जाता था। महाराजा अपने सेवक के विचारो का आदर करता था और लौट जाता था।

इसके अतिरिक्त, उसकी कर-प्रणाली की तुलना यदि पूर्वी सम्राटो से की जाय तो यह उत्तम थी। पर यदि फिर भी इसमे कोई दोष था भी, तो भी इसका गुण यह था कि वसूला गया धन बाहर नही जाने दिया जाता था। यदि कर की दर ऊची थी, तो लोगो को दिया भी अधिक जाता था। रुपया इधर उधर नही होता था। महाराजा जो एक हाथ से लेता था वह दूसरे हाथ से बाट देता था।

यदि पूर्णता प्राप्त कोई आधुनिक व्यवस्था नही स्थापित हो पायी तो यह इस-लिए हुआ कि इसकी उस समय जानकारी नही थी। इसकी सभी बुराइयो के बावजूद यह व्यवस्था ठीक से काम करती थी। यह आश्चर्यजनक नही है कि जिस समय अव्यवस्था व्याप्त थी उस समय भी वह इतना विकास कर सका।

महाराजा ने जनता को त्रस्त करने के लिए पुलिस की व्यवस्था नही की और उसने आर्म्स ऐक्ट बनाकर जनता से अधिकार वापस लेने की बात नही सोची। लोग हथियार बनाते और स्वतन्त्रतापूर्वक इसे रखते थे। असतुष्ट होने पर वे इसका प्रयोग राज्य के विरुद्ध भी करते थे। पर ऐसे उदाहरण नही के ही बराबर हैं कि किसी अधिकारी या जाति ने विद्रोही रुख अपनाया हो।

दैनिक जीवन म काई सरकारी हस्तक्षेप नही किया जाता था। राजस्व-सग्रह और कर वसूली को छोडकर राज्य की ओर से कोई तकनीकी बात नही थी। निणय शीघ्र होते थ और प्रशासन को स्थानीय बनाने के लिए अधिकार लोगो को प्रदान कर दिये जाते थे। पचायतें समृद्ध थी आर गाव, प्रशासन तथा अय मामलो म स्वतत्र थे। जनता प्रसन्न थी।

उचित लोगो को महाराजा द्वारा उदारतापूर्वक जागीर प्रदान करने म जो नीति अपनाई गई उसे भी उसके प्रशसको न सामने रखा है। सुदर सिंह मजीठिया ने लिखा है कि "जाति बिरादरी का ध्यान रखे बिना धार्मिक सस्थाओ को जागीरें प्रदान की गई, उसम उस युग नेता के बुद्धि विस्तार का परिचय मिलता है।"[1]

यह भी सिद्ध करना कठिन है कि महाराजा न शान्तिकालीन कलाओ के विकास और देश म शिक्षा के प्रसार के लिए बिल्कुल कुछ नही किया। उसके समकालीन यह स्वीकार करते हैं कि उसन हिंदू धमशालाओ और पाठशालाओ तथा मुस्लिम मस्जिदो और मक्तबो को उदारतापूर्वक अनुदान दिया। ब्रिटिश सरकार के जन-सूचना विभाग के डाइरेक्टर लेथब्रिज के अनुसार ब्रिटिश क्षेत्रो के तुलना म सिख राज्य मे पढे लिखो की सख्या अधिक थी। ब्रिटिशो के समक्ष पजाब की चर्चा करते हुए डाक्टर लेटनर न लिखा है कि आक्रमण और नागरिक विद्रोहो के बावजूद उसन शिक्षा अनुदानो को बढाया और सुरक्षित रखा। बेईमान सरदार, लालची धन बाटने वाले और यहां तक कि लूट पाट करने वाले भी साधारण जमींदारो से स्पर्द्धा करते हुए उनसे समझौता कर विद्यालयो की स्थापना और विद्वानो को पारितोषिक देने की व्यवस्था करते थे। उसने इस बात पर चिता व्यक्त की कि सिखो के नेतृत्व मे स्त्री शिक्षा का जहा विकास हुआ है वहा ब्रिटिशो के क्षेत्र म यह घटी है।[2]

पुन यदि प्रदत्त अधिकार म दोष था तो हम यह नही भूलना चाहिए कि यह एक सवव्यापी दोष था जो उस काल मे सचार-साधन के अभाव म देश मे केद्रीय नियत्रण म सरलता स नही आ पाता था। महाराजा ने स्वय अपनी व्यवस्था मे ईमानदारी और काय क्षमता बढाने के लिए कोई कोर-कसर बाकी नही रखी। वह लोगो के बीच वेष बदलकर घूमता था और किसानो की समस्याए जानने के लिए स्वतत्रता के साथ उनके साथ घूमता था।

अत म, यदि हम उसकी प्रशासकीय मशीनरी मे कोई दोष भी नजर आए तो

1 सेन्टानरी वाल्यूम आफ रणजीत सिंह कानपुर।

2 लेटनर डा० ज० डब्लू० हिस्ट्री आफ इनडीजनस एजूकेशन इन पजाब सिन्स अनक्सेसन इन 1882 (1882) प 2।

3 वही प० 98 99।

भी हम उसकी प्रशसा इसलिए करनी चाहिए क्योकि उसने एक विजेता का काय-वहन करते हुए एक अव्यवस्थित क्षेत्र मे एक सगठित प्रशासकीय मशीनरी की स्थापना की। गार्डन ने लिखा है कि राज्य के लिए उसकी सबसे महान सेवा यह थी कि उसने "अपने उत्तराधिकारियो के लिए एक सगठित राज्य छोडा जो वतमान इटली से क्षेत्र म बडा था।"[1] पजाब के लोगो के लिए उसकी और बडी सेवा उसकी धम निरपेक्ष नीति थी जिसका अपनी मृत्यु से पूव उसने विकास कर लिया। यह कहा जाता है कि कसूर विजय के बाद जब कुछ सकुचित विचारधारा वाले सिखो ने उसके समक्ष मुस्लिम अजान के विरुद्ध शिकायत की जो वे प्रात उपासना के लिए करते थे तो महाराजा ने उन्हे उत्तर दिया कि यह सिख धर्म के विरुद्ध नही है और सिख चाह तो वे भी इस आवाज को सुनकर उठ सकते ह और वाणी का पाठ कर सकत हैं। उन्होने चालाकी से बात जारी रखत हुए कहा "पर यदि आप अजान रोकना ही चाहते हैं तो इस नगर के कुछ सिख प्रतिनिधि हमारे पास लाये जो मुसलमानो को दनिक नमाज के लिए जगाने की जिम्मेदारी अपने कधे पर लें। यह सिख परम्परा के विरुद्ध है कि हम दूसरो के दैनिक उपासना म दखल दें।"

सैनिक प्रशासन

1881 के सेन्सस रिपोर्ट म सिखो का पारिभाषित करते हुए इबटसन ने लिखा, 'एक सिख का अथ एक सैनिक है।" और 1911 मे ग्रिफिन न इस सनिक के विषय म कहा, "मजबूत बहादुर और बुद्धिमान, मार खान पर कम समझने वाला, अनुशासन का पालक अपन अधिकारी के प्रति स्वामिभक्त पूव म सैनिको म वह सबस आगे है।'[3]

इस महान सनिक की उत्पत्ति सन गुरु नानक के काल म होती है। पाचवें गुरु के दु खान्त अन्त न सिखो को आध्यात्मिक ध्यान से जगा दिया। छठ गुरु ने उन्हे सैनिक अनुशासन प्रदान किया और वह एक श्रेष्ठ मन्त सिपाही म बदल गया। नवें गुरु न उसम आत्म बलिदान की भावना का प्रवश कराया जबकि दसवें गुरु न उसमें "राजनतिक स्वतन्त्रता का ज्वालामयी भाव भरा" जिसन उस सिख से सिंह अथवा शेर मे बदल दिया। गुरु गोविन्द सिंह के चार लडको के बलिदान न उस यह बताया कि किसी उद्देश्य प्राप्ति के लिए घर-बार की चिन्ता नही करनी चाहिए। बदा बहादुर क कार्यो न उसम मुगलो के विरुद्ध विजय प्राप्त करने म

1 गाडन पूर्वोद्धृत पृ० 24।

2 पधीराम सिंह सिमनरा क्वाटर्ली अप्रल जून 1961।

3 ग्रिफिन रणजीत सिंह पृ० 132।

रुचि पैदा की। उसने अब्दाली के आक्रमणों और दबाव से गुरिल्ला रणनीति की शिक्षा प्राप्त की और इस तरह जब तक रणजीत सिंह गद्दी प्राप्त करे उस सैनिक की परम्परा, 'एक अजेय विजेता के रूप में जो अपने उद्देश्य प्राप्ति के लिए सभी चीजों का बलिदान कर दे प्रतिष्ठित हो चुकी थी।

पर सिखों ने सगठित सेना का अनुशासन नहीं सीखा। बंदा बहादुर की मृत्यु के बाद जो अव्यवस्था व्याप्त हुई उससे सिख विद्रोही प्रवृत्ति के हो गए और स्वतन्त्र तथा व्यक्तिवादी। 'वे अपनी तलवारें लेकर एक नेता से दूसरे नेता के साथ रहकर लूट-पाट करने लगे और अपनी सुविधानुसार और इच्छानुसार अपने नेताओं में परिवर्तन भी करने लगे।"[1] यह काम रणजीत सिंह के लिए ही शेष था जिसने इन अव्यवस्थित सैनिकों को अपनी सैनिक योग्यता के बलबूते पर इस तरह का बना दिया कि वे कुशल नेतृत्व में बलिदान और विजय के संस्कारों की पृष्ठ-भूमि में एक शक्तिशाली अनुशासित और अच्छे हथियारबंद सैनिक बन गये।

रणजीत सिंह के नेतृत्व में पुनर्संगठन

रणजीत सिंह की पुनर्संगठित सेना तीन भागों में विभाजित की गई—पैदल, घुडसवार और तोपखाना।

पैदल—प्रारम्भ में सिख पैदल सेना को घुडसवार सेना से हेय मानते थे। ग्रिफिन ने लिखा है कि युद्ध के समय वे या तो किलों की देखभाल के लिए छोड दिये जाते थे या स्त्रियों की रक्षा के लिए। पर यूरोपीय अधिकारियों के प्रभाव में रणजीत सिंह ने अनुभव किया कि पैदल सेना घुडसवारों से भी महत्त्व की है और इस तरह अच्छे वेतन और व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने के कारण तथा सेना-पति वन्तुरा के कठोर अनुशासन के प्रारम्भ किये जाने के कारण, कठोर परिश्रम और अन्य गुणों को उनमें उत्पन्न करने के कारण रणजीत सिंह के नेतृत्व में उसकी पैदल सेना अति कार्यक्षम हो गई।

पैदल सेना में भर्ती के लिए जोर जबरदस्ती नहीं की जाती थी बल्कि आकर्षक वेतन पर्याप्त और साहसिक जीवन के कारण वैसे ही तमाम लोग इसमें भर्ती होते थे। पर महाराजा ने यूरोपीयों की तरह स्थायी सेना में जो ड्रिल प्रथा प्रारम्भ की उसे प्रारम्भ में सैनिकों ने पसन्द नहीं किया। इसे वे घृणा से 'रक्स लूलुआ' नाम से पुकारते थे। पर बाद में जब यह प्रशिक्षण का एक भाग हो गया तो सैनिकों ने इसे स्वीकार कर लिया।

पैदल सैनिकों का संगठन—संगठन की दृष्टि से पैदल सेना प्रशासकीय दृष्टि

---

1 ग्रिफिन रणजीत सिंह पृ० 132 33।
2 वही पृ० 133।

रेजीमण्ट चल रहा हो। पटियनार याहन को अनुमति नही है और उनकी बाजार मे उनके लिए नवकुछ है'।[1]

विदेशी पर्यवेक्षकों के विचार—1839 म पजाब म आने वाले आसबोन ने भी इसी तरह के प्रशसा के शब्दा का प्रयोग किया। लब-चोडे 'पुरपोचित गुणा से पूण, शक्तिशाली अगा क अधिकारी और चौडी छाती वाल वे अपने क्षेत्र के निवासिया से भी अधिक परिश्रमी है और प्रसन्न मन चित्त वाले दिखाई पडते हैं।" कैप्टेन वाडे भी यह कह बिना नही रह सका कि 'उनम प्रसन्नतापूण तरती म थकान बदाश्त करन की अपार क्षमता है।"[2] इसके अतिरिक्त बैरन वान ह्यू जेल का इस बात पर "आश्चय था कि रणजीत सिंह की सना यूरोपीय सैनिक तकनीक म आग है।"[4]

पर महाराजा की इस सना म कुछ दोष भी थ। बटन लिखता है, "परेड के अवसर पर व गालीपूण भाषा का प्रयाग करते हैं और अपन स नीचे पद पर काय करनेवाले का मारते भी हैं। कमाडेण्ट एडजुटेण्ट को बेंत से मारता है जो उसके बदले म कम्पनी का चाजव करन वाल अधिकारिया को पीटता है। और फिर अप्राप्त कमीशन व व्यक्तिगत सैनिका की बारी आती है।"[5]

ढोल, बासुरी और बिगुल का सामान्यतया सिख पैदल सेना म प्रयोग होता था। स्टीनबैच लिखता है कि रणजीत सिंह कुछ अपने प्रिय सनिक टुकडिया म सगीत के धुना वाले बैंड का भी प्रयाग करते थे। पर यूरोप से उधार ली गई धुनें पजाबी लोकधुना म मल नही खाती थी।"[6]

1811 म महाराजा के पैदल सैनिका की सख्या 4,061 थी पर 1845 मे जब उसकी मृत्यु को 6 वष बीत चुके थ यह सख्या बढकर 70,721 हो गई थी। यह स्पष्ट नही है कि सैनिक सख्या की यह बढोतरी उसके जीवन काल म ही हो गई थी या उसके बाद।

घुडसवार—महाराजा रणजीत सिंह की घुडसवार सेना चार भागा म बटी हुई थी जो निम्नलिखित थी

नियमित घुडसवार सेना—इसमे चुनिन्दे सैनिक और घोडे होते थे। हथियार-बद अनुशासित और दिखन म सुन्दर इन नियमित सैनिको को यूरोपीय ढग पर प्रशिक्षण दिया जाता था। यह सेना 1822 म महाराजा द्वारा नौकरी म रखे गय

---

1 बटन फस्ट एण्ड सेकण्ड सिख वास प० 11 ।
2 आसबोन द कम्प एण्ड कोट आफ रणजीत सिंह प० 102 04 ।
3 चोपडा द पजाब एज ए सावरेन स्टेट प० 301 27 ।
4 ह्यू गल ट्रवल्स इन कश्मीर एण्ड पजाब प० 289 ।
5 बटन द फस्ट एण्ड सेकेण्ड सिख वास प० 11 ।
6 स्टीन बच लफ्टी० कनल द पजाब प० 103 ।

फ्रांसीसी सेनापति जीन फ्रैंक्वेस अलार्ड के नेतृत्व म रखी गई थी। 1811 में इसमे 1209 सनिक थे। 1838 मे इसमे 4090 और 1845 मे इसमे बढकर 6232 सनिक हो गये।

घोड चढा—यह रणजीत सिंह की नियमित घुडसवार सेना के अतिरिक्त घुडसवार सेना थी जिसे नियमित प्रशिक्षण नही मिलता था। यह किसी सैनिक ढग पर अनुशासित भी नही थी। यह मिस्लो के खाल्सा सेना के आदश के आधार पर बनाई गइ थी जो बहादुरी और विकट साहस मे विश्वास करती थी, नियमित सैनिको की तरह आक्रमण और सुरक्षा म नही। इसे राज्य से सीधे वेतन प्राप्त होता था। प्रारम्भ म प्रत्येक सैनिक को प्रति वष 300 रु० से 400 रु० तक की जागीर प्रदान की जाती थी। पर बाद म नियमित रूप से इन्हे 250 रु० स 300 रु० प्रति वष प्राप्त होने लगा। जो व्यक्ति इस सेना मे भर्ती होता उसे अपने लिए घोडे की व्यवस्था स्वय करनी पडती थी। पर यदि वह ऐसा करने की स्थिति म न होता तो उसे आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी जिसे उसके वेतन से थोडा थोडा करके काट लिया जाता था।

ग्रिफिन महाराजा की पैदल सेना की घुडसवार सेना से तुलना करते हुए कहता है 'महाराजा की सेना मे पैदल सेना के सनिक देश के युवा होते थे। सुदर और स्वस्थ युवा ही इसम चुने जाते थे। जबकि घुडसवार सेना म अनियमित सनिक होते थे जिसमे उनके सरदारो की टुकडिया सम्मिलित होती थी जिन्हे शक्ति या बहादुरी के आधार पर नही चुना जाता था। घोडे छोटे कमजोर और खराब नस्ल के होते थे और उनकी सज्जा बडी बहूदी और अनाकषक होती थी।'[1] पर सभवत यह घुड चढा सेना पर लागू नही होता था क्योकि इसम दुबले पतले घोडे बदाश्त नहीं किय जाते थ। इन घोडो की किसी तरह की नियमित जाच नही होती थी। जब कभी दुबला पतला घोडा कही दिखता तो उसके मालिक के वेतन से कटौती कर दी जाती जो दड स्वरूप होता था।

मूर क्राफ्ट लिखता है कि 'अपने साहसपूर्णता के लिए घुड चढा ने अपने लिए और रणजीत सिंह के राज्य के लिए प्रतिष्ठा अर्जित कर ली थी।'[2]

पता चलता है कि घुड चढा सेना भी दो भागो मे विभाजित थी—(1) घुड चढा खास जो एक रजीमेण्ट की थी। इसमे प्रान्त के सामन्तो के भर्ती किये गये सनिक थ। (2) मिसलदार सवार जो पजाब के सरदारो के नेतृत्व म स्वतन्त्र रूप स काम करते थे। पर जब इन सरदारो की स्वतन्त्रता जाती रही तो ये सैनिक महाराजा की सेवा म आ गये।

---

1 ग्रिफिन पूर्वोद्धृत, पृ० 135।
2 मूर क्राफ्ट ट्रैवल्स भाग 1 पृ० 98।

जागीरदारी घुडसवार—ये जागीरदारो के सैनिक थे। महाराजा से हुई अपनी सधि की शर्तो के अनुमार उ हें आवश्यकतानुसार निश्चित सख्या मे सैनिको को भेजना पडता था। इन जागीरदारो को वप भर मे दशहरे के दिन अपने सनिका का निरीक्षणाथ प्रस्तुत करना पडता था।

महाराजा ने जागीरदारी घुडसवार सेना मे बेईमानी समाप्त करने के लिए कुछ कडे नियम बनाये थे। प्रत्येक जागीरदार को 'स्टेट रिकाड आफिस' मे नियमित विवरणात्मक सैनिको की सूची प्रस्तुत करनी होती थी। इसकी अच्छी स्थिति देखकर जागीर का पुनर्नवीनीकरण किया जाता था। हरिसिंह नलवा जैसा व्यक्ति भी इसीलिए दडित किया गया क्योकि उसने इस सम्ब ध म असावधानी बरती थी। इसीलिए उसपर एक बार 2 लाख रुपये का अथ दड रखा गया क्योकि उसन उतन सैनिक नही रखे थे जितने दिखाये थे।

अकाली—यह महाराजा की अनियमित सेना थी जि हे 'किसी खतरे की स्थिति मे या अति कठिनाई की स्थिति मे"[1] काम मे लाया जाता था। दो हाथा मे और दो पटियो मे तलवारें लिये, पीठ पर तोडेदार बदूक बाधे और पगडी मे दो जोडा चक्ती लगाये वे भयहीन आगे बढते थे। अकाली फूला सिंह के नेतत्व मे वे दो से तीन हजार की सख्या मे थे। वे यूरोपीयो और पठानो से घृणा करत थे और रणजीत सिंह उनके हाथो "एक बार से अधिक अवसरो पर हत्या प्रयास से बचा था।" कुछ स्थाना पर ग्रिफिन ने उनके बहुत पक्ष मे नही लिखा है। उनका कहना है कि "महाराजा इनके अति निकट जाकर हस्तक्षेप नही करता था। वे पियक्कड जगलिया से थोडे बेहतर थे, सिख उनमे कुछ पवित्रता के अश का भी दशन करत थे। पर वे उस समय एक आवश्यकता थे जब कोई बडी और कडी आपदा हो तथा सेना के शेप भागा ने लगभग जवाब दे दिया हो। व अफगानिस्तान के गाजियो तथा सौदा की भाति ही चरित्र और आक्रमण दोनो में थे। इनके भयानक तथा दिल दहला देने वाले आक्रमण से बढिया से बढिया सेना के छक्के छूट जाते थे। पर ये ईश्वर भक्त सैनिक अपना साहस मदिरा और कुछ नशा करने वाली औपधिया स प्राप्त करते थे। जहा इस्लाम के विरुद्ध धार्मिक उत्साह उ ह लडने की प्रेरणा देता था इनके लिए यह बात सही नही थी।"[2] स्टीन बैंच ने भी इसी तरह का मत व्यक्त किया है।[4]

पर यूरोपीय लेखका ने इ हे समझन मे भूल की है। अकाली अमृतसर (एक

---

1 ओसबोर्न ट्रैवेल्स भाग I पृ० 143।
2 स्टीन बच पूर्वोद्धत पृ० 104-05।
3 ग्रिफिन पूर्वोद्धत प० 136-37।
4 स्टीन बच पूर्वोद्धत, पृ० 104।

पवित्र तालाव) की रक्षा के उत्तरदायित्व से प्रभावित होकर ही सारा काय करत थे। इस तालाव म नहाते ही अकाली साधारण व्यक्ति नही रह जाता था वल्कि शेर हो जाता था। वैसे तो उसम भाग क लिए कमजोरी थी पर अकाली नतिक वादी थ जो खालसा पथ के प्रकाश जलते रहने देने के पक्ष म थ। उनके अनुसार गुरु गोबिन्द सिंह ने उन्ह ऐसा ही बताया था। वे जब कभी लडते थ, भौतिक प्रतिष्ठा के लिए नही लडते थे वल्कि आदश के लिए लडते थ जो उन्हें अपने जीवन से भी प्यारा था।

फौज ए किलाजात—इन सबके अतिरिक्त महाराजा की सना में 10,800 व्यक्ति ऐसे थे जिन्हें फौज ए किलाजात कहा जाता था। य लोग मुल्तान, पेशावर, कागडा और अटक आदि किलो की रक्षा क लिए भर्ती किय गय थे। औसतन इन किला रक्षकों का वेतन 6 रु० मासिक था। जमादार को 12 रु० या इसस कुछ अधिक मिलत थे। प्रत्येक किला थानदार नामक अधिकारी के हाथ म रखा जाता था। जो लोग किले की रक्षा करत थे उनकी चाल चलन आवश्यक रूप स अच्छी होती थी। उनम से कोई शराबी नही हो सकता था। किले म नाचने वाली औरतें नही प्रवेश कर सकती थी। इसके अतिरिक्त उन्हें अनैतिक न होने देने के लिए उनपर यह प्रतिबंध था कि वे अपन वेतन का आधे स अधिक व्यय न करें। शेष धनराशि उन्हे अपने घर भेज देने को कह दिया जाता था। किसी दूकानदार से य सैनिक अनतिक आर्थिक सम्बन्ध नही रख सकत थे और न ही इन्हें पास-पडोस के लोगो से मनमुटाव करने का अवसर ही दिया जाता था।

तोपखाना—1839 म आसबोन न लिखा कि रणजीत सिंह, "अपन तोपखाने की प्रशसनीय स्थिति और काय-क्षमता के लिए घमड की भावना से ग्रस्त है और यह उचित ही है क्योकि अभी तक किसी राज्य ने इतना बडा और इतना अनुशासित तोपखाना नही रखा।'[1]

लेफ्टीनेन्ट बार ने महाराजा के बदूकचियो के सम्बन्ध मे लिखा है कि 'आदेश फ्रासीसी मे दिय जाते थे तब वह कुछ बहुत अच्छी हालत म रहने वाले पलीता का प्रयोग करता था लोहे का सभी गोला बेकार लोहे का बनाया जाता जिसकी प्रत्येक की कीमत एक रुपये पडती और इसका मसाला अधिकतर जस्ते का होता था यह आश्चय की बात है कि जनरल कोर्ट ने इतनी उत्तम तोपखाने की व्यवस्था कर ली।"

महाराजा का तोपखाना चार भागो म विभाजित था—(1) तोपखाना फीली अथवा हाथियो का तोपखाना, (2) तोपखाना शुतो या जम्बूरक अथवा ऊटो का तोपखाना (3) तोपखाना अस्पी अथवा घोडो का तोपखाना, (4) तोपखाना

1 आसबोन कैम्प एण्ड कोर्ट पृ० 144।

गवी अथवा बैला का तोपखाना।

विदेशी अधिकारी—रणजीत सिंह के पूर्व सिख तोपखाने का प्रयोग बहुत अधिक नहीं करते थे। इसलिए महाराजा के लिए तोपखाने के लिए पजाबियो मे से खोज निकालना सरल न था। फलस्वरूप जनरल कोर्ट और गार्डनर जैसे यूरोपीय लोगो को तोपखाने मे अधिकारी पद पर काम करने के लिए विशेष रूप से आमंत्रित किया गया। पर बाद मे लेहना सिंह जैसे व्यक्ति इस पेशे मे तेजी से आगे बढे। ग्रिफिन के अनुसार यह व्यक्ति खोजपूर्ण मस्तिष्क का था जिसने कई सुन्दर बदूकें बनाई। मिया कादिर बख्श इस पक्ति मे दूसरा व्यक्ति था। महाराजा ने अपने व्यय पर उसे लुधियाना मे इसका प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए भेजा। इस प्रशिक्षण के बाद उसने इस विषय पर एक पुस्तक लिखी।

महाराजा की प्रत्येक बदूक का अलग-अलग नाम था जैसे फतेह जग। इनमे से कुछ पर फारसी मे कुछ लिखा था और कुछ पर श्री अकाल सहाय लिखा गया था। बदूक बनाने के अधिकतर कारखाने लाहौर ही मे थे। इनमे से सबसे महत्त्वपूर्ण किले के भीतर था।

स्टीन बैच लिखता है कि महाराजा के पास कुल 176 बदूकें थी और जानवरो पर रखकर प्रयोग की जाने वाली चक्करदार बदूको की सख्या 370 थी।[1]

अस्त्रो का निर्माण—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है बदूको के निर्माण के लिय लाहौर सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। भाले, तलवारे, पीठ पर लादी जाने वाली बदूकें और पिस्तौलो का भी निर्माण होता था। हेलमट, रक्षास्त्र, सीने पर रखने की प्लेटें, दस्ताने आदि मुल्तान, जम्मू, श्रीनगर और अमृतसर से बनकर आते थे। कश्मीर मे इसके लिए सबसे उत्तम कारीगर थे। पर बाद मे फकीर नूरद्दीन, डॉ० होनिगबजर और लेहना सिंह मजीठिया के नेतृत्व मे पजाबियो मे ही प्रशिक्षित कारीगरो की सख्या काफी हो गई।

पूर्ण निरीक्षण कर लेने के बाद महाराजा रणजीत सिंह की सेना को तीन भागो मे बाटा जा सकता है—

(1) **फौज ए-खास**—यह सैनिक ब्रिग्रेड यूरोपीय ढग से प्रशिक्षित किया जाता था और यह प्राय सीमा-क्षेत्रो मे लडता था। ग्रिफिन के अनुसार इसका नेतृत्व सेनापति वेन्तुरा के हाथ मे था जिसमे निम्न सैनिक थे—

नियमित पैदल सेना	3,176
नियमित घुडसवार	1,667
34 बदूका सहित तोपखाना	855
योग	5 698

---

1 स्टीन बैच पूर्वोद्धत पृ० 95।

ग्रिफिन और आगे लिखता है कि, 'पैदल सेना म खास बटालियन भी थी जिसम 820 सैनिक थे। 707 सैनिको की गुरखा बटालियन, 839 लोगो की देवासिंह बटालियन और 810 लोगो की शम सोटा बटालियन थी।"

"घुडसवार सेना में एक ग्रेनेडियर रेजीमेण्ट था जिसमे 730 सैनिक थे, 750 लोगा का एक ड्रेगून रेजीमेण्ट था तथा 187 लोगा का लाइफ गार्डों का एक दल था।"

'तोपखाना सेना को इलाही बख्श नाम दिया गया था जिसका सेनापति इसी नाम का व्यक्ति था। सिख सेना म वह श्रेष्ठ अधिकारियो मे था।"[1]

(2) फौज ए आम—अकाली और जागीरदारी सनिको से भिन्न यह सेना राज्य द्वारा सगठित थी और नियमित थी। खालसा दरबार रिकार्डो के अनुसार 1838 म इनकी सख्या 38,242 थी। इसम निम्न सैनिक थे—

पैदल	29 617
घुडसवार	4,090
तोपखाना	4,535

(3) फौज ए बेकवायद—इसम अकाली और जागीरदारी सैनिक आत थे। य सैनिक अनियमित थ जिसका विवरण ऊपर आया है।

सहमत अली के अनुसार नियमित सेना पर महाराजा प्रति वष अधोलिखित धन व्यय करत थ—

पैदल	28,09,200 रु०
घुडसवार	24,53,656 रु०
घुडसवार तोपखाना	3,24,864 रु०
अनियमित सवार	71,08,562 रु०
योग	1 27,96,282 रु०

पर सहमत अली आग लिखता है कि "सनिको के वेतन से बहुत सी कटौतिया होती हैं जो असली व्यय म पर्याप्त कमी ला देती हैं।

रेजीमेण्टीय वस्त्र—उपरोक्त कोटि की पैदल सना रणजीत सिंह के पूव नही थी। मिस्ल सरदार के नेतृत्व म काम करन वाला साधारण सैनिक एक पगडी और आधी जाघिया पहनता था। उसके कमीज की बाह खुली होती और जूते कसे होते थ। रणजीत सिंह के काल मे इसमे कुछ परिवतन हुए। इसके अध्ययन के लिए पाठक लखक के पजाब का इतिहास भाग 2 का अवलोकन कर सकते हैं।

तोपखाने वाले लाल पगडी, काला कमरबद, क्रास बेल्ट और पीतल से सजी

1 ग्रिफिन पूर्वोक्त पृ० 141-42।
2 सहमत अली सिख एण्ड अफगान्स पृ० 23-25।

म्यान, लम्बे बूट और सफेद पाजामा पहने होते थे। महाराजा के अगरक्षको का वस्त्र दूसरी तरह का होता था। वे सिन्दूरी या पीले वस्त्र पहनते थे। पीला साटन प्राय उनके वस्त्रो मे प्रयुक्त होता था। उनके वस्त्र का विशेष भाग शाल भी होते थे।

बिरादरी का भेद भाव नहीं—महाराजा की सेना के प्रशासन की एक विशेषता उनका यह प्रयास था कि अच्छे जानकारो द्वारा सैनिको को प्रशिक्षित किया जाय। इस मामले मे वे जाति, धर्म और राष्ट्र की दीवार को लाघ जाते थे। भारतीयो और पजाबियो के अतिरिक्त उनकी सेना मे इटैलियन, फ्रासीसी, अमेरिकी, अग्रेज, ऐंग्लो-इण्डियन, स्पेनी, यूनानी और रूसी अधिकारी भी काम करते थे। महाराजा की सेना मे इन युरोपीय अफसरो की सपूर्ण सख्या ब्रिटिश स्रोतो के अनुसार 20 थी। कार्मीकेल स्मिथ की सूची मे 39 नाम है और गाडनर म 42। डब्ल्यू० एल० मग्रेगर के मतानुसार इन विदेशी अधिकारियो मे "ही सेनापति वेन्तुरा और अलाड का नाम आता है। इनमे पहला इटालवी और दूसरा फ्रासीसी था। दोनो पजाब मे एक ही समय मे पहुचे और दोना का सम्बन्ध एक-दूसरे से अति मधुर था।"[1]

ग्रे और गारनेट के मतानुसार सेनापति वेन्तुरा व अलाड और अन्य युरोपीय अधिकारियो द्वारा जो समझौता महाराजा से किया, उसके अनुसार उन्हे उस क्षेत्र मे ही विवाह करके वही का हो जाना था, गो-मास नही खाना था, खुले आम चुरुट नही पीना था और अपने दाढी को बढाना था। "यह भी चेष्टा करना था कि सिख धर्म वाले उनसे आहत न हो और यदि आवश्यकता पडे तो वे अपने देश के विरुद्ध भी लडे।"

यूरोपीय जनता मे अविश्वस्त—वैसे तो महाराजा की सेना मे यूरोपीय ढग की प्रशिक्षित बटालियनें 1807 से ही थी, पर युरोपीय अधिकारियो का नियमित आगमन काफी बाद मे हुआ। एक मत के अनुसार अलाड और वेन्तुरा ने 1822 मे सेवायें प्रारम्भ की। इन यूरोपीय अफसरा की उपस्थिति भारतीय सिपाहियो द्वारा प्रारम्भ मे पसन्द नही की जाती थी। यहा तक कि महाराजा के उत्तराधिकारी खडक सिंह भी इनके पक्ष मे नही था। पर जैसे-जैसे समय बीतता गया, जनता का अविश्वास धीमा पडता गया। यूरोपीय अधिकारियो ने नयी परिस्थितिया मे अपनी योग्यता का उत्तम परिचय दिया।

पर जीवन के सध्या-काल मे रणजीत सिंह की दृष्टि मे उनकी सेवाओ के मूल्य मे परिवतन दिखाई पडा। मग्रेगर के मतानुसार, 'या तो वह कल्पना करता है

1 मग्रेगर हिस्ट्री आफ द सिख्स भाग 1 पृ० 254 62।
2 ग्रे ऐन्ड गार्नेट यूरोपियन ऐडवेन्चर्स आफ नार्दन इण्डिया पृ० 12।

कि उनकी सेवाओं के बिना भी काम चल सकता है, या जो अधिक सभव दिखता है, वह उनके उस वेतन से ईर्ष्या करता है जिसे प्रत्येक सज्जन पाने की कामना करता है।"[1] जनता भी उन्हे मैत्रीपूर्ण दृष्टि से नही देखती थी। रणजीत सिंह की मृत्यु के उपरान्त उनकी जीवन रक्षा भी कठिन हो गई। कर्नल फोक्स जो एक अंग्रेज अधिकारी था, मार डाला गया और जनरल कोर्ट और वेन्तुरा के घर लूट लिये गये। वे सभी देश छोड भाग खडे हुए।

रणजीत सिंह के सैनिक पद्धति पर लिखने वाले कुछ विद्वानो का मत है कि उसकी सेना मे कुछ ऐसे दोष थे जिसे महाराजा नही दूर कर सका। उदाहरण के लिए एक बुराई यह थी कि महाराजा की सेना, भर्ती होने वाले अनियमित सैनिको के औसत के बराबर होती थी जिसका नतत्व जागीरदार करते थे। परिणाम स्वरूप सेना महाराजा से अधिक जागीरदारो की भक्त होती थी। इसके अतिरिक्त महाराजा की कडी देख रेख के बावजूद जागीरदार अपने सैनिको और जानवरो को सही हालत मे नही रखते थे।

महाराजा अपनी अकाली सेना मे भी पूर्ण अनुशासन की व्यवस्था स्थापित नही कर सके। वैसे अपनी कूटनीति और बुद्धिमत्ता से वह उनका अच्छा प्रयोग करने मे तो सफल हुए, पर उनकी मृत्यु के बाद सेना के यही तत्व सिख-पतन का कारण बने।

सेना को यह नही सिखाया गया कि वह असैनिक अधिकारियो के अधीन रहे। अपने जीवन काल मे चूंकि महाराजा युद्ध और विजयो मे अधिक व्यस्त रहे, इस कारण उसके सैनिक अधिकारियो और नेताओ को असैनिक अधिकारियो से अधिक महत्ता मिल गई। असैनिक अधिकारियो की सैनिक अधिकारियो पर महत्ता कभी न सिद्ध होने से महाराजा की मृत्यु के बाद सेना सभी उद्देश्यो के लिए प्रशासन संगठन के रूप मे बदल गई। इसकी अपनी कारवाइयां प्रत्येक कंपनी के स्तरो पर वहा बनी पचायतो के माध्यम से प्रारम्भ हो गयी और नागरिक अधिकारियो की सत्ता ही खतरे मे पड गई।

रणजीत सिंह ने वेतन देने की भी नियमित व्यवस्था न की। "विशेष मामलो मे उससे अधिक लोगो को रख लिया जाता था जितने के लिए धन की व्यवस्था की जा सकती और यह उनकी आदत थी कि किसी बहाने वेतन देना टाल देते थे।" पुन जैसाकि एक समकालीन लेखक कहता है ' कि सैनिको की लम्बी सेवा के लिए न तो पेंशन की व्यवस्था थी और न है और न ही इसकी व्यवस्था उनकी विधवाओ के लिए है न परिवारो के लिए। जब कि वे राज्य की सेवा मे ही जान दे देते थे। वरिष्ठता के आधार पर किसी अच्छे सैनिक के उन्नति मे बाधा के रूप मे प्राय

1 मग्गर पूर्वोक्त पृ० 143।

घुस आकर बीच मे खडा हो जाता था। ऊंचे पदो के लिए दरबार के प्रभावी लोगो द्वारा पहले से ही धन ले लिया जाता है। सैनिक नेता भी इस तरह का काम करता है।"

"मात्र युरोपीया को ऊचा वेतन मिलता है। पर वे भी रणजीत सिंह के जीवन के सध्या काल मे अविश्वस्त हो गये और उनमे से कुछ ने तो महाराजा के उत्तराधिकारी के साथ दगाबाजी भी की। पर चूंकि कुछ सरदार उनसे ईर्ष्या रखते थे, इस कारण उनमे से अधिकतर रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद पद से हटा दिये गय जिससे सेना का सगठन ही बिगड गया।"

"भिन्न भिन्न राष्ट्रीयता और जाति के लोगो को महाराजा की सेना मे भर्ती किया गया जिन्हें उनके जादुई व्यक्तित्व के नीचे ही सगठित रखा जा सकता था। एक तरह की वर्दी निर्धारित नही की गई। घुडचढो को छोडकर घुडसवार सेना "पदल सेना से हर मामले मे बेकार थी।" सिख तोपखाने मे बन्दूकचियो की कमी थी। "वस्तुओ को मुहैया करने की सिखो की प्रथा यो तो कायक्षम थी पर उसमे अभी और भी बहुत कुछ होना था रण-कुशलता के क्षेत्र मे सिख नेता अपने पूर्व मराठा की भांति अपने युद्ध अनुभव पर ही निर्भर करते थे। पथ प्रदर्शन हेतु इस क्षेत्र मे उनके पास कुछ नही था और न ही सिख नेताओ के अनुभवो की पूंजी ही थी।"[1]

कुछ विचारको के अनुसार सेना के पश्चिमीकरण ने मजबूती देने की जगह पर इसे और कमजोर किया और इसी कारण सिखो की इस सेना ने जो गुरु गोबिन्द सिंह और बन्दा बहादुर के नेतृत्व मे मुगलो से प्रतिष्ठापूर्वक लडी थी, रणजीत सिंह के नेतृत्व मे ब्रिटिशो के विरुद्ध इसने हथियार उठाने का साहस नही किया।

पर उपरोक्त दोषो के प्रस्तुतीकरण के बावजूद हमे युद्ध के मैदान मे रणजीत सिंह की सेना का मूल्याकन करना होगा। सर चार्ल्स गोफ जो सिखो के विरुद्ध लडनेवाला प्रथम ब्रिटिश सेनापति था, ने लिखा है, "यह कहा जाता है और इसमे सत्यता भी है कि गैर-युरोपीय लोगो मे ब्रिटिश सेना के सफल कट्टर शत्रु वे लोग रहे हैं जिन्होने हैदर अली और होल्कर की तरह विदेशी युद्ध-पद्धति नही अपनायी पर सिखो से जो लडाई हुई वह इस नियम का अपवाद है सिख सेना ने एक अनुशासन की छाया मे युद्ध किया और उन्होने वह टक्कर दी जो अभी तक किसी देशी सेना ने न दी थी। और वे ऐसा इसलिए कर सके क्योकि रणजीत सिंह ने अपनी विधि से उन्हे सैनिक प्रशिक्षण दिया था।"[2]

1 और देखें डॉ० फौजासिह का लेख मिशनरी क्वाटर्ली जनवरी-मार्च, 1961।
2 गोफ, चार्ल्स ऐण्ड इन्स ए० डी० द सिख्स एण्ड सिख वार्स पृ० 43।

सर चार्ल्स गौफ सोबराव मे सिख सेना के दिल दहला देने वाले हत्याकाड का जिक्र करता हुआ लिखता है, "नीति का यह तकाजा है कि मैं सबके समक्ष पराजित शत्रु की शानदार बहादुरी के विषय मे कुछ न कहू। उन्होने अत्यधिक बहादुरी का परिचय दिया। व्यक्तिगत रूप से ही नही, सामूहिक रूप से भी। मैं यह घोषित करता हू कि चूकि मेरे देश के हित मे यह बलिदान आवश्यक था अन्यथा ऐसे देश भक्त लोगो की भयानक हत्या देखकर मैं रो पडता।"[1] सिन्हा के मतानुसार इस तरह इसमे सन्देह नहीं है कि रणजीत सिंह ने अपनी मृत्यु से पूर्व सचमुच "घुडसवारो की एक भीड को एक उत्तम लडाकू मशीन के रूप मे बदल दिया था।"[2]

यदि लाहौर के कुछ सरदारो ने षडयन्त्रकारी भूमिका न अदा की होती तो प्रथम सिख-युद्ध मे ब्रिटिशो की विजय सरल न होती।

27 जून, 1839[3] को रणजीत सिंह नही रहे। उन्होने "पजाब को पतनवत सगठन, मराठो के शिकार और अग्रेजो की उत्तमता के समक्ष झुकने की स्थिति मे पाया था। उन्होने अनेकानेक छोटे छोटे राज्यो को साम्राज्य मे बदल दिया। उन्होने काबुल से उसका सुन्दरतम प्रान्त ले लिया और उन्होने शक्तिशाली अग्रेजो को हस्तक्षेप का अवसर नही प्रदान किया।"[4] जगमोहन महाजन के शब्दो मे, "उसने उत्तराधिकार मे विद्रोह पाया और अनुशासन स्थापित किया, अव्यवस्था पायी और उसे व्यवस्था मे बदला और अपने जीवन भर के प्रयासो से अपने लिए एक साम्राज्य निर्माण मे सफलता प्राप्त की। पर उसकी सफलता अति महत्त्व की होते हुए भी व्यक्तिगत थी और परिणामत अस्थाई।"[5] उसका शासन लोगो की भावनाओ पर आधारित था पर इसके साथ ही इससे जो सिद्धान्त जुडा हुआ था, वह था सैनिक क्षमता का विस्तार और क्षेत्र मे वृद्धि। और जब सिख राज्य अपनी एक सीमा पर पहुच गया और उसका नेतृत्व भी न रहा तो उसके जाति के गुण ही अपने लिए दोष सिद्ध होकर झगडे का कारण बन गये।[6]

यह विरोधाभासी और विचित्र लगता है कि एक साम्राज्य सस्थापक का ही उसका पतनकर्ता स्वीकार किया जाय। मदिरा के सेवन की अति ने उसे समय से पूर्व ही उठा लिया। और साथ ही "इतिहास मे ऐसे लोगो की तरह, जिन्होंने

1 गौफ चार्ल्स एण्ड इन्स, ए० डी० द सिख्स एण्ड सिख वार्स पृ० 43-44।
2 सिन्हा, एन० के० रणजीत सिंह पृ० 156 172।
3 15वी हर सवत् 1896 सूरी लाला सोहनलाल उमदत उत तवारीख, भाग 3 (अग्रेजी मे अनुवाद वी० एस० सूरी) (1961) पृ० 695।
4 कनिघम हिस्ट्री आफ द पजाब पृ० 200।
5 महाजन जगमोहन सरकमस्टान्सेज लीडिंग टू एनेक्सेशन आफ पजाब पृ० 15।
6 कनिघम पूर्वोद्धृत पृ० 200।

प्रशासन क्षमता और सैनिक कुशलता मे नाम कमाया पर वे नारियो
प्रति कमजोर थे, रणजीत सिंह भी थे।" उसने 18 विवाह किये जिनमे
"नौ कदर रीति रिवाज के अनुसार हुआ और नौ चद्दर डालने की साधा
रीति के अनुसार।" पर उसकी पत्नियो और रखैलो के बारे मे इतिहास बहुत
कलकपूर्ण बातें प्रस्तुत करता है। जब वह खडक सिंह के रूप मे वैध उत्त
धिकारी सतान पा गया तो उसने हरम के अप्रतिष्ठापूर्ण षडयन्त्रो की चिन्ता
की। इन महिलाओ ने कई लडको को उसके सामने उसका पुत्र बताकर र
जिसका उद्देश्य राजनीतिक[1] भी था अथवा उसकी विशेष कृपा। अपने पुत्र ख
सिंह और पौत्र नौनिहाल सिंह के पास उसने अपने जनाना से कई प्रतिि
महिलाओ को भेजा। इन्ही मे से एक सुन्दर ईश्वर कौर थी जो महाराजा ख
सिंह के मृत्यु पर क्रूरतापूर्वक सती हो गइ।"

महाराजा की इन सभी कारवाइयो का परिणाम यह हुआ कि नौनिह
सिंह के मरने के बाद कोई अविवादग्रस्त उत्तराधिकारी नही रह गया। यह स
विदित है कि सिखो के अतिम शासक दलीप सिंह के विरुद्ध षड्यन्त्र इसीलिए
प्रारम्भ हुआ क्योकि उनके उत्तराधिकार की वैधानिकता सदेहास्पद थी।

राज्य के प्रशासन की कला और कूटनीति की शिक्षा उसने अपने तम
सतानो को नही प्रदान की। यहा तक कि खडक सिंह के लिए भी कुछ न कि
गया जिसकी वैधानिकता पर कोई विवाद भी नही था। इसी कारण वह
सीधा सादा बना रहा। ध्यान सिंह डोगरा[3] की ईर्ष्या ने उसे सदा दरबार स
रहने को बाध्य किया और रणजीत सिंह के सावधान रहते हुए भी उसने बुद्धिमा
से दरबार के षडयन्त्रो से निबटने की चेष्टा नही की। ह्यूजेल, जो रणजीत सिंह
के दरबार मे आया था, ने लिखा है, "महाराजा का सबसे बडा पुत्र खडक सिं
लाहौर मे रहता है। पर उस पर कोई ध्यान नही देता क्योकि उसमे बुद्धि की इत
कमी है कि कोई यह आशा नही करता कि इतने फैले हुए सिख साम्राज्य पर व
शासन कर सकेगा।'[4] पर हम यह पता नही है कि उसमे कितनी कमजोरी मच

---

1 इसका एक उदाहरण उसकी एक वरिष्ठ पत्नी महताब कौर का दो पुत्रो का प्रस्तु करना है। देखें नारग (हिस्ट्री आफ पजाब पृ० 370) जिन्होने उन दो लोगो का नाम भी दिया है जिनसे लडके प्राप्त किए गए। शेर सिंह को उसके पिता एक बिन्त जमादार मुवारिया निवासी निगल से खरीदा गया और तारा सिंह को महताब कौर की दासी म की की पुत्री एक मुस्लिम मजदूर से खरीदा गया।

2 ग्रिफिन पूर्वोद्धृत पृ० 106-107।

3 राजा ध्यान सिंह डोगरा जो रणजीत सिंह का प्रधानमंत्री था उसके सम्बन्धी और वह रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद के दिनो महत्त्वाकाक्षी पात्र रहे थे।

4 ह्यूजेल ट्रैवल्स इन कश्मीर एण्ड पजाब लन्दन (1845), पृ० 287।

मुच थी और कितनी गढी बताई गई। औरंगजेब की सदहात्मक प्रवृत्ति न उसके लडको को राजत्व की शिक्षा नही प्राप्त होने दी जिससे मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। पर रणजीत सिंह सदेहशील स्वभाव का नहीं था, पर इस सदभ म उसकी लापरवाही के कारण स्थिति बिगड गई।

वैसे तो रणजीत सिंह तानाशाही प्रवृत्ति का नहीं था पर उसम शक्ति वैसे ही निहित थी जसे सनिक अधिनायका के पास। सैनिका की सहायता से ही उसका खजाना भरा रहता था। सभी चीजें केंद्रित थी। महाराजा प्रमुख सैनिक नेता था, वही सबसे बडा कायपालिका का मालिक और न्यायाधीश भी था। किसी अधिकारी को प्रशासन या सनिक कारवाइया को करने का अवसर नही प्रदान किया जाता था। कुछ अपवादा को छोडकर उसके दरबार म महत्त्वाकाक्षी चापलूसा का जमघट था जिनम कूटनीति और प्रशासन की बहुमुखी प्रतिभा नही थी। और स्वाभाविक परिणाम यह था कि जब महाराजा की मृत्यु हो गई तो हर जगह कुशासन व्याप्त हो गया। सैनिको ने अपना सेनापति खो दिया और जनता ने अपना न्यायस्रोत और मुख्य प्रशासक।

और वैसे तो महाराजा ने गुणा के आधार पर अपनी सेवा म लोगा को लिया था और साथ ही उसकी इसके लिए भी प्रशसा करनी होगी कि एक धार्मिक पतन के युग म उसने अपने दरबार मे बुद्धिमत्तापूण धार्मिक सहिष्णुता की नीति को चलाया, पर सिख और हिन्दू एक ओर और मुसलमान दूसरी ओर एक-दूसरे के विरोधाभासी मत के ही नही थे बल्कि उस युग मे एक दूसरे से बहुत दूर। महाराजा के आकषक प्रभाव मे वे एक साथ काम कर सकते थे पर उसकी मृत्यु के उपरान्त यह सहयोग सभव नही था। रणजीत सिंह ने इसकी कल्पना नही की थी।

महाराजा की आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध म भी अलग-अलग तरह के मत हैं। कुछ तो यह कहते हैं कि, महाराजा ने किसानो के शरीर से खून की अन्तिम बूद तक खीच ली। पर दूसरे यह कहते हैं कि महाराजा ने एक हाथ से लिया और दूसरे हाथ से वापस कर दिया। प्रत्येक किसान परिवार से एक या दो लडके सेना मे भर्ती हो गये जिसके फलस्वरूप गाव म उनकी आय से रुपया आने लगा। पर राजा ने जिस तरह श्रमसाध्य जमीन की आय से कर के रूप मे शोषण किया वह पसन्द नही किया गया। किसानो ने इसे इसीलिए सहा क्योकि उन्होने इससे भी बुरा दिन देखा था। पर जब उन्हे अग्रेजो की विधि की जानकारी हो गई तो पुरानी परम्परा के साथ रहना उनके लिए कठिन हो गया। ब्रिटिशो ने जो परिवतन प्रारम्भ किया वह वैज्ञानिक अधिक था और कष्टकर कम।

महाराजा की शुल्क प्रथा भी प्रशसनीय नही थी।[1] इससे न तो व्यापार को

1 पहले सिविल ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ रणजीत सिंह।

ही प्रोत्साहन मिला और न उद्योग को। जो लोग ब्रिटिश क्षेत्र मे स्वतन्त्र व्यापार की नीति के विषय मे परिचित थे, स्वाभाविक रूप से उस प्रथा को पसन्द नही करते थे जिसके अतगत अनियमित रूप से अनेक चुगी घर बनाये गए हो जिसके फलस्वरूप एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजे जाने वाले सामान पर एक स्थान पर नही, दो पर नही और तीसरे पर ही नही बल्कि अनेक स्थान पर इस पर इतनी चुगी लगे कि यह वस्तु महगाई की उस सीमा मे पहुच जाय कि साधारण व्यक्ति के लिए उसे प्रयोग करने की सामर्थ्य ही समाप्त हो जाय। महाराजा की सरकार एक ऐसी राष्ट्रीय सरकार थी जिसमे विशेषाधिकारी और पूजीपति वग के समथन की आवश्यकता ही नही थी जिससे कि गरीबो पर नियत्रण किया जा सके। इस तरह की नीति ब्रिटिशो ने बाद मे अपनाई। रणजीत सिंह ने यह चेष्टा की कि धनी और धनी न होने पाए। कनिंघम ने लिखा है कि ये धनी और अकमण्य व्यक्ति रणजीत सिंह के बौद्धिक प्रतिभा के समक्ष सहम जाते थे। वे उसकी गुप्त शक्ति से प्रफुल्लित हो हथियार लेकर दौड पडते थे और वे ये आशा करते थे कि परिवतन मात्र से ही वह सब हो जाएगा जो वे चाहते है।"[1]

सैनिक प्रशासन मे भी बहुत कुछ होना शेष रहा। उसकी अनियमित सेना जो अनुशासनहीन थी और अकाली जो अपने को अलग शक्ति ही मानते थे और महाराजा के जीवन के लिए भी कई बार खतरा बन चुके थे, के अतिरिक्त उसकी नियमित सेना भी असैनिक अधिकारियो के नियत्रण मे काय करने को तैयार नही थी। इस सबका परिणाम यह था कि 1841 आते आते जब शेर सिंह को शक्ति मिलनी थी तो सारी सेना ही प्रशासन शक्ति मे बदल गई। पेने ने लिखा है कि "इसके काय पचायत या पाच लोग करते थे जिसमे प्रत्यक कम्पनी के प्रतिनिधि होते थे और जिन्ह सैनिक चुनते थे। खाल्सा के सगठन का सिद्धान्त जिसे गुरु गोविन्द सिंह ने प्रारम्भ किया था और जिसके अतगत पाच लोगो की शक्ति गुरु से भी अधिक मानी गई थी, उसकी कोई उपयोगिता नही रही।" "इन पचायतो से लोग अपनी कठिनाइयो के निवारण की अपेक्षा करते थे, इनम वेतन म य बढोतरी की माग करत थे या भ्रष्ट अफसरो को हटाय जाने की माग करते थ। यह प्रथा शेर सिंह के काल मे प्रारम्भ हुई, और इतनी तेजी से पचो की शक्ति बढी कि शीघ्र ही सेना पर ही नही बल्कि प्रशासन की हर शाखा पर इनका नियत्रण हो गया।" सैनिक व्यक्ति के हाथ मे नागरिक उच्चता का पहुचना तो अच्छी बात नही। और इसमे आश्चय नही कि, 'उन दिनो शक्ति प्राप्ति एक खतरनाक चीज थी। प्रत्यक राज्य कमचारी जानता था कि सैनिको को अप्रसन्न करना अपनी मौत को

---

1 कनिंघम पूर्वोक्त प० 246 सिन्हा रणजीत सिंह प० 138।

आमन्त्रित करना है।"[1] कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति आगे बढ़ने का न तो साहस करता और न इस परिस्थिति से खुलकर जूझता।

पेशावर, मुल्तान, कश्मीर और नवविजित राज्य मंडी में महाराजा की मृत्यु के बाद सैनिकों ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया और जब ध्यान सिंह ने कुछ रजीमेंटों को समाप्त कर दिया "तो इससे अशांति फैली ही क्योंकि मुक्त सैनिक पास-पड़ोस के जिलों में फैल गए, अपने भाग्य को उन्होंने डाकू दलों के साथ जोड़ दिया जो व्यवस्थित सरकार के अभाव में देहातों में स्वतन्त्र रूप से घूमते रहे, किसानों को आतंकित करते रहे, पशु हाँक ले जाते रहे और फार्मों तथा गाँवों को लूटते रहे।"

बुद्धिमान विजेता रणजीत सिंह जनता के हृदय से अपनी साँसें जोड़ने में असफल रहा और यह चेष्टा भी नहीं की कि कोई ऐसा अच्छा काम कर दिया जाय कि उसकी मृत्यु के बाद भी उसके आधार पर वे एक बने रहें।[3] किसी सामूहिक कला को प्रोत्साहित नहीं किया गया, किसी सामूहिक संस्कृति का विकास नहीं किया गया। एक तरह की शिक्षा पद्धति भी प्रारम्भ नहीं हुई। लोग रणजीत सिंह के ग्राह्य व्यक्तित्व के नेतृत्व में ही संगठित हुए और जब वह संगठक शक्ति नहीं रही तो अराजक शक्तियों ने जोर पकड़ा और सभी चीजें अल्पकाल ही में बिखर गईं।

वैसे तो रणजीत सिंह ने हरि सिंह नलवा जैसे विश्वस्त कर्मचारियों की जागीरें उनकी मृत्यु के बाद जब्त कर ली और अपने कर्मचारियों के प्रति विश्वस्त न होने की बदनामी उठाई, पर जी० एल० चोपड़ा ने लिखा है कि "रणजीत सिंह लगातार ऐसी नीति नहीं अपना सका जिससे पंजाब के लोगों में थोड़ी या अधिक राजनैतिक एकरूपता आ जाय। इस असफलता का सबसे बड़ा उदाहरण एक मात्र डोगरा परिवार को इतने लम्बे चौड़े राज्य का एक क्षेत्र प्रदान करना था।"[4] इसी डोगरा परिवार के कारण सिख शक्ति का पतन आगे चलकर हुआ। डोगरा राजा गुलाब सिंह जिन्होंने कश्मीर में अपने लिए एक अलग से राज्य की स्थापना की, रणजीत सिंह के शासन काल में कई बार विद्रोह किया था और सदा पंजाब के प्रधान मंत्री और अपने भाई ध्यान सिंह के द्वारा उसकी रक्षा होती रही। वह महाराजा से उसके पक्ष में सदा उदार होने के लिए कहता रहा। यहाँ पर उदारता बेकार गई। पर गुलाब सिंह की महत्वाकांक्षा को आगे बढ़ने का अवसर मिला

1 पेने शार्ट हिस्ट्री आफ द सिक्ख्स पृ० 151 52 गार्डन द सिक्ख्स पृ० 124।
2 पेने पूर्वोद्धृत पृ० 144-45 गार्डन पृ० 124।
3 सिन्हा एन० के० रणजीत सिंह पृ० 136 39।
4 चोपड़ा जी० एल० द पंजाब ऐज ए सावरेन स्टेट पृ० 140।

क्योंकि उसने अलग से डोगरा राज्य की स्थापना की। महाराजा के दरबार के लोग डोगरा लोगो के प्रति इस अति उदारता से असतुष्ट भी थे।

डोगरा राजपूतो का षड्यत्र महाराजा के जीवन काल मे ही राज्य को अपार हानि पहुचाता रहा। यदि राजा ध्यान सिंह ने हरि सिंह नलवा का वह पत्र महाराजा को भेज दिया होता, जिसमे उसने अपने सैनिको को, जिन्हे उसने नौनिहाल सिंह के विवाह मे भेजा था, वापस होने को कहा था, तो इस अनुभवी पर दुर्भाग्यशाली और त्रस्त सेनापति नलवा को पेशावर मे बचा लिया गया होता और वह राज्य की कठिन घडी मे बेहतर सेवा कर सकता। यदि डोगरा न किसी-न किसी बहाने राजकुमार खड्ग सिंह को महाराजा के दरबार से दूर न रखा होता तो उत्तराधिकारी राजकुमार राजतत्र म बेहतर प्रशिक्षण पा जाता और अपने साम्राज्य तथा अपने जीवन दोनो को बचा लेता। रणजीत सिंह को अच्छी तरह पता था कि उसकी मृत्यु के बाद उसकी सताना को डोगरा राजा शासन न करने देंगे। "जम्मू भाइयो का उद्देश्य पूरे पजाब को अपने नेतत्व म लाना था। ध्यान दक्षिण पर नियत्रण करने और गुलाब उत्तर पर नियत्रण करने की सोच रहे थे।"[1] पर फिर भी स्थिति मे हेर फेर करने के लिए उसने कुछ नही किया।

उसके मन्त्री आम तौर पर उसके प्रिय थे और साहसी भी। महाराजा के अधिकारियो का चुनाव वाह्य योग्यता पर किया जाता था न कि उनके विश्वास के आधार पर। इसीलिए तब आश्चय नही होता जब यह सूचना मिलती है कि उनमे से तमाम ब्रिटिशो से पत्र व्यवहार करते थे जिसका कुफल यह हुआ कि रणजीत सिंह के बाद पजाब म ब्रिटिशा की सत्ता स्थापित हो गई।

एक बार जब रणजीत सिंह भारत का मानचित्र देख रहा था तो उसने पजाब को छोडकर शेष भारत को, जहा ब्रिटिशा का अधिकार था, लाल रग से रगा हुआ देखा। इस पर उसने कहा, "सब लाल हो जायेगा।" दूसरे शब्दो मे वह जानता था कि ब्रिटिश तो उसकी मृत्यु के बाद पजाब पर अधिकार करेंगे ही। इसके लिए दोना के बीच युद्ध की सभावना भी थी। उसकी गलती यही थी कि उसने इस युद्ध को टाला।

कुछ लेखका के विचार से सिख शक्ति का पतन, 1809 म महाराजा द्वारा अमृतसर की सधि[2] पर हस्ताक्षर से प्रारम्भ हुआ। इन लेखको के मतानुमार 1823 के बाद उसके दृष्टिकोण मे अग्रेजो के प्रति जो नम्र भाव दिखाई पडा वह

---

1 पेन पूर्वोद्धत पृ० 137।

2 इस पुस्तक का प्रथम भाग देखें, लार्ड मिण्टो पर लिखा गया अध्याय।

सरकार सवार थी और रणजीत सिंह घोडा।" "उसने कभी शान से साहस नही किया। वह प्रतीक्षा और अनिर्णय मे विश्वास करता था।"[1]

पर महाराजा की आलोचना मे आइये अब और आगे न बढ़ें अन्यथा यह आरोप लगाया जायेगा कि हम उसके प्रति भेद भाव रखते हैं। आखिर वह भी तो हाड मास का एक पुतला था। एक व्यक्ति के रूप मे वह दुर्भाग्यशाली भी था क्योकि उसके सभी विश्वस्त और बहादुर सेनापति जैसे मोहकम चद, दीवान चद, हरि सिंह नलवा और राम दयाल महाराजा के मृत्यु से पूर्व ही मर गये थे। इनमे से किसी के न होने और जो बचे भी उनके कमजोर और गद्दार होने के कारण सेना पर नियन्त्रण ढीला पड गया। और यदि महाराजा एक कार्यक्षम और स्थायी प्रशासन नही स्थापित कर सका तो हमे यह भी नही भूलना चाहिए कि वह अधिकतर काल के लिए क्षेत्रो के विजय और सगठन मे जुटा हुआ था जिसके कारण अन्य कारवाइयो के लिए उसके पास समय नही था। इसके अतिरिक्त महाराजा का काल भारतीय इतिहास का मध्य काल था और जो परम्परा उसने उत्तराधिकार मे प्राप्त की थी वह सभी पूर्वी परम्परा की थी। उसके प्रशासकीय कार्यो की तुलना आधुनिक काल के कार्यों से करना या उसके समकालीन युरोपीय शासको से करना उचित नही है क्योकि ऐसा करने से उस महान् विजेता के साथ अन्याय हो जायेगा। रणजीत सिंह वह महान व्यक्ति था जिसने अपने शासित क्षेत्र मे लोगो को धर्म निरपेक्ष शासन का अनुभव कराया।

1 सिन्हा, एन० के० पूर्वोद्धत पृ० 90-91।

क्षम्य नही है। फीरोजपुर को लेकर उसकी कूटनीतिक पराजय, शिकार के प्रश्न तथा सिंध नदी के नौ संचालन पर उसकी नीति कायरतापूर्ण थी। सिख सेना इतनी शक्तिशाली थी कि वह ब्रिटिशो से लडकर उन्हे पराजित कर सकती थी पर इसके लिए शासक के साहस की आवश्यकता थी। यह चीज काबुल मे प्रथम आग्ल अफगान युद्ध मे अग्रेजो के विनाश से स्पष्ट है। पेने भी यह स्वीकार करता लगता है 'ब्रिटिश सेना ने ऐसे शत्रु के हाथो मुह की खाई जिनके ऊपर खाल्सा की सेना ने एक से अधिक बार निर्णायक विजय प्राप्त की थी।"[3] वैसे तो उस समय महाराजा जीवित था जब ब्रिटिशो को प्रारम्भ ही मे अफगानिस्तान मे असफलता मिली पर इस असफलता मे उसने अपने लाभ की खोज की। पर उसने युद्ध करने से पीछे हटने की न तो इच्छा व्यक्त की और न ही वह डरा। अपने हितो की तिलाजलि दे उसने अपने पौत्र नौनिहाल सिंह के नेतृत्व मे अपनी पूरी सेना पेशावर इसलिए भेज दी कि वह कैप्टेन वाडे से मिलकर कार्रवाई करे। यह कार्य उसने सतलज का क्षेत्र छोडकर किया जहा पर ब्रिटिशो की एक डिवीजन सेना थी। इतना ही नही बल्कि "उसके देश का पशुओ अनाज आदि का सभी साधन ब्रिटिश शासन के लिए खोल दिया गया।"[4]

यदि वह साहस करता तो ब्रिटिशो से जीत जाता यह बात इससे भी सिद्ध है जब हम यह पता पाते है कि 1838 मे महाराजा ने जब अपनी सेना सतलज नदी के तट पर ब्रिटिश सेना को रोकने के लिए भेजा तो ब्रिटिश गवर्नर जनरल घबरा गया। यह इसलिए किया गया था कि जिससे ब्रिटिश सेना अफगानिस्तान पर आक्रमण के लिए पजाब मे होकर न जाय।

पर 1838 मे महाराजा की यह बहादुरी दुर्भाग्यपूर्ण घटना सिद्ध हुई। खाल्सा सेना प्रोत्साहित हुई और उन्हे अपनी शक्ति मे विश्वास हो गया। पर उन्होने यह तब किया जब महाराजा नही रहे। इसी घटना ने उन्हें सतलज पार करने की प्रेरणा दी और यह बात आत्महत्या की तरह सिद्ध हुई।

बिस्मार्क कहा करता था कि दो शक्तियो के बीच सधि का अर्थ है एक सवार और एक घोडा। रणजीत सिंह के नेतृत्व मे आग्ल सिख सम्बन्धो मे 'ब्रिटिश

---

1 यह सतलज नदी के बाये तट पर था और उसपर उसका निर्णायक अधिकार था। पर ब्रिटिशो ने इसे स्वीकार नही किया और 1835 मे इस महत्त्वपूर्ण स्थान पर उन्होने अधिकार कर लिया। लार्ड आकलैण्ड ने 1838 मे इसे एक कण्टोनमण्ट मे परिवर्तित कर दिया।

2 लार्ड एलनबरा सम्बन्धी अध्याय 7 मे देखिये।

3 पेन शार्ट हिस्ट्री आफ द सिक्ख पृ० 133 34।

4 कलकत्ता रिव्यू अगस्त 1844 पृ० 475।

सरकार सवार थी और रणजीत सिंह घोडा।" "उसने कभी शान से साहस नही किया। वह प्रतीक्षा और अनिर्णय मे विश्वास करता था।"[1]

पर महाराजा की आलोचना मे आइये अब और आगे न बढें अन्यथा यह आरोप लगाया जायेगा कि हम उसके प्रति भेद भाव रखते हैं। आखिर वह भी तो हाड-मास का एक पुतला था। एक व्यक्ति के रूप म वह दुर्भाग्यशाली भी था क्योकि उसके सभी विश्वस्त और बहादुर सेनापति जैसे मोहकम चद, दीवान चद, हरि सिंह नलवा और राम दयाल महाराजा के मृत्यु से पूव ही मर गये थे। इनम से किसी के न होने और जो बचे भी उनके कमजोर और गद्दार होन के कारण सेना पर नियन्त्रण ढीला पड गया। और यदि महाराजा एक कायक्षम और स्थायी प्रशासन नही स्थापित कर सका तो हमे यह भी नही भूलना चाहिए कि वह अधिकतर काल के लिए क्षेत्रों के विजय और सगठन म जुटा हुआ था जिसके कारण अन्य कारवाइयो के लिए उसके पास समय नही था। इसके अतिरिक्त महाराजा का काल भारतीय इतिहास का मध्य काल था और जो परम्परा उसने उत्तराधिकार म प्राप्त की भी वह सभी पूर्वी परम्परा की थी। उसके प्रशासकीय कार्यो की तुलना आधुनिक काल के कार्यों से करना या उसके समकालीन युरोपीय शासको से करना उचित नही है क्योकि ऐसा करन से उस महान् विजेता के साथ अन्याय हो जायेगा। रणजीत सिंह वह महान व्यक्ति था जिसने अपने शासित क्षेत्र मे लोगो को धम निरपेक्ष शासन का अनुभव कराया।

1 सिन्हा, एन० के० पूर्वोद्धृत, पृ० 90-91।

7

एलेनबरो (1842-44)

सिंध का संयोजन

एलेनबरो एक ऐसे परिवार म पैदा हुआ जिसन विधि और चच मे महारथ हासिल कर रखी थी। उसके पिता का नाम एडवड लॉ था जो बाद म लाड एलेनबरो कहलाया और लाड चीफ जस्टिस के पद पर नियुक्त किया गया। उसकी माता का नाम ऐन था जो कैप्टन जाज टावरी की पुत्री थी। वह 8 सितम्बर, 1790 मे पैदा हुआ और उसका नाम एडवड ला रखा गया, बाद मे उसे एलेनबरो के अल का नाम दिया गया। उसकी शिक्षा ईटन और सेण्ट जान्स कॉलिज म हुई। 1813 मे वह ससद सदस्य हो गया और उसने लाड कासिलरे की बहन आर लदन डेरी के प्रथम मार्क्विस की पुत्री आक्टविया स्टीवट से विवाह कर लिया। वह 1818 म अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। 1819 मे उसकी पत्नी का देहान्त हो गया और 5 वष बाद उसन सर हनरी डिग्बी की पुत्री जेन एलिजाबेथ स विवाह कर लिया। वह अति सुन्दर थी पर अविश्वस्त पत्नी थी जिसके कारण 1830 मे उसका तलाक हो गया। 1828 मे एडवड लाड प्रीवी सील नियुक्त किया गया और बाद मे बोड आफ कन्ट्रोल का प्रेसीडेन्ट। इस स्थिति मे उसे भारतीय स्थिति के बारे मे काफी जानकारी हुई। सर राबट पील ने 1841 मे उसे भारत का गवनर जनरल नियुक्त किया और वह लाड आकलण्ड की अफगान नीति का समाधान करने आया। उसने अफगान युद्ध समाप्त कराया फिर इस सम्बन्ध मे वह विवाद का विषय भारत ही नही इगलड म भी बना।[1]

भारत मे उसके काल म सबसे महत्त्वपूण घटना सिंध का संयोजन था। एक देश जो पजाब के दक्षिण म बसा हुआ था, सिंध के दोना ओर फला यह अरब सागर से जा लगता था। पूव और पश्चिम के बजर भूमि से यह घिरा था। मुगल काल म इसने उनका पथ स्वीकार किया। 1739 मे जब नादिरशाह का आक्रमण हुआ तो यह स्थान उसके अधिकार म आ गया और इसके बाद यह अफगानिस्तान का

---

1 लाड आकलण्ड से सम्बन्धित अध्याय देखिये।

एक सहायक राज्य बन गया। 18वी सदी के अ त मे तलपुरा कबीले के कुछ नेता जा बलूचिस्तान से आ रहे थे, इस पर अधिकार कर लिया और आपस मे बाट लिया। इन नेताओ मे महत्त्वपूण खैरपुर, मीरपुर, और हैदराबाद के थे। इनमे से प्रथम अ य लोगो पर अपना अधिकार बताता था।

पिछला इतिहास—यदि हम सक्षेप मे इस प्रदेश का पिछला इतिहास देखे तो पता चलेगा कि यहा से प्रथम सपक ब्रिटिशा ने अपने सौदागरा केमाध्यम से 1758 मे किया जब थट्टा मे एक फैक्ट्री बनाने की अनुमति प्राप्त की गई। 1761 मे उ ह कुछ और सुविधाए प्रदान की गयी, पर 1775 मे अग्रेजो के कारण सिंध के अमीरो के मन मे अविश्वास पैदा हो गया क्योकि वे सिंध की राजनीति मे हस्तक्षेप कर रहे थे। ऐसी स्थिति मे उ हे देश से वापस चले जाने को कहा गया।

1799 मे सिंध मे अग्रेजा ने पुन असफल व्यापारिक रुचि दिखाई। पर जब 1807 मे यूरोप मे नेपोलियन और रूस के जार के बीच टिलसिट की सधि हो जाने से राजनैतिक स्थिति बदली और यह सभव दिखा कि पूर्वी ब्रिटिश साम्राज्य पर फ्रासीसी सेनाओ का आक्रमण सभव है तो ब्रिटिशा ने सिंध मे वैसा ही एक शिष्ट-मडल भेजा जैसा उन्होने पजाब मे भेजा था। इस शिष्टमडल ने अमीरो को 1809 मे एक सधि करने को बाध्य किया जिसका 1830 मे नवीनीकरण किया गया। जिसके माध्यम से सिंध के अमीरा और ब्रिटिशा के बीच एक स्थायी सधि की गई। इसके अ तगत अमीरो ने यह स्वीकार किया कि वे फ्रासीसियो को या अमेरिकियो को अपने देश मे बसने नही देगे। उ होने आपस मे यह भी तय किया कि वे एक-दूसरे के यहा बस सकेगे बशर्ते कि वे शातिपूवक रहे। 1831 तक आग्ल सिंध के सम्ब धो मे कुछ अ य महत्त्वपूण नही घटा।

इस बीच 1818 मे रणजीत सिंह ने मुल्तान पर अधिकार कर सिंध की ओर महत्त्वाकाक्षा से देखना प्रारभ किया। 1823 मे उसने बलूचियो को दडित करने के बहाने मुल्तान के सैनिको पर आक्रमण किया जिसका सही उद्देश्य यह था कि शिकारपुर[1] पर अधिकार की सभावनाओ का पता लगाया जाय। आसकित अमीरो ने उसके पास भेंटे भेजी और रणजीत सिंह वापस लौट आया। 1824 मे रणजीत सिंह ने यह जताया कि अफगान क्षेत्रा पर जो पजाब मे थे उन पर अधिकार कर लिया है और उनकी शक्ति अपने हाथो मे ले ली है इसलिए अब अमीरा को वह कर उसे देना चाहिए जो अभी तक बहुत पहले से अफगाना को देते आ रहे है। चूकि अमीरो न एक अरस से कर देना ब द कर दिया था इसलिए उ होने इसका उत्तर

1 विस्तार के लिए देखें प्रि सेप ओरीजिन आफ द सिख पावर इन पजाब पृ० 140 एव छाबडा, जी०एस० हिस्ट्री आफ पजाब अध्याय 8।

नकारात्मक ढग से दिया जिसके फलस्वरूप रणजीतसिंह ने अपनी सेना 1825 म उस क्षेत्र की ओर बढा दी। पर उस क्षेत्र मे फैले हुए दुर्भिक्ष के कारण उसने इस योजना को पूरा नही किया और वापस चला गया। 1826 मे उसने पुन अपनी सेना भेजी। पर चकि सैय्यद अहमद ने पशावर मे विद्रोह कर दिया था इसलिए उसे शीघ्रता मे वापस लौटना पडा।[1]

ब्रिटिश सिंध की ओर रणजीत सिंह की महत्त्वाकाक्षा को निश्चिन्त होकर नही देख सक्ते थे। और इसी कारण 1831 के आगे सिंध ने अत्यधिक कूटनीतिज्ञता के खेल म भाग लेना प्रारभ कर दिया जिसम रणजीत को मात्र पराजित ही नही होना पडा वल्कि उस क्षेत्र से हटना ही पडा। यह खेल सिंध मे नौसचालन को लेकर प्रारभ हुआ।

सिंध मे नौसचालन—19वी सदी के प्रारभ से ही सिंध नदी के नौसचालन मे ब्रिटिशो की रुचि थी। वे मध्य एशिया के बाजारो को नियत्रित करने का स्वप्न सजो रहे थे जो सिंध नदी के रास्त स पूणतया सभव था। 1809 मे ही विलियम मरक्रोफ्ट ने लिखा था सिंध नदी का नौसचालन युरोपीयो का तो कम ही ज्ञात था क्योकि उस क्षेत्र म उन्होने प्रयास ही नही किया था पर पर्याप्त बोझ वाली नौकाओ के लिए भी व्यवहार लाने योग्य था।"[2] पर इस नदी मे नौसचालन के और भी कारण थे। फरवरी 1828 म रूस और फारस के बीच तुर्कोमचाई की जो सधि हुई उसके सम्बध मे केयी लिखता है "फारस को हाथ और पैर बाधकर सेण्ट पीटस के दरबार मे पेश कर दिया गया।"[3] रूस अब मात्र अफगानिस्तान म कारवाई के लिए प्रयास नही कर रहा था बल्कि खुरासान और हेरात म भी। कुछ का कहना है कि भारत की ओर भी उसकी दृष्टि थी। सिंध मे नौसचालन ब्रिटिशो को इन सभी राज्यो से सपक मे ला सकता था और इस तरह रूस के कदम पर प्रतिबध लगा सकता था।

इसी बीच फारस के शासक फतेह अली की ओर से एक शिष्टमडल का आगमन हैदराबाद के अमीर के यहा उसके पुत्री के विवाह प्रस्ताव को लेकर हुआ। स्वाभाविक रूप से ब्रिटिशो का सदेह हो गया कि इन दोनो देशो मे मैत्री हो गई तो रूस फारस से होकर सिंध पर अपने प्रभाव का विकास कर सकता था। इसके अतिरिक्त रूस का बुखारा व पडोसी खानात म व्यापारिक प्रभाव था जिसका प्रतिरोध

---

1 कनिघम हिस्ट्री आफ द सिख्स पृ० 165 लतीफ हिस्ट्री आफ द पजाब, पृ० 433।

2 मूर क्रोफ्ट डब्लू ट्रेवेल्स इन हिमालयन प्रोविसेज आफ हिन्दुस्तान एण्ड पजाब भाग 2 पृ० 338।

3 केयी हिस्ट्री आफ वार इन अफगानिस्तान भाग 1, पृ० 151 56।

सिंध और मध्य एशिया मे प्रभाव बढावर किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त सिंध मे नौसचालन मे युरोपीयो के तथा भारतीयो के उत्पादित माल के लिए नयी बाजारा का विकास भी हो सकता था। और पुन ब्रिटिश सिंध मे रणजीत सिंह की बढती हुई रुचि का भी दशन कर रहे थे जो अरब सागर तक पहुचने के लिए एक रास्ता पाने के लिए प्रयासरत था जिससे कि समुद्र के पार के देशो से सपक हो सके। कनिघम का कहना है कि रणजीतसिंह के इस तरफ के प्रभाव को रोकने का तरीका 'सिंध म नौसचालन को सारे विश्व के लिए खोल देना था।'' [1] इसके अतिरिक्त चाल्स मासन के मतानुसार अग्रेजो का गुप्त उद्देश्य महाराजा के राज्य क्षेत्र को घेर लेना था। 1842 मे अक्टूबर मे रानी को लाड एलेनबरो का जो प्रेषण भेजा उसमे लिखा था, "लाड एलेनबरो चाहता है कि इग्लैड के लिए वस्तु व्यापार पथ मे सिंध गगा से भी बाजी मार ले जाय और इसी रास्ते से युरोप की सभी सेनाए और सैनिक साजो सामान उत्तर-पश्चिम सीमा पर पहुच जाय।"

यह भी अनुभव किया गया कि अग्रेजो की इस तरह की कायप्रणाली स्वाभाविक रूप से रणजीत सिंह और सिंध के अमीरा, दोनो के लिए एतराज का विषय होगी इसलिए एक अतिसावधानीपूण कदम की आवश्यकता थी जिसे ब्रिटिशो ने 1827 28 म घोषित किया।

1827 म रणजीतसिंह ने भारत के गवनर जनरल लाड एमहस्ट को कुछ भेटें भेजी। दूसरे वष जब एमहस्ट इगलड वापस चला गया तो यह योजना बनाई गई कि वे भेटें ब्रिटिश शासक की ओर से महाराजा को वापस की जाए। इन भेंटो मे हाथी, एक बैलगाडियो का काफिला, एक साड और चार घोडिया। ये सभी सिंध क्षेत्र से होकर भेजे जायेगे। "भारत और इग्लैड के सभी अधिकारियो का विचार था कि इससे बहुत से राजनैतिक और भौगोलिक तरह की जानकारिया प्राप्त होगी।" [3] ब स को इस कारवाई का प्रब धक बनाया गया। यह भी योजना बनाई गई कि यदि सिंध के अमीर इस पर इतराज करेंगे तो उनसे यह कहा जायगा कि सडक से भेजे जाने पर महाराजा की भेंटे बेकार हो जायेंगी। इस कारण नदी से होकर भेंटो का भेजा जाना आवश्यक है।

स्पष्टतया इसमे ब्रिटिशा के नापाक और षडयत्रकारी कूटनीति के दशन होते हैं। डा० आर० आर०सेठी [4] के मतानुसार इस शिष्टमडल का "ऊपरी उद्देश्य और सिंध से होकर जासूसी करने का विवरण अफगान युद्ध के अवसर पर सामने आया।

---

1 कनिघम पूर्वोद्धत, प० 172।

2 मासन चाल्स नरेटिव आफ वेरियस जर्नीज, पृ० 432।

3 सेठी आर० आर० द माइटी ऐण्ड श्रीउड महाराजा, प० 78।

4 वही प० 82।

मेटकाफ ने भी कहा कि इस तरह की कारवाई हमारी सरकार की प्रतिष्ठा के अनुकूल नही है। पर मोहनलाल के मतानुसार यह सूचना प्राप्त होती है कि इससे 20 वर्ष पूर्व भी इसी तरह की भेंटें रणजीत सिंह के पास सडक से होकर भेजी गई थी। इस कारण रास्ते मे वस्तुओं के खराब होने का बहाना अनुचित था। सर अलेक्जाण्डर बर्न्स ने इस योजना के सम्बन्ध मे स्वय लिखा है, "यह मुझे बहुत बुरा लगता है। मेरी दृष्टि मे यह मेरी सरकार की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल एक प्रयास है। जब इसका आगे पता चलेगा और जो निश्चित ही होगा, तो उन राज्यो की ईर्ष्या और अपमान भावना आग की तरह भडक उठेगी जिनके विरुद्ध इसका प्रयोग हो रहा है। इससे युद्ध तक हो सकता है।"[1]

जैसी कि आशा थी अमीरो ने ब्रिटिश नीति का विरोध किया। और अन्तत. उन्होने रणजीतसिंह की सेना के आतकित करने पर जो सयोग से डेरा गाजी खान के निकट थी, शिष्टमडल को आगे बढने दिया। महाराजा के सैनिको की धमकी की सहायता महाराजा को भेंट भेजने के बदले प्राप्त कर अग्रेजो ने महाराजा का इस मामले मे हस्तक्षेप भी प्राप्त किया जिसने अमीर के दूत को अपने सामने बुलाया और इस व्यवहार के लिए उन्हे डाटा। रणजीत सिंह ने ऐसा इसलिए किया क्योकि वह सिंध के विरुद्ध स्वय कोई कारवाई का बहाना ढूढ रहा था। पर उसे क्या पता था कि इस बारे मे वह ब्रिटिश कूटनीति से मुह की खा जायेगा।

भेंट देने के साथ ही, कहा जाता है कि बर्न्स ने ऐसे ही सिंध नदी और सतलज नदी मे नौसचालन की सभावना की चर्चा छेड दी। लुधियाना का ब्रिटिश एजेण्ट वाडे जो बर्न्स के शिष्टमडल के साथ ही दरबार आया, उसने बेंटिक के साथ भेंट करने का प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया। यह कहा गया कि रुपड मे रणजीत सिंह का शान से स्वागत किया जाएगा। इसके बाद दूसरे दिन गवर्नर जनरल महाराजा की सीमा की ओर भी आयगा।

26 अक्टूबर, 1831 को रुपड मे गवर्नर जनरल और महाराजा के बीच भेंट की व्यवस्था की गई। इस अवसर पर रणजीत सिंह ने लतीफ के मतानुसार गवर्नर जनरल से सिंध के विरुद्ध सामूहिक कारवाई करने का परामर्श दिया और यह प्रस्तावित किया कि कारवाई के बाद सिंध को आधा-आधा बाट दिया जायगा। पर गवर्नर जनरल ने यह कहकर इनकार कर दिया कि उसकी सिंध मे कोई रुचि नहीं है। अब्दुल कादिर[2] ने लिखा है कि इस तरह गवर्नर जनरल ने महाराजा को यह बताकर कि उस क्षेत्र मे उसकी रुचि नही है उसे उस मामले म

1 सिन्हा एडवर्ड हीरोज आफ माडर्न इडिया, पृ० 145।
2 खालसा कालेज अमृतसर से प्रकाशित रणजीत सिंह सेन्टीनरी वाल्युम।
3 वही।

निश्चिन्तता की स्थिति मे कर दिया जबकि इसके चार दिन पूव उसने पोटिंजर को यह आदेश दे दिये कि वह सिंध जाकर अमीरो से व्यापारिक सधि कर ले ।[1]

जब ब्रस ने सिंध नदी के नौ सचालन के पक्ष मे अपना मत दिया तो गवनर जनरल ने तुरन्त इस योजना पर अमल किया । पोटिंजर को अमीरो के पास सिंध नौ-सचालन की योजना सहित भेजा गया । उसे इसके पूरे निर्देश प्राप्त हो चुके थे कि किस तरह उसे आगे बढना है । उससे अमीरो से सिंध नदी से होकर निर्बाध व्यापार करने के लिए आश्वासन लेन को कहा गया । वह अमीरो को यह भी बतायेगा कि इससे उसकी जनता समृद्धिवान होगी । और यदि अमीरो को फिर भी एतराज हो तो पोटिंजर को यह कहना होगा कि अमीरो को अतर्राष्ट्रीय नियमो के अतगत सिंध नदी क्षेत्र म बसने वाले लोगो के व्यापार हित पर रोक नही लगा सकता । इसलिए तो और कि उसका थोडे से क्षेत्रो पर ही अधिकार है ।[2]

पोटिंजर को ये निर्देश रपड भेंट के चार दिन पूव ही दिए गये । योजनानुसार आगे बढते पोटिंजर अतत 4 अप्रैल, 1832 को अमीरो से सधि करने मे सफल हुआ । इस सधि का मुख्य मुद्दा यह था कि अमीर ब्रिटिशो को सिंध से होकर व्यापार की छूट तो देंगे पर वे उन्ह सैनिक साज सामान नही ले जाने देंगे और न ही हथियार । साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि किसी भी ब्रिटिश को सिंध म बसने की अनुमति नही दी जाएगी । इससे स्पष्ट है कि अमीर ब्रिटिशो पर कितना अविश्वास करत थे । 22 अप्रल की पूरक सधि मे विदेशी माल पर लगने वाले कर के अधिकार को अमीरो के हाथ से ब्रिटिशो ने अपने हाथ म ले लिया ।

गाडन[3] के मतानुसार, स्वाभाविक रूप से इन सभी योजनाओ ने महाराजा के मस्तिष्क म एक अति सदेह की भावना उत्पन्न की और यह कहा जाता है कि जब उसे इस सधि की सूचना प्राप्त हुई तो वह कई राता तक सो नही सका । पर ब्रिटिशो ने उसे सतोष दिलाया । उसके ऊपर प्रभाव डालकर तथा भावलपुर के नवाब से भी कहकर यह चाहा गया कि सतलज को भी नौ-सचालन के लिए सिंध की तरह खोल दिया जाय । इस तरह सतलज और सिंध नदियां ब्रिटिशो के व्यापारिक और राजनैतिक खेल के अखाडे के लिए खुल गइ ।

इन नदियो के नौ सचालन हेतु खुल जान के बाद, वाडे के काल से ही चला आ रहा दूसरा प्रस्ताव यह आया कि सिंध नदी क्षेत्र के अलग-अलग स्थलो पर ब्रिटिश अधिकारियो की नियुक्ति की जाय । उनका यह तक था कि सिखो, सिन्धिया और दावोदपोतो के बीच शत्रुभाव है । इसलिए यदि इनके मध्य

1 छाबडा पूर्वोद्धत, भाग 2, अध्याय 8 ।

2 पजाब गवनमेण्ट रिकार्डस 98/181 गवनमेण्ट टू पाटिंजर, 22 अक्तूबर 1831 ।

3 गाडन द सिख्स, प० 31 ।

ब्रिटिश अधिकारी न रहेंगे तो उनकी आपसी शत्रुता उनके व्यापार पर दुष्प्रभाव डाल सकती है, दूसरे रणजीत सिंह का यह प्रयास मिठनकोट को एक बाजार में बदलकर अपने क्षेत्र का उत्पादित माल वहां से न चलाया जाय, भी सफल नहीं हो पायेगा। तीसरे उसका तर्क था कि चूंकि इस सबमें ब्रिटिश का उद्देश्य राजनैतिक है इस कारण ये अधिकारी इस उद्देश्य की वहां पूर्ति करेंगे। चौथे, मिठनकोट और शिकारपुर के क्षेत्र के बीच का क्षेत्र, जो अमीरों की दया पर रहता है, ब्रिटिश उसकी रक्षा कर सकेंगे। और अंतिम रूप से, उसने कहा कि मिठनकोट केन्द्र स्थल होने के कारण यदि वहां ब्रिटिश अधिकारी रहेगा तो वह व्यापार को नियमित और नियंत्रित कर सकेगा।

पर इस प्रस्ताव को प्रभावशाली बनाना सरल नहीं था। सिंध के अमीर चूंकि ब्रिटिशों को जान गए थे इसलिए वे ब्रिटिश अधिकारियों की नियुक्ति अपने क्षेत्र में करने के लिए तैयार नहीं थे। पोटिंजर को पुनः उन्हें समझाने को भेजा गया पर वे अपनी स्थिति से एक इंच भी नहीं हटे। जब समझाने-बुझाने और धमकाने की सारी नीति असफल हो गई तो अंततः एक समझौता किया गया जिसके अंतर्गत यह तय हुआ कि एक यूरोपीय की जगह कोई स्थानीय व्यक्ति ही सिंध में ब्रिटिश अधिकारी नियुक्त किया जाएगा। इस तरह सिंध नदी को व्यापार के लिए खोल दिया गया।

पर इन सारे प्रयासों के बावजूद यह व्यापार-पथ लोकप्रिय नहीं हो सका जबकि इसे महत्वपूर्ण बनाने की हर चेष्टा हुई। बर्न्स को काबुल इसलिए भेजा गया कि वहां के व्यापारियों को इसकी उपयोगिता के विषय में बताया जाय, पर यह योजना भी सफल नहीं हुई और अंततः इस व्यापारिक पथ को बन्द ही कर देना पड़ा।

इसकी असफलता के कारण स्पष्ट थे। जिन जिन लोगों ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किया ब्रिटिश ही इस योजना में रुचि रखते थे। पर उनकी योजना का मूल उद्देश्य भी व्यापारिक इच्छा से अधिक राजनैतिक उद्देश्यों से प्रेरित था। रणजीत सिंह, भावलपुर के भावल खां और सिंध के अमीरों को इस योजना के विषय में संदेह था। अमीर अपने क्षेत्रों में नावों को रोक देते और देर में जाने देते थे और शांतिपूर्ण व्यापार में हर तरह का व्यवधान उपस्थित करते थे। यह ब्रिटिशों की धमकी के बावजूद होता था। इस तरह इन नदियों में नौ-संचालन प्रारम्भ करने का एक ही लाभ हुआ कि रूस और सिख लोगों की सिंध के विरुद्ध योजना को सफलता नहीं मिली। चार्ल्स मासन ने लिखा, "इस नीति के पीछे बनाये गए बहाने का परिणाम यह हुआ कि इस नदी पर और इससे दूर के देशों में सैनिक भर्ती किये गए तथा नदी में लगभग 6 स्टीमर दिखाई पड़ने लगे जिनका

उद्देश्य युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों का था, व्यापार का नहीं।"[1] पर ब्रिटिशों का मूल उद्देश्य भी यही था और इसमें उन्हें सफलता प्राप्त हो गई।

राजनैतिक नियंत्रण—सिंध से इस तरह व्यापार सम्बन्ध स्थापना के बाद अंग्रेजों के लिए राजनैतिक नियंत्रण बनाये रखना कठिन न रहा। सच तो यह है कि पूरब में ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ब्रिटिश व्यापारियों को दबाने में सफल रहा करते थे और सिंध में भी इसका अपवाद नहीं था। शिकारपुर की समस्या ने इनका काम और सरल कर दिया।

सिंध के पश्चिम और मिठनकोट के उत्तर में स्थित शिकारपुर अपने व्यापार केन्द्र होने के लिए दूर दूर तक प्रसिद्ध था। साथ ही इसकी सैनिक महत्ता थी क्योंकि यह बोलन दर्रे के रास्ते में पड़ता था और इस तरह इस दर्रे की रक्षा के लिए यहां एक सैनिक केन्द्र स्थापित हो सकता था। रणजीत सिंह स्पष्टतया अपने उद्देश्यों के लिए यहां पर अधिकार करना चाहता था पर अंग्रेज भला इसकी अनुमति कैसे देते।

मिठनकोट के दक्षिण पश्चिम स्थित क्षेत्र में लूटपाट करने वाली एक जाति मेजारी सिंध, भावलपुर और लाहौर क्षेत्र पर आक्रमण करती रहती थी। पर चूंकि उनका क्षेत्र सिंध और पंजाब के बीच का था, इस कारण अमीर अपनी राजसत्ता के बावजूद उन्हें नियंत्रित नहीं कर पाते थे। 1836 तक लाहौर क्षेत्र में मेजारियों के आक्रमण बढ़ गये और रणजीत सिंह ने उनकी शक्ति का सदा सदा के लिए विनाश का निश्चय कर लिया। साथ ही उनके आक्रमणों से हुई हानि की पूर्ति हेतु उसने अमीरों से शिकारपुर की मांग की। "ब्रिटिशों को स्वाभाविक रूप से उसके इसपर अधिकार करने पर कोई एतराज नहीं होना चाहिए था। यह सतलज व सिंध के पश्चिम में पड़ता था और 1809 की संधि के अनुसार उन्होंने सतलज के उस पार के क्षेत्रों में हस्तक्षेप न करने के लिए आश्वस्त किया था।" पर अमीरों ने ब्रिटिशों से सहायता की प्रार्थना की जो ऐसे अवसर की प्रतीक्षा ही में थे। 25 नवम्बर, 1836 को अंग्रेजों और अमीरों के बीच एक संधि हुई जिसके अनुसार अमीरों के यहां एक ब्रिटिश एजेंट रखा गया जो महाराजा और अमीरों के बीच एक सम्पर्क सूत्र के रूप में कार्य करने लगा। अमीर लाहौर से अपना वकील वापस बुलाने को तैयार हो गये। और इसके बदले ब्रिटिश अमीरों के क्षेत्र की रक्षा के लिए तैयार हो गये।

स्पष्ट है कि इस संधि पर अमीरों ने हस्ताक्षर क्या किया अपने मौतनामे पर हस्ताक्षर कर दिया। यह स्पष्ट हो गया कि अब अमीर इतिहास के गर्दो गुब्बार में

---

1 मासन, चार्ल्स नरेटिव आफ वेरियस जर्नीज इन बलोचिस्तान अफगानिस्तान, द पंजाब ऐण्ड कलात, पृ० 432।

खो जायेंगे और उनके क्षेत्र का सयोजन हो जाएगा। रणजीत सिंह ने भी रोष व्यक्त किया पर वह असहाय था।

सयोजन—भारत म ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपने आक्रामकता के लिए विख्यात था। पर आक्रामकता की जिस तरह की नीति सिंध म दिखी वैसे पहले कही नही दिखी थी। ब्रिटिशो ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार चरणो मे लागू किया। दूसरा चरण तब आया जब ब्रिटिशो ने भूतपूर्व अफगान अमीर शाहशुजा के समथन म अफगानिस्तान म अपनी सेना भेजनी चाही, पर 1839 म रणजीत सिंह ने ब्रिटिशो को अपने क्षेत्र से होकर नहीं जाने दिया। जहा शक्ति की ही प्रधानता थी वहा तकपूर्ण बातो का कोई स्थान नही था। अब एक ही रास्ता था कि ब्रिटिश सेनाए 1832 के सधि को ध्यान मे रखे बिना अमीरो के सिंध क्षेत्र से होकर सेनाए भेजें। उनसे केवल यह कहा गया कि "जब तक यह स्थिति चलती है इस सधि की सिंध सम्बन्धी शर्त की वह धारा, जिसमे सैनिक साजो-सामान ले जाने पर प्रतिबंध लगा था, उसे आवश्यक रूप से स्थगित कर दिया जाना चाहिए।" सिंध के अमीर के उत्तर की प्रतीक्षा को अनावश्यक माना गया और ब्रिटिश सेनाए सिंध होकर आगे बढी।

पर ब्रिटिश अब भी सतुष्ट नही हुए। और अब अमीरो से जो माग की गई उसके लिए न तो कोई तक था और न ही कोई नैतिक आधार। अमीरो से शाहशुजा को बकाया कर भेजने को कहा गया। अफगानिस्तान का यह भूतपूर्व शासक ब्रिटिशो की शरण मे था। अमीरो ने बार-बार यह कहा कि उन्होने पिछले तीस सालो से कर नही दिया है और शाहशुजा ने स्वय उन्हे इससे मुक्त कर दिया था। इसके अतिरिक्त उनका कहना था कि यह कर अफगानिस्तान के शासक को देय है जो स्थान दोस्त मुहम्मद को प्राप्त है न कि शाहशुजा को। पर ब्रिटिशो को धन की आवश्यकता थी तक की नहीं। अमीरो को स्पष्ट रूप से बता दिया गया कि "हमारे पास उन्हे दबाने और अपमानित करने के लिए शक्ति है और हम उन्हें प्रयोग मे लाने मे सकोच नही करेंगे।" ब्रिटिशो की इस दृष्टिकोण के लिए आलोचना करना बेकार है।

अब भी न सतुष्ट होकर सर जानकीन ने सिंध पर आक्रमण करने के लिए धमकाया और 11 माच 1839 को अमीरो को एक सधि करने को बाध्य किया। पर बाद मे यह पता चला कि इस सधि को असलियत मे वह न होना चाहिए जो यह है। इसी कारण अमीरो से परामश किये बिना इसमे परिवर्तन कर लिया गया और उनके सामने हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत किया गया। अमीरो ने इसपर विरोध व्यक्त किया, पर चूकि ब्रिटिशो के पास उन्हें दबाने के लिए ताकत थी इस कारण उन्हे उसे मानना पडा। इस सधि के अतगत प्रत्येक अमीर का अधिकार अलग अलग कर दिया गया और यदि उनके मध्य कोई झगडा हो तो उसे निबटाने के

लिए ब्रिटिशो की सहायता आवश्यक कर दी गई। सिंध औपचारिक रूप से ब्रिटिशो के सरक्षण मे आ गया और ब्रिटिश सेना इस उद्देश्य के लिए सिंध नदी के पश्चिम रख दी गई। अमीरो को 3 लाख रुपये वार्षिक इनके व्यय के लिए देना स्वीकार करना पडा। यह भी तय हुआ कि यह धन तीन अमीरो से उनकी भूमि के अनुपात मे प्राप्त किया जायेगा। लाड आक्लैण्ड ने स्वय इस सधि के विषय म कहा, "अमीरो का सघ लगभग समाप्त कर दिया गया है।"

प्रथम अफगान-युद्ध काल मे सिंध का ब्रिटिशो ने युद्ध के आधार के रूप म प्रयोग किया। अफगानिस्तान मे ब्रिटिश झगडे के बीच गडबडी के आसार होने के बावजूद अमीर विश्वस्त बने रहे। पर जब युद्ध समाप्त हुआ तो अमीरो पर विरोध और षड्यन्त्र का आरोप लगाया गया। मेजर जेम्स आउट्रम के स्थान पर सितबर 1842 मे सर चार्ल्स नेपियर को हैदराबाद मे रेजीडेण्ट बनाया गया। वह असैनिक व राजनतिक कार्यों की सिंध मे देखभाल करता व नियत्रण रखता था तथा बीहड विस्तारवादी था। यह राजनैतिक अधिकार एवं सेनापति के हाथ मे जाना स्वाभाविक था। इस लिखता है "सर चार्ल्स ने अपनी कारवाई इस सिद्धान्त पर की, कि सिंध का सयोजन एक लाभपूर्ण पाशविकता होगी जिसके लिए उसे कोई बहाना ढूढना चाहिए—जिससे डाका डालने की क्रिया को उचित ठहराया जा सके।"

नैपियर के लिए अपने-आप परिस्थिति तैयार हो गयी। खैरपुर मे उत्तराधिकार का सघर्ष प्रारम्भ हुआ और इस स्थिति के गुण दोष का विचार किये बिना नैपियर ने अली मुराद[1] का पक्ष ले लिया। पर जब यह खेल भी उसे शीघ्र लाभ न दिला सका तो उसने घोषणा की, कि अमीरो के विरुद्ध अविश्वस्तता का जो आरोप अफगान युद्ध के अवसर पर लगाया गया था वह अब सिद्ध हो गया है और इस कारण वे एक कठोर दड के अधिकारी है। यह दड एक सघर्ष के रूप मे होगा जिसके अतगत वे तीन लाख रुपये कर के बदले एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र ब्रिटिशो को प्रदान करेंगे जिससे सहायक सेना का व्यय निकल सके। इसके अतिरिक्त वे अग्रेजी स्टीमरो के लिए, जो सिंध मे चलते हैं तेल की व्यवस्था करेंगे। इसके अतिरिक्त वे अपना सिक्के ढालने का अधिकार ब्रिटिशो को प्रदान करेगे। इसके बाद सिंध म जो रुपया ढाला जायेगा उसपर 'इग्लैण्ड के सम्राट की तस्वीर' बनी होगी। दिसबर 1842 को नैपियर ने घोषणा की, कि यदि 20 जनवरी 1843 तक सधि पर हस्ताक्षर नही कर दिया जाता तो अमीरो का शत्रुतापूर्ण रवैया सिद्ध हो जायेगा।

सधि की शर्तें अत्य त कठोर थी जिसके अतगत अमीरो को राष्ट्रीय अधिकार

1 विस्तार के लिए देखें, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5 पृ० 532।

का परित्याग कर नमित होना था। आउट्रम ने खैरपुर के अमीरों की एक बैठक बुलाई और उन्हें समझाया। दक्षिण के अमीर तो समय पर पहुंच गये पर उत्तर के अमीरों को अली मुराद की योजना के फलस्वरूप दो दिन और लग गये। यह साम्राज्यवादी, क्रोधी सेनापति नैपियर के लिए बर्दाश्त करना कठिन था। उसने एक आश्चर्यचकित करने वाला कदम उठाया। बिना युद्ध की घोषणा किये खैरपुर और हैदराबाद के बीच में बने किले इमामगढ़ पर आक्रमण कर दिया और इसे मिट्टी में मिला दिया। 'ऐसा लगता था कि गवर्नर जनरल को भी सिंध पर उसकी कार्यवाई करने पर कोई रोक लगाने का अधिकार नहीं था।'

पर नैपियर को अमीरों को संधि पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए समझाने में सफलता प्राप्त हुई जिससे कि बहुत बुरा होने से बच गया। अमीरों ने नैपियर को हैदराबाद छोड़ देने की चेतावनी दी क्योंकि उनके देशवासियों से ब्रिटिश लोगों के हानि की संभावना थी क्योंकि वे वर्तमान परिस्थिति में नियंत्रण में नहीं लाये जा सकते थे। पर चेतावनी की ओर ध्यान नहीं दिया गया और तीन दिनों में नैपियर के अत्याचार नीति से त्रस्त होकर बलूचियों ने आउट्रम के निवास पर आक्रमण कर दिया जिसने कि बहादुरी से आत्म रक्षा में जुटे रहते हुए एक स्टीमर पर जाकर शरण ले ली। अब युद्ध प्रारंभ हो गया।

17 फरवरी 1843 को नेपियर ने एक शानदार लड़ाई लड़ी। एक योग्य सेनापति नैपियर ने केवल 3,000 सैनिकों की सहायता से मियानी के अमीर को उसके 30 000 सैनिकों सहित पराजित किया और उनमें से 5,000 को मार डाला।[1] 27 मार्च 1843 को हैदराबाद पर अधिकार हो गया। मीरपुर पर अधिकार हो गया। नैपियर ने एलेनबरो को लिखा, "मैंने सिंध जीत लिया है।" सिंध का संयोजन कर लिया गया और अमीरों को खदेड़ दिया गया। नैपियर को हैदराबाद की लूट में से 70 हजार पौण्ड प्राप्त हुआ। आउट्रम को 3,000 पौण्ड देने को कहा गया जिसे उसने रखने से इनकार करते हुए यह कहते हुए दान दे दिया, "मैं इस नीति से आजिज आ गया हूं।"

इस तरह से सब कुछ हुआ। पी० ई० राबर्टस ने लिखा है "एक योग्य और महत्त्वाकांक्षी सेनापति, जो ऊंचाई पर पहुंचने का आकांक्षी था और बेचैनी से इस बात में विश्वास रखता था कि ब्रिटिश शासन के लाभ के कारण इसे किसी तरह विस्तृत किया जाना चाहिए। इसी कारण उसने एक पहले से ही तैयार सैनिक समाधान के द्वारा एक काफी कठिन प्रशासकीय समस्या का हल किया।"[2]

---

1 नैपियर विलियम द कान्क्वेस्ट आफ सिंध।

2 राबर्टस हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया, पृ० 329।

डाइरेक्टरो ने स्वय नैपियर के सिंध नीति को स्वीकार नही किया और न ही एलेनबरो के सिंध के मौन छीना-झपटी को ही पसन्द किया। यह बात और है कि उ होने सिंध अमीरा को वापस नही किया। यहा पर दुहराना अनुपयोगी ही है कि अमीर निर्दोष थे, उन्होंने ब्रिटिशो को उत्तेजित होने का अवसर नही दिया था और वे ब्रिटिशो से होने वाले समझौते के प्रति विश्वस्त बने रहे थे चाहे वह अफगान युद्ध का काल रहा हो अथवा उसके बाद का समय। "यदि हमारे भारतीय इतिहास मे अफगान-युद्ध अति विनाशकारी रहा तो सिंध की घटना नतिक दृष्टि से क्षम्य नही है।" नैपियर ने अपनी डायरी मे स्वय लिखा, "हमे सिंध छीनने का कोई अधिकार नही है, पर फिर भी हम ऐसा करेंगे। यह एक अति लाभकारी, उपयोगी और शैतानीपूण मानवता का काय होगा।" इस सम्बध मे माशमन कहता है, "नेपियर की कारवाई मे लाभ से अधिक पाशविकता को स्थान मिला है।"[1]

रैम्जेम्योर ने लिखा है कि भारत मे सिंध का मिलाया जाना ही ब्रिटिशा का एक ऐसा काय है "जिसके विषय मे उचित ही कहा जा सकता है कि किसी भी परिस्थिति मे यह अनिवाय नही था और इसी कारण यह एक आक्रामक काय था।' सिंध विजय अफगान युद्ध का ही परिणाम था। "अमीरा के विरुद्ध ब्रिटिशो का यह अत्याचार उसका जवाब था जो उन्हाने अफगानो के हाथा भोगा था।"

डब्लू० ए० जे० आवबोल्ड स्वीकार करता है, "अगला इतिहास देखन पर भी यह तक दिया जा सकता है कि आउट्रम की अमीरा पर विश्वास की नीति भी नैपियर की सावधानीपूवक दबाने की नीति से अधिक सही न होती। पर फिर भी पूरी कारवाई अन्यायपूणता का रग ओढे हुए जो सचमुच कुछ स्थाना पर द्रष्टव्य है। जहा तक जनता को प्रसन्न करने की बात है जिसने इस परिवतन से बहुत कुछ प्राप्त किया, इस सदभ म भी यह कहा जाता है कि इतना होने पर भी इस घटना का कोई औचित्य नही है।'[3]

डा० ईश्वरी प्रसाद के मतानुसार हम इस निष्कष पर पहुच सकत हैं कि सचमुच अमीर "ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दुर्भाग्यशाली शिकार हुए। उन्ह अपना सब कुछ गवाना पडा और उन्हें कोई ऐसा न्यायालय सुलभ नही हुआ जहा व अपील कर सकें।"[4]

---

1 माशमैन हिस्ट्री आफ इडिया, पृ० 333।
2 रैम्जम्योर मकिंग आफ ब्रिटिश इडिया, पृ० 243।
3 कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया भाग 5, पृ० 538 39।
4 प्रसाद ऐण्ड सुबदार पूर्वोद्धत, पृ० 252।

ब्रिटिश सरक्षण मे ग्वालियर

एलेनबरो के काल मे एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना इसके ग्वालियर सम्बन्ध को लेकर घटी। कम से कम यहा एलेनबरो का दृष्टिकोण आक्रामकता पर आधारित न होकर तर्क पर आधारित था। 1818 मे समाप्त होने वाले तृतीय मराठा युद्ध के बाद मराठा मे सबसे शक्तिशाली सिंधिया ही रह गये थे। 1843 मे इस गद्दी पर एक अल्प वयस्क बैठा जिसके काल मे शासन पतनवत होने लगा। शासक का सरक्षक इसके लिए उत्तरदायी था। भूतपूर्व शासक की विधवा ने एलेनबरो की स्वीकृति से उस सरक्षक को पद से हटा दिया। यह उस इलाके मे अव्यवस्था फैलाने का कारण बन गया। सिंधिया की सेना मे 40,000 सैनिक थे। एलेनबरो के मस्तिष्क मे यह बात आई कि कही ऐसा न हो कि चूकि पजाब मे गम्भीर कठिनाइया है जिस स्थिति मे कही यह सेना सिखो से न मिल जाय और ब्रिटिशो के लिए एक खतरा पैदा कर दे। 1804 मे सिंधिया से की गई वेलजली के सधि की अपील करते हुए एलेनबरो ने अपनी सेना चम्बल की ओर बढा दिया और साथ ही यह सोचा भी कि सभी कुछ शातिपूर्वक ठीक हो जायेगा। ग्वालियर की सेना ब्रिटिशो से शक्ति आजमाने को तैयार खडी थी और अपने शासक को समझौता करने को मनाही कर रही थी। 29 दिसम्बर 1843 को दो लडाइया हुई थी। एक लडाई महाराजपुर मे हुई जिसमे मराठे हार गये और उनके 3,000 सनिक या तो मारे गये या घायल हो गये जबकि ब्रिटिशो के 297 सैनिक मारे गये। ब्रिटिशो की विजय हुई पर इसके लिए उन्हे बडी कीमत चुकानी पडी। दूसरी लडाई भी उसी दिन पनिमार मे लडी गई जहा सेनापति ग्रे को तुलनात्मक दृष्टि से आसानी से विजय प्राप्त हो गई।

इस युद्ध के परिणामस्वरूप, वैसे तो ग्वालियर क्षेत्र का कोई स्थल नही छीना गया, पर ग्वालियर राज्य ब्रिटिश सरक्षण मे ले आया गया। शासक के अल्प वयस्क होने के कारण अगले एक दशक तक यहा के राज्य का प्रशासन ब्रिटिश रेजीडेण्ट ही चलाता रहा। राज्य के सेना की सख्या घटाकर 9,000 कर दी गई और वहा के लिए 10 000 सेना की एक ब्रिटिशो से नियन्त्रित टुकडी बनाई गई।

एलेनबरो कठिनाई से कलकत्ता मे यह विजय प्राप्त कर पहुच पाया था और उसे आशा थी कि गृह विभाग इस काय के लिए उसकी बडाई करेगा। पर इसके स्थान पर हुआ यह कि उसे वापस आने के आदेश मिल गय। डाइरेक्टरो ने सिंध मे उसके खुले आक्राता की भूमिका को पसन्द नही किया और उसके पत्रों के आक्रामक प्रेषण शैली से भी वे परेशान थे। इसने एलेनबरो के काल को भारत मे सक्षिप्त बना दिया।

इग्लैण्ड वापसी पर वह जी० सी० बी० हो गया और उसे अल भी बनाया गया। 1846 मे सर राबट पील ने उसे अपने मत्रिमडल का 'फस्ट लाड आफ ऐडमिरेल्टी' बनाया और 1850 मे वह पुन लाड डर्बी द्वारा बोड आफ कट्रोल का प्रेसीडेण्ट बनाया गया। पर चूकि उसके व्यवहार से रानी और ससद को आघात लगा था। इस कारण 1858 मे उसने अपने पद से स्तीफा दे दिया। इसके बाद वह ससदीय भाषणा मे भाग लेता रहा, पर उसे कोई महत्त्वपूण पद नही प्राप्त हुआ। 22 दिसम्बर 1871 को उसकी मृत्यु हो गई।

8
विस्काउण्ट हार्डिन्ज(1844-48)

हेनरी हार्डिंज 30 मार्च 1785 को पैदा हुआ। उसका पिता स्टनहोप काउन्टी डरहम का रेक्टर था और उसका नाम था रेवरेण्ड हेनरी हार्डिंज। उसकी मां फ्रांसेस केन्ट म बाक्सले के जेम्स वेस्ट की पुत्री थी। उसका परिवार डर्बीशायर के किंग्स नाटन से सबधित था जिसके एक पूर्वज ने चार्ल्स प्रथम के लिए एक घुड सवार सेना से सहायता करके 1660 म रेस्टारेशन[1] के समय नाइट की उपाधि प्राप्त की थी। डरहम में शिक्षा प्राप्त कर हेनरी 1800 ई० मे कनाडा म क्वीन्स रेंजर मे भर्ती हुआ और वहा 19 वर्ष की अवस्था म 57वी फुट म कैप्टेन के पद पर पहुच गया। बाद म रायल मिलीटरी अकेडेमी मे प्रशिक्षण प्राप्त कर और वहा उत्कृष्टता प्राप्त कर वह सर केन्ट स्मे सर के नेतत्व मे क्वाटर मास्टर जनरल स्टाफ मे नियुक्ति पा गया। उसने प्रायद्वीपीय युद्ध म भाग लिया, पुर्तगाल और अन्य स्थानो की लडाइया म उसने भाग लिया और तेजी से मेजर से लेफ्टीनेण्ट कर्नल के पद तक प्रोन्नति पाता गया और फिर वह ब्रिगेडियर जनरल हो गया। हेनरी बार बार घायल हुआ और एक युद्ध मे उसे बाये हाथ म चोट भी आ गई। वाटर लू के युद्ध के बाद वेलिंगटन ने उसे नैपोलियन की तलवार इनाम म दी और उसे 10 विदेशी सैनिक पारितोषिक मिले।

युद्ध के बाद उसे के० सी० बी० बना दिया गया। बाद मे वह ससद सदस्य हो गया और 1821 म उसकी एक अच्छे परिवार मे शादी हो गई। प्रसिद्ध ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कासिलरे और लार्ड एलेनबरो (1842 44 के बीच भारत का गवनर जनरल) उसके निकट सबधी थे। इसके बाद उसे मत्रिमडल म युद्ध सचिव का स्थान प्राप्त हुआ। बाद म वह आयरलैण्ड का मुख्य सचिव हो गया। 1842 म प्राप्त भारतीय सेनापति के पद की नियुक्ति उसने अस्वीकार कर दिया। जिसके बाद उसे 1844 मे भारत का गवनर जनरल बना दिया गया। वह अपने निकट सबधी भूतपूव गवनर जनरल एलेनबरो का ही उत्तराधिकारी हुआ जिसने सिंध

1 मेरसो भाग 5, पूर्वोद्धत पृ० 63।

का सयोजन किया था।

लाड हार्डिञ्ज ने, इस तरह जो एक बहादुर सैनिक और राजनीतिज्ञ था, एक ऐसे समझदार व्यक्ति के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त की जो समझदारी से काय भी करता था। 20 वर्षो तक वह ससद सदस्य रह चुका था और युद्ध सचिव भी। इस तरह दश्य पटल पर जब काय करन के लिए वह पहुचा तो उसके पास एक सैनिक और राजनीतिज्ञ दोनो का अनुभव था।

पर भारत मे हार्डिञ्ज मे राजनयज्ञ या प्रशासक की जगह सैनिक प्रतिभा अधिक मुखर हुई। इसी कारण उसके गवनर जनरल के काल की सबसे प्रमुख घटना प्रथम सिख युद्ध थी जिसमे अभेदनीय सिख सैनिक प्रथम बार पराजित ही नही हुए बल्कि महाराजा रणजीत सिंह द्वारा निर्मित सारा सिख राजनैतिक महल भहराकर गिर पडा।

इस महत्त्वपूण घटना का हम विवरण दे, उसके पहले उसकी अन्य कारवाइयो का सक्षिप्त विवरण यहा वाछनीय है। आन्तरिक प्रशासन के क्षेत्र म सबसे महत्त्वपूण समस्या, जिसे उसे हाथ मे लेनी पड़ी, वह थी महत्त्वाकाक्षी गगा नहर की सिंचाई योजना। यह कई वष पहले स्वीकृत हो चुकी थी पर इसका प्रारम्भ 1856 तक नही हो सका था। इस क्षेत्र मे उसने उत्साह से काय किया। उसके व्यक्तिगत सचिव और जीवनी लेखक पुत्र चार्ल्स विस्काउण्ट हार्डिञ्ज ने इस विषय मे लिखा है, "दोआब के कृपक इस दिशा मे दृढ रुख से काय करन के लिए सदा ऋणी रहगे।"[1] कलकत्ता की सफाई-व्यवस्था मे सुधार किया गया। मध्य भारत के राज्यो मे लगने वाले सामानो पर कर को समाप्त कर दिया गया और सतलज व सिंध नदियो पर बने चुगी पोस्ट खत्म कर दिय गए। डाक्टर जेम्सन के नेतृत्व म चाय की खेती का आसाम म विशेष रूप से प्रोत्साहित किया गया और इस उद्देश्य के लिए वहा एक कम्पनी भी स्थापित की गई।

उसके अन्य कार्यो मे उसके द्वारा सती प्रथा का समाप्त करना भी आता है। ब्रिटिश क्षेत्रो मे लाड बैंटिक ने इसे पहले ही समाप्त कर दिया। इस काय का परिणाम यह हुआ कि सती प्रथा नेपाल के स्वतत्र राज्य मे ही शेष रह गई।

लाड हार्डिञ्ज ने भारत मे प्राचीन ऐतिहासिक सामग्रियो की सुरक्षा की ओर भी विशेष ध्यान दिया। ताजमहल और आगरा के किले की मरम्मत की गई तथा कुतुबमीनार के ऊपर जो अशोभनीय और भद्दा अलकरण रखा गया था उसे हटा दिया गया।

पर अधिकार महत्त्वपूण थे वे सैनिक सुधार जो उसने प्रथम सिख युद्ध के बाद किये। ये सुधार दो सिद्धान्तो पर आधारित थे। पहला तो यह कि भारत म

1 चार्ल्स विस्काउण्ट हार्डिञ्ज विस्काउण्ट हार्डिञ्ज, पृ० 164।

अनवरत रूप से युरोपीय सनिक शक्ति बनी रह और दूसरे सैनिकों को इस तरह से रखा जाय जिससे कि उत्तर पश्चिम सीमा और पजाब सुरक्षित हो जाय। इन सिद्धान्तों के आधार पर ही भारतीय रेजीमेन्ट म सैनिकों की सख्या घटाकर 1,000 से 800 कर दी गई जिससे कि 50,000 सनिक हटा दिए गए। पर इसके बावजूद "सेना 1837 से अधिक बडी हो गई जोकि भारत म शांति का अंतिम वष था।"[1] जहा तक तोपखान म सैनिको की शक्ति का प्रश्न था उसे बनाये रखा गया। नौ पौण्ड की जो तोपें बलगाडी पर लदकर चलती थी य अब घोडों पर रखी जाने लगी। इन सब सुधारों का परिणाम यह हुआ कि सैनिक बजट मे 1 करोड 16 लाख से कम की बचत नही हुई।

सिख युद्ध की समाप्ति पर सैनिकों को 12 महीने का भत्ता प्रदान किया गया। घायल व्यक्तियों की पशन 4 रु० महीने स बढा कर 7 रु० कर दी गई। बैरक मे मिलने वाले धन पर रोक लगा दी गई और सभी घायल सैनिकों को अस्पताल से मुफ्त राशन प्राप्त होने लगा।

उसके अन्य कार्यों मे एक आदेश यह भी था कि भविष्य मे सार्वजनिक सेवाओं म नियुक्ति के लिए उसी को चुना जाएगा जो अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर चुका है। उडीसा के पवतीय क्षेत्रो म गाडो म जो मानव बलि दी जाती थी उसे दबाया गया। लार्ड हार्डिन्ज ने स्वतत्र व्यापार को प्रोत्साहित किया, चुगिया समाप्त की और नमक-कर घटाया। भारत मे लार्ड हार्डिन्ज की य शांतिकालीन सफलताए थीं।

प्रथम आंग्ल-सिख युद्ध

1839 मे रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई और मुश्किल से 6 वष बीत होंगे कि यह युद्ध प्रारम्भ हो गया। प्रथम आंग्ल सिख युद्ध के कारणों के विषय मे पर्याप्त चर्चा हो चुकी है। 12 दिसम्बर 1845 को सिख सैनिको ने सतलज नदी पार किया। इसके पूव 13 दिसम्बर को गवनर जनरल ने अपनी ऐतिहासिक घोषणा करते हुए सिखो को दोषी ठहराते हुए उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अपने काय को न्यायोचित सिद्ध करते हुए उसने अन्य बातो के अतिरिक्त यह भी बताया कि ब्रिटिशों ने विश्वस्तता से अमृतसर की सधि का अनुपालन किया है जिसमे सतलज को दोनो के बीच सीमा रेखा माना गया था, कि "दरबार के कई अमैत्रीपण कार्यों के बावजूद गवनर जनरल की ओर अति सहनशीलता का परिचय दिया गया था" कि इसके बावजूद "कि ब्रिटिश मैत्री रखने की इच्छा रखते थे' सिख सेना ने दरबार के आदेशानुसार लाहौर से आगे बढ़कर ब्रिटिश क्षेत्रो पर बिना

1 हार्डिन्ज पूर्वोद्धत प० 166।

उत्तेजनापूर्ण स्थिति के आक्रमण कर दिया।" गवनर जनरल ने इस तरह युद्ध की घोषणा तो की ही, साथ ही यह भी घोषित किया कि सतलज के बाये किनारे के लाहौर दरबार के सभी क्षेत्रो पर अधिकार किया जाता है।

गवनर जनरल की उपरोक्त घोषणा की कुछ भारतीय तथा युरोपीय इतिहासकारो ने आलोचना की है। इनमे से कुछ ने ब्रिटिशो को पूणतया दोषी ठहराया है और यह सिद्ध किया है कि सिखो ने ऐसा कुछ नही किया था जो उन्हे नही करना चाहिए था। पर कुछ ऐसे इतिहासकार भी हैं जो इसका उलटा कहते है। पर सही ढग से घटनाओ का आकलन करने वाला व्यक्ति जहा ब्रिटिशो की ज्यादती की आलोचना करेगा, वहा साथ ही सिखो की उन कारवाइयो की भी आलोचना किए बिना न रहेगा जिसके कारण यह आपदा आ गयी। सत्य तो यह है कि कई कारणो मे यह युद्ध भडका। इस कारण सही स्थिति की जानकारी के लिए हमे उन सभी का सही ढग से परीक्षण करना चाहिए।

ब्रिटिश उत्तरदायित्व

प्रथम सिख युद्ध का मुख्य उत्तरदायित्व ब्रिटिशो का था जो 1809 से अमृतसर की सधि काल से ही आक्रामक रुख अपनाये हुए थे। इस सधि को ही रणजीत सिंह की एक कमजोरी माना जाता है। 1823 मे वदनी, 1835 मे फीरोजपुर और 1836 म शिकारपुर मे आग्ल सिख सघष इसके प्रमाण है। रणजीत सिंह के मृत्यु के पव आसबोन जब 1838 मे लाहौर त्रिपक्षीय सधि के सम्बन्ध म आया तो उसने अपनी डायरी मे लिखा कि महाराजा की मृत्यु के बाद ब्रिटिशो की जो प्रथम कारवाई होनी चाहिए वह पजाब पर सेना भेजकर अधिकार करने की होनी चाहिए।

सतलज की सीमा पर लगातार बढता सनिक दबाव, जो रणजीत् सिंह की मृत्यु के पूव और बाद म इस बहाने से देखने मे आया कि रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद लाहौर म प्रशासकीय मशीनरी के टूटने पर इसकी आवश्यकता रहेगी, सिख राष्ट्र को निश्चित ही उत्तेजित करता। पर इस ओर ब्रिटिशो ने ध्यान नही दिया। 1809 की सधि के अतगत ब्रिटिशो को लुधियाना से अपनी सेना हटानी थी, पर उन्होने ऐसा नही किया। पर 1838 तक सबाथू म ब्रिटिश फ्रटियर सना की एक रेजीमेण्ट थी और लुधियाना म दो। इसके अतिरिक्त यहा एक तोपखान की टुकडी थी और सनिक 2,500 थे। आकलैंड ने यह सख्या बढाकर 8,000 कर दी। फीरोजपुर मे एक कैण्टोनमेण्ट खोल दिया गया। एलेनबरो न अम्बाला, कसौली और शिमला मे स्टेशन स्थापित किये और सैनिको की सख्या 14,000 कर दी। 48 मैदानी तोपो की भी व्यवस्था की गई। लार्ड हार्डिन्ज ने यह सख्या बढाकर 32,000 कर दी और 68 तोपें भी तैयार कराई। इसके अतिरिक्त मेरठ में

10 000 सैनिक रखे गए और वहा भी तोपखाने की व्यवस्था की गई।

इसके अतिरिक्त 1838 म रणजीत सिंह, ब्रिटिश और शाहशुजा के बीच एक त्रिपक्षीय संधि की गई जिसकी चर्चा हम पीछे कर आये हैं। इस संधि की शर्तों म एक आवश्यक शर्त यह थी कि शाह सफलता के बाद पेशावर सिखों को दे देगा। पर संधि की सामान्य शर्तों से असंतुष्ट होने के बावजूद ब्रिटिश एक ओर तो सिखों का अपनी ओर से विश्वस्तता दिखाने का प्रयास कर रहे थे, पर दूसरी ओर अपने एजेन्ट मैकनाटन के माध्यम से उन्होंने शाहशुजा से एक गुप्त संधि भी कर ली। इस संधि म यह तय हुआ कि जब रणजीत सिंह के पौत्र नौनिहाल सिंह की मृत्यु के बाद उनकी शासन-शक्ति समाप्त होगी तो शाहशुजा को पेशावर दिलाने म सहायता की जाएगी। कनिंघम ने लिखा है कि "यह सोचना सच नहीं है कि लाहौर सरकार को उस योजना का पता न रहा होगा जो कार्यालयीय पत्र-व्यवहार म प्रस्तुत किया गया था।"[1]

बाद म जब अफगानिस्तान म ब्रिटिश योजनाए असफल हो गइ और उन्हें प्रथम अफगान युद्ध करना पडा तो संधि की शर्तों के अंतर्गत हेनरी लारेन्स ने जे० सी० मार्शमन को अप्रैल 1842 मे लिखा "सिखों को 6,000 सैनिक रखने का ही अधिकार था पर व 15 000 सैनिकों से कम नहीं रखते थे। व अतिरिक्त सैनिकों का पेशावर और जमरूद म रखने थे जहा पर आवश्यकतानुसार ये सैनिक दर्रों मे उनकी सहायता करते थे।"[2] अप्रैल 21 का रानी को एक पत्र म गवर्नर जनरल ने स्पष्ट लिखा "सिख सेना ने भारतीय सैनिकों को अली मस्जिद की ओर जाने वाले दर्रे के क्षेत्र म सहायता की और सिख सरकार की विश्वस्तता पर इस तरह संदेह नहीं किया जा सकता।"[3] पर जब सिख इस तरह ब्रिटिशों की हर सैनिक मुठभेड म सहायता कर रहे थ तब ब्रिटिश 'फीरोजपुर म जो पंजाब की सीमा पर था, सिखों को रोकने के लिए' एक तीसरी सेना तैयार कर रहे थ। पर सिख यह नहीं समझ पा रहे थ कि उन्हें किस फौज से उनको रोकने की इच्छा है।

30 सितम्बर 1843 म एक पत्र म गृह विभाग के अधिकारियों का लार्ड एलनबरो ने स्वयं एक पत्र म टिप्पणी की, "(पंजाब म) हमारे विरुद्ध कोई भावना नहीं है। सरदारगण व आपस म ही लड रहे हैं। मुझे कहीं अपने व विरुद्ध कुछ दिखाई नहीं देता।" अचानक महाराजा शेरसिंह की हत्या हो चुकी थी और उसके बाद भी गवर्नर जनरल ने ड्यूक ऑफ वेलिंगटन को 20 सितम्बर 1843 को लिखा, "ब्रिटिशों की विरोध भावना को हवा देने की इच्छा कहीं भी नहीं दिखाई देती।"

---

1 कनिंघम : हिस्ट्री ऑफ द सिख्स, पृ० 250-51।
2 एडवर्ड्स एण्ड मेरीवेल : लाइफ ऑफ हेनरी लारेन्स भाग 1 पृ० 363।
3 वही पृ० 407।

2 जुलाई 1844 को उसने फिर लिखा, "शेर सिंह की हत्या के बाद से अबतक के काल म यह समय समुद्र की तरह शात है।"

लाहौर दरबार के कुछ प्रभावशाली अधिकारियो को अपने पक्ष मे कर लेने के प्रयास मे भी कोई कोर कसर उन्होने बाकी नही रखी। जब महाराजा शेरसिंह ने प्रथम अफगान युद्ध मे हर तरह का सहयोग दिया और राजा गुलाब सिंह को जनवरी 1842 मे अफगानो के विरुद्ध उनके सहायतार्थ भेजा तो हेनरी लारेन्स को यह लगा कि "राजा ध्यान सिंह और गुलाब सिंह को उनकी सहायता के बदले कुछ मिलना चाहिए क्योकि पजाब मे केवल वे ही सहायता देने मे सक्षम थे।" 29 जनवरी 1842 को उसने लिखा, "कार्यक्षम सहायता के बदले हम जलालाबाद की घाटी गुलाब सिंह को दिलाने मे सहायता करते है और साथ ही उनके परिवार को पेशावर दिलाने की भी व्यवस्था करते है।"[1] रोहतास के किलो के पूर्बिया अधिकारियो तेज सिंह व लाल सिंह तथा वेन्तुरा जैसे युरोपीय अधिकारियो को भी इसी तरह फुसलाया गया। और इन सब मे वे सफल हुए।

1 जनवरी 1844 को लाहौर दरबार को यह पता चला कि ब्रिटिश फीरोजपुर मे किले का निर्माण कर रहे है। वैसे यह समाचार तो सही नही था। पर 8 फरवरी को यह पता चला कि इसके स्थान पर वहा एक बारूदखाना बन रहा है। 17 मई को यह सूचना प्राप्त हुई कि अग्रेज फीरोजपुर मे पर्याप्त अनाज एकत्रित कर रहे हैं और 1 जून को यह पता चला कि फीरोजपुर के अग्रेज सेनापति ने जमीदारो को यह कहलाया है कि वे अपने खेतो म खरीफ की फसल न बोयें क्योकि वर्षा के उपरान्त वहा एक बहुत बडी सेना एकत्रित होने वाली है। ऐसी ब्रिटिश कारवाइयो ने निश्चित रूप से सिखो को परेशान कर दिया।

1844 45 के मध्य बम्बई मे ब्रिटिशो ने बडी सख्या म नावे तैयार करनी प्रारभ की जिसका उद्देश्य सतलज पर पुल तैयार करना था और जैसाकि लार्ड एलेनबरो ने 9 मई 1844 को ड्युक आफ वेलिंगटन को लिखा कि "इससे सैनिको को भेजने और बुलाने म तो सुविधा होगी ही, व्यय भी कम होगा।" स्वाभाविक रूप से सिख ब्रिटिश उद्देश्यो से भयभीत हो गये। पर जब इस सबध मे पूछताछ की गयी तो उन्होने यह बताया कि यह सिंध और सतलज मे व्यापार वृद्धि के लिए किया जा रहा है। सिंध नौवहन की योजना की असफलता के बाद ब्रिटिश उत्तर पल्ले पडने वाला नही था।

राजकोट के निकट बसिया मे एक वस्तुपूर्ति डिपो जब ब्रिटिशो ने स्थापित किया तो सिखो का सन्देह और पक्का हो गया। इसके अतिरिक्त सिंध मे शक्कर मे बारूद का एकत्रीकरण, जिससे 5,000 सैनिक सज्जित किये जा सकें, एक

1 एडवर्डस, मेजर जनरल हर्बट बायोग्राफी आफ लारेन्स, पृ० 396-97।

साधारण पत्र के माध्यम से किया गया। वैसे तो सिंध के गवनर चार्ल्स नैपियर ने कर्मचारियों के बीच पूर्णतया इस पत्र व्यवहार के प्रति अनभिज्ञता प्रकट की है। यह सूचना उसने कनिंघम को दी। पर यह कल्पनातीत है कि सिखों की जानकारी में यह बात नहीं थी जिससे यह सब ज्ञात होने पर वे उत्तेजित हो गये।

ब्रिटिशों की उत्तेजित करने की नीति यहीं समाप्त नहीं हुई। सच में तो वे युद्ध प्रारंभ होने के पूर्व पंजाब पर आक्रमण की योजना बना रहे थे। 22 अक्तूबर 1841 को ही लार्ड एलेनबरो ने ड्यूक ऑफ वेलिंगटन को लिखा था, "फीरोजपुर के निकट इस 12,000 सैनिक सिखों की निगरानी के लिए उपस्थित हैं। वे आवश्यकता पड़ने पर कारवाई को भी तैयार हैं। इसलिए मैं आपका मत जानना चाहता हूं क्योंकि आपको प्राप्त सूचना गलत भौगोलिक विवरणों पर आधारित है।"

पुन जान लुडलो ने लिखा है, "सतलज के निकट के ब्रिटिश एजेण्ट ने 12,000 सैनिकों सहित लाहौर की ओर बढ़कर शांति की योजना बनाई है। कलकत्ता के कागजात में पंजाब विजय की भी योजना थी।"

6 अप्रैल 1842 को ड्यूक आफ वेलिंगटन को लिखे गये लार्ड फिल्जराल्ड के एक पत्र में भी ब्रिटिशों की कुटिल और आक्रामक योजना का पता चलता है जो वे सिखों के विरुद्ध तब बना रहे थे जब सिख ब्रिटिशों की अफगान समस्या में सहयोग कर रहे थे, "सिख सरकार की कारवाई से मुझे प्रसन्नता है पर मैं यह कह सकता हूं कि यदि हमें अपनी स्थिति अफगानिस्तान में ठीक बनाये रखनी है तो हमारे पास पेशावर, खैबर दर्रा, जलालाबाद और इन स्थानों तथा काबुल के बीच के दर्रे होने चाहिए।"[1]

ये दो उदाहरण ब्रिटिशों की अपने मित्रों के प्रति नीति को स्पष्ट करते हैं। पेशावर, लाहौर दरबार के अधिकार में था और इस कारण यदि इसपर अधिकार किया जाना था तो बिना युद्ध के यह संभव नहीं था।

ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो ब्रिटिशों ने सिखों को उत्तेजित करने के लिए प्रस्तुत किये और जिनका विवरण विस्तार को और बढ़ा देगा। यहां एक ही उदाहरण प्रस्तुत करना उचित होगा। ब्रिटिश फ्रण्टियर एजेण्ट के रूप में जून 1843 में क्लर्क के स्थान पर लेफ्टीनेण्ट कर्नल रिचमाण्ड और रिचमाण्ड के स्थान पर नवंबर 1844 में मेजर ब्राडफूट को नियुक्त किया गया। इस तरह से जल्दी-जल्दी एक के बाद एक परिवर्तन से सिख परेशान हो गये। उनकी परेशानी तब तो और बढ़ गई जब ब्राडफूट ने कहा कि "यदि बीमार (चेचक से) दलीपसिंह को कुछ हो

1 छाबड़ा हिस्ट्री आफ पंजाब भाग 2 अध्याय 10।
2 वही अध्याय 2, पृ० 14 15।

गया तो उस स्थिति मे उसने लाहौर क्षेत्र तथा सतलज के उस पार के क्षेत्र पर अधिकार करने की योजना बना रखी थी। और उसने दरबार को किसी भी उद्देश्य के लिए सेना भेजने की मनाही कर दी।" आगे कैम्पबेल कहता है, "उसने इस भाति कारवाई की जैसे कि लाहौर व सतलज के क्षेत्र उसके नियत्रण ही मे रहे हो। उसने इस तरह के औपचारिक नियत्रण के लिए स्थिति भी बना रखी थी और उसने यह स्पष्ट भी किया कि लाहौर क्षेत्र उसके अधिकार मे उतना ही है जितना कि अन्य सरक्षित राज्य।" इतना ही नही, अपने अधिकार को व्यावहारिक रूप देने के लिए उसने लाहौर के एक न्यायाधीश लाल सिंह अदालती को, जो लाहौर क्षेत्र मे तलवडी मे अपने सरकारी काय के लिए आया था, ब्राडफूट न "बडे अपमानजनक ढग से पूरे सिख दल को नदी पार चले जाने को कहा। लाल सिंह चूकि झगडना नही चाहता था इसलिए वापस नदी तट पर पहुच गया और अपने साथियो सहित नदी पार करने लगा। ब्राडफूट ने इतने से सतुष्ट न होकर उनका व्यक्तिगत रूप से पीछा किया। कम-से-कम एक बार गोली दागी गई सिख नेता पकडकर रोक लिये गये। उस समय जो गोली दागी गई वह सिख युद्ध का पहला गोला बताई जाती है।"[1]

कार्मिकेल स्मिथ ने लिखा है, "पजाब युद्ध के विषय मे, न तो मैं यह मानता हू कि सिखो ने बिना उत्तेजित हुए आक्रमण किया, और न ही यह कि हमने उनके साथ भलमनसाहत बरती इसके अतिरिक्त सिखो के पास सर चार्ल्स नैपियर के भाषणो का अनुवाद था जिसमे उसने कहा था कि वह उनके साथ युद्ध करने वाला है। और जैसा अन्य यूरोपीयो ने इस परिस्थिति म किया होता, सिखो ने भी सोचा कि वे भी क्यो न इस क्षेत्र मे प्रथम रह। इसके अतिरिक्त वे हमारे क्षेत्र मे नही थे बल्कि अपन क्षेत्र मे थे।"[2]

अन्य बातें

पर कुछ और भी बातें थी जिन्होने प्रथम सिख युद्ध मे महत्त्वपूर्ण योगदान किया। पजाब की तुलना मे ब्रिटिश भारत एक बडा देश था और इस कारण वहा व्यापार और उद्योग का अच्छा अवसर था। यह शाति काल मे तो और भी सभव था, पर पजाब म रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद कठिनाई ही-कठिनाई थी। इसी कारण बहुत ही कम पजाबी व्यापारियो ने ब्रिटिश से सपर्क का उत्तर दिया जिससे उनकी रुचि उस क्षेत्र मे बढती ही गई।

लाहौर की सेना मे अनुत्तरदायित्वपूण स्थिति की भी अनदेखी नही की जा

---

1 कैम्पबेल मेमायर्स भाग 1 पृ० 75-77।

2 स्मिथ, कार्मिकेल ए हिस्ट्री आफ द रैनिंग फैमिली आफ लाहौर पृ० 241।

सकती। अफगानो के विरुद्ध ब्रिटिश असफलता न, जिन्ह खालसा ने कई बार पराजित किया था, उन्हे इस बात के लिए प्रोत्साहित किया कि वे भी ब्रिटिश स चार चार हाथ कर लें। चूकि रणजीतसिंह सेना पर असैनिकों का नियत्रण स्थापित नहीं कर पाये थे इसलिए उनकी मृत्यु के बाद सैनिक अधिकारी अनुत्तरदायी हो गय। शेर सिंह के काल तक तो सेना ने शासन के लिए अपना सगठन बना लिया। इसकी कार्रवाइया सैनिकों द्वारा चुन कपनी का प्रतिनिधित्व करने वाली पचायतें करने लगी। "उन दिनो शक्ति एक खतरनाक चीज थी। प्रत्येक राज्य कर्मचारी यह जानता था कि सेना का क्रोध मोल लेना मृत्यु के बराबर है।"[1] गौफ न लिखा है कि "स्थिति की गभीरता इस भय से और बढ गई क्योकि सिख सैनिको ने अपने लिए जो ऊचा वेतन प्राप्त किया था और अवज्ञा के बाद जो सामान्य सफलता उन्होंने प्राप्त की थी, [उस सबका ब्रिटिश सेना पर बुरा प्रभाव पड रहा था।"[2] पजाब के अधिकारी भी इससे परेशान थे। रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद सनिक व्यय दुगुने से भी अधिक बढ गया जबकि राज्य की आय घट गई। यह सचमुच ही अकार्यक्षम लाहौर शासको के लिए एक कठिन समस्या थी और ब्रिटिशो को भय हुआ कि कही उत्तर पूव म वे खालसा को अशाति के लिए न उकसायें जिसके सबध मे ब्रिटिश बहुत पहले से ही शोर मचा रहे थे। और यही सचमुच घटित भी हुआ।

लाहौर के सरदारो की देन का विवरण भी अपेक्षित है। आपसी 'विद्वेष म वे ज्यादा लिप्त थे। ब्रिटिश सना से उन्ह भय न था। पजाब के सरदार धन और विलासिता से चिपके थे। प्रतिष्ठा और स्वतत्रता की उन्ह परवाह नही थी।' रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद उनकी कहानी षडयत्र, क्रूरता और रक्तपात स भरी पडी है। रणजीत सिंह के जीवन काल ही म उनके दरबारी डोगरा पजाब पर अधिकार करने का स्वप्न पाल रहे थे। राजा ध्यान सिंह[3] जो महाराजा का प्रधान मत्री था उसने यह चेष्टा की थी कि महाराजा के पुत्र और उत्तराधिकारी खडक सिंह को राज्य कार्य की कोई शिक्षा प्राप्त न हो। राजगद्दी के लिए उत्तराधिकारी वह अपने लडके राजा हीरा सिंह को बनाना चाह रहा था और उसे अधिकार दिलाने के लिए वह कुछ भी करने को तैयार था। रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद उसने खडक सिंह को गद्दी दिलाई। पर कुछ ही दिनो बाद उसे उसने विष दिलाकर मार डाला। इसके बाद उसका लडका नौनिहाल सिंह गद्दी पर बठा। पर वह भी अधिक दिनो तक शासन नही कर सका। किले के एक भाग को उसके ऊपर षडयत्र से गिरवा दिया गया जिसम वह मरा तो नही पर घायल हो गया। इसके

1. पेने शार्ट हिस्ट्री आफ द सिक्ख प॰51 पीछे देखें अध्याय 2।
2. गौफ ऐण्ड इन्स द सिख एण्ड सिख वार्स (1897), पृ॰ 59।
3 छाबडा पूर्वोद्धत अध्याय 13 एव 14।

बाद यह मार डाला गया। इसके बाद नौनिहाल सिंह की मा माई चन्द कौर सिंहासन पर बैठी। पर उसने चूकि राजा हीरा सिंह को गोद लेने से इनकार कर दिया इस कारण उसे भी पीट पीटकर मार डाला गया। रणजीत सिंह के एक अन्य पुत्र शेर सिंह को इसके बाद गद्दी दी गई। पर उसे ध्यान सिंह के योजना का पता चल गया। इस कारण उसने उसकी हत्या का षड्यन्त्र रचवाया। पर वह ऐसा कर सके, इससे पूर्व ही राजा ध्यान सिंह के एक विशेष व्यक्ति अजीत सिंह सिंधनवालिया ने उसे गोली से मार डाला। पर अजीत सिंह किसी के प्रति विश्वस्त नहीं था। जिस दिन उसने शेरसिंह को गोली मारी, उसी दिन उसने ध्यानसिंह को भी गोली से भून दिया। इसके बाद हीरा सिंह की बारी आई जो लाहौर की ओर आगे बढ़ा, सिंधनवालिया सरदार को आगे भेजा और रणजीत सिंह के एक दूसरे पुत्र दलीप सिंह को शासक बनाया तथा स्वयं वजीर हो गया।

पर इस तरह शक्ति प्राप्त कर हीरा सिंह स्वयं पंडित जुल्ला मिश्र के बुरे प्रभाव म पड़ गया जो पर्वतीय क्षेत्र का एक कट्टर ब्राह्मण था। जैसे-जैसे ब्राह्मण की राज्य के मामलो में पकड़ मजबूत होती गई, हीरासिंह अलोकप्रिय होता गया। अपनी शक्ति को बनाये रखने के लिए उसने सेना को घूस देना प्रारम्भ किया जिससे सेना की राजनैतिक शक्ति बढ़ने लगी। वजारत के लिए हीरासिंह उसके चाचा सुचेतसिंह, महारानी जिन्दन के भाई जवाहिरसिंह के बीच संघर्ष प्रारम्भ हुआ। महारानी जिन्दन दलीपसिंह की मा थी। इसी तरह राजगद्दी के लिए भी रणजीत सिंह के दो पुत्र कश्मीरा सिंह, पेशोरा सिंह और महारानी जिन्दन के अभ्यर्थी दलीप सिंह के बीच संघर्ष था। इनम से प्रत्येक सेना का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था जिसके फलस्वरूप जिन्दन और दलीपसिंह को छोड़कर सब मारे गये और सेना सर्वशक्तिमान हो गई। पर जिन्दन का जीवन भी दूभर हो गया। कुछ विद्वानो के अनुसार उसने अपने सैनिकों को सतलज पार करने को प्रोत्साहित किया जिससे ब्रिटिशों की चुनौती स्वीकार की जा सके। गोफ के अनुसार उसका उद्देश्य था कि "यदि उसकी सेना हार जाती तो दरबार सेनापति के हस्तक्षेप से बच जाता और यदि यह जीत जाती तो दरबार को विजय योजना का श्रेय मिलता।"[1]

इस तरह प्रथम सिख युद्ध के लिए कई बातें उत्तरदायी थी। ब्रिटिश बहुत पहले से सिखो के प्रति आक्रामक नीति अपना रहे थे। पर जहा रणजीतसिंह चतुर था और उन्हें पास नही फटकने देता था वही उसके उत्तराधिकारी ब्रिटिशों के हाथ मे खेलते थे। रणजीत सिंह के उत्तराधिकारियों की अनुभवहीनता, लाहौर के अयोग्य सरदार, अनुशासनहीन खालसा सेना, साधनो की कमी और खराब युद्ध

1 गोफ ऐण्ड इन्स पूर्वोद्धृत, पृ० 57।

नीति उनके पतन के कारण बने।

युद्ध

युद्ध के विस्तार मे जाना यहा आवश्यक नही है। इसके महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विवरण ही पर्याप्त होगा। सतलज पार करने के बाद सिखो के लिए सबसे उचित फीरोजपुर पर आक्रमण करना होता क्योकि लुडलो लिखता है कि, "हमारी 8,000 सेना बर्बाद हो जाती और विजयी 60,000 सैनिक सर हेनरी हार्डिंज पर टूट पडते जिसके पास उस समय केवल 8,000 सैनिक थे।"[1] पर यह करने की जगह पर लाहौर के षड्यत्रकारी वजीर लालसिंह ने, जो ब्रिटिश पोलिटिकल एजेण्ट से पहले ही पत्र व्यवहार कर रहा था, फीरोजपुर के असिस्टेण्ट एजेन्ट कैप्टेन पीटर निकल्सन को लिखा, "मैं सिख सेना के साथ नदी पार कर चुका हू। आप ब्रिटिश के लिए मेरी मित्रता जानते हैं। बताइयें मैं क्या करू।" इसके उत्तर मे निकल्सन ने लिखा, "फीरोजपुर पर आक्रमण न करिये। जितना दिन सम्भव हो, रुकिये और तब गवनर जनरल से मिलने के लिए आगे बढिये।"

इन परिस्थितियो मे, वैस तो सेना 'ब्रिटिशों के विरुद्ध बुरी तरह से विरोध भाव से पूर्ण थी' और साथ ही "शक्तिशाली आत्मविश्वास और खालसा के प्रति विश्वस्त थी।"[3] पर गौफ के अनुसार इतने पर भी उनकी विजय असम्भव थी। योजनानुसार लालसिंह तब तक रुका रहा जब तक कि ब्रिटिश सेनापति सर ह्यू गौफ अपनी सेना लेकर मैदान म नहीं आ गया। ब्रिटिश की अम्बाला और लुधियाना की डिवीजनें फीरोजपुर के 20 मील दक्षिण-पूर्व मुदकी नामक स्थान पर पहुची जहा 18 दिसम्बर 1845 को प्रथम सिख युद्ध लडा गया। लतीफ के अनुसार ब्रिटिशो के विरुद्ध सेना का नेतत्व लालसिंह ने किया पर जब 'युद्ध दोनो ओर से भयानक ढग से चल रहा था उसी समय लालसिंह ने अपनी योजनानुसार युद्ध का मैदान छोड दिया और सिख सेना को अपनी बहादुरी का जौहर अकेले दिखाने का अवसर दिया।"[4] सिख अति शक्ति से लडे पर व अतत हार गय और उन्हें खदेड खदेडकर मारा गया। इस तरह ब्रिटिशो को पहली सफलता मिली, पर बहुत बडी कीमत चुकाने के बाद।

21 दिसम्बर 1845 को मुदकी और फीरोजपुर दोनो स्थानो से 1[illegible] मील दूर पडने वाले गाव फीरोजशाह मे दूसरी लडाई हुई। ब्रिटिशो की पूरी तैयारी थी तथा

---

1 लुडलो ब्रिटिश इडिया भाग 2, पृ० 142।
2 कोहली, एम० आर० सनसेट आफ द सिख इम्पायर पृ० 121।
3 गौफ पूर्वोद्धत पृ० 66।
4 लतीफ पूर्वोद्धत पृ० 569।



खालसा सेना का नेतृत्व लाल सिंह के ही हाथ मे था। तेज सिंह उसका समर्थन कर रहा था। पर इसके बावजूद ब्रिटिश को एकाएक जिस विरोध का सामना करना पडा, उसके कारण वे अव्यवस्थित हो गये। इसके बाद की रात को इसी कारण 'आतंक की रात' की संज्ञा दी गयी। 22 दिसम्बर मे अपने जनरल म राबर्ट कस्ट ने इस तरह से लिखा, 'गवर्नर-जनरल से सूचना प्राप्त हुई कि हमारा कल का आक्रमण असफल हो गया है, कि हमारी स्थिति नाजुक है, कि सभी राज्य सरकार के कागजात नष्ट कर दिये जायें और यह भी कहा गया कि यदि आज का प्रात-कालीन आक्रमण भी असफल हो गया तो सभी कुछ समाप्त हो जाएगा। मि० क्यूरी ने ये सभी सूचनाए गुप्त रखी और हम सभी अपने को बचाने के लिए आत्मसमर्पण की तैयारी कर रहे थे। इस समाचार ने मुझे अति दुखी किया।"[1]

यदि सिखो ने ब्रिटिश पर रात को आक्रमण कर दिया होता, तो युद्ध की कहानी कुछ और ही होती। पर लाल सिंह ने अपनी वही पुरानी अनुबद्ध भूमिका अदा की और एकाएक गायब हो गया। 22 दिसम्बर को प्रात सिखो की बची-खुची सेना को खदेड दिया गया। पर जैसे ही दिन चढा तेज सिंह के नेतृत्व मे दूसरी सिख सेना ने, जिसे ईर्ष्यालु सैनिको ने अंग्रेजो के ऊपर आक्रमण हेतु उत्साहित किया था, युद्ध भूमि मे प्रवेश किया, "और थके मादे अंग्रेज सैनिको ने देखा कि उनके सामने एक निराश सैनिक भीड है जिससे लडने की भी आव श्यकता न पडेगी।" पर तेज सिंह लाल सिंह से बेहतर सिद्ध नही हुआ। "11 बजे अपने शत्रु सेना के वाम पक्ष पर गोलाबारी की और फिर रुक गया। चार घण्टे के बाद उसने दाहिनी ओर आक्रमण की चेतावनी दी। और इसके बाद आश्चर्यजनक ढग से और ब्रिटिश के पक्ष म यह सेना एकाएक उत्तर की ओर की दिशा म तेजी से वैसे ही चली गयी जैसेकि लाल सिंह की सेना चली गयी थी।"

जब इस तरह लाल सिंह और तेज सिंह अपने तमाशे म लगे हुए थे, उस समय एक विश्वस्त सिख नेता रणजोध सिंह लडवा ने अजीत सिंह की सहायता से 8,000 सैनिकों और 70 बन्दूको के साथ लुधियाना पर आक्रमण कर चुका था और उसके एक भाग मे आग लगा दी थी। एक पर्याप्त सेना के साथ सर हैरी स्मिथ नगर की रक्षा के लिए पहुचा। पर बधोवल ने पास ही उसे रोक लिया गया जिसमे उसके कुछ सैनिक मारे गये और उनका सब सामान छीन लिया गया। 21 जनवरी 1846 को यह सब घटा। बधोवल म ब्रिटिश को जो अपार क्षति हुई उसके विषय मे कनिघम ने लिखा है कि, 'वे अपने घर की दिशा पूव की ओर देखने लगे और अंग्रेजी सेना की भीड विजय प्राप्त करने के स्थान पर सघर्ष की

1 कस्ट राबर्ट लिंग्विस्टिक एण्ड ओरियंटल एसेज, भाग 6 पृ० 43।
2 पेन पूर्वोद्धृत प० 175।

कल्पना से ही काली पड गयी पराजित ब्रिगड के नता ने अपने समक्ष अथक प्रयास के बाद भी अपना कलंकित नाम देखा।" इसके कुछ ही समय बाद अग्रेजो के सौभाग्य से रणजोध सिंह पीछे हटने लगा। रास्ते मे अग्रेजो ने आठ मील दूर आलीवाल गाव मे उसपर आक्रमण किया। डा० ऐड्रिव ऐडम्स ने लिखा है कि, कुछ गोलाबारी व एक या दो ब्रिटिश स्क्वाड्रनो का आक्रमण एक महत्त्वपूर्ण सघर्ष मे परिवर्तित हो गया। इस तरह आलीवाल युद्ध की घटना भारत के महत्त्वपूर्ण युद्धा मे गिना जाने वाला हो गया।"[2]

अतिम युद्ध सोबराव मे हुआ जिसमे लाल सिंह, तेज सिंह और गुलाब सिंह ने गद्दारी की। महारानी जिन्दन की सेना की वस्तुए और खाद्य सामग्री भेजने की अपीलें बेकार गइ। खाल्सा सेना का साथ इसके नेताओ ने छोड दिया और सतलज पार करते हुए पीछे वे पुल तोडते गय जिसके फलस्वरूप खालसा सेना भटकती रही, बबाद हो गई या डूब मरी। और इस तरह ब्रिटिशो ने अतिम विजय प्राप्त की। सर ह्यू गौफ ने जिसे सत्यता मालूम थी, लिखा, "नीति के कारण मैं स्पष्ट रूप से पराजित शत्रु के शौय की प्रशसा नही कर सका और मैं यह घोषित करता हू कि यदि देशहित म यह बलिदान आवश्यक न होता तो मैं इतनी विश्वस्त सेना मे इतने भयकर हत्याकाड पर रो पडता।"[3]

लाहौर की सधि

जब इस तरह सिख पराजित कर दिए गय, तो भी ब्रिटिश पजाब जीतने का साहस न जुटा सके क्योंकि वे जानते थे उस स्थिति मे, जो पजाब के गद्दार उनकी सहायता कर रह थे, वे भी विरोध मे हो जायेंगे। और उस स्थिति मे भगवान ही जानता था कि क्या होता। इस कारण लाड हार्डिन्ज ने किसी बेहतर अवसर की प्रतीक्षा की। उसने इस नीति को दुनिया की दृष्टि म प्रायोगिक उदारता का नाम दिया। दूसरे शब्दा म इसका अथ था कि सिखा को शाति के लिए एक अवसर प्रदान किया जाता है। यदि वे इसमे सफल नही हुए तो वे विनाश को ही आमन्त्रित करेंगे।

इस तरह 9 माच 1846 को लाहौर की सधि हुई जिसकी धाराए थी—(1) सतलज नदी के दक्षिण का सिख क्षेत्र जिसपर ब्रिटिशा ने पहले ही अधिकार कर रखा था, उनका अधिकार होगा, (2) कि सतलज और व्यास के बीच म जालधर दोआब का क्षेत्र भी ब्रिटिशा को प्राप्त होगा, (3) लाहौर दरबार को

1 कनिघम हिस्ट्री आफ द सिक्स, प० 274।

2 एडम्स डॉ० एण्ड्रिव आर्डरिग्स आफ नेचुरलिस्ट इन इंडिया पृ० 60-61।

3 गौफ पूर्वोद्धत, पृ० 138।

डेढ करोड रुपये क्षतिपूर्ति के रूप में देना पडेगा। यदि व यह धन नहीं दे पायेंगे तो व्यास और सिंध के बीच का पर्वतीय क्षेत्र कश्मीर और हजारा सहित ब्रिटिशों को दिया जाएगा।[1] (4) कि दरबार अपनी सेना समाप्त कर देगी और अपने पास केवल 20,000 पैदल और 12,000 घुडसवार रखेगी। (5) आवश्यकता पडने पर ब्रिटिशों को स्वतन्त्रतापूर्वक पंजाब से होकर जाने की आज्ञा मिलेगी। दलीप सिंह को पंजाब का अल्पवयस्क शासक स्वीकार किया गया। महारानी जिन्दन को राजा का संरक्षण प्रदान किया गया और लाल सिंह को प्रधानमंत्री। 11 मार्च 1846 को लाहौर दरबार से एक पूरक संधि की गई जिसके अंतर्गत (1) लाहौर में दिसम्बर 1846 तक दलीप सिंह की रक्षा हेतु पर्याप्त ब्रिटिश सेना रखी गई। (2) नये प्रशासन के अंतर्गत लाहौर क्षेत्र के जागीरदारों के अधिकार को स्वीकार किया गया। (3) ब्रिटिशों को यह सुविधा होगी कि वे अपने नियंत्रण में प्राप्त राज्यों के किलों की संपत्ति के किसी भाग पर उचित मुआवजा देकर अधिकार कर लें।

भैरोवाल की संधि

लाहौर की संधि के अंतर्गत ब्रिटिशों ने पंजाब से दिसम्बर 1846 के अन्त तक अपने सैनिक वापस करने के लिए स्वयं कहा था। पर जैसे ही यह तिथि निकट आई ब्रिटिशों ने अपनी सेना वहां पड़ी रहने देने का एक षडयन्त्र रचा। योजनानुसार सिखों से इस संबंध में यह कहने को कहा गया कि वे महाराज दलीप सिंह के वयस्क होने के काल तक सेना वहां बने रहने देने के लिए निवेदन करें। गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंज ने कुछ सूचनाएं सैनिकों के इधर-उधर जाने सम्बन्धी निकाली। उसने बताया कि, "मेरा उद्देश्य लाहौर दरबार को यह इंगित करना है कि सेना आगे बढ़ने वाली है।"[2] इसी बीच इसकी चेष्टा चलती रही कि लाहौर के कुछ सरदारों की ओर से यह कहा जाय कि सेना को हटाया न जाय। प्रयास फलीभूत हुआ और 15 दिसम्बर 1846 को ब्रिटिशों के पक्षधर सरदारों की एक सभा हुई जिसमें संरक्षिका महारानी जिन्दन को नहीं बुलाया गया क्योंकि यह आशा थी कि वे इस योजना का विरोध करेंगी। इन लोगों ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। ब्रिटिशों ने जो शर्तें रखी वे सब यथावत स्वीकार कर ली गयी। दूसरे दिन प्रात 18 दिसम्बर को भैरोवाल की संधि कर ली गई।

नवीन संधि की शर्तें थी—(1) लाहौर में ब्रिटिश सेना 4 सितम्बर 1854

---

1 इनमें से कश्मीर थोड़े ही कीमत पर गुलाब सिंह के हाथों बेच दिया गया। यह युद्ध में उनकी सहायता के बदले में पारितोषिक था। इसी अध्ययन में आगे देखें।

2 एडवर्ड्स एण्ड मेरीवले लाइफ आफ सर हेनरी लारेन्स (लंदन 1872) भाग 2 पृ० 100-101।

तब बनी रहेगी। इस समय तक महाराजा दलीप सिंह 16 वर्ष के हो जायेंगे और तब तक इस सेना के व्यय के रूप में दरबार ब्रिटिश को 22 लाख रुपये प्रति वर्ष देगा। (2) दलीप सिंह के वयस्क हो जाने तक ब्रिटिश रेजीडेन्ट को पंजाब पर शासन करने का अधिकार मिला। रेजीडेन्ट के सहायतार्थ 8 सरदार रखे गये। इसमें से किसी को भी रेजीडेन्ट हटा सकता और उसके स्थान पर नये को नियुक्त कर सकता था। (3) ब्रिटिश सेना लाहौर के अतिरिक्त अन्य किलों में भी रखी जा सकती थी। यह करना उनकी दृष्टि में इसलिए आवश्यक था क्योंकि महाराजा के हित की इससे रक्षा होती थी।

इस संधि ने सिख शक्ति के लिए मौत के घण्टे का काम किया क्योंकि अब "ब्रिटिश पंजाब के असली मालिक हो गये।" लार्ड हार्डिंज जो व्यावहारिक उदारवाद की नीति अपना रहा था वह भी लाहौर की संधि में इस दिशा की ओर आगे बढ़ा था। उसने हेनरी लारेन्स को, जो लाहौर में ब्रिटिश रेजीडेन्ट था, 23 अक्तूबर 1847 को लिखा, "मार्च 1846 को लाहौर की संधि द्वारा पंजाब को स्वतंत्र राज्य बनाये रखने की कल्पना नहीं की गई सच्चाई तो यह है स्थानीय राजा हमारी सुरक्षा में बंध गया है और हमारे सामने झुक गया है।"[1] इस दृष्टि से भैरोवाल की संधि लाहौर की संधि के उपरान्त एक अग्रिम कदम था।

गुलाब सिंह और कश्मीर राज्य

सिख शासन को समाप्त करने में गुलाब सिंह की अच्छी खासी भूमिका थी। इसी कार्य को करने के लिए पारितोषिक रूप में उसे स्वतंत्र कश्मीर का राज्य प्रदान किया गया। 1847 में कार्मिकेल स्मिथ ने गुलाब सिंह के विषय में लिखते हुए कहा, "स्वभाव से महत्वाकांक्षी, खराब और क्रूर उसने जान बूझकर अति दुखदायी अत्याचार इसलिए किये कि जिससे विरोधी लोगों की हिम्मत टूट जाय और उनका नाम आतंक से जुड़ जाय। पर इसके बावजूद वह व्यवहार में ठीक, और उदार था और भाषा व चाल ढाल में उसमें इतने विरोधाभासी अवगुण थे कि भय लगता था। उसके गुण उसके अवगुणों पर पर्दा डालने वाले मात्र थे।'

स्मिथ, गुलाब सिंह के एक मित्र के हवाले से कहता है कि "वह अफीम का प्रयोग करता है। लम्बी कहानियां कहता है, समय का ध्यान नहीं रखता और कम सोता है। वह अस्थिर चित्त है, देता कम है, वादा भी कम करता है, पर दिये वचन का पालन करता है। उसकी स्मरणशक्ति ठीक है और अमीर व गरीब सभीमें

1 एडवर्ड्स एण्ड मेरीवले लाइफ आफ सर हेनरी लारेंस (लन्दन, 1872) भाग 2 पृ० 100 101।

2 स्मिथ रेनिंग फेमिली आफ लाहौर पृ० 257।

स्वतत्र ढग से मिलता जुलता और हसी मजाक करता है पर इस सबके साथ वह उनका शोषण भी करता है। वह प्रजा मे लडका, लडकिया, पत्नियो और परिवारो के साथ दासो की तरह व्यवहार करता है वह सभी कुछ करता है। वह भोगी है, रुपये का लालची है, घूस देने और लेने वाला है।"[1]

ग्रिफिन ने गुलाब सिंह और उसके भाई ध्यान सिंह के विषय मे लिखा है कि, 'उनके उत्तम गुण और उनकी अदम्य वीरता ने ही उनमे उपस्थित निरकुश क्रूरता, षडयत्र, लालच और कुटिल महत्त्वाकाक्षा की ओर और ध्यान आकृष्ट किया है।"[2] पुन उसके वश की चर्चा करते हुए वह उनके तीसरे भाई सुचेत सिंह सहित चर्चा करते हुए लिखता है, ' चाहे वे राज परिवार के रहे हो या न रहे हो, वे निश्चित रूप से व्यक्तिगत बुद्धि मे कुछ लोगो मे से एक थे। उनकी सफलता भी स्पष्ट रूप से उस बिरादरी म स्वाभाविक थी जहा ईमानदारी और गुण बेकार थे और जहा हिंसा व धोखाधडी ही विजय के प्रति आश्वस्त करते थे।"[3]

कनिघम, जो गुलाब सिंह का समकालीन था, उसके अनैतिक चरित्रके विषय मे लिखता है ' पर ऐसी धारणा नही बनानी चाहिए कि वह अपकारपूर्ण बुरे चरित्र का है। वह निश्चित ही अपने शत्रु को धोखा देकर नि सन्देह उसकी जान ले लेगा। रुपये पैसे की वसूली मे वह तमाम कठोर नियम लागू करेगा। पर उसका मूल्याकन युग और उसकी जाति की नैतिकता के आधार पर होना चाहिए। उसकी स्थिति भी इसके लिए उत्तरदायी रही होगी। यदि उसके साथ य रियायतें की जाए तो गुलाब सिंह एक योग्य और साधारण व्यक्ति सिद्ध होगा जो थोडा ही बुरा करता है और जिसम अच्छे गुणो व उदारता की कमी नही है।"[4]

गुलाब सिंह 21 अक्टूबर 1792 को किशोर सिंह के वश मे पैदा हुआ। किशोर सिंह जम्मू के प्रसिद्ध शासक ध्रुवदेव का वशज था जिसके लडके रणजीत सिंह देव न किश्तवर, चनेजी, भदरवा के छोट छोट पहाडी राजाओ को पराजित किया। पर किशोर सिंह अपने सबधी शासकीय परिवार म दूर था और उसे पद या धन की कोई इच्छा भी नही थी। इसीलिए अखनूर मे वह साधारण व्यक्ति की तरह रहता था। उसके पिता जोरावर सिंह के सत्ता के निकट घयोल म जागीर थी और इसी के साथ गुलाब सिंह ने अपना बाल्यकाल व्यतीत किया।[5]

---

1 स्मिथ रनिग फमिली आफ लाहौर पृ० 258।

2 ग्रिफिन सर लपल रणजीत सिंह प० 127।

3 वही प० 190।

4 कनिघम हिस्ट्री आफ द सिक्ख प० 289।

5 गुलाब सिंह की मा महान्देवा थी जो बसोहली के निकट मन्रता के राजा कृष्णपाल की पुत्री थीं। कहा जाता है कि इह इनके पिता ने कन्या होने के कारण जिन्दा ही दफन कर दिया था। पर बाद म इन्हे खोदकर निकाला गया। उस समय वे जीवित थीं। देखें नरसिंह दास नरगिस दीवान गुलाब सिंह प० 15।

गुलाब सिंह को घुड़सवारी, तलवारबाजी और तीरंदाजी की अच्छी शिक्षा मिली। पर पढ़ाई लिखाई में वह शून्य ही रहा। ब्रजलाल देव के उत्तराधिकारी और भतीजे जीत सिंह के काल में 1808 में जम्मू में फैली अव्यवस्था ने एक अवसर प्रदान किया। रणजीत सिंह ने अपनी सेना इस राज्य को जीतने के लिए भेजी। होने वाले युद्ध में गुलाब सिंह अपने वंशजों की ओर से लड़ा और अपनी शक्ति से विरोधियों का भी मन मोह लिया और इसीलिए जल्दी ही जैसे ही जम्मू लाहौर के राज्य का एक भाग बन गया वह सिख महाराजा की सेना में घुड़चढ़ा सैनिक के रूप में भर्ती हो गया। स्मिथ के अनुसार, "मिश्र दीवान चन्द ने, जो सिख सेना का नेता होकर जम्मू गया था, महाराजा से उसका परिचय कराया जिसके फलस्वरूप वह और उसका छोटा भाई दोनों "तीन रुपये प्रति दिन"[1] के हिसाब से सेना में नियुक्ति पा गये। "रणजीत के प्रियजनों में वे सबसे प्रिय थे। पर ऐसा विश्वास किया जाता है कि गुलाब सिंह अपने भाई की तरह महाराजा की मैत्री पसन्द नहीं करता था। 1813 में रणजीत सिंह के कहने पर उन्होंने छोटे भाई सुचेतू (सुचेत सिंह) को बुलाया। वह अभी लगभग 12 वर्ष का सुन्दर लड़का था जिसके आकर्षक व्यक्तित्व ने रणजीत सिंह का स्नेह जीत लिया। राजपूत भाई अब दरबार में सर्वेसर्वा हो गए।"

1814 में कश्मीर पर सिख आक्रमण के समय गुलाब सिंह ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। जब 1818 में सिख सेना मुल्तान की ओर आगे बढ़ी तो गुलाब सिंह भी उसके साथ था। किले के घेरे के समय रणजीत सिंह का एक प्रिय सिख सरदार किले की दीवार के आधार पर मरकर गिर पड़ा। जब गोलाबारी के बीच कोई भी शव लेने के लिए जाने का साहस नहीं कर सका उस समय गुलाब सिंह ने इस निमित्त अपनी सेवाएं अर्पित कीं और इस काम को पूरा कर महाराजा की प्रशंसा का पात्र बना। इसी तरह और कई अवसरों पर उसने अपना नाम रोशन किया। उदाहरणार्थ युसुफ कबीले के विरुद्ध 1819 में पेशावर पर आक्रमण करते समय उसने धन, हीरे-जवाहरात और अन्य वस्तुएं पुरस्कार के रूप में अर्जित कीं।

विजय के बाद जम्मू खड़क सिंह को जागीर के रूप में प्रदान किया गया। पर उसके सहयोगी वहां शांति और व्यवस्था नहीं स्थापित कर सके क्योंकि उस क्षेत्र में कुछ शक्तिशाली राजपूत सिख सत्ता को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। इन

---

1 स्मिथ पूर्वोद्धृत, पृ० 250 शहमत अली सिक्ख एण्ड अफगान्स पृ० 92 के अनुसार गुलाब सिंह को दो रुपये प्रतिदिन मिलता था। पर कृपाराम के गुलाबनामा के अनुसार उसे तुरन्त एक रेजीमेण्ट का सेनापति बनाया गया और 75 रुपये महीने दिया गया और के० एम० पाणिक्कर ने अपनी पुस्तक द फाउंडिंग आफ द कश्मीर स्टेट में पृ० 29 पर इस बात को ही स्वीकार किया है।

2. स्मिथ पृ० 250 51।

के बीच मिया देदो नामक व्यक्ति आस पास के क्षेत्र म अत्यधिक लोकप्रिय हो गया। उसन अपने समथन जुटाये और चारो तरफ तूफानी आक्रमण प्रारभ कर दिया। गुलाब सिंह ने इस समस्या के निदान का काय अपने कधो पर लिया जिसे उस प्रान्त मे आगे बढने की अनुमति दे दी गई जहा उसने शक्ति, कूटनीति और फुसलाहट की नीति का प्रयोग कर देदो का मार डाला और विद्रोही तत्वा को नतमस्तक कर दिया। इसी की प्रशसा म 1820 मे यह क्षेत्र उसे प्रदान कर दिया गया।

इसके बाद गुलाब सिंह अधिकतर अपना समय जम्मू मे बिताने लगा चूकि महाराजा के प्रतिनिधि के रूप मे कर वसूलना सरल काय नही था इसलिए उसे अपनी सेना भर्ती करने की आज्ञा प्राप्त हो गयी। इसी बीच ध्यान सिंह को सद्रे ड्योढी बना दिया गया जिसके कारण महाराजा पर उसका प्रभाव बढने लगा। गुलाब सिंह अब निश्चिन्त हो गया कि उसकी अनुपस्थिति मे लाहौर म उसका भाई उसका अहित नही होन देगा।

1821 मे गुलाब सिंह ने सिख राज्य के लिए किश्तवर पर विजय प्राप्त की। उसने राजौरी पर भी आक्रमण कर अधिकार किया। यहा का राजपूत राजा जिस ने रणजीत सिंह के प्रति शत्रु भाव प्रदर्शित किया था, कैद कर लिया गया। इस सब ने उसे महाराजा की आखो म और उठा दिया। इसी कारण गुलाब सिंह का राजा की पैतक उपाधि प्रदान की गई और जम्मू क्षेत्र उसे प्रदान किया गया तथा यह राज्य उसके उत्तराधिकारियो को भी मिलेगा, यह भी तय हुआ। रणजीत न स्वय अखनूर के किले मे उसका तिलक किया और 16 जून 1822 का उस सनद प्रदान की।[1]

इसके बाद गुलाब सिंह ने अपनी कारवाइया शुरू कर दी, अपने राज्य का विस्तार किया और आवश्यकतानुसार लाहौर दरबार की सेवा भी करता रहा। उसकी विजयो मे सबसे महत्वपूण 1834 मे उसके सेनापति द्वारा प्राप्त लद्दाख की विजय थी। उसके अन्य भाई भी धीरे धीरे पद और महत्ता मे आगे बढते रहे जिसका परिणाम यह हुआ कि रणजीत सिंह की मृत्यु के पूव ध्यान सिंह को जागीरें मिली उससे लगभग 3 लाख रुपय वार्षिक की आय थी। सुचेत सिंह की जागीरें 3 लाख रुपये से ऊपर की थी, और हीरा सिंह की जागीरे 4 लाख 22 हजार रुपये वार्षिक से अधिक की थी। गुलाब सिंह की जागीर से 7,37,287 रुपय वार्षिक का लाभ था। जम्मू के अतिरिक्त गुलाब सिंह के पास अखनूर, परमदिन, रिहासी, किश्तवर, रामगढ, भिम्बेर और डेरा बाबा नानक

---

1 पानिक्कर के० एम० पूर्वोद्धत, पृ० 32 34।

की जागीरें थी।[1]

ब्रिटिशों से मिलकर षड्यन्त्र—जम्मू प्रान्त मे गुलाब सिंह ने लगभग स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर ली थी। लासा पर अधिकार करने के लिए उसने लद्दाख पर अधिकार कर लिया था जिसे लाहौर के शासक ने पसन्द नही किया। कश्मीर पर अधिकार की उसकी आकाक्षा किसी से छिपी नही थी। लाहौर सरकार म ध्यान सिंह की गुरुता कम नहीं थी। लाहौर के अन्य सरदारो को यह पूर्वाभास था कि वह अपने लडके राजा हीरा सिंह को सिख गद्दी का उत्तराधिकारी बनाना चाहता है। ध्यान सिंह के ऊपर रणजीत सिंह के प्रसिद्ध सेनापति हीरा सिंह नलवा को मरवा डालन का आरोप था क्योंकि उसने उसके पास समय पर सीमा पर सेना नही पहुचने दी। वह अपने भाइयो सहित इस बात के लिए भी उत्तरदायी बताया गया कि खडक सिंह को शासन की उचित शिक्षा उन्होंने नही देने दिया। रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद जब खडक सिंह का चेत सिंह से निकट सम्पर्क हुआ और ध्यान सिंह के मुख्य मत्री पद को खतरा हुआ तो उसने चेत सिंह को मरवा डाला। इन तीनो भाइयो न खडक सिंह को रास्ते से हटा दिया होता यदि सही समय पर माईचन्द कौर और उसका पुत्र नौनिहाल सिंह न पहुच गय होते। नौनिहाल सिंह को जब शक्ति प्राप्त हुई तो उसने पवतीय डोगरा राज्य को घेरकर उसकी शक्ति समाप्त करने की चेष्टा की। पर वह इस दिशा में कुछ अधिक कर सकता कि उसके पहले ही भवन का एक भाग दुर्भाग्य से उसके ऊपर गिर पडा अथवा डोगरा लोगो के षडयन्त्र का वह शिकार हुआ।

लाहौर के सरदारो मे केवल डोगरो को ही पैतृक जागीरें प्रदान की गई। इसी कारण उनमे भूमि और पद दोनो मे स्वार्थ की भावना आकर जुड गई। जम्मू मे गुलाब सिंह की शक्ति ने लाहौर मे ध्यान सिंह को भी शक्ति प्रदान की। दूसरी ओर ध्यान सिंह के मुख्यमन्त्रित्व ने गुलाब सिंह को लाहौर मे सुरक्षा प्रदान की। इसलिए दोनो की एक दूसरे के लिए पूरक शक्ति थी। पद और जागीर पर वे अपने अधिकार वसे ही मानते थे जैसे कोई राजपरिवार। दोनो का आधार शक्ति और धोखाधडी थी।

बहुत थोडे काल के लिए घटनाओ ने गुलाब सिंह और ध्यान सिंह को विरोधी खेमे म उस समय पहुचा दिया जब गुलाब सिंह ने चाद कौर का समर्थन किया और शेर सिंह की सेना के विरुद्ध उसकी रक्षा की। शेर सिंह ने लाहौर पर आक्रमण ध्यान सिंह के उत्साहित करने पर किया था।[2] जम्मू से ध्यान सिंह के आ जाने पर शांति स्थापित हो गई और गुलाब सिंह यहा से अपार धन ले गया। वह यह धन

---

1 सहमत अली सिख एण्ड अफगान्स पृ० 103 06।

2 ऊपर माई चन्द कौर देखें।

बिना ध्यान सिंह के मिलीभगत के नहीं ले जा सकता था। इसरा शेर सिंह की कठिनाइयां भी बढ़ी जो खालसा सेना का वेतन समय पर नहीं दे पाया जिसके कारण सेना अशान्त हो गई और जो सिखों के विनाश का एक कारण बना। यदि शेर सिंह कुछ दिनों तक और जीवित रहता तो निश्चित ही वह जम्मू में गुलाब सिंह की शक्ति को भी वैसे ही समाप्त करने का प्रयास करता जैसे उसने लाहौर में ध्यान सिंह से मुक्त होने की चेष्टा की थी। एक के बाद दूसरे राजकुमार का लाहौर में उत्तराधिकारी होना डोगरों का उन्हें नष्ट करने की योजना का एक भाग था जिसके अतगत उन्होंने उन्हें विष देने, छत के नीचे दबा देने, मार मार कर मौत ला देने या बंदूक के गोली का शिकार बनाने की नीति अपनाई।

इन परिस्थितियों में इसीलिए आश्चर्य नहीं करना चाहिए जब गुलाब सिंह ने सीमा पर अफगानों और भारत में ब्रिटिशों से षड्यन्त्र कर अपने हितों की रक्षा की और पर्वतों में अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली। लाहौर राज्य के अन्त ने उसे ऐसा करने की प्रेरणा दी। ध्यान सिंह की हत्या कर दी गई और सुचेत सिंह को अपने भाई के पुत्र हीरा सिंह से मुख्यमन्त्री पद छीनते समय मार डाला गया। जलालाबाद में ब्रिटिशों की गुलाब सिंह के लिए स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना खालसा सेना की जानकारी में थी। यदि वह सफल होती तो उस भी मार डाला गया होता। पर ऐसा हुआ नहीं। पर गुलाब सिंह सुरक्षित नहीं था। वह सुचेत सिंह के द्वारा छोड़े गये खजाने को लेकर राजा हीरा सिंह से लड़ गया और दोनों आपस में बधकों के आदान प्रदान के बाद ही शांत हो सके। पर स्मिथ के अनुसार चाचा और भतीजे में यह मतभेद नकली था क्योंकि चालाक गुलाब सिंह इस धुए के पर्दे के पीछे डोगरा हित की रक्षा करना चाहता था। पर इससे कोई इनकार कैसे कर सकता था कि गुलाब सिंह की प्रतिष्ठा और जीवन दोनों दाव पर थे। और चूंकि वह एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था, वह साथ ही साथ अपनी चमड़ी भी बचाना चाहता था। इसीलिए जिन्दन[1] के आदेश पर हीरा सिंह की हत्या के बाद लाहौर के मुख्यमन्त्री के पद के लालच में वह चला आया। वह 3 करोड़ रुपये का अर्थ दंड नहीं दे सका, इसलिए खालसा से घिरा हुआ वह लाहौर आया। रास्ते में लालच और घूस देकर उसने सैनिकों को अपनी ओर मिला लिया।[2] वह कुछ तो निराश था पर साथ ही कुछ प्रसन्न भी कि वह अपने भतीजे

---

1 पहले देखें—प्रथम आंग्ल सिख युद्ध के कारण।

2 स्मिथ यह बताता है कि जिस तरह जम्मू में खालसा सेना से घिर गुलाब सिंह ने यह कहकर अपनी जीवन रक्षा की कि वह डोगरा परिवार का वह अंतिम सदस्य था जिसे मालूम था कि खजाना कहां दबा पड़ा है। इस घोषणा को सच सिद्ध करने और शक्ति प्रदान करने के लिए उसने कुछ सैनिकों को कुछ स्थान जम्मू क्षेत्र में मरम्मत करने के लिए कह दिया और इन्हीं स्थानों के चिह्न बता दिये। उन्होंने इन स्थानों पर पन्द्रह बास

की जगह मुख्यमन्त्री बना दिया जाएगा। जिन्दन ने उसका स्वागत किया पर रानी के भाई जवाहर सिंह ने उसके पद प्राप्ति की इच्छा को पूरा नही होने दिया और वह निराश होकर जम्मू वापस चला गया। पर उसे इस वादे के साथ जान का अवसर मिला कि वह दरबार को 65 लाख रुपया अर्थ-दण्ड प्रदान करेगा। जवाहर सिंह के बाद एक अन्य अवसरवादी लाल सिंह को मुख्यमन्त्री का पद प्राप्त हुआ। स्थिति बिगडती रही और सिख सेनाओ ने सतलज को पार किया जिसके फलस्वरूप वे ब्रिटिशो के टक्कर मे आ गये। चूकि युद्ध दरबार के विरुद्ध प्रारभ हुआ इस कारण हर कोई यह सोचने लगा कि इस स्थिति से केवल गुलाब सिंह ही उन्हे बचा सकता है। इस कारण उसे बुलाकर मुख्यमन्त्री बनाया गया और समझौते के लिए बातचीत करने को कहा गया। पर वह यह जानता था कि जिस क्षण शाति स्थापित हो जायेगी उसी समय जिन्दन के प्रेमी लाल सिंह की शक्ति बढ जायगी और उसे अपना पद ही नही छोडना होगा बल्कि जम्मू को भी खतरा पैदा हो जायेगा। इसीलिए वह जब गवर्नर जनरल से सधि के लिए मिला तो उसने लाहौर दरबार को बचाने की चेष्टा नही की। दरबार की सैनिक शक्ति घटाने की क्रिया को स्वीकार करते हुए जो महत्त्वाकाक्षी और चालाक लाल सिंह की अध्यक्षता मे भी किसी के लिए समस्या न पैदा कर सके। "उसने एकाएक गवर्नर जनरल से यह निवेदन कर उसे कठिनाई मे डाल दिया कि आखिर इस तरह अति शीघ्र शाति स्थापना और सेना को लोगो के शिकार बनाने के लिए पैदा की गई स्थिति के लिए उसे क्या प्राप्त हो रहा है।"[1]

सिख शासन के क्षमावादियो ने गुलाब सिंह की आलोचना की है। भारतीय और यूरोपीय झूठे आदर्शवादियो ने भी उसके लाहौर दरबार के विरुद्ध षडयन्त्र करने और ब्रिटिशो के साथ उसके अनैतिक षडयन्त्रो की चर्चा की है। वह अपने पर्वतीय राज्य की उनसे स्वीकृति चाहता था। लाहौर सरकार को देय राजस्व का उसने गोलमाल किया और सिखो के आधे पहाडी सिख सहायक राज्यो पर अधिकार कर लिया। 1836 से ही वह कश्मीर छीनने के प्रयास मे था। उसने लाहौर दरबार के विरुद्ध षड्यन्त्र किया जिससे मुजफ्फराबाद मे जिहाद की स्थिति पैदा कर दी और कश्मीर सीमा पर अन्य पर्वतीय राज्यो मे भी यही स्थिति पैदा हो गई।" 1844 मे वह ब्रिटिशो को इस आधार पर सहायता को तैयार हुआ कि

और यहा तक कि एक एक स्थान पर 40 हजार रुपये तक प्राप्त किया। गुलाब सिंह के इसे न बताने की स्थिति मे यह सदा के लिए छिपा रह जाता। इस तरह सैनिको ने राजा को सोने की मुर्गी की उपाधि दी।' स्मिथ पूर्वोद्धृत प० 136।

1 कनिंघम पूर्वोद्धृत, पृ० 287।

2 हसरत विक्रमजीत ऐंगलो सिख रिलेशन्स, पृ० 19।

वे "पर्वतों में उसकी स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करें।"[1] 1845 में भी उसने ऐसा ही किया जब उसने "ब्रिटिशों को पर्वतीय क्षेत्र के वसूले कर को उन्हें देने को कहा, पर शर्त थी कि यदि वे पंजाब पर अपना अधिकार जमा लें।" यह उसने फरवरी में किया और अगस्त में पुनः उसने 50 हजार सैनिकों सहित सिख सेना को नष्ट करने और लाहौर पर ब्रिटिश आधिपत्यस्थापन में सहयोग देने को कहा।" दो सिख सेनाओं के सेनापति के रूप में और लाहौर सरकार के एक सहायक के रूप में उसने लाहौर दरबार के आदेश का अनुपालन नहीं किया और टालमटोल वाले उत्तर दिये। जब मुदकी और फिरोजशाह के बाद सतलज में उससे सिख सेना को मजबूत करने को कहा गया तब भी वह उसने कुछ नहीं सुना।"[2] आलीवाल के बाद जब उससे वजीर होने को कहा गया तो वह लाहौर आया और साथ ही उसने ब्रिटिशों को सूचित कर दिया कि वह उनका विश्वस्त रहेगा और उन्हें सूचनाएं भेजेगा। सोबराव की पराजय के बाद 'अपने वजीर की चालाकी से आतंकित हो रानी और उसके सरदारों ने 12 फरवरी 1846 को एक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया जिसमें गुलाब सिंह को अधिकृत किया गया कि वह ब्रिटिशों से जो भी संधि करेगा उसे वे मानेंगे।' वह दरबार की ओर से संधि पत्र पर हस्ताक्षर हेतु गवर्नर जनरल से मिला और स्पष्ट रूप से मांग की कि, 'उसे यह मत करने के लिए क्या दिया जा रहा है।'

18 फरवरी को युवा महाराजा को कसूर में गवर्नर जनरल के कैम्प में संधि की स्वीकृति के लिए लाया गया। गुलाब सिंह ने परामर्श दिया कि महाराजा को रानी के पास वापस न भेजा जाय और रानी से कहला दिया जाय कि यह गवर्नर जनरल पर निर्भर है कि वह युवा शासक से जैसा चाहे वैसा व्यवहार करे। हार्डिंज ने भोलेपन से सिख सरकार के कर्मचारी की ओर देखा। उसने उसकी तटस्थता की प्रशंसा की फिर उसने उसकी बात नहीं मानी।"[3]

गुलाब सिंह द्वारा की गई षडयंत्रों की यह लम्बी फिहरिस्त सचमुच इतिहास में उसके लिए कलंक है। उसका वह अंतिम कार्य जिसमें उसने यह राय दी कि महाराजा को रोक लिया जाय जिसके हित के लिए वह गवर्नर जनरल से मिला था, स्पष्टतया उसे धूर्त व ढोंगी सिद्ध करते हैं। पर उसका मूल्यांकन इस बात को ध्यान में रखकर करना चाहिए कि लाहौर में उसका पूरा परिवार मार डाला गया, किस तरह उसका पद और जीवन दोनों खतरे में पड़ गये तथा लाहौर की खालसा सेना राजकुमारों रानियों और वजीरों की बेशर्मी, आत्मकेंद्रियता,

1 हसरत, बिक्रमजीत ऐंग्लो सिख रिलेशन्स पृ० 237 कोटिंग कन्टेम्परेरी रिकार्ड्स।
2 वही पृ 243 254 255 284 385 कोटिंग रिकार्ड्स।
3 वही पृ० 286 कोटिंग रिकार्ड्स।

अवसरवादिता और अनुत्तरदायित्वता ने भी उसमे परिवतन ला दिया।

जो भी हो गुलाब सिंह के कारण ही 9 माच 1846 को लाहौर की सधि हुई। वैसे उसने स्वय उसपर हस्ताक्षर नही किया। इस सधि के अतगत क्षतिपूर्ति के लिए लाहौर सरकार ने ब्रिटिशो का कश्मीर और हजारा सहित सिंध और व्यास के बीच का क्षेत्र प्रदान कर दिया। अमृतसर की सधि की एक अन्य धारा के अतगत, जिसपर 15 माच 1846 का हस्ताक्षर हुए, गुलाब सिंह के हाथो कश्मीर उसके कार्यों के परितोषिक के रूप मे प्रदान कर दिया गया। इसके बदले मे उसे एक करोड रुपये और वाद मे कुछ कम देन पडे।

स्वतन्त्र शासक—अमृतसर की सधि मे था, "ब्रिटिश सरकार महाराजा गुलाब सिंह और उसके उत्तराधिकारी पुत्रो को सदा के लिए स्वतन्त्र राज्य के रूप मे प्रदान करता है। उसे सिंध नदी के पूव और लाहुल को छोड चम्बा सहित रावी नदी के पश्चिम का सभी भाग व इस क्षेत्र के सभी राज्य जो पहाडी क्षेत्र मे है और जो लाहौर से ब्रिटिशो को प्राप्त हुआ था, उसे दिया जाता है।" इस क्षेत्र की पूर्वी *सीमा के निर्धारण के लिए ब्रिटिश और गुलाब सिंह द्वारा नियुक्त एक कमीशन* बनाने का निश्चय हुआ। इसके बदले महाराजा अपन पास पडोस के झगडे ब्रिटिशो के हाथ म सौंपने को तैयार हुआ। वह ब्रिटिशो को सनिक सहायता देने तथा ब्रिटिशो का बताये बिना किसी युरोपीय या अमेरिकी को सेना मे न रखने के लिए भी तैयार हुआ। उसने ब्रिटिशो की महत्ता भी स्वीकार की जिसके प्रतीक स्वरूप वह प्रतिवष "एक घोडा, 6 बकर और 6 बकरिया और तीन जोडे कश्मीरी शाल देने को तैयार हुआ।"[1]

इस तरह स्थापना हुई वतमान जम्मू और कश्मीर राज्य की। प्रारभ मे गुलाब सिंह को उस समय कठिनाइया हुइ जब पजाब के मुख्यमत्री लाल सिंह के उकसान पर कश्मीर का सिख गवनर वह घाटी उसे देने को तैयार नही हुआ। पर ब्रिटिशो ने इसकी प्राप्ति मे उस सहायता की। दूसरी ओर लाल सिंह के ऊपर मुकदमा चला, उसे पद से हटाकर अपमानित किया गया और अतत पजाब से उसे निकाल दिया गया।

गुलाब सिंह ने धीरे-धीरे अपनी स्थिति मजबूत कर ली और कश्मीर के प्रशासन मे कई सुधार किये। शाल उद्योग को पुनगठित किया गया। बेगार समाप्त किया गया और सीमा पर कई विद्रोह दबाये गये। अपने बाद के जीवन मे वह जलोदर से बीमार पडा। फरवरी 1856 म उसने औपचारिक रूप से अपने एकमात्र जीवित पुत्र राजबीर सिंह को उत्तराधिकारी बनाया और स्वय कश्मीर के गवनर का पद स्वीकार करते हुए घाटी की ओर चला गया। वह तब अपनी

1 पाणिक्कर पूर्वोद्धृत पृ० 111 15।

मत्यु शय्या पर था जब 1857 का विद्रोह भारत मे हुआ। उसन डोगरा सैनिको को दिल्ली जाने का आदेश दिया जहा उन्होंने ब्रिटिशो को उनका अधिकृत क्षेत्र दिलाने मे सहायता की। वह 66 वष की आयु म अगस्त 1858 म मर गया।

यदि अमृतसर की सधि की ओर पुन लौटें तो इसी सधि के अतगत हार्डिंज ने गुलाब सिंह को जम्मू और कश्मीर प्रदान किया था और इसके बदले उस अंग्रेजो को एक करोड रुपये देने पडे थे। यह बताना आवश्यक है कि इस धन का एक भाग कश्मीर के खजाने से दिया गया। जबकि कश्मीर लाहौर का एक भाग होने के कारण महाराजा दलीप सिंह के अधिकार क्षेत्र मे आता था। इसके विषय मे बताते हुए कनिंघम ने यह मत व्यक्त किया है कि, "इस सधि की कारवाई ब्रिटिश नाम और महानता के अनुरूप नही थी। यह इतराज तब और शक्तिशाली हो जाता है जब यह सोचा जाता है कि गुलाब सिंह ने लाहौर दरबार की ओर स युद्ध प्रारभ होने के पूव ही 60 लाख रुपये देने का वादा कर लिया था। और पूव तथा पश्चिम दोनो स्थानो पर यह प्रथा है कि सहायक अपने मालिक की सहायता गह और वैदेशिक दोनो युद्धो म करते हैं। गुलाब सिंह ने इस तरह लाहौर की एक प्रजा की हैसियत स यह धन दिया होगा।" आगे कनिंघम लिखता है, "उसे जो धन देना था उसे 1/4 कम कर दिया गया और इसकी वापसी की शर्तें और सरल इसलिए कर दी गयी क्योंकि उसे फीरोजपुर मे जमीन म गडी सुचेत सिंह के धन का उत्तराधिकारी बताया गया।"[1] गाडन ने लिखा है कि सरकार की ओर से, "यह सचमुच एक बुरा प्रयास था जो दुर्भाग्य से तत्कालीन राजनतिक आवश्यकता के कारण आवश्यक हो गया।"

लगभग उसी समय, जैसे ही कश्मीर गुलाब सिंह को दिला दिया गया, हार्डिंज के आलोचको ने इसे 'एक राजनतिक भूल की सज्ञा दी। यह परामश दिया गया कि यहा की उत्तम जलवायु और अच्छी भूमि वाली घाटी अंग्रेजो द्वारा बडी आसानी से अधिकार म करके एशिया मे एक दूसरे इगलैण्ड के रूप मे विकसित किया जा सकता है।'[3]

पर हार्डिंज ने कश्मीर, जिसे उसने 1846 मे गुलाब सिंह को प्रदान किया, उसके पीछे भी शक्तिशाली तक थे। यह याद रखना चाहिए कि पजाब को प्रथम सिख युद्ध के बाद नही मिलाया गया और हार्डिंज को यह आशा थी कि ब्रिटिश सहायता से स्थापित यह राज्य ऐसे 'बफर' राज्य का काम करेगा जो उत्तर-

---

1 कनिंघम पूर्वोद्धत प० 288।
2 गाडन पूर्वोद्धत प० 164।
3 वेकफील्ड हन्जू द हैपी वली (1879), प० 85-86 कपूर, एम० एल कश्मीर सोल्ड एण्ड स्नेच्ड (1968), पृ० 9 10 द्वारा उद्धत।

पश्चिम से आनेवाली कठिनाइयो को झेलेगा। इस तरह कश्मीर विजय से सतलज से आगे एक लबे आवागमन के मार्ग को बनाये रखने की आवश्यकता पडती जो 300 मील से होकर गुजरता और जहा के लोगो के चरित्र के बारे मे कुछ भी नही मालूम था। कश्मीर पर हार्डिंज इसलिए भी अधिकार नही करना चाहता था क्योकि इससे उसे उस क्षेत्र के शक्तिशाली कबीलो से सघर्ष करना पडता। इसका एक कटु अनुभव ब्रिटिशो को प्रथम अफगान युद्ध मे मिल चुका था। इसीलिए उसने इसे स्वतत्र रखना ही उचित समझा। इससे यह राज्य और पजाब मिलकर सीमा क्षेत्र के कबीलो का काबू मे रख सकते थे और साथ ही इनसे सिखो पर भी नियत्रण रह सकता था। इस प्रकार सतलज की ओर ब्रिटिश सीमाए शान्त और सुरक्षित रह सकती थी। हार्डिंज भारतीय राजाओ और सरदारो को यह भी दिखाना चाहता था कि ब्रिटिश हितो मे रुचि लेने वालो को किस तरह का लाभ प्रदान किया जा सकता है।

पर उस समय स्थिति बदल गई जब पजाब पर प्रथम सिख युद्ध के बाद भी अधिकार न करने की नीति को गलती माना जाने लगा। पजाब मे ब्रिटिशो की उपस्थिति के नये बहाने किये गये और साथ ही कश्मीर राज्य मे हस्तक्षेप करने और वहा पर ब्रिटिशो के अधिकार विकास की चेष्टा की गई। गुलाब सिंह के शासन को निरकुश और अक्षम बताते हुए हार्डिंज ने महाराजा को 1848 मे लिखा कि ब्रिटिश ऐसे शासन से अपने को प्रतिबद्ध करने को बाध्य नही है जहा के शासक ने अपने गलत नीतियो द्वारा जनता मे अपने को अलग कर लिया है।" और उसने यह भी घोषित किया कि जहा कही भी शासक असफल हो गया हो वहा "सीधे हस्तक्षेप की नीति अपनाई जानी चाहिए।"[1]

पर महाराजा के ऊपर निरकुशता की नीति के जो आरोप लगाये गये वे छानबीन से सही नही सिद्ध हुए। इसी बीच हार्डिंज पदमुक्त हो गया। उसका उत्तराधिकारी लार्ड डलहौजी महान साम्राज्यवादी था। यदि कश्मीर म हस्तक्षेप की कोई स्थिति नही थी तो वह एक कोई पदा करने की चिन्ता म था। प्रत्येक गर्मियो मे यूरोपीय इस घाटी म जाने लगे और वहा लोगो से दुर्व्यवहार करने लगे। महाराजा ने ब्रिटिशो से इसकी शिकायत की। डलहौजी को अवसर मिल गया और उसने यह प्रस्ताव रखा कि घाटी मे युरोपीय लोगो को नियत्रण मे रखने के लिए एक ब्रिटिश अधिकारी नियुक्त किया जाय। महाराजा यह सुनकर स्तभित रह गया, क्योकि उसे पता था कि इस तरह की किसी भी नियुक्ति स राज्य म ब्रिटिश एजेण्ट रखने की प्रथा का प्रारभ हो जायेगा। उसन इससे बचने के लिए अपने तर्क दिये पर गवनर जनरल ने उसे जाल से बाहर नही जाने दिया। इसी के

1 कपूर एम० एन० पूर्वोक्त, पृ० 22 23।

फलस्वरूप 1852 में महाराजा को ऐसे एक अधिकारी के नियुक्ति को स्वीकार करना पड़ा जिसे नाम दिया गया "आफिसर आन स्पेशल ड्यूटी इन कश्मीर।" इसमें यह तय हुआ कि यह अधिकारी गर्मी के दिनों के बाद जब वहां यूरोपीय पर्यटक नहीं जायेंगे तो लौट आयगा।

अमृतसर की संधि ने अन्य भारतीय राज्यों की तुलना में कश्मीर को विशेष स्थिति प्रदान की थी। यह लगभग एक स्वतन्त्र राज्य हो गया था जहां पर हस्तक्षेप के लिए ब्रिटिश रेजीडेण्ट नहीं नियुक्त किया गया था। पर 'आफिसर आन स्पेशल ड्यूटी" की कश्मीर में नियुक्ति ने वहां की स्वतन्त्र स्थिति में हेर फेर कर दिया और इस तरह एक ऐसी शुरुआत कर दी गई जिसके आधार पर आगे चलकर इसे पूर्णतया ब्रिटिश नियन्त्रण में ले लाया गया। इसकी चर्चा आगे की जायगी।

लार्ड हार्डिञ्ज ने सिख युद्ध में व्यक्तिगत रूप से भाग लिया और उसकी महानता इस बात में थी कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने अपने सेनापति गौफ को प्रेरणा दी। 1848 में वह आत्म-निवेदन द्वारा अपने पद से हट गया। इंगलैण्ड पहुंचने पर उसे 1852 में अंग्रेजी सेना का सेनापति बना दिया गया। पर कुछ ही दिनों बाद क्रीमिया का जो युद्ध प्रारंभ हुआ वह उसकी बढ़ती आयु के लिए एक बोझ सिद्ध हुआ। 1855 में वह फील्ड मार्शल बना, पर अगले ही वर्ष वह लकवे का शिकार हो गया और इस तरह 71 वर्ष की आयु में 24 सितंबर 1856 को उसकी मृत्यु हो गई। पनहर्स्ट का हार्डिञ्ज जो उसकी मृत्यु के 54 वर्ष बाद भारत का वाइसराय बनकर आया वह उसका ही पौत्र था।

9

मार्क्विस डलहौजी (1848-56)

जेम्स ऐंड्रिव ब्राउन रैम्जे का, जो बाद मे दशवें अल के रूप म अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ और साथ ही डलहौजी का मार्क्विस हो गया, ज म 22 अप्रल 1812 को हुआ। उसके पिता ने वाटरलू मे एक रेजीमेंट की कमान सम्भाली थी, बाद मे वह कनाडा का गवनर जनरल हो गया और भारत का सेनापति। उसकी मा हैडिंगटनशायर मे कोलसटून के ब्राउ स की उत्तराधिकारिणी थी। जेम्स को हैरो मे शिक्षा प्राप्त हुई, फिर क्राइस्ट चच और उसके बाद आक्सफड जहा पर भविष्य म होने वाले भारत के वाइसरायो—एल्गिन और कनिंग से उसकी मित्रता थी। 1835 म जेम्स ने एडिनबरा से चुनाव लडा पर उसे पराजित होना पडा। 1836 मे उसने ट्वीडेल के आठवें मार्क्विस की सबसे बडी लडकी सूमा न ह मे विवाह किया। 1837 मे हैडिंग्टेनशायर से ससद सदस्य हो गया और 1838 मे अपने पिता की मृत्यु के बाद उसे अल का पद मिल गया। 1843 मे सर राबट पील ने उसे बोड आफ ट्रेड का वाइस प्रेसीडेंट नियुक्त किया। 1845 म उसे प्रेसीडेंट बनाया गया और 1847 मे सर जान रसेल ने उसे भारत का गवनर जनरल नियुक्त किया।

"उत्तम माथे, चुभन दष्टि और क्रुद्ध मिजाज गवनमट हाउस के इस नाटे आदमी का प्रथम मिलने वाले व्यक्ति पर भयपूण प्रभाव पडता। फिर विश्वास के अकुर जमन और अतत विश्वस्ततापूण आदर सहित प्रेम की भावना का उस पर प्रभाव जम जाता।'[1]

भारत म डलहौजी के गवनर जनरल का काल उसके अ यायपूण राज्य छीनने के लिए स्मरण किया जाता है। उसने इसे छिपाया भी नहीं। उसने खुल्लम घोषणा की, अपन क्षेत्र के विस्तार की नीति की मुझसे अधिक कोई आलोचना नही कर सकता। पर यह तभी जब इसस बचा जा सके या हमारी सुरक्षा के लिए जब तक यह अत्य त आवश्यक न हो और प्रातो मे शाति स्थापना के लिए इसको उर

---

1 वही, पृ० 16।

योगिता न हो। पर मैं इसे किसी के लिए सभव नही मानता कि वह उचित अवसर पाने पर इस नीति का उपयोग न करे क्योंकि इससे अपने पहले के उपस्थित क्षेत्रों का सगठन होता है और यदि उन राज्यो पर अधिकार न किया जाय तो व राज्य उसी अशाति मे अपना अस्तित्व अपने आप खो बैठेंगे। इस तरह के छोटे २ राज्यो की हस्तक्षेपपूर्ण नीति से कठिनाई म वृद्धि ही होती है, हमें उससे कोई शक्ति नही प्राप्त होती। इससे खजाने की शक्ति तो बढती ही है साथ ही हमारे शासन की एकरूपता जो जनहित मे है और स्थानो म भी फैल जाती है जिससे वहा की रक्षा होती है।' अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है। टाम्सन और गैरेट ने इस सदर्भ मे यह कहकर डलहौजी के नीति का समर्थन करने की चेष्टा की है कि 'डलहौजी ने एक पुरातन व्यवस्था प्रारम्भ की जो उसके कठोर प्रशासन के अतर्गत टूट गई।'[1] पर अगले पष्ठो के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि यह दृष्टि साम्राज्यवादी चश्मा पहने हुए विद्वानो से ही मिलती जुलती है।

द्वितीय आग्ल सिख युद्ध

लार्ड डलहौजी के शासन काल की सबसे प्रमुख घटना पजाब पर अधिकार की थी। भैरोवाल की सधि की धारा के अनुसार ब्रिटिशो को स्वय पजाब 4 सितम्बर 1854 तक छोड देना था। पर इस तिथि के आने के बहुत पहले ही उन्होंने इस राज्य पर अधिकार करने का बहाना ढूढना प्रारम्भ कर दिया जिससे कि सारा खेल ही समाप्त हो जाय। अवसर आया उसका लाभ उठाया गया, द्वितीय सिख युद्ध हुआ और पजाब पर अधिकार कर लिया गया।

कारण—ऐसे कारण थे जिन्होने अवसर ला उपस्थित किया। साधारण जन की ब्रिटिश व्यवस्था के प्रति प्रतिक्रिया उत्साहवर्द्धक नही थी। पन लिखता है कि सिख नयी चीजो का स्वागत तो करते थे पर उसके प्रति उत्साह नही दिखाते थे'[2] वे अनुभव करते थे कि एक जाति के शासकीय रूप म भी उनकी स्थिति अब नीची हो गई है। तमाम सिख बिना लगान की भूमि पर काबिज थे जिसके कारण राजस्व की वृद्धि या ह्रास पर उनका कोई प्रभाव नही पडता था। हा यदि कर वसूलने वाले हाथ थे तो अवश्य प्रभाव पडता था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिशो का समाज-सुधार यथा बच्चो को मारे जाने की प्रथा को दबाना एव सती प्रथा की समाप्ति को व अपने धर्म मे हस्तक्षेप मानते थे। यह एक ऐसी चीज थी जिसे हिन्दू या सिख सहन करने को तैयार नही थे।

सिख सैनिक अपनी पराजय को मात्र एक सयोग मानते थे। कनिंघम लिखता

1 टाम्सन एण्ड गैरेट राइज एण्ड आफ ब्रिटिश रूल इन इण्डिया पृ० 350।
2 पन पूर्वोद्धत पृ० 176।

है कि यह स्पष्ट है कि अपने सैनिक सगठन के समाप्त किये जाने के समय उन्होने "न तो विद्रोही सैनिकों का नैराश्य प्रदर्शित किया और न ही धृष्टता और तटस्थता।"[1] वे अपने नेताओं के षडयंत्र को ही अपनी पराजय का कारण मानते थे। खालसा के भविष्य मे विश्वास करते हुए वे नम्रता सहित कहा करते थे कि जैसे जैसे समय बीतता जायगा वैसे वैसे गुरुगोबिन्द सिंह का सिख सगठन निश्चित रूप से विजयवस्त्र धारण करता जायेगा। यह विजय अग्रेजो पर ही नही बल्कि पूरे विश्व पर उसे प्राप्त होगी।

बिखरे सिख सैनिको ने भी समस्या पैदा की। या तो दरबार ने उन्हे उनका बकाया वेतन दे दिया था, पर वे शातिपूर्वक दूसरी नौकरियां नही पा सकते थे। वे कानून और व्यवस्था को आधार बनाकर जीवन नही जी रहे थे। जिससे भी समाज मे सुरक्षा की व्यवस्था हो सकती वह उनके विरुद्ध जाती थी। पर ये सैनिक जब दर दर की गावो मे ठोकरें खाते थे तो भी स्थानीय लोग इनका स्वागत नही करते थे। उन पर छीटाकशी ही की जाती। स्वाभाविक रूप से यदि ब्रिटिशो से शक्ति आजमाइश का कोई अवसर आता तो वे उसका स्वागत करने को उत्सुक थे।

लाहौर के सभी सरदार भी सतुष्ट नही थे। कनिंघम लिखता है कि "उनका उद्देश्य अग्रेजो से अपनी बची खुची सेना को बर्बाद करके सुलह करना नही था बल्कि विरोधियो की सेना के सामने अपने सैनिको को इधर-उधर कर देना था। वे विजय द्वारा सहायक राज्यो की स्थापना का उद्देश्य रखते थे।"[2] पर इनमे से अधिकतर सैनिको को अपने देशवासियो की हत्या के बाद जो पारितोषिक मिला वह सतोषजनक नही था। लालसिंह सबसे असतुष्ट व्यक्ति था। गुलाब सिंह ने खालसा के विरुद्ध षडयत्रकारी भूमिका निभाकर भी इनाम के तौर पर कश्मीर प्राप्त कर लिया, पर लालसिंह को कुछ नही मिला। केवल प्रधान मत्रित्व से वह सतुष्ट नही था और लाहौर के सधि की स्याही अभी सूखी भी नही थी कि उसने ब्रिटिशो के विरुद्ध षडयत्र प्रारम्भ कर दिया और उस देश से निकाल दिया गया।

महारानी जिन्दन भी नयी व्यवस्था से सतुष्ट नही थी। भैरोवाल की सधि उस की इच्छा के विपरीत की गई क्योकि वह चाहती थी कि ब्रिटिश पजाब मे न रहें। इसके लिए दडस्वरूप उसे अपने लडके के सरक्षिका पद से हटा दिया गया। उसके ऊपर इसके बाद से निगरानी रखी जाने लगी।

लगभग सभी उपरोक्त बाते द्वितीय सिख युद्ध के लिए उत्तरदायी हुई। पर मुख्यतया यह पजाब मे ब्रिटिश आक्रामक नीति का परिणाम था। यदि प्रथम सिख

---

1 कनिंघम पूर्वोद्धृत पृ० 289।
2 वही पृ० 295।

युद्ध के बाद पजाब पर अधिकार नही किया गया तो यह इसलिए नही कि "ब्रिटिश अपनी शक्ति पराकाष्ठा के काल मे सहनशील और उदार हो गय थे।" इसी तरह की बात ब्रिटिशो की ओर से कही गई जैसा कि हम ऊपर बता आये हैं। उन्होंने ऐसा इसलिए नही किया क्योकि वहा की जनता को समपण की आशा नही थी। यदि उन्हे वहा के लोगो का सहयोग मिल जाता तो सारे देश के ब्रिटिश काल का इतिहास ही और होता। इसके अतिरिक्त पजाब अधिकार के विरोध म बातें थी। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री सर राबट पील न हार्डिन्ज को लिखा कि "पजाब पर अधिकार हमारे लिए शक्ति का स्रोत होने के स्थान पर कमजोरी का सबब होता। इससे हमारे देश की सीमाए उत्तर पश्चिम म अत्यधिक दूरी तक हो जाती। अफगानिस्तान मे हमारी कमजोरी और बढ जाती और सभी सीमान्त दशा म हमारी स्थिति सितम्बर से भी खराब हो जाती।"[1] यह भी अनुभव किया गया कि यदि पजाब पर अधिकार किया गया तो सिखो को नामित करना कठिन हो जायगा। यह भी नही सोचा जा सकता था कि पजाब की भूमि उवरा होगी। इस तरह इस दृष्टि से भी यह शक्ति के स्थान पर कमजोरी का ही प्रतीक होती।

पर एक बार जब ब्रिटिशो ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया तो य सारी बातें एक के बाद एक गायब होती गइ। जो ब्रिटिशो के समथक थे उनम स एक-एक का भय धीरे धीरे समाप्त होता गया। उन्होंने यह भी पाया कि पजाब पर पर अधिकार से शक्ति का ह्रास नही होगा बल्कि इससे शक्ति बढेगी ही। आर्थिक दृष्टि स यदि पजाब को उचित रीति से सगठित किया जाय तो राज्य स लाभ अर्जित किया जा सकता था।

"ब्रिटिशो के लिए पजाब का कपास मुख्य आकषण था जो उनके माल के लिए एक अच्छा बाजार तयार कर सकता था। अमतसर पजाब का केन्द्र स्थान बनाया गया। जम्मू कश्मीर के पहाडी क्षेत्र, मुलतान और पेशावर ब्रिटिशो के लिए अफगानिस्तान हेतु व्यापार के डिपो बन गये। आवसस के आगे तक य उपयोगी थे।

'पजाब ने ब्रिटिश नागरिको के लिए नौकरी की पर्याप्त सुविधाओ का अवसर प्रदान किया इससे विस्तृत सैनिक छावनियो एव पवतीय प्रशिक्षण मैदान बनाने का भी अवसर आया।' और यदि परिश्रमी और शक्तिशाली सिखो को ब्रिटिश सेना म भर्ती कर यूरोपीय ढग पर उन्हे प्रशिक्षित कर दिया जाय तो ब्रिटिश विश्व के किसी कोने म भी विजय प्राप्त कर सकते थे।

इस क्षेत्र मे अपनी शक्ति को मजबूत करने के लिए भैरोवाल की सधि आरोपित की गई। सिखो को क्रूरतापूवक भगाने की नीति अपनाई गई और प्रमुख

1 हार्डिन्ज चाल्स सेकेण्ड विस्काउण्ट विस्काउण्ट हार्डिज पृ० 143 44।
2 गंडा सिह प्राइवेट करसपाडेन्स रिलेटिंग टु द ऐंग्लो सिख वास पृ० 165।

स्थानो पर एक के बाद एक अंग्रेजो को नियुक्त किया गया। लोगो को बबर मान-कर ब्रिटिशो का किया गया उन पर सभ्य शासन हेनरी लारे स के शब्दो म उनका त्राण माना गया। सुधार के लिए जनता के जीवन मे हस्तक्षेप किया गया।

महारानी जिन्दन के साथ जो व्यवहार किया गया उसकी चर्चा यहा आवश्यक है। बिना प्रमाण के भैरोवाल की सधि से उसको हटा दिया गया। उस पर ब्रिटिशो के विरुद्ध षडयन्त्र का आरोप लगाया गया। उसकी पे शन घटाकर डेढ लाख रुपये से 48,000 रु० कर दी गई और उसे जबरदस्ती पदमुक्त कर शेखपुर भेज दिया गया। इस तरह उसके पास जो भी राजनतिक शक्ति थी, समाप्त हो गई। पर उसको कष्ट देना अभी भी जारी रहा। उसकी पेशन और घटाकर 12 हजार रुपये कर दी गई। उसके हीरे जवाहरात छीन लिये गये और उसे बनारस भेज दिया गया। दोस्त मुहम्मद न लिखा कि "इस तरह का व्यवहार अनुचित है जिसके बदले छोट और बडे मौत पसद करेंगे।" खाल्सा सेना को भी छोडा गया और अब जनता यह मानने लगी कि "यह एक राष्ट्रीय अपमान है और यह रानी के लडके के गद्दी से हटाने का प्रयास मात्र है जिसस राज्य का विनाश हो जाएगा।"[1]

क्या ब्रिटिश सचमुच दलीप सिंह का जीवन बबाद करने पर आमादा थे इसके परीक्षण के लिए एक घटना का विवरण यहा प्रस्तुत किया जा सकता है। हजारा जिले के नाजिम छत्तर सिंह ने यह प्रस्तावित किया कि महाराजा जिनका विवाह उनकी लडकी से तय हो चुका है उसे शीघ्रातिशीघ्र कर दिया जाय। पर रेजीडेन्ट ने इसका उत्तर जब उसे कठोर और नकारात्मक भाषा मे दिया तो सिखो के मस्तिष्क मे व्याप्त सदेह पुष्ट हो गया। छत्तर सिंह को उस समय दूसरा आघात लगा जब उसके परामशदाता और रेजीडेन्ट के सहायक कप्टन ऐब्टन उसके विषय मे सूचित किया था कि एक अच्छा अधिकारी होने के बावजूद वह 'प्रश्न को नैराश्य भाव से लेता ह। उसे एकाएक सदह हुआ कि छत्तर सिंह विद्रोह की तैयारिया कर रहा है। इसीलिए उसने अपने रहने की जगह से उसे तीस मील दूर भेज दिया, मुस्लिम किसाना को उसके विरुद्ध विद्रोह के लिए उत्साहित किया और छत्तर सिंह की सवा के एक अमेरिकी अधिकारी कनल कनोरा को अपन सरदार की आज्ञा न पालन करने को प्रोत्साहित किया। वैसे तो अपने व्यक्तिगत पत्र म रेजीडेन्ट न उसके इस व्यवहार की आलोचना की, पर छत्तर सिंह को यह नही बताया गया कि किस पर किया गया सदेह सच था। इसीलिए वह अपने पुत्र शेर सिंह सहित, जो रीजेन्सी कौंसिल का सदस्य भी था, मुल्तान के मूलराज के पास चला गया जो विद्रोह का झडा पहले ही खडा कर चुका था।

1 बेल इवान्स अनेक्सेशन आफ द पजाब (लदन 1822) पृ० 20।

"जब चेलियान वाला की घटनाओं की सूचना इग्लैण्ड पहुची तो वहा पूरा राष्ट्र दुखी हो गया।" लार्ड गौफ को पद से हटाने की तैयारी प्रारभ हो गई। पर इसी बीच 21 फरवरी को लार्ड गौफ ने गुजरात मे सिखो से दूसरी लडाई की। सिख बुरी तरह बिखर गये, रावलपिण्डी मे उन्होने आत्मसमर्पण किया और इस तरह खेल खत्म हो गया।

पजाब पर अधिकार

29 मार्च 1849 को विदेश सचिव सर हेनरी इलियट ने लाहौर में एक दरबार किया। यहा पर गवर्नर जनरल की ओर से एक घोषणा पढी गई जो अधोलिखित थी

'सिख जनता और उनके नेताओ ने अपनी ओर से स्पष्टतया वादा खिलाफी की है। उनके वार्षिक कर का कोई भी भाग कभी नही दिया गया और भारत सरकार की ओर से दिये गये ऋण भी उन्होने वापस नही किये। ब्रिटिश सरकार के जिस निमत्रण को उन्होने स्वय स्वीकार किया था उसके विरुद्ध वे हथियार लेकर खडे हो गये। शान्ति को ताक पर रख दिया गया। राज्य की सेवा कर रहे ब्रिटिश अधिकारियो को मार डाला गया, इसी तरह की अन्य सेवाओ में लगे लोगो को जेल मे बद कर दिया गया। अतत पूरा राज्य और पूरी सिख जनता पजाब के सरदारो के सहयोग पाकर, जिन्होने सधि पत्रो पर हस्ताक्षर किये थे, यहा तक कि रीजेन्सी के एक सदस्य तक ने हमारे विरुद्ध हथियार उठा लिया है और ब्रिटिश और उनकी शक्ति को समाप्त करने के लिए भयानक और रुधिरमय युद्ध छेड दिया है "

"सरकार की विजय की अब कोई इच्छा नही है, पर यह अपना कर्तव्य समझती है कि अपनी रक्षा का उपाय करे और उनकी भी जो उनके आदर्शो के पथ पर है।' और इसीलिए गवर्नर जनरल ने 'यह घोषित किया है कि पजाब का राज्य समाप्त किया जाता है।'[1]

जब घटनाएं स्वय अपनी कथा कहती हो तो घोषणा और ब्रिटिश कार्रवाई की आलोचना बेकार है। भैरोवाल की सधि की एक धारा में कहा गया था कि "प्रशासन चलाने और महाराजा दलीप सिंह के अल्पवयस्क काल में रक्षा के लिए" गवर्नर जनरल को विस्तृत अधिकार प्रदान किये जाते है जो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी भी किले पर अधिकार कर सकता है। 21 दिसबर 1846 का लार्ड हार्डिंज द्वारा घोषित रीजेन्सी की कौसिल रेजीडेट के अधीन पूर्णतया रखी गई जो किसी भी सदस्य को हटा और रख सकता था। 1847 मे रेजीडेट ने स्वय

1 लतीफ हिस्ट्री आफ द पजाब पृ० 572 73।

कहा, "सपूर्णता मे दरबार (रीजेसी की कौसिल) मुझे उतनी सहायता देता है जितने की अपेक्षा है।" इसके अतिरिक्त लाहौर मे ब्रिटिश सेनापति के पहुचने पर महाराजा न और सरदारो ने उदारतापूर्वक उसका स्वागत किया, विद्रोहियो के विरुद्ध लाहौर से सेना भेजी गई और दरबार न 12 तोपो को दागकर मुल्तान की विजय मनाई।[1]

इस तरह दलीप सिंह पूर्णतया ब्रिटिश नियत्रण म आ गया और लाहौर दरबार तथा पजाब सरकार पूर्णतया रेजीडेन्ट के नियत्रण मे आ गये। इन परिस्थितियो मे यदि कोई सहायक सरदार दरबार के विरुद्ध विद्रोह करता या यदि पजाब के किसी क्षेत्र म शाति भग होती तो गवनर जनरल का यह कत्तव्य था कि वह महाराजा की रक्षा करे और शाति की स्थापना कर। पर उसन इसका उल्टा किया। जब कही आपदा आती तो महाराजा को और परेशान किया जाता और उसके राज्य का भाग हडप लिया जाता।

दीवान मूलराज ने पहली बार विद्रोह नही किया। उसने और उसके पिता सावनमल ने लाहौर अधिकार की बार बार अवहेलना करते हुए मुल्तान पर पिछले 30 सालो से शासन किया था। यदि मूलराज ने पुन विद्रोह किया तो कोई आश्चर्य की बात नही थी। उसके साथ उपयुक्त व्यवहार होना चाहिए था।

यह भी उचित नही है कि शेर सिंह के विद्रोह म सम्मिलित होन को अत्यधिक महत्त्व दिया जाय। उसन अपनी इच्छा स ऐसा नहीं किया। मार्च 1848 म जब मुल्तान म विद्रोह प्रारभ हुआ तो सितबर तक शेर सिंह सही रास्त पर था। इसे रेजीडेन्ट ने स्वय स्वीकार किया। रेजीडेन्ट के सहायक एडवर्ड्स के अनुसार जब उसे मुल्तान म विद्रोह को दबान का भेजा गया तो उसन वहा उचित ढग से काय किया। और यदि वह अतत विद्रोह म सम्मिलित हो गया, तो ऐसा उसे अति कठोर नकारात्मक रवैये के कारण करना पडा जो विवाह प्रस्ताव के सबध म अपनाया गया। कैप्टन एबट का उसके पिता क प्रति आक्रामक रुख भी कम उत्तरदायी न था। पर रीजेन्सी के अन्य सदस्य स्वामिभक्त बन रहे। केवल 16 म से 5 न विद्रोह करने की मधि पत्र पर हस्ताक्षर किया। जब कि शेख इमामुद्दीन, सरदार झडा सिंह कनल भूप सिंह, सरदार फतह सिंह कनल बहादुर सिंह और कनल बुध सिंह जस लोगो ने ब्रिटिशो क प्रति विश्वस्तता बनाये रखी।

फिर मुल्तान का विद्रोह आकस्मिक था। मूलराज सतानहीन अस्वस्थ और अपनी प्रजा म अलोकप्रिय था। रेजीडेन्ट न स्वय स्वीकार किया कि "उसन लगभग सभी सेना बर्खास्त कर दी क्योंकि वह पदमुक्त होना चाहता था। उसके पास

1 गडा सिंह पूर्वोद्धृत।
2 रीजेन्सी का एक सदस्य।

विद्रोह के समय पाच या छ तोपें थी।' इन परिस्थितियो मे उससे विद्रोह करने की आशा नही की जाती थी। जिस व्यक्ति न ब्रिटिश अधिकारियो को छुरा मारा वह स्वय आशका से ग्रस्त था कि उसे उसके साथिया की तरह नौकरी से हटा दिया जायगा जिसके लिए उसन ब्रिटिशो को दोषी ठहराया और अपने व्यक्तिगत समस्या के आधार पर उसने अधिकारियो पर आक्रमण कर दिया। इस अवसर का असतुष्ट जनता न लाभ उठाया और विद्रोह कर दिया। यह एक हल्की समस्या थी जिसे तत्काल हल किया जा सकता था यदि समय पर घेरे वाली बदूको सहित सेना पहुच जाती। पर ऐसा करने की जगह पर यह बहाना बनाया गया कि मौसम की खराबी के कारण तुरत सना नही भेजी जा सकती। यह सेना मुल्तान के विद्रोह के 5 महीने ब द पहुची। इस बीच विद्राह की अग्नि दूर दूर तक फैल चुकी थी।

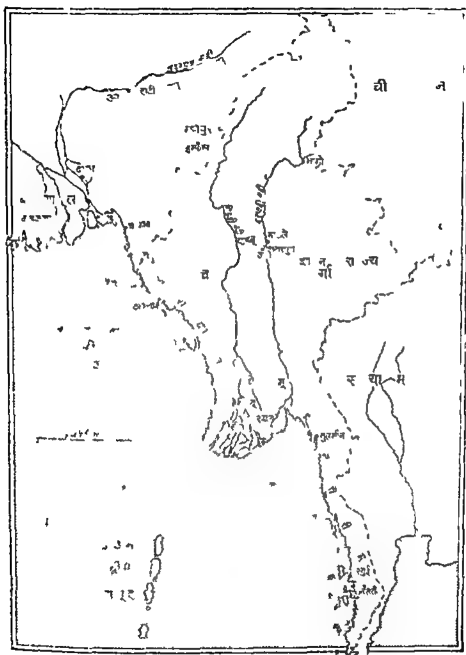
खराब मौसम का बहाना बनाये जाने के सबध म एडवड लेक ने क्यूरी को लिखा, "जहा तक मौसम का सबध है इस समय स बेहतर और आरामदायक मौसम हा ही नही सकता। रातें अति ठडी ह और दिन भी बुरे नही हैं।" 24 मई 1848 को हवट एडवड न स्पष्ट रूप से रेजीडेंट के राजनीतिक सहायक मेजर होड्सन को लिखा, 'आपन अपने पत्र मे आशा व्यक्त की है कि ब्रिटिश सरकार स्वय कारवाई करगी और गिरते हुए वश को सभालगी नही। दूसरे शब्दा म आप यह आशा करत हैं कि हम पजाब पर अधिकार करने का अवसर नही खोयेंग। इसम मैं आपसे सहमत नही हो सकता सधि सिख सरकार और जनता से की गई थी। इसे मुल्तान मे एक गुरखा सेना के षडयत्र के आधार पर या एक पदमुक्त सरदार के विद्राह के आधार पर या रानी मा के षडयत्र के आधार पर जिसमे उसके लडके की सरकार का कोई हाथ नही है, वापस नही लिया जायगा।"[1]

18 नवम्बर 1848 की गवनर जनरल की घोषणा मे ब्रिटिश षडयत्र की बातें निहित ह। 5 फरवरी 1849 को भी उसने कहा कि ब्रिटिश सेनाए पजाब म 'वहा के सरकार के शत्रु के रूप मे" प्रविष्ट नही हुइ जबकि रेजीडेण्ट को लिखे 3 अक्टूबर 1848 के अपने गुप्त पत्र मे उसने लिखा कि उसका विचार है कि "लाहौर का राज्य सभी आधारो पर ब्रिटिश सरकार से युद्धरत है।"

यदि सचमुच ब्रिटिशो की यह इच्छा थी तो पजाब पर अधिकार के घोषणा के तर्कों को तर्कहीन नही माना जाना चाहिए। घोषणा के अतगत यह दोषारोपण कि कर नही अदा किया गया या ऋण नही वापस किया गया, गलत था। सच तो यह था कि दरबार ने 23 फरवरी 1848 को 13,56 837 रु० का स्वण उन्हे दिया

1 गंडा सिंह पूर्वोद्धत पजाब पेपस 1849 प० 590, हटर, ड ब्लू० डब्लू० मार्क्विस आफ डलहौजी, पृ० 74।

2 इन्स पूर्वोद्धत, पृ० 262 पजाब पेपर्स 1848 पृ० 591।


ची न

प्रारंभ होता है, लाटों की फिर जीत होती है। इसी समय पुलिस इन्स्पेक्टर महिला को सूचना देता है कि उस महिला का वह भवन और भूमि जहां वह खड़ा है अब उनकी नहीं है। इसे पुलिस ने अपने शुल्क के एवज में ले लिया है। यदि यह मकान छोड़कर चली जायेगी तो उन्हें किराये के मूल्य का कुछ भाग पेंशन के रूप में दे दिया जायगा और इसके अतिरिक्त उस कमिश्नर के लिए उसे अपना उत्तम गले का हार देकर जाना चाहिए।"[1]

द्वितीय वर्मा का युद्ध

वर्मा का प्रथम युद्ध 1824-26 के बीच लड़ा गया था। इसी के परिणाम स्वरूप याण्डबू की सधि की गई और व्यापारिक सधि पर हस्ताक्षर किये गये जिसके अंतर्गत ब्रिटिश ने कुछ व्यापारिक अधिकार प्राप्त किये। बर्मा ने स्वयं अपनी ही कीमत पर आवा में ब्रिटिश रेजीडेंट रखा।

डलहौजी के काल तक आशातीत कठिनाइयों के अतिरिक्त इस दिशा में कुछ नयी बातें भी हुई। पूर्वी सागर में अमरिका और फ्रांस का आगमन और वर्मा में उनके प्रभाव और निमंत्रण के आ जाने की सम्भावना ने ब्रिटिश हित को उस दिशा में खतरा पैदा कर दिया और डलहौजी ने इस कठिनाई पर काबू पाने के लिए इंतजार किया। इसके अतिरिक्त जैसी कि आशा थी याण्डबू की सधि के बाद रंगून में बहुत से व्यापारी बस गये थे जिन्होंने बहुत लाभ कमाया और फिर भी बुरे व्यवहार की शिकायत तो की ही साथ ही बर्मा सरकार द्वारा अधिक कर वसूल करने के विषय में भी कहा। बर्मा वाले दूसरी ओर इन व्यापारियों के अत्याचार पूर्ण नीति और कर चोरी की शिकायत करते थे। 1826 के समझौते की शर्तें चूँकि बहुत ही अस्पष्ट थी इस कारण यहां अव्यवस्था फैली और हर दल ने अपने हित साधन में शर्तों में तोड़ मरोड़ किया।

इसके अतिरिक्त आवा के ब्रिटिश रेजीडेंट को पहले ही वापस बुला लिया गया था और इस समय वर्मा से ब्रिटिश सम्बन्ध तेनसरीम के ब्रिटिश कमिश्नर के माध्यम से स्थापित था। इस सम्बन्ध में मतभेद था कि ब्रिटिश रेजीडेंट को हटा दिया गया है या उसे वापस बुला लिया गया है। पर यह स्पष्ट है कि वर्मा के राजा थारवदी ने जिन्होंने अपने भाई राजाबागीदा को पद से हटाकर गद्दी छीनी थी, याण्डबू की सधि को स्वीकार नहीं किया। बर्मा के संविधान के अन्तर्गत इस तरह के सभी समझौते और सधियां नये राजा के पदारूढ़ होने पर समाप्त हो जाती थी जब तक कि नया शासक उन्हें स्वीकार न कर ले। दूसरे राजा ने यह कहा कि यह उसके राजसी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है कि वह रेजीडेंट से सम्पर्क करे। उसने

1 लुडलो ब्रिटिश इण्डिया भाग 2 पृ० 166।

बर्मा मे एक ब्रिटिश राजदूत के नियुक्ति की माग की जो वहा ब्रिटिश हितो को देखे और सम्बन्ध निर्वाह करे।

पर डलहौजी को दुलभ क्षण भी देखने को मिला जब रगून के कुछ व्यापारियो ने उसके समक्ष एक विस्तत प्राथना पत्र पेश किया और बर्मी अधिकारियो की ज्यादती की इसमे शिकायत की। अपने प्राथना पत्र म उन्होने शेप्पाड और लेविस का उदाहरण प्रस्तुत किया। जिन्हे रगून सरकार ने आर्थिक दण्ड का भागी बनाया था। प्रथम के ऊपर यह आरोप था कि उसने चटगाव के एक सैनिक को फेक दिया है और दूसरे के ऊपर यह आरोप था कि उसने उनके एक सैनिक को मार डाला है। इस प्राथना पत्र को पाकर डलहौजी ने बिना छानबीन किये यह घोषित किया कि याडबू के सधि की अवहेलना हुई है और बर्मी सरकार को रगून के गवनर की ओर से क्षतिपूर्ति करना चाहिए और बिना समय बर्बाद किये कमोडोर लैम्बट को सुलह करने के लिए बर्मा भेजा गया। आश्चय यह था कि उसके साथ फाक्स, प्रासपेरीन और तेनसरीम नामक तीन युद्ध की जहाजे भी उसके साथ थी। लैम्बट से यह कहा गया था कि वह रगून के गवनर का खुलेआम अपमान किये जाने की माग करे और किये गये अपमान के क्षतिपूर्ति के लिए 9,000 रु० की भी माग करे जिसे कैप्टन शेप्पाड और लेविस ने झेला था।

25 नवम्बर 1851 को लैम्बाट रगून मे उतरा और तुरत आवा पत्र भेजा और तीन सप्ताह के भीतर इसका उत्तर मागा। बर्मा का राजा इन घटनाओ को सुनकर चौक पडा और तुरत अपने दरबार से एक अधिकारी को इस सम्बन्ध मे बात करने के लिए भेजा। उसने अपने उत्तर म रगून के गवनर की वापसी की बात मान ली और अन्याय की छानबीन करने को कहा और आवश्यकतानुसार क्षतिपूर्ति करने को कहा।

रगून मे पुराने गवनर को हटाकर एक नया गवनर रखा गया जिससे मामले की छानबीन करने को कहा गया। कायभार ग्रहण करने के बाद गवनर ने लैम्बट से उसकी इच्छानुसार कभी भी मिलना स्वीकार किया। पर डलहौजी की महत्वाकाक्षा और घमड मे डूबा लैम्बट ने नवीन स्थिति मे भी समझौता करना अस्वीकार कर दिया। गवनर से सुलह के लिए बातचीत की जगह पर उसने कुछ जल सेना अधिकारियो का एक शिष्टमडल उसके पास भेजा। जब ये अधिकारी गवनर निवास पर पहुचे तो वह सो रहा था जिसके कारण उसके जागने तक उन्हे प्रतीक्षा करनी पडी। जागने पर गवनर ने पाया कि वे अधिकारी उसके निवास क्षेत्र मे सवारी करते हुए आये और इस तरह उसे अपमानित किया। इसके अतिरिक्त गवनर के अनुसार ये सभी मदिरा पान किये हुए थे तथा उनका उसके आदमियो के प्रति व्यवहार भी बडा रुखा था। इसलिए उसने अनुवादक को छोडकर सभी से मिलने से इनकार कर दिया। अधिकारियो के लिए इसे बर्दाश्त करना कठिन हो

गया। और वे क्रोध से तडपते हुए वापस लौट गये।

अपने अधिकारियो का विवरण सुन लैम्बट ने तुरन्त सधि की वार्ता तोड दी। घेरेबदी की घोषणा कर दी गई और गवनर से तुरन्त क्षमा याचना की माग की गई और क्षतिपूर्ति करने के लिए कहा गया। इसके अतिरिक्त उसने वर्मा की सरकारी जहाज 'येलोशिप' पर अधिकार कर लिया, रस्सी से बाधकर समुद्र मे जहाज को खूब हिलाया-डुलाया और बर्मा के जल क्षेत्र का भी उल्लघन किया। जब रगून का गवनर लैम्बट के इस व्यवहार से भी उत्तेजित नही हुआ, तो दूसरे दिन प्राय उसने और भी उत्तेजित करने वाला कदम उठाया। उसने ब्रिटिश जहाजी बेडे का 'येलोशिप' सहित चले जाने को कहा। यह बर्मियो के लिए बर्दाश्त करना कठिन था। इस कारण उन्होने अपनी तोपे चला दी जिसका उत्तर लैम्बट ने अपने तोपो से दिया। यह द्वितीय बर्मा युद्ध का प्रारम्भ था।

जब यह समाचार डलहौजी के पास पहुचा तो उसने बर्मा के राजा के पास चेतावनी भेजी। यह चेतावनी 1 अप्रैल 1852 तक का मौका दिये हुए थी जिस समय तक रगून के गवनर के काय के लिए क्षमा-याचना की माग की गई तथा क्षतिपूर्ति के रूप मे 1 लाख पौण्ड की माग की गई। पर अतिम तिथि की समाप्ति के पूव ही डलहौजी ने अपनी व्यवस्था पूरी कर ली और सेनापति गाडविन के नेतत्व मे एक सेना बर्मा भेज दी। इस सभी से बर्मी परेशान हो गय और वे किसी भी दिशा मे कारवाई नही कर पाये। 2 अप्रैल को गाडविन ने बर्मियो के विरुद्ध आक्रमण प्रारभ कर दिया। मतबाम पर अधिकार हो गया और कुछ समय बाद रगून भी हाथो से निकल गया। बेसीन छीन लिया गया और इससे पेगू क्षेत्र के सामुद्रिक इलाके मे ब्रिटिशो का अधिकार हो गया। गाडविन और आगे बढ़ा। 9 अक्टूबर को प्रोम पर अधिकार कर लिया। वैसे तो कुछ ब्रिटिश अधिकारी आवा तक आगे बढने के पक्ष में थे पर गाडविन ने ऐसा नही किया। एक ब्रिटिश ससद सदस्य रिचड काब्डन ने कहा, "प्रत्येक चीज खेल वस्तु की भाति अधिकार मे आ गई।" बर्मियो को "हमारे स्टीमरो, राकेटो, बमो और तोपो से पेश पाना सरल न था क्योकि उनके पास वह था ही नही।"[1]

दिसबर 1852 मे डलहौजी ने पेगू पर अधिकार की घोषणा कर दी। इस आकषक पारितोषिक को प्राप्त करने के बाद उसने बर्मा से सधि करने मे तनिक भी रुचि न दिखाई। वार्ता कुछ काल तक चलती रही पर फिर यह टूट गई और अतत स्वाभाविक रूप से शाति की स्थापना हो गई।

द्वितीय बर्मी युद्ध म ब्रिटिश लाभो की महत्ता स्वीकार करने योग्य है। पगू पर अधिकार ने ब्रिटिशो की सामुद्रिक क्षेत्र परिधि को बढा दिया और स्वतत

1 रहीम एम० ए० लाड डलहोजी'ज एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० 107।

बर्मा को समुद्र तक पहुचने पर अकुश लगा दिया। इसके फलस्वरूप युरोपीय या अमेरिकी शक्तियो को यहा रुचि लेने म कठिनाई हुई। उसके अतिरिक्त इस विजय के फलस्वरूप चावल और सागौन के व्यापार पर ब्रिटिशो का अधिकार हो गया। और अतत पेगू ने ब्रिटिश साम्राज्य मे एक धनी प्रात की अभिवृद्धि कर दी और इस तरह उनके साघनो मे भी वृद्धि हो गई।[1]

समानता या तक के आधार पर डलहौजी के द्वितीय बर्मा युद्ध का कोई औचित्य नही है। इसके पीछे उसका साम्राज्यवादी दृष्टिकोण ही काय कर रहा था। आनल्ड के अनुसार न तो इसकी "उत्पत्ति न्यायोचित थी और न समानता के आधार पर ही इसकी कोई महत्ता थी।"[2] सचमुच आश्चयजनक था कि डलहौजी ने एक कमोडोर को वर्मा भेजा जबकि वह शाति चाहता था। पर उसका मुख्य उद्देश्य बर्मा मे कोई और विदेशी प्रभाव न वढने देना था। और यह वैसे ही सभव था जसे किया गया। काय पूर्ति के लिए केवल बहाना चाहिए था।

राज्य हडपने का सिद्धान्त

चाहे युद्ध हो या शाति, डलहौजी की भारतीय गवनर जनरली के काल मे अधिकार की नीति का सबसे महत्त्वपूण स्थान था। इस नीति का प्रयोग पहले ही किया गया था पर उसके काल मे यह पराकाष्ठा पर पहुच गया। इसके कारण भी थे। इग्लैड मे औद्योगिक क्राति हो रही थी और इसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अधिक से-अधिक कच्चे माल की आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त अपने औद्योगिक उत्पादन के क्याय बाजारा की भी आवश्यकता थी। और चूकि कई अन्य युरोपीय देश स्वार्थ मे थे, इसका सबसे अच्छा हल यही था कि जिन क्षेत्रो पर अधिकार किया जा चुका है उन्ह सगठित किया जाय और वहा प्रभाव विस्तार किया जाय। भारत मे भी स्थिति बदल चुकी थी। ब्रिटिश शक्तिशाली तो थे ही उनकी महान् शक्तिया मे गिनती होती थी और इसी कारण अब इस देश पर राजाओ के माध्यम से शासन करने की आवश्यकता नही थी। भारत के राजाओ की शासन-पद्धति भी ब्रिटिशो से मेल नही खाती थी। इन दोना के बीच अ मजात विरोधाभास था जो ब्रिटिशो के लिए कठिनाई का कारण बना हुआ था। इस समस्या का डलहौजी की दृष्टि मे हल यही था कि इन छोटे छोटे राज्या की समाप्ति कर दी जाये। इसे राज्य हडपने के सिद्धान के अन्तगत आराम से किया जा सकता था।

1 देखें हटर डब्लू० डब्लू०मार्क्विस आफ डलहौजी (रूलस आफ इण्डिया सारीज) इडियन रीप्रिंट 1961, प० 82 83।
2. आनल्ड एडविन मार्क्विस आफ डलहौजीज एडमिनिस्ट्रेशन आफ ब्रिटिश इडिया भाग [illegible] पृ० 273।

राज्य हडपने का सिद्धात नया नही था जो डलहौजी के काल मे प्रथम बार प्रयोग म आया। 1834 म कोर्ट आफ डाइरक्टस ने पहले ही घोषणा कर रखी थी कि सन्तान न होने पर गोद लेने की आज्ञा "अपवाद ही होनी चाहिए, नियम नहीं। इसे कम ही स्वीकार किया जाना चाहिए। विशेष परिस्थितियों मे ही इसका अनुमोदन होना चाहिए।" 1841 म यह पुन प्रस्तावित हुआ कि, "किसी क्षेत्र या *राजस्व की भी रक्षा की जानी चाहिए।" डलहौजी के काल ही मे यह व्यवस्था* पराकाष्ठा पर पहुची।

राज्य हडपन का सिद्धात पहले भी और डलहौजी के काल म भी तीन मूलभूत सिद्धातो पर आधारित था। प्रथम, कि ब्रिटिश भारत मे सबसे शक्तिशाली थे, दूसरे, कि गोद लिए पुत्र ब्रिटिशो से आज्ञा प्राप्त कर अपन राज्य पर अधिकार रख सकते थे और तीसरे, ब्रिटिश इस अधिकार पर रोक लगा सकते थे क्योंकि उनमे यह करने की शक्ति और क्षमता थी।

आलोचना के तौर पर कहा जा सकता है कि जहा तक ब्रिटिश प्रभुसत्ता के प्रथम सिद्धात का प्रश्न है इस सिद्धात की न्यायोचितता केवल यह थी कि ब्रिटिश सवशक्तिमान थे इस कारण शक्ति के आधार पर उनकी महत्ता थी तक के आधार पर नही। भारत मे वे सब अधिकार जिसका प्रयोग ब्रिटिश करते थे, वे इसे विजय के अधिकार से या सधि के आधार पर करते थे। और एक राजनीति शासन का छात्र यह जानता है कि इनमे से कोई भी विधि सप्रभुसत्ता का अधिकार नही प्रस्तुत करती। 1813 तक अग्रेजी कपनी की मुहर पर गवनर जनरल अपने को भारत के सम्राट का नौकर ही कहता था। 1835 तक कपनी के सिक्के भारतीय शासन की प्रधानता स्वीकार करते थे। इसी वष रुपय पर अग्रेजी सम्राट का चित्र बनवाया गया। ऐसा भी नही था कि मुगल सप्रभुता ब्रिटिशो के हाथ म चली गई थी। मुगल शक्ति अरस स नही रह गयी थी और ब्रिटिश अपने स्वाथ की सिद्धि को छोडकर कभी उ हे उस रूप म स्वीकार भी नही करते थे। पर भारत छोटे-छोटे राज्यो का देश था जिनम से प्रत्येक के साथ ब्रिटिशो के अलग-अलग सम्ब ध थे। इनमे से *कुछ राज्य तो मुगलो की तरह ही अपने को शक्तिशाली मानते थे। अथवा उस* समय ब्रिटिशो की भाति अपने को मानते थे। इस तरह स्पष्टतया भारत मे ब्रिटिश सवशक्तिमान थे, ऐसा नही था।

*पुन जहा तक दूसरे सिद्धा त का प्रश्न है, यह उतना ही तकपूण और न्यायो-*चित था जितना कि प्रथम। इस सिद्धा त के अतगत गोद लिये लडको के शासन मे आश्रित राज्य ब्रिटिशो की अनुमति बिना सम्मिलित नही हो सकत थ। इसमे आश्रित राज्य का अथ ही अव्यवस्था का सूचक था। इस सिद्धान्त को लागू करने के लिए 'स्वतन्त्र', 'आश्रित' और 'सहायक' राज्यो म अतर माना गया और डलहौजी की नीति आश्रित राज्यो पर ही लागू की गयी। पर यहा पर सभी बातो म भ्रम

था। पर तत्कालीन परिस्थितियो मे भारत मे यूरोप के स्पेन या पुतगाल या इग्लैण्ड की तरह स्वतन्न राज्य नही थे। आर इस तरह 'सहायक' और 'आश्रित' राज्या एव 'सहायक' और 'परतन्न' राज्यो मे अतर और कठिनाइया पैदा कर देता था। उदाहरणाथ करौली का पुराना राजपूत राज्य डलहौजी न अपहृत कर लिया। डाइरेक्टरो ने उसे 'सरक्षित मित्र' बताया जबकि डलहौजी ने इसे 'सहायक राज्य' कहा और अपने हडप सिद्धा त के अतगत ले लिया। जब 'परतन्न' और 'सहायक' शब्दा मे विवाद उठता तो डलहौजी अतर स्पष्ट करने के लिए कहता कि यह नीति उन राज्यो पर लागू होती है जो "मूलत ब्रिटिश सरकार ने उत्पन्न किये हैं या वे राज्य जिन्हे अपनी पूव स्थिति के आधार पर सरकार से इस तरह जोडा है जिससे सरकार ने उत्तराधिकार के लिए गोद लेने हेतु सवशक्तिमान अधिकार प्राप्त किया है।" पर इसमे 'पूव स्थिति' शब्द का अथ स्पष्ट नही ह। यह कहना तो गलत ही है कि ब्रिटिशो ने भारत मे किसी राज्य की स्थापना की। इसमे सदेह नही कि ब्रिटिशा ने बिना युद्ध या युद्ध के आधार पर कुछ राज्यो की स्थिति स्वीकार की। पर नवीन स्थिति मे तो ऐसी नवीन बातें सामन आती जैसेकि किसी अधे को आखें मिल जाने पर नवीन विश्व के दशन होते।

इसके अतिरिक्त दूसरे सिद्धा त से जुडा जो सिद्धान्त पुत्र के गोद लेन की आज्ञा से जुडा था वह भी सही नही था और इस कारण अ यायपूण था। हिन्दुआ म पुत्र को गोद सपत्ति उत्तराधिकार के लिए ही नही बल्कि आध्यात्मिक लाभ के लिए भी होता है जो मृत्यु के उपरान्त गोद लेनेवाले को प्राप्त होता है। एव हिन्दू जिसके पास पुत्र न हो उसके लिए गोद लेना आध्यात्मिक और धार्मिक आवश्यकता है। इस तरह इसकी केवल राजनीतिक उपयोगिता ही नहीं है। इसलिए इन परिस्थितियो म यह समझना कठिन है कि कैसे और किन परिस्थितियो मे गाद लेन के अधिकार के लिए आज्ञा देने का काय कपनी ने प्राप्त कर लिया।

इसके अतिरिक्त तीसरा सिद्धा त कि कपनी गोद लेन पर रोक लगा सकती थी, यह बात भी इतिहास या तक परीक्षण पर खरी नही उतरती। मुगलो के पास यह अधिकार था। पर हिन्दू समाज म विचित्रता के हाते हुए भी वे राजकुमारा का गोद लेने से नही रोकते थे। इसलिए स्पष्ट रूप से यह अधिकार उन्हें कभी मुस्लिम विधि के अतगत प्राप्त हुआ होगा, पर हिदुआ मे इसकी मान्यता नही थी। प्रारभ मे ब्रिटिश भी मुगलो की तरह आग बढे। 1831 मे एक विशेष परिवतन उस समय हुआ जब बम्बई की सरकार ने परिस्थिति के अनुसार इस तरह के अधिकार को स्वीकार नही किया। यही नीति बाद मे डाइरक्टरो ने 1834 के प्रेषण मे स्वीकार कर लिया। इसकी चचा ऊपर आ चुकी है। अब यह निश्चित रूप मे विश्वास किया जाने लगा कि गोद लेने की स्वीकृति के साथ अस्वीकृति का प्रश्न भी जुडा है। यह पालतू नीति धीरे धीरे शक्ति प्राप्त करने लगी और डलहौजी के काल म दृढ

पराकाष्ठा को पहुच गयी। तभी उसने सतारा, जैतपुर, सभलपुर, भगत, उदयपुर, झासी और नागपुर पर अधिकार किया।

सतारा—यह राज्य मद्रास, बम्बई और कलकत्ता के मुख्य आवागमन माग पर पडता था। शिवाजी के उत्तराधिकारियो का केन्द्र होने के कारण मराठे इस स्थान को अधिक आदर देते थे। 1848 मे सतारा के राजा शाहजी महाराज की मृत्यु हो गयी। मृत्यु के पूव उसने वेंकटराव नामक लडके को उत्तराधिकार के लिए गोद ले लिया। डलहौजी ने राज्य को 'ब्रिटिश द्वारा बनाय' जान के कारण 'परतत्र' मानकर गोद को अवध घोषित कर दिया। उसका कहना था कि सरकार से कोई अनुमति नही ली गयी। डाइरेक्टरा ने इस सस्तुति को स्वीकार कर लिया और राज्य पर अधिकार कर लिया गया।

जहा तक इस कदम के न्यायोचित होने का प्रश्न है, इस 'ब्रिटिशो द्वारा बनाना' स्वीकार करना या 'परतत्र राज्य' मानना दोना तक पर खरा नही उतरता। प्रथम बात इसलिए गलत थी कि यह राज्य ब्रिटिशा के आने से बहुत पहले से था। सतारा का राजा पशवाआ का शासक रह चुका था। वैसे बाद म पेशवाओ न उसके अधिकार छीन लिय और उसकी स्थिति दब गयी। पर अपनी कमजोरी के बावजूद मराठो का आदर उसे मिलता रहा जो उसे महान शिवाजी का उत्तराधिकारी मानते थे और अपने भावनाओ को उसके साथ जोडते थे। मराठा को सतुष्ट करने के ही लिए 1819 मे डलहौजी ने सतारा के शासक प्रताप सिंह से एक सधि की। इसे 1839 म पद से हटा दिया गया और उसका उत्तराधिकारी शाह जी महाराज हुआ।

न्यायोचित रीति से इसे परतत्र' राज्य भी नही माना जा सकता था। 1818 मे ब्रिटिश सरकार ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि "सतारा का राजा जो बाजीराव के यहा कैद है उसे छोड दिया जायगा और उसे एक स्वतत्र सप्रभुता का मालिक बनाया जायगा।' यह विशेष रूप से कहा गया कि 1819 म जो सधि ब्रिटिशा और राजा के बीच हुई थी वह दो समान लोगा के बीच थी और दोना के बीच सदा के लिए चलेगी। 'सदा चलने वाली' और साथ ही 'स्वतत्र सप्रभुता' शब्दो का प्रस्तुतीकरण ही डलहौजी के सिद्धा त को धूलधसरित कर देता है। सतारा के अपहरण का कोई औचित्य नही था इसके अतिरिक्त कि यह डलहौजी क साम्राज्य-वादी स्वाथ की पूर्ति करता था। आनल्ड ने अपने तर्कों की समाप्ति पर कहा है कि डलहौजी के लिए सतारा 'एक सपन पर अनियमित पारितोषिक था।[1]

बरार—बरार जहा की सपन कपास पैदा करनेवाली भूमि मनचेस्टर की औद्योगिक भूख को शात कर सकती थी और जो निजाम हैदराबाद के क्षेत्र म पडता

---

1 आनल्ड पूर्वोद्धत भाग 2 पृ॰ 285।

था, ब्रिटिश की दृष्टि में अत्यधिक लालच का केन्द्र था। 1853 में इसका अपहरण इसलिए कर लिया गया क्योंकि निजाम ने अपनी रक्षा हेतु नियुक्त ब्रिटिश सेना के व्यय के लिए जो ऋण लिया था वह वापस नहीं किया जा सका था। डलहौजी का यह कार्य वैसा ही था जैसे उसके अन्य साम्राज्यवादी कार्य।

इस विषय पर विस्तृत विचार की आवश्यकता नहीं है। 1800 की संधि के अंतर्गत निजाम के पास पहले से ही सहायक सेना थी। और अब इसका कोई औचित्य नहीं था कि पहले से उपस्थित सेना के अतिरिक्त अपनी सुरक्षा के लिए वह एक और ब्रिटिश सेना रखे। यह सैन्य दल भी निजाम को अपने व्यय पर सदा के लिए रखना था। प्रारंभ में इस नीति के माध्यम से सहायता की आवश्यकता भी रही हो पर अब वह बिल्कुल समाप्त हो गया था। ऐसी कोई वैधानिकता भी नहीं थी जो उसे यह कार्य करने को बाध्य करती। रेजीडेन्ट लो से व्यक्तिगत बातचीत में 1[illegible] मार्च 1853 को निजाम ने यह पूछा कि चूंकि उसके यहां सेना पेशवा का विरोध करने के लिए संगठित की गयी थी और अब पेशवा पराजित हो चुका है, फिर "यह सेना युद्ध के बाद भी क्यों रुकी हुई है?" रेजीडेन्ट का इस प्रश्न का उत्तर सरल और रुचिकर था। उसने निजाम से पूछा कि वह क्या 36 वर्ष पूर्व की बात के संदर्भ में उससे प्रश्न पूछ रहा है और विशेषकर 'जब मैं भारत के किसी भी भाग में उस समय नहीं था?" निजाम को डलहौजी के 6 जून 1851 के पत्र की याद दिलायी गयी जिसमें ब्रिटिश सरकार की ओर से कहा गया था कि "उसका विरोध मोल लेना खतरनाक है" और "उसका विरोध तुम्हें उसकी इच्छानुसार तबाह कर देगा।"[1] निजाम की कायरता ने ही उसे इस कष्ट की ओर ढकेला। वह व्यय नहीं दे सका, उसका ऋण बढ़कर 7,80,000 पौण्ड हो गया और फिर उससे एक नयी सेना आत्मरक्षार्थ और ऋण के बदले अपने व्यय पर रखने को कहा जाने लगा।

निजाम के लिए ब्रिटिश मांग मानने के अतिरिक्त अन्य कोई सुरक्षित मार्ग नहीं था। 1853 में एक नया समझौता हुआ जो अंतकपूर्ण रीति से संधि कहा गया। अंतकपूर्ण इसलिए कि निजाम ने इसपर हस्ताक्षर दबाव में किया। नयी संधि के अंतर्गत निजाम को बरार का राज्य ब्रिटिशों को प्रदान करना था। इसकी वार्षिक आय 50 लाख रुपये थी। संधि की शर्तें थीं कि इसके राजस्व से ही ऋण की अदायगी की जायगी, ब्रिटिश सेना का वेतन इसी से दिया जायगा और यदि ब्रिटिशों के निरीक्षण में इसके बाद भी धन बचेगा तो उसे निजाम के खजाने में जमा कर दिया जायेगा। इस तरह उस निजाम के साथ यह व्यवहार ईस्ट इंडिया कंपनी ने किया जो उनके प्रति अति विश्वस्त था।

1 रहीम एम० ए० पूर्वोद्धृत पृ० 183 189।

झांसी—बरार पर अधिकार हड़प के सिद्धान्त के अंतर्गत नहीं आता था। पर झांसी आता था। झांसी का क्षेत्र पेशवा द्वारा 1817 में अंग्रेजी कम्पनी को अर्पित कर दिया गया था। हेस्टिंग्स ने इसके बाद झांसी की गद्दी पर राव रामचंद्र राव को बैठाया और उसके साथ एक संधि की। संधि की दूसरी धारा के अंतर्गत उसे अनवरत उत्तराधिकार का अधिकार प्रदान किया गया। प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी या नामित उत्तराधिकारी को उसका राज्य प्राप्त हो सकता था।

राव रामचंद्र राव ने 1835 तक शासन किया और उसके बाद उसकी निःसंतान मृत्यु हो गयी। उसने एक बच्चे को गोद लिया, पर ब्रिटिशों ने उसे स्वीकृति नहीं प्रदान की। ब्रिटिश मृत्यु प्राप्त राजा के चाचा रघुनाथराव को वहां का उत्तराधिकारी मानते थे। 1838 तक रघुनाथराव शासन करके मर गया जिसके बाद उसका भाई गंगाधर राव उत्तराधिकारी हुआ। वह 1853 में मर गया। पर मृत्यु से पूर्व उसने आनंदराव को गोद ले लिया और रानी लक्ष्मीबाई को उसका संरक्षण प्रदान कर दिया। नियमानुसार उत्तराधिकार का समारोह हुआ पर ब्रिटिशों को इसकी सूचना बाद में भेजी गयी।

पर बिना उचित छानबीन और विचार किये डलहौजी ने राज्य को अपहृत घोषित कर दिया। उसने तर्क दिया कि "झांसी राज्य की परतंत्रता के कारण इसमें कोई झगड़ा नहीं है।" स्पष्टतया उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि डलहौजी ने इस कारवाई में न तो 1817 के संधि की दूसरी धारा पर ही विचार किया और न ही 1817 व 1853 के बीच आये उत्तराधिकार की घटनाओं को ही मद्दे-नजर रखा। पोलिटिकल एजेण्ट मैलकाम के अनुसार "लक्ष्मीबाई का चरित्र श्रेष्ठ है और झांसी में प्रत्येक व्यक्ति उसका आदर करता है।"[1] झांसी 1857 के विद्रोह के अवसर पर तूफानी केन्द्र रहा।

नागपुर—नागपुर भी सतारा की तरह मद्रास, बम्बई और कलकत्ता के आवागमन-पथ में पड़ता था। कपास उत्पन्न करनेवाले उर्वरा क्षेत्र बरार पर ब्रिटिशों ने पहले ही अधिकार कर लिया था। पर यह एक ऐसा राज्य था जिसके लिये जाने के लिए कोई मार्ग नहीं था। नागपुर से होकर ही मार्ग हो सकता था इसलिए इस क्षेत्र में रुचि का जागरण हुआ।

नागपुर का शासक रघुजी 1853 में निःसंतान मर गया। उसने उत्तराधिकारी बनाने के लिए किसी को गोद भी नहीं लिया। पर अपनी मृत्यु से पूर्व उसने ब्रिटिशों से इसलिए आज्ञा प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की थी जिससे कि उसे ब्रिटिश बाद में अस्वीकार न कर सकें। अनुमति की तो बात ही नहीं इस विषय पर विचार करने में तबतक की देर कर दी गई जबतक कि उसकी मृत्यु नहीं हो गई। उसके

---

1 रहीम एम० ए० पूर्वोद्धृत पृ० 213।

राज्य का भविष्य क्या होगा यह जाने बिना ही वह चल बसा। पर मृत्यु शय्या पर जब वह था तभी उसने रानी को एक लडका गोद लेन के लिए कहा। उसने इस स्थान के लिए अपने सगोत्री यशवन्त राव को चुना। इसने उसके चिता की अग्नि भी प्रज्वल्लित की।

अब विधवाओं द्वारा पुत्र गोद लेने के प्रथा की भी कमी नही थी। हिन्दू विधि म एक विधवा को ऐसा करने की आज्ञा थी। ब्रिटिशो न भी ऐस कई अवसरा पर अनुमति प्रदान की थी। जनकोजी सिंधिया की विधवा न 1836 मे एक पुत्र को गोद लिया। उसी तरह 1841 म किशनगढ की विधवा न भी गोद लिया था और ब्रिटिशो ने इस स्वीकृति प्रदान की थी।

पर हमारे समझ मे नही आता कि नागपुर के सबध मे किस कारण डलहौजी ने इसे स्वीकृति नही प्रदान की। रघुजी की विधवा ने यशवन्तराव को नियमत गोद लिया। वैसे दरबार म शोक के कारण आवश्यक समारोह कुछ समय तक के लिए स्थगित कर दिये गय। इसके अतिरिक्त यह भी आशा थी कि इस बीच ब्रिटिशो से अनुमति भी प्राप्त हो जायगी।

शोक सतप्तता समाप्त होने पर रानी ने रेजीडेन्ट स आवश्यक समारोह करने की अनुमति मागी। पर चूकि डलहौजी इसे स्वीकार की मन स्थिति म नही था इसलिए उसन घोषणा की, "राजा की मत्यु हो गई और उसने जानबूझकर किसी को गोद नही लिया। उसकी विधवा न उत्तराधिकारी के लिए किसी को गोद नही लिया। ब्रिटिश सरकार ने जिस राज्य को 1818 म राजा और उसके उत्तराधिकारियो का प्रदान किया था। राजा के नि सतान मरन पर ब्रिटिशो के हाथ मे वापस आ गया है। न्याय परपरा और पूव उदाहरण सरकार को यह अधिकार प्रदान करत हैं कि वह जा उचित समझे करे।" राजा के बार बार निवेदन और विधवा की प्राथना को गुप्त रखा गया। बल्कि इसके स्थान पर दोनों को राज्य बेहतर शासन के लिए ब्रिटिशो को सौपने के लिए बुद्धिमान कहा गया। रेजीडेंट दुर्भाग्यशाली उत्तराधिकारियो के विरुद्ध पिल पडा, राज्य के खजाने को सील कर दिया। यहा तक कि राज्य के भण्डार तक पर नियत्रण कर लिया गया। राज्य को अपहृत घोषित कर दिया गया।[1]

डलहौजी का तक इस तरह नतिकता और सोच विचार पर आधारित नही था। प्रथम तो गोद लेन के लिए बार बार प्राथना की गई थी और दूसरे, गाद लिये बिना भी पूव और पश्चिम के नियमा के आधार पर यशवतराव वैधानिक उत्तरा-

1 और विस्तार के लिए दख, ली वानर द लाइफ आफ मार्क्विस आफ डलहौजी (दो भागों म) प्रसाद एस० एम० परामाउन्ट्सी अडर स्लौजी रहीम एम ए० लाड डलहौजीज एडमिनिस्ट्रेशन आफ द काक्ड एण्ड अनेक्सड स्टटम प० 223 24।

धिकारी था। यहा तक कि ली वानर जो लाड डलहौजी का पक्षधर था डलहौजी की आलाचना किये बिना नही रह सका ।[1]

आग्ल-अवध सबध—अति साधन सम्पन्न और उवरा क्षेत्र अवध, कम्पनी के शासन स्थापना के बाद युद्ध की दृष्टि स तो महत्वपूण नही था, पर ब्रिटिशो की गिद्ध दृष्टि इस ओर थी। इस राज्य से सम्बन्ध स्थापित होने के प्रारम्भ से ही ब्रिटिश अपनी पकड धीरे धीरे निश्चित रूप से यहा मजबूत करने के चक्कर म थे। प्रत्यक नवाब की मत्यु का लाभ प्राप्त कर अपने खास व्यक्तियो को गद्दी दिला कर और उनसे पर्याप्त इनाम प्राप्त कर अन्तत डलहौजी के काल म 1856 म इसे इन्होंने हडपु लिया। राज्य हडपने के काल तक का अवध का पूव इतिहास ब्रिटिश धूतता की रुचिकर गाथा है जिसस पता चलता है कि कमजोर और सीधे को आक्रामक ढग से कैसे तग किया जा सकता ह।

1773 म प्रथम बार नवाब अवध ने रोहिलखड पर विजय प्राप्त करन के लिए सहायता मागी। इसके लिए युद्ध व्यय का वहन करने को वह तैयार हुआ और 50 लाख रुपय अलग से देने को। अनियमित ढग से दी गई यह आर्थिक सहायता थोडे ही काल मे ब्रिटिशा की एक नियमित नीति बन गई। सधियो पर हस्ताक्षर हुए और अवध की आतरिक और वाह्य सुरक्षा के लिए पर्याप्त धन के बदले एक नियमित सेना नियुक्त कर दी गई। इस तरह आतरिक कठिनाइयो और बाह्य आक्रमणा की समस्या मे मुक्त हा नवाब अपनी जनता के प्रति कत्तव्यो के प्रति असावधान और अनुत्तरदायी हो गय। उसकी फिजूलखर्ची बढ गई और उसकी आर्थिक सहायता की नीति न ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि कम्पनी को दिया जाने वाला धन बकाया रहन लगा। वारेन हेस्टिंग्स ने रुपया के लिए नवाब पर दवाब डाला और उसे बाध्य किया कि वह ब्रिटिशा की सहायता से फैजाबाद मे मे रहने वाली अपनी मा और आजी से धन की वसूली करे। ब्रिटिश सेना इन महिलाओ के निवास पर भेजी गई और 'उनकी सेना म हिजडा को कैद कर, भूखो मारकर या चेतावनी देकर दिसम्बर 1782 म खजान का धन ल लिया गया।"

अवध की जनता की दशा इर्ष्या योग्य नही थी। वे बेईमान राजस्व अधिकारियो म त्रस्त थ जो हर बहान पैसा लेन की चेष्टा करते थे। यदि वे विद्रोह करत तो उन्ह दबाने के लिए ब्रिटिश सहायक सेना मौजूद थी। कभी-कभी पूरे जिले का राजस्व एक अग्रेज को वसूलन का उत्तरदायित्व दे दिया जाता। ऐसे म ऐसा लगता कि माशल ला लागू कर दिया गया है। 'ऐसा कहा जाता है कि राजस्व

1 और विस्तार हेतु देखें ली वानर द लाइफ आफ द माक्विस डलहौजी, और ली वानर द प्रोटेक्टेड प्रिन्स आफ इण्डिया।

2. मजूमदार एण्ड अन्य एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया प० 696।

माग की पूर्ति के लिए पिता अपने बच्चों को बेचने के लिए बाध्य हो जाता था। धन न दे पाने वाले खुले पिंजड़ों में रख दिये जाते थे और लोग दौड़ती पीछा करती हुई सेना से बचने के लिए खेत बारी तक छोड़ देते थे।"[1]

जैसा पहले बता आये हैं, ब्रिटिशों ने प्रत्येक नवाब के मरने का लाभ उठाया था और उसके उत्तराधिकारी से अधिक उत्तम शर्तें प्राप्त कीं। उदाहरणार्थ 1797 में आसफुद्दौला की मृत्यु हो गई। ब्रिटिशों ने पहले वजीर अली को नवाबी दिलाई और फिर हटा दिया और उसके स्थान पर सादत अली को नवाब बना दिया। नए नवाब के साथ नयी संधि की गई जिसके अन्तर्गत वह और अधिक आर्थिक सहायता देने को तैयार हो गया, इलाहाबाद का किला उन्हें दे दिया और किसी विदेशी राज्य से संपर्क न करने का आश्वासन दिया और साथ ही ब्रिटिशों को छोड़ किसी अन्य यूरोपीय को अपने राज्य में बसने न देने के लिए आश्वस्त किया। वेलेजली ने अवध में सहायक सेना में वृद्धि कर दी जिससे नवाब के खर्चे में 50 लाख रुपए की वृद्धि हो गई। नवाब चूँकि अतिरिक्त आर्थिक बोझ सहन करने की स्थिति में नहीं था इसके लिए उसके एवज में उसने रोहिलखंड और [illegible] दोआब ब्रिटिशों को दे दिया। वह ब्रिटिश रेजीडेंट की इच्छानुसार कार्य करने को भी तैयार हुआ।

इन परिस्थितियों में देश का प्रशासन ढीला और भ्रष्टाचारपूर्ण होता ही था। अधिकतर भयानक तरह की हत्यायें होती थीं और उनका दमन के लिए उचित साधन न थे। फिर तो भी [illegible] की कमाई सरकार निकाल लेती थी। नवाब विद्रोह की चिंता किये बिना जनानखाने में आनंद करते थे। कोई लिखता है, 'अवध के शासक चाहे वे नवाब हों या राजा बिल्कुल शासन की चिंता नहीं रखते थे। वे यथाशक्ति में विलास करते थे। विलासिता और [illegible] में धन, जिसका [illegible] को बिना [illegible] जाता था वे नवाब [illegible] और [illegible] के [illegible] [illegible]" [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]"[2]

[illegible]

1 [illegible] 9-10 [illegible] 2-21 [illegible]

धिकारी था। यहा तक कि लो वानर जो लाड डलहौजी का पग्रधर था डलहौजी की आलोचना किय बिना नही रह सका ।[1]

आग्ल-अवध सबध—अति साधन-सम्पन्न और उवरा क्षेत्र अवध, कम्पनी के शासन स्थापना के बाद युद्ध की दृष्टि स ता महत्त्वपूण नहीं था, पर ब्रिटिश की गिद्ध दृष्टि इस ओर थी। इस राज्य से सम्बन्ध स्थापित होने के प्रारम्भ से ही ब्रिटिश अपनी पकड धीरे धीरे निश्चित रूप स यहा मजबूत करने के चक्कर म थे। प्रत्यक नवाब की मृत्यु का लाभ प्राप्त कर, अपन खास व्यक्तियो को गद्दी दिलाकर और उनसे पर्याप्त इनाम प्राप्त कर अन्त डलहौजी के काल म 1856 म इस इन्होंने हडप लिया। राज्य हडपने के कारण सब का अवध का पूव इतिहास ब्रिटिश धूतता की रुचिकर गाथा है जिससे पता चलता है कि कमजोर और सीधे को आक्रामक ढग से कैसे तग किया जा सकता है।

1773 म प्रथम बार नवाब अवध न रोहिलखड पर विजय प्राप्त करने के लिए सहायता मागी। इसके लिए युद्ध व्यय का वहन करने को वह तैयार हुआ और 50 लाख रुपये अलग से दन को। अनियमित ढग से दी गई यह आर्थिक सहायता थोडे ही काल म ब्रिटिश की एक नियमित नीति बन गई। सधियो पर हस्ताक्षर हुए और अवध की आतरिक और बाह्य सुरक्षा के लिए पर्याप्त धन के बदले एक नियमित सेना नियुक्त कर दी गई। इस तरह आतरिक कठिनाइयो और बाह्य आक्रमणो की समस्या से मुक्त हो नवाब अपनी जनता के प्रति कत्तव्यो के प्रति असावधान और अनुत्तरदायी हो गये। उसकी फिजूलखर्ची बढ गई और उसकी आर्थिक सहायता की नीति न ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि कम्पनी को दिया जाने वाला धन बकाया रहने लगा। वारेन हेस्टिंग्स ने रुपया के लिए नवाब पर दबाव डाला और उसे बाध्य किया कि वह ब्रिटिश की सहायता से फैजाबाद म मे रहने वाली अपनी मा और आजी से धन की वसूली करे। ब्रिटिश सेना इन महिलाओ के निवास पर भेजी गई और उनकी सेना मे हिजडो को कैद कर, भूखा मारकर या चेतावनी देकर दिसम्बर 1782 म खजाने का धन ले लिया गया।[2]

अवध की जनता की दशा ईर्ष्या योग्य नही थी। वे बेईमान राजस्व अधिकारियो मे त्रस्त थे जो हर बहाने पैसा लेने की चेष्टा करते थे। यदि वे विद्रोह करते तो उन्हे दबाने के लिए ब्रिटिश सहायक सेना मौजूद थी। कभी-कभी पूरे जिले का राजस्व एक अंग्रेज को वसूलने का उत्तरदायित्व दे दिया जाता। ऐसे मे ऐसा लगता कि माशल ला लागू कर दिया गया है। 'ऐसा कहा जाता है कि राजस्व

1 और विस्तार हेतु देखें ली वानर द लाइफ आफ द मार्क्विस डलहौजी, और ली वानर द प्रोटेक्टेड प्रिन्स आफ इण्डिया।

2 मजूमदार एण्ड अदस एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० 696।

माग की पूर्ति के लिए पिता अपने बच्चो को बेचने के लिए बाध्य हो जाता था। धन न दे पाने वाले खुले पिंजडो मे रख दिये जाते थे और लोग दौडती पीछा करती हुई सेना से बचने के लिए खेत बारी तक छोड देते थे।"[1]

जैसा पहले बता आये है, ब्रिटिशो ने प्रत्येक नवाब के मरने का लाभ उठाया था और उसके उत्तराधिकारी से अधिक उत्तम शर्तें प्राप्त की। उदाहरणार्थ 1797 मे आसफुद्दौला की मृत्यु हो गई। ब्रिटिशो ने पहले वजीर अली को नवाबी दिलाई और फिर हटा दिया और उसके स्थान पर सादत अली को नवाब बना दिया। नय नवाब के साथ नयी सधि की गइ जिसके अन्तगत वह और अधिक आर्थिक सहायता देने को तैयार हो गया, इलाहाबाद का किला उन्हे दे दिया और किसी विदेशी राज्य से सपर्क न करने का आश्वासन दिया और साथ ही ब्रिटिशो को छोड किसी अन्य यूरोपीय को अपने राज्य मे बसने न देने के लिए आश्वस्त किया। वलजली ने अवध म सहायक सेना मे वृद्धि कर दी जिससे नवाब के खर्चे मे 50 लाख रुपये की वृद्धि हो गई। नवाब चूकि अतिरिक्त आर्थिक बोझ सहन करने की स्थिति मे नही था इसके लिए इसके एवज मे उसन रोहिलखड और लोअर दोआब ब्रिटिशो को दे दिया। वह ब्रिटिश रेजीडेन्ट की इच्छानुसार काय करने को भी तैयार हुआ।

इन परिस्थितियो मे देश का प्रशासन ढीला और भ्रष्टाचारपूर्ण होना ही था। अत्यधिक भयानक तरह की हत्याये होती थी और उनको रोकने के लिए उचित न्यायालय न थे। किसानो की खून पसीने की कमाई सरकार निचोड लेती थी। नवाब विद्रोह की चिन्ता किये बिना जनानखाने मे आनद लेते थे। केयी लिखता है, "अवध के शासक चाहे वे वजीर हो या राजा निरकुश होने की शक्ति नही रखते थे। वे यथास्थिति म विश्वास करते थे। विलासिता और प्रदूषण मे फसे, जिसका विष ण भी जी को भिन्न ना देने वाला था, वे नवाब दलालो और परिश्रमी लोगो के इशारे पर नाचते थे और वे तबतक किसी चीज की परवाह नही करते थे जब तक ये तत्व उनकी इन्द्रिय सुख की चीजे मुहैया करते रहते थे।" अवध दोहरे शासन के पाप से दबा था जिसम नवाब और कम्पनी दोनो थे। केयी के अनुसार इन प्रभावो मे यह आश्चयजनक रहा है कि पूरे राज्य मे हर तरह की अव्यवस्था व्याप्त थी।"[2]

ब्रिटिशो न यह समझ दिखाने की जगह पर कि उन्होने ही अवध मे अव्यवस्था उत्पन्न की है नवाब पर ही सारा दोषारोपण किया। वेलजली न पूरे देश की जनता का शुभचिन्तक अपने को बताते हुए यह घोषणा की कि "अवध प्रात को विनाश से बचाने के लिए कोई प्रभावी सुरक्षा नही प्रदान की जा सकती।" हा, ब्रिटिश यहा

1 मजूमदार द सीपाय म्युटिनी पृ० 10 अहमद सफी ब्रिटिश अग्रसन इन अवध।
2 केयी सरजान ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ द ईस्ट इण्डिया कम्पनी पृ० 242।

पर स्वय अपना नागरिक और सैनिक प्रशासन स्थापित कर सकते हैं।

नवाब को ब्रिटिश रेजीडेन्ट के मतानुसार काय करना था और उसने यह काय विश्वस्तता के साथ किया। इन परिस्थितियो मे यह समझ मे नही आता कि नवाब को ही अवध के मामले मे दोषी कैसे ठहराया जाय। पर इसी आराप की तलवार गले के ऊपर लटकाई गई।

वेलजली के बाद, लाड हेस्टिग्स एव एमहस्ट को नवाब की ब्रिटिशा के प्रति विश्वस्तता मे कोई शक नही था। लाड हेस्टिग्स तो नवाब के द्वारा नपाली और बर्मी युद्धो के अवसर पर कम्पनी के पास अग्रिम धन भेजने से इतना प्रसन्न था कि उसने उसे राजा की उपाधि प्रदान कर दी। पर जब इन युद्धो ने नवाब की आर्थिक सहायता के बावजूद ब्रिटिशा का खजाना खाली कर दिया और चूकि अवध स खजाने मे धन आने की सभावना थी इसलिए बैंटिक ने पुन यहा पर कुशासन की छाया देख ली। उसने घोपणा की कि यदि वह अपना काय ठीक से नही करता ' जिससे कि जनता समद्धि की ओर जा सके तो पूरे क्षेत्र का प्रबन्ध कम्पनी द्वारा अधिग्रहीत कर लिया जायगा और राजा को कदी बना दिया जायगा।"

पर राज्य का अपहरण जनता को समृद्ध करने के लिए प्रस्तावित करना वैधानिक रूप से उचित नही था। लार्ड आकलण्ड ने 1837 मे परिस्थिति को ठीक करने की चेष्टा की। इस वर्ष अवध के नवाब नासिरुद्दीन की मत्यु हो गई। विधवा रानी ने एक पुत्र को गद्दी पर बैठा दिया। पर आकलैंड न उस स्वीकार न कर मुहम्मद अली साहब को इस पद पर स्वीकार कर लिया। इसके साथ सितम्बर मे एक नयी सधि की गई।

नयी सधि की शर्तों के अन्तगत अवध म एक नयी सहायक सेना रख दी गई जिस पर 16 लाख रुपये व्यय होने थे। कुशासन की स्थिति म राज्य प्रबन्ध पर अधिकार पाने की धारा भी सधि मे जोडी गई। यह एक आश्चयजनक सधि थी जिसे 'सवशक्तिशाली को शक्ति प्राप्त है' के नियम के अन्तगत ही स्वीकार किया जा सकता था। पर ईश्वर की ही कृपा थी कि कोर्ट आफ डाइरेक्टस ने इसे स्वीकार नही किया और लाड आक्लैंड से यह भी कहा गया कि वह इसकी सूचना नवाब को तुरन्त दे दे। पर आकलण्ड ने अपने मालिका को भी धोखा दिया क्योकि उसने नवाब को इसकी सूचना भी न दी और उन्हे यह कहला दिया कि सूचना दे दी गई है। सच तो यह था कि इसे गुप्त रखा गया और नवाब को केवल सूचना दी गई कि उस सहायक सना के लिए व्यय से मुक्त कर दिया गया है जिसस उसको लगा कि सधि की शेप शर्तें यथावत् लागू हैं।

स्थिति एस ही तब तक चलती रही जब तक कि कोट आफ डाइरेक्टस को इसकी जानकारी नहीं हा गई। सधि की शर्तें सरकारी रिकार्डों मे मिली। हम यह सूचना प्राप्त होती है कि सर हेनरी लारेन्स न 'यस्म बात अवध' म 1844 म

इसको सदर्भित किया। 1847 मे लाड हार्डिंज ने अवध मे कुशासन की चेतावनी को दुहराया और सधि को सदर्भित किया जो महत्त्वपूण ह।

हमे पता है कि डलहौजी भारत मे गवनर जनरल होकर 1848 म आया। 1849 मे प्रसिद्ध साम्राज्यवादी स्लीमैन को अवध का रेजीडेन्ट बनाया गया। डलहोजी ने उसे अवध पर एक रिपोट तैयार का आदेश दिया जिसमे उसने इसका काला चित्र खीचा। रिपोट मे अवध के कुछ अनुत्तरदायी गद्दारा का नाम भी जोडा गया जा यह चाहते थे कि ब्रिटिश इस क्षेत्र का शासन सभाल लें। 1851 म रिपोट प्रकाशित की गई। 1854 मे कनल आउट्रम अवध के रेजीडेन्ट पद पर स्लीमैन का उत्तराधिकारी हुआ और उसने एक नयी रिपोट इस सम्बन्ध मे दी। पर उसने कोई बेहतर प्रयास नही किया।

उपरोक्त रिपोट के आधार पर डलहौजी ने अवध पर एक मिनिट तैयार किया जिसम उसने राय दी कि अवध मे कुशासन के कारण इसका शासन कम्पनी के हाथ मे कर दिया जाना चाहिए। पर साथ ही अपनी विश्वस्तता के लिए नवाब को अपनी उपाधि बनाये रखने की अनुमति दी गई। उसने और आगे परामश दिया कि यदि वह इस राय को न माने तो 1801 की सधि को समाप्त कर दिया जाय और उसे उसके भाग्य पर छोड दिया जाय। पर डलहौजी के कौसिल का मत इस पर विभाजित था। बहुमत 1801 की सधि समाप्त करने के पक्ष मे नही था। यह स्थिति कुछ समय तक चलती रही। इसके बाद गृह अधिकारिया न डलहौजी के प्रस्ताव का अस्वीकृत कर दिया और इसके स्थान पर राज्य को अपहृण कर लेन को कहा। नवाब वाजिद अली शाह को पद छोड देने को कहा गया और उसके राज्य म अपहरण की घोषणा डलहौजी ने 13 फरवरी 1856 को कर दी। इस अवसर पर उसने कहा कि "ब्रिटिश सरकार ईश्वर और आदमी दोना की दृष्टि मे गुनहगार होगी यदि यह लाखो की हानि करने वाले प्रशासन को चलती रहने देगी।"[1] इस तरह स्वतत्र या अद्ध स्वतत्र अवध के राज्य की कहानी खत्म हो गई।

सच तो यह था कि डलहौजी अवध की ओर लालची दृष्टि से बहुत पहले से देख रहा था। 18 सितम्बर 1848 को उसने एक मित्र को लिखा "मेरे पास दो अन्य राज्य अवध और हैदराबाद हैं। इन्हें हम शीघ्र ही अपने प्रबन्ध म लेन वाले हैं।" किसी और स्थिति मे उसने पुन लिखा, "अवध चेरी की भाति किसी भी दिन हमारे मुह मे गिर सकता है।" पर वह इस बात के लिए आश्वस्त नही था कि "कोट आफ डाइरेक्टस उसे पेड हिलाकर उस फल को नीचे गिरने देगा।" पर आउट्रम के रिपोट से वह अति प्रसन्न था क्योकि वह अवध शासका के विरुद्ध इसम

1 देखें हटर पूर्वोक्त पृ० 119 20।

बहुत कुछ लिखा गया था। स्लीमन और आउट्रम के रिपोर्ट के आधार पर जालसाजी पूर्ण रिपोर्ट व संस्तुति जब डलहौजी ने डाइरेक्टरों को भेजी उसी समय 12 मई 1855 को अपने मित्र को उसने लिखा, "ऐसा मामला बनाकर उनके पास प्रेषित किया गया है कि वे अपने को रोक न पायेंगे।" 2 मई 1855 को उसने लिखा कि "नवाब न तो बुरा ही मानेगा और न लडेगा ही। बल्कि बिना विद्रोह भाव के वह हमारी हर चोट बरदाश्त करेगा।"[1]

पी० ई० राबर्टस ने लिखा है कि "यह राष्ट्र के प्रति एक घोर विश्वासघात था। पर इसके लिए यह अधिकारी उत्तरदायी थे न कि लार्ड डलहौजी,[2] इस क्षेत्र पर अधिकार किसी भी तर्क के आधार पर उचित नहीं है।" यह कहना कि यह कारवाई जनता के हित में नवाब के विरुद्ध की गई थी, उचित नहीं है क्योंकि फिर इसी जनता ने 1857 के विद्रोह में ब्रिटिशों का विरोध क्या किया। और यदि यह सच भी हो कि जनता नवाब से असंतुष्ट थी और बढते ब्रिटिश प्रभाव से संतुष्ट थी तो भी। किसी भी नैतिक स्तर के आधार पर एक विदेशी शक्ति द्वारा राज्य का अपहरण उचित नहीं माना जा सकता।

यह भी सत्य नहीं है कि अपहरण के उपरान्त अवध का प्रशासन ईष्यालु स्थिति तक उत्तम हो गया। जिस तरह से प्रशासन को हाथ में लिया गया वह अत्याचार पूर्ण था। केयी ने लिखा है 'हमारे विरुद्ध यह आरोप लगाया गया कि हमारे अधिकारियों ने लखनऊ के राजमहलों को दूकानों और कुत्ताघरों में बदल दिया, नवाब की कमसिन महिलाओं, पुत्रियों और भगिनियों को गृहविहीन असहाय इधर उधर भटकने को छोड दिया गया, खजाना रखने वाला स्थान हिंसक ढंग से तोडा खोला और बर्बाद किया गया, राज परिवार की व्यक्तिगत सम्पत्ति प्राप्ति हेतु लोहारों का प्रयोग किया गया और नवाब की जनता के साथ घृणित व अपमानजनक व्यवहार किया गया जो हमारे लिए एक कलंक है।"[3]

अपहरण के परिणामस्वरूप दरबार पर आश्रित तमाम लोग इधर उधर भटकने लगे। वैसे ऐसे आपातकाल के लिए कुछ सहायता की व्यवस्था थी पर उससे कहा पूरा पडता था। अवध के साठ हजार सैनिकों में से मात्र 1/4 को ही फिर नौकरी मिल सकी। शेष गलियों कूचों में टहलने के लिए छोड दिए गये। अपहरण के बाद राजस्व की दर में वृद्धि ने किसानों को शासन से दूर कर दिया। दूसरी ओर गाव के जमीदारों के माध्यम से गाव से सीधे कर वसूली ने तालुकदारों

1 बेयर्ड, जे० जी० ए० प्राइवेट लेटर्स आफ द मार्क्विस आफ डलहौजी लंदन 1911 रहीम एम० ए० पूर्वोद्धत प० 315 17 से लिया गया।
2 राबर्टस, पी० ई० हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया पृ० 362।
3 केयी ऐण्ड मैलीसन हिस्ट्री आफ इंडियन म्यूटिनी, (6 भागों मे) भाग 1 पृ० 232।

को पुरानी प्रथा वापसी के लिए चिल्लाने को बाध्य कर दिया। अफीम पर कर काफी बढा दिया गया "अन्य आवश्यक वस्तुओ पर भी कर बढा दिया गया।" केयी आगे लिखता है कि "यह कर ठकेदारी प्रथा द्वारा या सीधे कर आरोपण द्वारा बढाये गये। बढे हुए औपचारिकताओ सहित नवीन न्यायालयीय प्रणाली, इसमे होने वाली देर और व्यय के कारण कठिनाइया बढ रही थी और लोकप्रियता मे भी कमी आ रही थी।"[1]

सक्षेप मे अपहरण का मूल परिणाम यह हुआ कि सभी वर्गों के लोग ब्रिटिश से दूर हो गये और उन्होने 1857 के विद्रोहियो के लिए उत्तम पृष्ठ भूमि की रचना कर दी।

वृत्तियो और उपाधियो की समाप्ति—डलहौजी ने क्षेत्रो और राज्यो के अपहरण के अतिरिक्त अनेकानेक उपाधिया और वृत्तिया का भी अपहरण किया। इसके लिए यह तर्क दिया गया कि ये व्यक्तिगत थी इस कारण इसे प्राप्त करने वाले व्यक्ति की मृत्यु के बाद हडप के सिद्धान्त के अतगत यह भी समाप्त हो जाती है।

धोन्दू पत नाना साहब—वृत्तिया के क्षेत्र म समाप्ति का एक ऐसा ही सबसे महत्वपूर्ण मामला पेशवा बाजी राव द्वितीय के गोद लिये गये पुत्र धोन्दू पत नाना साहब का था। बाजीराव द्वितीय को 1819 मे ततीय मराठा युद्ध मे समर्पण के उपरान्त कानपुर के निकट बिठूर का नगर और 8 लाख रुपये वार्षिक की वृत्ति प्रदान की गई थी और उसका पेशवा का पद समाप्त कर दिया गया था। 1852 मे पेशवा नि सन्तान मर गया। पर वह अपने पीछे अपने अधिकार का उपभोग करने हेतु अपना गोद लिया गया पुत्र धोन्दू पत नाना साहब को छोड गया। पर डलहौजी ने उसे वृत्ति न देने की घोषणा की। नाना साहब ने ब्रिटिश के पास कई व्यर्थ अपीलें की पर केयी के शब्दो मे उसे "कठोर" व अपमानपूर्ण व्यवहार ही उत्तर मे प्राप्त हुआ। अपमानित और क्रुद्ध नाना को ब्रिटिश के विरुद्ध विद्रोह के लिए बाध्य होना पडा।

कर्नाटक का नवाब—हडप के सिद्धान्त का दूसरा शिकार कर्नाटक के नवाब मुहम्मद गौस का उत्तराधिकारी अजीम जाह हुआ। नवाब की 1855 मे नि सन्तान मृत्यु हो गई। किसी भी ढग से सोचने पर अजीमजाह नवाब के अधिकारो का उत्तराधिकारी था। उसने इसके लिए मद्रास के गवनर लार्ड हैरिस के पास प्रार्थना भेजी। पर हैरिस ने लार्ड डलहौजी को लिखा कि उपाधि और वृत्तिपूर्ण व्यक्तिगत चीज है और "राजत्व का चिह्न शक्ति के अभाव म एक मजाक ही है और हानिप्रद भी। यह अराजनीतिक और बेवकूफी है कि लोगो को देख दिखाव

1 केयी पूर्वोक्त भाग I, पृ० 233।

व्यथा उतनी ही हृदयद्रावक थी जितनी कि अय। तजौर परिवार मे स्त्रियो को अधिकार से कभी वचित नही किया गया था। उदाहरणाथ सूजनबाई को पाचवें महाराजा की मृत्यु पर उत्तराधिकार प्राप्त हुआ था और इस पर कोई आपत्ति नही की गई थी। वतमान मसले मे विधवा ने मद्रास के सुप्रीमकोट मे मुकदमा दायर कर अपने पक्ष मे एक स्थगनादेश प्राप्त किया। पर कपनी ने प्रीवी कौंसिल मे अपील दायर की जिसने गुण दोष को ध्यान मे न रखकर इस आधार पर विपरीत निणय दे दिया कि "यह एक राजा का निणय था और नगरपालिका का यायालय इस सबध म निणय नही कर सकता था।" पर फिर भी लाड किंगसटन जिसने निणय दिया था यह कहे बिना नही रह सका कि, "ईस्ट इडिया कपनी को प्राप्त वे वैधानिक अधिकार जिसके आधार पर उसने यह निणय किया, इन कागजो मे ढूढ पाना अति कठिन है। इस राज्य या राजा के मत्यु के बाद उसकी सपत्ति पर उसने अधिकार कैसे प्राप्त किया ?' इस सबध मे जो तक आगे बढाये गये वे थे "निस्सदेह राजा स्वतत्र शासक था और अपने पडोसी से शक्ति व सधि द्वारा आबद्ध था जिसके कारण उसकी स्वतत्रता उतनी न रहती थी और वह अपने क्षेत्र पर इस तरह अधिकार भी नही रख पाता था। पर फिर भी वह ब्रिटिश या ईस्ट इडिया कम्पनी का सहायक नही लगता।" और दूसरे कपनी के पास इन राज्यो को हडपने का कोई बहाना भी नही था।" किसी राजा के नि सतान करने पर कानूनी तरीके से वह वहा अधिकार नही कर सकती थी।' इस तरह इस सबध मे डलहौजी की कारवाई तर्कों पर आधारति नही थी।

सवैधानिक परिवतन

डलहौजी के काल मे जो सवैधानिक कदम उठाया गया वह सबसे महत्त्वपूण था। उसके काल मे 1853 का जो चाटर ऐक्ट पारित किया गया उसने भारत मे ससदीय शासन के पद्धति का श्रीगणेश किया। चाटर ऐक्ट की अलग से व्याख्या आवश्यक है

1853 का चाटर एक्ट

1833 के चाटर एक्ट के उपरात और 20 वप व्यतीत हो गये और अब ईस्ट इडिया कपनी के चाटर का नवीनीकरण आवश्यक हो गया था यदि इसको अपना अस्तित्व बनाये रखना था। 1853 के चाटर ऐक्ट की परिस्थतिया जो इस तरह का अतिम वैधानिक प्रयास था, का विवेचन इसे समझने के लिए आवश्यक है।

ब्रिटिश ससद की भारतीय मामता मे बढती रुचि ने उनमे भारत पर अपने पकड को अधिक मजबूत बनाने की भी प्रेरणा दी जिससे डाइरेक्टरो की शक्ति म

और कटौती की आवश्यकता पडी। 1833 के चार्टर की एक धारा के अनुसार उनकी सरक्षण शक्ति मे कटौती कर दी गई थी। पर इस धारा को कुछ ही समय बाद 1834 मे परिवर्तित कर डाइरेक्टरो को सरक्षण शक्ति पुन प्रदान कर दी गई थी। 1833 के एक्ट की 87वी धारा का उचित रूप से प्रभावी नही बनाया गया। इस धारा मे कपनी की सेवा म भेदभाव न अपनाने के लिए आश्वस्त किया गया था। पर भारतीय छात्रो को अत्यधिक व्यय कर इगलैण्ड जाकर सेना के लिए योग्य होने पर भी निराश होना पडता था। 1833 के एक्ट के पुन परिवर्तन ने डाइरेक्टरो को सेवा सबधी पुरानी प्रथा को चलते रहने देने मे सहायता की थी और इस तरह उपरोक्त धारा बेकार हो गई थी। 'इडियन ला कमीशन' के चेयरमैन कैमरो ने स्पष्टतया स्वीकार किया कि "पिछले 20 वर्षो मे एक व्यक्ति को भी एसे पद पर नियुक्त नही किया गया है जो स्टेच्युट के अनुसार योग्यता नही रखते।" धारा 87 के अतगत कुछ किया जाना इसलिए आवश्यक था क्योकि बहुत से भारतीय पश्चिमी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे और सरकारी सेवाओ के प्रति उनकी महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति की ही जानी थी यदि उन्हे असतोष की छाया से बचाया जाना था।

यह माग भी तेज होती जा रही थी कि यहा पर दूसरी सरकार समाप्त की जाय। चूकि कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स से उद्देश्य पूरा हो जाता था और इस सस्था के अतिरिक्त बोर्ड आफ कट्रोल को प्राप्त अधिकार से भारतीय समस्याओ के समाधान की कठिनाइया बढ ही जाती थी क्योकि इसमे समय और धन दोनो अधिक लगता था। भारतीय प्रेसीडेसियो द्वारा यह माग की गई कि एक भारतीय कौन्सिल बनाई जाय जिसका एक राज्य सचिव हो और कारवाई करें।

भारत के लिए विधायिका भी उचित और समय नही थी। प्रेसीडेसियो की विधायिका शक्ति छीनकर 1833 के ऐक्ट के अधीन केन्द्र को दे दी गई थी। गवनर जनरल की कौसिल मे एक कानून ज्ञाता सदस्य ही समस्या के समाधान के लिए पर्याप्त समझा गया। इस मामले मे केन्द्र को अपनी आवश्यकता बताने के लिए प्रेसीडेसिया को अवसर भी प्रदान नही किया गया। इस स्थिति से बचने के लिए कुछ कदम उठाये जाने आवश्यक थे। बगाल के गवनर को भारत का गवनर जनरल बने रहने पर भी आपत्ति उठाई गई। जब तक यह स्थिति रहती यह आशा नही थी कि गवनर जनरल बगाल का पक्ष लेकर काय नही करेगा।

1833 के बाद कई क्षेत्रीय और राजनतिक परिवतन भी हो चुके थे। प्रथम अफगान युद्ध हो चुका था, सिंध और पजाब पर अधिकार किया जा चुका था, बर्मा के पेगू राज्य सहित कई भारतीय राज्य डलहौजी की अपहरण नीति का शिकार हो चुके थे। नव अपहृत राज्यो को सवधानिक ढाचे के नीचे लाया जाना था। इसके अतिरिक्त शक्ति विकेन्द्रीकरण की भी माग थी और भारतीयो को

अपने क्षेत्र पर शक्ति अधिक प्रदान की जाय इसकी भी। इगलैड मे भी इसे कुछ समथन प्राप्त था। उदाहरणाथ 2 अप्रैल 1852 को लाड डर्बी ने हाउस आफ कामन्स मे घोषणा की कि, "मानव हित, उदारता, नैतिकता और धम का यह तकाजा है कि जितनी जल्दी सभव हो आप, सुरक्षा, चालाकी और बुद्धिमत्तापूर्वक भारतीयो को अपने आ तरिक मामलो मे काय करने और उसे देख भाल का अवसर प्रदान करें। यह आपका, पवित्र दायित्व है।"

धारायें—इस तरह ये परिस्थितिया थी जिन्होने चाटर के नवीनीकरण का अवसर प्रदान किया। 1852 मे ससद ने दो समितिया नियुक्त की जिन्हे इस सबध मे छान बीन करनी थी और इन्ही रिपोर्टों के आधार पर 1853 का चाटर ऐक्ट बनाया गया। कपनी को भारत के राजस्व और क्षेत्र पर इगलैंड के शासक तथा उत्तराधिकारियो की ओर से" 20 वष के ही लिए नही "बल्कि ससद के इच्छा काल तक" अधिकार प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त यह भी तय हुआ कि बोर्ड आफ कट्रोल के सदस्यो, सचिव और अन्य अधिकारियों का वेतन इगलैड के शासक की ओर से तय होगा और उसका देनदार कपनी होगी। यह भी निणय हुआ कि बोड के प्रेसीडेण्ट का वेतन किसी भी राज्य के सचिव से कम नही होगा। बोड आफ डाइरेक्टस की सख्या घटाकर 24 से 18 कर दी गई जिसमे से 6 राज्य की ओर से नामित होने थे। गणपूर्ति के लिए 10 सदस्य आवश्यक बताये गये जिसके कारण सदस्यो के कम होने पर राज्य के नामित सदस्य बहुल सख्या म हो जाते थे। कोट आफ डाइरेक्टस से सरक्षण का अधिकार छीन लिया गया। सेवाओ म प्रतियोगिता का आधार बनाया गया जिसम धर्म, जाति या बिरादरी का कोई स्थान न रहा। 1854 मे इस योजना के सपादन हेतु एक समिति गठित की गई और मैकाले इसका सभापति बनाया गया। भारत म नव प्रान्त राज्यो की व्यवस्था क लिए कोट आफ डाइरेक्टस को एक नयी प्रेसीडेन्सी बनाने का भी अधिकार प्रदान किया गया। उन्हे इसके लिए भी अधिकारित किया गया कि वे चाहे तो वतमान प्रेसीडेन्सियों की सीमा में ही फेर बदल कर दें। इसके कारण पजाब एक लेफ्टीनेन्ट गवनर के अधीन हो गया। इस एक्ट ने इगलण्ड के राजा को इगलैण्ड मे एक लॉ कमीशन बनाने का अधिकार भी प्रदान किया जिसे भारतीय लॉ कमीशन के रिपोट और आलेखों पर विचार करना था। अब इसका अस्तित्व ही नही था इस कारण इसे इस आधार पर वधानिक सुधार की व्याख्या देनी थी।

भारत म इस ऐक्ट ने विधायिका को कायपालिका से अलग करने के क्षेत्र म एक कदम आगे बढकर काय किया। गवनर जनरल की कायपालिका कौन्सिल मे 'लॉ मेम्बर' का पूण सदस्य का दर्जा दिया गया। यह कौसिल जब विधायिका के रूप मे बैठती थी तो इसम गवनर जनरल के अतिरिक्त सेनापति, चार कायपालिका सदस्य और छ लेजिस्लेटिव कौसिलस होते थे। ये अतिरिक्त सदस्य थे—एक मुख्य

न्यायाधीश, एक अवर न्यायाधीश और 4 प्रान्तो बगाल, मद्रास, बम्बई, और उत्तर पश्चिम के एक एक सदस्य। प्रान्तीय प्रतिनिधि कपनी की सेवा म कम स-कम 10 वष सेवारत रह चुकने वाले ही हो सकते थ। गवनर जनरल नागरिक सेवाओ वाले लोगो मे से दो और लोगो को नियुक्त कर सकता था। पर उसने इस शक्ति का कभी प्रयोग नही किया। लेजिस्लेटिव कौंसिल की गणपूर्ति सात सदस्यो से होती थी। प्रत्येक विधायिका प्रस्ताव पर गवनर जनरल की सहमति आवश्यक थी। *गवनर जनरल को इस कौंसिल के उपराष्ट्रपति को नामित करने का अधिकार था* और इसकी कारवाई ससद की भाति होनी थी। प्रश्न पूछे जा सकते थे और सरकार की नीति पर विचार-विमश हो सकता था। वैसे कायपालिका कौंसिल को विधायिका कौंसिल के बिलपर नकारात्मक मत प्रयोग करने का अधिकार था। भिन्न भिन्न विधायिका कारवाइया 'सेलेक्ट कमिटी' के पास परीक्षण के लिए प्रस्तुत की जाती थी और इस सबध मे हुए विचार विमश जनता के समक्ष भी लाय जाते थे। इस ऐक्ट के अतगत प्रान्तीय प्रतिनिधियो का प्रतिवष का वेतन 5,000 पौण्ड रखा गया।

उपरोक्त सदर्भित इस ऐक्ट की धारा के अतगत एक महत्त्वपूण बात यह की गई कि प्रतिज्ञाबद्ध नागरिक सेवाओ को प्रतियोगिता के आधार पर इगलैण्ड के शासक के क्षेत्र मे पैदा हुए सभी नागरिको के लिए खोल दिया गया। "इस तरह भारतीय क्षेत्रो को इगलण्ड सम्राट के अधीन से जाने मे तब कोई कठिनाई नही हुई जब ससद ने स्वाभाविक रूप से 1873 मे इस मसले पर विचार किया। विद्रोह ने इस मसले को थोडा और आगे ही बढाया।"[1]

बगाल के लिए एक अलग से गवनर नियुक्त किये जाने का प्रावधान हुआ। प्रान्तो को केन्द्रीय कायपालिका कौंसिला ने प्रतिनिधित्व प्रदान किया और यह स्पष्ट रूप से बता दिया गया कि किसी भी प्रान्त के विषय मे कोई विचार-विमश तभी होगा जब उसका प्रतिनिधि उपस्थित रहेगा।

महत्त्व—इस तरह 1853 के चाटर ऐक्ट ने वतमान सविधान मे एक महत्त्वपूण विकास की स्थिति ला दी। भारत मे कपनी के शासन के लिए अब कोई समय निश्चित नही रहा और इस तरह ब्रिटिश सम्राट कभी भी इस पर अधिकार कर सकता था। बोड आफ कट्रोल के प्रेसीडेन्ट की स्थिति और प्रतिष्ठा म वृद्धि कर दी गई। जहा तक वेतन का सबध है उसे किसी भी राज्य के मुख्य सचिव के बराबर का पद प्रदान किया गया। इस तरह यह कार्यालय भारतीय शासन मे महत्त्वपूण आकषण का केन्द्र बन गया। कोट आफ डाइरेक्टस की अव-मानवत स्थिति को और धक्का लगा। उनकी सख्या घटाकर 18 कर दी गई

1 पुनिया के० बी० पूर्वोद्धत प० 59।

जिनम स छ सम्राट द्वारा मनोनीत होने थे। इन छ स्थानो पर सम्राट कपनी के सेवा मुक्त और अनुभवी नागरिक अधिकारियो को मनोनीत करता था जो वहा अपने अनुभव का लाभ प्रदान करत थे। पर इसमे भी महत्त्वपूण कदम डाइरेक्टरा के सरक्षणवाद को समाप्त करना था और साथ ही नागरिक सेवाओ को प्रतियोगिता के आधार पर प्रारभ करना। इसके कारण जहा एक ओर शिक्षित भारतीयो की महत्त्वाकाक्षा को सतोष मिला वही दूसरी ओर देश के प्रशासन के कायक्षम होन की सभावनायें बढी क्योकि प्रतियोगिता द्वारा योग्य लोगो के आगे बढने की बारी आ गई।

विधायिका स कायपालिका के सिद्धान्त का अलग किया जाना भी कम महत्त्वपूण नही था। मांटफोर्ड रिपोट मे बताया गया कि इस ऐक्ट के अतगत विधान "पहली बार सरकार का एक विशेष काय माना गया जिसमे विशेष मशीनरी और काय शैली की आवश्यकता थी।" कोवेल ने बताया कि इस ऐक्ट के अतगत "विचार विमश लिखित होन के स्थान पर मौखिक हो गये, बिलो को एक व्यक्ति को सौंपने के स्थान पर 'सलेक्ट कमिटी' को सौंपा जाने लगा और विधायिका की कारवाई गुप्त न होकर खुलेआम होती थी।"[1] सक्षेप म ससदीय प्रथा का प्रारभ कर दिया गया।

बगाल के लिए अलग स गवनर की नियुक्ति ने जहा एक ओर गवनर जनरल को उसके काय भार के आधिक्य से मुक्त कर दिया वहा साथ ही प्रेसीडेन्सियो की यह शिकायत दूर हो गई कि गवनर जनरल बगाल की ओर अधिक ध्यान देता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय विधायिका कौंसिल म प्रान्तो के सदस्यो के रहने के कारण प्रान्तो का हित सुरक्षित हो गया। बाह्य सदस्यो को भी रखने का प्रस्ताव आया। वैसे यह प्रस्ताव सर चाल्स वुड के विरोध के कारण रोक दिया गया पर भविष्य के लिए यह प्रस्ताव अति महत्त्वपूण था। अग्रेजी लॉ कमीशन की भारतीय लॉ कमीशन के रिपोट को एक स्वरूप प्रदान करने हेतु नियुक्ति भी एक महत्त्वपूण घटना थी। 'इण्डियन पेनल कोड' और क्रिमिनल प्रोसीजर कोड' इस तरह सामने आये जिसके कारण भारतीयो का बडा हित हुआ।

पर वतमान काय प्रणाली म अब भी कुछ दोष रहे। देश मे दुहरी सरकार अब भी समाप्त नहीं हुई और डाइरेक्टरो का भारत से किसी को भी वापस बुलाने का अधिकार यथावत बना रहा। लेजिस्लेटिव कौंसिल भी आशा के अनुरूप नही बन सकी। यह सस्था आकार म छोटी थी। विधायिका से कायपालिका का अलगाव भी पूण नही था। जनमत को कोई प्रतिनिधित्व नही प्राप्त हुआ। सर बार्टिल

1 कोवेल, ह्वट हिस्ट्री आफ द कान्स्टीच्यूशन आफ द कोटस एण्ड लेजिस्लेटिव अथारटीज इन इण्डिया 1936।

फ़िग़र के शब्दो मे इसकी भत्सना के लिए कहा जा सकता है कि "करोडो लोगो के लिए विनष्टकारी विधान बनाने का प्रयास चलता रहा। यह जानने की कोई चेष्टा नही हुई कि उनका किसमे हित है या अहित। उनके विद्रोह से ही उनकी आवश्यकता आकी जाती थी।" सर सैय्यद अहमद ने भी इसकी भत्सना की और इस तथ्य सबधित सभी बातें 1857 के विद्रोह म सामने आ गई।[1] अग्रेजी लॉ कमीशन की नियुक्ति को जनता और भारत सरकार दोनो ने उचित नही माना। गृह सरकार को भारतीय विधायिका मे हस्तक्षेप का इस कारण पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ जिसने भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल को मात्र एक रजिस्टर मे दर्ज करने वाली एक सस्था बना दिया।

विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य भी पूरा नही हुआ। धन वसूली पर केन्द्र का ही नियत्रण बना रहा। यही बात विधान और अन्य समस्याओ के सबध म भी कही जा सकती है। भारतीय नागरिक सेवाओं हेतु प्रतियोगिता परीक्षाओ का प्रारभ होना भी पूर्ण काय के रूप मे सामने नही आ पाया। परीक्षायें इगलैण्ड म होती थी जहा स्पष्टतया केवल सपन्न परिवार के भारतीय ही जा पाते थे। लबी यात्रा की कठिनाइया, पर्याप्त व्यय और एक नये माहौल मे प्रतियोगिता भारतीयो के लिए अनेक कठिनाइया उपस्थित करते थे। भारत और इगलैण्ड मे एक साथ परीक्षायें हो यह आवाज अभी अति धीमी थी। समानता के अवसर की बात इस तरह एक ढकोसला ही थी।

फिर भी, भारत म ससदीय पद्धति वाले शासन की दिशा मे एक कदम बढ गया था। वैसे यह बात ऐक्ट निर्माताओ की भी इच्छा के विपरीत थी। बोर्ड आफ कटोल के प्रेसीडेन्ट सर चार्ल्स वुड ने कहा, "मैं इसकी ओर (भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल) कुछ भारतीय नवजवानो की तरह नही देखता जो इसे भारत मे सवैधानिक ससदीय पद्धति का केन्द्र मानते हैं।' पर यह सच ही कहा गया है कि वुड 'न तो पहला और न अतिम विधायक था जो इस बिल के परिणाम को रोक सका।' आशा के विपरीत कौसिल जल्दी ही आग्ल भारतीय सदन मे परिवर्तित हो गया। इसने कार्यपालिका के कार्यों पर प्रश्न किये और गुप्त कागजात अपने समक्ष रखवाये। विधान बनाने की योजना गृह अधिकारियो के समक्ष रखने की अनुमति पर रोक लगा दी गई और इसे विचारार्थ कौसिल के सामने रखकर ही वहा भेजा जा सकता था। गृह अधिकारियो की इच्छा के अनुकूल ही सदा कानून पारित नही होते थे और कौसिल विधान बनाने के अधिकार की स्वतत्रता पर जोर देती थी। यदि अन्य धाराओ को छोड भी दिया जाय तो केवल लेजिस्लेटिव कौसिल सबधी प्राविधान ही इस ऐक्ट को 19वी सदी का एक महत्त्वपूर्ण सवैधानिक कदम सिद्ध कर देत है।

---

1 अहमद सर सय्यद मसेज आन काजेज आफ इडियन रिवोल्ट (एम एन० लोस द्वारा अनुवा॰)

प्रशासकीय सुधार

नान रेग्युलेशन प्रथा—लार्ड डलहौजी के काल का एक महत्वपूर्ण सुधार यह था कि तत्कालीन विधियों और नियमों को नव प्राप्त क्षेत्रों पर लागू करने के स्थान पर उसने चाहे वे उसे लाभपूर्ण हों या हानिपूर्ण, इन क्षेत्रों को 'नान रेग्युलशन प्रथा' के अंतर्गत रख दिया। इसके अंतर्गत उस क्षेत्र के स्थानीय परम्पराओं और कानूनों का तबतक ध्यान रखा जाता था जबतक कि वे ब्रिटिशों के न्याय भावना पर प्रहार न करें। स्थानीय प्रशासन एक कमिश्नर के अधीन रखा गया जो सीधे गवर्नर जनरल के प्रति उत्तरदायी होता था। इस सिद्धान्त का मुख्य आधार यह था कि राजस्व एकत्रित किया जाय और शांति व व्यवस्था स्थापित की जाय।

इस विधि के अंतर्गत फौजदारी न्याय का प्रशासन अच्छा था। दीवानी मुकदमों में निश्चित कानून नहीं थे और ब्रिटिशों के समक्ष उनके न्याय भावना को उभारने के लिए स्थानीय परंपरायें प्रस्तुत की जाती थीं। पर यहां पर न्यायाधीश की इच्छा ही प्रधान होती थी। जिले के अधिकारी के हाथ में कार्यपालिका, पुलिस और न्यायपालिका तीनों की शक्ति थी। जनसाधारण की कठिनाइयां दूर करने की महत्वाकांक्षा कहीं नहीं थी। वैसे तो पंजाब में इसका कार्य प्रशंसनीय था पर अन्य स्थानों पर इसमें एक ही विशेषता आ पायी कि कम लोगों को नियुक्त करने की आवश्यकता पड़ी।[1]

सैनिक और सामरिक परिवर्तन—डलहौजी के काल में नये क्षेत्रों के अपहरण ने प्रशासन के केन्द्र और सैनिक महत्ता का स्थान बंगाल से उत्तर पश्चिम की ओर पहुंचा दिया। पंजाब पर अधिकार के कारण ब्रिटिश सीमाएं अफगानिस्तान से मिल गईं और इस तरह वह मध्य एशिया में रूसी आपदा के निकट आ गया। इसके कारण कुछ सैनिक और सामरिक परिवर्तन आवश्यक हो गये। इसे डलहौजी ने प्रारंभ किया।

बंगाल तोपखाना का मुख्य केन्द्र कलकत्ता से हटाकर मेरठ ले आया गया। सच्चाई तो यह थी कि सेना उत्तर की ओर आगे बढ़ा दी गई और स्थल सेना का मुख्य केन्द्र शिमला में स्थापित किया गया। डलहौजी में एक राजनयन की दूरदर्शिता थी। वह यह जानता था कि उपाधियों और वृत्तों का छीना जाना और वह भी विशेषकर अवध में भारतीय सिपाहियों में विरोध की स्थिति पैदा करेगा। इसीलिए उसने सैनिकों को घटाने, कमजोर करने और बांटने की तिहरी नीति अपनायी। साथ ही पंजाब में एक अनियमित सेना का गठन किया गया और गोरखा रजीमेण्ट बनाने को प्रोत्साहन दिया गया। लार्ड डलहौजी ने गृह अधिकारियों के पास यह

---

1 हंटर मार्क्विस आफ डलहौजी (इंडियन रीप्रिण्ट 1962), पृ० 128 131।

फ्रियर के शब्दा मे इसकी भर्त्सना के लिए कहा जा सकता है कि "करोडो लोगो के लिए विनष्टकारी विधान बनाने का प्रयास चलता रहा। यह जानने की कोई चेष्टा नही हुई कि उनका किसमे हित है या अहित। उनके विद्रोह से ही उनकी आवश्यकता आकी जाती थी।" सर सैय्यद अहमद ने भी इसकी भर्त्सना की और इस तथ्य सबधित सभी बातें 1857 के विद्रोह मे सामने आ गई।[1] अग्रेजी लॉ कमीशन की नियुक्ति को जनता और भारत सरकार दोना न उचित नही माना। गृह सरकार को भारतीय विधायिका म हस्तक्षेप का इस कारण पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ जिसने भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल को मात्र एन रजिस्टर में दर्ज करने वाली एक सस्था बना दिया।

विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य भी पूरा नही हुआ। धन वसूली पर केन्द्र का ही नियत्रण बना रहा। यही बात विधान और अन्य समस्याओ क सबध म भी कही जा सकती है। भारतीय नागरिक सेवाओ हेतु प्रतियोगिता परीक्षाओ का प्रारभ होना भी पूर्ण काय के रूप म सामन नही आ पाया। परीक्षायें इगलैण्ड मे होती थी जहा स्पष्टतया केवल सपन्न परिवार के भारतीय ही जा पाते थे। लबी यात्रा की कठिनाइया पर्याप्त व्यय और एक नये माहौल मे प्रतियोगिता भारतीयो के लिए अनेक कठिनाइया उपस्थित करते थे। भारत और इगलण्ड मे एक साथ परीक्षायें हो यह आवाज अभी अति धीमी थी। समानता के अवसर की बात इस तरह एक ढकोसला ही थी।

फिर भी भारत मे ससदीय पद्धति वाले शासन की दिशा मे एक कदम बढ गया था। वैसे यह बात ऐक्ट निर्माताओ की भी इच्छा के विपरीत थी। बोर्ड आफ कट्रोल के प्रेसीडेन्ट सर चाल्र्स वुड ने कहा, "मैं इसकी ओर (भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल) कुछ भारतीय नवजवानो की तरह नही देखता जो इसे भारत मे सवैधानिक ससदीय पद्धति का केन्द्र मानते हैं।" पर यह सच ही कहा गया है कि वुड "न तो पहला और न अतिम विधायक था जो इस बिल के परिणाम को रोक सका। आशा के विपरीत कौंसिल जल्दी ही आग्ल भारतीय सदन म परिवर्तित हो गया। इसने कार्यपालिका के कार्यों पर प्रश्न किये और गुप्त कागजात अपने समक्ष रखवाये। विधान बनाने की योजना गृह अधिकारियो के समक्ष रखने की अनुमति पर रोक लगा दी गई और इसे विचारार्थ कौंसिल के सामने रखकर ही वहा भेजा जा सकता था। गृह अधिकारियो की इच्छा के अनुकूल ही सदा कानून पारित नही होने थे और कौंसिल विधान बनाने के अधिकार की स्वतत्रता पर जोर देती थी। यदि अन्य धाराओ को छोड भी दिया जाय तो केवल लेजिस्लेटिव कौंसिल सबधी प्राविधान ही इस ऐक्ट को 19वी सदी का एक महत्त्वपूर्ण सवैधानिक कदम सिद्ध कर देते हैं।

1 अहमद सर सय्यद यसेज आन काजज आफ इडियन रिवाल्ट (एम० एन० लीह द्वारा अनूदित)

प्रशासकीय सुधार

नान रेग्युलेशन प्रथा—लाड डलहौजी के काल का एक महत्त्वपूण सुधार यह था कि तत्कालीन विधियों और नियमो को नव प्राप्त क्षेत्रो पर लागू करने के स्थान पर उसने चाहे वे उसे लाभपूण हो या हानिपूण, इन क्षेत्रो को 'नान रेग्युलेशन प्रथा' के अतगत रख दिया। इसके अतगत उस क्षेत्र के स्थानीय परम्पराओ और कानूनो का तबतक ध्यान रखा जाता था जबतक कि वे ब्रिटिशो के याय भावना पर प्रहार न करें। स्थानीय प्रशासन एक कमिश्नर के अधीन रखा गया जो सीधे गवनर जनरल के प्रति उत्तरदायी होता था। इस सिद्धा त का मुख्य आधार यह था कि राजस्व एकत्रित किया जाय और शाति व व्यवस्था स्थापित की जाय।

इस विधि के अतगत फौजदारी याय का प्रशासन अच्छा था। दीवानी मुकदमा मे निश्चित कानून नही थे और ब्रिटिशो के समक्ष उनके याय भावना को उभारने के लिए स्थानीय परपरायें प्रस्तुत की जाती थी। पर यहा पर यायाधीश की इच्छा ही प्रधान होती थी। जिले के अधिकारी के हाथ मे कायपालिका, पुलिस और यायपालिका तीना की शक्ति थी। जनसाधारण की कठिनाइया दूर करने की महत्त्वाकाक्षा कही नही थी। वैसे तो पजाब म इसका काय प्रशसनीय था पर अ य स्थानो पर इसमे एक ही विशेषता आ पायी कि कम लोगो को नियुक्त करने की आवश्यकता पडी।[1]

सनिक और सामरिक परिवतन—डलहौजी के काल मे नये क्षेत्रा के अपहरण ने प्रशासन के के द्र और सैनिक महत्ता का स्थान बगाल से उत्तर पश्चिम की ओर पहुचा दिया। पजाब पर अधिकार के कारण ब्रिटिश सीमाए अफगानिस्तान से मिल गइ और इस तरह वह मध्य एशिया म रूसी आपदा के निकट आ गया। इसके कारण कुछ सैनिक और सामरिक परिवतन आवश्यक हो गय। इसे डलहौजी ने प्रारभ किया।

बगाल तोपखाना का मुख्य के द्र कलकत्ता से हटाकर मेरठ ले आया गया। सच्चाई तो यह थी कि सना उत्तर की ओर आग बढा दी गई और स्थल सेना का मुख्य के द्र शिमला म स्थापित किया गया। डलहौजी म एक राजनयन की दूरदर्शिता थी। वह यह जानता था कि उपाधियो और वृत्ता का छीना जाना और वह भी विशेषकर अवध म भारतीय सिपाहिया म विरोध की स्थिति पैदा करेगा। इसीलिए उसा सनिका का घटान, कमजोर करने और बाटने की नित्री नीति अपनायी। साथ ही पजाब म एक अनियमित सेना का गठन किया गया और गारखा रजीमण्ट बनाने को प्रोत्साहन दिया गया। लाड डलहौजी न गह अधिकारिया के पास यह

---

1 हटर मार्क्विस आफ डलहौजी (इडियन रीप्रिन्ट 1962) पृ० 128 131।

प्रस्ताव भी भेजा कि भारत में और अंग्रेज सेना भेजी जाय। पर ऐसा इसलिए संभव नहीं हुआ क्योंकि इंग्लैण्ड उस समय यूरोप में रूस के साथ फंसा हुआ था। डलहौजी स्वयं कौंसिल सहित शिमला चला गया जहाँ से वह अधिक सुविधा से सारे काम कर सकता था।

ब्रिटिश सेना में वृद्धि के अतिरिक्त, डलहौजी ने इस क्षेत्र में कई अन्य प्रस्ताव भी किए जिन्हें यदि स्वीकार कर लिया जाता तो डलहौजी के समर्थकों के अनुसार 1857 का विद्रोह भी न होता। पर यह बात पूर्णतया सच नहीं मालूम पड़ती। विद्रोह के बीज पहले ही पड़ चुके थे। यह काम डलहौजी के आगमन के पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था। डलहौजी ने इस बीज के अंकुरण और प्रस्फुटन को आगे बढ़ाया। इस तरह यह स्पष्ट है कि विद्रोह तो होना ही था। पर हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि यदि डलहौजी के प्रस्ताव मान लिए जाते तो इसे कुछ काल के लिए टाला जा सकता था।

रेल और तार—डलहौजी जो एक महान प्रशासक था, को ही रेलवे लाइनों के निर्माण और तार की लाइनें बिछाने का श्रेय जाता है। इस उद्देश्य के लिए उसने अंग्रेजी कार्पोरेशनों को ठेके दिए, उन्हें सारी सुविधा प्रदान की। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा लगाए गए धन पर ब्याज देने के लिए भी आश्वस्त किया गया। भारत सरकार ने इसका उत्तरदायित्व लिया। वैसे इन कार्पोरेशनों ने स्वयं भी पर्याप्त लाभ कमाया।

इसलिए इन्हे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अस्त्र ही माना जाना चाहिए जिन्होंने ब्रिटिश शासन को शक्ति प्रदान की।

पर इन पर लगे धन पर ब्याज अदायगी की गारन्टी व्यापारिक दृष्टि से एक अनुचित प्रस्ताव था क्योंकि यह भारतीय करदाता की कीमत पर लगाया गया था। इस तरह यह रचना काय सैनिक साम्राज्यवाद का वह विकास था जो आर्थिक दिशा की ओर अग्रसर हो रहा था।

इसमे सदेह नही है कि इन कार्यो के कारण भारत समाज मे एकरूपता आई। जब लोग देश के एक कोने से दूसरे कोने तक आ जा सकने लगे, जब सभी ऊच-नीच एक ही डिब्बे मे यात्रा के लिए बैठन लग तो उनम निकटता आई और उनकी जाति भावना धूमिल पडने लगी। इन कार्यों मे हमारी राजनीतिक जागरूकता को जो बढावा मिला उसका जिक्र हम आगे चलकर करेंगे। पर ये सभी परिणाम डलहौजी की चाह के अनुसार नही थे और डलहौजी को उसकी कल्पना भी न थी। यदि उसने इस सभावना की कल्पना की होती तो वह अपनी शक्ति किसी और दिशा म लगा देता।

डाक-व्यवस्था—देश की डाक व्यवस्था म डलहौजी न कुछ प्रशसनीय सुधार किये। तत्कालीन प्रथा म भ्रष्टता थी जिसमे देर भी होती थी और कठिनाई भी आती थी। डाकदरो मे एकरूपता नही थी और पत्रा पर प्रापक का धन सीधे देना पडता था इस कारण सदा आवश्यकता से अधिक देना पडता था।

डलहौजी ने इस क्षेत्र मे सुधार हेतु एक कमीशन नियुक्त किया। इसके प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए 1/2 तोला वजन के पत्रो पर 1/2 आना लेना प्रारभ किया गया। यह धन पत्र प्रेषक से लिया जाता था जिसे वह धन के रूप मे न देकर टिकटो के रूप मे प्रदान करता था। डाकखाने इस तरह आय के अच्छे स्रोत बन गय।[1]

व्यापारिक सुधार—इसके अतिरिक्त डलहौजी स्वतत्र व्यापार की नीति मे विश्वास करता था। उसन भारत के सभी बदरगाहो का स्वतत्र घोषित किया। लाइट हाउसज और बदरगाहो पर ठहरने की व्यवस्था और ठीक की गई। स्वतत्र व्यापार और पूजी के रास्ते मे आने वाली बाधाआ को दूर किया गया।

डलहौजी की इस नीति के परिणाम इस कारण दूरगामी हुए क्योंकि इन्होंने देश के आर्थिक शोषण के प्रभावी हथियार के रूप मे काय किया। भारतीय बाजार ब्रिटिश औद्योगिक माल के लिए खोल दिये गये जिससे उनके सस्ते होने के कारण भारतीय उद्योग रसातल को जाने लगे। भारत पुन कृषि की ओर लौट पडा जिस-पर दबाव बढ गया। कृषि की आय कई मदो मे विभाजित हो गई जिससे गरीबी

1 देखें, दास एम० एन० इकोनामिक ऐण्ड सोशल डेवलपमेण्ट आफ माडन इण्डिया, (1848 1556) पृ० 161 199।

प्रस्ताव भी भेजा कि भारत मे और अग्रेज सेना भेजी जाय। पर ऐसा इसलिए सभव नही हुआ क्योंकि इग्लैण्ड उस समय यूरोप म रूस के साथ फसा हुआ था। डलहौजी स्वय कौंसिल सहित शिमला चला गया जहा से वह अधिक सुविधा से सारे काय कर सकता था।

ब्रिटिश सेना मे वद्धि के अतिरिक्त, डलहौजी ने इस क्षेत्र मे कई अन्य प्रस्ताव भी किय जिन्ह यदि स्वीकार कर लिया जाता तो डलहौजी के समयका क अनुसार 1857 का विद्रोह भी न होता। पर यह बात पूणतया सच नही मालूम पडती। विद्रोह के बीज पहले ही पड चुके थे। यह काम डलहौजी के आगमन के पूव ही प्रारम्भ हो चुका था। डलहौजी न इस बीज के अकुरण और प्रस्फुटन को आगे बढाया। इस तरह यह स्पष्ट है कि विद्रोह तो होना ही था। पर हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि यदि डलहौजी के प्रस्ताव मान लिये जाते तो इसे कुछ काल के लिए रोका जा सकता था।

रेल और तार—डलहौजी, जो एक महान प्रशासक था, को ही रेलवे लाइनो के निर्माण और तार की लाइनें बिछाने का श्रेय जाता है। इस उद्देश्य के लिए उसने अग्रेजी कार्पोरेशनो को ठेके दिये, उन्ह सारी सुविधा प्रदान की। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा लगाये गये धन पर ब्याज देने के लिए भी आश्वस्त किया गया। भारत सरकार ने इसका उत्तरदायित्व लिया। वसे इन कार्पोरेशनो न स्वय भी पर्याप्त लाभ कमाया।

पर डलहौजी के आलोचक उसकी इस प्रशासकीय सफलता मे भी उसकी साम्राज्यवादी शोषण की प्रवत्ति का दशन करते हैं। उनका विचार है कि उसके काल म जो थोडी बहुत रेलवे लाइनें बनी उनका निमाण सैनिको को लाने ले जाने के लिए सामरिक दष्टि म किया गया। भारतीय करदाताओ के ऊपर बोझ डालकर इनका निमाण हुआ जिसस ब्रिटिश पूजीपतियो को अत्यधिक लाभ हुआ। इसस ब्रिटिश पूजी भी विकसित हुई। 1879 तक भारत मे रेलवे लाइनो के निर्माण पर 9 करोड 80 लाख पौण्ड व्यय हो चुके थे। भारतीयो मे असतोष की आग सुलग रही थी और किसी भी दिन विद्रोह की आशा थी। डलहौजी न निश्चित ही सोचा होगा कि तार की लाइन प्रशासको को एक दूसरे से सपक बनाये रखने म सहायता करेंगी और इनसे जनमानस पर निगाह रखने म सहायता मिलेगी। रेलवे लाइनें भी इन कठिनाइयो को पार पाने म सहायता करेंगी। डलहौजी ने स्वय इसमे अग्रेजो के लिए बाजारो क निर्माण की ओर इगित करते हुए कहा, 'दुनिया के इस ओर नये बाजारो का अभ्युदय हो रहा है जिनकी परिस्थितिया ऐसी हैं कि कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति उनका मूल्य नहीं आक सकता और न उनकी भविष्य सीमा ही।"[1]

1 स्टर पूर्वोक्त प० 136।

इसलिए इन्हे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अस्त्र ही माना जाना चाहिए जिन्होंने ब्रिटिश शासन को शक्ति प्रदान की।

पर इन पर लगे धन पर ब्याज अदायगी की गारन्टी व्यापारिक दृष्टि से एक अनुचित प्रस्ताव था क्योंकि यह भारतीय करदाता की कीमत पर लगाया गया था। इस तरह यह रचनात्मक सैनिक साम्राज्यवाद का वह विकास था जो आर्थिक दिशा की ओर अग्रसर हो रहा था।

इसमे सदेह नही है कि इन कार्यों के कारण भारत समाज मे एकरूपता आई। जब लोग देश के एक कोने से दूसरे कोने तक आ जा सकने लगे, जब सभी ऊच-नीच एक ही डिब्बे मे यात्रा के लिए बैठने लगे तो उनमे निकटता आई और उनकी जाति भावना धूमिल पडने लगी। इन कार्यो मे हमारी राजनीतिक जागरूकता को जो बढावा मिला उसका जिक्र हम आगे चलकर करेगे। पर ये सभी परिणाम डलहौजी की चाह के अनुसार नही थे और डलहौजी को उनकी कल्पना भी न थी। यदि उसने इस सभावना की कल्पना की होती तो वह अपनी शक्ति किसी और दिशा म लगा देता।

डाक-व्यवस्था—देश की डाक व्यवस्था म डलहौजी ने कुछ प्रशसनीय सुधार किय। तत्कालीन प्रथा म भ्रष्टता थी जिसमे देर भी होती थी और कठिनाई भी आती थी। डाकदरो मे एकरूपता नही थी और पत्रा पर प्रापक को धन सीधे देना पडता था इस कारण सदा आवश्यकता से अधिक देना पडता था।

डलहौजी ने इस क्षेत्र म सुधार हतु एक कमीशन नियुक्त किया। इसके प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए 1/2 तोला वजन के पत्रा पर 1/2 आना लेना प्रारभ किया गया। यह धन पत्र प्रेषक स लिया जाता था जिसे वह धन के रूप मे न देकर टिकटो के रूप मे प्रदान करता था। डाकखाने इस तरह आय के अच्छे स्रोत बन गय।[1]

व्यापारिक सुधार—इसके अतिरिक्त डलहौजी स्वतत्र व्यापार की नीति मे विश्वास करता था। उसन भारत के सभी बदरगाहा का स्वतत्र घोषित किया। लाइट हाउसज और बदरगाहो पर ठहरने की व्यवस्था और ठीक की गई। स्वतत्र व्यापार और पूजी के रास्ते मे आने वाली बाधाओ को दूर किया गया।

डलहौजी की इस नीति के परिणाम इस कारण दूरगामी हुए क्योकि इन्होने देश के आर्थिक शोषण के प्रभावी हथियार के रूप मे काय किया। भारतीय बाजार ब्रिटिश औद्योगिक माल के लिए खोल दिये गय जिससे उनके सस्ते होने के कारण भारतीय उद्योग रसातल को जाने लग। भारत पुन कृषि की ओर लौट पडा जिस-पर दबाव बढ गया। कृषि की आय कई मदा म विभाजित हो गई जिसस गरीबी

---

1 देखें दास एम० एन० इकोनामिक ऐण्ड सोशल डेवलपमेन्ट आफ माडन इडिया, (1848 1556) पृ० 161 199।

का बोलबाला हो गया।

भारत मे कच्चे माल का प्रेषण बढ गया। 1848 से 1856 के बीच जो कपास बाहर भेजी गई उसकी कीमत 15 लाख पौंड से बढकर 35 लाख हो गई। और अनाज का मूल्य 89 हजार पौण्ड से बढकर 2 लाख 90 हजार पौण्ड हो गया। इसके साथ ही ब्रिटिश उत्पादित माल का आवागमन बढकर 15 लाख पौण्ड से 30 लाख पौण्ड हो गया। यही कच्चा माल जब बाहर भेजा जाता तो इससे अत्यधिक कम धन प्राप्त होता और जब इसमे पक्का माल बनकर भारत के बाजारो मे आता तो इसके लिए बहुत धन देना पडता। इस तरह व्यापार का सतुलन बिगड गया और भारत की आर्थिक स्थिति की पर्याप्त हानि हुई। पूरा तटीय उद्योग ब्रिटिश के हाथ मे चला गया। भारतीय पूजी का, ब्रिटिश की भेदभावपूर्ण नीति तथा युद्ध के कारण, विनाश हो गया। डलहौजी के सदेच्छायुक्त व्यापारिक सुधारो का यह परिणाम था।

सार्वजनिक निर्माण विभाग—सार्वजनिक निर्माण विभाग को भी डलहौजी ने नये आधारो पर सगठित किया। पहले यह सैनिक बोर्ड के विभाग के हाथो मे था जिसका नतत्व एक मुख्य अभियता करता था और जिसके कई कार्यपालिका अधिकारी सहायतार्थ होते थे। ये सभी अधिकारी अग्रेज होते थे। भारतीयो के इस सेवा मे प्रशिक्षण हेतु लडकी और अन्य स्थानो पर इजीनियरिंग कॉलिज खोले गये। इस तरह स्थापित सार्वजनिक निर्माण विभाग ने तुरन्त सडको, नहरो, पुलो और अन्य जनहितकारी कार्यों का निर्माण व मरम्मत का कार्य अपने हाथो मे लिया। अल्पकाल ही मे विभाग के लाभपूर्ण कार्य सामने आने लगे।

शिक्षा नीति—मोरलैण्ड और चटर्जी ने लिखा है कि "डलहौजी का कार्यकाल विस्तृत जन-सूचनार्थ नीति अपनाने के लिए याद किया जाना चाहिए।[1] डलहौजी के काल के पूर्व शिक्षा के क्षेत्र मे की गयी प्रगति बहुत बडी नही थी। वैसे लार्ड विलियम बटिक द्वारा शिक्षा के लिए कुछ कार्य किया गया। उसने सरकार द्वारा इस क्षेत्र मे अपनायी जानेवाली नीति का निर्धारण किया। इस नीति के अपनाये जाने के बाद नये विद्यालय और कॉलिज खोले गये। बैटिक ने कलकत्ता मे, पश्चिमी औषधि विज्ञान की भारतीयो को शिक्षा हेतु एक मेडिकल कॉलिज खोला। ब्रह्म समाज ने कई सस्थाए खाली। वर्नाक्युलर शिक्षा वसे तो पिछड गयी पर लार्ड आकलैण्ड ने एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल' को 500 रु० मासिक की सहायता प्रदान की। स्थानीय क्षेत्र म एलफिन्स्टन न बम्बई क्षेत्र म कार्य किया। आगरा मे इसी तरह का कार्य टाम्सन ने और मद्रास म मुनरो ने किया। टाम्सन ने तो एक रुचिकर प्रयोग प्रारभ किया जिसे हल्काबदी कहते थे। इसके अतर्गत राजस्व पर

1 मोरलैण्ड एण्ड चटर्जी ए शार्ट हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० 358।

1% अधिभार से प्रत्येक गाव मे एक प्राइमरी स्कूल खोला गया। इसी तरह प्रत्येक तहसील मे एक मिडिल स्कूल और प्रत्येक जिले म एक हाई स्कूल स्थापित किया गया।

1854 से पूव अग्रेजी शिक्षा के विकास एव ईसाई धम के प्रचाराथ कदम ईसाई मिशनरियो द्वारा उठायेग य। उनकी कक्षाओ मे बाइबिल का पढाया जाना अनिवाय कर दिया गया क्योकि उनका घोषित उद्देश्य ही यह था कि "उपयुक्त धम निरपेक्षीय शिक्षा जो निश्चित रूप से धार्मिक शिक्षा की ओर ले जाती थी, दोनो के समागम से ही सभव थी।" 1716 मे डेनमाक की मिशनरियो ने मद्रास मे अध्यापको के प्रशिक्षण के लिए प्रथम महत्त्वपूण शिक्षा सस्था खोली। 1717 मे इसी तरह के दो विद्यालय और खोले गय। अग्रेजी विद्यालय भी खोले गये। डेविड हेयर, टामस, केरी, माशमैन और वाड ने 1793 मे सेरामपुर मे अपनी तीव्र कारवाइया प्रारभ की। बम्बई मे विल्सन कॉलेज और मद्रास मे क्रिश्चियन कॉलेज मिशनरियो की महान सफलता के प्रतीक थे। आगरा का सेण्ट जान्स कालेज 1853 मे प्रारभ किया गया। नागपुर, मछलीपट्टम और अन्य स्थानो पर भी सस्थाए प्रारभ की गयी जो तेजी से आगे बढी और जिसके कारण बहुत से भारतीय ईसाई धम के बधन मे जकड गये।

1854 का वुड का डिस्पच—पर भारतीय शिक्षा के इतिहास मे परिवतन-बिन्दु का श्रीगणेश 1854 मे डलहौजी के काल मे ही हुआ। इस वप के पूव अग्रेजी प्रथा और भाषा दोनो को, जिसे राजकाज की भाषा स्वीकार किया गया था, पूव के लोगो ने मानने से इनकार किया था। आकलैंड ने उसके लिए पहले ही थोडी-सी छूट दे रखी थी। जिसका विवरण ऊपर आ चुका है। पर वह पयाप्त नही था। इसके लिए नियुक्त एक ससदीय समिति ने इस सबध मे अपनी सस्तुतिया दी जिसके आधार पर बोड आफ कट्रोल के अध्यक्ष सर चाल्स वुड ने 1854 म एक डिस्पैच तैयार किया जो इस क्षेत्र मे कई वर्षो तक दिशा निर्देश करता रहा। सर वुड ने घोषणा की कि भारत मे ब्रिटिशो को 'ऐसी जाति के लोगो से निबटना पडता है जो धम म आबद्ध है और परपराओ से घिरे। हमारा तो कहना है कि तीव्र उत्थान म इनसे बाधा ही पडती है।" इस कारण ब्रिटिश दृष्टिकोण मे परिवतन की अपेक्षा है जिसके लिए उसने अपन डिस्पैच म निम्न सस्तुतिया की। इसी को "1854 का वुड डिस्पैच" कहा जाता है।

डिस्पैच जो कई धाराओ मे बटा था, ने निम्न सिद्धान्तो पर जोर दिया। प्रथम, भारतीयो के शैक्षिक हित की रक्षा का भार सरकार को अपने कधो पर लेना चाहिए। दूसरे, शिक्षा की व्यवस्था और नीति यह होनी चाहिए कि यूरोप की कला, विज्ञान और दशन की शिक्षा यहा के लोगो को भी प्राप्त हो जिससे कि कपनी के उत्तरदायित्वपूण काय ऐसे शिक्षाप्राप्त भारतीय अपने कधो पर ल

सकें। तीसरे, शिक्षा के माध्यम के रूप मे सभी स्तरो पर अंग्रेजी पर जोर न दिया जाय। इसका प्रयोग तभी किया जाना चाहिए जब इसकी जानकारी पर्याप्त रूप मे हो जाय। चौथे, भारतीय भाषाओ के अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जिससे कि जनता और सरकारी कर्मचारियो म आदान प्रदान सरल हो सके। पाचवें, शिक्षा के निश्चित स्तर तक यूरोपीय ज्ञान भी शिक्षा वर्नाक्युलर भाषा म भी की जानी चाहिए। छठे, मैकाले के फिल्ट्रेशन सिद्धान्त को, जिसके अतगत केवल उच्च श्रेणी के लोगा को शिक्षा देने को कहा गया था और जिसका आधार यह विश्वास था कि ऐसा करने पर यह छन छनकर जनता तक पहुच जायगा त्याग देने को कहा गया। इसके स्थान पर विद्यार्थी विद्यालय चालन की सस्तुति की गयी। सातवे, शिक्षा-सस्थाओ को सहायता देने की प्रथा निश्चित नियम बनाकर प्रारभ की जानी चाहिए जिससे प्राइवेट शिक्षा सस्थाए प्रोत्साहित हो। आठवें, अधिक ध्यान प्रारभिक विद्यालयो की ओर दिया जाना चाहिए। नव, छात्रो को छात्रवत्ति देने के लिए एक विस्तत प्रथा का प्रारभ किया जाना चाहिए। दसवें कानून, डाक्टरी, कृषि, विद्यालयो म प्रशिक्षण विधि के लिए व्यावसायिक शिक्षा-सस्थाओ की स्थापना की जानी चाहिए। ग्यारहवें, नारी शिक्षा के लिए विशेष सुविधा और प्रोत्साहन प्रदान किया जाना चाहिए। और बारहवें, पहले से चली आ रही सरकारी सस्थाओ को चलते रहना चाहिए और उसमे नयी सस्थाए जोडी भी जानी चाहिए। मिडिल स्कूलो की स्थापना पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए।

जहा तक शिक्षा की मशीनरी का प्रश्न था यह सस्तुत किया गया कि प्रत्येक प्रान्त मे सामान्य शिक्षा का डाइरेक्टर के अधीन एक सार्वजनिक शिक्षा विभाग स्थापित किया जाय। डाइरेक्टर की सहायता के लिए निरीक्षणार्थ अधिकारी नियुक्त किये जाए जो अलग-अलग प्रान्तो के शक्षिक काय की रिपोर्टें समय समय पर प्रस्तुत करें। उच्चतर शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु तथा डिग्री प्रदान करने हेतु सरकार सबद्धता वाले विश्वविद्यालय या परीक्षा वाले विश्वविद्यालयो की स्थापना कर सकती थी। प्रत्येक विश्वविद्यालय म एक चासलर और एक वाइसचासलर होना चाहिए जो लदन विश्वविद्यालय की पद्धति पर बनाया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय म एक सीनेट होनी चाहिए जो परीक्षा के लिए नियम बनाय और व्यय पर नियत्रण रखे। इसे शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रो जसे भाषा विधि और इजीनियरिंग विभागो मे प्रोफेसर पद पर भी नियत्रण का अधिकार होना चाहिए। बम्बई कलकत्ता, और मद्रास म विश्वविद्यालय की स्थापना कर एक अच्छे काय का श्रीगणेश किया जा सकता है क्योकि यहा पर इतनी सस्थाए स्थापित हो चुकी थी जहा से विश्वविद्यालय म शिक्षा प्राप्त करने के लिए योग्य अभ्यर्थी प्राप्त हो सकते थे। इस विश्वविद्यालय के अधीन कालेज आ सकते थ जो इटरमीडिएट और

डिग्री स्तर तक की शिक्षा प्रदान कर सकते थे। कॉलेजो के अधीन प्राइमरी, मिडिल, हाई और ऐंग्लो वर्नाक्युलर स्कूल का जाल होगा जहा भारतीय वर्नाक्युलर भाषा मे निम्न कक्षाओ मे शिक्षा दी जा सकती थी।

वुड का डिस्पैच भारत की शिक्षा का 'मैग्ना कार्टा' कहलाता है। इसने निश्चित ढग से उस शिक्षा मशीनरी की व्याख्या की जो भारत म भविष्य मे प्रयोग मे आने जा रही थी। प्राइवेट शिक्षा सस्थाओ की सहायता प्रथा प्रारम करना एक महत्वपूर्ण कदम था जिससे व्यक्तिगत स्तर पर इस क्षेत्र मे कार्य करने वाली समाजसेवी सस्थाओ को बल मिला। बहुधधी विद्यालयो की स्थापना का कदम भी सराहनीय था। नारी शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा को भी इसम पर्याप्त स्थान मिला। पर इसम कुछ दोष भी थे जिसके कारण सरकार इसकी धाराओ मे निहित उद्देश्यो से हटने म सफल हो गयी।

बहुधधी विद्यालयो को उदाहरणार्थ उचित प्रोत्साहन नही प्राप्त हुआ। धार्मिक और शारीरिक शिक्षा पर भी बल नही दिया गया। जो विश्वविद्यालय स्थापित हुए उन्होने किसी उच्च साम्कृतिक उद्देश्यो की पूर्ति नही की बल्कि वे परीक्षण सस्थाए ही बनकर रह गयी। पर यह सोचते हुए कि यह पहला कदम था, यह उचित था। आश्चर्य तो यह है कि इसका लेखक शिक्षापद्धति के इतनी तह मे कैसे पहुच सका।

1853 मे डलहौजी की पत्नि का देहान्त हो गया और उसके बाद के वर्ष डलहौजी के लिए गुजारना कठिन हो गया। वह 1856 मे भारत मे अपने पद से कार्यमुक्त हुआ। कलकत्ता मे अपने विदाई समारोह के अवसर पर उसने कहा, "मैं थक गया हू और परेशान हू। मेरी पदमुक्ति के अतिरिक्त कोई इच्छा विचार और आवश्यकता नही है। मैं केवल अब इसी के योग्य हू।" 1857मे उसने लिखा, "मैं कमजोर हो गया हू, दृढता के शक्ति के अयोग्य हो गया हू, मेरी जडवत नाक और गला मुझे कष्ट देते रहते हैं, भूख नही लगती—बस यह समाप्ति है।"[1] जब भारत मे विद्रोह प्रारम्भ हुआ तो वह इतना कमजोर था कि वह ससद मे बोलने तक की स्थिति मे नही था। पर चूकि वह स्वय अभियोग मे फसा था और अपनी सुरक्षा नही कर पा रहा था इस कारण उसके मस्तिष्क की रही-सही शाति भी समाप्त हो गयी थी, उसने 1857 58 का जाडा माल्टा मे बिताया पर फिर भी उसे कोई आराम नही हुआ। अपने मृत्यु से दो वर्ष पूर्व उससे अपने एक भारतीय मित्र को लिखा, 'मेरे मित्र, सावधान रहना। तुम मेरा बेवकूफीभरा उदाहरण सामने क्यो रखते हो? यदि तुम्हारे स्वास्थ्य का तकाजा हो तो तुम्हे भारत मे नही रहना चाहिए। लगता

1 हटर डब्लू॰ डब्लू॰ पूर्वोद्धत (भारतीय रीप्रिंट), पृ॰ 32 33।

पहले की ही तरह इस बीस वर्ष के लिए नहीं बढाया गया था बल्कि इग्लैंड के ताज की इच्छा के आधार पर किसी भी समय तक के लिए बढाया गया था। इससे ताज द्वारा भारत म अपनी इच्छानुसार शक्ति अधिग्रहण की भूमिका तैयार हो गई। कैनिंग के आये अभी कठिनाई से दो वर्ष पूरे हुए थे कि ऐसा ही घटित भी हुआ। पर ताज द्वारा शक्ति अधिग्रहण के पूर्व 1857 का विद्रोह हो चुका था। इस बीच पीटर ग्राण्ट, बार्स पीकाक, सरजान लो, जे ए डोरिन और जनरल ऐंसन जस कौंसिल के प्रतिष्ठित सदस्यों की सहायता से कैनिंग ने अपना कार्य प्रारभ कर दिया।

फारस से युद्ध—भारत म सबसे प्रथम महत्त्वपूर्ण समस्या, जिसका कैनिंग को सामना करना पडा, वह था रूस के पक्षधर फारसी सैनिको का हेरात म प्रवेश। हेरात अफगानिस्तान के पश्चिमी भाग मे पडता था और इसे कुछ अग्रेज 'भारत की कुजी' कहते थे। कैनिंग को डर था कि कही रूस के प्रभाव से "फारस प्रभावित न हो जाए। एसी स्थिति मे उसके पडोसी हमारे लिए सदा कष्ट का सबब बन जायेंगे।"[1] इस समय ब्रिटिश का सबध फारस से अच्छा नहीं था क्योंकि वहा के दरबार म ब्रिटिश राजदूत को अपमान झेलने के कारण विरोध म देश छोड देने का निर्णय लेना पडा था। ब्रिटिश मन्त्रिमडल भारत पर रूसी खतरे के मसले को लेकर बटा हुआ था। यदि यह डर होता भी तो 'ड्युक आफ अरगील' के अनुसार "इसके विरुद्ध यूरोप मे अधिक प्रभावी ढग से" कदम उठाया जा सकता था।

पर कैनिंग ने रूस के खतरे को सच मानकर तथा यह सोचकर कि फारस को उसके उद्देश्यो से युद्ध द्वारा ही विरत किया जा सकता है, उसने ईस्ट इडिया कपनी की ओर से 1 नवम्बर 1856 को युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटिश सेना आगे बढी। फारस की खाडी म खरक पर 4 दिसबर को और बुशायर पर 10 दिसबर को अधिकार कर लिया गया। अधिक युद्ध करने की आवश्यकता नहीं पडी और 4 मार्च 1857 को एक सधि हो गयी जिसके द्वारा फारस के शाह ने हेरात खाली करना स्वीकार किया अपने दरबार मे मरे का स्वागत करना मान लिया और अफगानिस्तान से होने वाले झगडे म भारत सरकार की मध्यस्थता को स्वीकार कर लिया। कुछ लोगो का कहना है कि सधि की शर्तें अति उदार थी क्योंकि जीते हुए खरक और बुशायर को बिना क्षतिपूर्ति के वापस कर दिया गया। पर फारस से सधि बिल्कुल सही समय पर हुई थी क्योंकि इसी समय मेरठ म विद्रोह हो गया और अब बाह्य आक्रमणार्थ सैनिको को भेजने की स्थिति नहीं थी।

अफगानिस्तान—इसी बीच 6 जनवरी को हर्बर्ट एडवर्डस द्वारा अफगानिस्तान

---

1 मक्नागन माइकेल क्लीमेंसी कैनिंग, प 52।

2 वही प० 51।

के दोस्त मोहम्मद के साथ एक मैत्री संधि पर हस्ताक्षर हुए। इसके परिणामस्वरूप ही दोस्त मुहम्मद ने घोषणा की कि, 'मैंने ब्रिटिश सरकार से संधि की है और चाहे जो हो, मैं मृत्युकाल तक इससे बंधा रहूंगा।[1] दोस्त ने अपना वादा पूरा किया और ब्रिटिशों के प्रति भारतीय विद्रोह काल में भी विश्वस्त बना रहा। यदि वह चाहता तो इस समय वह लालच में पड़कर संधि तोड़ सकता था।

अवध—विद्रोह के पूर्व की घटनाओं में अवध अपहरण के बाद कैनिंग ने एक क्रोधी व्यक्ति कावर्ली जैक्सन को यहां का चीफ कमिश्नर बना दिया। पर बाद में 1 जनवरी 1857 को जैक्सन का उत्तराधिकारी हेनरी लारेंस को बनाया गया। इसी के काल में तालुकदारों की बेदखली व गावों में जमींदारों के शोषण की कार्यवाहियां चलती रहीं। वैसे तो यह सब किसानों के हित में था पर किसानों के मन में अपने पुराने मालिकों के प्रति जो आदर था उसके कारण वे उसकी प्रशंसा न कर पाये। इसी कारण दोनों वर्गों में असंतोष की अग्नि प्रज्वलित हुई और अवध ब्रिटिशों के विरुद्ध षड्यंत्र और विद्रोह का एक केंद्र बन गया।

अन्य परिवर्तन—कुछ सैनिक सुधार करने के प्रयत्न भी किये गये। एक आदेश निकाला गया जिसमें यह कहा गया कि भर्ती होने वाले सैनिक को भारत के बाहर कहीं भी सेवा करनी पड़ सकती है। जहां तक सामाजिक सुधारों का प्रश्न है विधवा विवाह के रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर किया गया। एक दूसरे बिल के द्वारा कुलीन ब्राह्मणों में बहुविवाह की प्रथा के विरुद्ध बिल प्रस्तुत किया गया। इस प्रथा के अन्तर्गत एक व्यक्ति कई पत्नियां रखता था। इनमें से कुछ तो पति द्वारा कभी भी नहीं गयी होती थीं और कुछ के साथ पत्नीवत् उसके संबंध नहीं होते थे।''[2] 1856 में शक्तिहीन मुगल सम्राट बहादुरशाह के उत्तराधिकारी का देहान्त हो गया। कैनिंग ने प्रस्ताव किया कि मुगल शासक के नवीन उत्तराधिकारी की मान्यता तभी प्रदान की जायेगी जब वह बादशाह की अपनी उपाधि त्याग देगा और दिल्ली से बाहर रहना स्वीकार करेगा। इससे लोगों में तहलका मच गया। कैनिंग ने असंगठित अर्थ व्यवस्था, घाटे के बजट और ऋण की ओर भी ध्यान दिया जो डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति के परिणामस्वरूप एक गंभीर समस्या बन गया। पर वह कुछ अधिक कर सकता कि फारस का युद्ध और 1857 का विद्रोह सामने आ गया जिसने सभी चीजों को अव्यवस्थित कर दिया। इन समस्याओं को उसने उस समय टालकर ब्रिटिशों के ऊपर आयी आफत का मुकाबला करने का निश्चय किया।

---

1 मकलागन माइकेल क्लीमेन्सी कनिंग पृ० 51।
2 वही पृ० 66।

1857 का विद्रोह

[illegible] लार्ड कैनिंग के काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना 1857 का विद्रोह [illegible] को झकझोर दिया और एक बार तो शक्तिशाली ब्रिटिश को भी [illegible] दिया। इस विद्रोह की प्रकृति के विषय मे अलग-अलग [illegible] हैं। वी० डी० सावरकर जस व्यक्तियो का विचार है कि [illegible] राष्ट्रीय आंदोलन था। सावरकर के अनुसार, इसका महान् [illegible] स्वधर्म और स्वराज्य था (और) इन दो म ही क्रांतिकारी युद्ध के [illegible] हैं।[1] [illegible] अशोक मेहता ने भी इस मत का समथन किया है और [illegible] मे तमाम तर्कों को प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि वैसे तो विद्रोह [illegible] मे सैनिक ही थे, पर इसे एक सैनिक विद्रोह मानना उचित नही [illegible]। इस विद्रोह मे नागरिक भी सनिको से कम नही मारे गय। कुछ स्थानो पर [illegible] ने ही सिपाहियो को विद्रोह करने के लिए उत्साहित किया। जब [illegible] हैवलाक अपने सनिको को नदी के उस पार ले जाना चाहता था। [illegible] नागरिको द्वारा नाव देन से इनकार करना और स्वय भी सहायता न [illegible] इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। इसके अतिरिक्त, जिस तेजी से यह विद्रोह [illegible] से स्पष्ट है कि कुछ क्षेत्रो के जन जन मे इसका कितना प्रभाव था। विद्रोह [illegible] पर मौजूद हिन्दू मुस्लिम एकता भी उसी दिशा की ओर इंगित करत है। मुगल सम्राट बहादुर शाह ने पूरे देश मे गोहत्या बद करन की घोषणा की और [illegible] के शासको को स्पष्ट रूप से लिखा जिसे अशोक मेहता ने इस तरह [illegible] किया है। "भारत पर शासन करने की अब मेरी इच्छा नही है मैं देश के लिए चुने हुए राजाओ के सगठित समूह को अपनी सारी शासकीय शक्ति प्रदान करने के लिए तयार हू।" और यह सब स्पष्ट करता है कि विद्रोह की प्रकृति राष्ट्रीय थी।[2]

य और अपनी स्थिति सुधारने के लिए अवसर की ताक मे थे। रालिंसन भी लिखता है कि यह विद्रोह राष्ट्रीय क्रांति नही थी, "यह सच नही होगा यदि इस विद्रोह को राष्ट्रीय क्रांति कहा जाय, क्योंकि भारतीय राजनीति मे राष्ट्रवाद को कोई स्थान प्राप्त नही था।'[1] सर जान सीले के अनुसार भी यह एक 'पूर्णतया देश-भक्तिहीन और स्वार्थसिद्ध सिपाही विद्रोह था जिसे न तो स्थानीय नेतत्व ही प्राप्त था और न लोकप्रिय समर्थन ही" पी० ई० रावर्टस भी इसी विचार का समर्थन करता है और डॉ० आर० सी० मजुमदार ने भी अपनी पुस्तक द सिप्वाय म्युटिनी एण्ड रिवोल्ट आफ 1857' मे इसी मत को स्वीकार किया है। मौलाना आजाद के विचारो को भी इस संदर्भ मे प्रस्तुत किया जा सकता है। उन्होने लिखा है, 'प्राप्त साक्ष्यो के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचने को बाध्य हैं कि 1857 का विद्रोह ध्यानपूर्वक बनायी गयी, योजना का परिणाम नही था और न ही इसके पीछे तीव्र बुद्धिवाला तत्व ही था यह कुछ व्यक्तियो के या व्यक्तियो के समूह का षडयन्त्र का परिणाम भी नही था। बल्कि जनता के बढ़ते हुए असतोष का परिणाम था देशभक्ति की भावना लोगो मे धर्म की भावना के आधार पर प्रविष्ट करायी गयी और तब लोग विद्रोह के लिये उठ खडे हुए।"

सच तो यह है कि यह सगठित राष्ट्रीय आंदोलन नही था इस तर्क के पक्ष मे तमाम मत दिया जा सकता है। ऐसे मे यही निष्कर्ष निकलेगा कि यह एक सीधा सा सिपाही विद्रोह था जिसका लाभ तमाम स्वार्थी तत्वो ने उठाया। दूर दूर तक विद्रोह वही फला जहा इसका नेतत्व सिपाहियो ने किया। उदाहरणार्थ राजस्थान मे बहुत अधिक विद्रोह नही हुआ क्योंकि यहा पर सिपाहियो के सफल विद्रोह द्वारा कोई पृष्ठभूमि नही तैयार की गयी। ऐसा ही मराठो मे भी हुआ। वैसे तो अभी कुछ ही पूर्व मराठे ब्रिटिशो के हाथो अपमानित हुए थे, पर उनके बीच भी कोई विद्रोह इसीलिए नही हुआ क्योंकि सिपाहियो ने इसे नेतृत्व नही प्रदान किया। इसके अतिरिक्त हमे ऐसे लोगो के विषय मे भी अधिक सूचना नही मिलती जो विद्रोह मे देशप्रेम के कारण सम्मिलित हुए हो। इस कारवाई के बीच ही लगता है किसी ने इस धारणा को सुझा दिया। पर इसके प्रमाण नही प्राप्त होते कि इस दिशा मे इस उद्देश्य हेतु कोई सगठित प्रयास किया गया हो। सामान्य तया स्थानीय कारणो के ही, जैसे लूट के माल की लालच, दु साहस या अध-

---

1 रालिंसन द ब्रिटिश अचीवमेण्ट इन इंडिया (1948) पृ० 103।

2 एस० एन० सेन के एट्टीन फिफ्टी सेवन की भूमिका मे पृ० XIII XV मजूमदार आर० सी० हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इंडिया (1963) तीन भागो मे भी देखें, मजूमदार आर० सी० सीप्वाय म्यूटिनी (1963) मजूमदार आर० सी० ग्रेट फजज आफ इंडियाज स्ट्रगिल फार फ्रीडम।

थ और अपनी स्थिति सुधारने के लिए अवसर की ताक मे थे। रालिसन भी लिखता है कि यह विद्रोह राष्ट्रीय क्रांति नहीं थी, "यह सच नही होगा यदि इस विद्रोह को राष्ट्रीय क्रांति कहा जाय, क्योकि भारतीय राजनीति म राष्ट्रवाद को कोई स्थान प्राप्त नही था।"[1] सर जान सीले के अनुसार भी यह एक 'पूणतया देश-भक्तिहीन और स्वार्थसिद्ध सिपाही विद्रोह था जिसे न तो स्थानीय नेतृत्व ही प्राप्त था और न लोकप्रिय समथन ही" पी० ई० राबटस भी इसी विचार का समथन करता है और डा० आर० सी० मजुमदार ने भी अपनी पुस्तक 'द सिप्वाय म्युटिनी एण्ड रिवोल्ट आफ 1857' मे इसी मत को स्वीकार किया है। मौलाना आजाद के विचारो को भी इस सदभ मे प्रस्तुत किया जा सकता है। उन्होने लिखा है, 'प्राप्त साक्ष्यो के आधार पर हम इस निष्कष पर पहुचने को बाध्य हैं कि 1857 का विद्रोह ध्यानपूवक बनायी गयी, योजना का परिणाम नही था और न ही इसके पीछे तीव्र बुद्धिवाला नेतृत्व ही था यह कुछ व्यक्तियो के या व्यक्तियो के समूह का षडयत्र का परिणाम भी नही था। बल्कि जनता के बढते हुए असतोष का परिणाम था देशभक्ति की भावना लोगो मे धम की भावना के आधार पर प्रविष्ट करायी गयी और तब लोग विद्रोह के लिये उठ खडे हुए।"

सच तो यह है कि यह सगठित राष्ट्रीय आदोलन नही था इस तर्क के पक्ष म तमाम मत दिया जा सकता है। ऐसे मे यही निष्कष निकलेगा कि यह एक सीधा-सा सिपाही विद्रोह था जिसका लाभ तमाम स्वार्थी तत्वा ने उठाया। दूर-दूर तक विद्रोह वही फैला जहा इसका नेतृत्व सिपाहियो न किया। उदाहरणाथ राजस्थान म बहुत अधिक विद्रोह नही हुआ क्योकि यहा पर सिपाहियो के सफल विद्रोह द्वारा कोई पृष्ठभूमि नही तैयार की गयी। ऐसा ही मराठा मे भी हुआ। वैसे तो अभी कुछ ही पूव मराठे ब्रिटिशो के हाथो अपमानित हुए थे, पर उनके बीच भी कोई विद्रोह इसीलिए नही हुआ क्योकि सिपाहियो ने इसे नेतृत्व नही प्रदान किया। इसके अतिरिक्त हमे ऐसे लोगो के विषय म भी अधिक सूचना नही मिलती जो विद्रोह म देशप्रेम के कारण सम्मिलित हुए हो। इस कारवाई के बीच ही लगता है किसी ने इस धारणा को सुझा दिया। पर इसके प्रमाण नही प्राप्त होते कि इस दिशा म इस उद्देश्य हेतु कोई सगठित प्रयास किया गया हो। सामान्यतया स्थानीय कारणो से ही, जैसे लूट के माल की लालच, दुस्साहस या अध-

---

1 रालिसन द ब्रिटिश अचीवमेण्ट इन इण्डिया (1948) पृ० 103।

2 एस० एन० सेन के 'एट्टीन फिफ्टी सेवन' की भूमिका म पृ० XIII XV मजूमदार आर० सी० हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इण्डिया (1963) तीन भागो म भी देखें मजूमदार आर० सी० सीप्वाय म्युटिनी (1963), मजूमदार आर० सी० एण्ड जन आफ इण्डियाज स्ट्रगिल फार फ्रीडम।

रनोमनसी तीग (

थे। रालि शा भी

व भार जनी स्थिति सुधारने के लिए अवसर दी ता नहीं होगा यदि इस लिखता है कि यह विद्रोह राष्ट्रीय क्रांति नहीं थी यह स ीति मे राष्ट्रवाद को विद्रोह को राष्ट्रीय क्रांति कहा जाय क्योंकि आन्दोल रा ा ह एक "पूर्णतया देश-भाई ध्यान प्राप्त नहीं था।[1] सर जान सीले ने अनुसार भी ानीय नेतृत्व ही प्राप्त भक्तिशील और स्वार्थसिद्ध सिपाही विद्रोह था जि ा ा विचार था रागधा था और न जनप्रिय समर्थन ही पी ई० राबर्ट्स भी 'दसिप्वाय म्युटिनी करता है और डा० आर० सी० मजुमदार ने भी ा ा पुस्तक। मौलाना आजाद एन रिवोल्ट आफ 1857 म इसी मत का स्वीकार किया ोने लिखा है, "प्राप्त के विचारों को भी इस सदर्भ म प्रस्तुत किया जा सकता है। कि 1857 का विद्रोह साक्ष्यो के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ही इसके पीछे शीघ्र ध्यानपूर्वक बनायी गयी योजना का परिणाम रहा था और ी के समूह का बहुमत बुद्धिवाला नतत्व ही था यह कुछ व्यक्तियो के या प्रतिसंतोष का परिणाम का परिणाम भी नहीं था। जब जनता ने बड़ा रूप और दर प्रसिद्ध कराली था देशभक्ति की भावना जागा म धर्म की भावना

गयी और तब लोग विद्रोह के लिय उठ खड़े हुए।' था इस तत्व म

सच तो यह है कि यह सगठित राष्ट्रीय आन्दोलन ा ा ि यह तर्क सीधा तमाम मत दिया जा सकता है। इस म यही ा उठाया। दूर दूर तक सा सिपाही विद्रोह था जिसका नाम तमाम स्थानो ा उदाहरणार्थ राष्ट विद्रोह नहीं था ा ा ि ा ा था सकता विद्रोह स्थान म बहुत अधिक विद्रोह ा ा ि ी हुआ। मैल की द्वारा कार्टदस्त ा ा ा ा ा भी बनी कुछ ही पूर्व मराठा ा ा ा ा ा विद्रोह ा ा ा ा ा ा नहीं मिलती किया ा ा ा ा ा ा ा विद्रोह म ा

103।

1 [illegible] (1194) ... VIII XV, [illegible]

2 [illegible]

थ आर अपनी स्थिति सुधारने के लिए अवसर की ताक मे थे। रॉलिंसन भी लिखता है कि यह विद्रोह राष्ट्रीय क्राति नही थी, "यह सच नही होगा यदि इस विद्रोह को राष्ट्रीय क्राति कहा जाय, क्योंकि भारतीय राजनीति म राष्ट्रवाद को कोई स्थान प्राप्त नही था।'[1] सर जान सीले के अनुसार भी यह एक 'पूर्णतया देश-भक्तिहीन और स्वार्थसिद्ध सिपाही विद्रोह था जिसे न तो स्थानीय नेतत्व ही प्राप्त था और न लोकप्रिय समर्थन ही" पी० ई० राबर्टस भी इसी विचार का समर्थन करता है और डा० आर० सी० मजुमदार ने भी अपनी पुस्तक 'द सिप्वाय म्युटिनी एण्ड रिवोल्ट आफ 1857' मे इसी मत का स्वीकार किया है। मौलाना आजाद के विचारो को भी इस सदर्भ मे प्रस्तुत किया जा सकता है। उन्होने लिखा है, "प्राप्त साक्ष्या के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचने को बाध्य हैं कि 1857 का विद्रोह ध्यानपूर्वक बनायी गयी, योजना का परिणाम नही था और न ही इसके पीछे तीव्र बुद्धिवाला नेतत्व ही था यह कुछ व्यक्तियो के या व्यक्तियो के समूह का षड्यन्त्र का परिणाम भी नही था। बल्कि जनता के बढते हुए असतोष का परिणाम था देशभक्ति की भावना लोगो मे धर्म की भावना के आधार पर प्रविष्ट करायी गयी और तब लोग विद्रोह के लिये उठ खडे हुए।"[2]

सच तो यह है कि यह सगठित राष्ट्रीय आदोलन नही था इस तर्क के पक्ष म तमाम मत दिया जा सकता है। ऐसे मे यही निष्कर्ष निकलेगा कि यह एक सीधा-सा सिपाही विद्रोह था जिसका लाभ तमाम स्वार्थी तत्त्वो ने उठाया। दूर दूर तक विद्रोह वही फैला जहा इसका नेतत्व सिपाहियो ने किया। उदाहरणार्थ राजस्थान म बहुत अधिक विद्रोह नही हुआ क्योकि यहा पर सिपाहियो के सफल विद्रोह द्वारा कोई पष्ठभूमि नही तैयार की गयी। ऐसा ही मराठो मे भी हुआ। वैसे तो अभी कुछ ही पूर्व मराठे ब्रिटिशो के हाथो अपमानित हुए थे, पर उनके बीच भी कोई विद्रोह इसीलिए नही हुआ क्योकि सिपाहियो ने इसे नेतत्व नही प्रदान किया। इसके अतिरिक्त हमे ऐसे लोगो के विषय मे भी अधिक सूचना नही मिलती जो विद्रोह मे देशप्रेम के कारण सम्मिलित हुए हो। इस कारवाई के बीच ही लगता है किसी ने इस धारणा को सुझा दिया। पर इसके प्रमाण नही प्राप्त होते कि इस दिशा म इस उद्देश्य हेतु कोई सगठित प्रयास किया गया हो। सामान्यतया स्थानीय कारणो के ही, जैसे लूट के माल की लालच, दुस्साहस या अध-

1 रालिसन द ब्रिटिश अचीवमेण्ट इन इडिया (1948) पृ० 103।

2 एस० एन० सेन के एट्टीन फिफ्टी सेवन की भूमिका म पृ० XIII XV मजूमदार, आर० सी० हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इडिया (1963) तीन भागो म भी देखें मजूमदार आर० सी सीप्वाय म्युटिनी (1963) मजूदार आर० सी० थी फ्जेज आफ इडियाज स्ट्रगिल फार फ्रीडम।

विश्वास उदाहरणाथ 1757 के प्लासी के युद्ध को हुए 100 वष हो गय है (अब ब्रिटिशो के जाने का समय आ गया है, विद्रोह की स्थिति उत्पन्न व उदाहरणाथ गया जिले म स्थानीय जमीदारो ने यह सोचकर कि ब्रिटिश बबाद चुके ह, तमाम लोगो की हत्या करके उनकी सपत्ति लूट ली।

तथाकथित राष्ट्रीय नताओ के पास युद्ध की समीचीन याजना भी नही और न ही वे आपस म नियमित रूप से सपक ही रखते थे। उनके समक्ष व स्पष्ट बिम्ब नही था जिसके आधार पर राष्ट्र मे भविष्य की उनकी कल्प सम्मिलित होती। वे अपन स्वाथ स ही या स्थानीय हित से ही प्रोत्साहित ह थे। दिल्ली ही विद्रोह करने वालो की रीढ थी। पर जब इस ब्रिटिशो न लिया तो नाना साहब ने कानपुर की सेना को दिल्ली विद्रोहियो की सहायता लिए जाने वाली सेना को रोक दिया क्योकि उन्हे डर था कि इससे बहादुरश की छवि राष्ट्रीय शासक की हो जायगी जिसे पुन झेलने को वह तैयार नही थे।

इसके अतिरिक्त तीन प्रान्तीय सेनाओ मे से केवल एक ने ही विद्रोह किय बहुत स राजा और हजारो जमीदार विश्वस्त बने रहे। प्रत्येक प्रान्त मे भी विद्र नहीं हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे प्रमुख प्रान्त पजाब ने ब्रिटिशो का विद्र दबान म सहायता की। इस तरह स्पष्ट रूप स किसी सगठन के आधार पर ब यह कोइ राष्ट्रीय आदोलन नही था और न ही यह राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना ही आधारित था।

यह कहना भी सच नही है कि हिन्दू कठिनाइयो का लाभ उठाकर मुसलमा न एक षडयत्र किया था। वैसे तो बहादुर शाह ने इसका प्रयोग अवश्य किया इसके प्रमाण ह कि उन्ह ऐसा करने को बाध्य होना पडा। मौलाना आजाद लिखा है कि 'मुकदम के चलन के समय यह पता चला कि विद्रोह बहादुर श के लिए उतना ही आश्चयजनक था जितना ब्रिटिशो के लिए।'[1]

इस तरह तथ्य स्पष्ट है। भारत म ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ काल से ही व के सिपाहियो, जनता और राजाओ म उनके शासन के विरुद्ध अविश्वास एकत्रि होता जा रहा था। अवध अपहरण ने हजारो सिपाहियो और उन असैनिक क चारियो को इधर उधर भटकने को मजबूर कर दिया। राज्य क तालुकदारो व नयी भू-नीति के कारण हानि हुई। और फिर जिस तरह झासी और सतारा रा को समाप्त किया गया, वह और अन्य राजनैतिक कारण बन गय। भारती उद्योग और व्यापार का विनाश तथा गावो के प्रति तानाशाही नीति और ऐसी बहुत-सी बातो न आर्थिक कारण उपस्थित कर दिया। ईसाई मिशनरियो क

1 1955 म इण्डियन हिस्टॉरिकल रिकाड कमीशन क 31वें सम्मलन म दिया ग मौलाना आजाद का भाषण।

कारवाई और कुछ धार्मिक कारवाईया जैसे '1856 का रिलीजस डिसएबीलिटीज ऐक्ट आदि ने धार्मिक और सामाजिक कारण प्रस्तुत कर दिये। इसके अतिरिक्त पूणतया प्रशासनीय कारण भी थे। और इस सभी ने मिलकर आग लगाने के लिए पूरे देशमे सामग्री एकत्रित कर दी।

इसलिए सच ही यहा यह दुहराया जा सकता है कि यो तो पूर देश मे जनता असतुष्ट थी, पर जो कुछ हुआ वह किमी राष्ट्रीय कारण को लेकर नही हुआ बल्कि इसके छोट और स्थानीय कारण थे। और इसके अतिरिक्त देश मे असतुष्ट प्रजा के होते हुए भी यह विद्रोह केवल सिपाही विद्रोह था जिसमे परिस्थितिजय स्वार्थी भी बाद मे इसम सम्मिलित हो गये। देश मे राष्टीय आदोलन नाम की काइ चीज नही थी। यह तथ्य निम्न विवरण स और स्पष्ट हा जायेगा।

कारण

वे कारण जिन्हान देश की जनता म, राजाआ मे त था जमीदारो मे असतोष की भावना पदा की और जिसन विद्रोह के लिए ज्वलनशील सामग्री एकत्रित की, उनका विवरण निम्नवत् है।

राजनतिक कारण—विद्रोह के राजनतिक कारण भारत म ब्रिटिश शक्ति के विकास मे निहित थे। 1857 म ब्रिटिशा को उखाड फेंकन का प्रयास पहला नही था। इस तरह के प्रयास पहले भी किये गय थे पर वे सफल नही रहे थे। औरगजेब की मृत्यु के उपरान्त उपस्थित हो गये पतनवत स्थिति से अग्रेजा को लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हुआ। मराठा ने महाराष्ट्र और दक्षिण के कुछ क्षेत्रा म अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया और बगाल, अवध और दक्षिण के गवनरा ने अपन को स्वतत्र घोपित कर दिया। यह पतन नादिरशाह के आक्रमण ने पूरा कर दिया। जब भारत कमजोर और विभाजित था तो अग्रेजा के लिए उत्तम अवसर था। उनकी सफलता तीन कारणो से सरल हो गयी। प्रथम तो भारतीय सैनिक अग्रेज सैनिको की तुलना मे कम अनुशासित और कम योग्य थे। दूसरे, वडी आसानी से उन्हे अपन देशवासियो के विरुद्ध ही लडाया जा सकता था और तीसरे, ब्रिटिशो के लिए स्थानीय झगडो मे किसी का पक्ष लेकर लाभ प्राप्त करन का भी अवसर था।

ब्रिटिशो को बगाल मे तब बडा लाभ प्राप्त हुआ जब उन्होने नवाब सिराजुद्दौला के एक सेनापति मीर जाफर स मिलकर षडयत्र रचा। 1757 के प्लासी के युद्ध म नवाव के सेनापतियो के अलग खडे रहने से नवाब को ब्रिटिशो ने सरलता से पराजित कर दिया। नवाब का सर काट लिया गया और मीर जाफर इसका उत्तराधिकारी बनाया गया। स्पष्ट था वह अग्रेजो के हाथ का कठपुतली हो गया। बगाल की जनता न यह शासन स्वीकार कर लिया क्योकि उन्होने इसके परिणाम

कारवाई और कुछ धार्मिक कारवाईया जैसे '1856 का रिलीजस डिसएबीलिटीज ऐक्ट आदि ने धार्मिक और सामाजिक कारण प्रस्तुत कर दिये। इसके अतिरिक्त पूणतया प्रशासनीय कारण भी थे। और इस सभी ने मिलकर आग लगाने के लिए पूरे देशमे सामग्री एकत्रित कर दी।

इसलिए सच ही यहा यह दुहराया जा सकता है कि यो तो पूरे देश म जनता असतुष्ट थी, पर जो कुछ हुआ वह किसी राष्ट्रीय कारण को लेकर नही हुआ, बल्कि इसके छोट और स्थानीय कारण थे। और इसके अतिरिक्त देश म असतुष्ट प्रजा के हाते हुए भी यह विद्रोह केवल सिपाही विद्राह था जिसमे परिस्थितिजन्य स्वार्थी भी बाद म इसम सम्मिलित हा गये। देश मे राष्ट्रीय आदालन नाम की कोई चीज नही थी। यह तथ्य निम्न विवरण स और स्पष्ट हा जायगा।

कारण

व कारण जिन्होन देश की जनता मे, राजाओ म तथा जमीदारा म असताप की भावना पदा की और जिसन विद्रोह के लिए ज्वलनशील सामग्री एकत्रित की, उनका विवरण निम्नवत है।

राजनतिक कारण—विद्रोह के राजनैतिक कारण भारत म ब्रिटिश शक्ति क विकास म निहित थे। 1857 मे ब्रिटिशो को उखाड फेंकन का प्रयास पहला नहा था। इस तरह के प्रयास पहले भी किय गय थ पर वे सफल नहीं रह थे। औरगजेब की मृत्यु के उपरान्त उपस्थित हो गय पतनवत् स्थिति से अग्रेजा का लाभ उठान का अवसर प्राप्त हुआ। मराठा न महाराष्ट्र और दक्षिण के कुछ क्षेत्रा म अपना प्रभुत्व स्थापित कर दिया और बगाल, अवध और दक्षिण के गवनरा ने अपने को स्वतत्र घाषित कर दिया। यह पतन नादिरशाह क आक्रमण ने पूरा कर दिया। जब भारत कमजोर और विभाजित था तो अग्रेजा के लिए उत्तम अवसर था। उनकी सफलता तीन कारणा म सरल हो गयी। प्रथम तो भारतीय सनिक अग्रेज सनिका की तुलना मे कम अनुशासित और कम याग्य थ। दूसरे, वडी आसानी स उन्हें अपन देशवासियो के विरुद्ध ही लडाया जा सकता था और तीसरे, ब्रिटिशा के लिए स्थानीय झगडा म किसी का पक्ष लेकर लाभ प्राप्त करन का भी अवसर था।

ब्रिटिशा का बगाल मे तब बडा लाभ प्राप्त हुआ जब उन्होंने नवाब सिराजुद्दौला के एक सनापति मीर जाफर स मिलकर षड्यन्त्र रचा। 1757 के प्लासी के युद्ध म नवाब के सेनापतियो के अलग खडे रहने से नवाब का ब्रिटिशों ने सरलता से पराजित कर दिया। नवाब का सर काट लिया गया और मीर जाफर इसका उत्तराधिकारी बनाया गया। स्पष्ट था वह अग्रेजा के हाथ का कठपुतली हा गया। बगाल की जनता न यह शासन स्वीकार कर लिया क्योंकि उन्होंने इसक परिणाम

की कल्पना नही थी। और इसके अतिरिक्त वे इस तरह के परिवर्तन के आदी भी थे।

पर जैसे जैसे ब्रिटिशो ने अपना नियत्रण यहा विकसित किया, उनका राजनैतिक विरोध बढने लगा। मार्च 1759 और, जनवरी 1761 के बीच मुगल सम्राट शाह आलम ने ब्रिटिशो पर तीन आक्रमण किया, पर व सभी असफल सिद्ध हुए।

मीर जाफर को भी अपनी मूर्खता का शीघ्र ही अहसास हुआ। वह और उसके उत्तराधिकारी मीर कासिम दोनो ब्रिटिश जुए के नीचे दब गय। मीर कासिम के ही काल म ब्रिटिश शासन समाप्त करने का प्रथम सही व गभीर प्रयास किया गया जब उसने शाह आलम और नवाब अवध शुजाउद्दौला से मिलकर ब्रिटिशो के विरुद्ध एक सघ तैयार किया। पर यह सघ 1764 मे बक्सर म पराजित हो गया। मीरकासिम भाग खडा हुआ और शाह आलम व शुजाउद्दौला को ब्रिटिश से अपमानजनक सधिया करनी पडी। शाह आलम को बगाल, बिहार और उडीसा की वैधानिक दीवानी का अधिकार ब्रिटिशो को देना पडा। इसने भारत म अग्रेजो की ब्रिटिश शक्ति को और मजबूती प्रदान की।

धीरे धीरे निश्चित रूप स ब्रिटिश अपनी शक्ति विकसित करते गये और अपनी छत्र छाया मे एक के बाद एक राज्य लाते गय। वारन हेस्टिंग्स के काल म एक बार पुन उस समय ब्रिटिश शक्ति के विरुद्ध समन्वित प्रयास किया गया जब मैसूर के हैदरअली ने मराठो और निजाम हैदराबाद से मिलकर एक सघ बनाने का प्रयास किया। पर हेस्टिंग्स की कूटनीति सफल हुई और हैदरअली का मन्तव्य पूरा नही हुआ। 18वी सदी के अत तक नवाब अवध, सिधिया टीपू सुल्तान और काबुल के जमान शाह ने मिलकर एक पथ ब्रिटिशो के विरुद्ध बनाने की चेष्टा की जिसकी विस्तार से सूचना नही प्राप्त होती।

ब्रिटिश अपनी शक्ति विकसित ही करते गये। मैसूर पर 1799 म अधिकार कर लिया गया। गोरखे 1814 15 म नामित कर दिय गये और मराठे 1817 19 मे अतत पूर्णतया दबा दिय गय। आलोचना और सदेह से बचन के लिए वेलजली ने राज्यो को जीतने और छीनने के स्थान पर 'सहायक सधि' की नीति का प्रारभ किया जिसके अतगत भारतीय शासक अपने व्यय पर ब्रिटिश सेना अपने राज्य मे रखते। ब्रिटिश उन्हे आन्तरिक स्वतत्रता और आन्तरिक व बाह्य खतरे मे सहायता के लिए आश्वस्त करते थे। भारत के ब्रिटिश राजनीति में यह अत्यधिक चतुराईपूर्ण नीति थी। सहायक सधि के अतगत राजा को बाह्य आक्रमण और आन्तरिक विद्रोह से डरने की आवश्यकता नही थी। ब्रिटिशो की यह नीति भी नही थी कि वे स्वतत्रता और नये गुण प्राप्त की ओर आकृष्ट हो। भारत के लिए टोरी सहायक सचिव द्वारा ससद मे दिया गया यह विचार उचित

ही था कि ब्रिटिश भारत मे आज्ञापरायण और विनीत सामान्यता का ही आगे बढाना चाहते थे। इसीलिए आश्चय नही किया जाना चाहिए कि य राजा प्रशासकीय कार्यो मे अनुत्तरदायी हो गये।

जब इन राज्यो का प्रशासन इस प्रथा के अतगत भ्रष्ट और निरकुश हा गया तो लोगो की नैतिक व भौतिक स्थिति का पतन प्रारभ हो गया और ब्रिटिशा ने अपने उत्तरदायित्व को महसूस करने के स्थान पर इस सबका पूरा श्रेय राजाओ पर रखना प्रारभ कर दिया और उन्ह प्रशासन के अयोग्य करार दे दिया और यह कहना प्रारभ किया कि उनका शासन समाप्त कर राज्य ब्रिटिश सत्ता का अग बना लिया जाना चाहिए क्योकि इसमे ही जनता का हित है।

इसलिए डलहौजी के भारत आगमन पर राज्या के प्रति ब्रिटिश नीति का एक नयी दिशा दी गयी। 'राज्य हडप का सिद्धात प्रारभ किया गया। जमाकि हमने पहले से देखा है एक राज्य के बाद दूसरा राज्य एक उपाधि और वत्ति के बाद दूसरी अपहरित की जाने लगी और छीनी जान लगी। नागपुर का विस्तृत राज्य हडप लिया गया। पजाब छीन लिया गया और यही सतारा, झासी, सभलपुर और अन्य राज्यो के साथ घटित हुआ। पेशवा बाजीराव द्वितीय के पुन नाना साहब तथा कर्नाटक व तजौर के नवाब की उपाधि व पेशन जब्त कर ली गयी और यह भी प्रस्ताव आया कि नाम मात्र की दिल्ली के सम्राट की उपाधि समाप्त कर दी जाय। पर यह काय कोट आफ डाइरेक्टस के कहने से उस समय तक के लिए रोक दिया गया जबतक कि सम्राट की मत्यु न हो जाय। असतोप की इस ज्वाला मे घी का काम दिया उन बातो ने जा अनुत्तरदायी अधिकारियो के मुह से कभी कभी निकल पडती थी। जैसे चाल्स नपियर ने घोषणा की कि "यदि मैं भारत का सम्राट 12 वर्षो के लिए हो पाता ता कोई भी राजा शष न रहता। निजाम का नाम न सुनायी पडता। नेपाल हमारा हा जाता।'

डलहौजी की क्रूर अपहरण और राज्य समाप्ति की नीति न पूरे देश म तहलका मचा दिया। भारत का प्रत्येक राजा और जमीदार असुरक्षित अनुभव करन लगा। नाना साहब के वत्ति की समाप्ति और नागपुर का सतारा क अपहरण न तीन ऐतिहासिक राजपरिवारो को समाप्त कर दिया जिनको आर मराठे घमड से देखा करते थ। सतारा तो महान शिवाजी के उत्तराधिकारियो का क्षेत्र था और नागपुर पर प्रतिष्ठा प्राप्त भोसले का अधिकार था। इनकी समाप्ति का तरीका भी अपमान-जनक था। उदाहरणाथ नागपुर के सबध म केयी ने लिखा है कि, "भोसला का वतमान व पुराना धन-सग्रह तिजोरी को लुहार के पास तोडन को भेज दिया गया दरबार के हाथी, घोडे और बैल सडे गले माम के भाव बेच दिय गय, फर्नीचर हटा दिया गया, कुछ अपवादो को छोडकर भोसला परिवार के जवाहिरात कलकत्ता के बाजार मे बिकने को भेज दिये गये। और मैंने यह सुना कि वहा

ही था कि ब्रिटिश भारत मे आज्ञापरायण और विनीत सामान्यता को ही आगे बढाना चाहते थे। इसीलिए आश्चय नही किया जाना चाहिए कि ये राजा प्रशासकीय कार्यों मे अनुत्तरदायी हो गये।

जब इन राज्यो का प्रशासन इस प्रथा के अतगत भ्रष्ट और निरकुश हो गया तो लोगो की नैतिक व भौतिक स्थिति का पतन प्रारभ हो गया और ब्रिटिशो ने अपने उत्तरदायित्व को महसूस करने के स्थान पर इस सबका पूरा श्रेय राजाओ पर रखना प्रारभ कर दिया और उन्ह प्रशासन के अयोग्य करार दे दिया और यह कहना प्रारभ किया कि उनका शासन समाप्त कर राज्य ब्रिटिश सत्ता का अग बना लिया जाना चाहिए क्योकि इसमे ही जनता का हित है।

इसलिए डलहौजी के भारत आगमन पर राज्यो के प्रति ब्रिटिश नीति को एक नयी दिशा दी गयी। 'राज्य हडप का सिद्धात' प्रारभ किया गया। जैसाकि हमने पहले से देखा है एक राज्य के बाद दूसरा राज्य एक उपाधि और वत्ति के बाद दूसरी अपहरित की जाने लगी और छीनी जाने लगी। नागपुर का विस्तत राज्य हडप लिया गया। पजाब छीन लिया गया और यही सतारा, झासी, सभलपुर और अन्य राज्यो के साथ घटित हुआ। पेशवा बाजीराव द्वितीय के पुत्र नाना साहब तथा कर्नाटक व तजौर के नवाब की उपाधि व पेंशन जब्त कर ली गयी और यह भी प्रस्ताव आया कि नाम मात्र की दिल्ली के सम्राट की उपाधि समाप्त कर दी जाय। पर यह काय कोट आफ डाइरक्टस के कहने से उस समय तक के लिए रोक दिया गया जबतक कि सम्राट की मत्यु न हो जाय। असतोष की इस ज्वाला म घी का काम दिया उन बातो ने जो अनुत्तरदायी अधिकारियो के मुह स कभी कभी निकल पडती थी। जैसे चाल्स नैपियर ने घोषणा की कि "यदि मैं भारत का सम्राट 12 वर्षों के लिए हो पाता तो कोई भी राजा शेप न रहता। निजाम का नाम न सुनायी पडता। नेपाल हमारा हो जाता।'

डलहौजी की क्रूर अपहरण और राज्य समाप्ति की नीति न पूरे देश मे तहलका मचा दिया। भारत का प्रत्येक राजा और जमीदार असुरक्षित अनुभव करन लगा। नाना साहब के वत्ति की समाप्ति और नागपुर का सतारा के अपहरण न तीन ऐतिहासिक राजपरिवारो को समाप्त कर दिया जिनको आर मराठे घमड स देखा करते थ। सतारा तो महान् शिवाजी के उत्तराधिकारियो का क्षेत्र था और नागपुर पर प्रतिष्ठा प्राप्त भोसले का अधिकार था। इनकी समाप्ति का तरीका भी अपमान-जनक था। उदाहरणाथ नागपुर के सबध मे केयी न लिखा है कि, "भोसला का वतमान व पुराना धन-सग्रह तिजोरी को लुहार के पास तोडने को भेज दिया गया दरबार के हाथी, घोडे और बैल सडे गले माम के भाव बेच दिय गये, फर्नीचर हटा दिया गया, कुछ अपवादो को छोडकर भोसला परिवार के जवाहिरात कलकत्ता के बाजार मे बिकने को भेज दिये गये। और मैंने यह सुना कि वहा

की कल्पना नही थी। और इसके अतिरिक्त वे इस तरह के परिवतन के आदी भी थे।

पर जैसे जैसे ब्रिटिशो ने अपना नियत्रण यहा विकसित किया, उनका राजनैतिक विरोध बढने लगा। माच 1759 और, जनवरी 1761 के बीच मुगल सम्राट शाह आलम ने ब्रिटिशो पर तीन आक्रमण किया, पर व सभी असफल सिद्ध हुए।

मीर जाफर को भी अपनी मूखता का शीघ्र ही अहसास हुआ। वह और उसके उत्तराधिकारी मीर कासिम दोनो ब्रिटिश जुए के नीचे दब गय। मीर कासिम के ही काल म ब्रिटिश शासन समाप्त करने का प्रथम सही व गभीर प्रयास किया गया जब उसने शाह आलम और नवाब अवध शुजाउद्दौला से मिलकर ब्रिटिशो के विरुद्ध एक सघ तैयार किया। पर यह सघ 1764 म बक्सर म पराजित हो गया। मीरकासिम भाग खडा हुआ और शाह आलम व शुजाउद्दौला को ब्रिटिश से अपमानजनक सधिया करनी पडी। शाह आलम को बगाल, बिहार और उडीसा की वैधानिक दीवानी का अधिकार ब्रिटिशो को देना पडा। इसने भारत मे अग्रेजो की ब्रिटिश शक्ति को और मजबूती प्रदान की।

धीरे धीरे निश्चित रूप से ब्रिटिश अपनी शक्ति विकसित करते गये और अपनी छत्र छाया म एक के बाद एक राज्य लाते गय। वारन हेस्टिंग्स के काल म एक बार पुन उस समय ब्रिटिश शक्ति के विरुद्ध समन्वित प्रयास किया गया जब मैसूर के हैदरअली ने मराठो और निजाम हैदराबाद से मिलकर एक सघ बनाने का प्रयास किया। पर हेस्टिंगस की कूटनीति सफल हुई और हैदरअली का मन्तव्य पूरा नही हुआ। 18वी सदी मे अत तक नवाब अवध, सिंधिया टीपू सुल्तान और काबुल के जमान शाह ने मिलकर एक सघ ब्रिटिशो के विरुद्ध बनाने की चेष्टा की जिसकी विस्तार से सूचना नही प्राप्त होती।

ब्रिटिश अपनी शक्ति विकसित ही करते गये। मैसूर पर 1799 मे अधिकार कर लिया गया। गोरखे 1814 15 मे नामित कर दिये गये और मराठे 1817 19 मे अतत पूणतया दबा दिय गये। आलोचना और सदेह से बचन के लिए वेलजली ने राज्यो को जीतने और छीनने के स्थान पर 'सहायक सधि' की नीति का प्रारभ किया जिसके अतगत भारतीय शासक अपने व्यय पर ब्रिटिश सेना अपन राज्य म रखते। ब्रिटिश उन्ह आन्तरिक स्वतत्रता और आन्तरिक व बाह्य खतरे मे सहायता के लिए आश्वस्त करते थे। भारत के ब्रिटिश राजनीति मे यह अत्यधिक चतुराईपूण नीति थी। सहायक सधि के अतगत राजा को बाह्य आक्रमण और आन्तरिक विद्रोह से डरने की आवश्यकता नही थी। ब्रिटिशो की यह नीति भी नही थी कि वे स्वतत्रता और नये गुण प्राप्त की ओर आकृष्ट हो। भारत के लिए टोरी सहायक सचिव द्वारा ससद मे दिया गया यह विचार उचित

ही या कि ब्रिटिश भारत म आत्मापरायण और विनीत सामान्यता को ही आगे बढाना चाहते थे। इसीलिए आश्चय नही किया जाना चाहिए कि य राजा प्रशासकीय कार्यों म अनुत्तरदायी हो गये।

जब इन राज्यो का प्रशासन इस प्रथा के अतगत भ्रष्ट और निरकुश हो गया तो लोगो की नैतिक व भौतिक स्थिति का पतन प्रारभ हो गया और ब्रिटिश न अपन उत्तरदायित्व को महसूस करन के स्थान पर इस सबका पूरा श्रेय राजाओ पर रखना प्रारभ कर दिया और उन्ह प्रशासन के अयोग्य करार द दिया और यह कहना प्रारभ किया कि उनका शासन समाप्त कर राज्य ब्रिटिश सत्ता का अग बना लिया जाना चाहिए क्याकि इसम ही जनता का हित है।

इसलिए डलहौजी के भारत आगमन पर राज्यो के प्रति ब्रिटिश नीति को एक नयी दिशा दी गयी। राज्य हडप का सिद्धात प्रारभ किया गया। जैसाकि हमन पहले म देखा है एक राज्य के बाद दूसरा राज्य एक उपाधि और वत्ति के बाद दूसरी अपहरित की जान लगी और छीनी जान लगी। नागपुर का विस्तत राज्य हडप लिया गया। पजाब छीन लिया गया और यही सतारा, झासी, सभलपुर और अन्य राज्यो के साथ घटित हुआ। पेशवा बाजीराव द्वितीय के पुत्र नाना साहब तथा कर्नाटक व तजौर के नवाब की उपाधि व पेंशन जब्त कर ली गयी और यह भी प्रस्ताव आया कि नाम मात्र की दिल्ली के सम्राट की उपाधि समाप्त कर दी जाय। पर यह काय कोर्ट आफ डाइरक्टस के कहने से उस समय तक के लिए रोक दिया गया जबतक कि सम्राट की मत्यु न हो जाय। असतोष की इस ज्वाला मे घी का काम किया उन बातो ने जो अनुत्तरदायी अधिकारियो के मुह स कभी कभी निकल पडती थी। जैस चार्ल्स नपियर ने घोषणा की कि "यदि मैं भारत का सम्राट 12 वर्षों के लिए हो पाता तो कोई भी राजा शेष न रहता। निजाम का नाम न सुनायी पडता। नेपाल हमारा हो जाता।'

डलहौजी की क्रूर अपहरण और राज्य समाप्ति की नीति ने पूरे देश मे तहलका मचा दिया। भारत का प्रत्यक राजा और जमीदार असुरक्षित अनुभव करने लगा। नाना साहब की वत्ति की समाप्ति और नागपुर का सतारा के अपहरण ने तीन ऐतिहासिक राजपरिवारो को समाप्त कर दिया जिनकी ओर मराठे घमड से देखा करते थ। सतारा तो महान् शिवाजी के उत्तराधिकारियो का क्षेत्र था और नागपुर पर प्रतिष्ठा प्राप्त भोसले का अधिकार था। इनकी समाप्ति का तरीका भी अपमान जनक था। उदाहरणाथ नागपुर के सबध म केयी ने लिखा है कि "भोसला का वतमान व पुराना धन-सग्रह तिजोरी को लुहार के पास तोडने को भेज दिया गया दरबार के हाथी, घोडे और बैल सडे गले मास के भाव बेच दिये गये, फर्नीचर हटा दिया गया, कुछ अपवादो को छोडकर भोसला परिवार के जवाहिरात कलकत्ता के बाजार मे बिकने को भेज दिये गये। और मैंने यह सुना कि वहा

गया कि इस छीना झपटी और बिक्री ने बराबर और आस पास के प्रान्तो म बडा बुरा प्रभाव डाला। इसे राज्य के छीनने से भी अधिक बुरा माना गया।"[1]

इन राज्यो के अपहरण के उपरान्त यहा के किसानो पर पर्याप्त भू-कर लगाया गया। नय बन्दोबस्त मे बिचौलियो को हटा दिया गया जिससे कि वे बेकार हो गय। लगान रहित काश्तकारी की प्रथा जो पहले से ही चली आ रही थी निरकुशतापूवक डलहौजी द्वारा भी चलती रहने दी गयी। 1852 के ऐक्ट के अतगत इनाम कमीशन स्थापित किया गया। इसके अतगत विद्रोह के 5 वष पूव तक भूस्वामियो के जमीन के कागजात की जाच पडताल की गयी जिसके परिणाम-स्वरूप 20 हजार परिवार अधिकार-विहीन हो गय। इसन नि सदेह जनता के हर वग को ब्रिटिशो क विरुद्ध कर दिया। राजा अपने क्षेत्र के चले जाने और जमीदार अपनी भूमि के चले जान का भय देखन लगे। उपाधि प्राप्तकर्ता और वृत्तिधारक भी इसी तरह के भय से आतकित रहने लग। किसान अधिक कर स दब गय। प्रत्यक क्षेत्र के अपहरण न तमाम लोगो, जैस दरबारी लडकियो, सगीतज्ञो और कलाकारो तथा तमाम और लोगो को बेसहारा कर दिया।

मद्रास कौसिल के एक सदस्य जान सलीवान न यह कहा, "एक स्थानीय राज्य की समाप्ति पर एक अग्रेज राजा का स्थान कमिश्नर की ओर से ग्रहण करता है उनके तीन या चार साथी दजनो स्थानीय व्यक्तियो को उनके पद से उन्ह मुक्त कर देत हैं जबकि हमारे कुछ सौ सनिक स्थानीय शासक के हजारो सनिको का स्थान लेत ह। छोटा दरबार समाप्त हो जाता है, व्यापार नष्ट हो जाता है, राज-धानी पतन की ओर चल देती है, जनता गरीब होने लगती है, अग्रेज सम्पन्न होने लगता है। वह गगा के तट से धन बटोरता है और टेम्स के बैंक मे चूसकर डाल देता है।"

आर्थिक कारण—ब्रिटिशो के पूव बहुत से आक्रमणकारियो ने भारत पर आक्रमण किया पर धीरे धीरे वे यहीं समाहित हो गये और उनका भारतीयकरण हो गया। पर ब्रिटिशो के साथ बात कुछ और ही थी। वसे तो वे 250 वर्षों तक यहा रह पर उन्होने अपना अस्तित्व अलग ही बनाये रखा अपनी मातभमि से उनका सपक बना रहा और भारत से व तमाम धन इग्लैंड ले जाते रह।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश जिनकी राजनैतिक सहायता करत उनसे भी पर्याप्त धन वसूल करत थे। मीर जाफर और मीर कासिम से उन्होन एसा ही किया। कपनी के कमचारियो ने आन्तरिक व्यापार पर सिक्का जमा लिया और व्यापार के प्रत्येक क्षेत्र म उन्होंने एकाधिकार की स्थापना कर ली। जब भी सभव होता वे

---

1 केयी पूर्वोद्धत भाग 1 प॰ 327 29।

2 ग्टिन, मजर जनरल रिचड द इडियन म्यटिनी, पृ॰ 17।

बेशर्मी से भारतीयों के विरुद्ध भेदभाव करते और उनके व्यापार पर तमाम कर आरोपित करते। स्क्रेफ्टन ने बसीटाट पर गैर कानूनी धन एकत्रित करने का आरोप लगाया। रिचर्ड बारवेल के पत्रों से सूचना मिलती है कि उसने प्रत्येक वस्तु का व्यापार कर बहुत सा धन अर्जित किया।

जब ब्रिटिशों को शक्ति प्राप्त हुई तो उन्होंने भारतीय-अर्थ व्यवस्था को इग्लैड की औद्योगिक मागों के अनुसार ढाला। भारत का कच्चा माल अति कम मूल्य पर इग्लैंड भेजा जाने लगा, और जब वही कच्चा माल पक्के माल में बदल जाता तो उसे ही भारत में महगे दामों पर लाकर बेचा जाता। चूंकि इग्लैंड में 19वीं सदी में, औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी इस कारण भारतीय बाजारों में इग्लैंड का औद्योगिक माल पट गया। ये सामान चूंकि कुछ अच्छा और सस्ता होता था इसके कारण भारत का कुटीर और लघु उद्योग समाप्त होने लगा। भारत की जनता को कृषि की ओर उन्मुख होना पड़ा जिस पर दबाव बढ़ जाने से कृषि आय का कई भागों में विभाजन होने लगा जिसमें किसानों की गरीबी बढ़ गयी। डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि, "भारत इग्लैड के लिए दुधारू गाय हो गया जब कि उसी के पुत्र भूखों मर रहे थे।"[1]

कृषि सबंधी नीति, जो ब्रिटिश सेवा में अपनायी गयी, उसके कारण कृषक और जमीदार बर्बाद हो गये। बगाल में प्रारंभ किया गया कार्नवालिस का स्थायी बन्दोबस्त प्रारंभ में कठिनाइयां लेकर आया। पर अतत इससे लाभ हुआ। 'गलती करने वाले जमीदारों के विरुद्ध कठोर विक्रय कानूनों ने बहुत से पैतृक जमीदारों को सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में कहीं का नहीं रखा। बड़े बड़े भूपति और अर्द्धशासक परिवार पूर्णतया बर्बाद हो गये और वह भी अस्थायी कठिनाई के कारण।" मद्रास और उत्तरी सरकारों में जहां अल्पकालिक बदोबस्त होते थे, राजस्व प्रत्येक बार बढ़ा दिया जाता था। कभी कभी तो इसे 50 प्रतिशत तक बढ़ा दिया जाता जिससे कि जमीदार किसान की स्थिति में आ जाता और उसे राजस्व वसूलने के लिए भूमि से बेदखल तक कर दिया जाता। बाद में प्रसारित स्थायी बन्दोबस्त ने विक्रय कानूनों तथा अधिक कर बढ़ाने के कारण जमीदारों को बर्बाद कर दिया। मद्रास के कुछ क्षेत्रों में ग्राम प्रथा की आजमाइश की गयी जिसमें पूरे गाव पर कर लगाने के लिए ठेके दिये गये। पर कर आरोपण सामान्यतया अधिक थे, इसकी बचत ठेकेदारों के भाग में चली जाती थी जो और भी कर प्राप्त करते थे। किसानों की दुर्दशा थी जिसके कारण वे भाग जाते थे और गाव के गाव बर्बाद हो जाते थे।

---

1 प्रसाद आइ० एण्ड सुबेदार, एस० के० ए हिस्ट्री आफ माडर्न इंडिया पृ० 238।

2 मजूमदार डॉ० आर० सी० सिपाय म्युटिनी एण्ड रिवोल्ट आफ 1857 पृ० 18।

गया कि इस छीना झपटी और बिक्री ने बंगाल और आस-पास के प्रान्तों पर बड़ा बुरा प्रभाव डाला। इस राज्य में छीनने से भी अधिक बुरा माना गया।"[1]

इन राज्यों के अपहरण के उपरान्त यहां के किसानों पर पर्याप्त भू-कर लगाया गया। स्थायी बन्दोबस्त में बिचौलियों को हटा दिया गया जिससे किसान बेकार हो गये। लगान रहित मालगुजारी की प्रथा जो पहले से ही चली आ रही थी निरंकुशतापूर्वक डलहौजी द्वारा भी समाप्त कर दी गयीं। 1852 में एक्ट के अन्तर्गत इनाम कमीशन स्थापित किया गया। इसके अन्तर्गत विद्रोह से 5 वर्ष पूर्व तक भूस्वामियों से जमीन के कागजात की जांच पड़ताल की गयी जिसके परिणामस्वरूप 20 हजार परिवार अधिकार विहीन हो गये। इसने किसान जनता के हर वर्ग को ब्रिटिशों के विरुद्ध कर दिया। राजा और सरदार ही नहीं बल्कि जमींदार अपनी भूमि के चले जाने के भय से डरने लगे। उपाधि प्राप्तकर्ता और वृत्तिधारक भी इसी तरह के भय से आतंकित रहने लगे। किसान अधिक कर से दब गये। प्रत्येक क्षेत्र के आक्रमण ने तमाम राजाओं और दरबारी सम्बन्धियों, संगीतज्ञों और कलाकारों तथा तमाम और लोगों को बेरोजगार कर दिया।

मद्रास कौंसिल के एक सदस्य जान सलीवान ने यह कहा, 'एक स्थानीय राज्य की समाप्ति पर एक अंग्रेज राजा का स्थान कमिश्नर की ओर से ग्रहण करता है उसके तीन या चार साथी स्थानीय व्यक्तियों को उनके पद से हटाकर मुक्त कर देते हैं, जबकि हमारे कुछ भी सहित स्थानीय जागीर के हमारे सैनिकों का स्थान लेते हैं। छोटा दरबार समाप्त हो जाता है व्यापार नष्ट हो जाता है, राजधानी पतन की ओर चल देती है जनता गरीब होने लगती है अंग्रेज सम्पन्न होने लगता है। वह गंगा के तट से धन बटोरता है और टेम्स के तट में चूसकर डाल देता है।'[2]

आर्थिक कारण—ब्रिटिशों के पूर्व बहुत से आक्रमणकारियों ने भारत पर आक्रमण किया पर धीरे धीरे वे यहीं समाहित हो गये और उनका भारतीयकरण हो गया। पर ब्रिटिशों के साथ बात कुछ और ही थी। वस्तुतः वे 250 वर्षों तक यहां रहे पर उन्होंने अपना अस्तित्व अलग ही बनाये रखा अपनी मातृभूमि से उनका सम्पर्क बना रहा और भारत से वे तमाम धन इंग्लैंड ले जाते रहे।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश जिसको राजनीतिक सहायता करते उनसे भी पर्याप्त धन वसूल करते थे। मीर जाफर और मीर कासिम से उन्होंने ऐसा ही किया। कंपनी के कर्मचारियों ने आंतरिक व्यापार पर सिक्का जमा लिया और व्यापार के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने एकाधिकार की स्थापना कर ली। जब भी सम्भव होता वे

---

1 केयी, पूर्वोद्धृत भाग I, पृ. 327-29।

2 हिल्टन, मेजर जनरल रिचर्ड, द इंडियन म्यूटिनी पृ० 17।

वशर्मों से भारतीयों के विरुद्ध भेदभाव करते आर उनके व्यापार पर तमाम कर वारोपित करते। स्क्रेफ्टन ने व सीटाट पर गैर कानूनी धन एकत्रित करने का आरोप लगाया। रिचड वारवल के पत्रा से सूचना मिलती है कि उसने प्रत्येक वस्तु का व्यापार कर बहुत सा धन अर्जित किया।

जव ब्रिटिशो को शक्ति प्राप्त हुई तो उन्होंने भारतीय-अथ व्यवस्था को इग्लड की औद्योगिक मागा के अनुसार ढाला। भारत का कच्चा माल अति कम मूल्य पर इग्लैंड भेजा जाने लगा, और जब वही कच्चा माल पक्के माल म बदल जाता तो उसे ही भारत म महगे दामा पर लाकर बेचा जाता। चूकि इग्लैंड मे 19वी सदी म, औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी इस कारण भारतीय बाजारा म इग्लड का औद्योगिक माल पट गया। ये सामान चूकि कुछ अच्छा और सस्ता होता था इसके कारण भारत का कुटीर और लघु उद्योग समाप्त होने लगा। भारत की जनता का कृषि की ओर उन्मुख हाना पडा जिस पर दबाव बढ जान से कृषि आय का कई भागा मे विभाजन होन लगा जिसम किसाना की गरीबी बढ गयी। डा० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि, "भारत इग्लड के लिए दुधारू गाय हो गया जब कि उसी के पुत्र भूखो मर रह थे।"[1]

कृषि सबधी नीति, जो ब्रिटिश क्षेत्रा म अपनायी गयी, उसके कारण कृषक और जमीदार बर्बाद हो गय। बगाल म प्रारभ किया गया कार्नवालिस का स्थायी बन्दोबस्त प्रारभ मे कठिनाइया लेकर आया। पर अतत इससे लाभ हुआ। 'गलती करने वाले जमीदारो के विरुद्ध कठोर विक्रय कानूनो न बहुत से पैतक जमीदारा को सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र म कही का नही रखा। बडे बडे भूपति और अर्द्धशास्त्र परिवार पूणतया बर्बाद हो गय और वह भी अस्थायी कठिनाइ के कारण।" मद्रास और उत्तरी सरकारा मे जहा अल्पकालिक बदोबस्त हात थ, राजस्व प्रायः बार बढा दिया जाता था। कभी कभी तो इस 50 प्रतिशत तक बढा दिया जाता जिसस कि जमीदार किसान की स्थिति मे आ जाता और उसे राजस्व वसूलने के लिए भमि स बेदखल तक कर दिया जाता। बाद म प्रसारित स्थायी बन्दोबस्त ने विक्रय कानूनो तथा अधिक कर बढान के कारण जमीदारो को बर्बाद कर दिया। मद्रास के कुछ क्षेत्रो म ग्राम प्रथा की आजमाइश की गयी जिसम पूरे गाव पर कर लगान के लिए ठेके दिये गये। पर कर आरोपण सामान्यतया अधिक थे, इसकी बचत ठेकेदारो के भाग मे चली जाती थी जो और भी कर प्राप्त करते थे। किसानो की दुदशा थी जिसके कारण वे भाग जाते थे और गाव के गाव बर्बाद हो जाते थे।

1 प्रसाद भाई० एण्ड सुबेदार, एस० के० ए हिस्ट्री आफ माडन इडिया, प० 238।
2 मजूमदार डॉ० आर० सी० सिप्वाय म्युटिनी एण्ड रिवोल्ट आफ 1857 प० 18।

गया कि इस छीना झपटी और बिक्री ने बराबर और आस पास के प्रान्तों म बडा बुरा प्रभाव डाला। इस राज्य के छीनने से भी अधिक बुरा माना गया।"[1]

इन राज्यों के अपहरण के उपरान्त यहा के किसानो पर पर्याप्त भू कर लगाया गया। नये बन्दोबस्त म बिचौलिया को हटा दिया गया जिसस कि व बेकार हो गये। लगान रहित काश्तकारी की प्रथा जो पहले स ही चली आ रही थी निरकुशतापूर्वक डलहोजी द्वारा भी चलती रहने दी गयी। 1852 के ऐक्ट के अतगत इनाम कमीशन स्थापित किया गया। इसके अतगत विद्रोह के 5 वष पूव तक भूस्वामियो के जमीन के कागजात की जाच पडताल की गयी जिसके परिणामस्वरूप 20 हजार परिवार अधिकार-विहीन हो गये। इसने नि सदेह जनता के हर वग को ब्रिटिशो के विरुद्ध कर दिया। राजा अपने क्षेत्र के चले जाने और जमीदार अपनी भूमि के चले जाने का भय देखने लगे। उपाधि प्राप्तकर्ता और वृत्तिधारक भी इसी तरह के भय स आतकित रहने लगे। किसान अधिक कर से दब गये। प्रत्येक क्षेत्र के अपहरण ने तमाम लोगो, जैसे दरबारी लडकियो सगीतज्ञो और कलाकारो तथा तमाम और लोगो को बेसहारा कर दिया।

मद्रास कौंसिल के एक सदस्य जान सलीवान ने यह कहा, "एक स्थानीय राज्य की समाप्ति पर एक अग्रेज राजा का स्थान कमिश्नर की ओर से ग्रहण करता है, उसके तीन या चार साथी दजनो स्थानीय व्यक्तियो को उनके पद से उन्ह मुक्त कर देते हैं, जबकि हमारे कुछ सौ सनिक स्थानीय शासक के हजारो सनिको का स्थान लेते ह। छोटा दरबार समाप्त हो जाता है व्यापार नष्ट हो जाता है, राजधानी पतन की ओर चल देती है जनता गरीब होने लगती है अग्रेज सम्पन्न होने लगता है। वह गगा के बैंक से धन बटोरता है और टेम्स के बैंक मे चूमकर डाल देता है।'[2]

आर्थिक कारण—ब्रिटिशो के पूर्व बहुत से आक्रमणकारियो ने भारत पर आक्रमण किया पर धीरे धीरे वे यहीं समाहित हो गये और उनका भारतीयकरण हो गया। पर ब्रिटिशो के साथ बात कुछ और ही थी। वैसे तो वे 250 वर्षों तक यहा रहे पर उन्होने अपना अस्तित्व अलग ही बनाये रखा, अपनी मातृभूमि से उनका सपर्क बना रहा और भारत से वे तमाम धन इग्लैंड ले जाते रहे।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश जिसकी राजनैतिक सहायता करते उनसे भी पर्याप्त धन वसूल करते थे। मीर जाफर और मीर कासिम से उन्होने ऐसा ही किया। कपनी के कर्मचारियो ने आतरिक व्यापार पर सिक्का जमा लिया और व्यापार के प्रत्येक क्षेत्र म उन्होंने एकाधिकार की स्थापना कर ली। जब भी सभव होता वे

---

1 केयी पूर्वोद्धत, भाग 1 पृ० 327 29।

2 सिन्हा, मजर जनरल रिकार्ड द इंडियन म्युटिनी, पृ० 17।

बेशर्मी से भारतीयों के विरुद्ध भेदभाव करते और उनके व्यापार पर तमाम कर आरोपित करते। स्क्रैफ्टन ने व सीटाट पर गर कानूनी धन एकत्रित करने का आरोप लगाया। रिचड वारवेल के पत्रों से सूचना मिलती है कि उसने प्रत्येक वस्तु का व्यापार कर बहुत सा धन अर्जित किया।

जब ब्रिटिशों को शक्ति प्राप्त हुई तो उन्होंने भारतीय-अर्थ व्यवस्था को इग्लैंड की औद्योगिक मांगों के अनुसार ढाला। भारत का कच्चा माल अति कम मूल्य पर इग्लैंड भेजा जाने लगा, और जब वही कच्चा माल पक्के माल मे बदल जाता तो उसे ही भारत म महगे दामों पर लाकर बेचा जाता। चूकि इग्लैंड मे 19वी सदी म, औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी इस कारण भारतीय बाजारो मे इग्लैंड का आद्योगिक माल पट गया। ये सामान चूकि कुछ अच्छा और सस्ता होता था इसके कारण भारत का कुटीर और लघु उद्योग समाप्त होने लगा। भारत की जनता का कृषि की ओर उन्मुख होना पडा जिस पर दबाव बढ जाने से कृषि आय का कई भागों मे विभाजन होने लगा जिसम किसानो की गरीबी बढ गयी। डा० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि, "भारत इग्लड के लिए दुधारू गाय हो गया जब कि उसी के पुत्र भूखा मर रहे थे।"[1]

कृषि सबधी नीति, जो ब्रिटिश क्षेत्रों म अपनायी गयी, उसके कारण कृषक और जमीदार बर्बाद हो गये। बगाल म प्रारम्भ किया गया कार्नवालिस का स्थायी बन्दोबस्त प्रारम्भ मे कठिनाइया लेकर आया। पर अतत इससे लाभ हुआ। "गलती करने वाले जमीदारो के विरुद्ध कठोर विक्रय कानूनो ने बहुत से पैतृक जमीदारो को सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र मे कही का नही रखा। बडे बडे भूपति और अर्द्धशासक परिवार पूर्णतया बर्बाद हो गये और वह भी अस्थायी कठिनाई के कारण।"[2] मद्रास और उत्तरी सरकारो मे जहा अल्पकालिक बदोबस्त होते थे, राजस्व प्रत्येक बार बढा दिया जाता था। कभी कभी तो इसे 50 प्रतिशत तक बढा दिया जाता जिससे कि जमीदार किसान की स्थिति मे आ जाता और उसे राजस्व वसूलने के लिए भूमि से बेदखल तक कर दिया जाता। बाद मे प्रसारित स्थायी बन्दोबस्त ने विक्रय कानूनो तथा अधिक कर बढाने के कारण जमीदारो को बर्बाद कर दिया। मद्रास के कुछ क्षेत्रो म ग्राम प्रथा की आजमाइश की गयी जिसम पूरे गाव पर कर लगाने के लिए ठेके दिये गये। पर कर आरोपण सामान्यतया अधिक थे इसकी बचत ठेकेदारो के भाग मे चली जाती थी जो और भी कर प्राप्त करते थे। किसानो की दुर्दशा थी जिसके कारण वे भाग जाते थे और गाव के गाव बर्बाद हो जाते थे।

---

1 प्रसाद आई० एण्ड सुबेदार एस० के० ए हिस्ट्री आफ माडर्न इंडिया, पृ० 238।

2 मजूमदार डा० आर० सी० सिप्वाय म्युटिनी एण्ड रिवोल्ट आफ 1857 पृ० 18।

राजस्व बंदोबस्त का परिणाम बंबई और अन्य स्थानों पर भी बेहतर नहीं था। सब जगह से अन्याय और क्रूर करारोपण की शिकायत आ रही थी। एस० एन० सेन ने लिखा है कि किसान "ऋण से ग्रस्त थे और बनिया से लोग धन प्राप्त करते थे।"[1]

फिर किसान के सिर पर लगानरहित भूमि की तलवार लटक रही थी जिसके कारण उनकी नींद हराम थी। इस संबंध में कानून 1783 में पारित किया गया जिसमें कलक्टर को आदेश दिया गया कि जिसके पास जमीन का अधिकार-पत्र नहीं है उस उससे 'कानूनन' वापस ले लिया जाये। 1811 का कानून और वे कानून जो बाद में बने उसने इसे कठोर और आक्रामक बना दिया। 1845 में इस व्यवस्था को भूपति के जीवन तक ही सीमित कर दिया गया। गदर के पांच वर्ष के पूर्व 20 हजार परिवारों को इसी कारण इधर उधर भटकने की नौबत आ गयी जिससे असन्तोष का विष फैला और विद्रोह की आग भड़की। ये आर्थिक कारण थे जिन्होंने विद्रोह के बादल एकत्रित कराने में सहायता प्रदान की।

सामाजिक और धार्मिक कारण—सामाजिक और धार्मिक कारणों की भी कमी नहीं थी। 1780 में गुलाम हुसेन ने लिखा 'अंग्रेज कम ही हमारे पास आते और भेंट करते हैं।'"[2] 1784 में वारेन हेस्टिंग्स ने स्वीकार किया कि कुछ वर्षों पूर्व बहुत से अंग्रेज भारतीयों को बर्बर मानते थे। वैसे तो अब यह भावना घट गयी है, पर पूर्णतया अभी इसका लोप नहीं हुआ है। यदि इस तरह अंग्रेजों का भारतीयों पर बेहूदा विश्वास था तो भारतीयों का स्वाभिमान इसे अधिक दिनों तक बर्दाश्त करने को तैयार नहीं था और न ही ब्रिटिशों की अच्छी शासन प्रणाली भारतीय जनता की प्रशंसा प्राप्त कर सकती थी। एक उत्तरदायी ब्रिटिश अधिकारी चार्ल्स ग्राण्ट ने 1792 में प्रकाशित एक पुस्तक में लिखा कि सभी भारतीय बेईमान हैं जिनकी तुलना यूरोप के पिछड़े इलाके के पिछड़ी जाति के व्यक्ति से भी नहीं की जा सकती। विद्रोह के पूर्व बंगालियों के लिए 'कलकत्ता रिविउ' में जिस गंदी भाषा का प्रयोग किया गया उसमें इसकी घनघोर प्रतिक्रिया निश्चित ही संभावित थी।

1813 के चार्टर एक्ट के अनुसार भारत में असीमित प्रवेश के कारण ईसाई मिशनरियों की संख्या में भी वृद्धि हो गयी। इसके बढ़ते हुए विद्यालयों में भारतीय धर्मों की अवहेलना की जाती और तथाकथित काला कानून जो भारतीयों के लिए कुछ लाभ प्रदान करता, उसकी आलोचना की गयी। ये कारण थे जिन्होंने धीरे-

---

1 सेन एस० एन० एट्टीन फिफ्टी सेवन पृ० 34।

2 खान गुलाम हुसेन सियारुल मुतखरीन कानपुर 1897।

धीरे पर निश्चित रूप से विद्रोह की भूमि तैयार कर दी। भारतीयो को ईसाई बनाया जाने लगा जिसमे शक्ति और धोखाधडी दोनो का प्रयोग किया गया। उदाहरणाथ 1837 मे जब दुर्भिक्ष पडा तो मिशनरियो ने इसका पूण लाभ उठाया और 'तमाम यतीमो को ईसाई बना लिया गया।" ऐसा सर सैय्यद अहमद ने कहा।[1] रिलीजस डिसएबीलिटीज ऐक्ट (1856) के अतगत ईसाई धम स्वीकार करने वाले हि दुओ को सुविधा प्रदान की गयी। इस्ट इडिया कपनी के चैयरमैन मैंजिलस ने खुलेआम घोषणा की कि 'ऊपर वाले ने भारत का विस्तत साम्राज्य इग्लैड को इसलिए सौपा है क्योकि ईसाई धम का झडा परे भारत मे पहराना है। सभी को अपनी शक्ति के अनुसार यह चेष्टा करनी चाहिए कि प्रत्यक भारतीय ईसाई हो जाय।"

इन परिस्थितियो मे ब्रिटिशो का ऊचा उद्देश्य भी सही ढग से नही लिया जाता था। सतीप्रथा की समाप्ति और विधवा विवाह का वैधानिकोकरण जनता के धार्मिक विश्वास मे ब्रिटिशा का हस्तक्षेप माना गया। अग्रेजो ने जब रैलवे का निर्माण प्रारभ किया और तार से कलकत्ता को पेशावर से व बम्बई को मद्रास से जोड दिया तथा गगा से एक न्हर निकाली तो ब्राह्मणो ने यह कामना प्रस्तुत की कि जादू से यह सारा काय हो रहा है।"

इसका विश्वास जोर पकड रहा था कि भारतीय धम का विनाश हो जाने वाला है और उसका स्थान ईसाई धम को लेना है। लोगो का विश्वास था कि सरकार नमक व अय खाद्यान्न मे गाय के हड्डी का चूरा मिलाती है। वे घी मे मिलावट करत है और कुओ मे सुअर और गाय का मास फेंकते हैं जिससे पानी प्रदूषित हो जाये। उदाहरणाथ जब कानपुर मे आटे का भाव बडा तेज हो गया तो मेरठ क एक व्यापारी ने तमाम आटा मेरठ से कानपुर स्टीमर से भेजा। पर लोगो का यह विश्वास था कि गाय के हड्डी का चूण सरकार द्वारा इन वस्तुओ म मिला दिया गया है। वैसे तो "आटा काफी कम कीमत मे बाजार मे बेचवाने की व्यवस्था की गयी।" सर होपग्राण्ट ने अपन व्यक्तिगत पत्रिका मे लिखा कि "कोई भी भारतीय नागरिक भूख के कष्ट के बदले म यह काय नही करेगा।"[3] इसी कारण इन्ही परिस्थितियो मे वह समय आ रहा था जब लोगो की सहिष्णुता की प्रशसा हो रही थी।

पूणतया प्रशासकीय कारण—प्रशासकीय कारणो से भी कठिनाइया थी। 1780 म सियार मुतखरीन मे लिखा गया कि किस तरह बगाल मे ब्रिटिशो के

1 अहमद सर सय्यद काजेज आफ इडियन रिवोल्ट (डब्लू० एन० लीस), प० 10।

2 होम्स टी राइस कम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया भाग 4 प० 168 मजूमदार आर० सी०—सीपवाय म्यटिनी भी दखें।

3 ग्राण्ट सर होम इनसीडेंटस इन द सीपवाय म्युटिनी (1857 58), प० 12।

िभिक आधिपत्य काल मे लोग ब्रिटिशो के अनुशासित शासन को ढीले-ढाले लम शासन की तुलना म बेहतर समझते थ। पर ब्रिटिशो का सही चरित्र खुल सामने आ गया और उनके विरुद्ध घणा जोर पकडने लगी। दीवानी प्राप्ति के रात यह विशेष रूप से घटित हुआ। गुलाम हुसेन की उपरोक्त पुस्तक म ्शो के विरुद्ध जो आरोप लगाये गय ह उसस उनके प्रशासन के कई कमिया सूचना प्राप्त होती ह। (1) अंग्रेज अधिकारी जिन पर शासन करते थे उनसे की निकटता नही थी। (2) दोना के बीच भाषा और परपरा से भेदभाव हाने ारण जो प्रशासन ब्रिटिश उन पर करत थे वह उन्ह कम से कम उपयुक्त लगता । (3) अंग्रेजो के भारतीयो से अपरिचितता के कारण उनका प्रशासन यक्तिक था जिससे यह धीमा भी था और प्राय इसमे नीति मे परिवतन भी ता था। (4) ब्रिटिशो की भेदभावपूण व्यापारनीति के कारण भारतीयो को से कोई खास लाभ न प्राप्त होता था और चूंकि सेना म पहले की तरह उनकी ि न हो पाती इस कारण उनके लिए नौकरी के साधन नही थे। विद्वान लेखक ्न कठिनाइयो का और विस्तत विवेचन किया है जिसकी यहा आवश्यकता ो है।[1]

1860 मे सर सैय्यद अहमद ने इन कठिनाइयो की ओर विस्तार से व्याख्या त हुए घोषणा की कि विद्रोह का सबमे महत्त्वपूण कारण भारतीयो को विधान ा और सरकार के प्रशासकीय तत्र मे प्रविष्टन होन देना है जिसके कारण उसे य से भारतीय समस्याओ की जानकारी नही हो पाती। मुसलमान सभवत मामले मे सबसे अधिक असतुष्ट थे। अभी कुछ ही दिन पूव उन्होने सरकार के ो सैनिक व असनिक पदो पर अधिकार कर रखा था और देश की सबसे अधिक ्रकारसपन्न जाति थी। अपनी पुरानी स्थिति गवाकर वे अन्य लोगो से अब ्ड गये है।

सरकारी अधिकारी भूमि के तबादलो के मामलो मे हस्तक्षेप करते और ्टर उन विजित मुकदमो की ओर ध्यान नही देता था और न कारवाई ही ता था जो ब्रिटिश हित म नही होते थे। एक राजा के ताल्लुके के 216 गावो मे 138 गाव इसीलिए जब्त कर लिये गये। अपराधो के लिए कोडे की सजा ाप्त कर दी गयी और उसके स्थान पर कैद की सजा प्रारभ की गयी। इसे ा ने पसन्द नही किया।

सनिक असतोष—परन्तु उपरोक्त कारणो के बावजूद सभवत देश की जनता समय विद्रोह न करती यदि भारतीय सैनिको ने विद्रोह न किया होता। मरठ

थान गुलाम हुसैन सियार उल मुतखरीन देखें।
अहमद सर सय्यद काजेज आफ इण्डियन रिवोल्ट।

मे सिपाहियो ने विद्रोह किया और अपने अधिकारियो को मारकर वे दिल्ली पहुचे और बहादुरशाह को भारत का सम्राट घोषित किया पर फिर भी कुछ समय बीत जाने पर ही जनता विद्रोह से प्रभावित हुई।

जहा तक सिपाहियो के विद्रोह की भावना का प्रश्न है इसका भी कारण था। बगाल की सेना ने विद्रोह मे प्रमुख भूमिका अदा की। बगाल की सेना ने पहली बार विद्रोह नही किया। बगाल की सेना मे ब्राह्मण, राजपूत और जाट जैसी हिन्दू जाति के लोग थे जो केवल बगाल के ही नही थे बल्कि पूरे भारत के थे। वैसे तो इसमे शक्तिशाली पठान भी थे, पर वे उत्तर प्रदेश और अवध के रहनेवाले थे।

इस सेना ने ब्रिटिशो के लिए शानदार सेवाए अर्पित की थी, पर जैसे जैसे समय बीतता गया, उनके प्रगति के द्वार बद होते गये। इस सेना के एक सैनिक के विषय म होल्म्स ने लिखा, "यदि वह हैदर के गुणो का भी अपने कार्यकाल मे प्रदर्शन करता, तो भी उसे मालूम था कि वह एक ब्रिटिश सहायक के बराबर भी वेतन नही पा सकता था। और जिस पद पर वह 3 साल की विश्वस्त सेवा के बाद पहुचता, वह स्थिति भी उसे इगलड के एक नये रगरूट का अनुगामी बनाने से न रोक सकती।"[1]

सरकार भी भारतीय अधिकारियो मे विश्वास नही करती थी, प्रत्येक कपनी मे दो या तीन ऐसे भारतीय अधिकारी थे जिन्हे पूरे वेतन पर सैनिक सेवा से मुक्त कर दिया गया था। इसके लिए यह बहाना बनाया गया था कि उन्हे इनाम दिया जा रहा है। और यह तब किया जाता जब उन्हें आदरपूर्ण स्थान की प्राप्ति हो जाती।" जैसे ही सिपाही उनके निकट जाते, वैसे ही वे वहा आदर प्राप्त कर लेते जो यूरोपीय अधिकारी अपना ही अधिकार मानते थे ।"[2]

मद्रास की सेना ने 1806 म ही विद्रोह कर दिया क्योकि नये नियमो के अनुसार सिपाहियो को अपने माथे पर जाति चिह्न अकित कर देने की मनाही कर दी गयी, उन्हें अपने सिर के बाल छिनवाने का आदेश दिया गया जिससे वे चमडेदार कलगी सहित अपने माथे पर पगडी लगा सकें जो पुरानी पगडी के स्थान पर थी।

1824 मे बैरकपुर मे विद्रोह हुआ और आसाम मे 1825 म। एमहर्स्ट के समय म बर्मा के युद्ध के समय बगाल की सेना न इसलिए विद्रोह किया क्योकि उन्हे उनकी परपरा के विपरीत समुद्र पार जाना पडा, अपना सामान ढोने की स्वय व्यवस्था करनी पडी और एक परेशानी वाले स्थान अराकान जाना पडा। ये सैनिक बाद म अफगानिस्तान जाने मे भी हिचकिचाये। पर जब उन्हे वहा जाने को बाध्य

1 होल्म्स इडियन म्यूटिनी, पृ० 49।

2 वही।

एक तरह की रक्त-व्यवस्था हो गयी है, [illegible]
लिए एक कानून इसलिए इसके पास एक ही [illegible]
मे बेहतर क्या हो सकता है![illegible] सर सैय्यद ने कहा, [illegible]
आतंकित किया कि व अंधे जमे हो गये थे या [illegible]
खिसक गयी।"[1]

मेजर मेके जो और कर्नल व्हीलर जैसे कुछ [illegible]
आम सेना मे ईसाइयत का प्रचार किया जिसकी [illegible]
दिया। ईसाई धर्म का जागरूक प्रचार और [illegible]
टीज ऐक्ट' ने सिपाहियों के मन में भ्रम में और वृद्धि [illegible]।

इसके अतिरिक्त सेना में साधारण सैनिकों की कोई [illegible]
भद्दी भाषा और चुनी गाली से उनपर प्रहार किया जाता [illegible]
अपने सहायकों से निकटता का व्यवहार करने के स्थान पर [illegible]
और ऊंचे समाज के कार्यकलाप मे फंसा रहता था।"[2] [illegible]
बीच संबंध सूत्र केवल उसका वेतन और वृत्ति थे और [illegible]
भविष्य अत्यधिक अनाकर्षक थे।"[3]

एक तरह की रेलवे-व्यवस्था हो गयी है, एक तरह की तार व्यवस्था एवं पूरे देश के लिए एक कानून इसलिए इसके पास एक ही धर्म होना चाहिए और वह ईसाई धर्म से बेहतर क्या हो सकता है। सर सैय्यद ने कहा, "लोगों को इन पत्रों ने इतना आतंकित किया कि वे अंधे जैसे हो गये या यों कहें कि उनके पैर के नीचे से जमीन खिसक गयी।"[1]

मेजर मेकेन्जी और कर्नल व्हीलर जैसे कुछ उत्तरदायी अधिकारियों ने खुले-आम सेना में ईसाइयत का प्रचार किया जिसकी ओर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। ईसाई धर्म का जागरूक प्रचार और ऊपर से 'रिलीजस डिसएबिलिटीज ऐक्ट' ने सिपाहियों के मन में भ्रम में और वृद्धि कर दी।

इसके अतिरिक्त सेना में साधारण सैनिकों की कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। अति भद्दी भाषा और खुली गाली से उनपर प्रहार किया जाता और "अंग्रेज अधिकारी अपने सहायकों से निकटता का व्यवहार करने के स्थान पर अपने लाभ, विलासिता और ऊंचे समाज के कार्यकलाप में फंसा रहता था।" सिपाही और "सरकार के बीच संबंध सूत्र केवल उसका वेतन और वृत्ति थे और उसका वेतन व उसका भविष्य अत्यधिक अनाकर्षक थे।"[3]

मद्रास और बम्बई की सेना के नियमों के विपरीत बंगाल की सेना में पदोन्नति केवल सेवाकाल के आधार पर होती थी। पदमुक्ति की कोई आयु नहीं थी। रालिन्सन के अनुसार "परिणाम यह था कि 50 वर्ष की सेवा वाले सूबेदार (पैदल सेना में भारतीयों का मिलने वाला उच्चतम अधिकारी का पद) भी दिख जाते थे और इनमें से बहुत से इतनी अधिक आयु के थे कि वे सेना के मार्च के समय अन्य सैनिकों का साथ नहीं दे पाते थे।"[4] यही बात ब्रिटिश अधिकारियों के संबंध में भी सच थी। डलहौजी ने स्वयं कहा, "नेतृत्व करनेवाले अधिकारी अकार्यक्षम हैं, ब्रिगेडियर भी बेहतर नहीं हैं, विभागीय अधिकारी तो दोनों से गये-गुजरे हैं क्योंकि वे अधिक आयु के व अकेले हैं और इन सबके ऊपर वे 70 वर्ष के एक सेनापति को रख देते हैं।" कानपुर की दुर्घटना के समय जनरल व्हीलर की आयु 75 वर्ष की थी।

बंगाल के सैनिकों में यह भय भी व्याप्त था कि एक नया युद्धप्रिय सिख

1 अहमद सर सय्यद असबाबे बगावते हिन्द—दि काजेज आफ इंडियन रिवोल्ट डब्ल्यू० एन० लीज का अनुवाद पृ० 20 मि.ला आनंद स्वरूप नाना साहब पेशवा भी देखें।

2 द सिप्वाय म्युटिनी जिसे हेनरी नालिस ने लिखा और जो जनरल सर होम ग्राण्ट के व्यक्तिगत जनरल में एकत्रित किया गया है।

3 सेन एस० एन० पूर्वोद्धत पृ० 21।

4 रालिन्सन पूर्वोद्धत पृ० 96।

एक तरह की रेलवे-व्यवस्था हो गयी है, एक तरह की तार व्यवस्था एवं पूरे देश के लिए एक कानून इसलिए इसके पास एक ही धर्म होना चाहिए और वह ईसाई धर्म से बेहतर क्या हो सकता है। सर सैय्यद ने कहा, "लोगों को इन पत्रों ने इतना आतंकित किया कि व अंधे जैसे हो गये या या कहे कि उनके पैर के नीचे से जमीन खिसक गयी।"[1]

मेजर मेके जी और कर्नल ह्वीलर जैसे कुछ उत्तरदायी अधिकारियों ने खुले-आम सेना में ईसाइयत का प्रचार किया जिसकी ओर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। ईसाई धर्म का जागरूक प्रचार और ऊपर से 'रिलीजस डिसएबिलि-टीज ऐक्ट' ने सिपाहियों के मन में भ्रम में और वद्धि कर दी।

इसके अतिरिक्त सेना में साधारण सैनिकों की कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। अति भद्दी भाषा और खुली गाली से उनपर प्रहार किया जाता और "अंग्रेज अधिकारी अपने सहायकों से निकटता का व्यवहार करने के स्थान पर अपने लाभ, विलासिता और ऊंचे समाज के कार्यकलाप में फंसा रहता था।"[2] सिपाही और "सरकार के बीच संबंध सूत्र केवल उसका वेतन और वत्ति थे और उसका वेतन व उसका भविष्य अत्यधिक अनाकर्षक थे।"[3]

मद्रास और बम्बई की सेना के नियमों के विपरीत बंगाल की सेना में पदोन्नति केवल सेवाकाल के आधार पर होती थी। पदमुक्ति की कोई आयु नहीं थी। रालिन्सन के अनुसार "परिणाम यह था कि 50 वर्ष की सेवा वाले सूबेदार (पैदल सेना में भारतीयों को मिलने वाला उच्चतम अधिकारी का पद) भी दिख जाते थे और इनमें से बहुत से इतनी अधिक आयु के थे कि वे सेना के मार्च के समय अन्य सैनिकों का साथ नहीं दे पाते थे।"[4] यही बात ब्रिटिश अधिकारियों के संबंध में भी सच थी। डलहौजी ने स्वयं कहा, "नेतृत्व करनेवाले अधिकारी अकार्यक्षम हैं ब्रिगेडियर भी बेहतर नहीं हैं, विभागीय अधिकारी तो दोनों से गये-गुजरे हैं क्योंकि वे अधिक आयु के व अकेले हैं और इन सबके ऊपर वे 70 वर्ष के एक सेनापति को रख देते हैं।" कानपुर की दुर्घटना के समय जनरल ह्वीलर की आयु 75 वर्ष की थी।

बंगाल के सैनिकों में यह भय भी व्याप्त था कि एक नया युद्धप्रिय सिख

1 अहमद सर सैय्यद असेस आन काजेज आफ इंडियन रिवोल्ट डब्ल्यू० एन० सीज का अनुवाद पृ० 20 मिश्रा आनंद स्वरूप नाना साहब पेशवा भी देखें।

2 द मिलिटरी म्युटिनी जिसे हेनरी नासिम ने लिखा और जो जनरल सर होम ग्राण्ट के व्यक्तिगत जनरल में एकत्रित किया गया है।

3 सेन एस० एन० पूर्वोद्धत पृ० 21।

4 रालिन्सन पूर्वोद्धत प० 96।

रेजिमेन्ट अधिक आदर प्राप्त करेगा। भारतीय और अंग्रेज सैनिकों की संख्या में काफी अंतर था जो उन्हें प्रोत्साहित करता था। विद्रोह प्रारंभ होने के समय पूरे देश में अंग्रेजी सैनिकों की संख्या 36 हजार थी, जबकि भारतीय सैनिकों की संख्या 2 लाख 57 हजार थी। इनमें तोपखाने से संबद्ध हथियारबंद पुलिस और लश्कर की गिनती सम्मिलित नहीं है जिनकी संख्या काफी थी।[1] सेन ने लिखा है कि, 'लार्ड विलियम बैंटिक की आर्थिक नीति ने यूरोपीय अधिकारियों में पर्याप्त असंतोष की भावना भर दी थी और वे खुलेआम विद्रोह की बात करते थे। यह बात भारतीय और यूरोपीय सैनिकों से छिपी नहीं थी।'

देश में सैनिकों का विभाजन भी दोषपूर्ण था। बंगाल और बिहार में यूरोपीय सैनिक नहीं के बराबर थे। कलकत्ता व पटना के निकट दानापुर में कुछ यूरोपीय सैनिक थे। अधिकतर यूरोपीय सेना दूर पंजाब और अन्य स्थानों पर पड़ी थी। केवल बंगाल की सेना 1,51 361 सैनिकों की थी जिससे वे अपने भविष्य के प्रति विश्वस्त थे।

भारतीय सेना में कुछ ऐसे भी थे जो दिल्ली के राजपरिवार के लिए अपने मन में अब भी आदर रखते थे और उनका यह भाव भी उन्हें कार्य करने की प्रेरणा देता था। व्यक्तिगत यूरोपीय धन के लूट में मिलने की संभावना भी थी। जून 1857 को प्लासी के युद्ध का शताब्दी दिवस पड़ने वाला था और लोगों का अंधविश्वास था कि इस दिन ब्रिटिशों का पतन अवश्यंभावी है। और अंतिम घटना गुप्त रूप से चपातियों के बटने की थी। इसीलिए साधारण जन और सैनिकों के बीच कमल के फूल का बटना भी प्रारंभ था। इन घटनाओं की उत्पत्ति के कारण का पता तो नहीं चलता, पर चूंकि एक सही अवसर पर ऐसा कुछ हो गया था इस कारण जन असंतोष को और भड़कने में सहायता ही मिली थी।

और एक बार जब विद्रोह भड़क उठा तो इसे बनाये रखने और बढ़ाने के और कारण भी एकत्रित हो गये। यह अफवाह फैली कि क्रीमिया के युद्ध में रूस ने इंगलैण्ड को पराजित कर दिया है। अंग्रेजों के साधन और शक्ति का भी गलत अंदाज लगाया गया। अवध के भूतपूर्व नवाब के दरबारियों ने भी असंतोष को खूब हवा दी। दिल्ली सम्राट ने भी वेतन और भूमि देने का वादा किया। सेना से मुक्त किये गये सैनिक, जो इधर-उधर भटक रहे थे, उन्होंने विद्रोह की आग में घी का काम किया।

तात्कालिक कारण—विद्रोह का कारण चर्बी को लेकर कारतूसों से जुड़ा था। सिपाहियों के लिए नयी इन्फील्ड बंदूक लायी गयी थी जिसमें गोली भरने

1 रावर्टस पा० ई० माडर्न इंडिया पृ० 434।

2 सेन एस० एन० पूर्वोद्धृत पृ० 24 25।

के लिए कारतूस को सिपाही को दात से एक ओर काटना पडता था। यह अफवाह थी कि इन कारतूसो मे गाय और सुअर की चर्बी लगी है। इसमे हिंदू और मुसलमान दोनो का धम नष्ट होता था। ब्रिटिश सरकार ने इस आरोप का खडन किया और सिपाहियो को इन कारतूसो को प्रयोग करन के लिए बाध्य किया। ये सिपाही बैरकपुर मे इसी स्थिति मे क्रुद्ध हो गये और विद्रोह कर दिया। बरहामपुर मे भी ऐसा ही हुआ। पर सिपाहियो का निर्णायक विद्रोह मेरठ मे 10 मई 1857 को हुआ जब ब्रिटिश अधिकारियो ने इन कारतूसो का प्रयोग न करन के आरोप मे 85 सैनिको को कैद कर लिया। बाद म यह सच सिद्ध हुआ कि इन कारतूसो मे गाय और सुअर की चर्बी का प्रयोग किया गया था जिसकी जानकारी ब्रिटिश सरकार को नही थी।

इस तरह विद्रोह की आग लग चुकी थी और स्थिति पर फिर काबू नही पाया जा सका। मेरठ म जिम रेजिमेण्ट ने विद्रोह किया उसने तमाम यूरोपीयो को मार डाला और दिल्ली की ओर बढ चला। दिल्ली के रेजिमेण्टो ने भी विद्रोह किया। राजधानी मे विद्रोहिया ने तमाम यूरोपीयो को मारकर नगर पर अधिकार कर लिया और पुराने मुगल सम्राट को गद्दी पर बैठाया। जल्दी ही विद्रोह लखनऊ, बरेली कानपुर, आगरा, झासी, मध्य भारत, बुदेलखड और अन्य स्थानो पर फैल गया। इन विद्रोहिया ने यूरोपीया को मारा और जेलो को तोडकर कैदिया को स्वतत्र किया।

कानपुर म विद्रोहियो का नेतृत्व नाना साहब के हाथ मे था। ब्रिटिश सना ने यहा हथियार डाल दिये और चार को छोडकर सभी अग्रेज सैनिक मार डाले गये। झासी मे रानी लक्ष्मीबाई ने विद्रोहियो का नेतत्व किया और यहा पर भी बहुत से यूरोपीय मार डाले गये। अन्य भारतीय नेताओ मे तातिया टोपे, कुवर सिंह, अजी मुल्लाह खा, अहमदशाह और फैजाबाद के मौलवी अहमदशाह का नाम आता है।

ब्रिटिशो के पक्ष मे इन दिना सबसे अधिक सेवा पजाब न की जो पूरा-का-पूरा विश्वस्त बना रहा। इसके कुछ ही अपवाद थे। इसके लिए श्रेय कमिश्नर सर जान लारेन्स को दिया जाना चाहिए जिसने असतुष्ट सैनिको के अस्त्र रखवा लिये। नयी सिख सेना की एक रेजीमेन्ट बनायी और दिल्ली वापस छीनने के लिए उसे भेज दिया। दिल्ली भारत का केन्द्र स्थल होने के कारण, इसकी वापसी महत्त्वपूण थी और तभी विद्रोहियो की रीढ तोडी जा सकती थी। बहादुर शाह को कैद कर लिया गया, उसके दो पुत्रो को गोली मार दी गयी और उसे रगून भेज दिया गया।

कानपुर मे नाना साहब को जनरल हैवलाक ने पराजित कर दिया और नगर पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह लखनऊ की ओर आगे बढा। पर उसके कानपुर छोडने के बाद विद्रोहिया ने कानपुर पर फिर से अधिकार कर लिया।

चापसी की चेष्टा, या फिर किसानो का युद्ध। हर दृष्टि से यह स्थानीय, सीमित और असगठित था।"[1]

असफलता

विद्रोह की प्रकृति चाहे जो रही हो, इसमे सदेह नही कि भारतीय स्वतत्रता सग्राम के इतिहास मे यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। राष्ट्र का एक अच्छा-खासा भाग हथियार लेकर खडा हो गया। ब्रिटिशो के अल्प साधन और आवागमन की कठिनाइया न इस विद्रोह का सामना करने मे उन्हे दिक्कतें ही पेश की। जनता के लिए स्थिति बहुत पक्ष मे थी और ब्रिटिश आश्चयचकित रह गये थे। पर यह आश्चय ही था कि विद्रोह असफल हो गया। यहा पर विद्रोह की असफलता के कारण का अध्ययन शिक्षाप्रद होगा।

यह कहा जा सकता है कि विद्रोह की असफलता का प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि पूरे देश के लोगो ने इस विद्रोह मे भाग नही लिया और जिन्होने भाग भी लिया उनमे सगठन नही था। इस विद्रोह से प्रभावित क्षेत्र, केवल पजाब के कुछ भाग, उत्तर प्रदेश रोहिलखड, अवध, नवदा व चबल नदी के बीच के क्षेत्र बिहार व बगाल का पश्चिमी भाग थे। राजपूताना, मध्य और पूर्वी बगाल, नवदा के दक्षिण के भाग इस विद्रोह से अप्रभावित रहे। सिंध विश्वस्त रहा, अफगानिस्तान के दोस्त मुहम्मद ने विश्वस्त ढग से सहायता की और नेपाल भी इस क्षेत्र मे पीछे नही रहा, एक भी महत्त्वपूर्ण राजा इस विद्रोह मे सम्मिलित नही हुआ। जनता और उसके बुद्धिजीवी वग शात रहे। प्रथम तो उन्होने ऐसा इसलिए किया क्योकि उनमे राष्ट्रीयता की भावना नही थी और दूसरे उन्हे शासन करनेवाले राजाओ से सहायता की कोई आशा नही थी। कूटनीति, पारितोषिक और चेतावनी के अस्त्र के सहारे सिखो को विद्रोहियो से दूर ही नही रखा गया बल्कि उनसे विद्रोहियो के विरुद्ध सहायता भी ली गयी।

सर डब्लू० रसेल न स्थिति का सही आकलन ही किया, जब उसन लिखा, 'हमारा दिल्ली का घेरा सभव ही नही होता यदि पटियाला और जीन्द के राजा हमारे मित्र न होते और यदि सिख हमारे बटालियन मे न होते और पजाब मे शात पडे रहते। सिखो ने लखनऊ म उत्तम सेवाए कीं। हर मामले मे जनता ने हमारे सैनिको की सहायता की, भोजन की व्यवस्था की और युद्ध के मैदान मे उन्होने उपस्थित रहकर उन्हे शक्ति प्रदान की।"[2]

1 टामसन एण्ड गरे राइज ऐण्ड फुलफिलमेण्ट आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया, पृ० 436।

2 रसेल सर डब्लू० माई डायरी इन इडिया।

रोक दिया। सावरकर ने नाना साहब के इस काय का समथन करते हुए लिखा है कि "दिल्ली मे ही सभी सैनिको को पहुचा देने से ही कोई लाभ नहीं होने वाला था।"[1] पर डॉ० मजमदार का कहना है कि, "वह यह भूल जाते है कि आवश्यकता इस बात की थी कि पजाब स आनेवाली सहायता रोकी जाय। और विद्रोहियो की सख्या इतनी अधिक थी कि सही नेतृत्व मे दिल्ली पहुचने वाली पजाब और कलकत्ता दोनो की सहायता को वे रोक सकते थे।"[2] नाना का स्वाथ कानपुर तक ही सीमित था। वे अपने लिए पशवापद प्राप्त करने के इच्छुक थे। उनको इलाहाबाद, लखनऊ या दिल्ली मे कोई रुचि नही थी। दिल्ली यदि ब्रिटिशो के हाथ से निकलकर बहादुर शाह के हाथ म पहुच जाय तो वे उसस भी सतुष्ट नही थे।

सच मे विद्रोह करनेवालो म कोई ऐसा प्रभावशाली व्यक्तित्व नही था जो राष्ट्रीय स्तर पर सोचता। विद्रोह के तथाकथित नेता और नायक, जैसे नाना साहब राष्ट्रहित के विरोधी थ। विशेष रूप स नाना साहब के विषय म जितना ही कम कहा जाय, वही बेहतर है। स्वार्थी आर अयोग्य नाना साहब मे योजना बनाने की न तो बुद्धि ही थी और न बडे स्तर पर युद्ध करन की क्षमता। कानपुर के निकट वह हैवलाक से हार गया और इस युद्ध म विजय प्राप्ति के लिए उसने बुद्धि और शौय किसी चीज का प्रयोग नही किया। दिल्ली जाने से अपने सैनिको को रोककर उसने बुद्धिहीनता का ही काय नही किया बल्कि गद्दारी भी की। उसने कानपुर मे यूरोपीय महिलाओ और बच्चो को कत्ल कराकर अनयकारी अपराध किया। सबसे घिनौना काम तो उसने यह किया कि इस सबके साथ बीच बीच म ब्रिटिशो के पास पत्र के माध्यम से अपीले की कि उसे क्षमा कर दिया जाय तथा उसे उसकी उपाधि व वनि वापस की जाय। उसन एक पत्र मे एक ऊचे ब्रिटिश अधिकारी को लिखा, 'यह आश्चयजनक है कि मैंन असहायावस्था मे विद्रोहियो का साथ दिया पर फिर भी मुझे क्षमा नही किया गया। स्त्रियो और बच्चो को आपके सिपाहियो और बदमाशो ने उस समय मारा जब हमारे सैनिक कानपुर से भाग चुके थे।"[3]

तातिया टोपे, रानी लक्ष्मीबाई और कुवरसिंह एक बार विद्रोहियो के साथ आ गये तो वे उनके प्रति ईमानदार बने रहे। पर इनम से किसी के पास राष्ट्रीय स्तर पर युद्ध करन की क्षमता नही थी। बहादुरशाह तो केवल नामधारी शासक था।

पर इनके विपरीत लारेंस, आउट्रम, हैवलाक, एडवडस एव निकलसन महान् सैनिक ही सही थे बल्कि महान् योजना बनानेवाले और सगठक थे। लारेंस को

1 सावरकर वी० डी द इडियन वार आफ इडपेंडेंस पृ० 220।
2 मजूमदार सीप्वाय म्युटिनी पृ० 271।
3 मजूमदार आर० सी० सीप्वाय म्युटिनी एंड रिवोल्ट आफ 1857।

दीवार स घिरी दिल्ली को, जिसके पास बढिया सेना थी जो बाहर के क्षेत्रो मे भी जा सकती थी और जिसके अन्दर अच्छी किलेवदी थी, ब्रिटिशो ने केवल 4 महीने मे हथिया लिया। य भारतीय कमजोरियो के कुछ ज्वलत उदाहरण है।

और फिर एक ओर वे ब्रिटिश थे जिन्हे अपनी महिलाओ और बच्चो की हत्या का बदला लेना था। उनके सीने मे एक साम्राज्य को बनाय रखन का उत्साह था, अपनी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को बचाने का निश्चय था। इस सबके अतिरिक्त उनमे थी आपस म एक बने रहने की इच्छा लडन और जीतन का उत्साह। उनके सामने जीतने के अतिरिक्त और विकल्प नही था, तभी उन्हे जीवित रहने का अवसर था। यदि वे भागते तो भारत मे सिर छिपाने और प्राण बचान के लिए स्थान कहा था ?

जबकि दूसरी ओर भारतीय लडन म बुद्धि का उतना प्रयोग नही कर रहे थे जितना अपेक्षित था। अपन धर्म को बचाने की भावना के पर्दे के पीछे चले जान से अब उन्हे लडाई भौतिक लाभ के लिए या ब्रिटिशो से घृणा की भावना के वशीभूत होकर करना था। उन्हे उत्साहित करन के लिए कोई राष्ट्रीय आदर्श नही था जो उन्हे एकता के सूत्र म बाध सके। युद्ध के मैदान मे इनके लिए लडना सामयिक आवश्यकता थी और वहा से भागकर गाव पहुच जाना जीवन के लिए शाति व सुरक्षापूर्ण आवश्यकता।

बगाल के सैनिको के चरित्र मे भी एसा कुछ नही था जो ईर्ष्या की वस्तु हो। प्रेम और बधुत्व के स्थान पर घमड और आरामपरस्ती उनकी विशेषता थी जिसके कारण अन्य कोई उनसे किस आशा से जाकर मिलता।

1857 के विद्रोह म इस स्थिति के कारण किसानो, खेतिहरो और जन साधारण से इसमे सहयोग की अपील नही की गयी। इसमे सबसे अधिक सहयोग बर्बाद राजाओ व उपाधि तथा वृत्ति गवा देनेवाले व्यक्तियो ने दिया।

देश के कुछ भागो मे, उदाहरणार्थ पजाब और राजपूताना मे कुछ लोगो ने ब्रिटिशो का अनुशासित शासन पसन्द किया। भले ही यह राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति तथा अनुशासनहीन राजाओ के प्रशासन के लिए अपमानजनक रहा। सर जॉन स्ट्रैची ने लिखा है कि, "एक बार मुझे यह कर्तव्य सौंपा गया कि मैं लम्बे अर्से स चले आ रहे ब्रिटिश क्षेत्र के कुछ गाव एक अच्छे स्थानीय शासक के क्षेत्र मे मिलवा दू। मुझे जनता की ऊची और तीव्र आवाजे नही भूलेगी जिसके माध्यम स उन्होंने बताया कि उनके साथ कितना अत्याचार हुआ है।"[1]

"ब्रिटिशो द्वारा उत्पन्न नया मध्य वर्ग 1857 के विद्रोह से कोई आशा नही करता था उन्हे इस मध्य श्रेणी का प्रतिनिधित्व ब्रिटिश शासको म ही प्राप्त हुआ जिन्होंने अपने हित म ब्रिटिशो का समर्थन करना ही उचित समझा। व 'सामन्तशाही

1 होल्म्स पूर्वोद्धृत पृ० 169 70।

घोड़े' का समथन करने का तैयार नही हुए।"[1]

समय भी भारतीया के विरुद्ध था। ब्रिटिशा के भाग्य से क्रीमिया का युद्ध समाप्त हो गया था। रूस इसमे हार गया और भारतीय विद्रोही अतर्राष्ट्रीय जगत से अलग-थलग पड गये। भारतीया द्वारा शीघ्र विजय से ही समस्या सुलझ सकती थी अयथा इग्लैंड से सहायता पहुच सकती थी। पर जो विवरण ऊपर दिया गया है उससे स्पष्ट है कि विद्रोहियो ने ऐसी कमजोरी का प्रदशन किया कि बाहर से सहायता मगाने की आवश्यकता ही नही पडी।

पर अनत यह भी बता दिया जाना चाहिए कि अनेक बार ब्रिटिशो का भाग्य ने साथ दिया। इनम स सबसे महत्त्वपूण यह था कि यदि विद्राह का दमन होन मे अधिक समय लगता तो भारतीय राजा इमम सम्मिलित हो सकते थे। विद्रोह के नेताओ और बहादुर शाह द्वारा उनको आकपक उपहार देन की घोषणा हो रही थी। पजाव म भी स्थिति बहुत सुरक्षित नही थी। खूखार कबीले ब्रिटिशो पर आक्रमणाथ घात लगाय तैयार थ। 13 हजार बर्खास्त सैनिक ऊधम मचाते घूम रहे थे। वैसे तो अधिकतर जनता विश्वासपात्र थी पर उनम यह भावना व्याप्त थी कि देख ब्रिटिश रहत हैं या चले जाते ह।[2] 'यदि सहायता लेकर दिल्ली पर अधिकार न किया जाता और वह भी जल्दी से, ता पजाब म ही यूरोपीय लोगो के लिए कठिनाई पैदा हो जाती।"

19 अप्रैल 1858 को लारेंस ने एक मिनिट म लिखा "भारत म गभीर और अनुभवी लोग यह विश्वास करते हैं कि किसी आश्चयजनक शक्ति ने ही हम बर्बादी म बचाया है।"[3]

जैसा भी हो, विद्रोह को कठोरता से दबा दिया गया। पर एक बार ऐसा हो गया तो कैनिंग ने जनता के साथ बदले की भावना के साथ काम नही किया। उसने घोषणा की कि वह क्रोध मे शासन नही करना चाहता। साथ ही चतुराई भी इसी म थी कि उभार रहा जाये। क्योकि इतने अल्प अग्रेजो के साथ भारत पर शासन करना जनता और भारतीय सैनिको के स्वेच्छा के बिना समव नही था। बहुत से राजा जमीदार और साधारण जन ब्रिटिशो के प्रति मैत्री का प्रदशन करत थे। यह कोई अच्छाई नही थी कि चमडी के आधार पर घणा की भावना पनपायी जाय। इसीलिए कैनिंग न इस आशय का एक प्रस्ताव प्रसारित किया कि उसके अधिकारी अनावश्यक खून खराबा न करें व गाव न जलायें क्योकि इससे दुर्भिक्ष तो फैलगा ही साथ ही यह राजस्व-स्रोता का कम करेगा। कैनिंग को जातीय शत्रुता के स्तर का

1 रिबेलियन 1857, म सिम्थाजियम पृ॰ 117।
2 एबाट हिस्ट्री आफ पजाब भाग 2 पृ॰ 353।
3 पजाब एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट 1856-58।

मान था। इसीलिए वह शीघ्रता से स्थिति मे सुधार करना चाहता था।

जो प्रस्ताव प्रसारित किया गया था उसमे उन लोगो के विरुद्ध कारवाई के नियमो का उल्लेख भी किया गया था जो हिंसा और हत्या मे लगे थे। पर सभी कुछ कानून के अतगत किया जाना था और कोई ज्यादती नही की जानी थी। इसम खूब सोच विचारकर कारवाई की गई जिससे अयाय भी न हो और भारत मे ब्रिटिश हितो को हानि भी न पहुचे। पर उसे गलतफहमी थी क्योंकि प्रेस मे और अन्यत्र कैनिंग की उदारता की भत्सना करते हुए तूफान खडा कर दिया गया। एक भारतीय अखबार ने इसे 'नीति विरोधी और अत्याचारपूण इसस अग्रेजो और ईसाइयो का खून बहता है उनकी औरतें, बहनें और लडकिया इससे अपमानित भी होती है और उसके बदले मे कुछ नही होता है" लिखा, लदन के 'टाइम्स' ने एक लव लेख मे इसे 'कैनिंग की दया'[1] की सज्ञा दी और घृणात्मक दृष्टि मे माग की कि क्या "मानवता और उदारता केवल विद्रोही लोगो के लाभ ही के लिए है ।" एक दूसरे लेख मे 'टाइम्स' ने इस एक 'मूखतापूण घोपणा' की सज्ञा दी। 'पच और डेली न्यूज' जैसे अखबारो ने भी उसपर तीखे प्रहार किय, पर कनिंग अपनी नीति पर अटल रहा और ग्रेनविल का लिखा कि, "जबतक मेरे शरीर मे सास है मैं उसी नीति पर चलूगा जिसे मैंने अभी तक अपनाया है।"[2] ग्रेनविल ने उसका समथन किया और रानी ने भी हृदय से उसकी नीति को स्वीकार किया।

कैनिंग न एसे काल मे शान्तचित्तता का प्रदशन किया जब पूरे वातावरण मे घणा, अवैधारिक बदले की भावना और क्रोध का भाव व्याप्त था। उसने अपने लिए भारतीय गार्डों को बदलकर अग्रेज गाड रखना अस्वीकार कर दिया। कलकत्ता के अग्रेजो की यह माग भी उसने नही मानी कि पूरे बगाल मे माशल लॉ लगा दिया जाये और कड़े विरोध के बावजूद उसने मुशी अमीर अली को जो एक मुस्लिम वकील थे, पटना डिवीजन मे डिप्टी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया। खुली गालिया, हिंसात्मक विरोध और उसे वापस बुलाने के रानी के पास भेजे गय पेटीशन भी उसको उस रास्ते से विरत न कर पाय जिसे वह ठीक समझता था। उसकी सेवाओ की इग्लड मे प्रशसा की गयी। उसे जी० सी० बी० बना दिया गया और 1859 मे उसे अल का पद प्रदान किया गया।

जब तूफान शात हो गया तो यह आकलन करने का समय भी आया कि उन लोगो को इनाम दिया जाय जिन्होन ब्रिटिश की विश्वस्तता से सेवा की। पजाब के चीफ कमिश्नर जान लारेंस की पदोन्नति लेफ्टीनेंट गवनर के पद पर कर दी

1 इसी तरह कैनिंग का नाम क्लीमन्सी कनिंग पड गया।

2 मक्नागन माइकेल क्लीमेंसी कैनिंग प० 132 41।

गयी। पटियाला, नाभा, जीन्द, कपूरथला आदि के शासकों को, जिन्होंने ब्रिटिश को उनके कष्ट के समय सहायता की थी, उचित ढंग से इनाम प्रदान किया गया। नेपाल का वह क्षेत्र जो ब्रिटिश ने ले लिया था और अवध को 1815 में दे दिया था उसे नेपाल के शासक जंगबहादुर को वापस कर दिया गया। उसे सेना का जी० सी० बी० पद भी दिया गया। इस स्वतंत्र देश के सैनिक विद्रोह के समय लखनऊ तक आ गए थे। कैनिंग भी अपनी आनबान से अपर इंडिया होकर गुजरा और दरबार किये। उसने अम्बाला, लाहौर, पेशावर, स्यालकोट और शिमला में वहां के राजाओं से भेंट की।

विद्रोह के उपरान्त परिवर्तन

टाम्सन और गरेट ने लिखा है कि, "विद्रोह को केवल एक खिन्न करनेवाली ऐसी घटना कहकर नहीं टाला जा सकता जिसका अंत अंग्रेजों ने दबाकर किया।"[1] इसके बाद पूर्णतया आन्तरिक प्रशासन को पुनर्गठित किया गया और भारतीय राज्यों से संबंध भी स्थापित किये गये। पावेल प्राइस ने लिखा है कि, "विद्रोह के बाद पुनर्गठन ने यह अवसर प्रदान किया कि कंपनी से शासन शक्ति क्राउन के हाथों में दे दी जाये जो सत्य भी हो और वैसे ही दिखे भी।"[2]

भारत में बेहतर सरकार के लिए ऐक्ट

विद्रोह का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम भारत में बेहतर सरकार हेतु 1858 का ऐक्ट था। यह ऐक्ट सच में 1784 में पिट के इंडिया ऐक्ट द्वारा प्रारंभ की गयी परंपरा के अंत का सूचक था। 1784 से आगे धीरे धीरे भारतीय मसलों पर इंग्लैंड के ताज की पकड़ मजबूत होती गयी और कोर्ट आफ डायरेक्टर्स की शक्ति धीरे धीरे घटती गयी। अंततः 1853 का एक्ट पारित हुआ। इस ऐक्ट में स्पष्ट किया गया कि कंपनी भारत के सारे क्षेत्र और राजस्व को रानी की ओर से ग्रहण करेगी, जबतक कि कोई और व्यवस्था न हो। कंपनी के व्यापार का एकाधिकार पहले से ही समाप्त किया जा चुका था और भारत में किसी भी अंग्रेज का आ बसने की छूट प्राप्त हो गयी। इन परिस्थितियों में कंपनी से ताज के हाथ में शक्ति का परिवर्तन अधिक दिनों तक इंतजार का विषय नहीं हो सकता था।

भारतीय सरकार की कार्यक्षमता के लिए गृह-क्षेत्र में तत्कालीन दुहरी शासन प्रणाली भी लाभकर नहीं थी। कोर्ट आफ डायरेक्टर्स और बोर्ड आफ कंट्रोल के बीच लगातार झगड़े और बिगाड़ के कारण कार्य में अनावश्यक देरी हो जाया करती

1 टाम्सन ऐंड गरेट पूर्वोद्धृत पृ० 390।
2 पावेल प्राइस, जे० सी० ए हिस्ट्री आफ इंडिया पृ० 559।

थी। भारत और इग्लैंड के बुद्धिजीवी लोगो ने इसकी बार-बार आलोचना की। इस तरह इस कमी को भी दूर किया जाना था।

यह विश्वास भी जोर पकडता जा रहा था कि कपनी जसी व्यापारिक सस्था बिना स्वार्थ के शासन ही नही कर सकती। करोडो लोगो की भूमि की सरकार व्यापारियो के सगठन से कार्य-क्षमता के साथ नही चल सकती क्योकि उनकी निगाह लाभ पर अधिक रही ह। इग्लड म हुई औद्योगिक क्राति और इसके फलस्वरूप इग्लड म हो रह उदारवाद के विकास का प्रभाव भी भारतीय पद्धति व जीवन पर पडे बिना नही रह सकता था। उस देश मे उदार लोगो की एक पीढी ही ज म ले रही थी जिसका विश्वास था कि सरकार की मत्रिमडल के प्रति उत्तरदायी पद्धति ही सर्वोत्तम है। और उ ह तब तक सतोष नही हो सकता था जब तक कि वह पद्धति इग्लैंड की ही भाति भारत म स्थापित न हो जाय।

परिवतन का यह अवसर भारत मे तब आया जब 1857 म यहा विद्रोह हुआ। इग्लैंड म कपनी के शासन-पद्धति की आलोचना हुई जिसके कारण यह विद्रोह हुआ और जिसम सैकडा अग्रेजो की बलि हुई और बहुत स भारतीयो का जीवन व धन तहस-नहस हो गया। जो ताज के सीधे नियत्रण के पक्षधर थे उ होने अपनी आवाज तेज कर दी और जब विद्रोह के बाद पुनगठन प्रारभ हुआ तो "कपनी से ताज को शक्ति का परिवतन देखने मे और सच्चाई मे कर दिया गया।"

1857 के आम चुनाव मे पामस्टन सफल हुआ और प्रधानमत्री बनाया गया। उसी वर्ष जुलाई म उसन ससद के समक्ष दुहरे शासन की बुराइया बतायी और भारतीय शासन के अधिग्रहण की इच्छा व्यक्त की। ईस्ट इडिया कपनी चौक पडी और उसन इस कदम के विरुद्ध एक 'ग्रैण्ड पेटीशन तयार किया। कपनी की सेवा म नियुक्त उस काल के प्रसिद्ध विद्वान जॉन स्टुअट मिल ने बडी चतुराई से पेटीशन तयार किया जिसमे कपनी की ओर से कहा गया कि दुहरे शासन मे कोई दोष है तो इसकी रचना 1784 मे पिटस इडिया ऐक्ट के अतगत की गयी थी, इसलिए इग्लैंड की सरकार ही इसके लिए दोषभागी है। कपनी ने उन महान सेवाओ की गिनती करायी जो उसने भारत और ताज दोनो की की थी। उसमे यह भी बताया गया कि किस तरह एक विस्तृत साम्राज्य की रचना बिना व्यय के कर दी गयी है। इस बात पर भी जोर दिया गया कि भारत सरकार का सीधे अधिग्रहण खतरनाक भी है। और यह "विश्वास करना कि भारत का प्रशासन तब सही होता यदि यह ताज के एक मत्री द्वारा किया गया होता जिसमे कोट आफ डायरेक्टस सहयोगी न होते, इस बात के सोचने के बराबर है कि मत्री भारत पर शासन करने की सपूण शक्ति के साथ यदि अपनी इच्छा से शासन करता है तो वह अच्छा शासन नही है क्योकि उसने अनुभवी और उत्तरदायी परामशदाताओ की सहायता से शासन किया है।" कपनी के चेयरमैन रास मजिल्स ने इसपर आश्चय व्यक्त किया कि

कपनी का अस्तित्व बिना ससदीय छानबीन के खतरे मे डाल दिया गया है। उसन जोर दिया कि, "कपनी जैसी एक माध्यमिक, अराजनैतिक और पूणतया स्वतन्त्र सस्था भारतीय सरकार के उत्तम शासन के लिए आवश्यक है।'

पर इस सबका पामस्टन के ऊपर कोई प्रभाव नही पडा और उसन फरवरी 1858 म भारत म बेहतर सरकार के लिए एक बिल प्रस्तुत करत हुए कहा, "हमारी राजनैतिक परपरा का यह सिद्धात है कि सभी प्रकार के प्रशासकीय कार्यों के साथ ससद के प्रति मत्रिमडलीय उत्तरदायित्व जुडा होना चाहिए। पर इस मामल मे भारत सरकार के काय एक ऐसे सगठन के प्रति हैं जो ससद के प्रति उत्तरदायी नही हैं और न ही ताज द्वारा नियुक्त है। इसके सदस्यो का चुनाव व करत हैं जिनका भारत से कोई वास्ता नही है। "पर लाड पामस्टन के तक हमदर्दीपूण भाषा म थे और उसन कहा भी कि बिल का उद्देश्य कपनी की भत्सना करना या उसे नीचा दिखाना नही है बल्कि वतमान प्रणाली मे कुछ स्पष्ट दोषो का दूर करना है। पामस्टन इसस भी सहमत नही था कि शक्ति क सीधे अधिग्रहण स भारत या कही और से खतरा है। उसके अनुसार भारत के लोग इस परिवतन का स्वागत ही करेंगे। कुछ सदस्या ने तो कपनी के प्रशासन की क्रूरता स आलाचना की और उनम सबसे अधिक मुट्फट सभवत सर जाज कानवेल लेविस था।

यह बिल दूसरे वाचन म सामन आया। पर दुभाग्य से कानून बनन के पूव पामस्टन 'का सपिरसी टु मडर बिल' के ऊपर पराजित हो गया और पद स अलग कर दिया गया। लाड डर्बी उत्तराधिकारी हुआ और डिजरैली चासलर आफ एक्सचेकर बनाया गया। डिजरैली न एक नया इडिया बिल ससद मे रखा। पर इसकी लाड पामस्टन और उसके साथियो ने भत्सना की। यह मामला चलता ही रहा जब स्टेनले ने एक दूसरा बिल प्रस्तुत किया जो भारत म बेहतर सरकार के लिए ऐक्ट के रूप मे पारित हो गया।

धारायें—इस ऐक्ट मे 75 खड थे जिसम यह घोषित हुआ कि आगे से भारत मे "रानी के नाम पर रानी द्वारा" शासन किया जायेगा। गृह सरकार के सम्बन्ध मे ऐक्ट न अधोलिखित परिवतन किए (1) बोड ऑफ कट्रोल और कोट आफ डायरेक्टस का स्थान भारत के सेक्रेटरी आफ स्टेट ने ले लिया। (2) सेक्रेटरी आफ स्टेट के सहायताथ 15 सदस्या की एक कौंसिल आफ इडिया का निर्माण किया गया। इनमे से 8 ताज द्वारा नियुक्त किय जाने थे और 6 कोट ऑफ डायरेक्टस के भूतपूव सदस्या द्वारा। (3) कम स-कम इसके आधे सदस्यो के लिए यह आवश्यक था कि वे भारत मे कम से कम 10 वप तक की सेवा कर चुके हो और अपनी नियुक्ति के समय वे भारत से 10 वप के पहले से दूर न रहे हो। (4) ताज द्वारा नियुक्ति लोगो म कोई जगह रिक्त होने पर ताज ही पुन उस पद पर नियुक्ति करेगा और डायरेक्टरो द्वारा चुने गए लोगो के स्थान के रिक्त हान

पर कौंसिल द्वारा कोआप्टड सदस्य से जगह भरी जायेगी। (5) जबतक इन सदस्या का व्यवहार अच्छा रहगा वे अपने पद पर काय करते रहेंगे और उन्हे ससद के दोनो सदनो के पेटीशन पर ही हटाया जा सकेगा। (6) उनका वार्षिक वेतन 1,200 पौण्ड होगा। (7) सेक्रेटरी ऑफ स्टेट मत्रिमडल का सदस्य होगा, वह ससद मे बैठेगा और उसकी सहायता ससदीय अडर सेक्रेट्री करेगा। (8) सेक्रेटरी ऑफ स्टेट कौंसिल की बैठको का प्रतिनिधित्व करेगा। रुपए की सेक्युरिटी चालू करन, धन को गिरवी रखने या बेचन तथा धन आर राजस्व के सदुपयाग के मामलो मे वह बहुमत के निणय से बधा रहेगा। पर अन्य मामलो मे यह कौंसिल के निणयो की भी अवहेलना कर सकेगा। पर ऐसी स्थिति म वह स्वय या कोई अन्य सदस्य इसकी माग कर सकेगा कि वह अपना मत और तक कारवाई मे लिख दे। कौंसिल को स्वय इस तरह का कोई अधिकार नही था। इसे केवल सेक्रेट्री द्वारा प्रस्तुत मसला पर अपना मत देना था। (10) सेक्रेट्री ऑफ स्टेट व्यापार के सही कामकाज के लिए नियम बना सकता था। उसे विभिन्न समितिया बनाने और उनके मध्य विभिन्न विभागो के बाटने का अधिकार प्राप्त था। (11) कौंसिल की बैठक कम स कम सप्ताह मे एक बार होती थी। इसकी गणपूर्ति के लिए 5 सदस्यो की आवश्यकता पडती थी। सेक्रेट्री ऑफ स्टट की अनुपस्थिति म जो निणय होते थे उसपर उसके लिखित अनुमोदन की आवश्यकता पडती थी। (12) भारत का राजस्व केवल भारत के लिए ही प्रयोग करने का निश्चय हुआ। सेक्रेट्री आफ स्टेट और कौसिलरो का वेतन, इडिया आफिस का व्यय, ईस्ट इडिया कपनी के ऋण और डिवाइडेण्ड आफ स्टाक सभी भारत आरा देय घोषित हुए। पर सेक्रेट्री के व्यय और ऋण सबधी आदेशा पर कौंसिल के बहुमत के सदस्यो की सहमति की आवश्यकता पडती थी। (13) सेक्रेट्री ऑफ स्टट से गवनर जनरल को प्रेषित किये जानेवाले सभी पत्र कौंसिल के समक्ष प्रस्तुत किये जाते थे या बैठक कक्ष मे सात दिन तक रखे रहते थे। यदि कौंसिलरा का बहुमत इससे असहमत होता और सेक्रेट्री आफ स्टेट इसे अब भी मान्य करता तो उसे इसके लिए कारण देने होते। युद्ध की घोषणा, समझौता करने, राजाओ से बातचीत करने के कुछ मामले ऐसे थे जो गुप्त रहते थे और इस कारण उन्हे कौंसिल के सामने नही लाया जाता था। इस सबध मे गवनर जनरल से प्राप्त पत्र भी गुप्त श्रेणी मे आते थे। (14) ऐक्ट के अतगत सरक्षण सेक्रेट्री ऑफ स्टेट और भारत सरकार मे विभाजित था। सभी नियुक्तिया और पदोन्नतिया जो नियमानुसार या परपरानुसार भारत मे किसी अधिकारी द्वारा की जाती थी वे उसी तरह के अधिकारी द्वारा आगे भी भारत मे की जाती रहेंगी" यह स्वीकार किया गया। सिविल सर्विस कमिश्नरो की सहायता से सेक्रेट्री ऑफ स्टट द्वारा बनाय गय नियमा के अनुसार सिविल सेवाओ म प्रतिभाबद्ध पदा पर नियुक्ति हेतु खुली

प्रतियोगिता होने लगी। (15) भारत के सबध मे प्रतिवप एक बार ससद के समक्ष सेक्रेट्री आफ स्टट को वहा के नैतिक और भौतिक विकास के सबध म एक रिपोट प्रस्तुत करनी पडती थी। (16) और अतत सेक्रेट्री ऑफ स्टेट को एक सामूहिक सस्था माना गया जो भारत और इगलैड म काय के लिए उत्तरदायी था।

भारत सरकार के सबध म इस ऐक्ट न घोषणा की कि (1) भारत सरकार का उत्तरदायित्व सीधे ताज द्वारा ग्रहण किया गया और उसकी यह पद प्राप्ति रानी द्वारा भारतीय राजाओ के समक्ष घोषित की जानी थी। (2) सभी सधिया ठेके और उत्तरदायित्व जो कपनी न किय थे उसे ताज द्वारा यथावत स्वीकार करने को कहा गया। (3) ताज को भारत के गवनर जनरल के नियुक्ति का अधिकार मिला। इसे प्रेसीडेसिया के गवनर को नियुक्त करने का भी अधिकार मिला। पर यह भी माना गया कि गवनर जनरल गवनर की नियुक्ति का अधिकार रखेगा जिस ताज स्वीकार करेगा। जबकि अन्य कौसिल के सदस्यो की नियुक्ति सेक्रेट्री आफ स्टेट के हाथो होनी थी। (4) भारतीय जल और सैनिक नियत्रण ताज के पास भेज दिया गया। (5) यह भी तय हुआ कि भारतीय धन भारत की ससद की अनुमति के बिना बाहर के सैनिक क्षेत्र मे व्यय नही किया जाना चाहिए। यह धन, सेना को पीछे हटाने या एकाएक आवश्यक आवश्यकता' आने पर व्यय किया जा सकता था।

एक समीक्षा—भारत के इतिहास म इस ऐक्ट की विशेष महत्ता है। कपनी *का शासन समाप्त हो गया और ताज का शासन एक तरह से सीधे प्रारभ हुआ।* माशमैन ने लिखा है। कि "कपनी न अपनी शक्ति गवाकर सारी शक्ति ताज को सौप दी जो रोम के साम्राज्य से भी शानदार था।"[1] कोट आफ डायरेक्टस और बोड आफ कट्रोल मे होनेवाली अनबन ने आग बढना ही कठिन बना दिया था। अब इन दोना सस्थाओ को समाप्त कर उनके सारे काय सेक्रेट्री ऑफ स्टेट को सौप दिया गया जिसे भारत के उत्तरदायित्ववहन के लिए पर्याप्त शक्ति प्रदान की गई। इस ऐक्ट ने व्यापारियो के एक समूह की शक्ति को बदलकर पूण शक्ति राजनीतिज्ञो और प्रशासको के हाथ मे सौंप दी। उपनिवेश, कार्यालय और विदेश कार्यालय की स्थापना हो गई। दुहरे शासन समाप्त हो जाने और सारा नियत्रण ब्रिटिश मत्रिमडल के हाथ मे आ जाने के बाद इस पद्धति के द्वारा भारत मे इगलण्ड की उस उच्च पद्धति के आने की सभावनाए बढ गइ जो वहा जन्म ले रही थी। कोट आफ डायरेक्टस के सदस्य वे लोग ही नहीं थे जिन्होंने भारत देखा हो, या जिनका भारत के विषय मे पर्याप्त अनुभव हो। बोड ऑफ कट्रोल के सदस्य भी इस मामले मे बहुत आगे नही थे। यह सगठन साधारण बुद्धि वाला का एक

1 मार्शमैन जे० सी० द हिस्ट्री आफ इडिया, दा भाग म।

समूह ही माना जाता था। अब इस सबमे परिवतन हो गया। सेक्रेट्री ऑफ स्टट की सहायता के लिए एक ऐसी कासिल थी जिसके सदस्यो को भारत के मसले पर पर्याप्त अनुभव था। इस सीधे अधिग्रहण की सूचना भारतीय राजाओ को एक घोषणा द्वारा किया जाना था जो भारत सरकार और राज्यो के लिए भारतीय इतिहास म एक प्रमुख घटना थी। इस अधिग्रहण ने ताज को यह अवसर प्रदान किया कि वह भारतीय राजाओ और जनता को ऊचे आश्वासन दे। वैस तो राजाओ के राज्य न छीनने के वादे को बनाय रखा गया, पर जनता के हित व सुविधा के वाद पूरे नही किय गय जिसस जनता के विद्रोह को मुखर होने का अवसर प्राप्त हुआ। सक्षेप म इस एक्ट न भारतीय इतिहास क एक अध्याय को बद किया और दूसरे को प्रारभ किया। नयी आशाए जगी और नयी उमगो का विकास हुआ। सदियो स भारतीय एक जीवित व्यक्ति को ही सावभौम शक्ति का प्रतीक मानत आ रह थे। इसलिए ताज द्वारा शक्ति अपन हाथ मे लेना स्वागत-योग्य था।

पर एक्ट द्वारा लाय गय परिवतन परीक्षण से दिखावटी अधिक और तथ्य-परक कम थे। रम्जे म्योर न लिखा है कि "ताज को भारतीय साम्राज्य का प्रदान किया जाना दिखन म चाह जितना अधिक रहा हो पर था बहुत कम, क्योकि ताज न धीरे धीरे कपनी के कार्यों पर अपना अकुश उसी समय स ही कडा करना प्रारभ कर दिया था जबसे उसकी निगाह क्षेत्राधिकार की ओर गई थी।" 1858 मे जिन नियमो के सहारे भारत पर शासन किया गया वे सब ब्रिटिश ससद के ही थे। गवनर जनरल सहित ब्रिटिश प्रशासक या तो नाममात्र को कोट ऑफ डायरेक्टस के अधीन थ पर उन्हे मालूम था कि वे अपने भारतीय मत्री के माध्यम से ब्रिटिश मत्रिमडल के प्रति उत्तरदायी थे और उसी माध्यम स ब्रिटिश ससद को भी 1773 मे रेगुलेटिंग ऐक्ट बनने के बाद 1784, 1793, 1813, 1833 और 1853 मे धीरे धीरे कोट ऑफ डायरेक्टस की शक्ति घटती ही गई और अत म यह नाममात्र को ही रह गई। प्रारभ म कपनी ने अपना व्यापारिक एकाधिकार खो दिया और फिर उसकी व्यापार की कारवाई एकदम समाप्त कर दी गयी। भारत के मुख्य अधिकारी पहले ही सरकारी नामित व्यक्ति हो चुके थे। दूसरी ओर सरकार द्वारा नियत्रित प्रवेश वाले हैलीबरी कॉलिज से निकलने वाले लोग अन्य क्षेत्रो मे काय करने लगे।

सच तो यह था कि यह एक सवैधानिक कालदोष ही था कि एक प्राइवेट कार्पोरेशन भारत जस विस्तृत राज्य का अधिकारी हो गया था। रानी ने पहले ही कपनी द्वारा सैनिक सेवा के लिए पद प्रदान करने की शक्ति छीन ली थी। कपनी की व्यवस्था मत्रिमडलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त से मेल नही खाती थी। इसी कारण ताज की सवभौमिक शक्ति पर एक के बाद दूसरे बनने वाले चार्टरो

मे जोर दिया जाता था और अतत 1853 के ऐक्ट मे तो स्पष्ट ही कर दिया गया कि कपनी ताज की ओर से भारतीय क्षेत्रो और राजस्व पर तब तक अधिकार बनाये रखेगी जब तक कि अन्यथा कोई घोषणा नही कर दी जाती। डायरेक्टरो की सख्या 24 से घटाकर 18 कर दी गयी जिनमे से 6 ताज द्वारा नियमित होने थे। डायरेक्टरो को अपने सरक्षण शक्ति से महरूम कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि कपनी अब सरकार की मशीनरी कोई विशेष भूमिका अदा न कर पाती थी। अब वह ' बनावटी पाचवा पहिया हो रह गई थी, और जब ब्रिटिश सरकार ने पूर्णतया भारत के हित का उत्तरदायित्व अपने कधो पर लिया। यह ऐसे ही था जैसे कि किसी पेटबोले ने अपनी बेतुकी गुडिया फेंक दी हो और अपने स्वाभाविक स्वर मे बोल पडा हो।"[1]

कुछ लोगो ने एक्ट मे दोषो की ओर भी इगित किया है। यह कहा गया कि इग्लैंड की नवनिर्मित कौंसिल सक्रेट्री आफ स्टेट के अधिकार पर कोई प्रतिबध लगाने मे समर्थ नही थी। वैसे तो जो बातें इससे पूछी जाती उस पर यह अच्छी राय देती। पर यह "ताज के भारत से वापस आने वाले कर्मचारियो के लिए एक आराम करने की जगह बन गयी।" इसमे सदेह नही कि कौंसिल को भारतीय राजस्व और व्यय के सबध मे कुछ शक्ति प्रदान की गई। पर इसे युद्ध और शान्ति के सबध म कोई अधिकार प्राप्त नही था और न ही इस सबध म होने वाले अत्यधिक व्यय के सबध म। कुछ बातें इससे गुप्त भी रखी जाती थी और कौंसिल को स्वय कुछ करने की शक्ति प्राप्त नही थी। इसे केवल राय देने का ही अधिकार प्राप्त था। इडिया आफिस पर होने वाला व्यय, कपनी के ऋण व स्टाक पर डिवाइडेन्ड, सेक्रेट्री आफ स्टेट तथा कौंसिल को देय वेतन आदि भारत के सर मढा गया जबकि बहुत अरसे तक कौंसिल मे किसी भारतीय को नही लिया गया। सच मे यह एक बदले की भावना से प्रेरित एक व्यापारिक लेखा जोखा था। सेक्रेट्री आफ स्टेट को पर्याप्त शक्ति प्रदान की गई। जकारिया ने लिखा है कि पुन "पुरानी परम्पराओ को एक तरफ हटाने और शक्ति के दुरुपयोग को एक तरफ छोड देने के स्थान पर, और इस तरह इग्लैण्ड द्वारा जाग्रत भारत की शक्ति को अपनी ओर लाकर, लार्ड डर्बी की सरकार ने पुराने शक्तिशाली लोगो से सुलह करना अधिक उचित समझा और भारत के युवा राजनीतिज्ञो की उतनी परवाह न की।"[2] देश के राजाओ की स्थिति स्वीकार की गई और वे चलते रहे। विद्रोह के बाद "यह विचार अधिक जोर पकडता जा रहा था कि अधिकतर शासन

1 म्यार रैम्ज द मेकिंग आफ ब्रिटिश इडिया पृ० 380।
2 प्रसाद मुबन्नर ए हिस्ट्री आफ माडर्न इडिया पृ० 279।
3 जकारिया एच सी० ई० रिनेसेन्ट इडिया, पृ० 92।

लदन से किया जाय"[1] लदन के इडिया आफिस ने भारत के स्थायी कमचारियो को सीधे नियत्रित किया और इस तरह उनकी आलोचना करने की जगह पर उनकी रक्षा की। ये कमचारी इस तरह भारत के असली मालिक हो गये जिन्हे हटाया नही जा सकता था और अनुत्तरदायी और किसी अधिकार की सीमा मे नही आए। पहले चाटर के नवीनीकरण के भय से कपनी को ससद मे अपने ऊपर वालो को प्रसन्न करने की लालच थी। ससद ने भी भारतीय समस्याओ मे अधिक रुचि ली। पर अब जब कपनी की सारी शक्ति देखने मे और सत्यता मे ससद मे समाहित हो गयी तो इसकी रुचि ढीली पड गयी और जैसाकि रैम्जे मैकडानल्ड लिखता है कि आयरिश और अन्य समस्याओ म फसे रहने के कारण "भारत के सबध मे उतने उच्च वाद विवाद अब नही होते थे।"[2] इडियन सिविल सर्विस दुनिया मे सबसे महगा था जबकि दूसरी ओर भारत गरीब था। नय अधिकारी क्रोधी और दभी थे तथा अग्रेजो व भारतीयो के बीच खायी चौडी होती गई। भारतीय राजस्व के प्रयोग का प्रावधान भी बहुत लाभदायक नही था। यह राजस्व ससद के अभिमत के बिना भारत के बाहर के सैनिक कारवाई पर व्यय नही हो सकता था। पर अपवाद यह था कि देश पर होनेवाले आक्रमण को पीछे ढकेलने या 'तात्कालिक एव अति आवश्यकता हेतु" इसका प्रयोग हो सकता था। अतिम दो शब्दो का अथ स्पष्ट नही था।

पर यह ऐक्ट हमारे इतिहास मे इसलिए महत्त्वपूण स्थान रखता है क्योकि इसने एक नये युग का सूत्रपात किया जिसकी महत्ता आने वाले वर्षो म ही अनुभव की गयी। सेक्रेट्री आफ स्टेट की तुलना म कौंसिल की शक्ति की कमजोरियो की आलोचना न्यायोचित नही है। कौंसिल सेक्रेट्री आफ स्टेट पर हावी नही हो सकती थी क्योकि सेक्रेट्री आफ स्टेट मत्रिमडल के विचारो का प्रतिनिधित्व करता था। यदि इसका उलटा होता तो इग्लैंड का सारा सवैधानिक सिद्धान्त ही खतरे मे पड जाता। आलोचना की अन्य बातें महत्त्व की हो सकती हैं पर उन परिस्थिति मे ऐक्ट के गुण उसके दोषो से अधिक मात्रा मे थे।

महारानी की घोषणा

विद्रोह के बाद दूसरी महत्त्व की घटना रानी का घोषणा-पत्र था। इसे लाड कैनिंग ने 1 नवम्बर 1858 को इलाहाबाद मे एक दरबार मे पढा। रानी द्वारा इस घोषणा-पत्र को प्रसारित करने मे उसकी सदिच्छा का परिचय मिलता है क्योकि उसने लाड डर्बी के पहले तैयार किये गये घोषणा-पत्र की आलोचना की थी।

1 डाडवेल कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया भाग 6 पृ० 213।
2 मकडानल्ड ज० आर० गवनमेण्ट आफ इडिया पृ० 263।

उनसे इसके पुनर्लेखन की बात कहते हुए उसने यह आदेश दिया कि इसकी रचना ऐसे ढंग से की जानी चाहिए कि यह लगे की "महिला शासिका एक रुधिर-मय युद्ध के बाद सीधे सरकार अपने हाथों में लेकर, उनसे भविष्य के वादे करते हुए और अपनी सरकार के सिद्धातो को बताते हुए पूर्व के करोडो लोगो के समक्ष कुछ कह रही है। इस तरह के घोषणा पत्र मे उदारता, दया और धार्मिक सहिष्णुता की महक आनी चाहिए और भारतीयो को यह पता लगना चाहिए कि व ब्रिटिश ताज की प्रजा के समकक्ष आकर एक विशेषाधिकार प्राप्त करने मे सफल हो गये हैं तथा इस सभ्यता के सफर मे उनकी सम्पन्नता निहित है।'

रानी की यह घोषणा कि भारत सरकार के अधिकार ताज के अधीन आ गये हैं भारत के इतिहास म एक नये युग के सूत्रपात होने की सूचना प्रदान करते थे। भारतीयो के लिए यह एक अधिकार का चार्टर था जिसम यह बताया गया कि किन सिद्धान्तो पर देश का शासन होगा।

भारत सरकार के अधिग्रहण की घोषणा के बाद रानी ने लार्ड कैनिंग का "प्रथम वाइसराय और गवनर जनरल नियुक्त किया जिसे रानी के नाम पर उस क्षेत्र म प्रशासन करना था । एच० बी० लोवेट ने लिखा है कि इस तरह "भारत म सरकार का प्रधान, जो वहा पर उपस्थित था, 1858 की घोषणा के अतगत प्रथम वाइसराय और गवनर जनरल बनाया गया।" 'जब गवनर जनरल ताज का प्रतिनिधित्व करता तो वह वाइसराय कहलाता और जब भारत सरकार के वैधानिक नेता का तो उस पुराने नाम से पुकारा जाता।"[1]

लार्ड कैनिंग की पुनर्नियुक्ति के साथ ही इस घोषणा पत्र मे यह भी घोषित किया गया कि 'हम सैनिक व असैनिक क्षेत्र मे रखे गये ईस्ट इंडिया कपनी के अधिकारियो को स्वीकार करते हैं।' इसने सरकार के सिद्धान्त व नीति की भी घोषणा की जिसे दो भागो म बाटा जा सकता है—भारत के राजाओ पर प्रभाव डालने वाली और जनता पर प्रभाव डालने वाली।

भारत के राजा—भारत के राजाओ के सबध मे घोषणा पत्र म कहा गया, 'हम भारत के राजाओ को यह बताना चाहते है कि ईस्ट इंडिया कपनी द्वारा या उसके काल म जो भी सधियाँ या सबध उनसे किये गये थे व यथावत चलते रहेंगे। हम चाहते है कि अपनी ओर से वे भी वैसा ही करें। इसके अतिरिक्त, "हमारी इच्छा अपने क्षेत्र को और विस्तत करने की नही है। हम अपने राज्य पर या अधिकार पर कोई आक्रमण बर्दाश्त नही करेंगे और न ही हम दूसरे के राज्य या सीमा के मामले मे आक्रामक रुख ही अपनायेंगे।'

---

1 लोवेट एच० बी० कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया भाग 6 पृ० 226 कजन ब्रिटिश गवर्नमेण्ट आफ इंडिया भाग 2 पृ० 49।

इसके अतिरिक्त इसमे यह भी कहा गया कि, "हम अपने राजाआ के अधिकार और प्रतिष्ठा की रक्षा वैसे ही करेंगे जैसे हम अपनी करते है। हमारी यह इच्छा है कि वे और जनता दोनो वह समृद्धि और सामाजिक प्रगति का गन्तव्य प्राप्त करें जो शातिकाल और अच्छी सरकार से उपलब्ध होती है।"

भारत की जनता—भारत की जनता के लिए इसम घोषणा की गयी कि "हम भारतीय क्षेत्र की जनता से अपने को हर भाति उसी तरह आबद्ध पाते है जैसे अपनी और प्रजा से " घोषणा-पत्र मे जनता के धार्मिक मामले मे हस्तक्षेप न करने के लिए आश्वस्त किया गया। भेद-भाव न करने की चर्चा करते हुए कहा गया है कि " धर्म के आधार पर कितना भी बुद्धिमान कोई क्या न हो, उसका पालन किया जाय, और किसी का अपमानित न किया जाय "

कानून की दृष्टि मे युवा, बूढे, धनी व गरीब सभी को समान सुरक्षा प्रदान की गयी। सेवाओ मे भर्ती योग्यता के आधार पर प्रारभ हुई। घोषणा पत्र मे बताया गया कि " शिक्षा, योग्यता और ईमानदारी के आधार पर बिना जाति या वश का ध्यान रखे ठीक से सेवा-कार्यालय मे हमारी जनता की भर्ती की जाय।"

विधि निर्माण के समय प्राचीन परपराओ एव व्यवहार को भी ध्यान मे रखा जाय। उसी तरह उत्तराधिकार एव भू-सपत्ति के मामले मे भी पूर्ण सुरक्षा प्रदान की जाय।

सीधे ब्रिटिश प्रजा की हत्या मे भाग लेने वाले लोगो को छोड विद्रोह के अपराध मे भाग लेने वालो को बिना शर्त क्षमा प्रदान की गयी।

रानी ने घोषणा की, " हमारी यह दिली इच्छा है कि उद्योगो का शातिपूर्ण विकास हो, जनहितकारी कार्य आगे बढ़ें और उनका उत्थान हो और जनहितार्थ सरकार का प्रशासन कार्य कर। उनकी समृद्धि ही हमारी शक्ति है, उनका सतोष हमारी सुरक्षा और उनकी कृतज्ञता हमारा पारितोषिक।"

इस घोषणा की व्याख्या करते हुए रैम्जे म्योर ने लिखा है, 'ये कोई सिद्धात नही थे। ये तो पिछली पीढी से चली आ रही कपनी की नीति को ही दुहराया गया था।'[1] पर यह ठीक नही मालूम पडता। भारतीय राजाआ को दिये गये आश्वासना के सबध मे तो और। पिछली एक पीढी के काल से उनके सबध म अपनायी गयी नीति लगातार आक्रामक, हिंसा प्रधान, व सधि विमुख हो जाने की रही थी। प्रथम बार राजाओ को पूर्ण क्षेत्र सुरक्षा हेतु आश्वस्त किया गया। राज्य हडप का सिद्धान्त, जिसने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध उनके विश्वास को हिला डाला था, समाप्त कर दिया गया। गोद लेने की प्रथा को स्वीकृति प्रदान की गयी। इसीलिए रालिसन ने लिखा है कि 'ब्रिटिश सरकार और भारतीय राजाआ के बीच चले

आ रहे बिगडे सवधो म इस घोषणा ने मूल रूप से परिवतन किया इसीलिए राजा यह सुनकर प्रसन्न हो गये कि उनके अधिकार व उनकी प्रतिष्ठा को इसके अतगत बनाये ही नही रखा जायेगा बल्कि कपनी के काल मे उनसे की गयी सधियो को मान्यता प्रदान की जायेगी।'[1]

जनता के लिए उनके धम मे निहस्तक्षेप, सेवाओ म भर्ती के लिए समान अवसर और कानून के सामने सभी की समानता की स्वीकृति महत्त्वपूण बातें थी। जैसा कहा जाता है, वैसे ही सच मे भारतीय स्वतत्रता का यह 'मग्नाकार्टा' थी। पर विल्फ्रेड सीवान ब्लण्ट के अनुसार 'इसका एक ही दोष था कि इसके सिद्धान्तो पर कभी अमल नही किया गया।"

अन्य विवरण

गोरों का विद्रोह—भारतीय सेना मे यूरोपीय सैनिक के कुछ लोगा ने जो विद्रोह किया उसी को गोरो का विद्रोह कहा जाता है। उनकी कठिनाई यह थी कि उनकी सेवाए बिना उनकी राय के ताज के पास परिवर्तित नही की जा सकती थी। इसलिए उनकी माग थी कि उन्ह या तो इनाम का धन मिलना चाहिए या नौकरी से मुक्ति। यह अशाति तब उठी जब कैनिंग ने भारत की यात्रा कर विद्रोही भारत को शात करने का प्रयास किया था। मेरठ और इलाहाबाद के कण्ट क्षेत्र मे इन गोरे सैनिका के जुलूस ने खतरनाक मोड ले लिया। लार्ड कैनिंग ने ऐसी स्थिति म उन सभी गोरे सैनिको को पदमुक्त कर दिया जिन्होने ऐसी इच्छा व्यक्त की थी। इसके परिणामस्वरूप भारत म यूरोपीय सैनिको की सख्या म 10 हजार सैनिको की कमी हो गयी।

सेना की पुनरचना—गोरी सना के विद्रोह ने अधिकारियो को सेना सगठन मे व्याप्त दोषा की ओर गभीरता से ध्यान देने को बाध्य किया। य दोष शीघ्र ही दूर भी कर दिये गय। यह तय किया गया कि अब आगे भारतीय सनिका व यूरोपीय सैनिको का औसत दो और एक से अधिक नही होगा। एक पैदल सेना के ब्रिगेड म एक ब्रिटिश और दो भारतीय बटालियन रखे गय। फील्ड और अन्य तोपखाना की व्यवस्था पूणतया यूरोपीया के जिम्मे रखी गयी। इन परिवतना के कारण भारतीय सना म यूरोपीय सैनिको की पूरी सख्या 72 हजार हो गयी और भारतीया की 1 लाख 35 हजार।

एक दूसरा दोष जो दूर किया गया वह यह था कि गृह सरकार की अनुमति के बिना भारत म भर्ती किय गय स्थानीय यूरोपीय सनिका की सख्या बढती

1 रॉबिन्सन द ब्रिटिश अचीवमेन्ट्स इन इण्डिया पृ० 115।
2 ब्लण्ट डब्ल्यू० एस० इण्डिया अडर रिपन पृ० 312।

जा रही थी। पिट इस आसन्न खतरे के प्रति जागरूक था पर उसे इस दोष को दूर करने म सफलता नही मिली जिसके फलस्वरूप 1857 तक स्थानीय यूरोपीय सैनिको की सख्या पूरे यूरोपीय सैनिको की एक तिहाई हो गयी। मई 1860 म पर्याप्त विवादग्रस्तता के बाद मन्त्रिमडल न दोनो तरह के सनिको को एक मे मिलाने का निणय किया और उसी वष अगस्त के महीने मे ससद से वैधानिक स्वीकृति प्राप्त की गयी जिसम यह बताया गया कि भविष्य मे स्थानीय उद्देश्य के लिए किसी भी यूरोपीय की भर्ती न की जाय।

कुछ विश्वस्त रेजीमेटा को छोडकर बगाल की सेना लगभग समाप्त हो गयी। एक लाख अट्ठाईस हजार सनिको म से एक लाख बीस हजार सिपाही युद्ध के मैदान मे मार डाले गय, या कत्ल कर दिये गय या अदश्य हो गय। इनके स्थान पर विद्रोह काल मे साथ देने वाले सिखो, जाटो, पजाबी मुसलमाना, गोरखो बलचियो और अन्य लडाकू लोगो की एक सेना तयार की गयी।

विद्रोह के पूव भारतीय रजीमट नियमित और अनियमित दो भागो मे बटे होते थे। नियमित इकाइया म 25 ब्रिटिश अधिकारियो का समूह होता था जिनम से केवल 12 समय पर उपस्थित होते थे और शेष असैनिक और अन्य विभागो मे फसे होते थे। इन्हे वापस तभी बुलाया जाता था जब लडाई के आदेश रेजीमेट को दे दिये जाते थे। इस तरह सैनिक अधिकारी असनिक क्षेत्र म व्यस्त रहकर सैनिक कमण्यता और अनुशासन से विरत हो जाते थे। एक वष के घमने-घामने के बाद वे फिर सेना म ले आये जाते थे। उस समय वे वैस ही हो चुके होत थे जैसे कोई रगरूट। परिणाम भयकर होत थे।

1861 म भारतीय सेना को 'अनियमित प्रथा' के आधार पर पुनर्गठित किया गया जिसके अतगत 3 विशिष्ट चुन गये ब्रिटिश अधिकारियो की सख्या बढ़ाकर 6 कर दी गयी। उसी वष यह भी निश्चित किया गया कि ब्रिटिश अधिकारी नियमित रूप से चुना जायगा आर अच्छा वेतन पायेगा। उसकी इच्छा के विपरीत उसे भारतीय सेना म नही भेजा जाता था। उसे भारतीय सेनाओ मे भर्ती होने से पूव हिन्दुस्तानी भाषा की एक परीक्षा उत्तीण करनी पडती थी। पर 1861 के पुनर्गठित 'अनियमित प्रथा' की एक विशेषता यह थी कि यूरोपियो की जगह पर भारतीयो को सेना और कपनी का कप्टेन बनाया जायगा।

पहले की ही भाति, तीन प्रेसीडेंसियो की सना बनायी गयी जिनम से प्रत्यक के पास स्टाफ कार होना था जो भारतीय रेजीमेण्टो और अधिकारियो की कमचारियो सबधी, राजनतिक एव न्यायिक कार्यों की आवश्यकता की पूर्ति करता था। पर असैनिक सेवाओ के पुनगठन के बाद इस क्षेत्र मे उत्तम व्यक्तियो के

समर्थन की आवश्यकता ही न रही।[1] मिलिट्री पुलिस को समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर एक नागरिक दल की स्थापना की गयी।

आर्थिक सुधार—सर एच० एम० कनिंघम ने लिखा है कि, 'विद्रोह ने भारत के आर्थिक क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात किया।'[2] विद्रोह के परिणामों में भारतीय क्षेत्र में पड़े भयानक आर्थिक आघात भी थे। नील और हैवलाक की सेनायें जिन जिन गांवों से होकर गयी उन्हें जला डाला। कृषक अपनी जान लेकर भागने लगे। 1861 में आगरा क्षेत्र में इसके कारण ऐसा भयानक दुर्भिक्ष पड़ा कि इसमें तमाम लोग बर्बाद हो गये, लाखों लोग शरीर से कमजोर हो गये, उनकी काम करने की क्षमता घट गयी और राजस्व अदायगी पर भी इसका प्रभाव पड़ा। कानपुर और लखनऊ जला दिये गये थे और दिल्ली मरा का शहर हो गया था। राजस्व इस तरह बहुत घट गया था और जब विद्रोह का सारा व्यय भी भारत पर थोप दिया गया तो उसकी आर्थिक स्थिति जर्जर हो गयी। ऋण बढ़कर 40 करोड़ स्टर्लिंग हो गया। पर जब यह प्रस्ताव किया गया कि व्यापार व पेशों पर लाइसेंस लगा दिया जाय तो इसका तीव्र विरोध किया गया।

इन परिस्थितियों में लार्ड कैनिंग ने गृह अधिकारियों से इस पर उनकी राय मांगी। जेम्स विल्सन, जो ट्रेजरी का अर्थ सचिव और बोर्ड आफ ट्रेड का वाइस प्रेसीडेण्ट रह चुका था, को नवम्बर 1859 में भारत में गवर्नर जनरल की कौंसिल का अर्थ सदस्य बनाकर भेजा गया।

यहां पहुंचने के बाद विल्सन ने देश में दूर-दराज तक इस उद्देश्य से यात्रा की जिससे कि आर्थिक समस्याओं की जानकारी प्राप्त हो सके। 1860 के अपने बजट भाषण में उसने तात्कालिक आर्थिक स्थिति का आकलन करते हुए कहा कि यह निराशाजनक है। उसने बताया कि 30 करोड़ पौण्ड से अधिक का घाटा तीन वर्षीय विद्रोह काल में जुड़ गया है और उस वर्ष इसके 65 लाख और बढ़ जाने की आशा है। राष्ट्रीय ऋण 5 करोड़ 95 लाख से बढ़कर 9 करोड़ 80 लाख हो गया है जिसका वार्षिक ब्याज ही 20 लाख है।

विल्सन ने 1860-61 में राजस्व की आशा 33 लाख पौंड की थी।[3] उसने बताया कि आय का मुख्य स्रोत भू राजस्व है जो आय का लगभग 40 प्रतिशत है। इसके बाद अफीम, चुंगी, टिकट और नमक की आय आती है और फिर अन्य।

1859 में चुंगी में वृद्धि कर दी गयी। जिससे राजस्व में वृद्धि तो हुई पर बाहर से आने वाले सामान में कमी हो गयी। इसके अतिरिक्त भारत में ब्रिटिश

---

1 और विस्तार के लिए लार्ड कैनिंग का अध्याय देखिए।

2 रालिंसन, पूर्वोद्धृत, पृ० 116।

3 कनिंघम, सर एच० एम०, अर्ल आफ कैनिंग (रूलर्स सीरीज), पृ० 198।

व्यापारी इससे घृणा करते थे और विल्सन को यह अधिकारियो ने यह बता रखा था कि इनके सन्तोष के लिए जितना सभव हो, किया जाय।

विल्सन यहा पहुचने के एक वर्ष के अदर ही मर गया। पर इसके पूर्व ही वह अपनी संस्तुतिया प्रस्तुत कर चुका था जिसमे उसने नये कर लगाने और कुछ पुराने व्ययो म कटौती का सुझाव देकर दोहरी नीति अपनायी थी। जो नय कर उसने प्रस्तावित किये, वे तीन थे। प्रथम आय कर था जिसे 500 रुपये वार्षिक की या इससे अधिक आय पर 5 प्रतिशत के हिसाब से लगना था। दूसरा लाइसेन्स का था जो विभिन्न व्यापारो और पेशो पर लगता था। इसकी धनराशि एक रुपया, चार रुपय या दस रुपये वार्षिक थी। और तीसरा कर भारत म उत्पादित तम्बाकू पर था जो लगभग भारत मे आयातित उसी तरह की सामग्री पर लगाय गय चुगी के बराबर था। एक ही तरह का 10 प्रतिशत आयात शुल्क लगाने का प्रस्ताव भी किया गया।

जहा तक कटौतिया का प्रश्न था असनिक और सनिक व्ययो म कटौती के प्रस्ताव किये गय जो कठोर रूप से प्रस्तावित किये गय। इस कटौती की देखभाल और नियत्रण हेतु एक कायक्षम सगठन भी प्रस्तावित किया गया।

भारत मे ब्रिटिश व्यापारियो को सतुष्ट करने के लिए भी बहुत कुछ किया गया। सन, जूट और चाय जैसे कच्चे माल पर जो भारत मे पैदा किय जाते थे, निर्यात कर समाप्त कर दिया गया। दूसरी ओर आयातित पक्के माल पर आयात कर घटा दिया गया जिससे भारतीय उद्योगो को हानि हुई। और यह सब स्वतत्र व्यापार के बहाने किया गया।

इस तरह की आर्थिक योजना थी विल्सन की जिसे सपूर्ण रूप म प्रभावी नही बनाया गया। पर उसके प्रस्ताव उचित बताये गय और उसे भविष्य की आर्थिक नीति का आधार बनाया गया।

विल्सन का उत्तराधिकारी लग हुआ जिसने पहली बार यह खोज की कि "भारत राजस्व मे असाधारण रूप से तरणशील और लचीला" है। उसके काल म सैनिक और असैनिक व्ययो मे कटौती का कायक्रम चलता रहा। इस तरह असैनिक व्यय मे कटौती से 5 लाख की और सैनिक व्यय मे कटौती से साढ़े बत्तीस लाख की बचत हुई। कागज के सिक्के का प्रचलन प्रारभ हुआ और नमक पर कर बढ़ा दिया गया।

पर उसकी आर्थिक नीति की मुख्य बात थी आर्थिक विकेन्द्रीकरण के विधि की शुरुआत जिसे उसके उत्तराधिकारियो ने अधिक कठोरता म लागू किया। लग ने सबसे पहल यह प्रस्ताव किया कि स्थानीय सरकारो को कुछ कर वसूलन का अधिकार दिया जाय जिसम से कुछ वे स्थानीय कार्यो के लिए व्यय कर सकें और उसके स्थान पर केन्द्र से प्रेषित किया जाने वाला धन रोक दिया जाय। तम्बाकू

पर कर लगाने से यह काय प्रारभ किया गया। इस प्रथा का सबसे बडा तथ्य यह था कि इससे फिजूलखर्ची नही होती थी। इससे केन्द्र की भी 5 लाख की बचत हो जाती थी।

इन महत्त्वपूण कारवाइयो का परिणाम यह हुआ कि श्री लग के काल मे मुनाफा हुआ। '1 इस मुनाफे को उसने पहले सावजनिक निर्माण पर व शिक्षा पर तथा दूसरे मैनचेस्टर के मालो पर चुगी को कम करने पर व्यय किया। और तीसरे आय कर से निम्न आय वग को मुक्त करने की चेष्टा करत हुए उसन इस 50 पौण्ड वार्षिक तय कर दिया।

कृषि सबधी सुधार—लाड कैनिंग न कुछ कृषि सबधी सुधार भी किये। इसका उद्देश्य यह था कि किसानो को बन्दोबस्त की कठिनाइयो और अत्यधिक राज्य की माग स बचाया जाय। यह भी उद्देश्य रखा गया कि उन्ह उनके परिश्रम का उचित पारिश्रमिक प्राप्त हो। इस क्षेत्र म अति महत्त्वपूण कदम 1859 का 'बगाल रेन्ट ऐक्ट' था जिसन किसानो को राजस्व मे स्थिरता और काश्तकारी मे सुरक्षा प्रदान की। इसके अतिरिक्त इसने स्थायी बन्दोबस्त के कुछ दोषो को भी दूर किया। इस ऐक्ट के अतगत एक रैय्यत यदि अपनी जमीन 20 वष से उसे लगान पर प्राप्त किय हुए है तो यह मान लिया जाता था कि भूमि पर उसका अधिकार 1793 से है और इस तरह उसे उसी तरह की सुविधायें और अधिकार भी प्राप्त हो जाते। भूमि पर अधिकार उसे ही प्रदान किया गया जो उस पर 12 वष स खेती करता चला आ रहा हो। इस पर कर तभी बढ सकता था जब किसी न्यायालय से इस सबध मे छानबीन हो चुकी हो। इसके बाद अन्य प्रान्तो ने भी 'रेन्ट ऐक्ट' पारित किये। उनका आदश बगाल 'रेन्ट ऐक्ट' ही था।

1859 और 1860 के बीच यूरोपीय नील पैदा करने वालो और बगाल के किसानो के भी कुछ झगडे हुए। चूकि मामला तूल पकड गया, इस कारण इस मामले की छानबीन के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया जिसने अपनी रिपोट दी। सेक्रेट्री आफ स्टट न हस्तक्षेप किया जिसमे अतत यह तय हुआ कि नील पैदा करन के एक असैनिक ठेके की शर्तो को पूरा न करने के लिए किसानो पर फौजदारी मुकदमे नही चलाये जायेंगे।

शिक्षा—1854 क वुड डिस्पच म भारत मे शिक्षा के विकास के लिए सिद्धात रखे गय थे। पर इस रास्ते पर चाल धीमी रही। पर 1859 मे परिस्थिति का आकलन किया गया और कुछ कालोपरान्त एक योजना प्रसारित की गयी। इस योजना के अन्तगत प्रत्यक प्रान्त म शिक्षा विभाग खोलने को प्रोत्साहन दिया गया जिसम एक डाइरेक्टर कुछ अध्यापक और निरीक्षणाथ अधिकारी होने थे।

1 कनिंघम पूर्वोद्धत पृ० 206।

प्राइमरी और उच्च शिक्षा के विकास की बात भी कही गयी। पर आर्थिक कठिनाई चलती रही जिसके कारण इस क्षेत्र मे उत्थान की गति धीमी बनी रही।

सार्वजनिक निर्माण विभाग—इस विभाग को लार्ड डलहौजी ने सगठित किया था। जब देश मे शाति स्थापित हो गयी तो उसके बाद रानी की घोषणा के सिद्धातो के ऊपर ध्यान दिया गया। इसी के अतगत यह विभाग सरकार के विशेष ध्यान मे आया। जनहित के कई काय हाथ मे लिये गये। तमाम बैरक, कचहरिया और पुल निर्मित किये गये तथा लबे चौडे बाघ बनने लगे। प्रत्येक डिवीजन मे इण्डियन फारेस्ट डिपाटमेट की स्थापना की गयी जिसमे कजरवेटर और अय प्रशिक्षित सहायक कमचारी नियुक्त किये गये।

शाति एव व्यवस्था—देश मे शाति और व्यवस्था की समस्या गभीर थी। तत्कालीन स्थिति मे यायाधीशो मे यायप्रियता ही इस प्रशासन मे सबसे महत्त्वपूर्ण था। कैनिंग ने इस व्यवस्था को नियमित करने को सोचा जो कानून को सहिताबद्ध करने से ही सभव था। 1860 मे इसीलिए मकाले द्वारा तैयार किया हुआ इण्डियन पेनल कोड और 1837 म स्थापित इडियन लॉ कमीशन के काय को ही कानून का रूप दे दिया गया। मुस्लिम फौजदारी कानून को रद्द कर दिया गया। नया असैनिक और क्रिमिनल कोड पारित किया गया।

1861 के इडियन हाई कोटस ऐक्ट के अतगत यायपालिका पुनगठित की गयी। इस एक्ट के अतगत अग्रेजी कपनी के सुप्रीम कोट और अदालता के स्थान पर कलकत्ता बम्बई और मद्रास मे चाटड हाई कोटस की स्थापना हुई। सरकार को इसके लिए अधिकारित किया गया कि वह 1866 मे इलाहाबाद मे स्थापित कोट की तरह उत्तर पश्चिम प्रातो मे याय करने हेतु एक और यायालय की स्थापना करे। 1861 मे कपनी के सब यायालय और प्रेसीडेंसिया के सुप्रीम कोट समाप्त कर दिये गये। क्रिमिनल प्रोसीडर कोड मे युरोपियन जनता के लिए पर्याप्त सुरक्षा का ध्यान मे रखकर सुप्रीम कोट के ही अतगत उनके मुकदमे चले, यह पाबदी समाप्त कर दी गयी।

हाई कोट के यायाधीशो की नियुक्ति राजा द्वारा होती थी और उसकी इच्छा तक वह बनी रहती थी। यायाधीशो की योग्यता और शक्ति निर्धारित कर दी गयी जो आज भी हमारा पथ प्रदशन कर रही है।

लाड कनिंग की अय सफलता पुलिस विभाग का पुनगठन था। 1861 मे एक ऐक्ट पारित किया गया जिसके अतगत इस्पेक्टर जनरल के अधीन प्रत्येक सरकार मे एक पुलिस विभाग खोला गया। उसकी सहायता के लिए डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल नियुक्त किये गये। प्रत्येक जिले मे एक सुपरिटेंडेंट आफ पुलिस की नियुक्ति की गयी जिसे जिला मजिस्ट्रेट के अधीन और साथ काय करना पडता था। इसका उत्तरदायित्व अपने क्षेत्र म शाति और व्यवस्था स्थापित

करना था तथा साथ ही-साथ अपने नीचे पुलिस व्यवस्था और अनुशासन स्थापित करना था। जिले के प्रत्येक भाग में एक डिप्टी इंस्पेक्टर की नियुक्ति की गयी जिसकी सहायता के लिए कांस्टेबुलों का एक समूह होता था। सुपरिटेंडेंट आफ पुलिस और उससे ऊपर के पुलिस अधिकारी यूरोपीय होते थे और उनकी भर्ती इंग्लैंड में होती थी।

अन्य परिवर्तन—उपरोक्त के अतिरिक्त भी प्रशासन के क्षेत्र में कुछ सुव्यवस्था की गयी। 1861 में चीफ कमिश्नर के अधीन सेंट्रल प्राविंसेज की रचना की गयी। 1862 में ब्रिटिश बर्मा का निर्माण किया गया जिसमें एमहर्स्ट के काल में प्रथम बर्मा युद्ध के अंतर्गत विजित क्षेत्र तथा डलहौजी के काल में हुए द्वितीय आंग्ल बर्मा युद्ध के क्षेत्र सम्मिलित किये गये। चीन के साथ कंपनी के व्यापार के कारण सिंगापुर तथा जलडमरूमध्य का बंदोबस्त व देखभाल भारतीय सरकार के अधीन था। चूंकि चीन का एकाधिकार बहुत पहले ही समाप्त हो चुका था और ईस्ट इंडिया कंपनी भी समाप्त हो चुकी थी, इस कारण कैनिंग ने ऐसे सामरिक बंदरगाहों और क्षेत्रों को अपने नियंत्रण में बनाये रखना आवश्यक नहीं समझा। उसने इस उत्तरदायित्व से मुक्त होने की कारवाई प्रारंभ कर दी पर यह कार्य 1866 में ही पूरा हो पाया।

दुर्भिक्ष में सहायता—कैनिंग ने दुर्भिक्ष सहायता नीति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। इस संबंध में पहले हुए कार्यों का संक्षिप्त विवेचन और वह कार्य जो उसके काल में हुआ, उसका वर्णन यहां समीचीन होगा।

कंपनी के संपूर्ण शासन काल में भारत में दुर्भिक्ष आतंक का कारण रहा था। इसका कारण था देश का मानसून पर निर्भर करना। देश की सामान्य जनता जो गरीब थी और जिसे दोनों वक्त भोजन नहीं नसीब होता था, वह ऐसे अवसरों पर भूख के मुंह का ग्रास बनने लगती थी। पर यह कठिनाई यहीं नहीं समाप्त हो जाती थी। जब मानसून समय से न आता तो उसका दुष्प्रभाव केवल फसल पर ही नहीं होता। घास सूर्य की धूप में तप कर जलती और मार्च-अप्रैल और मई की तपन परेशानी पैदा कर देती। दुधारू गायें भूख से तड़पने लगतीं। हल बैल तथा किसान की पूंजी बेकार हो जाती। पानी का स्तर घट जाता। कम पानी में कीड़े पड़ जाते। हैजा और अन्य बीमारियां असहाय और कमजोर लोगों पर आक्रमण करना प्रारंभ कर देते। और इस तरह दुःख की कहानी पूरी होती। लाखों मर जाते और जो बचते उन्हें उनकी पुरानी शक्ति पुनः न प्राप्त हो पाती।

इस दशा में लाखों लोगों के जीवन की मृत्यु से रक्षा के लिए देश में सिंचाई व्यवस्था की आवश्यकता तो थी ही, पर साथ ही दुर्भिक्ष सहायता नीति की महती आवश्यकता थी।

18वीं सदी में दुर्भिक्ष निवारण के क्षेत्र में ब्रिटिश बहुत कुछ नहीं कर सके

क्योंकि वह ऐसा काल था जब वे अपनी विजय और अपहरण के खेल मे लगे हुए थे। उनका अधिक समय राजनैतिक कूटनीति मे खप जाता था। आवागमन के साधन भी इतने विकसित नही हो पाये थे कि दूर-दराज तक अनाज एक स्थान स दूसरे स्थान पर भेजा जा सके। कृषि सबधी आकडे भी एकत्रित नही किये जा रहे थे और न ही मौसम की खराबी की अग्रिम सूचनाए प्रसारित हो पाती थी। और इस सबके अतिरिक्त 1880 के फेमीन कमीशन ने लिखा, 'भारत मे ब्रिटिशो की स्थिति ऐसी नही थी कि व सामान्य सहायता हेतु लोगो मे भाव उत्पन्न कर सकें या इसके लिए पर्याप्त साधन एकत्रित कर सकें।'

इस तरह दुर्भिक्ष का प्रकोप होता और देश तबाह होता था। करोडा भूखो मरते और मर जात। पर सरकार कुए खोदने के लिए अग्रिम धन-राशि दन, आपात काल हेतु अनाज एकत्रित करने, अधिक अनाज एकत्रित करने पर प्रतिबध लगान के अलावा अधिक कुछ न कर पाती। इस सबध मे कोई राष्ट्रीय नीति नही थी।

19वी सदी के पूर्वाद्ध मे भी स्थिति मे कोई परिवतन नही हुआ। सभवत पहली बार 1837 मे गगा और जमुना क्षेत्र म दुर्भिक्ष पडन पर स्थानीय सरकार न स्वीकार किया कि राज्य को स्वस्थ लोगो को काम दना चाहिए तथा असहाय व कमजोर लागो की देखभाल समाज को करनी चाहिए। पर जहा उत्तरदायित्व को स्वीकार भी किया गया, अधिक कुछ नही किया गया। पुरुष, स्त्रियो, बच्चा और जानवरो की मौता ने पूरे वातावरण म रोने व कष्ट की स्थिति पदा कर दी। इसके कारण विद्रोह भी हुए जिसे दबा दिया गया।

विद्रोह के आगमन पर भी स्थिति नही बदली फिर कपनी की जगह ताज न ले ली। इसके बाद इस समस्या की ओर औचित्यतापूवक ध्यान दिया गया। प्रारभ म अन्यमनस्क रहकर ताज की सरकार ने इस ओर ध्यान दिया। और जब दुर्भिक्ष पडा तो 'फेमीन कमीशनो' की नियुक्ति की गयी जिन्हे यह बताना था कि आग इस दुर्भिक्ष राक्षस का मुकाबला कैसे किया जाये। और धीरे धीरे दुर्भिक्ष सहिता मे परिपक्वता आ गयी जिससे सहायता प्राप्त होने लगी और जीवन बचाने म सफलता मिलने लगी।

ताज के अतगत सिंचाई के साधन मे बढोतरी हुई। रेलवे लाइने और अन्य आवागमन के साधन धीरे धीरे देश मे प्रत्येक क्षेत्र को छूने लगे। व्यापार और व्यवसाय आगे बढा और ऐसे ही कृषि सबध मे कानून निर्माण हुआ जिससे कि कृषका का हित साधन हुआ। आर्थिक क्षेत्र म धीरे धीरे परिवतन न दुर्भिक्ष की प्रवृति को भी बदल दिया। और यह भी एक समस्या थी जिसे प्रत्येक 'फेमीन कमीशन' को झेलना पडा। इसे परिस्थिति के अनुकूल ही सस्तुतिया भी करनी पडती।

कैनिग इसके लिए प्रशसा का पात्र है कि प्रथम दुर्भिक्ष आयोग उसी क काल मे 1860 मे बना जब उस वष मानसून असफल रहा और 48,000 वग मील का क्षेत्र जिसमे अलवर, आगरा के आस पास उत्तर पश्चिम प्रात आर अ य बहुत स क्षेत्र में भयानक दुर्भिक्ष पड गया। लगभग 5 लाख लागो न अपना घर बार छाड दिया। भाग्य स उत्तर पश्चिम प्रात के दक्षिणी पूर्वी जिला म पर्याप्त वर्षा हो गयी, ईस्ट इडिया रेलवे से पर्याप्त सहायता मिल गयी और अकालग्रस्त क्षेत्र के 9 लाख एकड क्षेत्र मे 1837 मे रक्षा के उपाय कर दिय गय। 183~ की पुरानी नीति दुहरायी गयी और सरकार न स्वस्थ लागो का काम दिया, कमजोर लागो को समाज ने सभाला। वैसे समाज की असहायता की स्थिति म यह काम भी सरकार का ही करना पडा। 80 हजार लोगो का 26 केन्द्रीय और 75 जिले स्तर के सहायता केन्द्रो से सहायता प्रदान की गयी।

सरकार ने पहली बार इस सबध म एक जाच समिति की नियुक्ति इस उद्देश्य के लिए कनल बेयड स्मिथ क नेतत्व म की। कनल स्मिथ न अपनी रिपाट प्रस्तुत की। पर दुर्भाग्य स अबकी बार भविष्य म पथ प्रदशन क लिए कोई सिद्धा त नही बनाय गये। पर इस दिशा म काय प्रारभ हो गया। 1866 67 मे दूसरा जाच आयाग बैठाया गया जिसन दुर्भिक्ष सहिता बनाने की दिशा म कुछ काम किया जा अतत इस तरह के क ई कमीशना के परिश्रम के फलस्वरूप सामन आया। इसी बीच अगले तीन वर्षो म 1861 तक कनिग ने 8316 मील रेलव लाइनें बिछवायी जिससे दुर्भिक्ष म सहायताथ बडी मदद मिलती।

1861 का इडियन कौंसिल ऐक्ट

भारत मे कनिग के काल की यह भी एक महत्त्वपूण सफलता थी। जॉन कोटमैन ने लिखा है कि 1833 और 1861 के बीच इग्लैंड मे "चार्टिस्ट आदोलन ने महाद्वीप की क्रातिकारी भावना को हमारी राजनीति मे ला उपस्थित किया और इससे यह स्पष्ट हो गया कि राजनतिक शक्ति का प्रसार ऊचे व मध्य वग के अतिरिक्त मजदूरो के बीच से जाना पडेगा। और इस आदोलन ने ब्रिटिश की स्वाभाविक शक्ति मे तीव्रता और शक्ति ला दी जिससे स्वतत्र और प्रजा तात्रिक शासन को बल मिले। इस आदोलन के कारण ब्रिटिश उपनिवेशो म स्वशासन की माग उठी।" भारत मे इस बात की जोरदार माग थी कि जब 1858 के गवनमेण्ट आफ इडिया ऐक्ट के द्वारा बहुत-से विशेष परिवतन किय जा चुके थे तो भारत सरकार म परिवतन आवश्यक था। यह भाग्य की ही बात थी कि ग्लेडस्टन जैसे इग्लैंड के सुधारवादी जहा इग्लड मे प्रजातात्रिक भाव को आगे बढाने मे रुचि लेते थे वहा वे एक सीमा तक भारत की इच्छा का आदर करने को भी तैयार थे। 1860 मे सर बार्टिल फियर ने अपने एक मिनिट मे

लिखा, "यह विनाशकारी प्रयोग कि उन करोडो लोगो के लिए विधान बनाए जाये जिनके विषय मे हमारी जानकारी का स्रोत केवल उनके द्वारा किए गये विद्रोह हैं, भला क्या पता उनके मन मे है या नही।' 1857 के विद्रोह स स्पष्ट था कि यदि भारत मे जनमत का ठीक तरह से पता लगाया गया होता और यदि वहा के लोगो से परामश की व्यवस्था की गई होती तो 1857 म ब्रिटिशो को जो कष्ट झेलना पडा, वह न झेलना पडता। भारतीयो का लेजिस्लेटिव कौसिल मे प्रतिनिधित्व नही था जहा वे अपनी मागो को प्रस्तुत कर सकते। 8 जून 1861 को ससद मे सर चार्ल्स वुड ने अपने भाषण मे सच ही कहा, "यह मूखता ही होगी कि भारत म हम अपनी कठिन होती स्थिति से मुख मोड लें। यह एक अय कारण है जिसके कारण हम शीघ्र-से शीघ्र सभी सस्थाओ को शक्तिशाली नीव पर खडा कर देना चाहिए।"

सुधार किए जाने का एक कारण और था। हमने देखा है कि 1833 के चाटर ऐक्ट न कानून का केन्द्रीयकरण कर दिया था जिसके कारण चीजें ठीक से आगे नही बढ पाती थी। भारत एक बडा देश था जिनकी कानूनी समस्या केन्द्र सरकार के कुछ सदस्यो द्वारा नही समझी जा सकती थी क्योंकि वे यहा की जनता से बहुत दूर रहते थे। इन सदस्यो के पास समय और इच्छा दोनो नही थी जिसस कि वे पूरे देश के लिए एक स्तर का कानून बनवा सकें।

1853 के एक्ट के द्वारा स्थापित लेजिस्लेटिव कौंसिल की काय शैली भी सतोषजनक नही थी। सर एच० वी० लोवेट के अनुसार, "कौसिल बोड की तरह काय कर रही थी और सभी मसले बहुमत से निश्चित होते थे। गवनर जनरल को अति महत्त्वपूण मसलो पर बहुमत को भी ठुकराने का अधिकार था।"[1] लाड कनिंग इस सामूहिक व्यवस्था से असतुष्ट था। इसके अतिरिक्त इस कौसिल ने कभी आग्ल-भारतीय सस्था होने की चेष्टा भी नही की। पर विधायिका शक्ति की स्थिति मे वह इसी तरह की हो गयी। इसने ससदीय औपचारिकताए भी अपनायी जैसे तीन बार बिलो का वाचन और उन्हें समितियो को सौंपना आदि। पर इससे देर होती थी। एक दजन कौंसिल के सदस्यो की कारवाई को नियमित करने के लिए 136 आदेश पहले से ही बने थे। स्वतत्र विधायिका की तरह काय करने का नाटक करते हुए यह कभी-कभी पूर्तियो को रोक देती थी और अपनी गृह सरकार की इच्छा के अनुसार पूणतया काय भी नही करती थी। कभी कभी कौंसिल सदस्य गुप्त मामलो पर सूचनाए प्राप्त करने की जिद करते थे और ऐसे प्रश्न करते थे जिनका उत्तर देना सभव नही था। इन सभी को अधिकारी ठीक करना चाहते थे। इन परिस्थितियो मे 1861 का कौसिल ऐक्ट पारित किया गया।

1 लोवेट, सर, एच० वर्नें कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 6 पृ० 226।

कैनिंग इसके लिए प्रशसा का पात्र है कि प्रथम दुर्भिक्ष आयोग उसी के काल मे 1860 मे बना जब उस वर्ष मानसून असफल रहा और 48 000 वग मील का क्षेत्र जिसम अलवर, आगरा के आस पास उत्तर पश्चिम प्रात और अय बहुत म क्षत्र मे भयानक दुर्भिक्ष पड गया। लगभग 5 लाख लोगो ने अपना घर बार छाड दिया। भाग्य से उत्तर-पश्चिम प्रात के दक्षिणी-पूर्वी जिला म पर्याप्त वर्षा हा गयी, ईस्ट इडिया रेलवे से पर्याप्त सहायता मिल गयी और अकालग्रस्त क्षेत्र के 9 लाख एकड क्षेत्र मे 1837 मे रक्षा के उपाय कर दिय गय। 183" की पुरानी नीति दुहरायी गयी और सरकार न स्वस्थ लोगो को काम दिया, कमजोर लोगो का समाज ने सभाला। वसे समाज की असहायता की स्थिति म यह काम भी सरकार को ही करना पडा। 80 हजार लोगा को 26 केन्द्रीय और 75 जिले स्तर के सहायता केन्द्रो से सहायता प्रदान की गयी।

सरकार ने पहली बार इस सबध म एक जाच समिति की नियुक्ति इस उद्देश्य के लिए कनल बेयड स्मिथ के नेत व म की। कनल स्मिथ न अपनी रिपाट प्रस्तुत की। पर दुर्भाग्य म अबकी बार भविष्य म पथ प्रदशन के लिए कोई सिद्धा त नहीं बनाये गय। पर इस दिशा म काय प्रारम हा गया। 1866 67 म दूसरा जाच आयाग बैठाया गया जिसन दुर्भिक्ष सहिता बनाने की दिशा मे कुछ काय किया जो अतत इस तरह के न ई कमीशना के परिश्रम के फलस्वरूप सामने आया। इसी बीच अगले तीन वर्षों मे 1861 तक कनिंग न 8316 मील रेलवे लाइनें बिछवायी जिनमे दुर्भिक्ष म सहायताथ बडी मदद मिलती।

1861 का इडियन कौंसिल ऐक्ट

भारत मे कैनिंग के काल की यह भी एक महत्त्वपूण सफलता थी। जान कोटमैन ने लिखा है कि 1833 और 1861 के बीच इग्लैंड मे "चार्टिस्ट आदोलन न महाद्वीप की क्रातिकारी भावना को हमारी राजनीति मे ला उपस्थित किया और इसमे यह स्पष्ट हो गया कि राजनतिक शक्ति का प्रसार ऊचे व मध्य वग के अतिरिक्त मजदूरो के बीच से जाना पडेगा। और इस आदोलन न ब्रिटिशा की स्वाभाविक शक्ति मे तीव्रता और शक्ति ला दी जिससे स्वतत्र और प्रजा तात्रिक शासन को बल मिले। इस आदोलन के कारण ब्रिटिश उपनिवेशा म स्वशासन की माग उठी।" भारत म इस बात की जोरदार माग थी कि जब 1858 के गवनमेण्ट आफ इडिया ऐक्ट के द्वारा बहुत-से विशेष परिवतन किये जा चुके थे तो भारत सरकार मे परिवतन आवश्यक था। यह भाग्य की ही बात थी कि ग्लेडस्टन जैसे इग्लैड के सुधारवादी जहा इग्लैंड म प्रजातात्रिक भाव को आगे बढाने मे रुचि लेते थे वहा वे एक सीमा तक भारत को इच्छा का आदर करने को भी तैयार थे। 1860 मे सर बाटिल फ्रियर न अपने एक मिनिट मे

लिखा, "यह विनाशकारी प्रयोग कि उन करोडो लोगो के लिए विधान बनाये जाये जिनके विषय मे हमारी जानकारी का स्रोत केवल उनके द्वारा किये गये विद्रोह हैं, भला क्या पता उनके मन मे है या नही।" 1857 के विद्रोह से स्पष्ट था कि यदि भारत मे जनमत का ठीक तरह से पता लगाया गया होता और यदि वहा के लोगो से परामर्श की व्यवस्था की गई होती तो 1857 मे ब्रिटिश को जो कष्ट झेलना पडा, वह न झेलना पडता। भारतीयो का लेजिस्लेटिव कौसिल मे प्रतिनिधित्व नही था जहा वे अपनी मागो को प्रस्तुत कर सकते। ■ जून 1861 को ससद मे सर चार्ल्स वुड ने अपने भाषण मे सच ही कहा, "यह मूर्खता ही होगी कि भारत मे हम अपनी कठिन होती स्थिति से मुख मोड लें। यह एक अन्य कारण है जिसके कारण हमे शीघ्र से शीघ्र सभी सस्थाओ को शक्तिशाली नीव पर खडा कर देना चाहिए।"

सुधार किये जाने का एक कारण और था। हमने देखा है कि 1833 के चार्टर ऐक्ट ने कानून का केन्द्रीयकरण कर दिया था जिसके कारण चीजें ठीक से आगे नही बढ पाती थी। भारत एक बडा देश था जिनकी कानूनी समस्या केन्द्र सरकार के कुछ सदस्यो द्वारा नही समझी जा सकती थी क्योंकि वे यहा की जनता से बहुत दूर रहते थे। इन सदस्यो के पास समय और इच्छा दोनो नही थी जिससे कि वे पूरे देश के लिए एक स्तर का कानून बनवा सकें।

1853 के एक्ट के द्वारा स्थापित लेजिस्लेटिव कौसिल की कार्य शैली भी सतोषजनक नही थी। सर एच० वी० लोवेट के अनुसार, "कौंसिल बोर्ड की तरह कार्य कर रही थी और सभी मसले बहुमत से निश्चित होते थे। गवर्नर जनरल को अति महत्त्वपूर्ण मसलो पर बहुमत को भी ठुकराने का अधिकार था।"[1] लार्ड कैनिंग इस सामूहिक व्यवस्था से असतुष्ट था। इसके अतिरिक्त इस कौसिल ने कभी आग्ल-भारतीय सस्था होने की चेष्टा भी नही की। पर विधायिका शक्ति की स्थिति मे वह इसी तरह की हो गयी। इसने ससदीय औपचारिकताए भी अपनायी जैसे तीन बार बिलो का वाचन और उन्हे समितियो को सौंपना आदि। पर इससे देर होती थी। एक दजन कौसिल के सदस्यो की कारवाई को नियमित करने के लिए 136 आदेश पहले से ही बने थे। स्वतत्र विधायिका की तरह कार्य करने का नाटक करते हुए यह कभी-कभी पूर्तियो को रोक देती थी और अपनी गृह सरकार की इच्छा के अनुसार पूर्णतया कार्य भी नही करती थी। कभी कभी कौसिल सदस्य गुप्त मामलो पर सूचनाए प्राप्त करने की जिद करते थे और ऐसे प्रश्न करते थे जिनका उत्तर देना सभव नही था। इन सभी को अधिकारी ठीक करना चाहते थे। इन परिस्थितियो मे 1861 का कौसिल एक्ट पारित किया गया।

1 लोवेट सर, एच० वर्ने कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 6 पृ० 226।

कार्यपालिका की धाराएं—इस ऐक्ट की धाराओं में वाइसराय व इक्जीक्यूटिव कौंसिल में कुछ परिवर्तन किये गये। 1853 में कौंसिल में एक विधि संबंधी सदस्य चौथे सदस्य के रूप में जोड़ दिया जाता था। विद्रोह के बाद आर्थिक व्यवस्था के असगठन ने परिवर्तन आवश्यक कर दिया और विधि सदस्य का स्थान एक प्रशिक्षित अर्थविज्ञ को दे दिया गया। पर एक कानूनविद की कम आवश्यकता न थी, क्योंकि विधि का संहिताकरण प्रारंभ हो गया था। यहां तक कि मैकाले द्वारा तैयार किया गया पैनल कोड भी अभी अधूरा था।"[1] इस तरह 1861 में ऐक्ट ने कौंसिल में एक पांचवां सदस्य जोड़ दिया। इस ऐक्ट ने सेक्रेट्री आफ स्टेट को सेनापति को कौंसिल का विशेष सदस्य बनाने का अधिकार प्रदान किया। जबकि उपरोक्त पांच सदस्यों में से तीन सदस्य ऐसे होते थे जो भारत में कम्पनी या ताज की सेवा में कम से कम 10 वर्ष रह चुके हों। पांच में से एक को सैनिक सदस्य होना था जो स्थान किसी प्रतिष्ठित सैनिक को ही प्राप्त होता था। दो अन्य सदस्य असैनिक कर्मचारी होते थे, चौथा आर्थिक मामलों में जानकार होना था चाहे वह ताज या कंपनी की सेवा में रहा हो या न रहा हो। पांचवें सदस्य को विधि सदस्य होना था। यह पद इंग्लैंड या आयरलैंड के किसी बैरिस्टर को या स्काटलैण्ड के एडवोकेट्स की फैकल्टी के किसी सदस्य को जो पांच वर्ष से अपने देश में हो मिल सकता था। सेनापति को एक विशिष्ट सदस्य होना भी था और व्यवहार में था भी जो सैनिक सदस्य के साथ देश के सैनिक प्रशासन का उत्तरदायित्व अपने कंधे पर लेता था।'

प्रत्येक साधारण सदस्य एवं सेक्रेट्री और अन्डर सेक्रेट्रियों द्वारा सहायता प्राप्त करता था। वह अपने पास पूरा कार्यालयीय उत्तरदायित्व रखता था।

गवर्नर जनरल की शक्ति में वृद्धि कर दी गयी और अब उसे विधि रचना को छोड़कर हर क्षेत्र में अकेले कार्य करने के लिए अधिकारित कर दिया गया। गवर्नर जनरल को यह भी अधिकार प्रदान किया गया कि वह एक प्रेसीडेन्ट की नियुक्ति कर ले जो उसकी अनुपस्थिति में बैठकों का सभापतित्व करे। वह कौंसिल की कार्य पद्धति को सुविधाजनक बनाने के लिए नियम बना सकता था और इस नियम के अंतर्गत की गयी कार्रवाइयां या पारित आदेश कौंसिल में गवर्नर जनरल की कार्रवाई या आदेश कहलाते थे। लार्ड कैनिंग ने इस अधिकार के अंतर्गत जो पहला कार्य किया, वह यह था कि उसने सदस्यों के बीच कागज भरे संदूकों की अदला बदली को रोका। उसने नये नियम बनाकर सदस्यों के बीच पोर्टफोलियो या विभागों का बंटवारा किया और छोटे मोटे कामों को उन्हें स्वयं करने के लिए अधिकार प्रदान कर दिया। और महत्त्वपूर्ण कागजों पर अपने मत सहित उन्हें

1 लोवेट सर, एच० वर्ने कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग 6 पृ० 226 240।

वाइसराय के सामने प्रस्तुत करने को कहा। यदि वाइसराय का मत उससे मेल न खाता तो यह मसला कौंसिल मे ले जाया जाता जहा प्रेसीडेंट को एक निर्णायक मत प्राप्त होता। लोवेट लिखता है कि, "इस तरह भारत सरकार गवनर जनरल के नेतत्व मे एक मत्रिमडलीय सरकार बन गयी जिसमे विभागीय स्तर पर काय होने लगा तथा गवनर जनरल इसम अधिक जागरूक और विशेष भाग देन लगा जो किसी भी पश्चिमी देश के प्रधान मत्री से अधिक था। इसके पूर्वाधिकारियो ने इतनी रुचि न ली थी।"[1]

केन्द्रीय विधायिका---विधान बनाने की बात दष्टि म रखकर वाइसराय ने इक्जीक्युटिव कौंसिल मे विस्तार किया जिसमे गवनर जनरल को यह अधिकार दिया गया कि वह कम-से कम 6 और अधिक से-अधिक 12 सदस्यो को नामित कर दे जो दो वष के लिए अपने पद पर रहगे। आधे से कम सदस्यो को कायालय के बाहर का होना था। 1853 के चाटर ऐक्ट के अतगत प्रातीय प्रतिनिधियो की प्रथा समाप्त कर दी गयी। सर० ए० एच० लायड ने ससद म यह इच्छा व्यक्त की कि यह निर्दिष्ट कर दिया जाय कि य सभी अतिरिक्त सदस्य भारतीय होंगे। पर सेक्रेट्री आफ स्टट ने उत्तर दिया कि ऐसा करना सभव नही है क्याकि इसम ब्रिटिश लोगा की विभिन्न क्षेत्र की जनता के बीच वैधानिक भेदभाव की बात उठ खडी होगी। वैस इन सदस्यो म कुछ भारतीय तो होग ही। इस तरह यह प्रावधान किया गया कि य अतिरिक्त सदस्य भारतीत या यूरोपीय होग। इन अतिरिक्त सदस्यो सहित वाइसराय की कौंसिल ने भारतीय विधायिका का स्वरूप ग्रहण कर लिया।

इस तरह से बनी लेजिस्लेटिव कौंसिल सभी विषयो पर ब्रिटिश व ब्रिटिश भारतीयो तथा भारत के अन्दर व बाहर के कमचारियो के लिए विधि का निर्माण कर सकती थी। अपवाद केवल यह था कि निम्न विषयो मे से यदि किसी पर इससे प्रभाव पडता था तो इसपर गवनर जनरल की स्वीकृति आवश्यक हो जाती थी। ये विषय थे---भारतीय राज्यो या विदेशी शक्तियो से सबध, एक वग का धम या धार्मिक परपरा, जनता का ऋण और भारतीय राजस्व, जल सेना और थल सेना मे अनुशासन। केन्द्रीय विधायिका भारत के किसी भी भाग के लिए विधि का निर्माण कर सकती थी। पर विधि को सपूणता तभी प्राप्त होती थी जब इस पर गवनर जनरल की स्वीकृति प्राप्त हो जाती थी। इसके बाद इसे सेक्रेट्री आफ स्टेट के पास स्वीकृति के लिए प्रेषित किया जाता था जो चाहे तो इसे अस्वीकार भी कर सकता था। गवनर जनरल को विधायिका के विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। भारत मे शाति और ब्रिटिश हिता को ठेस पहुचने वाले मसलो

1 लोवेट पूर्वोद्धत, पृ० 229 30।

मे उसे पूर्ण निषेधाधिकार प्राप्त था। वह प्रांतीय सरकार के किसी विधि को परिवर्तित या समाप्त कर सकता था। उस प्रांत और प्रेसीडेन्सियों की सीमा परिवर्तन का भी अधिकार था। उसे आपातकाल मे आर्डिनेंस लागू करने का अधिकार भी था जो 6 माह तक लागू रह सकता था पर इसकी सूचना उचित समय पर सेक्रेट्री आफ स्टेट को भी प्रेषित की जाती थी और वह चाहे तो इससे पूर्व ही इसे वापस ले सकता था। गवर्नर जनरल के विधायिका अधिकार का और विधियो का ब्रिटिश ससद पर कोई प्रभाव नही पडता था। एक अनिश्चित धारा के आधार पर इधर अपहृत प्रान्तो पर गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत कार्यकारिणी आदेश स्वीकार किये गये।

इस तरह यह स्पष्ट है कि केन्द्रीय विधायिका की शक्ति मे काफी कटौती कर दी गयी। स्पष्टत अब यह हो गया कि कार्यकारिणी द्वारा प्रस्तावित विधियो का रजिस्ट्रेशन हो जाता था। तमाम मामलो मे विधि को प्रारभ करने के लिए गवर्नर जनरल के पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता पडती थी। कोई भी ऐसी विधि पारित नही हो सकती थी जो गृह सरकार के अधिकार मे हस्तक्षेप करती हो या किसी ससदीय एक्ट के विपरीत जाती हो। ऐसे एक्टो को ताज अस्वीकार कर देता था। गवर्नर जनरल को भी आर्डिनेंस लागू करने का अधिकार था या निषेधाधिकार का भी वह प्रयोग कर सकता था। इस तरह 'इस कार्यकारिणी पर नियत्रण या रोक का कोई अधिकार नही प्राप्त हुआ। यहा तक कि विधायिका कार्य भी प्रतिबधो की सीमा मे थे।' 1

पर फिर भी इन प्रावधानो मे कुछ गुण थे। भारतीयो को सरकार की ऊची कौंसिलो मे लिया जाने लगा और भारत सरकार को वह स्वरूप प्रदान किया गया जो आज तक चलता आ रहा है।

प्रान्तीय विधायिकाएं—प्रान्तीय विधायिकाओ सबधी प्रावधान ने मद्रास और बम्बई प्रान्त मे प्रान्तो को विधायिका शक्ति प्रदान की। विधायिका के उद्देश्य से गवर्नर की इक्जीक्यूटिव कौंसिल मे कम-से-कम 4 और अधिक-से-अधिक 8 सदस्यो को जोडने का आदेश दिया गया। इन सदस्यो को नामित किया जाता था जिनमे से कम-से-कम आधे सदस्यो को गैर सरकारी होना था। प्रेसीडेन्सी के एडवोकेट जनरल को भी गवर्नर नामित कर सकता था। इन सदस्यो का कार्यकाल दो वर्ष था और इन्हें विधान बनाने की हर बैठक मे बुलाया जाना था। गवर्नर जनरल को यह अधिकार दिया गया कि वह चाहे तो इसी तरह की लेजिस्लेटिव कौंसिलें अन्य प्रान्तो मे बनाये। इसी के आधार पर 1862 मे बगाल मे, 1886 मे उत्तर-पश्चिम प्रान्त मे तथा 1898 मे पजाब व बर्मा मे इसका प्रावधान किया गया। पर

1 मजूमदार एण्ड अदर्स एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इडिया, पृ० 852।

इन लेजिस्लेटिव कौंसिलो की शक्ति कम कर दी गयी थी। कुछ विषयो मे विधि बनाते समय गवनर जनरल के पूव अनुमति की आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त कोई भी बिल बिना उनके हस्ताक्षर के विधि का रूप ग्रहण नही कर सकता था। प्रान्तीय कौंसिल प्रान्त के अच्छे प्रशासन के लिए विधि का निर्माण कर सकती थी। पर पोस्ट एव तार, सिक्के ढालने, विदेश सबध, सेना आदि जसे राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्नो पर उसे विधि बनाने का अधिकार नही था।

इस तरह की धाराए इस ऐक्ट की थी। सर बाटल फ्रेयर और सर सैयद अहमद खा की इच्छा की पूर्ति हो गयी। और कमचारियो को भी सरकार की सहायता करने और भारतीय समस्याओ को समझने का अवसर प्रदान किया गया जिससे भारतीय अपनी कठिनाइयो को इनके माध्यम से पहुचा सकते थे। इस ऐक्ट ने बम्बई और मद्रास की प्रातीय सरकारो को विधायिका शक्ति पुन प्रदान कर दी और अन्य प्रान्तो मे भी इसी काय को करने के दरवाजे खोल दिये। इससे विधायिका के विकेन्द्रीकरण की जो क्रिया प्रारभ हुई वह अच्छे प्रान्तो की पूण स्वायत्तता तक पहुच कर ही रुकी। पोटफोलियो प्रथा ने गवनर जनरल को अनावश्यक काय करने से उबारा जिससे वह महत्त्वपूण कार्यो मे अपने को लगा सका। 1853 के चाटर ऐक्ट ने गवनर जनरल को विधायिका शक्ति के अतिरिक्त सब कुछ प्रदान किया था। आर्डिनेन्स, पोटफोलियो आदि ने आधुनिक प्रथा की नीव डाली और जैसा कि कोटमैन ने लिखा है, "कौंसिल ऐक्ट का पूण प्रभाव यह रहा कि भारत म प्रजातन्त्रीय सरकार की दिशा मे विधायिका मे प्रतिनिधित्व के माध्यम से राजनतिक क्षेत्र म कदम आगे बढे।"[1]

इसमे सदेह नही कि इस ऐक्ट मे कुछ दोष भी थे। पहले से चले आ रह और सरकारी सदस्य चूकि शक्तिशाली और बहुमत मे थे, इस कारण गैर सरकारी सदस्यो की भूमिका महत्त्वपूण नही थी। न ही राजाओ और जमीदारो के रूप मे गैर सरकारी सदस्य जनता की समस्याओ को समझ सके या प्रतिनिधित्व कर सके। वे कौंसिल की सदस्यता के प्रति कोई आकषण नही रखते थे और इसीलिए के० वी० पुनिया ने लिखा है, "कि कौंसिल की सहायता लेने से प्राय लोग इनकार कर देते थे। और ये नामित सदस्य आने मे बहुत ही लापरवाही करते और जाने के लिए बडी जल्दी मचाते।"[2] कौंसिल अपने मे रचना या काय के आधार पर विधायिकायें नही कही जा सकती थी। केन्द्रीय और प्रान्तीय कौंसिलें तात्कालिक मसलो पर विचार कर सकती थी। उन्हे सूचनायें प्राप्त करने तथा प्रशासकीय कार्यो को रोकने का अधिकार नही था। उनकी विधि मात्र सरकार की इच्छा का

1 कोटमन पूर्वोद्धृत प० 22।
2 पुनिया के० वी० कान्स्टीटयूशनल हिस्ट्री आफ इण्डिया प० 104।

प्रतिनिधित्व करती थी। वे स्वय "भारतीय शासकों का परपरागत दरबार जैसा दिखत थ जिसमे जनता के मत जानने की चेष्टा की जाती थी।"[1]

पर फिर इन कौसिलो के बचाने का उद्देश्य भी तो यही था अर्थात् जनमत का पता लगाना तथा सरकारी विधान की रक्षा करना और उसे न्यायसगत बनाना। प्रचार, सूचना और वाद-विवाद ही इसका उद्देश्य था। एक सीमा मे य उद्देश्य पूरे भी हो गये और उस परम्परा की नीव भी इसी समय पड गयी जिसे भारत की भविष्य की पीढी को प्राप्त करना था।

सिक्किम—विद्रोह के बाद कैनिंग की सफलताओ में आकलन के समाप्ति के पूव दा शब्द उस चढाई के सबध म जो छोटे से हिमालय म साम्राज्य सिक्किम पर किया गया। ब्रिटिशा के इस छाटे राज्य स सबध अच्छे नही थ क्योकि यहा का शासक उत्तेजक प्रकृति का था। नवम्बर 1860 मे डॉ० ए० कैम्पबेल को अपन 160 व्यक्तियो सहित आगे बढने पर बुरी तरह से पराजित कर दिया गया। इसके बाद 2,600 सैनिको द्वारा यहा पर आक्रमण किया गया जो पूण सफल रहा। कोई क्षेत्र अपहृत नहीं किया गया पर शाति सधि के अगत 7,000 रु० क्षतिपूर्ति के रूप म लिये गय। इस राज्य म रुक जाने वाली एक सडक बनान का निणय हुआ। ब्रिटिशा को राज्य मे कुछ व्यापारिक सुविधाए प्राप्त हुइ।

इस तरह स्पष्ट है कि विद्रोह का प्रभाव अत्यधिक और दूरगामी हुआ। ताज ने भारत पर सीधे शासन करना प्रारभ किया पर यह मात्र औपचारिक था। भारतीय सेना पूणतया पुनगठित की गयी। भारतीय राज्यो के प्रति नीति मे भी काफी परिवतन किया गया। इसके अतिरिक्त आर्थिक प्रशासन, कृषि, शिक्षा, सावजनिक निर्माण विभाग व शाति तथा व्यवस्था से सबधित मशीनरी के सबध मे भी परिवर्तन किये गये। 1858 के गवर्नमेन्ट आफ इडिया ऐक्ट तथा 1861 के इडियन कौसिल ऐक्ट के कारण महत्त्वपूण सवैधानिक परिवतन हुए।

"विद्रोह का एक सीधा प्रभाव स्पष्टतया यह भी था कि भारतीय राजनीति मे अतिवाद का जन्म और उत्थान हुआ।"[3] भारत मे 'टाइम्स' के सवाददाता रसल ने अपनी डायरी म लिखा, 'दो जातियो के बीच इस विद्रोह ने घृणा और दुर्भावना की अति को जन्म दे दिया है जिसमे मात्र शासको का परिवतन ही इसकी दवा नही दिखाई पडता। इनमे से क्रुद्ध तत्व हमारी सबसे बडी समस्या हैं।" टाम्सन ऐण्ड गैरेट ने लिखा है कि, "ब्रिटिश पुराने आक्रमणकारियो के विपरीत जसे-जैसे अधिक समय बीतता गया वे अलग-थलग पडते गय। वे विदेशी होत

1 कूपलण्ड आर० इण्डियन प्राब्लेम पृ० 56।
2 1858 के एक्ट के बाद विवाद के लिए ऊपर देखें।
3 मजूमदार एण्ड अदस ऐडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० 782।

गये और अधिक कार्यक्षमता का प्रदर्शन किया ।[1]"

पदमुक्ति—18 मार्च 1862 को दुखीमन हो लार्ड कैनिंग पदमुक्त हो गया क्योंकि कुछ ही मास पूर्व उसकी पत्नी का कलकत्ता में देहान्त हो गया था। इंग्लैण्ड पहुचते-पहुचते उसकी भी 17 जून को मृत्यु हो गयी। उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था। रालिन्सन ने लिखा है, "भारतीय साम्राज्य के इतिहास में शायद ही किसी को इससे अधिक बोझ अपने कंधे पर ढोना पड़ा हो। उसका जीवनी लेखक लिखता है कि वह कभी-कभी आधी रात से बिना आराम किये दोपहर तक तब तक कार्य करता रहता था जब तक कि सचमुच उसकी कलम उसके हाथ से छूट नहीं जाती थी।"[2] कनिंघम ने लिखा है कि, "वह कार्य-क्षेत्र में कूद पड़ा और प्रारम्भ से काम के आगे उसने स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं दिया जिसका दुष्परिणाम उसे भोगना पड़ा।" और सचमुच "गंभीर व स्थिर चित्तवाले, अटूट शक्ति वाले, न्यायशील व उच्च आत्मा वाले कैनिंग के प्रति प्रशंसा में हमारे सर झुक जाते हैं। एक घटनाप्रधान काल में ईमानदारी से उसने अपने कर्त्तव्य का वहन किया और उस अंधकारपूर्ण तूफानी काल में अपने देश के जहाज का बेड़ा पार लगाया।"[3]

लार्ड कैनिंग ने शान्ति और युद्ध दोनों क्षेत्रों में जय पताका फहराई। जिस दृढ़ निश्चय के साथ उसने विद्रोह को दबाया, वह निश्चित ही ईर्ष्यापूर्ण था। पर अधिक प्रशंसा का पात्र वह इसलिए है कि एक बार संघर्ष के उपरान्त शान्ति स्थापित हो जाने के बाद वह देश के नवनिर्माण में शान्तचित्त हो लग गया। इस तरह का कार्य सन्तुलित उच्चआत्माओं वाले लोग ही कर सकते हैं। जब उसकी राजनीति की आलोचना हुई तो लार्ड ग्रेनविल को उसने लिखा "मैं नहीं चाहता कि आप मेरी रक्षा अनुचित और गलतफहमी वाले कार्यों के अतिरिक्त भी करें। पर आप पूर्ण सामर्थ्य से मेरी ओर से यह कह कि जहां हम प्रथम कर्त्तव्य के रूप में बिना दया के विद्रोह को दबाने को तैयार है, वहीं साथ ही साथ हम इसे भी स्वीकार करते हैं कि विद्रोह समाप्ति के बाद न्याय और शान्ति को अपनी यात्रा पर चलने का अवसर मिलना चाहिए। हम क्रोध में सभी को फांसी पर लटकाकर या जिन्दा जलाकर दंडित करने या उससे कम हिंसात्मक दंड वर्ग, जाति या चमड़ी को आधार बनाकर देने के पक्ष में नहीं है।"

विद्रोह के उपरान्त यह मांग बार बार उठी कि उसे वापस बुला लिया जाय। उसने दृढ़तापूर्वक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए गृह अधिकारियों को लिखा,

---

1 टी० एण्ड जी० पूर्वोद्धृत पृ० 412।
2 रॉलिन्सन पूर्वोद्धृत पृ० 123।
3 कनिंघम पूर्वोद्धृत पृ० 39।

"मेरा विश्वास है कि भारत सरकार म इस क्षण परिवतन से देश म शाति स्थापना म बाधा पडेगी।" जहा तक उसकी नीति म परिवतन का प्रश्न था उसने कहा, "किसी तरफ मे प्रसारित होन वाला उपहास सा कटाक्ष मुझे अपने पक्ष से विरत नही कर पायेगा क्याकि इस मैं अपना कत्तव्य समझकर करता हू।"[1]

इस तरह कैनिग साम्राज्य सुरक्षा के मसल पर दयालु होत हुए भी कठोर था तथा उदार होते हुए भी निष्ठुर था। रालिसन न लिखा है कि, "इग्लैण्ड ने सदा मुफ्त हो अपना सर्वोत्तम भारत को प्रदान किया है, और उसम जाज कैनिग का एक आदरणीय स्थान है।"

---

1 रालिसन पूर्वोद्धत प० 123।

2 वही।

11

सर जॉन लारेन्स (1864-1869)

लेफ्टीनन्ट कनल अलक्जा डर लारेन्स की आठवी सन्तान जान लेयड मेयर-लारेन्स 4 माच 1811 को पैदा हुआ। उसकी मा कैथरीन लेटीशिया रेवरेन्ड जाज नाक्स की पुत्री थी। उसने कई स्कूलो मे शिक्षा प्राप्त की पर कही भी अच्छा छात्र सिद्ध नही हुआ। उसने लन्दन डेरी के फ्वायलन कालेज म भी अध्ययन किया। 1827 मे उसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने लिपिक का स्थान प्रदान किया। हैलीवरी मे दो वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त कर 1829 मे वह कलकत्ता के लिए रवाना हुआ। कम्पनी की सेवा म कायरत अपन बडे भाई हेनरी के साथ वह यहा आया।

भारत म उसन कई पदो पर काय किया। पहले वह दिल्ली मे रेजीडेन्ट का सहायक रहा। बाद मे वह पानीपत व गुडगाव मे कलेक्टर व मजिस्ट्रेट बना, फिर इटावा म बन्दोबस्त अधिकारी। इस तरह उसन प्रशासक, न्यायाधीश और राजस्व अधिकारी के तरह के अनुभव प्राप्त किये। 1840 मे उसने छुट्टी ली और इग्लैड चला गया। "एक असैनिक युवा कमचारी के हर पद पर उसने काय किया। और जन्म या भाग्य से सहयोग पाये बिना वह इन 10 वर्षों मे आगे बढता गया और नाम कमाया।"[1]

अगस्त 1842 मे उसने, जब वह आयरलैण्ड मे था, हैरियट कैथरीन हैमिल्टन से विवाह कर लिया। तीस वष बाद भी उसने लिखा कि धार्मिक व्यक्ति की इस पुत्री मे वह सब गुण थे जो एक व्यक्ति आशा कर सकता था। इसके बाद वह भारत वापस लौट आया और उसे यहा दिल्ली स पहले असैनिक न्यायाधीश, फिर मजिस्ट्रेट और उसके बाद कलेक्टर बनाया गया। गवनर जनरल लाड हार्डिन्ज उसकी योग्यता मे प्रभावित हुआ और 1846 म प्रथम अफगान युद्ध की समाप्ति के बाद उसे जालधर दोआब क्षेत्र का, जिसे पजाब से अपहृत किया गया था, कमिश्नर बना दिया गया। 'यहा पर उसने अपन तीन आदेश प्रसारित किय अर्थात 'आप अपनी विधवाओ को नही जलायेंगे', 'आप अपनी कन्याओ को मार नही डालेंगे', 'आप अपने यहा के कोढियो को जीवित नही गाडेंगे"[2] जब 1849 म

1 गिलियट एडवड पूर्वोद्धत पृ० 240।

2 वही, पृ० 243।

द्वितीय सिक्ख युद्ध के बाद पजाब के शेष भाग पर भी अधिकार कर लिया गया तो जान को इसी प्रात मे बोर्ड आफ ऐडमिनिस्ट्रेशन का सदस्य बना दिया गया। उसका बडा भाई इस बोर्ड का चेयरमैन था। पर हेनरी स्वतत्र स्वभाव का व्यक्ति था, जबकि जान उन सभी बातो को समथन देता जिसे लार्ड डलहौजी उचित मानता। इसीलिए आश्चय नही किया जाना चाहिए कि 1853 म जब बोर्ड समाप्त कर दिया गया तो जान को पजाब का चीफ कमिश्नर बना दिया गया। 1856 म उसे नाइट बना दिया गया और के० सी० बी० की उपाधि प्रदान की गयी। पजाब के चीफ कमिश्नर की हैसियत से उसन सर्वोत्तम सेवायें अर्पित की और जब 1857 का विद्रोह हुआ तो उसने पजाब को अग्रेजो के पक्ष मे ही नही बनाये रखा बल्कि "हाथियो, ऊट, बैल, गाडिया, सनिको को देने के लिए धन रेत भरे बोरे, जीन, तम्बू"[1] सनिक सक्षेप म ऐसा सब कुछ जिसकी आवश्यकता दिल्ली पर अधिकार करने के लिए थी, वहा भेजा और इस तरह ब्रिटिश साम्राज्य को भारत म बचाया। 1859 म जब वह इग्लैंड वापस गया तो उसे बडा आदर प्रदान किया गया। उसे नवीन भारतीय कौंसिल का सदस्य भी बनाया गया। डाइरेक्टरो न उसकी सेवाओ को ध्यान मे रखकर उसे सेवा मुक्ति के काल के बाद 2000 पौंड वार्षिक की वत्ति देने का निणय किया।

इसी बीच भारत मे लार्ड कैनिंग का उत्तराधिकारी लार्ड एल्गिन हुआ। कर्जन न उसे "चालाक, परिश्रमी तथा प्रफुल्लचित्त" व्यक्ति का विशेषण प्रदान किया। कनाडा म उसने पर्याप्त प्रशासकीय अनुभव प्राप्त कर लिया था और उसके बाद भारत म उसे गवनर जनरल बनाया गया। भारत मे उसन कैनिंग के रचनात्मक कार्यों को जारी रखा। ब्रिटिश साम्राज्य की महत्ता प्रदर्शित करन क लिए उसने अम्बाला, आगरा, कानपुर और बनारस मे दरबार किये। सैनिक व्यय म कटौती की और जनता के ऊपर नये कर नही लगाये गये। उसके काल मे एक कट्टर मुसल मानो के समूह वहाबियो न उत्तर पश्चिम सीमा पर कठिनाइया पैदा की पर उसे दबा दिया गया। दुर्भाग्य से भारत मे लार्ड एल्गिन का जीवन अति सक्षिप्त सिद्ध हुआ। वह 1[illegible] माह के शासन के बाद धमशाला म मर गया। लारेंस को उसका उत्तराधिकारी बनाया गया। इसके पूव उसने बम्बई की गवनरी करने से इनकार कर दिया था। सर जान लारेंस भारत के वाइसराय और गवनर जनरल का पद भार ग्रहण करने कलकत्ता मे जनवरी 1864 मे पहुचा।

आ तरिक सुधार

आतरिक और वाह्य सभी मामलो मे लारेंस के वायसरायल्टी का काल

---

1 गिलियट एडवड पृ० 252।

सफलता का काल था। उसके आन्तरिक प्रशासन का पहले परीक्षण किया जाय।

सैनिक सुधार—हम यह पहले ही देख चुके है कि किस तरह विद्रोह के उपरान्त सेना का इस तरह से पुनगठन किया गया जिससे यदि पुन विद्रोह हो तो ठीक से उससे निबटा जा सके। तोपखाना यूरोपियो मात्र के ही अधिकार मे कर दिया गया। भारतीय और यूरोपीय सनिको का अनुपात 2 व 1 का हो गया। 1858 के कमीशन ने एक अन्य सतकता की बात जो बताई, और जिसमे लारेन्स स्वय भी सदस्य रह चुका था, वह यह थी कि "चूकि हम भारत मे बडी स्थानीय सेना के बिना कोई काय नही कर सकते, इसलिए हमारा उद्देश्य इस सेना को सुरक्षित बनाने का है। हमे युरोपीय सनिको को शक्तिशाली बनाना ही पडेगा, साथ ही साथ देशी सैनिको मे भी सतुलन की नीति अपनानी होगी।" पर यह प्रस्ताव लारेन्स पर स्वय के लिए छोड दिया गया कि गवनर जनरल होकर वह इस पर कारवाई करे।

"देशी सैनिको का एक दूसरे के विरुद्ध सतुलन' की नीति का श्री गणेश लारेन्स के काल ही मे किया गया। सेक्रेट्री आफ स्टेट चाल्स वुड ने लारेन्स द्वारा प्रेषित भारतीय सैनिको के विभाजन को स्वीकार कर लिया जो इस तरह थी (1) एक राष्ट्रीय या वग के आधार पर, उदाहरणाथ गोरखा रेजीमेन्ट, सेना का बनाया जाना जिसमे सभी सैनिक एक प्रान्त जाति या वग के हो। यह विभाज्य नियम न होकर अपवाद होना था। (2) प्रान्तीय प्रथा जिसके अतगत एक ही प्रान्त के भिन्न-भिन्न जाति के सैनिको को रखा जाना था। (3) मिली-जुली सेना प्रथा जिसमे विभिन्न प्रान्तो जातियो वर्गों के सनिको का एक साथ रखा जाना था।

यह भी तय हुआ कि भारतीय सैनिक वही भर्ती किय जायेंगे जहा यह अति आवश्यक होगा। किसी भी वग या जाति पर जान बूझकर निभर नहीं किया जायगा और उन्हे एक अनुपात मे भर्ती किया जायगा। इन सैनिको का अफसर उन्हे ही बनाया जायगा जिन्हे वे पसद करते हैं। लगातार सेना का दश के एक भाग से दूसरे भाग मे भेजा जाना हतोत्साहित किया जायगा क्योकि इमसे आपस म उनमे परिचय बढता है 'जो धीरे धीरे एक भाईचारे म परिवर्तित हो जाता है।"

एक विवाद उठा कि क्या भारतीय सेना को उत्तम हथियार से लैस किया जाय। वैसे तो अधिकतर युरोपीय अधिकारियो न इसका पक्ष लिया कि भारतीयो को बेहतर अस्त्र प्रदान किये जाए और इस मामले मे कोई भेद भाव न बरता जाय पर जान ने स्वय राजनतिक कारणो स दूसरा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।[1] उसने अपना मत अन्य लोगो सहित सेक्रेट्री आफ स्टट को भेज दिया जिसमे उसन प्रस्तावित

1 देखे मिनट प्रापस अप्रल 1868 सख्या 418 लारेन्सेज मिनिट 18 अप्रल।

किया कि देशी सना को धीरे धीरे इनफील्ड राइफन प्रदान की जाय। नाल की ओर स गोली भरने वाले और उत्तम राइफन उसने उन्ह न दिय जान सिफारिश की। पर सेक्रेट्री आफ स्टेट न अधिकारियो का मत मानत हुए यह घोषित किया कि युद्ध लडने वाले सैनिको म "अपने कामरडो, अफसरो म और स्वय अपने म भी विश्वास होना चाहिए।" "युद्ध म भेजे गय सैनिक यदि यह जान जाए कि उनके पास खराब अस्त्र है तो उनका विश्वास डिग जायगा।" और इसीलिए देशी सेना को हथियार प्रदान करन पर कोई प्रतिबंध नही लगाया जाना चाहिए बल्कि उन्हे उत्तम अस्त्र भी प्राप्त होन चाहिए।"[1]

जसा पहले ही बताया जा चुका है, 1861 मे तीनो प्रेसीडेन्सियो मे उनकी सेना के साथ स्टाफ कोर भी लगा दिया गया जो भारतीय सना और असैनिक नौकरी वालो की राजनैतिक और अन्य क्षेत्रो म छान-बीन करता रहा था। यही काम यह अनियमित और सीमा प्रान्तो म भी करता था। ब्रिटिश रजीमन्टो से अधिकारियो का भेजा जाना बद कर दिया गया तथा कोर म पदोन्नति स्थान रिक्ति के स्थान पर न होकर सेवा काल के आधार पर किया जान लगा जिसका परिणाम यह हुआ कि इन अनावश्यक अधिकारियो का वेतन बढ गया और राजस्व पर बोझ भी बढ गया।

जान लारेन्स ने स्थिति को ठीक करने के लिए अधिकारियो को अधिक वृत्ति पर समय से पूर्व पद मुक्ति की लालच दी। पर सेक्रेट्री आफ स्टट ने उसकी इस योजना को अस्वीकार करते हुए लिखा, "ऐसा ठीक नहीं मालूम पडता है कि एक अफसरो का समूह पैदा किया जाय जिन्ह अफसर बनने का अवसर प्राप्त हो जाने पर एक नया सहायक नियम बनाकर उन्हे लालच देकर पदमुक्ति की चेष्टा इस समय की जाय जब उनकी सेवाओ की सबसे अधिक उपयोगिता है।"[2]

पुलिस सुधार—कुछ पुलिस सुधार भी किये गये। विद्रोह के पूर्व बहुत काल तक मजिस्ट्रेट जिले के काम के अतिरिक्त पुलिस विभाग का काम भी देखते थे जिससे उनका काम भी बढ जाता था और उन्हे न्यायिक-अधिकारी का काय भी करना पडता था। विद्रोह के पूर्व इस दिशा म सुधार की कारवाई पहले ही प्रारभ की जा चुकी थी जो 6 सितबर 1859 के एक्ट के द्वारा और 1861 के पुलिस ऐक्ट के द्वारा पूरी हुई। इस तरह कार्यपालिका से न्यायपालिका के काम अलग हो गये। पर लारेन्स चूंकि शक्ति को केन्द्रीकृत करन का प्रेमी भी था इसलिए वह इसे उलटना चाहता था। 1863 के उत्तर पश्चिम प्रात (यू० पी०) के पुलिस कमीशन न इसके पक्ष म निर्णय दिया और अवसर को पाकर लारेन्स न विभिन्न

1 मिली डिसपच आफ अरगिन 25 फरवरी 1869 सख्या 51।
2 वही 11 मार्च 1869 सख्या 131।

गवनरो का मत इस सबध मे आमत्रित किया। पर गवनर इस मामले मे लारेंस से भिन्न मत रखते थे जिसके कारण लारेंस को अपनी योजना रोकनी पडी।

पर लारेंस के अनुसार पुलिस सगठन मे एक अन्य दोष और था जिसे दूर किया गया। पुलिस अधिकारी जो मूल रूप से सेना मे नौकरी करते थे, वे सेना का भाव पुलिस मे ले आते थे जो कायक्षमता की दृष्टि से सदा लाभकर न होता था। लारेंस इसे रोकना चाहता था और ऐसे अधिकारियो की सख्या घटाना चाहता था। विरोध के बावजूद 3 अगस्त 1867 को उसने एक प्रस्ताव पारित किया जिसके अतगत यह तय था कि आगे पुलिस अधिकारी भारतीयो और यूरोपीयो दोनो से भर्ती किये जायेंगे। इनमे भारतीय तत्वो को बढाया जायगा और यह घोषित किया गया कि पुलिस अधिकारियो के लिए देशी राज्य कर्मचारियो के विषय मे ज्ञान आवश्यक है और भर्ती के समय इस बात पर भी ध्यान दिया जायगा।

अर्थ व्यवस्था—जॉन लारेंस ने जमीदारो की तुलना मे किसानो के हित की ओर ध्यान दिया और उनके विकास मे रुचि दिखायी। 1868 मे पजाब टेनेंसी एक्ट पारित किया गया जो "किसानो की सतुष्टि का प्रतीक स्वीकार किया जाता है।" कुछ मामलो मे इसके अतगत किसानो को जमीन पर काबिज भी बनाया गया। इसी वर्ष अवध टेनेंसी ऐक्ट भी पारित किया गया जिसके अतगत 1/5 किसानो को जमीन पर साधारण कर के आधार पर अधिकार दिलाया गया।

नमक सबधी कर मे जो दोष थे उसे भी दूर किया जाना था। 15 जुलाई 1867 की अपनी रिपोर्ट मे ग्रैंडल ने इगित किया कि अवध मे नमक बनाना रोकने के उपरान्त राज्य मे इसके उपभोग मे कमी आ गई है। लगभग इसकी जनसख्या के आधे लोग नमक इतनी मात्रा मे प्रयोग करते थे कि वह स्वास्थ्य को हानि पहुचाता था। पशुओ को आवश्यकता से कम इसे प्रयोग करने का अवसर मिलता था।

इसके अतिरिक्त भी एक दोष था। बगाल, बिहार और मद्रास मे नमक पर लगन धाने कर इस सीमा तक असमान थे कि नमक का मूल्य बगाल मे कभी-कभी दो गुना से चार गुना तक अन्य प्रेसीडेंसियो मे अधिक रहता था। उत्पादन मूल्य से तो इसका मूल्य बहुत ही अधिक रहता था। कौंसिल के बहुमत मे सदस्यो के विरोध के बावजूद लारेंस ने सेक्रेट्री आफ स्टेट को अपने प्रेषण मे बगाल के नमक पर कर का प्रस्ताव किया और बम्बई व मद्रास मे इसे बढाने का। उसने कुछ और सुधार भी प्रस्थापित किये। पर उसके काल मे कोई भी सुधारात्मक कदम नहीं उठाया जा सका। वैसे उसके तुरत बाद दोषो का दूर किया जाने लगा और यह 1879 आते-आते पूर्णतया समाप्त हो गया।

चुगी—विद्रोह के कारण आर्थिक कठिनाइयो ने अग्रेजी कपनी को चुगी कम

करने की नीति, जो आयात और निर्यात माल पर लगता था, को पलटन को बाध्य कर दिया। पर अधिक चुगी लेने की नीति अधिक दिना तक नही चलायी जा सकी। कुछ ही दिनो बाद धीरे धीरे इसे कम करने की नीति अपनायी गयी। लारेन्स के काल मे भी यह नीति चलती रही। इस तरह 1864 मे 10 प्रतिशत आयात चुगी घटाकर 7½ प्रतिशत कर दी गयी और 20 प्रतिशत विशेष चुगी, जो तम्बाकू पर लगाई गई थी, उसे घटाकर 10 प्रतिशत कर दिया गया।

1867 मे मस्से के प्रयास से एक अन्य सुधार किया गया। उन वस्तुआ की सूची बनाने के स्थान पर, जिन पर चुगी नही लगती थी और शेष जिन पर चुगी लगती थी उसे छोड देने की परम्परा पलट दी गई और अब उन वस्तुओ की सूची बनने लगी जिन पर चुगी लगनी थी और शेष को वैसे ही छोड दिया गया। इसके परिणामस्वरूप चुगी प्रथा सीधी सादी हो गई।

स्टैम्प कर—स्टैम्प कर मे परिवतन के लिए एक कमीशन बनाया गया। इसने 1866 मे अपनी रिपोट प्रस्तुत की। इसकी सस्तुति के अनुसार निम्न परिवतन किय गये। यह तय किया गया कि स्टैम्प कर उस मुकदमे पर जो न्यायालय म आ जायेगा, कम से-कम एक रुपया लगगा। यह कर 1000 के मुकदमे पर 10 प्रतिशत होना था और यह मुकदमे की कीमत के बढने के साथ घटता जाता था। और अतत ये शिकायतें आयी कि फौजदारी मुकदमे मे कर 1861 से हटा दिय गय हैं। अब इस पर भी कर लगने लगा।

अफीम राजस्व—1860 मे भारतीय बचत प्रणाली के प्रारभ काल से ही अफीम राजस्व के सम्बन्ध मे ऊचाई और नीचाई ने सही बजट के अनुमान म गभीर कठिनाई पैदा कर रखी थी। यह आवश्यक था कि बगाल एक निश्चित मात्रा मे अफीम की पूर्ति करे जिससे कि एक आर चीन म अनावश्यक स्पधा न हो जाय जहा इसका प्रयोग होता था और दूसरे इससे मालवा अफीम पर बुरा प्रभाव न पडे। साथ ही जिससे बजट का अनुमान भी ठीक से लगाया जा सके।

लारेन्स ने इस सबध म कदम उठाये। बगाल अफीम की कीमत ठीक रखने के लिए और उपरोक्त उद्देश्यो की पूर्ति के लिए उसने बगाल के लिए 45 हजार सदूकें अफीम बेचने का लक्ष्य रखा। दूसरे उसने टम्पुल के इस प्रस्ताव का समथन किया कि एक 'ओपियम रिजव फड' की स्थापना की जाय जिससे कि बजट अनुमान मे कोई कठिनाई न हो। पर वाइसराय की एक्जीक्युटिव कौंसिल ने द्वितीय प्रस्ताव का विरोध किया। इसे सेक्रेट्री आफ स्टेट ने स्वीकार भी नही किया। सेक्रेट्री आफ स्टेट ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए वाइसराय को लिखा कि अफीम के राजस्व पर अधिक भरोसा नही किया जा सकता क्याकि यह चीन से प्राप्त होता है जहा से यह कभी भी सामाजिक विद्रोह के कारण किसी भी क्षण समाप्त हो सकता है। अन्य देशो की अफीम पहुचन पर प्रतियोगिता के कारण

भी इसमे कमी आ सकती है। इसके अतिरिक्त उसने लिखा 'ओपियम रिजव फड' एक डूबता हुआ फड होगा जिसके दोप सवविदित हैं। इक्जीक्युटिव कौसिल का यह कहना था कि रिजव फड की रचना से अतिरिक्त कर का बोझ बढेगा और वह भी ऐसे समय जब किसी चीज की कमी नही है। इसके साथ इसन यह भी कहा कि अफीम का राजस्व बढोतरी की दिशा मे है इसलिए घबडाहट मे कोई कदम उठाने की आवश्यकता नही है। इसलिए इन कारणो स द्वितीय प्रस्ताव वापस ले लिया गया।

लाइसेन्स कर—जॉन लारेन्स को कुछ गभीर आर्थिक कठिनाइया झेलनी पडी। भारत मे युरोपीय सेना के रहन के लिए भवन निर्माण हेतु उसे 10 करोड स्टर्लिंग की आवश्यकता थी। और इसके लिए उसने आयकर फिर से प्रारभ करने का प्रस्ताव किया। यह कर उस वग पर लगाना था जिसे 1860 मे विल्सन न प्रस्तावित किया था पर जिस वापस ले लिया गया था। पर उसकी कौसिल ने उसके द्वारा आयकर प्रारभ किये जान के प्रस्ताव का विरोध किया। उसका यह प्रस्ताव कि निर्यात की जाने वाली कुछ वस्तुओ पर कुछ कर लगा दिये जाने पर भी उन्ही के विरोध का शिकार हो गया।

अपने कार्यो मे टाग अडाये जाने पर दूसरे वप उसने एक दूसरा प्रस्ताव कर उस कासिल से पारित कराया। नय प्रस्ताव मे आयकर को परिवर्तित रूप देकर लाइसन्स कर का नाम दिया गया। सपन्न युरोपीयो और भारतीयो के गभीर विरोध के बावजूद जिसे भारत और भारत के बाहर भी प्रदर्शित किया गया कलकत्ता की लेजिस्लेटिव कौसिल ने 1867 मे इसे कानून बना ही दिया। 1868 मे सर्टीफिकेट टैक्स सबधी कानून भी पारित किया गया और इस तरह जॉन लारेन्स का आर्थिक उद्देश्य पूरा हो गया।

ये नवीन कर लगभग सभी आय पर आके गये। केवल सावजनिक सपत्तिया और भूमि पर यह नही लगाया गया। इसके अन्तगत पेशेवर तथा व्यापारी वर्ग पर साधारण कर लागू किये गये। 200 रुपये वार्षिक आय से यह कर लगना प्रारभ होता था और 10,000 तक लगता था। इस बीच की आय के वग पाच भागो मे विभाजित किय गये थे। प्रत्यक समूह पर 2 प्रतिशत कर लगता था और प्रत्यक समूह के सबसे कम आय वाली धनराशि पर यह देय था। स्पष्ट था कि नाम से न सही पर यह आयकर ही था।

टेम्पुल लिखता है कि लाइसेन्स टैक्स "उसकी जानकारी म वैज्ञानिक आयकर से निम्न कोटि का है क्योकि इसका प्रभाव सभी सपन्न वग पर नही है। पर इसने मध्य वग के लोगो को अवश्य प्रभावित किया जिन पर अभी तक कोई कर नहा

लगा था, यह कुछ था।"[1]

द्वितीय दुर्भिक्ष आयोग—1866 67 का उडीसा का दुर्भिक्ष अपनी गभीरता के कारण भारत म दुर्भिक्ष सहिताकरण म एक प्रमुख घटना सिद्ध हुआ। इस वष उडीसा म जितनी मुसीबत आई इसके लिए वहा की सरकार उत्तरदायी थी। वषा कम होने के कारण 1865 म धान की फसल 1/3 रह गयी। कैम्पबेल न लिखा है कि "*1866 के अप्रैल म कटक के मजिस्ट्रेट ने फिर भी यह सूचना भेजी कि गभीर खतरे की कोई बात नही है। कुछ दिना के बाद मई म वह और इसके साथी भूखो रहने लगे।*" चारो ओर आतक छा गया। अनाज के व्यापारियो न पूर्ति रोक दी और इसके पूव के अनुत्तरदायी और लापरवाह सरकारी कमचारी बाहर से कुछ मगाने का प्रयास करें कि मानसून ने तमाम क्षेत्रा ने पानी ही पानी भर दिया। सामान लान के सभी रास्ते वद हो गये और अक्तूबर से पहले सरकारी तौर पर कोई सहायता नही पहुच सकी। लगभग 15 लाख पौंड व्यय किया गया। पर जा अनुमान उस समय लगाया गया उसके अनुसार लगभग 1/4 जनता का देहान्त हो गया।

लारेन्स ने कैम्पबेल कमीशन की नियुक्ति की जिसने बगाल सरकार को इस बात का दोषी ठहराया कि उसने समय से पूव कठिनाई की चेतावनी नही दी, और अधो की तरह माग और पूर्ति के सिद्धान्त पर विश्वास कर लिया और यह भी नही समझा कि उडीसा म किस तरह दुर्भिक्ष के बाद मानसून न उडीसा को सारे देश से काटकर रख दिया और समानपूर्ति के लिए कोई रास्ता ही नही रखा। कमीशन न *सस्तुत किया कि (1) कमचारियो के लिए आवश्यक है कि वे भविष्य में उपयुक्त* बिन्दुओ पर अधिक सतक रहे। कमीशन ने लिखा कि "यह धारणा बन गयी कि उडीसा दुर्भिक्ष व्यक्तिगत असफलता का प्रतीक है जो फिर नही दुहराया जाना चाहिए।" *साथ ही कमीशन ने सस्तुत किया कि (2) प्रान्तो मे कृषि के आकडे* और भूमि के रिकाड तैयार किये जाए। (3) आवागमन के साधन तथा समाचार प्रेषण को ठीक किया जाय।

इस तरह पहली बार सरकार के लिए उत्तरदायित्व की स्वीकृति की बात की गई। इन सस्तुतियो ने 1880 के रॉयल कमीशन का पूर्वानुमान कर लिया जिसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि जब 1868 मे दूसरा दुर्भिक्ष पडा तो गवनर जनरल लाड लारेन्स न घोषणा की कि सरकार का यह उद्देश्य है कि "प्रत्यक जीवन बचाया जाय" जिसके लिए प्रत्येक जिले के अधिकारी का उत्तरदायित्व होगा। पर फिर भी एक निश्चित और विस्तृत दुर्भिक्ष नीति अभी दूर की बात थी।

1 टम्पुल पूर्वोद्धत प० 163 डा० धमपाल ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ सर जान लारेन्स भी देखें।

1868 69 मे जब उत्तर पश्चिम प्रात और पजाब मे सूखा और दुर्भिक्ष पडा तो सरकार न समय लोगो को नौकरी देने की चेष्टा की। पर राजपूताना पर इसका और गभीर प्रभाव पडा जिससे कि वहा के लोग तमाम पास पडौस के क्षेत्रो मे चले गये जिससे सरकार के साधन और पूर्ति पर प्रभाव पडा। पर सरकार के सभी प्रयासो के बावजूद दुर्भिक्ष, हैजा, चेचक और बुखार का प्राकृतिक प्रकोप हो गया जिसमे 12 लाख लोग मर गये।

अन्य सुधार—सर जान का काल जगल सरक्षण के प्रशासन के लिए सदा याद किया जायगा। इसके लिए जगलो के इसपेक्टर जनरल ब्रेडिस तथा जगल प्रशासन के सस्थापक क्लेथान उत्तरदायी थे।

1865 म ऐक्ट सात मे जगल के सरक्षण के ही नियम थे। इसमे यह बताया गया कि जगल प्रशासन के लिए मात्र प्रशिक्षित अधिकारी ही नियुक्त किए जाए। सरकार द्वारा सुरक्षित क्षेत्र पर निशान लगाये जाये। जगल मे आग लगन से रक्षा के उपाय किये जाय। इमारती लकडी विधि से काटी जाए।

इस ऐक्ट के पारित होन के बाद चुने गये अभ्यर्थी फ्रास और जमनी प्रशिक्षण हेतु भेजे गय। जगल विभाग को पुनगठित किया गया जिसका आधार यह था कि जो कमचारी इसके काय कर रह है उन्हे समुचित अवसर प्राप्त हो जाय।

नहरो के निर्माण के क्षेत्र मे भी बहुत कुछ किया गया। गृह अधिकारियो की स्वीकृति से यह निश्चित किया गया कि नहरो मे निर्माण का काय सरकारी एजेंसीज को सीधे अपने हाथ म लेना चाहिए। इसे प्राइवेट कपनियो को नही सौपा जाना चाहिए। सेक्रेट्री आफ स्टेट ने इसकी भी अनुमति प्रदान की कि नहरो के निर्माण के लिए ऋण के माध्यम से धन एकत्रित किया जाय। यह भी कहा गया कि य ऋण सरकार द्वारा एकत्रित किये जाए पर तभी जब योजना 1 लाख रुपये से ऊपर की हो। छोटी योजनाओ के लिए नियमित राजस्व का प्रयोग किया जाय।

नहरो की आवश्यकता दुर्भिक्ष रोकने से है इसे लारेंस ने समझा और अपनी वाइसरॉयल्टी मे अत म बडी दोआब नहर के पुनर्निर्माण की योजना तैयार की गई। सिंध नदी के पानी के प्रयोग के लिए भी योजना तैयार हुई। ऐसा ही कायक्रम चेनाब और व्यास नदियो के लिए भी तयार हुआ। आगरा और दिल्ली के बीच सिंचाई हेतु नहर खोदने का काय प्रारभ हुआ। पश्चिमी जमुना नहर म सुधार और मरम्मत का काय किया गया। रोहिल खड की नाप की गई और पूर्वी रोहिल खड व उत्तर-पश्चिम प्रान्तो मे आवागमन हेतु अवध से इस नहर से जोडन की योजना बनी।

प्राइवेट कपनियो द्वारा रेलवे के निर्माण के पक्ष मे भी जान लारेंस नही था क्योकि इसके कारण सरकार को धन लगाने वाली कपनी के धन पर कुछ ब्याज

देना पडता था। भारतीय करदाता के हित मे वह इस काम को सरकारी एजेन्सी को देने के पक्ष म था। वैसे तो सेक्रेट्री आफ स्टेट ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया और इस कारण वह इस क्षेत्र म कुछ नही कर सका। पर इस मसले पर एक शानदार मिनिट अपने पीछे छोडा जिससे प्रभावित होकर लार्ड मेयो ने प्राइवेट कपनी के हाथ से यह काय लेकर सरकारी एजेन्सी के हाथो मे सौंप दिया जिसस एक नये युग का सूत्रपात हुआ।

जान लारेन्स ने कैण्टो मे ददनाक सफाई की दशा मे सुधार के लिए कुछ बहुत ही ठोस कदम उठाय। उसने एक अति महत्त्वाकाक्षी सैनिको के क्वाटर बनाने की योजना को कायरूप प्रदान किया जिस पर 1 करोड रुपये व्यय हुआ। उसने सनिको मे रतिज बीमारियो को रोकने के लिए भी कदम उठाय। युरोपीय सनिक जिन सावजनिक महिलाओ के यहा जाते उनका नाम रजिस्टर मे दज किया जाता। डॉक्टर 13 दिन पर इनका मेडिकल परीक्षण करते और उनकी बीमारी के निदान के लिए लाक अस्पताल खोले गये। इन सावजनिक महिलाओ की ओर से उनका ध्यान हटाने के लिए क्रिकेट टनिस तराकी और जिम्नैजियम जैसे मनोरजन की व्यवस्था की गयी।

हैजा जैसी बीमारियो की रोकथाम की कोशिश की गयी। 1864 मे स्ट्रेची ने जिलो और कस्बा म सफाई निरीक्षण की एक अति उत्तम योजना प्रस्तुत की जिस पर सरकार ने उत्साहपूवक काय किया। नाली, जलपूर्ति, खुले स्थान आदि को ठीक करने के लिए विशेष व्यय की व्यवस्था राज्य की ओर से की गयी। नगरपालिका सस्थाओ के अतगत स्थानीय कार्पोरेशनो को प्रोत्साहित किया गया। कैण्टो म सफाई की देखभाल के लिए सनीटरी कमीशन की स्थापना की गयी। सिविल सजन ही डिस्ट्रिक्ट हेल्थ आफीसर क रूप मे काय करते थे और इनके ऊपर जॉन ने अलग से सैनिटरी इन्स्पेक्टर जनरल की नियुक्ति की।

इस तरह वैसे तो जनसाधारण के स्वास्थ्य को आगे बढाने के लिए कुछ विशेष नही किया गया पर युरोपियो तथा प्रभावी भारतीयो से बसे नगरो म बहुत कुछ किया गया। टेम्पुल ने सर जान के काय पर टिप्पणी की है, "वसे तो उसे भारतीय सफाई प्रथा का उत्पत्तिकर्ता नही माना जा सकता, पर उसे इसे एक विधि से प्रारभ करने वाले सस्थापक व्यक्ति के रूप मे याद किया जाएगा। उसने इसे राज्य के एक विभाग के रूप मे स्थापित किया।"[1]

जेलों के सुधार की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया। यह दिखा कि जेल मे मर जाने वाले कैदियो की सख्या अधिक है जो मौत की सजा के बराबर थी। सर जॉन लारेन्स ने 1864 मे ए० ए० राबटस के नेतृत्व म एक समिति स्थापित की

1 टेम्पुल पूर्वोद्धत, पृ० 165।

जिसे इस मसले पर छानबीन करने और सुधार सस्तुत करने को कहा गया। समिति ने अपने प्रतिवदन मे कहा कि पिछले दशक मे खराब रोशनी, खराब पानी की व्यवस्था और आवश्यक्ता से अधिक कैदियो को रखने के कारण 46 हजार कैदी जान गवा चुके हैं। समिति ने सस्तुति की कि जेलो मे भीड को घटाने के लिए केंद्रीय और जिला जेल बनाये जाए। यह भी बनाया गया कि महिला कैदिया व युवा अपराधियो के लिए बेहतर व्यवहार, उचित कार्यानुशासन की आवश्यकता जेला मे है। इन सभी सस्तुतियो को स्वीकार कर लिया गया और जेल सुधार काय आगे बढा।

प्रेस—लाड हेस्टिंग्स के काल तक प्रेस के इतिहास का विवरण हम उसी गवनर जनरल के अध्याय म द आये हैं। हम यह भी वता आये हैं कि किस तरह उसके उत्तराधिकारी ने प्रेस की स्वतत्रता को आधात पहुचाया। इस सबध मे बाद मे और लाड लारेंस के काल मे जो कुछ हुआ उसका सक्षिप्त विवरण यहा आवश्यक है।

1835 म सर चार्ल्स मेटकाफ स्थानापन्न गवनर जनरल हुआ। एमहस्ट का उत्तराधिकारी लाड बैंटिंक उदार था। पर मेटकाफ ने प्रेस की ओर और उदारता का परिचय दिया। टाम्सन के मतानुसार उसका विचार था कि "वह प्रेस को गुप्तचर विभाग का एक अत्यधिक महत्त्वपूण प्रभाग समझता था जो किसी अन्य से अधिक सूचना प्रदान करता था।"[1] वह केवल 12 महीने के लिए गवनर जनरल रहा और इस काल मे अपने विधि सदस्य लाड मैकाले की सहायता से उसने 1823 के रेग्युलेशन को समाप्त करके 1835 की ऐक्ट सख्या 15 पारित करा दी।

अब भारतीय प्रेस इग्लैंड के प्रेस की भाति ही स्वतत्र हो गया। पर इस उदारता ने उसके पदोन्नति मे बाधा पहुचाई। टाम्सन ने उसके विषय म लिखा, "गवनर जनरल के रूप मे उसने दो सुधार किय जिसमे से एक ने आज तक के लिए उसका नाम जीवित छोड दिया है पर जिसने कठोर रूप से उसे पक्का गवनर जनरल नही बनने दिया। यह काम उसका प्रेम को स्वतत्र करना था। उसने डाइरेक्टरो को नाराज कर दिया। शक्तिशाली न हिलने-डुलने वाले पदमुक्त कमचारी भी इससे असतुष्ट हो गये।"[2] पर भारतीयो ने इसके प्रति उपकृत अनुभव किया और इसीलिए उसकी याद मे कलकत्ता मे एक हाल बनवाया।

1835 से 1857 के मध्य भारतीय प्रेस ने स्वतत्रता का आनद उठाया। पर 1857 मे जब विद्रोह प्रारभ हुआ तो भारतीय सरकार ने प्रेस को सीमाओ म लाने के लिए नियम बनाय। 1857 मे लाइसेंसिग ऐक्ट पारित किया गया जिसके अतगत समाचारपत्रो को सरकार से लाइसेंस लेना अनिवाय कर दिया गया।

1 टाम्सन लाड मटकाफ प० 319।

2 वही प० 317।

गवनर जनरल को यह अधिकार प्रदान किया गया कि परिस्थिति के अनुसार इस तरह के लाइसेंस वह प्रदान करे। यह ऐक्ट एक वष के लिए ही पारित किया गया, पर यह 1865 तक चलता रहा। हर वष इसका नवीनीकरण होता रहा।

इसी बीच भारतीय प्रेस म नये समाचार पत्रा का भी प्रवेश हुआ। बम्बई समाचार, अमृत बाजार पत्रिका, द इडियन मिरर और अखबारे आम का प्रकाशन प्रारभ हुआ जिसन पत्रकारिता के पेशे म क्रान्ति ला दी।

1835 का मेटकाफ का ऐक्ट 1867 में समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर प्रेस एव रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स ऐक्ट 1867 म ही लारेंस द्वारा लाया गया जिसका उद्देश्य समाचार पत्रा, पुस्तका और छापाखाना को नियमित करना था। मुद्रका और प्रकाशका के पहचान के लिए उन्हें अपन नाम का रजिस्ट्रेशन कराना आवश्यक बना दिया गया। ब्रिटिश भारत मे प्रकाशित सामग्री की प्रतिया सरकार के पास रिकाड और परीक्षण हेतु भेजी जानी आवश्यक कर दी गयी। प्रकाशकों और मुद्रका को अपना घोषणा पत्र मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश करना पडता था जिसमे उनके ठीक से काय करने का आश्वासन होता था। कुछ सीमा तक 1890 और 1940 म इस ऐक्ट मे फेर बदल किय गये जो लगभग उसी रूप म आज तक चली आ रहा है।

प्रेस की तेजी स प्रगति हुई। बहुत स नवीन समाचारपत्रा का प्रकाशन प्रारभ हो गया। 1870 तक इनकी सख्या बढकर 644 हो गयी जिनम स 400 तो वर्नाक्युलर भाषा मे थे। पत्रकारिता मे विकास हुआ समाचार पत्रों म भिन्न भिन्न तरह की सामग्रिया छपने लगी और एक-एक दिन बीतने के साथ समाचारपत्रो के प्रति चेतनता म वृद्धि हुई। चूकि समाचार पत्रो की पकड जनता पर बढ गई इसलिए सरकार ने यह आवश्यक समझा कि षडयत्र जो समाचार पत्रो के लिए एक गभीर अपराध है उसे परिभाषित कर दिया जाय। इसीलिए 1870 मे रजिस्ट्रेशन एक्ट मे सेक्शन 124 ए की एक उपधारा जोड दी गयी। पर इसके कारण प्रेस की प्रगति पर कोई प्रभाव नही पडा।[1]

शिक्षा—वुड के डिस्पैच की प्राप्ति के बाद भारत मे शिक्षा की ओर अधिक सही तरीके से ध्यान दिया गया। पर सरकार को इसम कुछ कठिनाइया का सामना करना पडा। इनमें से एक 1857 का विद्रोह था जिसने भारतीय अथव्यवस्था को कही का न रखा। उत्तरी भारत का काफी भाग इससे अस्त-व्यस्त हो गया था। इस कारण शिक्षा की प्रगति मे कमी आ गयी। इसके अतिरिक्त बार-बार दुर्भिक्ष पडे, साथ ही सडका, नहरा और रलव लाइना के निर्माण ने सरकार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। सरकार का पर्याप्त धन इसम लग गया जिसमे तुरन्त

1 राव चलपति द प्रेस इन इण्डिया 1968 घोष प्रेस ऐण्ड प्रस लाज इन इडिया।

में लाभ की पर्याप्त वापसी भी नही थी। और जैसाकि मर एच० वर्नी ने लिखा है कि भारत मे शिक्षा का "काय अत्यधिक कठिन था क्योंकि लाभदायक ज्ञान की धारा को इतनी बडी जनसख्या मे, जो पुरातन से चली आ रही सस्थाओ से सबद्ध थी और जिसका स्वभाव भी आश्चयजनक रीति से भिन्न था, पहुचाना था।"

फिर भी शिक्षा का काय आगे बढा। विद्रोह के पूव भी प्रगति हुई थी। 7 अप्रैल 1859 के अपने डिस्पच मे, विद्रोह के बाद भारत के प्रथम सेक्रेट्री आफ स्टेट लाड स्टैनले ने नयी सूचनाए प्रेषित की। पर डिस्पैच भारत पहुचने के पूव उसके स्थान पर सर चाल्स वुड उम स्थान पर आ गया जो 1866 तक इस पद पर रहा। उसने ही 1854 का प्रसिद्ध डिस्पैच तैयार किया था जिसके अतगत काय चलता रहा। 1854 और 1866 के बीच प्रत्येक प्रात मे पब्लिक इस्ट्रक्शन विभाग स्थापित किये गये जिसमे 1854 के डिस्पैच के अनुसार एक डाइरेक्टर, कुछ इस्पेक्टस तथा शिक्षक जिसमे प्राइमरी स्कूल अध्यापक से लेकर कॉलिज प्रिंसिपल तक आते थे, नियुक्त किये गये। 1865 मे लारेंस के समय मे बगाल के अधिकारियो को चार भागो मे बाटा गया जबकि अय प्रातो मे यह बाद म किया गया। इन अधिकारिया की नियुक्ति सेक्रेट्री आफ स्टेट करता था जबकि अध्यापक और इस्पक्टर गवनर द्वारा नियुक्त किये जाते थे। प्रत्येक प्रान्त की सरकार ने शिक्षा का उत्तरदायित्व किसी विश्वविद्यालय के माध्यम से अपने ऊपर लिया।

1857 म कलकत्ता, मद्रास, और बम्बई मे विश्वविद्यालय स्थापित हुए। कलकत्ता का क्षेत्र उत्तरी भारत, मध्य प्रात और ब्रिटिश बमा रखा गया, मद्रास का उस प्रेसीडेंसी तक तथा उसके दक्षिणी भारत क्षेत्र पर रखा गया तथा बम्बई का अपनी प्रेसीडेंसी के अतिरिक्त पश्चिमी भारत पर रखा गया। 1854 के डिस्पैच की यह सस्तुति कि प्रत्येक विश्वविद्यालय म कुछ विभाग खोले जायें, स्वीकार नही किया गया। और इस तरह शिक्षा सरकार, व्यक्तिगत सस्थाआ और मिशनरी कॉलिजो द्वारा पूरे दश मे अपने हाथ मे ली गयी। 1847 मे रुडकी म एक इजीनियरिंग कॉलिज की स्थापना हुई। 1854 मे कलकत्ता के निकट शिवपुर मे दूसरा कॉलेज स्थापित हुआ। मद्रास, बम्बई और कलकत्ता म मेडिकल कॉलिज चलत रहे।

जॉन लारेंस ने ए० एम० मोनटीथ को भारत सरकार का सेक्रेट्री नियुक्त किया जिसे 1865 66 मे देश मे उस समय की शिक्षा पर रिपोट देने का काय सौंपा गया। उसके अनुसार तीना विश्वविद्यालय आवश्यक परीक्षा लेकर, अपने काम सुचारु रूप से कर रहे थे। बम्बई विश्वविद्यालय के विषय मे इसने बताया कि इसके अतगत चार कॉलिज हैं जिनमें मे तीन बम्बई मे ही स्थित हैं। इस विश्व विद्यालय म उच्च शिक्षा की गति धीमी थी जो 1866 मे 109 इन्ट्रेंस की परीक्षा देने वाले और 12 बी० ए० की परीक्षा दने वाले छात्रो से स्पष्ट है। मद्रास म दूसरी आर 19 स्कूल और कॉलिज ही उसके अधीन थे जबकि 1865-66 मे इन्ट्रेंस

परीक्षा मे बैठने वालो की सख्या 555 थी जिसमे से 229 मात्र ही उत्तीण हुए।

सबसे अधिक प्रगति कलकत्ता विश्वविद्यालय ने किया जिसके अधीन बगाल के 18 कॉलिज, उत्तर पश्चिम प्रान्तो के कॉलिज, मध्य प्रान्त का एक कॉलिज, पजाब का एक कॉलिज और लका के दो कॉलिज थे। 1865 66 मे 1,350 छात्र इट्रेस परीक्षा म बैठे जिसमे से 638 को कालेजो मे प्रवेश दिया गया।

शिक्षा मे बगाल प्रान्त सबसे आगे था। लोवेट लिखता है कि, "भारत के किसी और प्रान्त म पढे लिखे और पेशेवर तबके के लोग जमीदार वग से इतना कही मिले जुले नही थे। और किसी प्रात मे विश्वविद्यालयीम शिक्षा दूल्हे को इतन प्रिय नही थे।"[1] पर यहा कृपक और मजदूर पहले जैसा ही पिछडा रहा। वस तो अय विद्यालय भी काय करते रहे पर सरकार इनका स्तर ऊचा करने मे पूणतया असफल रही।

उत्तर-पश्चिम प्रातो मे ग्रामीण स्कूलो ने वडी प्रगति की जिसका कारण टाम्सन की वह महत्वपूण योजना थी जिसके अतगत प्रत्येक गाव के भू कर पर 1% का कर इस उद्देश्य से लगाया गया था। पर इन क्षेत्रो म अय तरह के विद्यालय लुप्त होन लगे। उच्च और मिडिल की शिक्षा को, बगाल की तरह यहा प्रोत्साहन नही मिल पाया।

रिपोट मे यह भी सूचित किया गया कि देश मे नारी शिक्षा बहुत पीछे है। ऐसी ही स्थिति मुस्लिम शिक्षा की विशेषकर बगाल मे थी। नीची जाति के बच्चो ने भी कोई प्रगति नही की, इसके बावजूद कि उनके लिए अलग से विद्यालय खोले गये। इसका प्रमुख कारण जाति प्रथा थी।

1865-66 मे शिक्षा पर 82,17,669 रुपये खच किये गये जिसमे से 45,29,580 रुपये राजा की ओर से प्राप्त हुए और शेप के लिए स्थानीय साधन से पैसे आये जैसे शिक्षा कर।

1867 के अगस्त मे ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन ने उत्तर पश्चिम प्रान्तो मे अग्रेजी भापा के साथ ही शिक्षा के माध्यम के रूप मे वर्नाक्युलर का प्रयोग करन के लिए गवनर जनरल को एक पेटीशन भेजा। एक सामान्य आदोलन भी पूरे दश मे इस उद्देश्य के लिए चलाया गया। लारेस न इसके पक्ष मे अपना मतव्य दिखाते हुए पजाब मे इस दिशा मे काय प्रारम किया और वहा पर एक ओरियटल कॉलिज खोलने के लिए स्वीकृति प्रदान की गयी।

असनिक सेवाए—1867 मे एक प्रस्ताव पारित हुआ जिसम यह कहा गया कि इन सेवाओ मे भारतीयो को अधिक भाग प्रदान किया जाना चाहिए। इस

---

1 लोवेट वर्नी (सर) ए हिस्ट्री आफ द इण्डियन नेशनल मूवमण्ट (1600-1910), पृ० 211।

प्रस्ताव मे यह बताया गया कि रेग्युलेशन प्रातो मे भारतीयो के सफलता की सभावनाए न देखकर, उन्हे नान रेग्युलेशन प्रातो मे ही प्रत्येक अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। यहा पर इन्हे असिस्टेण्ट कमिश्नर तक का पद प्रदान किया जाना चाहिए। यह मान लिया गया कि प्रतियोगिता परीक्षाओ मे भारतीयो की सफलता हर माने मे उनकी क्षमता का सूचक नही है। पर यदि यह बात अग्रेजो के बारे म है तो उनके जन्म से शासन होने के कारण बौद्धिक क्षेत्र मे सफलता के बाद उनसे अच्छे प्रशासन की आशा की जा सकती थी। इसीलिए भारतीयो को स्वतत्र रूप से प्रतियोगिता मे भाग लेने के स्थान पर भारतीय सरकार ने भारतीयो को प्रशासकीय और न्यायिक सेवाओ के लिए चुनना जारी रखा। गृह सरकार ने भारत सरकार को परामर्श दिया कि ये चुनाव केवल—नान रेग्युलेशन प्रातो के लिए न करके रेग्युलेशन प्रातो के लिए भी किये जाए।

एक प्रतिक्रियावादी—1862 मे स्थापित बगाल लेजिस्लटिव कौन्सिल को, जिसे 1861 मे इडियन कौसिल के तहत बनाया गया था, समाप्त करने की चेष्टा करके लार्ड लारेंस और प्रतिक्रियावादी माना जाने लगा। वैसे अपने ही कौसिल के तथा बाहरी विरोध के कारण उसने इस प्रस्ताव को रोक दिया पर उसने 1861 के ऐक्ट के सिद्धातानुसार और अधिक कौसिल बनाना रोक दिया। जॉन लारेंस शक्ति के केन्द्रीकरण मे रुचि रखता था। इसने खुलेआम यह जोर देकर कहा कि केवल व्यक्तिगत शासन म ही जिसमे कौसिले नही होती "सबसे अधिक मात्रा मे आगे बढने की सभावनाए, उत्तरदायित्वपूर्णता व सावधानी पूर्णता सभव होती है। पर दूसरी आर उसने कहा कि "एक स्थानीय विधायका के बनने पर विस्तृत प्रान्तीय प्रश्नो के निम्न स्तर पर चर्चित होन की सभावना रहती है जहा दल को विशेष गुरुता प्राप्त हो सकती है।"

लार्ड कर्जन ने उसके सबध मे यह लिखा, "सच तो यह है कि लारेंस स्वभाव और प्रशिक्षण से इस निमम स्थिति मे वाइसराय क रूप मे काय करने के योग्य नही था। बोलने मे पीछे काम में आगे वह बातचीत और विवाद के प्रति असहिष्णु था।"[1]

भारतीय राज्यो के साथ सबध

विद्रोह के बाद भारतीय राज्यो के सबध मे जॉन लारेंस न "निहस्तक्षेप" की नीति जारी रखी। अति कुशासन या गभीर आपात स्थिति मे ही राज्य के आतरिक मामले मे हस्तक्षेप किया जाता था। उदाहरणार्थ माच 1866 मे जब भावलपुर के शासक की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी एक 4 वर्षीय लडका हुआ, ता

1 कर्जन ब्रिटिश गवनमट इन इण्डिया भाग 2, पृ० 103।

राज्य की स्थिति इतनी भयावह हो गई कि लारेन्स को हिचकिचाहट के साथ वहां शांति बनाए रखने के लिए हस्तक्षेप करना पड़ा। इसके अतिरिक्त उसने टोंक के मामले में हस्तक्षेप किया और वहां के नवाब को पद से हटाया जिसने अपने मंत्री हाकिम सरवरशाह के मकान में किसी की हत्या करवा दी थी।

पर अल्पवयस्क के शासकों के संबंध में प्रशासन के देखभाल के अधिकार का अधिकतर प्रयोग किया गया। उदाहरणार्थ 1863 में जब कूच बिहार के उस राजा का देहांत हो गया तो उसका एक अल्पवयस्क पुत्र उत्तराधिकारी हुआ। लारेन्स ने इसपर लेफ्टीनेंट कर्नल हटन को सुचारु रूप से शासन करने के लिए नियुक्त किया। उससे कह दिया गया कि वह कोई मूलभूत परिवर्तन का प्रयास वहां न करे।

लारेन्स को कश्मीर और हैदराबाद में उत्तराधिकार के मामलों को भी झेलना पड़ा। इस मामले पर वह कैनिंग के रास्ते पर चला। इसमें हिन्दू शासक को गोद लेने तथा मुसलमान शासक को अपने निकटवर्ती को उत्तराधिकारी बनाने की अनुमति प्रदान की गयी।

मंत्रियों और उनकी नियुक्तियों को नियंत्रित करने के लिए इस संबंध में शक्तिशाली राज्यों पर जोर दबाव डालने की नीति तो नहीं अपनाई गई पर जहां आवश्यकता पड़ती, यह भी किया जाता। विशेषकर कमजोर राज्यों में तो ऐसा किया ही जाता। हैदराबाद के मामले में निजाम के एक मंत्री को बर्खास्त करने को बाध्य किया गया क्योंकि ब्रिटिशों के अनुसार उसके हटने से राज्य में कुशासन प्रारंभ हो जायेगा। पर बड़ौदा के गायकवाड़ के सम्बन्ध में जो एक मंत्री को हटाकर किसी अन्य अपने प्रिय को नियुक्त करना चाहता था सरकार ने उसे स्वीकार कर लिया।

जान लारेन्स के समय में रेजिडेंटों की प्रतिष्ठा और अधिकार में वृद्धि की गई। उदाहरणार्थ काठियावाड़ के 379 जमींदारों के क्षेत्र को अच्छे न्यायिक प्रशासन में लाने के लिए इसे चार सर्किलों में बांट दिया गया। प्रत्येक सर्किल को एक पोलिटिकल असिसटेंट के अधीन कर दिया गया जो अपने क्षेत्र में मजिस्ट्रेट का कार्य करता था। काठियावाड़ के जमींदारों के संबंध में लारेन्स ने सीधे घोषित किया कि 'जमींदारों को अपनी जमींदारी के प्रबन्ध का अधिकार है। पर उन्हें सामान्य लोगों की इच्छा तथा ब्रिटिश सरकारी नीति का ख्याल रखना चाहिए।"

राज्यों की सैनिक शक्तियों की ओर बड़ी निगाह रखी गई। उदाहरणार्थ बड़ौदा का गायकवाड़ सीधे इंग्लैण्ड से कुछ अस्त्र मंगाना चाहता था। राज्य का रेजीडेन्ट भी सहमत था। पर जब केन्द्र को इसकी सूचना मिली तो तुरन्त इस सम्बन्ध में नीति घोषित की गई कि राज्य सीधे विदेश से अस्त्र मंगाने के अधिकारी नहीं है। राजनैतिक अधिकारियों को इसी के बाद आदेश भेजे गये कि वे 'राज्य

के सैनिक संगठन पर दृष्टि रखें। ' और तुरन्त केन्द्र को सूचित करें यदि उन्हें लगे कि अधिक अस्त्र एकत्रित किये जा रहे हैं।

महाराजा सिंधिया ने अपने राज्य में ब्रिटिश सरकार की अनुमति से कुछ पुलिस बटालियन बना रखा था। पर जब गवर्नर जनरल का यह पता चला कि उन्हें सैनिक ढंग की शिक्षा दी जा रही है तो उसने तुरंत यह आदेश भेजे कि इन पुलिस बटालियनों को तुरन्त तोड़ दिया जाय तथा राज्य की सेना विभाजित कर राज्य के भागों में अलग अलग स्थानों पर रख दिया जाय। उसे राजधानी में केंद्रित न किया जाय।

भारतीय राज्यों पर ब्रिटिश प्रभुसत्ता का परिचय उस समय और मिला जब राजाओं के विरोध तथा अपने अधिकारियों के अन्यथा मत के बाद भी लारेंस ने यह नियम बनाया कि यदि किसी राज्य क्षेत्र में डाक गायब होगी तो इसके लिए वहां के राजा को उत्तरदायी माना जायेगा। यह तय किया गया कि लूटी गई डाक सामग्री के मूल्य के अतिरिक्त वहां के राजा को दण्ड अलग से देना होगा।[1]

उत्तर-पश्चिम सीमा

1843 में सिंध के और 1849 में पंजाब के अपहरण ने ब्रिटिश उत्तर पश्चिम सीमा को अफगान पास तक पहुंचा दिया था। प्रश्न उठा कि इसकी रक्षा का सर्वोत्तम उपाय क्या है? 'सिंध स्कूल' ने अफगान नीति का पक्ष लेते हुए कहा कि क्वेटा को कंधार, काबुल और हैरात पर ब्रिटिशों को सीधे अधिकार कर लेना चाहिए। पर दूसरी ओर पंजाब स्कूल' की नीति सीमाबद्ध नीति थी। इसके अन्तर्गत लारेंस ने दूसरी नीति स्वीकार की और इसी के अन्तर्गत यह प्रस्ताव हुआ कि सीमा और इधर सिंध तक वापस ले आयी जाय।

लारेन्स के अनुसार विदेशी आक्रमण के विरुद्ध नदी एक प्राकृतिक और शक्तिशाली रोक का काम करती है और इसके आस पास ब्रिटिश सैनिकों के लिए कई स्वास्थ्य कर स्थल है। जबकि यहां से दूर कुछ चीजें भिन्न ही हैं। यहां तक कि जब विद्रोह काल में लारेंस पंजाब का चीफ कमिश्नर था तो उसने प्रस्तावित किया था, "हम आसानी से प्रांत पेशावर में हट सकते हैं। पर एकाएक यह कठिन ही नहीं होगा असंभव भी।" उसने प्रस्ताव किया कि कोहाट और पेशावर दो जिले दोस्त मोहम्मद को दे दिये जायें। ' पेशावर पाने से उसकी (दोस्त) दिली इच्छा पूरी

1 देखें, पाणिक्कर, के० एम० द नेटिव स्टेट्स आफ इंडिया और उसकी रिलेशन आफ इंडियन स्टेट्स, बटन सर डब्ल्यू० द प्रिंसेज आफ इंडिया मिट्ठ आ० एन० इंडियन स्टेट्स एण्ड ब्रिटिश इण्डिया।

होगी और उससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह होगा कि अफगान हमारे मित्र हो जायेंगे।"[1]

लार्ड कैनिंग ने लारेंस के विचारों को अस्वीकार कर दिया। जिन्होंने लारेंस के मत का विरोध किया उन्होंने बताया कि सम्पूर्ण इतिहास में साहसी सेनापति के रास्ते में नदी ने कभी प्रभावी बाधा नहीं पैदा की। इसके अतिरिक्त ब्रिटिशों को यह पता होना चाहिए कि पहाड़ों के उस पार और सिंध नदी के उस पार क्या घटित हो रहा है जिससे कि एकाएक होने वाले आक्रमण से बचा जा सके। और यह नदी के इस पार पीछे रहने से सम्भव नहीं होगा।

पर लारेंस इससे सन्तुष्ट नहीं था। उसने 1859 में इंग्लैण्ड में पामर्स्टन के पास प्रेषण में लिखा, "वर्तमान स्थिति में हम अफगानों व अन्य जातियों के निकट पहुंच गये हैं जो अत्यधिक विलक्षण और अघोर स्वभाव की हैं।" यदि ब्रिटिश सेनायें सिंध के बायें तक खिसक आयें तो इस कबीले से सम्पर्क हो जायगा और इस तरह खजाने का 5 लाख पौण्ड जो सीमा पर व्यय होता था बच जायेगा। दोस्त मुहम्मद प्रसन्न हो जायेगा और इस तरह सीमा सुरक्षित हो जायगी। उन लोगों के तर्कों का उत्तर देते हुए जिन्होंने इसे एक कमजोरी बताया था उसने कहा, "भारत में हमारी स्थिति कमजोर है और हमारी सही नीति यह होगी कि हम उस कमजोरी को स्वीकार करें और उसे दूर करने की चेष्टा करें। पामर्स्टन ने विचार कर यह कहा 'बुद्धिमानों द्वारा बेवकूफी का उदाहरण"। आयर स्विसन के अनुसार उसने तीव्रता में एक शब्द कहा जो लगा था कि "मूर्खता" था।

उत्तर पश्चिम सीमा के सम्बन्ध में लारेन्स के विचार अफगानिस्तान में उसकी प्रभुत्वपूर्ण निष्क्रियता की नीति के विपरीत, समकालीन लोगों पर कोई प्रभाव नहीं डाल सके। पर उत्तर पश्चिम सीमा के कबीलों के प्रति उसकी नीति उदारता की रही। गलती करने वाले कबीलों के विरुद्ध सैनिक आक्रमण कम ही किये जाते थे। वैसे 1868 में विजीतियों के विरुद्ध यह आक्रमण किया गया। अन्य विधियाँ जो लाभकर सिद्ध हुई वे ब्रिटिश व्यापार पर निर्भर रहने वालों पर 'ब्लाकेड' और 'मुआवजा' प्राप्त करने की नीति थी। इस तरह का दण्ड 1866 में सुलेमान खेल गिल्जाई के ऊपर लगाया गया। उन्हें नियंत्रित करने का दूसरा तरीका सीमा सरदारों के नातेदारों और रिश्तेदारों को सीमा सेना में भर्ती करना था। साथ ही उनमें से कुछ को ब्रिटिश क्षेत्र में कबीलों के लिए उपनिवेश बनाने की अनुमति भी प्राप्त होती थी। विद्रोह करने वालों पर बदला लेने की चेतावनी बहुत काम करती थी।

सिंध सीमा के कबीले थोड़े से कुछ दूसरी प्रकृति के थे। पंजाबी सीमा के

1 स्विन्सन आयर नार्थ वेस्ट फ्रन्टियर पृ० 122।

2 वही पृ० 125।

कबीलो से इन पर उनके नेताओ का अधिक नियत्रण था। इसीलिए क्लात के खान जैसे नेताओ को मित्र बनाकर उमे शाति और व्यवस्था के लिए आर्थिक सहायता कर शक्तिशाली बनाया गया। 1866 मे जब बुगती और मारी कबीला ने उसे परेशान किया तो हेनरी ग्रीन से उस विशेष आर्थिक सहायता प्रदान करने का प्रस्ताव किया, क्वेटा पर अधिकार करने का कहा और ब्रिटिश सेना म 200 भारी घुड सवार भर्ती किये। पर लारेंस ने इन प्रस्तावो से अपनी जानी मानी अफगानी नीति के विरोध के कारण इसे अस्वीकार कर दिया। मारी और बुगती लोगो ने मिलकर हमले किय पर सिंध और पजाब की सरकारो का दृष्टिकोण बुग्नियो के प्रति अलग अलग था इसी कारण इनकी लूट पाट की कारवाई नियत्रित करन मे कठिनाई हुई। डेरा इस्माइल खा के डिप्टी कमिश्नर कप्टन स डेमन के प्रयास से 1867 मे दोनो सरकारो के अधिकारियो के बीच एक बैठक का आयोजन किया गया जिसके आधार पर बुगती नेता गुलाम हुसेन का पीछा करके मार डाला गया और मारिस लोगो को सेना म कुछ स्थान दकर तथा और कुछ लाभ प्रदान कर प्रसन्न किया गया। "यह कबीले के लोगो को सेवा मे लाने का प्रारम्भिक प्रयास था जो बलूचिस्तान को सभ्य बनाने मे सर रावट सडेमन के लिए अतिलाभकारी हुआ।"[1]

अरब कबीले

लारेंस की उदारवादी आर प्रभुत्वपूण निष्क्रियता की नीति का भारत के बाहर अरब कबीला से ब्रिटिश सबधो पर प्रभाव पडा। अदन एक अच्छा गोदाम था जहा युद्ध के जहाज, पानी के जहाज सनिक उद्देश्यो पर निकलते और वहा से कोयला पानी लेते। इसके निकट ही युद्ध प्रिय अब्दाली और फज्ली जैसे अरब कबीले रहते थे जो आपस मे तो लडत ही थे साथ ही कभी-कभी अदन जाने वाली सडक को रोक देते थे जिसमे पूर्ति मे बाधा पडने लगती। अदन का ब्रिटिश रजीडेण्ट कनल डब्लू० एल० मेरेवेदर प्राय बीच बचाव करता था। उसने अब्दाली सरदार फजल बिन मोहसिन को अपना मित्र बना लिया। पर वह फज्ली कबीले के सरदार अहमद बिन अब्दुल्लाह को प्रभावित नही कर पाया। यह कबीला अधिक परशानी पैदा करने वाला और तेज था। मेरेवदर आक्रामक नीति का पक्षधर था और 1864 म जब फज्ली पर्याप्त कठिनाइया पैदा करने लगे तो उसने अब्दाली सरदार के समक्ष मिले-जुले प्रयास के द्वारा फज्लियो को दण्डित करने की याजना रखी। इसके लिए उसने पर्याप्त धन राशि भी निर्धारित की। पर बम्बई का

1 धमपाल ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ सर जोन लारेंस इन इण्डिया (1864-69) पृ० 188।

गवर्नर सर बार्टल फ्रेयर भी इसी मत का था, का विचार था कि एक कबीले का दूसरे कबीले के विरुद्ध प्रयोग अति आक्रामक नीति है।

पर जल्दी ही स्थिति ने तब गम्भीर रूप धारण कर लिया जब फज्ली कबीले ने आक्रामक नीति जारी कर दी। रेजीडेन्ट ने यह सूचना भेजी कि फज्ली कबीले पर आक्रमण से ही समस्या सुलझ सकती है। उसने पुलिस कार्य के लिए घुड़सवारों का प्रस्ताव भेजा। सर बार्टल फ्रेयर ने प्रस्ताव का समर्थन किया। पर जॉन लारेंस ने आक्रमण के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए रेजीडेन्ट को एक पक्षीय नीति अपनाने का दोषी बताया जिसके कारण फज्ली सरदार ब्रिटिशों से दूर हो गया। उसने बम्बई सरकार से तथ्यों की जानकारी करने को कहा और यह कहा कि यदि आवश्यक हो तो पुलिस कार्य के लिए घुड़सवारों की जगह ऊँटों का एक काफिला क्यों न तैयार किया जाय। उसने जोर दिया कि सामान्यतया ब्रिटिशों को कबीलों के आन्तरिक संघर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हमारी रुचि केवल अदन तक सुरक्षित पहुँचने में होनी चाहिए। उसने जोर देते हुए कहा कि अरब कबीलों की भी रुचि अदन की बाजारों को खुला रखने में है और इसे चालाकी और सम्पूर्णता से प्रयोग में लाया जाना चाहिए। 1867 में फज्ली नेता को नतमस्तक किया गया और अब्दाली सरदार को इसमें सहायतार्थ उचित पारितोषिक दिया गया। इसके बाद सेक्रेट्री आफ स्टेट के परामर्श पर लारेंस नीति को और प्रभावी बनाया गया। अन्त में पुलिस कार्यों के लिए ऊँटों के काफिले की जगह पर स्थानीय अनियमित घुड़सवार तैयार किये गये।

ब्रिटिशों की व्यापारिक रुचि फारस की खाड़ी में भी थी और इस कारण वे इस क्षेत्र में अरब कबीलों के बीच शांति चाहते थे जिससे लूट-पाट न हो। 1862 में खाड़ी क्षेत्र में लेफ्टीनेन्ट कर्नल लेविसपेली को पोलीटिकल रेजीडेन्ट नियुक्त किया गया। वह भी फावर्ड स्कूल की नीति का पक्षधर था और इसलिए वह इस क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव को बढ़ाकर ब्रिटिश व्यापार में अभिवृद्धि करना चाहता था। सर बार्टल फ्रेयर ने भी उसका समर्थन किया पर लारेंस इस नीति के विरुद्ध था। यहाँ ब्रिटिश नीति का मूल कमजोर पर मित्रराज्य मस्काट की रक्षा मालूम पड़ता था जिसे शक्तिशाली वहाबी बर्बाद करने के लिए आमादा दिखायी पड़ते थे। उन्होंने मस्काट पर बार बार आक्रमण किया और बढ़े हुए दर पर कर एकत्र किया। 1834 के वहाबी हमले में भारत सरकार की जो तटस्थतापूर्ण नीति थी, धीरे धीरे उसमें परिवर्तन हुआ और बाद के आक्रमणों में तो उसने मस्काट को समाप्ति से बचाने की ही नीति अपना ली। 1864 में वहाबियों द्वारा मस्काट पर आक्रमण की एक भयानक योजना का आभास मिला। पेली ने मस्काट की सहायता का प्रस्ताव किया जिससे कि कमजोर देश की पूर्व स्थिति बनी रहे और ब्रिटिशों का शक्तिहीन राष्ट्र की सहायता का आदर्श तो पूरा ही हो साथ ही वहा-

बियो की शक्ति बढाकर स्वतत्र व्यापार के लिए समस्या न बन जाय। लारेंस ने सावधान रहने की राय दी। पर पेली के पास यह सूचनायें पहुचे, उसके पहले ही वहाबिया ने सूर बदरगाह पर कुछ भारतीय व्यापारियो को लूट लिया। इस पर पेली ने एक चेतावनी भेजकर वहाबी अमीर से सात दिनो के भीतर क्षतिपूर्ति और क्षमा-याचना करने की माग की। पर निर्धारित समय तक कोई उत्तर न मिलने पर आक्रमण के आदेश हो गये। तमाम वहाबी बदरगाहा को शिकार बनाया गया, जहाजा आदि को गभीर हानि पहुचायी गयी। इसके परिणामस्वरूप मस्काट से वहाबी सेनाए वापस बुला ली गईं और मस्काट पर आक्रमण न करने का लिखित आश्वासन वहाबिया ने दिया। वहाबी राजदूत ने भारतीय व्यापारियो की कठिनाई के लिए क्षमा याचना की।

पर इस अवसर पर सर जॉन लारेंस और सर बाटल फ्रेयर के बीच गभीर मन मुटाव हो गया। लारेन्स ने पेली पर आरोप लगाया कि अति कठोर मागें वहाबियो के समक्ष प्रस्तुत कर और उन मागो की पूर्ति के लिए पर्याप्त समय न देकर उसने अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लघन किया है। बम्बई सरकार ने रेजीडेंट के काय-वाही का समथन किया।

पर शीघ्र ही मस्काट मे आन्तरिक सघप प्रारभ हो गया। लारेंस ने यहा पर पुन अफगानिस्तान की तरह 'प्रभुत्वपूण निष्क्रियता' की नीति यहा भी अपनाने की सलाह दी। 1866 म मस्काट के शासक सैय्यद सलीम के ऊपर उसके भाई सैय्यद तुर्की द्वारा आक्रमण का खतरा उत्पन्न हो गया। पर ब्रिटिशा ने अपने हस्तक्षेप से शासक को बचा लिया और तुर्की ब्रिटिश क्षेत्र म सलीम से वत्ति लेकर बस गया। 1867 मे आजम बिन गयास ने, जो रोस्तक का सरदार था, एक भयानक विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह सफल रहा और अक्तूबर 1868 मे सलीम मस्काट से हटा दिया गया और आजम ने वहा की गद्दी प्राप्त कर ली। पर सलीम न हार नही मानी और जल सेना से आक्रमण की तयारी प्रारभ की। पेली ने उसे सहायता का प्रस्ताव दिया और इस सबध मे परामश मागा। पर लारेंस ने इसका विरोध किया और पेली को यह निर्देश दिया कि वह सलीम या तुर्की किसी को भी जल से आक्रमण की अनुमति न दे। शाति की स्थापना की जानी थी। जहा तक सलीम का प्रश्न था वह जब राज्य रहने पर अपनी योग्यता सिद्ध नही कर सका तो अब गृहविहीन होकर कुछ कर सकेगा इसकी सभावना नही थी। इस तरह उसकी सहायता नही की जानी थी जब तक मस्काट के लोग ही उसे वापस बुलाने के लिए कुछ न करें।

पूर्वी तुर्किस्तान

यूरोप और एशिया के प्राचीन काल के रेशम पथ पर आर पार खडा तथा

भारत, तिब्बत, चीन, कोकन्द और रूस के काफिला से मिलनस्थल पूर्वी तुर्किस्तान को उच्च कोटि के व्यापारिक केन्द्र होने की प्रतिष्ठा 'टोलमी के दिना म ही' प्राप्त थी।"[1] ईस्ट इंडिया कपनी के सुपरिन्टेन्डेन्ट विलियम मूरक्राफ्ट ने अनौपचारिक रूप से 1812 म पश्चिमी तिब्बत म गरटोक की यात्रा की। 1819 और 1821 मे उसने 'हिमालय के व्यापार केन्द्र लेह'[2] की पुन यात्रा की। पास-पड़ोस के क्षेत्रो म भी वह गया। लद्दाख सरकार से उसने व्यापारिक समझौता करने म भी सफलता प्राप्त की। पर ब्रिटिश अधिकारियो ने इस ओर बिल्कुल ध्यान नही दिया। जब मूरक्राफ्ट लेह में था तो उस रूसी एजेन्ट आगा महदी के विषय म जानकारी मिली जो रूस की ओर से लद्दाख की अपनी दूसरी शुभकामना यात्रा पर था और जिसने रणजीत सिंह के दरबार म रूसी अधिकारियो की एक पत्र और कुछ भेंटें भी प्रस्तुत की थी। मूरक्राफ्ट को ऐसा लगा कि करावारम के उस पार बसगढ़ से होकर कश्मीर के रास्ते रणजीत सिंह की सहायता प्राप्त कर रूसी ब्रिटिश क्षेत्र पर आक्रमण कर सकते हैं। लेह म ही मूरक्राफ्ट ने देखा कि रणजीत सिंह लद्दाख से कर वसूलता है। उसने लद्दाख सरकार को अपने द्वारा ब्रिटिश सहायता प्राप्त करने को कहा पर कलकत्ता के अधिकारी इस तरह की किसी कारवाई के विरुद्ध थे। और बाद मे जब उन्हे यह पता चला कि उसने रणजीत सिंह को अपनी ओर से एक पत्र लिखा है जिसमे 'सभावित ब्रिटिश हस्तक्षेप" की अप्रत्यक्ष रूप से चर्चा की गयी है तो उसे कपनी की सेवा से बर्खास्त कर दिया गया और वह अफगानिस्तान ही मे 27 अगस्त 1825 को मर गया। पर अपनी मृत्यु से पूर्व मूरक्राफ्ट ने लद्दाख और पूर्वी तुर्किस्तान को ब्रिटिश कूटनीति के दायरे म उपस्थित किया था। इस सबध मे और शेष बातो का होना थोड़े ही काल की बात थी।

1834 म लाहौर के एक सहायक ने लद्दाख पर अधिकार कर लिया। पर 1841 मे जब वह उससे और आगे बढना चाहता था तो ब्रिटिशो ने इसपर खेद व्यक्त किया। प्रथम सिख युद्ध के बाद मार्च 1846 म अमृतसर की सधि हुई जिसके अंतर्गत कश्मीर राज्य गुलाब सिंह को सौंप दिया गया। इस सधि के अतर्गत लद्दाख और पूर्वी तुर्किस्तान के बीच सीमा रेखा खींचना ब्रिटिशो का उत्तरदायित्व हो गया। 1846 और 1847 के सीमा आयोगो का गुलाब सिंह और चीनियो मे समझौता कराने मे सफलता नही प्राप्त हुई 'और कोई औपचारिक सीमा समझौता कभी नही हो सका और आज का चीन भारत सीमा संघर्ष भी इसका ही परिणाम है।'[3] पर इन आयोगो के द्वारा पर्याप्त राजनैतिक और व्यापारिक सूचनायें एकत्रित की

1 अल्डर जी०ज० ब्रिटिश इंडिया ज नादन फ्रंटियर प० 15 ने जे० ऐ ड आर० मान्सल (सस्करण) द रसन्स इन सेन्ट्रल एशिया प 51 52 को उद्धत किया।

2 वही प० 16।

3 वही पृ० 21।

गयी। 1861 मे आर० एच० डेवीज ने जो पजाब सरकार का सेक्रेट्री था, लद्दाख होकर पर्वी तुर्किस्तान से व्यापार की सभावनाओ के विषय मे विस्तत रिपोट तैयार की। इससे रूस द्वारा उस ओर से आक्रमण के खतरे की सभावना भी समाप्त हो जायेगी। पर इसमे लम्बी दूरी, ऊचे पवत पथो, कबीलो के आक्रमण तथा सबसे अधिक कश्मीर सरकार द्वारा आरोपित कठोर कर और लेह मे व्यापरियो के विरुद्ध अपनायी जान वाली अत्याचार की कठिनाइया थी। डेवीज की रिपोट ने सर जान लारेस और पजाब के लेफ्टीनेन्ट गवनर सर राबट माटगोमरी के लिए इस सबध मे और रुचि लेने का अवसर प्रदान किया। इसी बीच चीनियो को पीछे हटाकर एक भगोडे याकूब बेग ने पूर्वी तुर्किस्तान म अपनी शक्ति सगठित कर ली जिसके बाद ब्रिटेन के कई गुना राज्य से व्यापार करने की महत्ता की ओर अग्रेजो का ध्यान गया। क्षेत्र वैसे तो उपजाऊ और घनी बस्ती वाले थे पर उत्पादित माल के के लिए विदेशो पर निभर करते थे। इस तरह यह समझा गया कि "इन सभी देशो मे भारतीय माल और अग्रेजी वस्तु के लिए माग एक ही तरह की है।"[1] यह तब सो और हुआ जब याकब बेग ने ब्रिटिश उत्साह का प्रत्युत्तर उसी तरह से दिया और उनका हर तरह से सहयोग किया।

पर इस व्यापार के विकास मे एक आवश्यक पग लेह मे एक ब्रिटिश व्यापारिक एजेन्ट की नियुक्ति थी जो लूट-खसोट पर दृष्टि रखने के लिए था। यह आरोप भी लगाया जाने लगा कि कश्मीर की सरकार लाहौल मे ब्रिटिशो के ऊपर कर लगा रही है। सर जॉन लारेस ऐसे किसी एजेन्ट की नियुक्ति के विरुद्ध था क्योंकि उसके अनुसार इससे कश्मीर का शासन असतुष्ट हो जायगा जो सदा ब्रिटिशो के प्रति भक्त और भला रहा है। पर जब सहायक कमचारी यही करने के लिए दबाव डालत रहे तो उसने एक अस्थायी व्यवस्था करना स्वीकार किया और इसके अनुसार लेह म उसने एक डाक्टर भेजा जो उसके अनुसार कश्मीर के राजा के लिए बर्दाश्त करना सरल रहेगा। इस तरह लेह मे डॉ० हेनरी केले को नियुक्त किया गया। पर जैसे ही केले लेह पहुचा उसने,लालची अधिकारियो को पद से हटाना प्रारभ किया और साथ ही अपने ऊपर से व्यापार कर कम करना प्रारभ किया। सर डोनाल्ड मैकलीड जो पजाब का तत्कालीन गवनर था, ने केले की कारवाई का समथन किया। पर सर लारेस ने इसे अत्यधिक आक्रामक माना। उसने कहा, "मुझे स्वय समझ मे नही आता कि हमे कत्तव्य के तराजू पर एक स्वतत्र शासक के तौलने का क्या अधिकार है?"[2] जिस कश्मीर के महाराज ने ऐसे एजेन्ट की

1 आफीसियल डाकूमण्टस को उद्धत करते हुए वही, प० 25 26।

2 उद्धत वही पृ० 29।

नियुक्ति का बड़ा विरोध किया था वह उसकी वापसी के लिए बड़ी कीमत देने को तैयार था। सर जान लारेंस ने महाराजा की इच्छा पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने को कहा। पर पंजाब के कर्मचारियों, व्यापारियों और इंग्लैण्ड में से भारतीय कौंसिल के कुछ सदस्यों ने ऐसे किसी कदम का विरोध किया और लद्दाख का एजेण्ट जिसे एक मौसम के लिए नियुक्त किया गया था, वह स्थायी पदाधिकारी हो गया।[1]

'1863 से इसी बीच, विशेष तरह के व्यक्तियों की एक पंक्ति झूठे और संक्षिप्त नाम से, वेश बदलकर, और खूब उत्तम उपायों का प्रयोग कर जैसे खाली प्रार्थना के चक्र लिये, और सुमिरिनी कदमों की चाल से जुड़ती दिखती आदि, उत्तरी सीमा में फैल गई। तमाम सूचनायें जो वे लेकर लौटे उसे संपादित कर तब सरकार के समक्ष इसे प्रस्तुत किया गया।'[2] सर जॉन लारेंस ने ऐसे खतरनाक क्षेत्र में इस तरह की खोजबीन को मनाही कर दी। यहां तक कि जब एक ने उसकी बात नहीं मानी तो उसे पद से बर्खास्त कर दिया। पर वह व्यक्तिगत रूप से ऐसा कार्य करने वाला को नहीं रोक सका। एक चाय पैदा करने वाला राबर्ट शॉ और एक सहायक विलियम हेवड व्यक्तिगत रूप से 1868 में कशगर में प्रविष्ट हुए और उनके द्वारा एकत्रित समाचारों के आधार पर पंजाब सरकार ने 1868 में इस बात पर जोर दिया कि एक देशी अधिकारी को, उपयुक्त सूचना के आधार पर भारतीय व्यापारियों के हित के लिए कशगर में नियुक्त किया जाना चाहिए। सर जॉन लारेंस ने इसे अस्वीकार कर दिया और इसके लिए यह तर्क दिया कि याकूब बेग से इस तरह के संबंध से उसे रूसी आक्रमण से बचने के लिए ब्रिटिश सहायता लेने को प्रोत्साहन मिलेगा। बाद में इस मांग को स्वीकार कर लिया गया जिसके फलस्वरूप 1870 में लार्ड मेयो के लिए पूर्वी तुर्किस्तान से कूटनीतिक संपर्क का पथ प्रशस्त हो गया।

भूटान का युद्ध

1864 65 में होने वाला भूटान का युद्ध ही एक ऐसी घटना थी जिसने सर जॉन लारेंस की सरकार के शांति काल में कुछ व्यवधान डाला। यह छोटा-सा हिमालय पर्वत क्षेत्र का राज्य दो अधिकारियों द्वारा शासित था। पहला धर्मराज जो आध्यात्मिक नेता था और जिसका कार्यकाल अवतार से जुड़ा था। दूसरा देव राज जो मंत्रिमंडल द्वारा चुना जाता था। 15 मील चौड़ी एक लम्बी भूमि की पट्टी थी जो पश्चिम में तीस्ता नदी से प्रारंभ होती और पूर्व में धानसिरी नदी तक

1 देखें कपूर एम० एल० कश्मीर सोल्ड ऐण्ड स्नच्ड, पृ० 27 30।
2 ऐल्डर जी० जे०, पूर्वोद्धृत पृ० 31।

जाती। इसकी उपजाऊ भूमि मे जहा सघन कपास के खेत हो सकते थे और जो युरोपियो के बसने के लिए भी एक उत्तर हो सकते थे, इन पर ब्रिटिशो की लालची निगाहे बहुत पहले से थी। यह 18 भागो मे बटा था जिसे दुआर कहते थे। इनमे से 7 आसाम की सीमा की ओर थे और 11 बगाल की सीमा की ओर। इसके पहले ब्रिटिशो और भूटान अधिकारियो के बीच सीमा विवाद भी हुए थे। पर लार्ड एम-हर्स्ट के काल मे, जब प्रथम आग्ल बर्मा युद्ध के बाद बर्मियो को आसाम से निकाल दिया गया तो ब्रिटिश पहली बार आसाम के 7 द्वार सीमा के सपर्क मे आये और जिस पर किया गया अधिकार आसाम और भूटान के लिए सघर्ष का विषय बन गया। भूटान आसाम को जो कर देता था वह भी मनमुटाव का कारण बन गया।

जैसे ही ब्रिटिश 7 पूर्वी द्वारो के सम्पर्क मे आये उनकी चिन्ता यह हुई कि किसी तरह यहा पर अधिकार स्थापित किया जाय। भूटान वालो पर ब्रिटिशो के विरुद्ध आक्रामकता का आरोप लगा। 1841 मे लार्ड आकलैण्ड ने शाति के नाम पर इन द्वारो पर अधिकार कर लिया। ब्रिटिशो ने 10 हजार रुपये वार्षिक भूटान को मुआवजा दिलाने का निश्चय किया। बगाल सीमा वाले 11 द्वार अब भी वैसे ही पडे रहे और अग्रेज अधिकारी जो इस भूमि की कीमत समझते थे इसे निगलने का बहाना ढूढने लगे। 1855 मे भूटानिया ने तुष्टीकरण और क्षमा याचना द्वारा उन्हे बचाया जबकि उनके ऊपर आरोपित आक्रामक नीति के कारण उत्तरी-पूर्वी सीमा के गवर्नर जनरल के एजेन्ट जेकिन्स ने इस पर अधिकार कर लेने की राय दी। भूटानी आतकित हो गये और उन्होने स्वय ब्रिटिशो के पास अपना प्रतिनिधि भेजने का प्रस्ताव किया। पर यह करने के पूर्व ही भूटान मे आतरिक विद्रोह प्रारभ हो गया। इसी बीच एक ब्रिटिश मिशन भेज दिया गया जो रास्ते मे कठिनाइयो के बावजूद भूटानी-दरबार मे पहुच गया और एक सधि का मसविदा हस्ताक्षर हेतु प्रस्तुत किया। पर इस सधि की शर्ते इतनी आक्रामक थी कि अति प्रभावी भूटानी नेता टोगसा पेनलोप ने सधि करने से बेहतर युद्ध करना ही समझा। कहा जाता है कि उसने मिशन के नेता ऐश्ले ईडेन के सामने प्रस्तावित सधि पत्र के कागज के टुकडे-टुकडे कर दिये, अभद्र भाषा का प्रयोग किया और उसे एक ऐसे कागज पर हस्ताक्षर करने को बाध्य किया जिसमे सात द्वारा पर ब्रिटिशो को अधिकार त्यागने की स्वीकृति के लिए कहा गया था। बडी कठिनाई से मिशन पकडे जाने से बचकर भागा।

गर्म और महत्त्वाकाक्षी ब्रिटिश अधिकारिया के लिए इतना पचा पाना कठिन था। इन परिस्थितिया मे सर लारेन्स ने बाध्य होकर पूर्वी द्वारो पर दिये जाने वाले कर को रोक दिया, भूटान के फालाकाटा जिले पर अधिकार कर लिया और 9 जून 1864 को देवराज के पास एक चेतावनी भेजी गई कि 1 सितम्बर तक वह कुछ ब्रिटिश मागो को मान ले या फिर युद्ध के लिए तैयार रहे। इस बीच तैयारिया

होती रही और चूंकि कोई सतोषजनक उत्तर भी प्राप्त नही हुआ इस कारण ब्रिटिश सेनाओ को आगे बढने को कहा गया। भूटानियो ने बहादुरी से लडाई की, पर उनका साधन सपन्न और अनुभवी ब्रिटिशो से क्या मुकाबला था।

11 नवम्बर 1865 की शाति सधि से युद्ध समाप्त हुआ। इसके परिणामस्वरूप शेष 11 द्वार भी ब्रिटिशो ने जीत लिये जिसके बदले मे भूटानियो को उन्होने पहले वर्ष 25 हजार रुपये, दूसरे वर्ष 35 हजार रुपये, तीसरे वर्ष 45 हजार रुपये, और इसके बाद प्रतिवर्ष 50 हजार रुपये के हिसाब से प्रदान किया। इतना भूटानियो के भविष्य के किसी बदमाशी पर नियत्रण के लिए काफी समझा गया क्योकि इस धन को न देने की चेतावनी से ही उनके व्यवहार पर नियत्रण होने की सभावना थी। इस युद्ध के औचित्य पर वादविवाद यहा आवश्यक है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन भी क्षेत्रो पर अधिकार की इच्छा ब्रिटिशो मे जाग्रत हो गई उसके लिए तर्क और कारणो को वे खोज लेने मे पीछे न रहें। द्वार इस नियम का अपवाद कैसे हो सकते थे? भूटानियो का अपराध यही था कि उनके पास अच्छी लकडी और कपास पैदा करने वाले क्षेत्र थे। स्वय ऐश्ले ईडेन के अनुसार ही "भारत म एक सर्वोत्तम और हमारे सरकार के अधीन शीघ्र ही यह सबसे सपन्न हो जायगा।"[1] दु ख की बात यह थी कि लारेंस भी इस मसले मे सहयोगी हो गया।

उत्तर पूर्वी सीमा

भारत के उत्तरी-पूर्वी सीमा के कबीलो के प्रति भी सर जान लारेंस की नीति साहस और शक्ति से जुडी उदारता की थी। उसकी नीति और उनके ऊपर प्रशासकीय या क्षेत्रीय नियत्रण की नही थी बल्कि ब्रिटिश क्षेत्रों को उनके असभ्य और क्रूर आक्रमणो से अपने को बचाने की थी। लारेंस का कहना था कि जगली हिंसात्मक प्रवृत्ति का मुकावला केवल हिंसा से नही हो सकता। शक्ति के प्रदर्शन सहित सहनशीलता भरी टालमटोल की नीति तथा उन्हे आर्थिक सहायता देने की नीति जिसके साथ उनके दुर्व्यवहार करने पर इस वापस ले लेने की चेतावनी जुडी रहती, ही लारेंस की नीति थी। उसका यह विश्वास नही था कि उन्हे डराने के लिए आक्रमण किये जाय, उनके ग्रामो को जलाया जाय तथा उनका सामूहिक कत्ल किया जाय।

'फावर्ड स्कूल' वाले आर्थिक सहायता की नीति को भयादोहन की नीति मानते थे। कर्नल हापकिंसन ने लिखा है कि "मैं तो हर तरह से यह मानता हू कि भयादोहन की नीति तब तक चलती रहे जब तक सीमा पर इससे शाति स्थापित रहे।

1 धर्मपाल पूर्वोद्धत पृ॰ 235 द्वारा उद्धत।

भयादोहन पर होने वाला अधिक से अधिक व्यय भी सैनिक आक्रमण के व्यय की तुलना मे कम ही रहेगा। पर सोना तब तक अधिक दिनो तक नही चल सकता जब तक लोहा इसकी रक्षा के लिए तैयार न हो। इस सीमा पर तलवार सहित तैयार रहना एक आवश्यकता है।" पर बगाल सरकार ने 'फावड स्कूल' के लोगो की उदारता की नीति को भयादाहन की नीति मानने के लिए भत्सना की। बगाल सरकार ने जिसकी नीति से सर जान ने ही सहमति व्यक्त की, कहा, "अभोर (आसाम का एक शक्तिशाली कबीला) को दी जाने वाली वार्षिक धनराशि और भयादोहन मे एक अन्तर यह था कि एक मामले मे जगली कबीले की सहनशीलता को हम अपने धन के सहारे अपना अनुगामी बना लेते हैं और दूसरी स्थिति मे धन सहायता देकर हम उन्ह अच्छा व्यवहार करने के लिए बाध्य कर देते हैं। एक आक्रामक भाव से आगे बढता है और दूसरा उदारता से।" इसमे लारेंस ने यह भी जोड दिया कि असभ्य कबीलो से निपटने के लिए सतोष की आवश्यकता है। पर उन्ह यह नही लगना चाहिए कि वे जितनी ही अव्यवस्था उत्पन्न करेंगे उनकी सहायता राशि उतनी ही बढा दी जायेगी। भारत के सेक्रेट्री आफ स्टेट ने लारेन्स की उत्तर पूर्वी सीमा को स्वीकृति प्रदान करते हुए एक पत्र मे लिखा, "अनुभव यह बताता है कि प्रतिशोध चाहे अकेले लिया जाय या आर्थिक सहायता के साथ जोडकर, मैदानी लोगो की रक्षा के लिए वह निभरता योग्य नही है। इससे जगली कबीलो मे कोई परिवतन लक्षित नही होता। रानी की सरकार इस बात से प्रसन्न है कि जगली हिंसक कबीलो के साथ उदारता की नीति अपनाने का प्रयास किया जा रहा है। उन्ह प्रसन्न होना चाहिए कि वह नीति जो भारत के अन्य क्षेत्रो मे सफल रही है वह आसाम और अराकान मे उनके लिए भी उपयोगी सिद्ध नही होगी।"[1]

सर जान सचमुच इस नीति मे सीमा पर और अन्य स्थानो पर सफल रहा। आसाम की ब्रिटिशो की सीमा पर इसी तरह नागा, अभोर और घोर कबीले थे। इनमे से अगामी नागा अधिक समस्या प्रधान थे। प्रथम आग्ल बर्मा युद्ध के बाद 1832 मे ब्रिटिशो ने आसाम और मणिपुर के बीच नागा क्षेत्र से होकर सपक स्थापित करने की चेष्टा की। नागाओ ने इसका विरोध किया जिसके फलस्वरूप उन्ह दण्डित करने के लिए दो आक्रमण किये गये। 1838 और 1840 मे दो आक्रमण और किये गये जिसमे दोनो पक्षो का बहुत नुकसान हुआ जिसके फलस्वरूप 1841 मे नागाओ के साथ शातिपूण व्यवहार किया गया और इसी के कारण सीमा की सुरक्षा की गारन्टी का समझौता हुआ। पर ब्रिटिश अधिकारियो मे कुछ हठी लोगो ने 1843 से अगामी नागाओ के कर की माग करके उन्हें क्रुद्ध ही नही

1 धर्मपाल पूर्वोद्धत, पृ० 231, 232 234 द्वारा आफीसियल डाकूमट्स से उद्धृत।

कर दिया बल्कि समझौते को बर्बाद कर दिया। एक ब्रिटिश अधिकारी की हत्या कर दी गयी जिसके कारण नागा क्षेत्र में एक और आक्रमण किया गया। इसमें दोनों पक्षों का पहले की ही भांति विनाश हुआ। इन सारी स्थितियों में लारेन्स सामने आया। मसले पर विस्तार से बातचीत हुई और कई प्रस्ताव सामने आये जैसे नागा क्षेत्र पर अधिकार कर ब्रिटिश नियन्त्रण में ले लिया जाय, सीमा पर कई सैनिक चौकियां उन्हें आतंकित करने हेतु स्थापित की जाय, पूरे नागा क्षेत्र को घेर लिया जाय और उन्हें ब्रिटिश गावों से व्यापार न करने दिया जाय, नागाओं को आर्थिक सहायता देकर प्रसन्न किया जाय और एक ब्रिटिश अधिकारी नागा-हिल क्षेत्र में नियुक्त किया जाय जो उन्हें मित्र बनाने की चेष्टा करे। लारेन्स ने अंतिम प्रस्ताव का समर्थन किया पर साथ ही यह भी कहा कि आर्थिक सहायता के काल का प्रयोग कम से कम किया जाये। लेफ्टीनेंट ग्रेगरी को समर्गटिंग में ब्रिटिश क्षेत्र की नागा आक्रमणों से रक्षा हेतु नियुक्त किया गया जिसे कूटनीति भत्ते और थोड़ी-सी सेना का ही प्रयोग करने को कहा गया।

लारेंस ने अपने सहायकों को सदा इस बात के लिए आगाह किया कि वह क्षेत्र, जहां ये कबीले रहते हैं, पर्वतीय हैं और यात्रा के लिए कठिन ही नहीं होता है जो इन्हें जिद्दी और हिंसक कबीलों के निवास के कारण और परेशानी पूर्ण बना देते हैं बल्कि यह एक ऐसा अस्वस्थ क्षेत्र है जहां उनके अतिरिक्त और कोई रह ही नहीं सकता। उसकी दृष्टि में कुछ लोगों के अपराध के लिए इस क्षेत्र को घेरकर सभी के लिए कठिनाई पैदा करना उचित नहीं था।

लारेंस ने अभोरों के विरुद्ध भी इसी तरह की नीति अपनायी। इनके विरुद्ध 1848, 1858 और 1859 में दंडात्मक आक्रमण किये गये थे। इन युद्धों में तमाम धन और सैनिकों के जीवन की बर्बादी हुई थी, पर इस पर भी अभोर सीमा पर शांति स्थापित नहीं हो पायी थी। क्रूर प्रतिशोध की नीति सचमुच पूर्णतया असफल हो चुकी थी जिसका परिणाम यह हुआ कि लारेंस के पहुंचने के पूर्व ही 1862 63 में अभोर लोगों के साथ शांति संधि पर हस्ताक्षर कर लेना उचित समझा गया जिसके अंतर्गत उन्हें वार्षिक आर्थिक सहायता देने का आश्वासन दिया गया और उसके बदले में सीमा पर शांति की मांग की गयी। 1865 में जब अभोरों में आपस में संघर्ष हुआ तो उन लोगों को अवसर मिला जो उदार नीति के विरोधी थे। पर लारेंस अपनी शांति की नीति पर अडिग बना रहा। कूगी, खेंग, शेन्दू और अन्य अराकान और चटगांव के कबीलों के साथ भी लारेंस ने यही नीति अपनायी जिससे सेक्रेट्री आफ स्टेट भी प्रसन्न हुआ।

हम समाप्त करें, इससे पूर्व एक शब्द उसके व्यक्तित्व और सफलताओं के बारे में यहां आवश्यक है। शक्ति केंद्रीयकरण का प्रेमी और अंग्रेजी जाति की उच्चता में विश्वास करने वाला जान लारेंस एक अति परिश्रमी और अत्यधिक आत्म

विश्वासी था। कुछ लेखको ने लारेंस की तीखी आलोचना की है। उदाहरणार्थ वास वथ स्मिथ लिखता है कि "वह बोलने मे सीधा और मुहफट था, वह अयोग्य लोगो की नियुक्ति की ओर तनिक भी ध्यान नही देता था तथा वह दबाव मे कोई काम नही करता था जो उसकी विचारधारा के विपरीत हो।"[1]

टेम्पुल ने लिखा है, "मानव होने के कारण उसमे दोष होने ही थे, पर गुणो के अनुपात मे ये कम ही थे। उसमे झुझलाहट का दुर्गुण था। पर इसके कारण, उसके अपने आत्म नियन्त्रण की शक्ति के कारण, केवल उसके ऊपर ही प्रभाव पडता था, दूसरो पर नही। पर वह शक्ति का प्रेमी था जिसे वह आधुनिक फारसी मे खुदरफ्तारी कहता था जिसका अर्थ था अपने ही मतानुसार रास्ते पर आगे बढना।"[2]

लारेंस की भारतीय सैनिको को शस्त्र से सुसज्जित करने की भेदभावपूर्ण नीति सचमुच मूर्खतापूर्ण थी। इसके अतिरिक्त उसने सेना का जो पुनर्सगठन किया था जो सुविधाए सैनिकों को प्रदान की वे सब यूरोपीयो के लिए थी। यह भारतीयो के लिए नही किया गया क्योकि उन्हे ऊचे सैनिक या असैनिक पदो के लिए अच्छा नही समझा गया। उडीसा के दुर्भिक्ष मे जो जीवन विनाश हुआ उससे कार्यक्षमता और दया के भाव के कमी का स्पष्ट आभास होता है। जो और बुरा था वह प्रशासकीय मशीनरी म इन दोनो तत्वो का अभाव था।

पुन कुछ ऐसे काय भी सामने नही आते जिसके आधार पर जॉन लारेंस के शासन की प्रशसा की जा सके। जगल विभाग के सरक्षण से सबधित उसके काय, एक तरीके से भारतीय सफाई-व्यवस्था के लिए सगठन काय और उसके कुछ आर्थिक सुधारो की निश्चित ही प्रशसा करनी होगी। पर उसके सपूण कार्यों मे सबसे प्रशसनीय काय उसकी अफगानिस्तान के प्रति नीति थी। जो 'प्रभुत्वपूण निष्क्रियता' की नीति कहलाती है। सीमा के कबीलो के प्रति उसकी नीति उदारता और सदभाव की थी।

जनवरी 1869 मे लारेंस भारत से पदमुक्त होकर वापस गया। वह जैसे ही इग्लैण्ड पहुचा उसे 'पजाब और ग्रेटले का लार्ड लारेंस' की उपाधि सहित पियरेज प्रदान किया गया। ग्रेटले सैलिसबरी क्षेत्र मे उसकी बहन द्वारा छोडा गया छोटा-सा तालुका था।[3] पर ससद मे उसने अपनी कोई छाप नहीं छोडी। इसके स्थान पर वह "लदन स्कूल बोड के परोपकारी काय मे लग गया और इसका चेयरमैन हो गया। इसके अतिरिक्त वह चच मिशनरी सोसाइटी और अस्पतालो के प्रबंध मे लग

1 स्मिथ आर बासवर्थ लाइफ आफ लार्ड लारेंस, भाग 2 (1885), पृ० 349।

2. टेम्पुल सर आर० इडिया इन 1880 पृ० 160।

3 गिलियट, एडवर्ड हीरोज आफ माडन इडिया, पृ० 255।

गया।"[1] 1878 म जब लिटन ने भारत म द्वितीय अफगान युद्ध की घोषणा की तो उसने 'फावड स्कूल' के उस नीति की भर्त्सना की जो भारत मे अब हावी हो गयी थी और अफगानिस्तान के विरुद्ध सेना भेजने के सबध मे कहा, "वे एक के बाद एक सब कत्ल कर दिय जायेंगे।" उसकी चेतावनी की ओर ध्यान नही दिया गया पर वे सच साबित हुई। "उसकी आँखें और स्वास्थ्य धीरे धीरे खराब होने लगे और जुलाई 1878 मे 68 वष की आयु मे लदन म उसका देहात हो गया। वेस्ट मिनिस्टर अबे म उसे दफनाया गया और वाटर लू प्लेस पर उसकी मूर्ति स्थापित की गयी।"[2]

अफगानिस्तान की ओर 'प्रभुत्वपूर्ण निष्क्रियता'

भारत के इतिहास मे सर जॉन लारेन्स की गवनरी उसके आन्तरिक प्रशासन या भारतीय राज्यो से उसके सबधो के लिए उतनी नहीं जानी जाती जितनी अफगानिस्तान के प्रति 'प्रभुत्वपूण निष्क्रियता' की नीति के लिए। इस नीति के विकास और प्रयोग का जानने क लिए थोडा विस्तार मे जाना होगा।

समय बीतने के साथ प्रथम अफगान युद्ध के बाद आग्ल अफगान सबधो की महत्ता बढ गयी। जैसा सर चाल्स ऐटचिसन[4] ने बताया है, इसके कारण थे। इन्हीं सबधो के कारण ही भारतीय मामले यूरोपीय कूटनीति के दायरे मे आ गये। इन्होंने सच मे भारतीय साम्राज्य के आधार को हो छू लिया। इसमे एक जाति के चरित्र के अध्ययन का मामला सामने आ गया जो अपने दृष्टिकोण मे ही विचित्र नही था बल्कि मनोवृत्ति व शरीर मे भी दूसरे तरह का था। इसके अतिरिक्त उनके साथ एक ऐसा विषय जुडा था जो ब्रिटिश वैदेशिक नीति म किसी और विषय से अधिक महत्त्वपूण था। इसकी महत्ता तब और बढ गयी जब यह काय लाड लारेन्स के उत्कृष्ट हाथो मे आ गया जो आर० बोसवथ स्मिथ के अनुसार, "अपनी अफगान नीति मे वह न तो 'उदार' था और न 'अनुदार' था बल्कि एक ईमानदार राजनीतिज्ञ था।"[5] लार्ड लारेन्स ने अफगानो के सबध मे एक नयी नीति की नीव डाली जिसे सही रूप मे न तो समझा ही गया और न बताया ही गया। पर हमारी दृष्टि से यह एक अति दुलभ और सतुलित विचारधारा का परिणाम था।

1842 म जब प्रथम अफगान युद्ध समाप्त हुआ और 1864 मे जब लाड लारेन्स

1 मेरसे विस्काउन्ट द वाइसराय एण्ड गवनर जनरल आफ इडिया पृ० 84।
2 गिलियट एडवड पूर्वोद्धत प० 256।
3 मेरसे विस्काउन्ट पूर्वोद्धत प० 84।
4. ऐटचिसन सर चाल्स लार्ड लारेन्स (रूलस आफ इडिया सीरीज)।
5. स्मिथ, आर बोसवर्थ लाइफ आफ लाड लारेन्स, (1885), भाग 2, पृ० 484।

भारत का वाइसराय होकर आया, इस बीच ब्रिटिश साम्राज्य के उत्तर पश्चिम दिशा मे बहुत सा परिवर्तन हो चुका था। सिध पर विजय प्राप्त कर ब्रिटिश साम्राज्य का अग बना लिया गया था। दो आग्ल सिख युद्ध लडे जा चुके थे और 1849 से ही पजाब पर ब्रिटिशो का सीधा नियत्रण स्थापित हो चुका था। इस सबने ब्रिटिशो को अफगानिस्तान की सीधी समत मे ला दिया। अफगानिस्तान तक ब्रिटिश सीमाओ पर आवागमन के साधन का विकास हो चुका था और यूरोपीय आवश्यकताओ ने भारतीय नीति को इस देश के प्रति कोई नीति अपनाने के लिए बाध्य करना प्रारभ कर दिया था।

अफगान गद्दी पर दोस्त मुहम्मद के पुनर्स्थापित होने के बाद दस वर्षों तक उसके प्रति ब्रिटिश नीति अनिश्चित रही। इसके बाद धीरे धीरे यह आकार ग्रहण करने लगी। 1855 और 1857 मे मैत्री सधियां की गयी। 1855 की सधि के अनुसार ब्रिटिशो ने अफगानिस्तान को उसके आतरिक मसले पर हस्तक्षेप न करने के लिए आश्वस्त किया जबकि दोस्त मुहम्मद ने इसके बदले मे यह स्वीकार किया कि वह ब्रिटिशो के मित्रो को अपना मित्र और उसके शत्रुओ को अपना शत्रु मानेगा। 1856 मे जब फारस ने पुन हेरात पर घेरा डाला तो ब्रिटिशो ने दोस्त मुहम्मद की सहायता की और फारस वालो को 1857 मे समझौते के लिए बाध्य किया। इससे दोस्त मुहम्मद से ब्रिटिश मैत्री और गाढी हो गयी और इसीलिए 1857 मे एक नयी सधि की गयी। यह मैत्री 1862 तक अविकल रूप से चलती रही। 1857 के विद्रोह के समय दोस्त मुहम्मद ने ब्रिटिशो के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए तमाम चिट्ठिया लिखी। पर 1862 मे दोनो के बीच मनमुटाव प्रारभ हुआ। यह तब प्रारभ हुआ जब दोस्त मुहम्मद ने ब्रिटिश इच्छा के विपरीत हेरात पर आक्रमण कर दिया और 1863 म इस पर अधिकार कर लिया। इसके थोडे ही दिनो बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

पर जब तक अफगानिस्तान के उत्तर के राज्यो पर रूस की छाया नहीं पडी तब तक काबुल के मसले ने स्थायी महत्ता नही ग्रहण की। 1844 में जब रूस के शासक सम्राट निकोलस प्रथम ने रानी विक्टोरिया से इग्लैण्ड में भेंट की तो उसने इस पर सहमति व्यक्त की और उसे आश्वस्त किया कि बुखारा के खानातों, खिवा का क्षेत्र तथा समरकद को तटस्थ क्षेत्र माना जायेगा। पर रूस और इग्लैण्ड के सबध क्रीमिया के युद्ध के प्रारभ होने के साथ ही लडखडा गए। इसके बाद रूस ने इन खानातो मे विस्तारवादी नीति अपनानी प्रारभ की जिससे ब्रिटिश सदेह बहुत बढ गया और वे अफगानिस्तान से सबध के मसले पर सतर्क हो गये।

जैसा कि हम जानते हैं, उस समय दो तरह के विचारक थे जिनके विचार अफगानिस्तान मे रूसी खतरे से निबटने के लिए अलग-अलग थे।[1] [illegible]

1 लार्ड आकलैड सबधी अध्याय देखें।

जैकब द्वारा स्थापित 'सिंघ स्कूल', जिसके विचारों का प्रचार ग्रीन और हेनरी रॉलिन्सन ने लारेंस के समय मे किया, 'फावड' नीति मे विश्वास करता था। ग्रीन के अनुसार क्वेटा, "जो सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है जहा पश्चिम से पूर्व आने वाले हर मित्र और शत्रु को स्थान मिल जाता है," पर अधिकार कर लिया जाना चाहिए। इन विचारकों के अनुसार भारत मे ब्रिटिशो के लिए रूस से सच्चा खतरा था और यदि रूस इस देश पर आक्रमण करेगा तो उनके अनुसार मध्य एशिया के हजारो लोग इसका समर्थन करेंगे और भारत मे हजारो लोग इसका स्वागत करेंगे।

इसके विपरीत विद्रोह के पूर्व लारेंस द्वारा स्थापित 'पजाब स्कूल' की एक विचारधारा थी जिसका समर्थन हर्बर्ट एडवर्ड्स और हैरी लम्सडेन करते थे। एडवर्डस का कथन था कि यदि ब्रिटिश अफगानिस्तान को रूसी हाथो म जाने देने से बचाना चाहते हैं तो इसके लिए सबसे अच्छी नीति यह है कि "उन्हे यह लगे कि हम स्वय अफगानिस्तान मे कुछ नहीं चाहते ।" और लार्ड लारेंस का क्वेटा को प्राप्त करने के विरुद्ध यह तर्क था कि सक्कर और क्वेटा के बीच की दूरी257मील थी। रास्ते म पडने वाले रेगिस्तान की कठिनाइया थी और दोनो के रास्ते म एक दर्रा भी पडता था। इसके अतिरिक्त जकोबाबाद, जहा हमारा केन्द्र है, वहा से एक रेगिस्तान तथा पर्वतमाला द्वारा यह अलग थलग दूर पडता था। यदि क्वेटा पर सामने से आक्रमण हो जाता तो लुटेरे कबीले दर्रों का मुह निश्चित रूप से बद कर देते। इसके अतिरिक्त क्वेटा पर अधिकार अफगानो के उस सदेह की पुष्टि करता कि हम उनके क्षेत्र पर अधिकार करना चाहते हैं। इसपर अत्यधिक धन व्यय होता और चूकि अफगानिस्तान एक गरीब देश है "इसलिए विदेशियो की एक बडी सेना यहा नही रह सकती और एक छोटी सेना अपनी ही सुरक्षा नही कर सकती थी।" लारेन्स के अनुसार काबुल, बोखारा, यारकद आदि स्थानो पर राजनैतिक और व्यापारिक मिशन रखना ही लाभकर होगा। उनकी हत्या हो सकती है, उनका अपमान हो सकता है और इस कारण उन स्थानो पर इनकी उपस्थिति ब्रिटिशो के लिए सुरक्षा की समस्या पैदा करेगी।

इस तरह लार्ड लारेंस के भारत म वाइसराय रहने के काल मे जिस आधार भूत नीति को अपनाने की उसने इच्छा व्यक्त की वह थी कि अफगानिस्तान के आन्तरिक मामले मे हस्तक्षेप किये बिना उसके शासक को शक्तिशाली बनाया जाय, भारत और रूस के बीच अफगानिस्तान को एक मित्र देश माना जाय और भारत तथा रूस के प्रभाव की मध्य एशिया म स्पष्ट सीमा रेखा खीच दी जाय। रूस को यह बता दिया जाय कि अपने प्रभाव क्षेत्र मे उसे जहा कुछ भी करने का अधिकार है वहा उसे अफगानिस्तान के मसले मे हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नही होगा क्योंकि यह ब्रिटिशो के प्रभाव क्षेत्र मे है। उसने यह भी बताया कि वह अफगानिस्तान के साथ आक्रामक अथवा सुरक्षात्मक मित्रता के पक्ष मे नही है पर

इसका अर्थ यह नही कि वह 'उसके राज्य की सुरक्षा'[1] मे रुचि नही रखता।

नीति का कार्यान्वयन—लार्ड लारेंस की बहुचर्चित 'प्रभुत्वपूर्ण निष्क्रियता' की अफगान नीति की परीक्षा 1863 से उस समय से प्रारंभ हो गयी जब दोस्त मुहम्मद की मृत्यु हो गयी और वहा कठिनाइया प्रारंभ हो गयी। उसके 16 लडके थे जिनमे शक्ति के लिए आपस मे संघर्ष होना अनिवार्य था। उसके पुत्रो और पौत्रो मे इस प्रश्न से जुडे निम्न लोग थे। पहला तो शेर अली था जो दोस्त अली का तीसरा लडका था और जिसे उसके पिता ने अपना उत्तराधिकारी चुना था और जिसकी सहायता हेतु उसने ब्रिटिश से निवेदन भी कर रखा था। इसके अतिरिक्त शेर अली के दो बडे सौतेले भाई थे, एक अफजल जो तुर्किस्तान का गवर्नर था और दूसरा अजीम जो कोरम का गवर्नर था। इनसे उसके उत्तराधिकार को चुनौती मिलने की आशा थी। शेर अली का छोटा विपितृज भाई अमीन जो कंधार का गवर्नर था, कम रहस्यपूर्ण न था। अफजल के पुत्र अब्दुर रहमान की भी अनदेखी नही की जा सकती थी।

दोस्त मुहम्मद की मृत्यु के बाद शेर अली गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ जिसे ब्रिटिश ने भी स्वीकृति प्रदान की। जब लार्ड लारेंस को गवर्नर जनरल बनाया गया तो शेर अली ने प्रसन्नता व्यक्त की और मार्च 1864 म एक दूत को अपने एक मैत्रीपूर्ण पत्र सहित भेजा। इसके साथ 6,000 मस्केट भेंट के रूप मे भी उसने भेजे। अपने पत्र मे शेर अली ने लार्ड लारेंस से उस मैत्री-संधि को फिर से करने का निवेदन किया जिसे उसके पिता के काल म ब्रिटिश से किया गया था। उसने यह भी निवेदन किया कि उसके पुत्र मुहम्मद अली को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार किया जाय। पर शेर अली द्वारा प्रेषित भेंट वापस कर दी गयी।

अभी अफगान दूत वापस भी नही लौट पाया था कि इसी बीच अप्रैल महीने म अनहोनी घटित हो गयी। अफजल और अजीम दोनो ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। शेर अली ने आसानी से अजीम को पराजित करने और ब्रिटिश क्षेत्र म उसे शरण लेने को बाध्य करने म सफलता प्राप्त की। पर उत्तर मे अफजल अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ। अपने को अमीर घोषित करते हुए उसने बोखारा के राजा से संधि की और शेर अली के लिए गंभीर कठिनाइया पैदा कर दी। दोनो के बीच युद्ध अनिर्णायक सिद्ध हुआ। पर शीघ्र ही शेर अली ने कुरान की शपथ लेकर अफजल से मैत्री कर ली। पर यह सुलह खोखली सिद्ध हुई क्योकि शेर अली ने अफजल को एकाएक बंदी बना लिया और उसे काबुल ले आया। अफजल का लडका अब्दुर्-रहमान बुखारा भाग गया। इस षड्यंत्र ने अफजल और उसके

---

1 और विस्तार के लिए देखें ऐटचिसन लार्ड लारेंस, स्मिथ, आर० बा० लाइफ आफ लार्ड लारेंस भाग 2।

पुत्र के समर्थकों में एक तहलका मचा दिया। इसके कारण शेर अली की शक्ति भी गंभीरता से हिल गयी।

1865 के प्रारंभ में अजीम ने ब्रिटिश क्षेत्र का परित्याग कर दिया और वजीरी पहाड़ियों में घूमने लगा और शेर अली के लिए कठिनाई पैदा करने के अवसर की तलाश में लग गया। ब्रिटिशों ने इसकी सूचना तुरन्त अमीर को भेजी जिसने इसके लिए एहसास जताया। इसी बीच अमीन ने कंधार में स्वतंत्र होने की चेष्टा की और ब्रिटिशों से अपने को स्वीकृत करने के लिए कहा। लार्ड लारेन्स ने यह कहकर इसके प्रस्ताव को रद्द कर दिया कि ब्रिटिश अफगानिस्तान में एक ही शासक की सत्ता स्वीकार करते हैं और वह शेर अली ही है। इस प्रेषण की सूचना शेर अली को भी दे दी गयी।

मई 1865 में शेर अली अमीन को पराजित करने के लिए आगे बढ़ा। दोनों सेनाओं के बीच एक रुधिर युद्ध कुजवाज में हुआ। पर युद्ध समाप्त होने के पहले अमीन और मुहम्मद अली ने आपस में अकेले ही लड़ाई की जिसमें चाचा और भतीजे दोनों मर गये। अतत 6 जून को इस युद्ध में शेर अली को विजय मिली और वह विजेता के रूप में कंधार में प्रविष्ट हुआ। पर वह यह नहीं भूल सका कि यह विजय बड़ी कीमत देकर प्राप्त की गई है। उसका उत्तराधिकारी पुत्र ही इसमें मार डाला गया था। जिसके कारण अशक्त हो वह पागल हो गया। वह इसी दशा में महीनों पड़ा रहा और इसी बीच उत्तर में स्थिति गंभीर होती गयी जिसके फलस्वरूप उसकी गद्दी भी उसके हाथ से निकल गयी।

अब्दुल रहमान जो बुखारा भाग गया था वहां से शासक की सहायता लेकर आक्सस पार करते हुए अपने पिता को मुक्त कराने के लिए काबुल की ओर रवाना हुआ। रास्ते में अजीम उससे मिल गया और इस तरह उसकी सेना शक्तिशाली हो गयी। संघ वालों की सेना की प्रतीक्षा विजय कर रही थी और 1866 के बसंत तक उन्होंने अफगानिस्तान की राजधानी पर अधिकार कर लिया। पूरे अफगानिस्तान में बुखारा के शासक के नाम खुत्बा पढ़ा गया और काबुल में इस संघीय सेना वालों को नागरिकों से उचित अभिनंदन प्राप्त हुआ। उनकी सफलता इतनी प्रभाव की थी कि काबुल के ब्रिटिश एजेन्ट तक ने अजीम को बधाई दी। फिर इसके लिए भारत सरकार ने उसे फटकारा।

अजीम ने अब अपनी सफलता की सूचना ब्रिटिशों को दी जिसके लिए उसे लार्ड लारेन्स से एक शिष्ट उत्तर प्राप्त हुआ। पर अपने पत्र में उसने अफगान राजनीति के संबंध में जो अपनी नीति प्रस्तुत की उसे अजीम ने ठीक नहीं समझा। अजीम को स्पष्ट रूप से बता दिया गया कि ब्रिटिश ये नहीं समझते कि शेरअली अंतिम रूप से परास्त हो गया है। वे उसे अब भी अफगान शासक मानते हैं पर यदि अतत शेरअली असफल हो जाता है और अजीम उन स्थानों का अधिकारी

हो जाता है तो उसे उन स्थानो का शासक स्वीकार कर लिया जायेगा जहा पर उसका अधिकार है। यह एक बार पुन स्पष्ट कर दिया गया की ब्रिटिश उनके बीच होनेवाले आपसी द्वद्व मे किसी का भी पक्ष नही लेंगे और न ही किसी पक्ष की सहायता करेंगे। वे अफगानो को अपनी समस्या का स्वय समाधान करने के लिए छोड देंगे। पर वे उस राष्ट्र के साथ मे मैत्रीपूण सबध के सदा इच्छुक रहेग। वैसे ही वहा के असली शासको के साथ भी।

इसी बीच शेरअली को उसकी निद्रा और पागलपन से जगाया गया जिसने पुन अपनी सेना एकत्रित की। इस बीच सघ वालो मे भेद भाव पैदा हो गया जिससे उसकी स्थिति और ठीक हो गयी। शेरअली जैसे-जैसे आगे बढता काबुल की सेनाए पीछे हटने लगी। 10 मई 1866 को शेखाबाद मे एक लडाई हुई जहा शेरअली विजय पाने ही वाला था कि उसका कधार रेजीमेंट शत्रुओ से मिल गया। शेरअली पराजित होकर भाग खडा हुआ। वह गजनवी की ओर गया जहा के नगर के लोगो ने उसके लिए अपने दरवाजे बद कर लिये। इसके बाद वह कान्धार की ओर रवाना हुआ।

बदी अफजल को मुक्त करके अमीर घोषित किया गया। काबुल मे उसके स्वागत म रोशनी की गयी और उसके नाम से सिक्के ढाले गये। अब कांधार और हेरात ही शेरअली के अधिकार मे रहे जिससे उसकी भविष्य की आशाए धूमिल हो गयी। लाड लारेंस ने अब ब्रिटिश एजेंट को अफजल के सामने उपस्थित होने की अनुमति प्रदान कर दी क्योकि उसे स्पष्ट हो गया कि अब वही काबुल का असली शासक है। 30 मई को अफजल ने लाड लारेन्स को पत्र लिखा कि उसे अफगानिस्तान के शासक के रूप मे स्वीकार किया जाय और दोस्त मुहम्मद से होने वाली मैत्री सघ को पुन दुहराया जाय। पर लारेन्स ने अपने उत्तर मे कहा कि उसकी इच्छा है कि अफजल की इच्छा पूरी करे पर शेरअली से सबध समाप्त करना ब्रिटिश नीति के विपरीत होगा जिसने ब्रिटिशो के विरुद्ध कुछ नहीं किया है और जिसके अधिकार मे अब भी कांधार और हेरात है। इसलिए इन परिस्थितियो मे यदि अफजल ने अपनी स्थिति काबुल मे ठीक कर ली है तो उसे उसी स्थिति मे स्वीकार किया जायेगा। लारेन्स ने लिखा, "सच्चाई और औचित्य का तकाजा है कि स्पष्ट रूप से और खुले तौर पर मैं आपको यह लिखू।"

शेरअली ने अपनी राजधानी जीतने के लिए एक बार, और चेष्टा की। पर 17 जुलाई 1867 को अजीम और अब्दुर रहमान द्वारा वह पराजित कर दिया गया जिसके बाद वह कांधार भाग गया। पर अबकी बार उसके विरुद्ध यहां के लोगो की अपना दरवाजा बद करने की बारी थी जिसके कारण उसे हेरात की ओर मुडना पडा। अफजल ने कांधार पर अधिकार करने की सूचना ब्रिटिशों को दी और अब वह काबुल व कांधार का शासक मान लिया गया। पर लार्ड लारेन्स

ने अब भी शेरअली के प्रति दया के भाव का प्रदर्शन किया और आशा की कि देश में शीघ्र ही दोस्त मुहम्मद के किसी पुत्र द्वारा वहां शांति स्थापित हो जायेगी। उसने शेरअली को हेरात का शासक स्वीकार किया।

अफगानिस्तान से ब्रिटिश संबंधों को लेकर इसी बीच एक नयी बात सामने आयी। लार्ड लारेंस के पास शेरअली ने अपने भाइयों के विरुद्ध सहायतार्थ निवेदन किया। जब शेरअली को ब्रिटिशों के अफजल से पत्र व्यवहार की सूचना दी गयी और उनके अफगान राजनीति के संबंध में नीति की तो उसने ब्रिटिशों को इंगित किया कि यदि ब्रिटिश उसकी सहायता नहीं करते तो वह फारस और रूस से सहायता के लिए निवेदन करेगा। यह ब्रिटिश नीति का कोमलतम भाग था जिसे शेरअली ने स्पर्श किया। लार्ड लारेंस ने उसका इसका तुरन्त उत्तर दिया। उसे बताया गया कि यदि वह अपने इच्छित कदम की ओर बढ़ता है तो ब्रिटिश तुरन्त काबुल के शासक का पक्ष लेंगे और उसे आवश्यक हथियार भी प्रदान करेंगे। लारेन्स ने बताया, "हमारा संबंध वर्तमान असली शासक के साथ ही रहना चाहिए और जबतक यह शासक हमारा विरोधी न हो जाय हम सदा उसके साथ वही संबंध बनाये रखना चाहिए जो उसके पूर्व के शासक से हमारा रहा था।"

इसी समय गृह अधिकारियों को उसने परामर्श दिया कि वे रूस के जार से किसी-न किसी तरह का समझौता करने का प्रयास करें। उसने यह संस्तुत किया कि मध्य एशिया में रूस और इंग्लैण्ड की प्रभाव-सीमा निश्चित कर ली जाय और दोनों के अपनी अपनी ओर के वकीलों से संबंध स्थापित करने और संधि करने के अधिकार का भी निश्चय हो जाय। रूस को इस तरह बोखारा और खोखंद में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने की अनुमति दिलानी चाहिए और उसी तरह ब्रिटिशों के अफगानिस्तान तथा उसके पास-पड़ोस वालों से संबंध को लेकर रूस का ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए।

जिस समय गृह अधिकारियों को ये संस्तुतियां भेजी गयीं वह समय भी महत्त्व का था। रूस क्रीमिया के युद्ध के भयानक प्रभाव से धीरे धीरे उबरकर ऊपर आ रहा था। उसने आधे खोखंद को छीन लिया था और शेष आधे को नमित कर अफगानिस्तान की उत्तर पश्चिम सीमा तक पहुंच गया था। ऐसा लगता था कि वह मध्य एशिया में अपनी शक्ति मजबूत करने के इरादे में था। इसके लिए उसने अपने आगे के केन्द्र पेरोस्क जो आरेन बेरी लाइन पर था और वर्नो जो साइबेरिया की ओर था, के बीच की खुली सीमा को बंद करना चाहता था। दूसरी ओर कैस्पियन सागर क्षेत्र में उसका उद्देश्य क्रस्नोवोडस्क पर अधिकार करना और अट्रेक तक आगे बढ़ना था। उपरोक्त विवरणित खुली सीमा बंद करने में उसे 1864 में सफलता मिल गयी, जबकि कैस्पियन सागर में उसका उद्देश्य

1869 मे पूरा हो गया। इस समय भारत मे लाड लारेंस का शासन समाप्त होने को था। रूस अब खोखद, बोखारा और खीव के उजबेग खानातो के सामने आ खडा हुआ। खोखद और बुखारा ने ब्रिटिशो से सहायता की अपील की पर यह व्यथ गयी, और उनकी स्वतत्रता बर्बाद कर दी गयी। जब समरकद पर भी रूसियो ने अधिकार कर लिया तो लाड लारेंस ने पुन गृह सरकार पर दबाव डाला कि रूस से कोई समझौता करने का प्रयास किया जाय। उसने निवेदन किया कि उस देश *"को स्पष्ट पर शिष्ट भाषा मे बता दिया जाय, कि उसे आफगानिस्तान के* मामले मे या उनके मामले मे जिनका क्षेत्र हमसे सटा हुआ है, हस्तक्षेप की अनुमति नही दी जायेगी।" गृह अधिकारियो को प्रेषित इन प्रस्तावो की रोशनी मे यह स्पष्ट है कि उसे मध्य एशिया म रूसी महत्त्वाकाक्षा के बढने और उसके प्रति अजागरूक रहने के लिए आरोपित नही किया जा सकता।

लाड लारेंस की स्पष्ट रूप से परिभाषित नीति उसके ही शब्दो मे इस तरह थी, "यदि रूस जैसी विदेशी शक्ति कभी गभीरता से बाहर से भारत पर आक्रमण करने को सोचे या जिसकी अधिकाश सभावना है, यदि वह यहा पर विरोधी तत्त्वो से आदोलन कराना चाहे तो हमारी सही नीति यह होगी कि हम काबुल, काधार या इसी तरह के किसी अन्य स्थान पर अपने को न फसाए, इसके अतिरिक्त हम सगठित, पूणतया सज्जित एव पूणतया अनुशासित सेना भारत की सीमा मे रखें, भारतीय प्रजा सतुष्ट रहे, भारतीय राजाओ आदि की उपाधि व वृत्ति सुरक्षित रहे, जनहित मे भारत म भौतिक निर्माण हो जो ब्रिटिशो की राजनैतिक और सनिक शक्ति मे वद्धि करे, प्रत्येक स्थिति के लिए तैयार रहा जाय, ब्रिटिशो को अपनी ईमानदारी और विचारो पर भरोसा हो, और अतिम रूप से ऐसी सारी शिकायतो से बचने की चेष्टा जिससे विदेशी आक्रमण की सभावना बढे या गृह-क्षेत्र मे विद्रोह हो।"[1]

लाड लारेंस के इन्ही प्रस्तावो के आधार पर इस विषय मे बाद मे भारत सरकार की नीति का विकास हुआ। जब काबुल की गद्दी शेरअली ने पुन प्राप्त कर ली तो ब्रिटिश सहायता उसे उपलब्ध कर दी गयी। मध्य एशिया मे ब्रिटिशो और रूसियो के प्रभाव क्षेत्र के मध्य एक तटस्थ क्षेत्र बनाया गया। रूस के साथ अफगानिस्तान के उत्तरी और पश्चिमी सीमा को विस्तृत करने के लिए बातचीत की गयी। और आफगान सरकार को शक्तिशाली बनाये रखने की नीति आगे लिटन के काल तक चलती रही।[2]

पुन मुख्य कहानी की ओर लौटा जाय। शेरअली ने वैसे तो फारस और रूस

1 और विस्तार के लिए देखें ऐटचिसन लाड लारेंस।

2 आगे मेयो, नार्थब्रुक और लिटन पर लिखे गये अध्याय देखें।

से सहायता लेने की ओर इंगित किया था, पर वह इस प्रस्ताव के प्रति गंभीर नहीं था क्योंकि उसे पूर्णतया मालूम था कि इससे बहुत सी पेचीदगियां पैदा होंगी। इसलिए उसने अपने साधनों पर अपने को निर्भर किया और शक्ति अर्जित करनी शुरू की। भाग्य ने भी उसका साथ दिया क्योंकि इसी बीच 7 अक्तूबर 1867 को अफजल की मृत्यु हो गयी। उसका उत्तराधिकारी अजीम हुआ। पर न तो अफजल और न ही अजीम जनता को अपने पक्ष में बनाये रखने में समर्थ थे। अजीम को अफजल से भी अधिक घृणा का सामना करना पड़ा। और देश में आतंक का राज्य स्थापित हो गया। इस बीच शेरअली अपने तुर्किस्तान के मित्रों की सहायता से पुनः शक्ति प्राप्त करके कांधार की ओर बढ़ा, काबुल की सेना को पराजित किया और राजधानी पर पुनः अधिकार कर लिया। अजीम तुर्किस्तान भाग गया और जनवरी 1869 तक अब किसी और तरह की कठिनाई उत्पन्न करने की उसकी शक्ति जाती रही।

शेरअली ने गद्दी पर पुनः अविवादित और पूर्ण रूप से जब अधिकार प्राप्त कर लिया तो उसने गवर्नर जनरल को इस संबंध में लिखा जिसने इसके बदले में उसे बधाई दी। समय आ चुका था जब लार्ड लारेन्स की अफगानिस्तान के प्रति नीति के दूसरे भाग पर कार्य किया जाय। इसके अंतर्गत अमीर की सदेच्छा प्राप्त करने हेतु उसे शक्तिशाली बनाया जाना था, उसके नष्टप्राय देश में शांति स्थापित की जानी थी, उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया जाना था और न ही उससे आक्रमक या रक्षात्मक समझौता किया जाना था। पर फिर भी 'उसके राज्य की सुरक्षा हित चिन्तन" के प्रति जागरूक रहा जाना था जिससे कि भारत और रूस के बीच एक मैत्रीपूर्ण शक्ति बनी रहे। इस नीति पर अमल करते हुए लार्ड लारेन्स ने अमीर को 60 हजार पौण्ड की भेंट भेजी और पर्याप्त हथियार भेजे। शेरअली ने इसके लिए गवर्नर जनरल का शुक्रिया अदा किया। वह तो उसके पास मिलने के लिए भारत ही आ रहा था पर तुर्किस्तान में कुछ कठिनाई पैदा हो गयी जिसके कारण उसे अपनी यात्रा स्थगित करनी पड़ी।

इसी बीच लार्ड लारेन्स भारत से पद मुक्त हो गया। पर पद छोड़ने के पूर्व उसने अमीर को एक पत्र लिखा जिसमें ६० हजार पौण्ड की भेंट और देने को कहा गया। लार्ड लारेन्स ने पुनः इस बात के लिए उसे आश्वस्त किया कि ब्रिटिश उसके देश के प्रति कोई आक्रामक उद्देश्य नहीं रखते। लार्ड लारेन्स के इंगलैण्ड वापसी के बाद रानी विक्टोरिया ने भी अमीर को पत्र लिखकर आश्वस्त किया कि अफगानिस्तान के प्रति ब्रिटिश नीति में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

लार्ड लारेन्स के जाने के कुछ ही दिनों के बाद शेरअली ने भारत की यात्रा की और 27 मार्च 1869 को अम्बाला में उसके उत्तराधिकारी लार्ड मेयो से मिला। इस भेंट के संबंध में एक रूसी समाचार पत्र ने कहा, "दीवार का पहला पत्थर

रख दिया गया था जिसे आंग्लभारतीय सरकार शीघ्र ही रूसियो के रास्ते मे मध्य एशिया मे मकान के रूप मे निर्मित करना चाहती है।"

लार्ड लारेंस की अफगान नीति के विरुद्ध बहुत सी बाते कही गयी हैं। एच० एच० डाडवेल ने लिखा है कि तथाकथित 'प्रभुत्वपूर्ण निष्क्रियता' की लार्ड लारेंस की नीति सच मे घटनाओ की प्रतीक्षा के अतिरिक्त कुछ नही थी। डाडवेल के अनुसार लारेंस का मत, "इस गलतफहमी पर आधारित था कि अफगान अपने हित को पहचानने मे मूर्ख थे।" डाडवेल और आगे लिखता है कि उसकी नीति उस पुराने सिद्धान्त पर आधारित थी जो राज्यो के साथ निहस्तक्षेप की अपनाई गयी थी। पर लार्ड लारेंस को यह कम ही पता लग पाया कि इन राज्यो के पास सहायता की पुकार सुनने वाला था ही कौन जबकि अफगानिस्तान के मामले मे रूस और फारस थे जो अफगान के किसी शासक की सहायता की अपील का स्वागत करते और परिस्थिति का लाभ उठाते। डाडवेल के अनुसार लार्ड लारेंस ने अपनी नीति की भ्रामकता को उस समय समझ लिया जब उसने अपनी नीति मे अत मे परिवर्तन कर अमीर शेरअली को आर्थिक और अस्त्रो की सहायता दी। इससे पहले भी उसने एक अफगान शासक को सहायता देने की चेतावनी दी थी जो रूस के पक्ष मे नही गया था।

पर डाडवेल के अनुसार जब तक लार्ड लारेंस ने अपनी नीति मे परिवर्तन किया तब तक काफी हानि हो चुकी थी। अब्दुर रहमान अफगानिस्तान से बाहर खदेड दिया गया और ब्रिटिशो मे अविश्वास कर रूस मे शरण ले ली थी। शेर-अली भी सन्तुष्ट नही था बल्कि उसने खुलेआम घोषणा की कि, "अग्रेजो ने अपने लाभ के अतिरिक्त कुछ नही किया और समय काटते रहे।" इसके अतिरिक्त यह सभी को ज्ञात था कि रूस के लिए खोकद, बुखारा, खीव और समरकद पर अधिकार करना कठिन नही था। रूसी सामाजिक और धार्मिक सगठन प्राच्य कोटि के थे और इस कारण इन स्थानो पर रूस के अधिकार से कोई हिंसा भी न पनपती। ये छोटे राज्य रूस ने मिला भी लिये और तब लार्ड लारेंस ने एशिया मे और आगे बढकर रूसी महत्त्वाकाक्षा मे बाधा देने की जगह पर यह प्रयास करता रहा कि रूसी समस्या के समाधान के लिए ब्रिटेन रूस से कोई समझौता यूरोप मे करे। डाडवेल कहता है कि उसने यह नही सोचा कि, "यूरोप मे होने वाले समझौते मे उस महाद्वीप मे अग्रेजो का हित रूसियो से गौड हो जाता।"

डाडवेल आगे कहता है कि रूस सचमुच मध्य एशिया सबधी अपनी महत्त्वाकाक्षा मे अत्यधिक उत्साहित हो गया और बाद मे जब दोनो देशो के बीच आक्सस को विभाजन रेखा बनाने के लिए कहा गया तो रूस ने कहा कि अफगानिस्तान सबसे उपयुक्त तटस्थ क्षेत्र है। और यह सब इस देश के प्रति लार्ड लारेंस की कम-

जोर नीति के कारण ही घटित हुआ ।[1]

डॉ० मजूमदार और अन्य भी ये कहते हैं कि लार्ड लारेंस की नीति ब्रिटिश के लिए अलाभकर थी। शेरअली अपने मित्रों से अपनी कठिनाई के काल में सहायता की आशा करता था पर ब्रिटिश ने उसके साथ ऐसा किया नहीं । इन लेखकों का कहना है कि इस काल में, फारवर्ड नीति अपनाकर ब्रिटिश "अफगानिस्तान में अपने को शक्तिशाली कर लेते और सदा के लिए उस क्षेत्र में बढ़ने वाले रूसी प्रभाव पर रोक लगा देते।" इस तरह ये लेखक लारेंस के पक्ष में इतना ही कहते हैं कि, "वह अफगान आन्तरिक संघर्ष से अपने को अलग रखने में और कोई अन्तर्राष्ट्रीय पेचीदगी न पैदा होने देने में सफल रहा ।"[2]

पर यदि निकट से परीक्षण किया जाय तो न तो डाडवेल का और न ही मजूमदार व अन्य का तर्क खरा उतरता है। यदि हम डाडवेल के एक के बाद एक तर्क की चर्चा करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा । लारेंस की घटनाओं की प्रतीक्षा करने की नीति निश्चित ही उसमें कूद पड़ने से अच्छी थी क्योंकि इससे सर भी फूट सकता था और पछतावा भी हो सकता था, जैसा कि कार्नवालिस और लिटन ने किया। इसके अतिरिक्त अफगान निश्चित रूप से यह मानते थे कि जब तक ब्रिटिश भारत में हैं तब तक फारस और रूस की ओर देखना सुरक्षित भी नहीं है और लाभपूर्ण भी नहीं। और जब तक अफगान यह मानें कि एक संतुलित ब्रिटिश के लिए चिन्ता की कोई बात नहीं थी । जहां तक फारस और रूस की ओर अफगानिस्तान के झुकने का प्रश्न था उसके लिए अफगानिस्तान में हस्तक्षेप न करने की लारेंस नीति से बेहतर दवा भी क्या हो सकती थी। लार्ड लारेंस की सचमुच नीति यह थी कि अफगानिस्तान में सबसे समर्थ व्यक्ति की सहायता की जाय। वह लार्ड आकलैंड के शाहशुजा जैसे कमजोर व्यक्ति का समर्थन कर वहां पर कठिन परिस्थिति पैदा कर फारस और रूस को हस्तक्षेप का अवसर नहीं प्रदान करना चाहता था और जब तक अफगानिस्तान का सबसे योग्य व्यक्ति अपनी स्थिति न ठीक कर पाए और ब्रिटिश उसकी तलाश न कर पाए, उस स्थिति में यहां के प्रत्येक शासक को स्वीकृति प्रदान करने में कोई हर्ज नहीं था, क्योंकि ऐसा करने से हर एक संतुष्ट रहेगा और कोई भी फारस और रूस की ओर सहायतार्थ नहीं देखेगा। चाहे जितनी भी तीव्र इच्छा से ब्रिटिशों ने अफगानिस्तान को शांत, शक्तिशाली और संगठित राज्य के रूप में देखना चाहा हो और वह इनमें से किसी भी कोटि में न आ पाया हो, उस समय ब्रिटिश को उसे वैसा बनाने का प्रयास करना चाहिए

1. डाडवेल एच० एच० कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 6 पृ० 412।
2. मजूमदार ऐण्ड अन्स द ऐडवांस्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 571।

था। उन्हे तब निश्चित रूप से अपने ऊपर खतरनाक और कठिन कर्तव्य-बोझ रखना चाहिए था, क्योकि मात्र सावधानी से उधर दृष्टि रखना और तभी हस्तक्षेप करने को सोचना जब स्थिति अपने विरुद्ध जाने को हो, ठीक नही था। इतिहास इसका साक्षी था कि अफगानिस्तान मे प्रवेश तो सरल था। पर वहा रुकना, जो ऐसी स्थिति मे आवश्यक हो जाता, जैसी डाडवेल ने कल्पना की है, आर्थिक और सामरिक दोनो दृष्टि से उचित प्रस्ताव नही था।

पुन डाडवेल का इस बात पर जोर देना कि लारेन्स अपनी नीति शीघ्रता मे अन्त मे या इसके पूर्व बदल दी, स्पष्ट करता है कि लेखक ने लारेन्स की नीति को सही तरह से समझने की चेष्टा नही की है और न उसकी सच्ची महत्ता की ओर ध्यान दिया है। लार्ड लारेन्स की प्रारम्भ से यह नीति नही थी कि अफगानिस्तान के शासक को कोई सहायता न दी जाय, बल्कि यह थी कि वहा के असली शासक को सहायता प्रदान की जाय जिससे कि इस तरह जो धन और शक्ति लगाई जाय वह बेकार न जाय। यह भी नीति नही थी कि स्थिति इतनी खराब हो जाने दी जाय कि फारस या रूस को हस्तक्षेप ही करना पडे।

यदि अब्दुल रहमान रूस चला गया तो वह इसलिए कि वह खेल मे हार चुका था और बेकार का आदमी था। इससे ब्रिटिशो का कोई अहित भी नही हुआ। यदि रूस ने खानात पर अधिकार कर लिया तो उस देश से यूरोप मे समझौता ही ब्रिटिशो की सहायता करता यदि ब्रिटिश मध्य एशिया मे आगे बढने के लिए अफगानिस्तान पर अधिकार कर लेते तो यह आत्महत्या के बराबर होता। इस सबध मे प्रस्तुत तर्क सर्वविदित है। और पुन यदि रूस ने अफगानिस्तान की ओर तटस्थ क्षेत्र कहकर इगित किया तो वह लार्ड लारेन्स की कमजोर नीति के कारण नही था बल्कि गृह सरकार के कारण था जिसने उसके प्रस्ताव पर विचार करना अस्वीकार कर दिया था।

डॉ० मजूमदार और उसके सहलेखको का मत भी समीचीन नही है। यदि शेरअली ने लार्ड लारेन्स को ठीक से नही समझा तो भी उसे यह ज्ञात था कि वह केवल योग्य व्यक्ति की ही सहायता करता है और साथ ही वह व्यक्ति जो रूस या फारस की ओर मुह कर ले, वह उसकी दृष्टि म योग्य व्यक्ति नही है। इन लेखको ने, लगता है, यह भी नही समझा है कि अफगानिस्तान मे मजबूती से कदम रखना सभव है। पर वह कदम वहा पर उतने ही मजबूत होगे जितने कि शाहशुजा के काल मे थे और इस तरह यह उससे अधिक काल तक स्थायी नही हो सकता था।

पुन कुछ लेखको का विचार है कि लार्ड लारेन्स की यह नीति कि दो दल आपस मे सघर्ष करें और असली शासक की सहायता की जाय, इससे स्पर्धा को आमत्रण मिलता था। पर यह नही समझा जाता कि स्पर्धा तब प्रारम्भ हुई जब शेरअली को

अमीर स्वीकार कर लिया गया और उसका लड़का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया गया। अमीन की महत्त्वाकांक्षा को नकारा गया, अजीम के कारवाई की सूचना दी गयी और उस ब्रिटिश एजेन्ट का जिसने अजीम की सफलता पर बधाइया दी, डाटा गया। अफजल को स्वीकृति भी प्रदान की गयी जब यह लगा कि वह स्थापित हो चुका है। यदि इस प्रकार अवसर पा एसा न किया गया होता तो इसे अधापन ही माना जाता और इससे अफगानिस्तान म ब्रिटिशहिता की हानि भी होती।

मात्र नतिक समथन मौलिक सहायता के अभाव मे बेमानी था। इस तरह का समथन शेरअली को पराजय स विरत न कर सका और न ही इससे अजीम या अफजल को अतिम विजय ही प्राप्त हो सकी। और यह सिद्ध करना कि नैतिक समर्थन खतरनाक था, एक बेकार की बात थी।

सर चाल्स ऐटचिसन ने ठीक ही लिखा है, "किसी भी कीमत पर इतना तो निश्चित ही है कि यह नीति जो लारेन्स ने अपनाई उसको उस समय सामान्य रूप से स्वीकार किया गया। लाड मेयो की नीति भी उसी तरह से चलती ही नहीं रही बल्कि विकसित भी हुई।"[1] लाड मेयो ने भारतीय विद्रोह के नायक के नीति के गुणो को स्वीकार किया और उसी आधार पर अफगान नगरो मे किसी भी यूरोपीय अधिकारी को रेजीडेन्ट नहीं बनाया और न ही उसने अफगान अमीर के साथ आक्रामक या सुरक्षात्मक सधि की। किसी ब्रिटिश सैनिक का अमीर के विद्रोही जनता को दबाने के लिए नही भेजा गया और न ही उसने अफगान राजनीति मे किसी भी व्यक्ति की सहायता की और न हस्तक्षेप किया। आर्थिक दृष्टि से भी आश्वासन के अनुसार 60 हजार पौण्ड दे दिय जाने के बाद और अधिक या वार्षिक रूप से धन अमीर को देने की चेष्टा नही की गयी। मेयो ने भी अमीर को आश्वस्त किया कि उसके पूर्वाधिकारी की नीति को बदला नही जायगा।

अफगानिस्तान की अपनी नीति को न्यायसगत बताते हुए, लारेन्स ने भारत से पदमुक्ति के बाद 'द टाइम्स' को एक पत्र म इस तरह लिखा, 'इधर हम ऐसा सोचने लगे हैं कि अफगानो का हित हम उनसे अधिक समझते हैं।" और उसने बताया कि यह गलत है। उसने दुहराया कि अफगानिस्तान पर अधिकार करना सरल है। पर इस पर्वतीय क्षेत्र वाले इलाके को जिसके निवासी हमेशा लाभपूर्ण स्थिति मे रहते हैं, पर अधिकार बनाये रखना कठिन है इसलिए ऐसी स्थिति में यह बेहतर है कि ब्रिटिश हितो की देख रेख बाहर से ही की जाय और अफगान हित के मामलो को लेकर आग मे न कूद पडा जाय जिससे कठिनाइया सामने आ जाय। लारेन्स ने कही अन्यत्र कहा, "आफगान साहसी, शक्तिशाली और स्वतत्र

1 ऐटचिसन लार्ड लारेन्स पृ० 231।

हैं, जहा वे रहते हैं वह आश्चयजनक रीति से गुरिल्ला युद्ध करने योग स्थिति है, ये लोग विरोध करना तब तक बद नही करेंगे जब तक कि उनकी सफलता की आशा धुधली न पड गई हो, और जब वे पराजित कर दिये जायेंगे तब उनमे वह लचीलापन दिखाई पडेगा जो उन्हे सदा इस युद्ध को जारी करने का उत्साह प्रदान करेगा जब कभी उसके लिए उपयुक्त अवसर आये।"

अफगान सीमा के लिए किलेबदी की भी आवश्यकता न थी। प्रकृति ने इन्हें पहले से ही बडी-बडी चट्टानो, जलविहीन रेगिस्तानो और विद्रोही कबीलो मे यह सब कुछ देखा था। एटचिशन ठीक ही लिखता है कि, "मैं यह निश्चित रूप से कहता हू कि भारत मे अपने शासन-काल को देखकर 'फावड नीति' के द्वारा सफलता की कोई आशा नही की जा सकती।"[1]

भारत मे इस समस्या से जुडा सतुलित और दूर दृष्टि वाला व्यक्ति इस समस्या से लगी कुछ सामाजिक और नैतिक तत्त्व की बातो से नही बच सकता। भारत मे ब्रिटिश थोडे ही थे और ब्रिटिश सैनिक तो और थोडे थे। और यदि सीमा पर अनय होता तो इससे भारत मे स्थापित उनके साम्राज्य की नीव तक पर इसका प्रभाव पडता।

अफगानिस्तान के प्रति लारेन्स की नीति ही सचमुच ऐसी थी जिसके अनुसार काय किया जाना चाहिए था। इसने उस देश म ब्रिटिश हितो की रक्षा की और साथ ही साथ उन्हें अनावश्यक कठिनाइयो से बचाया। लारेन्स के जाने के बाद एक दशक तक यह नीति उसी तरह से ठीक से चलती रही। पर जब इस नीति का परित्याग कर ब्रिटिशो ने अफगानिस्तान म हस्तक्षेप करन का निश्चय किया तो उन्होने अमीर के सर पर अपना रेजीडेन्ट मढने का प्रयास किया। जब उन्होंने देश से कधार को अलग कर वहा अलग से शासक नियुक्त करने की चेष्टा की तो इसका अत अनथकारी हुआ। 1881 के बाद व्यवहारत ब्रिटिशो को लारेन्स की ही नीति पर आना पडा जो 1919 तक चलती रही। राबट्स ने लिखा है कि ब्रिटिशो ने "अफगानिस्तान को मध्यवर्ती राज्य मानकर उसकी अलघनीयता की गारन्टी दी और साथी अफगानो के आन्तरिक मामले म हस्तक्षेप न करने का वचन दिया।"

राबटस आगे कहता है, कि "इसमे सदेह नहीं की सपूर्णता मे लाड लारेन्स की नीति बुद्धिमत्तापूण और दूरदर्शितापूण थी।" उसकी 'निष्क्रियता' चाहे वह 'प्रभुत्वपूण' रही हो या न रही हो वैसे परिपक्व और समझ बूझ वाली थी। कम लोगो को ही सदेह होगा कि वह सही नही था।"[2]

---

1 एटचिसन लाड लारेन्स, पृ० 232।

2 राबट्स पूर्वोद्धत, पृ० 406-11, स्मिथ, आर० बोसवथ पूर्वोद्धत भाग 2, पृ० 484-89।

12

लार्ड मेयो (1869-1872)

मेयो का छठा अर्ल रिचर्ड साउथवेल बोर्क 21 फरवरी 1822 में पैदा हुआ। भारत के गवर्नर जनरल नियुक्त किये जाने के पूर्व वह अनुदार मन्त्रिमंडल की ओर से तीन बार आयरलैण्ड का चीफ सेक्रेट्री रह चुका था। वह इस स्थान को बहुत पसंद करता था। जब डिजरैली ने भारत में उसे लार्ड लारेंस का उत्तराधिकारी बनाया तो अंग्रेजी समाचारपत्रों में उसकी योग्यता की जानकारी के अभाव में इस घोषणा का विरोध किया गया। और इसके शीघ्र बाद जब कि गवर्नर जनरल का पद सचमुच रिक्त हुआ, डिजरैली के अनुदारवादी मन्त्रिमंडल का पतन हो गया और उसके स्थान पर ग्लेडस्टन की उदारवादी सरकार आ गई। इस अवसर पर समाचारपत्रों ने नये प्रधानमन्त्री से अवसर का लाभ उठाते हुए मेयो की नियुक्ति रद्द करने को कहा। पर ग्लेडस्टन ने अपने पूर्वाधिकारी की भावना और निर्णय को महानता से बनाये रखा और मेयो भारत की ओर रवाना हुआ। पर ऐसा करने से पूर्व उसने सर स्टैफर्ड नार्थकोट को लिखा, "मुझे इसका बड़ा कष्ट है कि समाचार पत्र मेरी नियुक्ति का इतना विरोध कर रहे हैं। मैंने इस बड़े पद को बिना सोच विचार के स्वीकार नहीं किया है मैं अति आलोचना झेलने के लिए उद्यत था। पर मैं सोचता था कि मेरी लम्बी जनसेवा मेरे ऊपर बरसने वाले गालियों से मेरी रक्षा करेगी। मुझे इसका कोई मलाल नहीं है और मेरी प्रार्थना है कि मैं शीघ्र ही अपने गाली देनेवालों के समक्ष यह सिद्ध कर सकूं कि वे गलती पर थे।" और इसमें संदेह नहीं कि अपने अल्पकालिक तीन वर्ष के शासनकाल में मेयो ने यह सिद्ध कर दिया कि उसके आलोचक सही नहीं थे।

आन्तरिक सुधार

आर्थिक सुधार

वाइसराय के उच्च पद की शपथ लार्ड मेयो ने 12 जनवरी 1869 ई० को ली। और आन्तरिक प्रशासन के मामले में सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या जिसका मुकाबला उसे करना पड़ा, वह आर्थिक था। उसके भारत आगमन के समय परिस्थितियां भयानक थी। 1857 से पूर्व एक शताब्दी की विजयों और छीना-झपटी ने भारत में ब्रिटिशों के साम्राज्य को इतना बड़ा कर दिया था जितना बड़ा रूस को छोड़कर यूरोप का क्षेत्र था। ब्रिटिश प्रान्तों में 20 करोड़ और सहायक राज्यों में 5

करोड लोग निवास करते थे जिनके भाग्यविधाता ब्रिटिश बन गये। पर यह महान सफलता बिना मूल्य के प्राप्त नही हुई। 1869 70 मे जनता का ऋण 10 करोड 2 लाख स्टलिंग था, इसके अतिरिक्त 9 करोड 1 लाख स्टलिंग का ऋण सरकार ने रेलवे की गारटी के धन के रूप मे तथा कुछ अन्य जनहितकारी कार्यों के लिए लिया। 1868 69 के पूव के 50 वर्षों मे से 39 वर्षों मे घाटा हुआ था। इनमे से मेयो के पद ग्रहण करने का वष तो आर्थिक घाटे की दृष्टि से सबसे भयानक था क्योकि इस वष म 1 करोड एक लाख का घाटा हुआ था। यह घाटा 'साधारण' और 'असाधारण' मामलो पर व्यय के कारण आया था। बजट के आकलन की समस्या भी कम गभीर नही थी क्योकि इसकी रचना म वैसे तो हर एहतियात बरती जाती थी पर परिणाम इसके सदा आशा के विपरीत आते थे। इस तरह 1867 से 1869 के दो वष के बजट ने 35 लाख के बचत का आकलन किया था जबकि अतत घाटा लगभग उतनी ही धनराशि का रहा। निश्चित रूप से आर्थिक मशीनरी म कोई खामी थी जिसके कारण 70 लाख स्टलिंग के बजट आकलन के हिसाब से गलती आ जाती थी। इस कमी को ठीक किया जाना था।

इस तरह लाड मेयो के समक्ष तीन तरह के काय थे। प्रथम तो उसे अपने शासन भार ग्रहण करने के वष की घाटे की समस्या से निबटना था। दूसरे, उसे आर्थिक मशीनरी को ठीक करना था जिससे बचत आकलन के परिणाम गलत न हो। और तीसरे उसे कुछ ऐसे आर्थिक सुधार करने थे जिससे कि देश के भविष्य की आर्थिक स्थिति शक्तिशाली आधार पर आ जाय। उसके प्रारम्भिक प्रयासो को सफलता मिल गई यह इससे सिद्ध है कि आर्थिक क्षेत्र मे पहले ही वष आय और व्यय बराबरी पर आ गये बल्कि थोडा सा लाभ ही रहा। अगले तीन वर्षों मे औसत बचत की दर लगभग 57 लाख का रहा। लाड डलहौजी के जानेके बाद पहली बार लगातार 4 वर्षों तक लाभ का बजट सामने आया।

आर्थिक सदस्य सर रिचड टेम्पुल ने प्रथम बजट बडी सावधानी से 1869 70 मे मेयो के नेतृत्व म तैयार किया जिसमे 48,263 पौण्ड के लाभ का आकलन किया गया। पर हर सावधानी के बावजूद यह देखने में आया कि तत्कालीन मशीनरी इच्छित परिणाम प्राप्त करने मे पूणतया असमथ है। बजट प्रस्तुत करने मे शीघ्र बाद ही टेम्पुल इग्लैण्ड चला गया और इससे जल्दी ही मेयो का सदेह यह हो गया कि बजट का आकलन एक बार पुन गलत होने जा रहा है। उसने इसके पुनपरीक्षण हेतु आदेश दिया जिससे यह पता चला कि उपरोक्त बचत की जगह पर उसे 1[illegible] लाख, 50 हजार पौण्ड का घाटा होने जा रहा है। पर सपूण इच्छाशक्ति के साथ उसने घोषणा की कि, "मैं इसके लिए सकल्पबद्ध हू कि पुन घाटा न हो चाहे इसके लिए हमे सेना मे ही कटौती क्यो न करनी पडे या असैनिक प्रतिष्ठानो अथवा सावजनिक निर्माणो को ही क्यो न रोकना पडे।" और रिचड

टेम्पुल की ही भांति योग्य जान स्ट्रैची की सहायता से उसने इस समस्या पर दो ओर से आक्रमण करने का निश्चय किया। प्रथम तो पूरे वर्ष प्रतीक्षा करने के स्थान पर घाटे को तुरन्त पूरा किया जाय और द्वितीय इस बार होने वाली इस स्थायी कठिनाई को ही क्या न समाप्त कर दिया जाय।

प्रथम दिशा मे काय करने हेतु लाड मेयो ने सावजनिक हिता मे भी कटौती की और उन विभागो के अनुदान मे कमी कर दी जिनमे पिछले दशक मे काफी काम हुआ था और कुछ समय के लिए रुक सकते थे। इससे उसकी लगभग 11,50,000 पौण्ड की बचत हो गई। और शेष घाटे के लिए "उसने वष के मध्य ही पहले से अधिक कर लगा दिये।" आयकर की दर बढा दी गई तथा बम्बई और मद्रास मे वष के उत्तराद्ध मे नमक पर कर बढा दिया गया। इससे उसे 5,00,000 पौण्ड की औसत आय और प्राप्त हो गई। इस तरह 1869 70 का घाटा पूरा हुआ।

पर ये कदम असाधारण थे, दोनो सावजनिक निमाण के क्षेत्र मे कटौती तथा वष के मध्य मे और कर का आरोपण। समस्या का स्थायी समाधान ढूढना था। और मेयो ने इसके लिए सुधार किये जिन्हे तीन भागो मे बाटा जा सकता है। प्रथम, जो उसने केन्द्र की आर्थिक मशीनरी को ठीक करने के लिए ही किया। द्वितीय, वे कदम जिनसे प्रातीय सरकारें अपने बजट प्रस्तावो को इस तरह से बनाये जिससे कि घाटा न हो। आर्थिक उत्तरदायित्वो के बढने के साथ उन्हे और आर्थिक शक्तिया भी प्राप्त होती थी जो उन्हें अभी तक प्राप्त नही थी। और तीसरे, जिसका उद्देश्य यह था कि एक स्थायी और विधिविहित ऐसी व्यवस्था स्थापित की जाय कि राजस्व और व्यय मे एकरूपता आ जाय।

केन्द्रीय मशीनरी का सबसे गभीर दोष यह था कि आर्थिक विवरण रोजाना प्राप्त होता था, उसे बुद्धिमत्ता से प्रयुक्त नही किया जाता था तथा इसकी कोई उचित व्यवस्था भी नही थी कि इनका सतक परीक्षण अथवा आकडो की तुलना हो सके। इसम स्थानीय सरकारो से समय आकलित बजटो के न प्राप्त होने से समस्या और बढ जाती थी। मेयो ने कुछ ऐसी व्यवस्था की जिससे कि निश्चित और व्यवस्थित आधार पर आकडो का वर्गीकरण हो गया और अपने विभाग म इसकी व्यवस्था के उपरान्त उसने इसके कडे निर्देश भेजे कि स्थानीय सरकारें अपना बजट आकलन समय पर भेजें।

आर्थिक हस्तातरण—इस सुधार का दूसरा भाग अधिक महत्त्व का था क्योंकि इसने एक ऐसी परिस्थिति का प्रारम्भ किया जिसने अतत देश मे पूण आर्थिक हस्तातरण ला उपस्थित किया।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण का प्रश्न जो सरकार के सवैधानिक स्तर के विकास से अति निकट से सबधित है, सचमुच आधुनिक भारतीय इतिहास के अध्ययन का बहुत

रोचक विषय है। ईस्ट इंडिया कम्पनी चूंकि एक व्यापारिक संस्था थी इसलिए वह ईर्ष्यालु स्तर पर सारी शक्ति केन्द्र के हाथ में ही रखना चाहती थी। इस क्षेत्र में सामान्य अवधारणा ही केन्द्रीयकरण की थी जो 1833 के चार्टर एक्ट में पर्याप्त ऊंचाईयां छू गई। पर पराकाष्ठा तो विद्रोह के बाद ताज के शासन हाथ मे लेने पर दृष्टिगोचर हुई जब आर्थिक विषमता की स्थिति से निपटने के लिए, जो युद्ध और अन्य क्षेत्रों में व्यय के कारण सामने आ गये थे, प्रांतों पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली। यह स्थिति तबतक चलती रही जब तक कि लार्ड मेयो ने इस कमजोरी को पहचान नही कर ली और इस क्षेत्र में उल्टी गाडी चलानी प्रारम्भ नही कर दी गई। इसके सम्बन्ध में इसके पूर्व जो कुछ हुआ, उसका विवरण यहां वांछनीय है।

हम अपनी बातचीत 1833 के चार्टर ऐक्ट से प्रारम्भ कर सकते हैं जिसने प्रांतों को केन्द्र की पूर्व अनुमति बिना कर लगाने व व्यय करने पर रोक लगा दी। स्थानीय सरकारों को कोई शक्ति नही प्रदान की गई। स्ट्रैची ने स्थिति का विवरण निम्न शब्दों में दिया है, "ब्रिटिश भारत के हर प्रांतों का राजस्व एक खात का धन माना जाने लगा जिसमे से व्यय कौंसिल में गवर्नर जनरल द्वारा ही अधिकृत किया जा सकता था यदि यह आवश्यक हो कि दो स्थानों के बीच की सडक के मरम्मत के लिए 20 पौण्ड व्यय करना हो, या 10 शिलिंग प्रतिमास पर नौकर रखना हो तो आदेश हेतु औपचारिक रूप से भारत सरकार के पास इसकी सूचना भेजनी पडती थी।" नया कार्यालय खोलने, वेतन देने हेतु, ग्रेच्युटी या भत्ता देने हेतु प्रेसीडेंसी सरकार को कोई अधिकार नही प्राप्त था। इस संबंध में गवर्नर जनरल को ही अन्तिम अधिकार प्राप्त था जिसके अनुमति से ही ये कार्य हो सकते थे।

डॉ० विशेश्वर प्रसाद ने लिखा है कि 1857 के महान विद्रोह तक तो केन्द्रीय नियंत्रण पर्याप्त था पर "व्यवहार में इसमे संपूर्णता नही थी। व्यय पर पकड मजबूत करने हेतु और इस तरह शासन के प्रत्येक विभाग का प्रभावी निरीक्षण विद्रोहोपरान्त की आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण आवश्यक हो गया।" और यह स्थिति तबतक चलती रही जबतक केन्द्र के पास शक्ति बनी रही और "स्थानीय सरकारों को एक-एक पाई के अपने काम के लिए इस पर निर्भर करना पडा।"[1] इसके तमाम कारण थे।

साम्राज्य की आर्थिक दुर्दशा के लिए केन्द्र ही उत्तरदायी था। लगातार होने वाले युद्धों ने बजट को इतना प्रभावित किया था कि पिछले 25 वर्षों में से 18 वर्ष घाटे के रहे थे। इसके अतिरिक्त प्रशासन की आवश्यकताएं भी प्रतिदिन बढती गई। 'ब्रिटिश सप्रभुता के घेरे मे या विदेशी क्षेत्रों के साथ राज्यों से राज-

1 विशेश्वर प्रसाद द आरिजिन आफ प्राविन्सियल आटोनामी (1941), पृ० 30।

नैतिक सबध के लिए एक उच्च नियत्रण की आवश्यकता थी।"[1] पूरे देश मे प्रशासकीय एकरूपता की आवश्यकता थी। आर्थिक क्षेत्र का उत्तरदायित्व केन्द्र का सेक्रेट्री ऑफ स्टेट के प्रति था जिसका भारतीय मामलो मे नियत्रण आवागमन के साधन के वृद्धि के साथ बढता ही गया। केन्द्र ब्रिटिश पूजीपतियो की साख और विश्वास गवाना भी नही चाहता था जिनका भारत के सावजनिक निर्माण मे धन और लगाते रहना आवश्यक था। यह भी आवश्यक था कि उचित व्यवस्था की जाय और उचित सावधानी बरती जाय जिससे कि भारत मे विद्रोह जैसी स्थिति पुन न उत्पन्न हो जाय। और फिर जैसा कि सर एच० एन० डूरण्ड ने लिखा कि जब "जनता का नियत्रण पूणतया भुला दिया जाता है तो जो नियत्रण शेप रह जाता है वह केवल केन्द्रीय सरकार का रह जाता है।"[2] यदि जनता के पास शक्ति नही थी तो प्रान्तो को भी यह नही प्राप्त हो सकता था। ये कारण थे जिन्होने आर्थिक केन्द्रीयकरण की आवश्यकता का अनुभव कराया।

पर इस व्यवस्था मे दोष भी थे जिन्हे अधिक दिनो तक बर्दाश्त नही किया जा सकता था। चूकि प्रान्तो को निश्चित उद्देश्यो के लिए निश्चित अनुदान प्राप्त होते थे इसलिए वे प्रयास करते थे कि अनुदान जो प्राप्त हो वे आवश्यकता से अधिक हो। और एक बार अनुदान प्राप्त हो जाते तो उनका व्यय प्रारभ हो जाता जिससे कि मितव्ययता न हो और पूरा धन व्यय हो जाय। केन्द्र के लिए यह भी सभव नही था कि वह प्रान्तो के लम्बे चौडे व्ययो की छान-बीन करें। छानबीन का बोझ अत्यधिक बढता जा रहा था और वह केन्द्र के नियत्रण के बाहर हो रहा था। बहुत सी समस्याओ से पूण विस्तृत देश था और इसके अतिरिक्त भी बहुभाषी जनता और उसके अलग-अलग तरह के सामाजिक व आर्थिक ढाचे। केन्द्र के लिए प्रान्तीय आवश्यकताओ, विशेषकर जो मुख्यतया अथ से सबधित थी, को विस्तार स समझाना अत्यधिक कठिन था। ऐसी व्यवस्था म आवश्यक रूप से देरी होती थी तथा केन्द्र और प्रान्तो म अनबन भी हो जाती थी क्योकि केन्द्र कम देना चाहता था और प्रान्त अधिक प्राप्त करना चाहता था। हर प्रान्तो के साथ गुण के आधार पर विचार भी नही होता था। सबसे अधिक कठोर गवनर सबसे आराम से रहता था जबकि सतोषी और अच्छे लोग परेशान होते थे। यह सामान्य शिकायत थी कि केन्द्र स्थानीय विद्वेष से प्रसन्न रहता था क्योकि बगाल मे इसकी विशेष रुचि होती थी। यह गलत भी नहीं था। 1853 तक सुप्रीम कौंसिल म मद्रास से एक ही सदस्य रखा गया था जबकि बम्बई स वह भी नही। इतना ही नही, प्राय स्थानीय

1 विशश्वर प्रसाद द आरिजिन आफ प्राविंसियल आटानामी पृ० 18।
2 7 अक्तूबर 1867 का मिनिट द्वारा सर एच० एम० डूरड ईश्वरी प्रसाद पृ० 96 द्वारा उद्धृत।

सरकारो से यह कहा जाता कि वे अपनी व्यवस्था बगाल की तरह कर लें जिसका विरोध किया जाता था। इसके अतिरिक्त मद्रास का आरोप था कि उत्तरी प्रान्तो के प्रति केन्द्र अधिक लगाव रखता है। और प्रान्तो का यह कहना था कि जबतक व्यय पर से केन्द्र का नियत्रण हटेगा नही, कोई भी स्थानीय उत्थान सभव नही होगा।

1852 53 मे जब एक ससदीय जाच पडताल इस सबध मे की गयी तो प्रत्येक गवाह ने यह तक दिया कि आर्थिक केन्द्रीयकरण उचित नही है और उसने इस पर जोर दिया कि स्थानीय सरकारो को अधिक शक्ति प्रदान की जानी चाहिए। पर इस ओर कोई ध्यान नही दिया गया और 1858 के भारत सरकार ऐक्ट ने यह घोषित किया कि, 'भारत के राजस्व का व्यय कौंसिल मे सेक्रेट्री आफ स्टेट के नियत्रण मे ही होगा और इस तरह के राजस्व का किसी तरह का प्रयोग कौसिल मे बहुमत के मत के बिना नही हो सकेगा।" यदि भारत सरकार की शक्ति इस तरह सीमित कर दी गयी तो प्रान्तीय सरकारो की शक्ति तो हो ही नही सकती थी।

पर विकेन्द्रीकरण की ओर प्रयास जारी रहा और विल्सन, लैंग और सर जान स्ट्रैची ने इस मामले मे महत्त्वपूण भूमिका अदा की। अतत भारत सरकार पर भी कुछ प्रभाव पडा और 1870 मे लाड मेयो ने इस दिशा मे कुछ कारवाइया की। 14 दिसम्बर 1870 के गवनमेण्ट आफ इडिया के प्रस्ताव मे घोषित किया गया कि, "यह उचित ही है कि जहा तक सभव हो प्रशासकीय विकास के लिए जितने धन की आवश्यकता हो, यह उसी अधिकारी के हाथ मे होना चाहिए जिनका तात्कालिक काय उसे पूरा करने का हो।" और इसीलिए प्रान्तो को कुछ अधिकार हस्तातरित कर दिये गये।

प्रान्तो को कुछ क्षेत्रो मे व्यय का अधिकार प्रदान किया गया। उदाहरणाथ पुलिस, शिक्षा, रजिस्ट्रेशन, जेल, मेडिकल सेवायें, छपाई, सडकें, असनिक भवन एव सावजनिक उत्थान के काय। इन स्रोतो से प्राप्त राजस्व के अतिरिक्त इन्हें अपने प्रशासन के लिए कुछ और धन प्राप्त होता तथा जिसे प्रान्त स्वय स्थानीय कर लगाकर उस स्थिति मे बढा सकता था, यदि उनके यहा घाटा हो और यदि वे अपने व्यय मे कटौती नही करना चाहते थे। पर जो धन व्यय न हो पाता वह केन्द्र का हो जाता। वैसे यह तब भी प्रान्त के अधिकार मे पडा रहता। स्थानीय सरकार को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वह 250 रुपये महीने तक के मासिक वतन पर नियुक्तिया कर सकता है।

इन कदमो को उठाकर गवनर जनरल ने यह आशा की कि "इससे सावधानी मे वृद्धि होगी और व्यय मे कमी भी, इससे आर्थिक व्यवस्था मे निश्चितता के तत्त्व का आगमन होगा जिसकी अभी तक कमी रही होगी। और इससे केन्द्र और

प्रान्तीय सरकार के बीच काय और भाव मे एकरूपता उत्पन्न होगी जिसकी कि अभी तक कमी थी।" इससे आशा थी कि स्थानीय सरकारें अपने सुधार कार्यो म गभीर हो जायेगी, म्युनिसपल सस्थाओं को जन इच्छा के अनुरूप शक्तिशाली बनायेंगी तथा यूरोपीयो व भारतीयो के बीच सपर्क मे वद्धि करेंगी।

इसमे सदेह नही कि उपरोक्त आशाए कुछ सीमा तक पूरी हो गइ। स्थानीय सरकारो ने अपना उत्तरदायित्व ध्यान से अनुभव करना प्रारभ कर दिया। इससे व्यय मे भी बचत हुई और केन्द्र की कठोर बोझिल छानबीन की आवश्यकता भी कम हो गई। सेकेट्री आफ स्टेट ने योजना को स्वीकृति प्रदान कर दी। पर उसने यह स्पष्ट रूप से बता दिया कि यह व्यवस्था केवल प्रायोगिक है जिसको "सिद्धात रूप मे या विस्तार मे परिवर्तित किया जा सकता है।"

पर यह प्रथा अपनी उन बुराइया सहित जिन्हें हटाया नही गया था, अब भी चलती रही। स्थानीय सरकारो को अब भी अपना लेखा जोखा और व्यय अनुमान आडर और जाच के लिए रखना पडता था। और अब केन्द्रीय सरकार को अपनी आवश्यकता बतान मे और उसे सतुष्ट करन मे अधिक कठिनाई नही होती थी। यह प्रविधान कि अतिरिक्त धन केन्द्र का हो जायगा, स्थानीय सरकार को धन की बचत मे कोई सहायता नही करता था। ये प्रस्ताव कि वे 250 रुपये महीने के वेतन तक की नियुक्तिया कर सकते थे, कोई घमड करन की चीज नही थी। प्रान्तो को व्यय के मद ही प्रदान किये गये, उन्ह आय के स्वतत्र स्रोत नही प्रदान किये गये। इससे शक्तिशाली और अधिक विकसित प्रान्तो को तो लाभ हुआ पर कमजोर प्रान्त "अपनी कमखर्ची दबाव डालने की नीति के कारण और पिछडे पर को लेकर" दडित हुए। 1870 71 के वष के आधार पर ही अनुदान प्रदान किये गय जो एक आर्थिक कठिनाई का वष था। आवश्यकता के अनुसार कोई अतर पडना नही था। इस व्यवस्था मे प्रत्येक प्रान्त को अपनी आय बढाने के लिए नये कर लगाने पडते थे जिसका प्रभाव भूमि पर पडता था। पुन सर चाल्स ट्रेवेलियन ने लिखा कि, "स्थानीय सरकार को सौपी जानेवाली सेवाओ और केन्द्र द्वारा अपने पास रख ली जानेवाली सेवाओ मे कोई आत्म-समजित सिद्धांत का प्राविधान नही किया गया है या दोनो के धन के बीच ही।" जबकि एक के पास लाभ की स्थिति थी व दूसरे के पास घाट के अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं था और वह भी समजन सभव नही था।

फिर भी नयी योजना जो चालू की गयी उसके अलग-अलग लाभ थे। इसे हम ऊपर देख आय हैं। इस योजना की महत्ता यह नही थी कि आर्थिक विकेन्द्रीकरण को इसने आसमान तक पहुचा दिया। महत्ता यह थी कि इस दिशा मे कदम बढ चुके थे। मेयो ने काय चलते रहने देने की प्रक्रिया प्रारभ कर दी थी जो अत तक अपने गन्तव्य पर निश्चित रूप से पहुचता।

मेयो के सुधार का तीसरा पक्ष व्यय और राजस्व के समजन से सबधित था। पहले तो इसे फिजूलखर्ची रोककर और अनावश्यक लोगो को सेवामुक्त करके किया गया तथा दूसरे कुछ नये कर लगाकर। व्यय के "प्रत्येक मद की ठीक से जाच-पडताल की गयी तथा इसे निम्नतम सीमा तक ले आया गया। पर इतना नही कि काय-क्षमता इससे प्रभावित हो। इस कम व्यय की पूर्ति आयकर के अतिरिक्त राजस्व से की गयी जिसे लाड लारे स पहले ही प्रस्तावित कर चुका था। मेयो ने ही इसे लागू किया। कुछ प्रान्तो मे नमक कर समान कर दिया गया। नमक-पूर्ति के नये साधन भी विकसित किये गये और इसके माल भाडे मे कमी की गयी। इसका मूल परिणाम यह हुआ कि "आयकर के बावजूद, अपने तीन वप के शासन काल म जो राजस्व आरोपण उसने किया, उसका औसत उसके वाइसरायकाल से और 1868 69 से 10 लाख से कम था। दूसरी ओर व्यय का औसत उसके अपने वाइसराय के काल से एक वप पूव से 50 लाख कम था।"[1]

भारत सरकार के अथ सचिव ने मेयो के आर्थिक सुधारो के सामान्य परिणामो की चर्चा इस तरह से की है, "उसने गभीर घाटा उत्तराधिकार मे पाया और पर्याप्त मुनाफे मे इसे बदला। उसे व्यय अनुमान आदतन अविश्वसनीय ही मिले और उसने इन्ह खूब विश्वस्त बनाकर छोडा। उसे लेखा-जोखा बकाये के रूप मे मिला और आकडे अधूरे पर उसने उस सही और पूरा किया। उसे केन्द्र और स्थानीय सरकार के सबध असतोपजनक मिले। पर उसने स्थानीय सरकार को सौहाद्र से काम करने की स्थिति म किया। उसे अथ विभाग सामान्यतया ढीले-ढाल स्थिति के मिला था जिसे उसने सपूण रूप से कायक्षम बनाया।"

अन्य सुधार

उसके अन्य सुधारो म जिनम से अधिकतर अधिक स अधिक धन बचाने के लिए किये गये थे, कुछ का सबध सेना से था। मेयो की नीति का मूल मत्र यह था कि लोगो को कम से कम नौकरी से हटाकर व्यय मे कमी की जाय और आर्थिक क्षेत्र मे इसका दुष्प्रभाव भी न हो। उसका विचार था कि ऐसा अलग-अलग रेजीमेण्टो को एक मे मिलाने से सभव है क्याकि इससे अलग-अलग केन्द्रा म कटौती हो जायेगी और लोगो को नौकरी से हटना भी नही पडेगा। इस मद मे उसका उद्देश्य 9,48,253 पौण्ड प्रति वप बचाने का था। पर गृह सरकार ने इस सुधार को करके 5,91,440 पौण्ड की बचत कर ली। पर इस व्यय मे कमी के बावजूद काय-क्षमता मे बढोतरी की गई क्याकि उसके काम मे सेना को बेहतर अस्त्र प्रदान

1 हण्टर, डब्लू० डब्लू० द अर्ल आफ मेयो, पृ० 143 155।

किये गये। भारत के ब्रिटिश सैनिकों के बच्चों और अनाथों के लिए भी प्रावधान किया गया।

भारतीय समस्याओं की सही सूचना के लिए मेयो ने पूरे देश की 21,763 मील की यात्रा की। उसने पता लगाया कि सार्वजनिक निर्माण में फिजूलखर्ची का एक कारण ऋण के धन से निर्माण कार्य करना है। उचित देखभाल की कमी इसका दूसरा कारण है। इसके सुधार के लिए उसने सिद्धान्त लागू किया कि निर्माण के लिए पहले धन की व्यवस्था की जाय और देख भाल में भी सुधार किया जाय।

रेलवे के कार्य को पूरा करके और सिंचाई व्यवस्था को ठीक करके दुर्भिक्ष के अवसर पर जनता की रक्षा की चेष्टा भी की गई। पुरानी प्रथा के अनुसार रेलवे का निर्माण प्राइवेट कंपनियां भारत सरकार के गारंटी पर करती थी। जैसा कि अर्गिल के ड्युक ने लिखा, "धन राज्य के साख और अधिकार पर एकत्रित होता जिनमें 5 प्रतिशत की गारंटी दी जाती। शेयर होल्डरों का कोई जोखिम नहीं उठाना पड़ता था, सरकार के लाभ की हर आशा धूमिल ही रहती थी और हानि के लिए अधिक अवसर रहता था।"[1] व्यय अधिक होता था। एक मील के रेलवे लाइन के निर्माण पर 17,000 पौण्ड व्यय होता था। लार्ड मेयो ने राज्य रेलवे की प्रथा प्रारंभ की जिसके अंतर्गत 5 प्रतिशत के स्थान पर सरकार ने 3 प्रतिशत से 4 प्रतिशत ब्याज पर धन एकत्रित किया और प्रति मील रेलवे निर्माण में भी भारी कटौती की गई।

गंगा नहर बढ़ाई गई और 17 वर्ष के बाद पहली बार इसे बोझिल कामों की श्रेणी से अलग किया गया। मेयो ने सिंचाई की एक नयी पद्धति प्रारंभ की जो अलीगढ़ के पास गंगा से प्रारंभ हुई। इसके द्वारा इलाहाबाद से फतेहगढ़ के बीच दोआब क्षेत्र की सिंचाई होनी थी। यह चेष्टा भी की गई कि शारदा नहर के निर्माण द्वारा अवध के पश्चिमी जिलों और रोहिलखण्ड के अर्द्ध-पूर्व क्षेत्र को दुर्भिक्ष और सूखे से मुक्त कराया जाय। इसी उद्देश्य से पश्चिमी रोहिलखण्ड के लिए गंगा से नहरें निकालने की योजना बनायी गई। लोअर जमुना नहर का कार्य तेज किया गया, पश्चिमी जमुना नहर को पर्याप्त विस्तार देने के लिए योजना बनी और यह योजना बनी कि जमुना का पानी दिल्ली के पश्चिमी क्षेत्र की सिंचाई के लिए ही लाया जाय। ये सभी योजनाएं सक्रेटरी आफ स्टेट ने स्वीकार कर ली। साथ ही इसी तरह की योजनाएं गोदावरी और सोन में भी प्रारंभ की गई। और बहुत से सार्वजनिक उपयोगिता के कार्य विभिन्न प्रान्तों में आगे बढ़ाये गये।

---

1 देखें हंटर पूर्वोद्धत मलेट वर्नान टामस जार्ज अर्ल आफ नार्थब्रुक पृ० 19 अम्बेदकर, डा० आर० इवोल्युशन आफ प्राविंसियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया।

शिक्षा के क्षेत्र मे लाड मेयो ने 'निस्पदन सिद्धान्त' को पसद नही किया जिसके अतगत यह सोचा गया कि उच्च शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए जिससे कि वे जो थोडे लोग शिक्षा प्राप्त करेंगे उनसे होकर यह शिक्षा छन छनकर जनता तक पहुच जायेगी। मेयो ने स्वय अपने एक मित्र को लिखा, "करोडा लोगो तक ज्ञान पहुचाने के लिए कुछ भी नही किया गया है। बाबू इसे कभी नही करेंगे। आप उन्हे जितनी ही शिक्षा प्रदान करेंगे वे उतना ही आत्मकेन्द्रित हो जायेंगे और अपने बढे हुए ज्ञान को आतक का साधन बना लेंगे।' मेयो ने जोर दिया कि इस देश में प्रान्तीय शिक्षा देशी और ग्रामीण स्कूलो से जुडी होनी चाहिए और कुछ वर्गो जैसे मुसलमानो के लिए विशेष सुविधाए प्रदान की जानी चाहिए। यह प्रयास भी किया गया कि भारत मे यूरोपीयो मे गरीबो की शिक्षा के लिए भी कुछ किया जाय। भारतीय राजाओ के बच्चो की शिक्षा के लिए विशेष व्यवस्था की गई जिससे कि वे अपनी प्रजा के भाग्य विधाता के रूप मे अधिक अच्छा काय कर सकें।

लाड मेयो के काल ही मे उसके आदेश से भारत मे प्रथम जनगणना की गई। 'स्टेटिस्टिकल सर्वे आफ इडिया' का सगठन किया गया जिसे जनता के सामाजिक और आर्थिक जीवन के विषय मे पता लगाना था। कृषि और व्यापार विभाग की स्थापना की गई जिसे व्यापार और कृषि की देखभाल करनी थी। इसके कत्तव्यो म यह भी था कि वे कृषको की भूमि के साधन की वृद्धि के लिए उन्ह धन सुलभ करायें और सिंचाई की व्यवस्था करायें। इस विभाग को प्रान्तीय जगल की भी देखभाल करना था।

स्थानीय स्व शासन

लाड मेयो को स्थानीय स्व शासन के विकास मे रुचि थी। 1870 म उसके प्रस्ताव का, जो प्रान्तीय अथ से सबध रखता था, उसके ही शब्दो मे, एक उद्देश्य यह था कि यह "पूणतया और ईमानदारी से स्व शासन के अवसर का विकास करेगा, नगरपालिका सस्थाओ को पुष्ट करेगा, देशी और यूरोपीय लोगो को एक दूसरे के निकट लायेगा और पहले से अधिक प्रशासकीय मामलो मे भी परिवतन करेगा।" इसके मूल उद्देश्य मे सक्षेप मे इस तरह स्पष्ट किया गया, "इसका उद्देश्य अनेक लोगो और जातियो मे अच्छे प्रशासन की व्यवस्था ह।" सक्षेप मे पहले की दशा और मेयो द्वारा किये गये परिवतन का सक्षिप्त अध्ययन यहा प्रस्तुत किया जा सकता है।

"वैसे तो काय-क्षमता के हित म स्थानीय सस्थाओ पर केन्द्रीय नियत्रण बढ सकता है, पर प्रजातत्र के हित के लिए एक शक्तिशाली स्थानीय स्व शासन

व्यवस्था अति आवश्यक है।"[1] और यह बात कहीं पर इतने उचित ढग से नही समझी गई जितना कि भारत के हिन्दू युग मे। लिंडस ने लिखा है कि "ब्रिटिश भारत मे स्थानीय स्व शासन की कहानी हमारे समक्ष उस प्रयास को प्रस्तुत करती है जिसके अतगत सस्थाओ की हर अच्छाई को ले लिया गया और आवश्यकतानुसार यदि इगलैण्ड मे वह लाभदायक रहा तो यहा पर उस पुन आरोपित कर दिया गया।"[2] इस प्रयास मे ब्रिटिश प्राय आधे मन मे काय करते जिससे स्थिति सुधारने की जगह पर बिगड जाती।

प्राचीन भारत के गावो म आत्मनिभरता और भाई चारे की भावना व्याप्त थी। गाव के ही लोग छोटे से बडा सभी काम मिल जुलकर करते थे। प्रत्येक गाव की अपनी अपनी पचायत सरकार होती थी जो कायपालिका और न्यायपालिका दोनो के अधिकार अपन पास रखती थी। इसका प्रधान मुखिया होता था। इसके अतिरिक्त लेखा-जोखा देखने वाला, एक चौकीदार तथा एक शिक्षक होता था। गाव के अधिकारी और कलाकार गाव की उपज का कुछ भाग प्राप्त करते थे या उन्हे कुछ भूमि मिली होती थी। मुगल काल म तो इन्हे वेतन भी दिया गया। प्रत्येक काय मे पचायत का निणय प्रधान होता। इनकी विशेष बात यह थी कि ये कोई बात बहुमत से नहीं तय करते थे बल्कि बातचीत से तय करते थे। पच परमेश्वर मे विश्वास ही नही किया जाता था बल्कि इस पर चला भी जाता था।

पर जब ब्रिटिश शासन प्रारभ हुआ उस समय तक शासक और ग्रामीणो का सब ध पूण तया आर्थिक हो गया था। मोरलैण्ड[3] ने लिखा है कि ग्रामीणो पर अवैधानिक वसूली से बडा दबाव डाला जाता और उनके साथ कठोर व्यवहार किया जाता जिसके कारण धीरे धीरे गाव ही बर्बाद हो जाता। इस तरह ब्रिटिशो को तो इसके अवशेष ही मिले। इसे ही उन्हे जितना सभव हो बेहतर बनाना था।

जहा तक 'सरल बोड' व्यवस्था का प्रश्न था गाव के ऊपर सभी चीजें इगलैण्ड से आयात करनी थी। पुरानी व्यवस्था मे गावो और ऊचे अधिकारियो के बीच सबध सूत्र का आधार राजस्व के अलावा कुछ था ही नही। पर अब इस सबध को अपर्याप्त मानकर नय सबध की तलाश करनी थी। इसके मुख्य सिद्धात जो बाहर से आयातित थे उनकी आशा थी कि यदि वे इगलैण्ड मे सफल हैं तो यहा क्यो नहीं हो सकते। वैसे आधे तौर तरीको से इसे अपनाया गया पर आशातीत सफलता नही मिली। तरीका वह अपनाया गया जो यूरोप महाद्वीप मे अपनाया गया

1 शर्मा एम० पी० लोकल सल्फ गवनमेंट इन इडिया पृ० 8।
2 लिन्डसे ज० एच० कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया भाग 6, प० 511।
3 मोरलण्ड द अग्रेरियन सिस्टम आफ माडर्न इडिया अध्याय 8।

जिसके अतगत स्थानीय सस्थाए कठोरता से कमचारियो द्वारा नियत्रित होती थी।

1870 से पूर्व विकसित यह व्यवस्था सभी जगह समान नही थी। जिस तरह से विभिन्न स्थानीय सरकारो के काय का स्वभाव था, वसे ही स्थानीय लोगो का जीवन और उनकी दशा भी थी। इस तरह प्रत्येक प्रात मे अपने अपने ढग की ग्रामीण सस्थाये विकसित हो गईं। उदाहरणार्थ बम्बई मे बम्बई कौंसिल द्वारा पारित 1869 के एक्ट 3 के अनुसार बम्बई सरकार को इसके लिए अधिकृत किया गया कि वह स्थानीय सावजनिक उपयोगिता के लिए धन की व्यवस्था करे तथा इस धन के उचित व्यय के लिए स्थानीय समितिया बनाये। इस तरह की समितिया शीघ्र ही प्रत्येक जिले मे एक एक बनाई गई जिसके नीचे तालुको और जिला सब डिवीजनो मे इनका निर्माण हुआ। इनमे से प्रत्येक मे नामित सदस्य भी रहते थे जिसका नेतृत्व स्थानीय अधिकारी करता था। इनके अधिकार मे काफी धन राशि व्यय हेतु रखी जाती थी।

बगाल मे दूसरी ओर सरकार ने 1816 के रेग्यूलेशन 19 के तथा 1816 की धारा 6 के अधीन फेरी की व्यवस्था सभाली। इसमे होने वाली बचत से स्थानीय जनहितकारी व उपयोगी काय जैसे सडक और पुलो के निर्माण पर व्यय किया जाता था। प्रत्येक जिले की आवश्यकता के अनुमान के लिए मजिस्ट्रेट के नेतृत्व मे स्थानीय समितिया बनाई गई जिससे कि अनुदानित धन का सही प्रयोग हो। पर इन समितियो को स्वय धन व्यय करने का अधिकार प्रदान नही किया गया।

देश के कई भागा मे जनहित के कार्यो के लिए भूराजस्व व्यवस्था होते समय ही एक निश्चित कर लगाकर धन एकत्रित किया गया। इस तरह से एकत्रित धन-राशि जिलाधिकारिया द्वारा व्यय की जाती थी जिनकी सहायता के लिए भारतीय और अग्रेजो की मिली जुली समितिया होती थी। इनके प्रस्ताव पर काय किये जाते थे।

इस तरह 1870 से पूव वैसे तो ग्रामीण समितिया स्थापित करने की चेष्टा की गई जिसका उद्देश्य सावजनिक उपयोगिता के काय करना था, पर ये समितिया न तो शक्तिशाली थी और न प्रतिनिधित्व वाली। न ही पूरे देश मे उनकी रचना एक तरह की होती थी और न उनके पास धन ही पर्याप्त था। इस दिशा मे कुछ काय मेयो के काल मे किये गये जिसका आधार था उसका 1870 का प्रस्ताव।

इस प्रस्ताव की महत्वपूण बात यह थी कि रूस ने सफाई, मेडिकल सुविधा और शिक्षा जैसे स्थानीय विषया पर जोर दिया था जिसका विकास स्थानीय सरकारो, स्थानीय सस्थाओ और स्थानीय करो द्वारा किया जाना चाहिए। प्रातीय

सरकारो ने शीघ्र ही पहल की और जल्दी ही ये स्थानीय कर व चुंगिया वैधानिक हो गय। इन्हे वहा भी जोड दिया गया जहा ये थे भी नहीं। पूरे देश म जिला समितिया बनाई गई, ठीक उसी तरह जैसे बम्बई प्रसीडेन्सी में थी ,जो इस धन का प्रयोग करती थीं। वैसे तो बगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल मे भारतीय सदस्यो ने इन स्थानीय करा का विरोध किया था। यहा पर इसे केवल सडक निर्माण के लिए, जो दुर्भिक्ष प्रशासन के लिए आवश्यक था, व्यय किया गया। शिक्षा और अन्य उद्देश्या के लिए यहा इससे धन नही कम किया गया।

इस तरह पहली बार 'रूरल बोर्ड' की रचना की ओर निश्चित वैधानिक कदम उठाये गये। वैसे जो इस तरह से समितिया बनी थी ये अभी भी लोक तात्रिक और प्रभावी नही थी। सरकारी कर्मचारियो द्वारा नियन्त्रित और सचालित ये सस्थायें उच्च सरकारी अफसरो की ओर प्रेरणा के लिए देखती थी न कि जनता की ओर। सदस्य भी इन कारवाइयो मे अधिक रुचि न लेते क्योकि वे जन प्रतिनिधि तो थे नही और न उनकी सेवा करने की उनकी मनो भावना ही थी। उनकी बैठको मे उपस्थिति कम होती और इसीलिए जिलाधिकारियो के काय को हल्का करने के स्थान पर इसके बोझ को ये बढा ही देते। मेयो प्रशासन-काल मे स्थानीय स्व शासन की सस्थाओ के विकास के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये गये।

मेयो के कायकाल म एक अन्य महत्त्वपूण घटना 1872 का बम्बई म्युनिसिपल ऐक्ट था जिसने नगरीय प्रशासन के मामले मे बहुत दिना तक दूसरो के लिए प्रेरणा का काय किया। 1856 तक बम्बई का विकास अन्य पेसीडेन्सी नगरा की भाति हुआ। अतर केवल इतना था कि जहा कलकत्ता के लिए 1840 का ऐक्ट बना, मद्रास के लिए 1841 का ऐक्ट बना वहा बम्बई के लिए 1845 का ऐक्ट बना जिसने 'कन्जवेंसी' बोड के हाथ म सारी शक्ति सौंप दी। इस बोड म 2 यूरोपीय, 3 भारतीय और पुलिस का मजिस्ट्रेट चेयरमैन बनाये गये। 1858 के बम्बई ऐक्ट 26 ने बम्बई को नगरीय कर लेन के लिए अधिकृत किया जिसके बदले म उसे पुलिस को उसके काय के लिए धन देना पडा। इस एक निश्चित धनराशि 'वेहार वाटर वक्स' के लिए अलग से रखनी पडती थी।

पर 1865 के बम्बई म्युनिसिपल ऐक्ट के अतगत महत्त्वपूण परिवतन किय गय। 500 लोगो की 'शाति के न्यायिको' की एक सभा बनायी गई जिसका काय बजट पर नियत्रण रखना था। पर सभी कायपालिका की शक्ति एक अत्यधिक वतनभोगी सरकारी अधिकारी के हाथ म रखी गयी। पुरानी प्रथा मे आर्थिक क्षेत्र मे कमियो के कारण एक विशेष 'कट्रोलर आफ एकाउटस' की नियुक्ति की गई जिसे चेयरमैन से स्वतत्र होना था पर जिसका हस्ताक्षर हर व्यय पर आवश्यक था।

पर यह व्यवस्था भी उचित रीति से नहीं चल सकी। ्यायिका की सख्या इतनी अधिक थी कि वे ठीक से काय ही नही कर पाते थे। चेयरमैन इसलिए अलोकप्रिय हो गया क्यांकि वह कार्पोरेशन की सहायता के बिना काय करता था और क ट्रोलर ने अपने को चेयरमैन के अधीन बनाकर प्रभावहीन कर लिया था। फिरोजशाह मेहता के नेतत्व मे उदारवादिया ने परिवतन की एक तगडी माग की।[1]

इसी कारण 1872 मे बम्बई मे म्युनिसपल ऐक्ट को पारित किया गया जिसने कार्पोरेशन के सदस्यो की सख्या घटाकर 64 कर दी जिनमे से 16 रेजीडे ट ्यायाधीशो द्वारा चुने जाने थे और 16 सरकार द्वारा नामित होने थे और शेष 32 करदाताओ द्वारा चुने जाने थे। कायपालिका की शक्ति कमिश्नर के हाथ मे निहित थी। पर यह प्रावधान किया गया कि कार्पोरेशन के 'स्टैं डग कमिटी' द्वारा लेखे जोखे का साप्ताहिक आडिट किया जायेगा। इसको टाउन काउ सल भी कहते थे। मासिक आडिट के लिए वेतनभोगी ऑडिटर नियुक्त किये गये।

यह व्यवस्था इतनी उचित रीति से काय कर रही थी कि अब इसमे अधिक परिवतन नही किये गये। इस तरह बम्बई "ने पहली बार ही सतोपजनक रीति से स्थानीय स्व शासन की समस्या को सफलतापूवक ही हल कर लिया था। यह अग्रेजी आदर्शों पर न होकर स्वय विकसित किया गया था।"

शाही यात्रा—लाड मेयो को ही भाग्य से यह सौभाग्य मिला कि वह भारत के राजाओ और जनता के समक्ष प्रथम बार अग्रेजी शासक के पुत्र को प्रस्तुत करे। हिज रायल हाईनेस एडिनबरा के ड्यूक ने इस देश की यात्रा की। डब्लू० डब्लू० हटर लिखता है कि जनता ने 'जिस स्वामिभक्ति से उसका स्वागत किया वैसा भारत के इतिहास मे पहले देखने मे नही आया था।"[3]

भारतीय राज्यो के साथ सबध

भारतीय राजाओ के साथ लाड मेयो के सबध मधुर थे। विद्रोह के उपरान्त यह सिद्धान्त स्थापित हो चुका था कि देश की करोडो जनता, जो राजाओ के अधीन थी, वह अब ब्रिटिश भारत का भाग है और उनकी उचित देखभाल का उत्तर-दायित्व रानी ने स्वय ग्रहण किया है। इस तरह अब सीधे उनके राज्य के

1 दखें टिंकर ह्यू फाउडशन आफ लोकल सेल्फ गवनमेंट इन इण्डिया पाकिस्तान एण्ड बर्मा प० 37 41।

2 लिडसे पूर्वोक्त प० 527 आन्ल सी० एल० पूर्वोक्त प० 146-86।

3 हटर डब्लू० डब्लू० पूर्वोक्त, प० 185।

लमाना से धन वसूला करता था। इस अवसर पर उस क्षेत्र की यात्रा कर उसने
रा के विरुद्ध कबीलों की मनोभावना को उभारा। जब तक सैय्यद अहमद रणजीत
ह की सीमा पर दूर यह कारवाई करता रहा, अंग्रेजों ने कोई एतराज नहीं किया।
ल्वाह तो यहा तक थी कि सैय्यद अहमद ब्रिटिशों के हाथ की कठपुतली था जो
खो के विरुद्ध कारवाई करने के लिए उत्साहित किया जाता था। जो भी हो,
827 तक सैय्यद अहमद सिखो के विरुद्ध एक सशक्त विरोध उत्पन्न करने की
स्थिति म हो गया। उसने जेहाद की घोषणा की, सीमा के बहुत से मुसलमानो का
थन जुटाया पेशावर पर अधिकार किया और यार मुहम्मद खान को सिख
गवर्नरी के पद से हटा दिया। प्रसिद्ध सिख सेनापति हरिसिंह नलवा ने सेनाए आगे
जाकर सैय्यद अहमद को युद्ध म पराजित किया और पेशावर पर पुन अधिकार
र लिया। जब ऐसा लगा कि शांति स्थापित हो चुकी है उसी समय सैय्यद अहमद
ी कारवाई और तेज हो उठी। यार मुहम्मद खा को मार डाला गया और पेशावर
र सिखो के हाथ से निकल गया। ऐसा लगा कि नगर सदा के लिए हाथ से निकल
ा और सैय्यद के समर्थकों म खूब प्रसन्नता व्याप्त हो गयी। पर उनकी सफलता
क्षणिक सिद्ध हो गयी। रणजीतसिंह के सेनापति वन्तुरा ने आगे बढ़कर सैय्यद
ो मार डाला और अफगान नगर पर अधिकार कर लिया जो पुन पजाब के हाथो
कभी नहीं निकला।

वहाबी पेशावर मे पराजित कर दिये गये, पर आंदोलन समाप्त होने की जगह
र इसके बाद दूसरी ही शक्ल अख्तियार कर गया। वहाबियो का विश्वास था कि
य्यद पुन जन्म लेगा। इस तरह पटना को केन्द्र बनाकर इन्होने अपने को फिर से
गठित करना प्रारभ कर दिया। 1849 म ब्रिटिशो द्वारा पजाब पर विजय के
द यह आदोलन ब्रिटिश विरोधी हो गया। पर चूकि उनके मौलवियो और कुरान
ा यह आदेश था कि जेहाद एक क्षेत्र की जनता अपनी ही सरकार के विरुद्ध नहीं
र सकती है इसलिए बगाल और बिहार के अधिकतर व मुसलमान, जो इस
ादोलन के प्रभाव म थे, वहा से आदमियो व धन की सहायता आती रही। यह सब
ीमा पर मुल्ला सित्ताना म पहुचाया जा रहा था जहा लड़ाई की तयारिया तेजी
र थी। 1857 मे वहाबियो ने अवसर का लाभ उठाकर कुछ इसलिए नहीं किया
याकि वे डरते थे कि उनके परिवार से बदला लिया जायगा। पर यह आदोलन
ज होता और जोर पकडता गया, इस बात से प्रमाणित है कि इनके विरुद्ध 1862
ौर 1868 मे आक्रमण किये गये। पजाब सरकार से भी पता लगाने के लिए कहा
या कि आखिर सीमा पार भारतीय धन कैसे जा रहा है। अम्बाला जसी जगहो
र वहाबियो की शक्तिशाली बस्तिया थी जिसे समाप्त करने को कहा गया। तमाम
हाबियो का बदी बनाया गया और उनके नेताओ को लबे अवधि तक की कैद की
जा दी गई।

इन्ही परिस्थितिया मे मेयो भारत आया। उसकी कर-आरोपण और सामान्य प्रशासन नीति ने परपरागत भारतीय आदतो और व्यवहारो को समाप्त करने की चेष्टा की जिससे कि असतोष उत्पन्न हुआ और उससे वहाबियो ने भी लाभ उठाया। वहाबियो और उनके तरह के लोगो को अधिक सख्या म उस समय कैद किया जाने लगा और कडी सजाए दी जाने लगी जब पुलिस की यह रिपोट आई कि वे ब्रिटिशो के विरुद्ध जिहाद की शिक्षा दे रहे है। 1869 और 1871 के बीच तमाम औपचारिक दड की कारवाइया प्रारभ हुइ। कलकत्ता उच्च न्यायालय मे एक न्यायाधीश नामन ने 'बन्दी प्रत्यक्षीकरण की एक प्राथना अस्वीकार कर दी थी जो एक बदी नेता अमीर खा की ओर से प्रस्तुत की गई थी। वह उसके तथा चार अन्य के विरुद्ध दड देने हेतु अपीलें ही सुनने वाला था कि उसकी हत्या कर दी गई।[1] बताया गया कि हत्यारा निश्चित रूप से वहाबिया से सम्बद्ध था।"

पर लार्ड मेयो इस निष्कर्ष पर पहुचा कि वहाबियो के विरुद्ध केवल प्रतिरोधात्मक कारवाइया से काम नही चलेगा। प्रत्यक्ष करारोपण से पर्याप्त असतोष उत्पन्न हुआ जिसपर वहाबिया ने प्रतिक्रिया व्यक्त की। उसने आयकर को दो बार घटाया और उसने प्राता को भी स्थानीय करो के मामले मे उसी तरह की नीति अपनाने को कहा होता, पर उससे पहले ही वह एक मुसलमान हत्यारे के हाथ का निशाना हो गया जिसके विषय मे हम आगे पढेंगे। पर उसके द्वारा प्रारभ की गई इस नीति से सकेत चिह्न प्राप्त कर उसके उत्तराधिकारी लार्ड नाथ ब्रुक ने आयकर को एकदम समाप्त कर दिया और स्थानीय करो मे भी फेरबदल की। इसके साथ ही इस मसले को लेकर लोकप्रियता प्राप्त कर रहा असतोष दूर हो गया और वहाबी आदोलन भी धीरे धीरे कमजोर पडता गया।

कूका आदोलन

मेरठ म विद्रोह के एक माह पूर्व 12 अप्रैल 1857 को पजाब म नामधारी नामक एक सामाजिक व राजनैतिक सस्था की स्थापना गुरु रामसिंह न की। ये नामधारी सिख मत्रो का उच्चारण करते हुए या उसका नाम दुहराते हुए प्राय भाव विभोर हो जाते और चीखने चिल्लाने लगते। य अपने हाथ म पगडियां ले लेते और हवा मे अपने बाल फहराते हुए कूका या चिल्लाने वाले कहलान लगे।

रामसिंह 1815 मे लुधियाना जिले के एक गाव भैनी अराइयां म पैदा हुए। वह एक गरीब बढ़ई जस्सा सिंह के लडके थे। उन्होने गुरुमुखी भाषा मे पढ़ना और

---

1 मोल्टन एडवर्ड लार्ड नार्थब्रुक्स इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन 1872 76 पृ० 5।

2 देखें मकग्रेगर हिस्ट्री आफ द सिक्ख्स भाग 1, पृ० 196 गोपाल, एस० ब्रिटिश पालिसी इन इण्डिया, 1858 1905, पृ० 96-99।

लिखना सीखा, 1822 में विवाह किया और 22 वर्ष की आयु में राजा नौनिहाल सिंह की सेना में भर्ती हो गये। 1838 में बालक सिंह नामक एक सामाजिक सुधारक के प्रभाव में आ गये। 1847 में उन्होंने सिखों में फैली कुछ बुराइयों के विरुद्ध शिक्षा देना प्रारंभ किया। वे सिख गुरुओं से सबंधित सोधियों और बेदियों की भर्त्सना करने लगे जिन्हें पूजा जाता था। उन्होंने सिखों पर हिन्दू ब्राह्मणों और मुस्लिम पीरों के प्रभाव की भर्त्सना की। उन्होंने सिखों को 10वें गुरु गोविन्दसिंह के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करने की सलाह दी।

1857 में बैसाखी के दिन रामसिंह ने अपने ही गांव भैनी में नामधारी आंदोलन का सूत्रपात किया जिसमें 4 सिखों को इसका प्रथम सदस्य बनाया गया। उन्होंने अपने प्रांत में इसकी शिक्षा के 22 केन्द्र स्थापित किये। प्रत्येक केन्द्र पर उन्होंने सूबा नामक अपना एक सहायक शिक्षा देने के लिए नियुक्त किया। इसके अतिरिक्त ग्वालियर, दक्षिण में हैदराबाद, बनारस, लखनऊ, नेपाल और काबुल में भी उन्होंने सूबा नियुक्त किये। 1864 तक सूबों की नियुक्त करने का काम पूरा हो गया, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर रामसिंह की शिक्षा का प्रचार किया करते थे।

प्रारंभ में स्यालकोट, अमृतसर, होशियारपुर और लुधियाना जिलों में नामधारी कारवाइयां का गढ़ बना। पर बाद में इनका प्रभाव फीरोजपुर, लाहौर और गुजरानवाला में भी बढ़ गया। केवल सिखों ने ही इस आंदोलन को अधिक संख्या में नहीं अपनाया बल्कि हिन्दू भी इससे आकर्षित हुए। 1871 तक आते-आते ज्ञानी रतनसिंह ने मि० कोवा की अदालत में स्पष्ट किया कि कूका लोगों की संख्या 10 लाख है जिनमें से एक तिहाई केशधारी[1] और शेष सहजधारी[2] हैं।

रामसिंह ने अपने समर्थकों से यह कभी नहीं कहा कि वे भीख मांगें या इधर उधर नौकरी न प्राप्त कर भिखारियों की तरह घूमें। कूका हर पेशे में पाये जाते थे। वे व्यापारी व सौदागर भी थे तथा सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं में नौकरी करने वाले भी। वे पुलिस और सेना में भी थे जहां इनकी संख्या का पता लगाना कठिन था क्योंकि ये इस सेवा में विशेष उद्देश्य के लिए भर्ती होते थे और कूकाओं से अपने संबंध के विषय में कभी किसी से नहीं बताते थे।

जैसे जैसे समय बीतता गया, रामसिंह की शान शौकत में वृद्धि होती गयी। जब वह दौरे पर निकलते तो उनके काफिले में कई सूबा और शानदार घुड़सवार होते थे। ये सभी सुन्दर सफेद वस्त्र से सजे होते थे। उनके समर्थकों ने उन्हें गुरु की संज्ञा दी और गुरु नानक की परंपरा में उन्हें एक उत्तराधिकारी माना। वैसे उन्होंने

1 वे जिनके लम्बे लम्बे केश थे।
2 वे जिनके केश लम्बे नहीं थे।

रगून मे अपने निर्वासन स्थान से जो चिट्ठिया भेजी उसमे उन्होने इन कार्यों की भत्सना की। पर ऐसा लगता है कि यह काय उन्होने कठोरता से नही किया। इसी कारण कूका लोगो मे 10 गुरुओ की तुलना मे उनका महत्त्व विकसित हुआ। रामसिह 1885 मे निवासन की अवस्था मे बर्मा मे मर गये।

उनके सिद्धातो की प्रमुख विशेषताए ये थी—"उन्हाने सिखो मे जाति के भेदभाव को समाप्त किया, सभी वर्गो मे बिना भेदभाव के विवाह की वकालत की, विधवा विवाह के आदेश दिय, शराव और मादक चीजें प्रयोग करने से रोका, स्त्री-पुरुषो को स्वतत्र रूप से मिलने जुलने के लिए प्रोत्साहित किया गया, पुरुष और स्त्री एक साथ उनकी सभाओ म प्रलाप करते देखे जाते थे और हजारो स्त्रियो व युवा कन्याओ ने उनका पथ अपनाया, उन्होने अपने शिष्यो को स्वच्छ और सत्यवादी रहने को कहा। उनकी एक शिक्षा मे कहा गया, 'यह सच है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने समथक के साथ चलता है। 'ग्रन्थ' ही उनका स्वीकृत ग्रथ है। उनके भ्रातत्व की जानकारी उनके पगडी, सिद्ध पग से हो सकती है तथा सफेद ऊनी रस्सी की माला से, जिसमे गाठें दे देकर मनका का रूप प्रदान किया गया है और जिसे सभी पहनते हैं।' वे मकबरा और मदिरो मे विश्वास नही करते और मूर्ति भजक ह।[1]

धार्मिक दष्टि से कूका हिन्दुओ और सिखो के बीच मे पडत थे। वे मद्य-त्यागी थे, सादा जीवन बिताते थे और हाथ का बुना शुद्ध स्वदेशी वस्त्र पहनते थे। वैसे तो रामसिह ने इससे इनकार किया, पर सिखा के विपरीत वे यह मानते थे कि दसवें गुरु की दैवी आत्मा ने गुरु बालक सिह मे प्रवेश किया और फिर वह एक के बाद एक रामसिह, हरिसिह और प्रताप सिह म भी आती गयी। कूका लोग सिखो के पाच चिह्न धारण करने के सिद्धात का सख्ती से पालन करत थे और अन्य सिखो की परम्पराओ को भी मानते थे। अपने सामाजिक विश्वासा म वे बाल विवाह के पक्ष मे नही थे। वे बाल-हत्या और दहेज प्रथा का विरोध करते थे। नामधारी लोग सच मे धार्मिक दृष्टि से विवाह मे 13 रु० से अधिक व्यय न करने के लिए वचनबद्ध थे। उनमे यह चीज आज भी चली आती है।

स्त्रियो के लिए समान स्थिति प्रदान करने मे पक्ष मे भी कूका थे और साथ ही सवण हिन्दुओ तथा अछूतो के बीच विवाह सबध स्थापित करने मे विश्वास करते थे।

1935 मे प्रकाशित एक लेख मे भारत के भूतपूव राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद ने

---

1 छाबडा, जी० एस० सोशल ऐण्ड इकोनामिक हिस्ट्री आफ द पजाब आराजिनल होम, 1872 जुडीशियल अगस्त, 273 274 पृ० 2444-49।

2 कृपाण, कच्छा, केश, कड़ा और कघ (कघा)।

लिया, "गुरु रामसिंह ने राजनैतिक स्वतन्त्रता को धर्म का ही एक भाग माना। नामधारियों का संगठन बहुत शक्तिशाली हो गया। बहिष्कार और असहयोग का सिद्धान्त जिसे महात्मा गांधी ने पूरी शक्ति से स्वतन्त्रता आन्दोलन में अपनाया, उसे गुरु रामसिंह ने नामधारियों के लिए चलाया था।"

गुरु का असहयोग आंदोलन निम्नलिखित पांच सिद्धान्तों पर आधारित था—

1 सरकारी सेवाओं का बहिष्कार।

2 ब्रिटिश सरकार द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं का बहिष्कार।

3 उनके द्वारा स्थापित कानूनों का बहिष्कार।

4 विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार।

5 सरकार के उन आदेशों का पालन न करना जो उचित न हों।

और नामधारी अपने सिद्धान्तों पर इतने दृढ़ थे कि स्वतन्त्रता के बाद भी उनके गुरु महाराजा प्रताप सिंह और उनके पुत्र ने ब्रिटिशों द्वारा प्रदान जीवन की आधुनिकतम आवश्यकताओं का परित्याग कर दिया।

नामधारियों की पंजाब प्रांत के हर क्षेत्र में अपनी अलग से डाक-व्यवस्था थी जो कार्य क्षमतापूर्वक चलती थी और जिसका परित्याग स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत ही किया गया।

अपने शिष्यों पर सीधे नियन्त्रण हेतु भाई रामसिंह ने पंजाब के सभी भागों में सूबों और नायब सूबों की नियुक्तियां की जिनमें से अधिकतर अमृतसर, स्यालकोट, जालंधर, फीरोजपुर, लुधियाना, अम्बाला और करनाल जिले में थी। इसके अतिरिक्त मालेर कोटला, नाभा, पटियाला और संगरूर में नियुक्तियां की गई।

कूकाओं ने अपने को काफी संख्या में राज्य पुलिस और सेना में भी भर्ती कराया और इस तरह सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त कर आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग करने का निश्चय किया। इन सेवाओं में कूका अपना परिचय गुप्त रखते थे। कश्मीर के महाराजा ने ऐसी एक कूका रेजीमेंट गठित की थी जिसे ब्रिटिशों के कहने पर उन्होंने समाप्त कर दिया।

अपनी राजनैतिक योजना को सफल बनाने के लिए भाई रामसिंह ने अपने कार्य क्षेत्र का दायरा नेपाल, भूटान, कश्मीर और अन्य राज्यों तक फैला दिया। यहां के शासकों से नामधारियों के माध्यम से संपर्क स्थापित किया गया। कहा जाता है कि भाई रामसिंह का झांसी की रानी से सम्पर्क था तथा 1856 के अन्य क्रांतिकारी नेताओं से भी। उन्होंने रूसी तुर्किस्तान के गवर्नर के माध्यम से रूस से भी पत्र व्यवहार किया। भाई को यह विश्वास था कि रूस वाले भारत पर आक्रमण अवश्य करेंगे और उनकी सहायता से ब्रिटिशों को भारत से खदेड़ा जा सकेगा।

रूसी तुर्किस्तान मे एक ब्रिटिश जासूस कुतुब खा ने पजाब प्रशासको के पास यह सूचना प्रेषित की कि एक गुरु चरण सिंह नामक व्यक्ति जो स्यालकोट जिले के चाक रामदास नामक स्थान का निवासी है रूसी तुर्किस्तान मे एक स्थान पर 1 मई 1879 को हिन्दी (गुरुमुखी) मे लिखा एक पत्र लेकर पहुचा है जो सभवत कूका नेता का लिखा बताया जाता है और जिस पर और लोगो के भी हस्ताक्षर है। सूचना प्रदान करने वाले के अनुसार इसका प्रारभ इस तरह से हुआ था, "रूसी सम्राट, गवनर जनरल और अन्य रूसी अधिकारियो को सलाम। और इसमे आगे कहा गया था कि रामसिंह 3 15,000 कूकाओ का आध्यात्मिक नेता है। वे सब बहुत वीर है और यह कि निरकुश ब्रिटिश सरकार ने उन्हे रगून मे कैद कर रखा है। पर लुधियाना के निवासी उन्हे हर चीज की सूचना भेजा करते है और बद ब्रिटिशो को भय है कि पजाब कूकाओ के हाथ म चला जाएगा " जो निश्चित रूप से घटित होने वाला था।[1]

1881 के अप्रैल माह मे पजाब का लेफ्टीनेन्ट गवनर जनरल सर राबट इगटन भारत सरकार पर यह दबाव डाल रहा था कि 1818 के रेग्युलेशन 3 के तहत "गुर चरणसिह को बदी बनाने के लिए कौंसिल मे गवनर जनरल से आदेश प्राप्त किया जाय ।"

गुरु चरणसिह पहले से ही बदी था और लाहौर मे रखा गया था। पर पजाब सरकार को यह नही ज्ञात था कि उसे बिना मुकदमा चलाय कसे अपने प्रभावी नियत्रण मे रखा जाय। इसलिए 1818 के रेग्युलेशन 3 का सहारा लिया जा रहा था। उनकी दृष्टि मे गुरु चरण सिंह को मुक्त करना खतरे से खाली नही था क्योकि वह मध्य एशिया के रूसी प्रशासको और असतुष्ट कूकाओ के बीच सपक सूत्र का काम कर रहा था। घूमन की स्वतत्रता प्राप्त कर वह रूसियो से प्राप्त प्रतिष्ठा का बदला चुकाने मे नही चूकेगा और रूसियो द्वारा पजाब पर अधिकार की याचना से लाभ उठाने का भरसक प्रयास करेगा। भारत सरकार ने अतत उपरोक्त प्रस्ताव स्वीकर कर लिया।

1863 म कूको का व्यवहार मूल रूप से शात दिखा। 1867 म पजाब के पुलिस इन्स्पेक्टर जनरल ने य बताया कि उनकी सख्या बढत पर है पर इस समुदाय की कारवाई बढने से कोई खतरा नही है।[3] 1868 म यह रिपोर्ट आई कि

1 देखें फारेन (सीक्रट) जनवरी, 1882 का स, 558 99 चावडा पूर्वोद्धत प० 129 31।

2 ओरीजिनल होम 1872 जुडासियल अग्स्त, 273 274 प० 244-49, छावडा पूर्वोद्धत, पृ० 129 32।

3 सेठर की सोशल एण्ड इकोनामिक हिस्ट्री आफ पजाब, (1849 1901), प० 129 31।

कूकावाद पतनवत है और रामसिंह के ईश्वरीय शक्तियों पर से अनुभवी धर्म परिवर्तन वालों का विश्वास हिल उठा है।[1]

बहुत दिनो तक कूकाओ ने मंदिरो या मूर्तियों को अपमानित करने या तोड़ने तथा बूचडो व अन्यो को मारने के अलावा अधिक कुछ नही किया क्योंकि इनका सदेह था कि ये ही पशुओ की हत्या करते है। पर फरवरी 1869 में मुक्तसर के निकट सेरा मे कूका विद्रोह ने तथा कुछ अन्य विवरणों ने, जिसे अम्बाला के डिप्टी कमिश्नर ने भी स्वीकार किया, नि सदेह सिद्ध किया कि कूकाओ का उद्देश्य सिख शासन की वापसी है और इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे ब्रिटिशो के विरोधी हैं।[2]

1871 मे फीरोजपुर के छोटे नामक गाव मे कूकाओ का एक सम्मेलन हुआ जिसमे रामसिंह भी उपस्थित थे। पर दुर्भाग्य मे वे यहा दो दलो मे विभाजित हो गये और रामसिंह के समझाने पर भी वे आपस मे लडने लगे। कुछ कूका रामसिंह के नियत्रण के भी बाहर हो गये और उन्होने बहुत से बूचडो को मार डाला जिन पर उन्हें सदेह था कि वे पशुओं को मारते थे। 4 जून 1871 को अमृतसर मे बूचड मारे गये और 16 जुलाई 1871 को राजकोट मे। कुछ कूकाओ को पकडा गया और फासी दे दी गई और बहुतो को जेल जाना पडा या अन्य दड दिया गया।

पर 1872 मे और गभीर विद्रोह भडका। 11 और 12 जनवरी को कूका भैनी गाव मे मिले जहा रामसिंह भी मौजूद थे। सम्मेलन के बाद कूका तितर-बितर हो गये। इनमे से कुछ ने मालेर-कोटला पर आक्रमण करके जीतने का निश्चय किया। बस तो रामसिंह ने इसकी सूचना ब्रिटिश अधिकारियो को पहले ही दे दी पर कूकाओ को कठिनाई उत्पन्न करने मे सफलता मिल गई। लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर एल० कोवा और अम्बाला क्षेत्र के कमिश्नर फोरसीथ ने इस पर गभीर रुख लिया और उनके आदेशो के अतगत 49 कूका नेताओ को मौत की सजा दी गई।

फोरसीथ ने पजाब के कृते सचिव को यह परामर्श भेजा कि रामसिंह को बर्मा मे देश निकाला दे दिया जाय। पटियाला के महाराजा ने भी ऐसा ही एक पत्र लिखा। इसके फलस्वरूप लार्ड नार्थ ब्रुक ने इस तरह का आदेश भेज दिया। रामसिंह की बर्मा मे ही 1885 मे मृत्यु हो गई।

यह कहा जाता है कि कूका लोगो का धार्मिक स्थानो पर आक्रमण, क्योंकि

1 ओरीजिनल होम, 1872, जुडीशियल, अगस्त 273 274 क्र० 2464 96 छाबडा पूर्वोद्धत।

2 वही पृ० 2419 छाबडा पूर्वोद्धत।

वे मूर्ति भजक थे, पडोसियो के लिए कष्ट का कारण बन गया। सच्ची नैतिकता, जो उन्होंने प्रारभ मे चलाई थी, उसका स्थान बेलगाम चीजा ने ले लिया जो धार्मिक उत्साह के नाम पर प्रचार मे आ गई थी। स्त्रियो और पुरुषो का एक साथ नगे नाचना और चरित्रहीनता मे लिप्त हो जाना, समाज के अच्छे लोगो से दूर हो जाने का कारण बन गया था।'

जैसा कि ज्ञानी रतनसिंह ने रहस्योदघाटन किया कूका लोगो की सख्या 1871 म 10 लाख थी। पर 1881 के पजाब जनगणना के अनुसार इनकी सख्या 10,541 थी। पूरे प्रान्त मे ब्रिटिश क्षेत्र काल मे ही 1001 मे इनकी सख्या बढकर 13,788 हो गई।[1]

रामसिंह के बाद उनके उत्तराधिकारी गुरु हरिसिंह हुए जिन्हे अपने गाव भैनी के घर से निकलने की आज्ञा 21 वर्ष तक प्रदान नही की गई। उनका 1906 मे देहान्त हो गया और उनके उत्तराधिकारी प्रतापसिंह हुए। 1914 के विश्व युद्ध काल मे ब्रिटिशो की कूकाओ को भूमि देकर और अन्य साधना से प्रसन्न करने की नीति अपनाई पर सफलता नही मिली इसलिए निरकुश नीति अपनाई गई। 1920 मे कूकाओ ने अपने समाचार पत्र 'सतयुग' का प्रारभ किया और 1922 मे दैनिक कूका निकालना प्रारभ किया। गाधी जी न असहयोग आदोलन प्रारभ किया तो कूका लोगो ने इसमे प्रसन्नता से भाग लिया। गाधीजी ने स्वय बहुत-सी बातें कूका लोगो से सीखी और भारत मे सामाजिक और राजनतिक क्राति लाने के लिए अपने कदमो मे कई परिवतन किय।

अफगानिस्तान, कलात, उत्तर तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र से सम्बन्ध

अफगानिस्तान

1869 मे लाड मेयो ने डिजरैली को लिखा, "मेरा विश्वास है कि यदि मुझे अपनी नीति अपनाने का अवसर प्राप्त हो तो मैं अपने सीमाक्षेत्र मकरान के किनारे से लेकर उत्तरी तुर्किस्तान व चीन तक मित्रो और स्वतत्र राज्यो की एक पटी बना सकता हू जिनका कार्य यह होगा कि वे ब्रिटिश हितो के प्रति शुभेच्छु हो।"[2]

अफगानिस्तान पेटी के इस ओर था और हम यह देख चुके हैं कि किस तरह सरजॉन लारेंस के समय मे अफगानिस्तान के प्रति प्रभुत्वपूर्ण निष्क्रियता की नीति अपनाई गई। लारेंस ने, दोस्त मुहम्मद की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियो के काल मे जो आन्तरिक सघर्ष प्रारभ हुआ था, उसम भाग नही लिया था। शक्ति

---

1 पजाब सेसस रिपोर्ट 1901 पृ॰136-37।

2 गोपाल, एस॰ ब्रिटिश पॉलिसी इन इडिया (1858 1905) पृ॰ 68-69।

इनकार करने के बाद मेयो ने अमीर को तोपखाने की दो बैटरियां और कुछ छोटे हथियार प्रदान किये। इसने अमीर को इतना प्रभावित किया कि उसने वाइसराय को लिखा "यदि खुदा ने चाहा तो जब तक मैं जिंदा हूं या जबतक मेरी सरकार है, हमारे और शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार के बीच मैत्री और सदिच्छा की जो आधारशिला है वह कभी भी कमजोर न होने पायेगी।"[1] जो औपचारिक आदर शेर अली ने ब्रिटिशों से प्राप्त किया उसने उसे लाहौर में यह कहने को बाध्य किया, "मैं अब यह महसूस करता हूं कि मैं एक राजा हूं।"

दूसरी ओर वाइसराय भी इस परिणाम से पूर्णतया संतुष्ट था। "उसका विश्वास था यदि नैतिक समर्थन और अस्थायी सहायता की नीति का, जैसे स्पष्ट रूप से अमीर को बता दिया गया है, कड़ाई से अनुपालन हो तो ब्रिटिश 1841 से पहली बार एक विश्वस्त मित्र पाने की आशा कर सकते हैं और अफगानिस्तान को एक सभ्यतापूर्ण प्रभाव प्रेषित कर सकते हैं, और इस तरह शक्तिशाली और अच्छी सरकार की संभावनाएं बढ़ सकती हैं।"[2]

थोड़े ही दिनों बाद मेयो के अफगानिस्तान नीति की परीक्षा की घड़ी आ पहुंची जब शेरअली के लड़के याकूब खां ने विद्रोह करके हेरात पर अधिकार कर लिया। कुछ अधिकारियों ने वाइसराय को यह राय दी कि शेर अली की सहायतार्थ सेना भेजी जाय। पर गृह अधिकारियों के समर्थन से उसने ऐसा नहीं किया। इस संबंध में उनका तर्क था कि इससे याकूब से ब्रिटिशों की दूरी बढ़ जायेगी जिसकी कि आनेवाले दिनों में अफगानिस्तान में महत्ता बढ़ने वाली है। पुनः यदि भेजे गये सैनिकों को किसी पराजय का सामना करना पड़ा तो उससे ब्रिटिश प्रतिष्ठा प्रभावित हो जायेगी और प्रथम अफगान युद्ध की स्थिति पैदा हो जायगी। भाग्य से याकूब ने अपने पिता के पास क्षमा देने के लिए लिखा। मेयो ने इस अवसर का लाभ उठाया और शेर अली जो बदले की भावना से योजना बना रहा था, को अपने लड़के से समझौता कर लेने को कहा। अमीर ने उसकी राय मान ली जिससे वाइसराय को इस बात की प्रसन्नता हुई कि ब्रिटिशों ने अफगानिस्तान क्षेत्र में अपनी नेतृत्व शक्ति बनाये रखी है। पर अफगान शासक कूटनीतिज्ञ वाइसराय से की गयी मैत्री संधि के प्रति सावधान था। उसे लारेन्स का वह समय याद था जब उसने अनुभव किया था कि ब्रिटिश अपने लाभ के अतिरिक्त किसी और नहीं देखते। उसे यह भी स्पष्ट हो गया था कि आन्तरिक संघर्ष में उसे स्वयं ही अकेले सबकुछ करना होगा।

लारेंस की तरह मेयो से भी यह कहा गया कि इसी आक्रमण की स्थिति में

---

1 स्विन्सन आर्थर नार्थ वेस्ट फ्रंटियर पृ० 141 42।

2 गोपाल एस० ब्रिटिश पालिसी इन इण्डिया (1858 1905) पृ० 68।

अपने को बेहतर स्थिति मे करने के लिए वह क्वेटा पर अधिकार कर ले। पर वह इस मूर्खतापूर्ण कारवाई का अर्थ समझता था और इसी कारण उसने कहा कि वह रूस के सबध मे जो ऊलजलूल बातें की जाती हैं, उससे आजिज आ गया है।" यारकद के याकूब बेग के एक दूत न उससे कहा था कि एक इशारे पर चीन से लेकर कस्पियन सागर तक के मुसलमान जेहाद के लिए उत्तेजित किय जा सकते हैं। मेयो यह जानता था कि कुछ ब्रिटिश एजेन्ट और कुछ हजार लाख पाउन्ड यदि ठीक से व्यय किये जाय तो उससे भी वही परिणाम सामने आयेगा। उसन कहा भी, "मैं मध्य एशिया को ऐसा बना सकता हू जो हमारे मित्र (रूस) का पेट फाड डाले।"[1]

मेयो की अफगानिस्तान मे दूसरे तरह से भी स्थिति अच्छी नही थी। लारेन्स के अधीन मन्य एशिया मे ब्रिटिश कूटनीति यह थी कि रूस को अपन से दूर रखा जाय। पर मेयो ने इस तरह के देशो मे तुर्की और फारस को भी जोड लिया। 1869 मे एक प्रेषण मे भारत सरकार ने कहा,' हमारा विश्वास है कि फारस द्वारा भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य से सटे सीमा का निर्माण एक ऐसी घटना होगी जो अत्यधिक आलोचना योग्य होगी हमारे पश्चिमी सीमा की जो स्थिति है उसके कारण तुलनात्मक रूप से हम फारस, तुर्की, रूस या किसी बडे एशियायी देश से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए वाध्य नही हैं।' इसके साथ ही प्रेषण मे यह भी बताया गया कि "एशिया मे ब्रिटिश लाभ प्रभाव और शक्ति पूणतया इसलिए सुरक्षित है क्योकि विदेशो के साथ हम लगातार निहस्तक्षेप की नीति अपना रहे हैं।"[2]

सीस्तान के सम्बन्ध मे झगडा—अफगानिस्तान के पश्चिम फारस की सीमा पर स्थित सीस्तान मे भी झगडे की स्थिति पैदा हो गयी। फारस इस क्षेत्र पर कुछ असत्य अधिकार जताता था जबकि यहा की जनता अधिकतर अफगानिस्तान के पक्ष मे थी। जबतक दोस्त मुहम्मद जीवित था सीस्तान उसके साथ जुडा रहा और फारस को उसपर अधिकार जताने का साहस ही नही हुआ, पर जैसे ही उसकी मृत्यु हुई और उसके उत्तराधिकारियो म सघष प्रारम्भ हुआ, फारस ने स्थिति का लाभ उठाया और ब्रिटिश को इस सम्बन्ध मे मध्यस्थता के लिए लिखा। फारस ने यह अपील 1857 मे हस्ताक्षरित पेरिसकी सन्धि के अन्तगत की जिसकी धारा 6 मे कहा गया था कि 'फारस सरकार, हेरात और अफगानिस्तान मे कोई मत वैभिन्य होन पर ब्रिटिश सरकार के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो का लाभ उठाते हुए

1 गोपाल, एस॰ ब्रिटिस पालिसी इन इडिया (1858 1905), पृ॰ 70।
2 प्रसाद विश्वेश्वर द फाउडेशन आफ इण्डियाज फौरन पालिसी, (1860-82) पृ॰ 52।

समस्या के समाधान के लिए उससे कहना चाहिए न कि अक्ल का प्रयोग करना चाहिए। पर यदि वह मित्र देश कुछ न कर सके तो उसे कुछ भी करने की स्वतंत्रता होगी।"[1] पर ब्रिटिशो ने जब यह अपील प्राप्त की तो उन्हें यह समझ मे नही आया कि इस स्थान की आखिर सामरिक महत्ता क्या है। और सभवत अफगान युद्ध की यादें उनके मस्तिष्क मे अब भी ताजी थी। इसलिए उन्होने फारस को लिखा कि वे इस मामले मे नही पडना चाहते और यदि वे चाहे तो उस स्थान को प्राप्त करने के लिए अस्त्र का प्रयोग भी कर सकते है। पत्र का यह उत्तर प्राप्त कर फारस ने अपनी सेना आगे बढा दी और अफगानिस्तान की आन्तरिक अव्यवस्था का लाभ उठाकर पश्चिमी सीस्तान का अधिकतर भाग अपने अधिकार मे कर लिया। इस बीच सर जान लारेन्स ने प्रभुत्वपूर्ण निष्क्रियता की नीति अपना ली जिससे यह समस्या यथावत बनी रही जब तक कि शेर अली ने अपने विरोधियो को परास्त कर अफगानिस्तान पर फिर से अधिकार नही कर लिया।

जैसे ही शेर अली ने अफगानिस्तान मे अपनी शक्ति सगठित कर ली, उसने अपना ध्यान सीस्तान की समस्या की ओर मोडा जहा पर वह क्षेत्र के पतन को बर्दाश्त करने को तैयार नही था। पर कोई कदम उठाने से पूर्व, 1869 मे अम्बाला मे स्थापित मेयो से अपनी मैत्री को ध्यान म रखकर उसने ब्रिटिशो से परामर्श और इस कार्य की स्वीकृति मागने का निश्चय किया। दूसरी ओर फारस शेर अली की सभवत लडाई की योजना को ध्यान मे रखकर पुन पेरिस की सधि के अन्तर्गत ब्रिटिशो से बीच बचाव की अपील की।

1863 मे जब फारस ने पहली बार अपील की थी तो ब्रिटिशो ने हस्तक्षेप करना उचित नही समझा था। पर जब शेर अली ने पुन शक्ति प्राप्त कर ली तो स्थिति म परिवर्तन आ गया और मेयो के काल मे सीस्तान की सामरिक महत्ता तब समझ मे आई। हेल्मड घाटी बहुत उपजाऊ थी और फारस का इसके ही किनारे किनारे आगे बढना और पूरे सीस्तान पर अधिकार केवल हेरात के अस्तित्व के लिए ही खतरा नही पैदा कर रहा था बल्कि इससे कांधार तक का रास्ता साफ हो जाने की सभावना थी और वहा से आगे बोलन दर्रे तक पहुचकर ब्रिटिश भारत के लिए भी खतरा सभावित था। 1870 मे भारत सरकार ने कहा कि फारस का हेलमड की घाटी "से आगे बढना अफगानिस्तान के लिए अधिक भयानक है बनिस्बत हेरात पर आगे बढने के। इस स्थिति को बचाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने तमाम धन और सेना बर्बाद की है और जो अन्तत मार्च 1857 की पेरिस की सधि से ही समाप्त हुआ है।"

1 प्रसाद बिशेश्वर द फाउडेशन आफ इण्डियाज फारेन पालिसी (1860-83) पृ० 591।

2 वही, पूर्वोद्धृत, पृ० 57।

मध्य एशिया

इन परिस्थितियो मे जब फारस ने दूसरी बार पेरिस की सधि के अतगत हस्तक्षेप की अपील की तो ब्रिटिश ने कुछ करने को सोचा। पर जहा तक फारस यह चाहता था कि ब्रिटिश पश्चिमी सीस्तान पर फारस के अधिकार को स्वीकार करें, जिसमे उन्होंने 1863 मे एतराज नही किया था और साथ ही बीच-बचाव करें, वहा ब्रिटिश न अनुभव किया कि 1863 म अफगानिस्तान के पक्ष मे निह-क्षेप की नीति उनकी भूल थी और इस कारण से किसी सीमा म बधने को तैयार न थे। फारस को अतत मौन स्वीकृति प्रदान करनी पडी। दूसरी ओर अफगानि-स्तान जिस पेरिस की सधि की कोई सूचना नही थी और जो ब्रिटिश बीच बचाव को स्वीकार करने के लिए बाध्य नही था, वह भी अम्बाला की भेंट के कारण ब्रिटिशो को मध्यस्थ बनान को तयार हो गया।

सेनापति गोल्डस्मिड को मध्यस्थ बनाया गया। उसे यह बताया गया कि वह पहले फारस के द्वारा 1863 के बाद के हथियाये गय क्षेतो का पता लगाये और वहा स प्रारभ करके अत्यधिक निष्पक्ष भाव से निणय दे। उसका निणय ब्रिटिश सरकार का निणय माना जायगा। स्पष्ट तथा उपरोक्त सूचनाओ के आधार पर और मेयो के काल म अपनायी गयी नीति क आधार पर यह आशा थी कि निणय का झुकाव अफगानिस्तान की ओर होगा। पर ब्रिटिश मध्यस्थ ने बीच के रास्ते को अख्तियार किया। न तो फारस को पूरे क्षेत्र पर अधिकार करने दिया गया और न सीस्तान पर अफगान अधिकार का विरोध किया गया। इस तरह दोनो अप्रसन्न हो गय। पर जहा फारस पेरिस की सधि के अतगत ब्रिटिश निणय मानने को बाध्य था वहा अफगानो के ऊपर या तो ब्रिटिश मैत्री प्रभाव डाल सकती थी या उनकी यह अयोग्यता कि वे ब्रिटिशो के विरुद्ध खडे नही हो सकते। पर इसके कारण अम्बाला मे हुई मैत्री ठण्डी रही पडी। कुछ लोगो का कहना है कि शेर अली का भ्रम दूर हो गया जिसस द्वितीय अफगान युद्ध के बीज पड गये। क्या यह मत उचित है, इसकी परीक्षा करने का अवसर हमे लाड लिटन के वाइसरायत्व मे देखने को मिलेगा।

कलात

ब्रिटिश भारतीय सीमा पर जिन राज्यो की पेटी लाड मेयो बनाना चाहता था, वे कलात और पूर्वी तुर्किस्तान थे जो मेयो के अनुसार ब्रिटिशो के मधुर सबध से जुडे होने चाहिए और विदेशी प्रभाव से मुक्त होना चाहिए।

1842 मे कलात के साथ ब्रिटिशो ने एक सधि की थी जिसके अतगत यह निश्चय हुआ कि "किसी शत्रु द्वारा खुले आम मीर नजीर खा पर आक्रमण करने पर या उसके तथा किसी विदेशी शक्ति मे मतभेद होने पर उसे सहायता करने या सदभावना का प्रयोग करने जैसा भी उचित होगा, का प्रयास उसके अधिकारो की

रक्षा के लिए किया जायेगा।[1] 1854 की एक दूसरी संधि के अन्तगत कलात के खान ने यह आश्वासन दिया कि वह ब्रिटिशों से राय लिये बिना किसी विदेशी शक्ति से वार्ता नहीं करेगा। उसने ब्रिटिश सेना को अपने क्षेत्र में कहीं भी रखना स्वीकार किया। उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ब्रिटिशों को उसके राज्य क्षेत्र पर अधिकार का भी अवसर दिये जाने का निश्चय किया गया।

इन समझौतों तथा मेयो की घोषित नीति की परीक्षा 1869 में तब हुई जब फारस के शाह के निर्देश पर बामपुर के स्थानीय गवर्नर ने मकरान में प्रवेश किया और केदजी चर्बार और ग्वादुर के विरुद्ध युद्ध जैसी कारवाइयां प्रारम्भ कर दीं। ये सभी क्षेत्र कलात के सहायक थे। मेयो को शीघ्र ही कोई निर्णय करना था क्योंकि यदि स्थिति बिगड़ती तो उसे या तो फारस के विरुद्ध कलात की सहायता करनी पड़ती या अपने एक मित्र को गवा देना पड़ता जो वाइसराय के राज्य के घेरे का एक प्रमुख सदस्य था। पर फारस के साथ युद्ध उचित नहीं था क्योंकि उसे रूसी प्रभाव से मुक्त करके अपने पक्ष में लाया जाना था क्योंकि इस राज्य से ब्रिटिशों के संबंध इस समय खराब नहीं थे। इसलिए मेयो ने तुरन्त गृह अधिकारियों को लिखा कि व समग्र स कारवाई करके फारस से पेरिस की संधि के अंतगत ब्रिटिश मध्यस्थता स्वीकार करने को कहें। इंग्लैण्ड के विदेश विभाग ने इस संबंध में शाह को तुरन्त लिखा पर शाह ने इस तरह के हस्तक्षेप को बुरा माना जिसके फलस्वरूप और कठोर कदम उठाना पड़ा। फारस के शाह को स्पष्ट रूप से बता दिया गया कि ब्रिटिश इस सम्बन्ध में चुप्पी साधे नहीं बैठे रह सकते। और इसलिए यह आवश्यक है कि दोनों पक्षों का समस्या के समाधान में मैत्रीपूर्ण सहयोग देना चाहिए। शाह अंतत झुका और यह राय दी कि उसके द्वारा, ब्रिटिशों द्वारा तथा कलात द्वारा एक एक कमिश्नर की नियुक्ति की जाय जो आपस में मिलकर कलात और फारसी बिलोचिस्तान का सीमांकन करें।

यहां पर भी ब्रिटिशों ने गोल्डस्मिड को इस काय के लिए नियुक्त किया। गोल्डस्मिड ने झगड़े वाले क्षेत्र का सर्वेक्षण किया और फारस के कमिश्नर के द्वारा कठिनाइयां पैदा करने के बावजूद ग्वात्तर से कुवक तक के क्षेत्र में 1871 तक सीमांकन करने में सफल हुआ जिसे शाह ने स्वीकार किया। ग्वात्तर से सीस्तान के बीच की सीमा का अंकन 1896 में होल्डिच कमीशन ने किया।

पूर्वी तुर्किस्तान

जी० के० एल्डर ने लिखा कि "मेयो रूसी और ब्रिटिश क्षेत्रों के बीच अपने से प्रभावित पर स्वतंत्र राज्यों की एक दुहरी पट्टी पैदा करना चाहता था जो

1 प्रसाद बिशेश्वर द फाउंडेशन आफ इंडियन फारेन पालिसी (1860 82) पृ० 53।

कुशन की तरह दोनो साम्राज्यो के बीच सीधे सम्बन्ध की परेशानी को कम करे।" उसने आगे लिखा कि "लारेन्स की सचमुच ऐसी कोई नीति ही नही थी जिसे मध्य एशियायी कहा जाय।" आगे उसने लिखा कि, "लारेंस चुपचाप बैठा देखता रहा और रूस, मध्य एशिया मे अपना प्रभाव बढाता रहा। मेयो ने स्वतन्त्र राज्यो का एक घेरा अफगानिस्तान से उत्तर मे बनाने का प्रयास किया।"[1]

जी० जे० ऐल्डर ने दो नीतियो के बीच जो विरोधाभास देखा उसमे इतनी सत्यता तो है ही कि जहा लारेंस प्रभावपूर्ण राज्यो के एक पत मे कुशन से ही सतुष्ट था वहा मेयो कुशन की दो पर्तों को बनाना चाहता था अर्थात् वह अफगानिस्तान के उत्तर तक जाना चाहता था और पूर्वी व पश्चिमी तुर्किस्तान को भी इस कुशन म दबाना चाहता था जिसे लारेंस ने अनावश्यक माना था। पर यह निष्कर्ष निकालना कि लारेंस ने भारत की सुरक्षा का सौदा किया था जबकि मेयो ने इसे और मजबूत आधार प्रदान किया सही नही है। पर दोनो भारत के चारो ओर कुशन बनाना चाहते थे। जहा मेयो इसे काफी मोटा बनाना चाहता था चाहे इसमे भारतीय राजाओ और जनता की हानि ही क्या न हो, वहा लारेंस का कहना था कि ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा केवल इसके चारो ओर कुशन की रचना से ही नही होगी बल्कि इसके लिए आन्तरिक शक्ति की भी आवश्यकता होगी जिसका आधार होगा वहा की सतुष्ट जनता तथा सही शासक जो ब्रिटिशो के प्रभाव मे हो और व अच्छे शासन के लिए बहुत कुछ उनसे सीखें। वे विदेश की ओर न देखे जो उनके शासन को अपने हाथ मे लेना चाहते हैं। मेयो ने भारतीय सीमा से बहुत पार अपनी कल्पना को उडाया। यह इससे सिद्ध है कि वह पूर्वी तथा पश्चिमी तुर्किस्तान मे कोई लाभ नही उठा सका बल्कि अपने अति उत्साह के कारण उस क्षेत्र के देशो म रूसी प्रभाव को निहित करने और सगठित करने मे सहयोगी हुआ, जब आन्तरिक क्षेत्र म हर सावधानी को ताक पर रखकर उसने कश्मीर के शासन को अपने से दूर कर दिया और उस क्षेत्र म कुछ प्राप्त भी नहीं किया। पश्चिमी तुर्किस्तान मे मेयो ब्रिटिश राजनैतिक प्रभाव व्यापार के द्वारा बढाना चाहता था और इसके लिए उसने ब्रिटिश विदेश सचिव और अपने मित्र लार्ड क्लेरेनडन को डगलस फोरसीथ के नेतृत्व मे इसी उद्देश्य के लिए रूसी राजधानी मे एक शिष्टमडल भेजने के लिए कहा। पर यह शिष्टमडल असफल हो गया क्योंकि इसने रूसिया को चौंका दिया तथा वह पश्चिमी तुर्किस्तान पर रूस का रक्षात्मक कर जिसे समाप्त करने के लिए फोरसीथ गया था, अब "रूसी केन्द्रीय एशियन साम्राज्य का एक स्थायी तत्व" बन गया। इसे ऐल्डर ने स्वय स्वीकार किया।[2] इसी

1 ऐल्डर, जी० जे० पूर्वोद्धत प० 38।

2 वही पृष्ठ 41।

तरह की असफलता लार्ड मेयो की पूर्वी तुर्किस्तान और कश्मीर में भी प्रतीक्षा कर रही थी जिसका विवरण हम अगले पृष्ठों में पायेंगे।

जी० जे० एल्डर का कहना है कि "मेयो की पूर्वी तुर्किस्तान की नीति का साधन और साध्य दोनों नया था। ऐसा इसलिए कि जहां लारेंस ने राजनैतिक दावपेंच के कारण व्यापारिक कार्यों पर रोक लगा दी, मेयो ने उन्हीं कारणों के लिए इसे प्रोत्साहित किया।"[1] जहां लारेंस ने पूर्वी तुर्किस्तान में ब्रिटिश कर्मचारियों द्वारा छानबीन पर रोक लगा दी और राबर्ट शॉ तथा विलियम हेवर्ड के व्यक्तिगत रिपोर्टों की अनदेखी की, मेयो ने इनके कथन को ईमानदारी से लिया और केवल पंजाब के कर्मचारियों की पूर्वी तुर्किस्तान में व्यापार विकास की नीति के साथ सहानुभूति ही व्यक्त नहीं की जिसका उद्देश्य संभावित रूसी खतरे को रोकना था, बल्कि उसने स्वयं इस नीति और कार्य का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हुए यह बताया कि यह नीति दो पक्ष वाली कुशन की नीति का ही एक भाग है जिसका विवरण ऊपर आ चुका है।

मेयो ने कश्मीर के प्रति नीति में सावधानी नहीं बरती और इस बात से पूर्णरूप से आश्वस्त हो कि पूर्वी तुर्किस्तान से लेह होकर व्यापार की संभावना और आवश्यकता है उसने यह घोषणा की कि ब्रिटिशों की ओर से यह गलत कदम था कि उन्होंने महाराज के रास्ते में रोड़ा पैदा करने का अवसर प्रदान किया। उसने अपने विशेष दूत कप्टेन ग्रे को इस संधि की वार्ता के लिए भेजा कि वह कश्मीर से होकर व्यापार विकास की बात तय करे, महाराजा के इस सम्बन्ध में विरोध को एक तरफ कर दिया गया और संधि को अंतिम रूप दिलाकर मेयो ने 1870 में उसे स्वीकार कर लिया। इस संधि के अन्तर्गत कश्मीर से होकर जाने वाले रास्तों का सर्वे किया जाना था जिनमें से एक को चुनकर "उसे सदा के लिए तथा सभी यात्रियों और व्यापारियों के लिए खोल दिया जायगा। आरामगाहों, पूर्ति डिपो और आवागमन के साधन की सही व्यवस्था की जानी थी। रास्ते का निरीक्षण बराबर कश्मीर के दो संयुक्त कमिश्नरों तथा ब्रिटिशों द्वारा किया जाना था। यह नीति भी तय हुई कि रास्ते में क्या कर लगेंगे तथा रास्ते में धन के लिए व्यवस्था की गयी।

डॉ० हेनरी काले जो पहले से ही लेह में था, ने रास्ते की खोज और संस्तुति की थी जिसके अनुसार चाग चेनमू घाटी का रास्ता सबसे सुरक्षित था। विलियम हेवर्ड, राबर्ट शाह तथा डगलस फोरसीथ सभी ने इसे यही स्वीकार किया। वैसे फोरसीथ को 1870 में कशघर के रास्ते से यात्रा करते समय इतनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा कि रास्ते में उसके 300 घोड़े और याक मर गये।

1 एल्डर जी० जे० पूर्वोद्धत पृ० 39।

इस रास्ते को कश्मीर की सधि के अनुसार चुना गया जिसके रास्ते मे आराम गह तथा डाक लाने ले जानेवाले नियुक्त किय गये। पर सारे प्रयासा के बावजूद किसी भी व्यापारी को इसे प्रयोग करने के लिए नही समझाया जा सका। इस रास्त कोई व्यापार विकसित नही हुआ तथा चाग चेनमू रास्त की सारी कारवाई ही बेकार गई जिसने 1870 के कश्मीर सधि को जिसम दो सयुक्त कमिश्नर, एजेन्ट आदि नियुक्त किय गये थे, बेकार सिद्ध हुआ। नय रास्ते की खोज का भी वही भाग्य हुआ और इस योजना का छाड ही दिया गया जिस रूस के प्रति अति सावधानी को ध्यान मे रखकर अमल म लाने की चेष्टा हुई थी। इस तरह कश्मीर म कोई लाभ नही प्राप्त किया जा सका और महाराजा की नाराजगी और बढ गई। पर सभवत यह अधिक महत्त्वपूण नही था। कशगर से सीधे कूट नीतिक सपक कायम करने के परिणाम, लारे स की सावधानी-पूण नीति से भिन्न थे।

पूर्वी तुर्किस्तान के शासक याकूब वेग का एक दूत मिर्जा सादी मेयो के दरबार मे 1870 म इस निवदन के साथ पहुचा कि उसकी वापसी यात्रा मे उसके साथ एक ब्रिटिश प्रतिनिधि कर दिया जाय। मेयो को ऐसे अवसर की तलाश थी ही। उसने इस उद्देश्य के लिए फोरसीथ को चुना जिसे लारे स की सावधानी बताई गई कि वह मध्य एशिया की राजनीति मे अधिक न उलझे और पूर्वी तुर्किस्तान के शासक को इस बात के लिए उत्साहित किया जाय कि आवश्यकतानुसार रूसी आक्रामकता के अवसर पर विरोध किया जाय। फोरसीथ के विषय म बताया गया कि पर्दे के पीछे से उसका विरोध कश्मीर मे किया गया और न ही मिर्जा शादी से ही वह सहयोग कर सका। चूकि मेयो ने शिष्टमडलो के साथ सैनिक नही रखे, इसके बावजूद कि कशगर से इसी तरह का निवेदन किया गया था। पर लगता है कि याकूब वेग भी इसके प्रति उत्साहित नही था। जब फोरसीथ कशगर पहुचा, याकूब अपने राज्य मे शाति स्थापित करने मे जुटा हुआ था। वह तुरन्त वापस नही लौट सका, न ही उसने ऐसा करना ही चाहा जबकि फोरसीथ का यह आदेश था कि वे वहा अधिक दिना तक न रहे। इसीलिए वह खाली हाथ वापस लौट आया। शिष्ट मडल की सारी योजना बेकार सिद्ध हुई। इसके बुरे परिणाम भी हुए।

फोरसीथ के शिष्ट मडल ने रूस को भी चैतन्य कर दिया और उसके अर्द्ध सरकारी 'तुर्किस्तान मेसेन्जर' ने कहा, "चूकि याकूब वेग हमारा निकटतम पडोसी है ऐसा लगता है कि यह रूस के लिए या इगलैण्ड के लिए नही कि वह अटटी शर मे एकाधिकार बनायें और बाजार तैयार करें।", रूसी लोगा ने अपनी इच्छानुसार

1 एल्डर जी० जे० पृ० 44।

काय किया। खुले विरोध की चेतावनी मे 1872 मे याकूब को व्यापार-सधि करनी पडी जिसके अतगत उसके राज्य मे रूसी व्यापारियो और एजेटो को स्वतत्रता-पूवक आने जाने की सुविधा प्राप्त हो गई। दूर दराज कलकत्ता म चिढी क्रुद्ध बैठी भारत सरकार मेयो के दुहरी पट्टी की कुशल नीति की असफलता पर आसू बहा रही थी तथा लारेन्स के उदार नीति के नियम म इसी तरह के भाव व्यक्त कर रही थी। बाह्य कूटनीति और आन्तरिक समथन दोनो का जनाजा निकल चुका था।

उत्तर और उत्तरपूव

उत्तर पश्चिम और उत्तर की ही भाति, उत्तर और उत्तरपूव मे भी मेयो की नीति का मुख्य सिद्धान्त मित्र तथा अच्छे राज्यो के एक पट्टी बनाने की थी। नेपाल के साथ मैत्रीपूण सबध थे। अपने लुशाई आक्रमण द्वारा उसने बगाल के उत्तर पूव मे एक शाति पूण सीमा की स्थापना कर दी थी। बमा पर नेतृत्व शक्ति बनाये रखी गई।

प्रभाव क्षेत्र मे सीमाकन की आवश्यकता

मैत्रीपूण और स्वतत्र राज्यो की दुहरी पट्टी बनाने की नीति के साथ ही जो रूस की और अन्य शक्तिशाली आक्रामकता को झेल सकें, यह भी आवश्यक हो गया कि इन शक्तिशाली राष्ट्रो से सपक किया जाय और उनसे यह कहा जाय कि पट्टी के इस ओर के राज्य ब्रिटिश प्रभाव के क्षेत्र है और यहा पर बाह्य हस्तक्षेप बर्दाश्त नही किया जायगा। सर जॉन लारेन्स ने इस प्रस्ताव का प्रारभ किया था और गृह अधिकारियो से तत्सबध मे रूस से सपक करने के लिए कहा था। पर उसके मत की महत्ता तुरत नही समझी गई क्योकि उसके आलोचको का कहना था कि यदि रूस से इसके लिए सपर्क किया ही जाना है तो यह सपक भारत से किया जाना चाहिए न कि यूरोप से, यहा पर ब्रिटिश इस निर्हस्तक्षेप के बदले में उसे कुछ प्रदान करने की स्थिति मे नही हैं। पर लाड मेयो लारेन्स के तक से सहमत था और उसने ब्रिटिश विदेश सचिव लाड क्लेरेन्डन से इस सबध मे सफलता-पूवक मैत्री स्थापित की। रूस द्वारा ताशकद और समरकद पर अधिकार ने स्थिति को आपातपूण बना दिया, ब्रिटिश समाचार पत्रो ने चिल्ल पो मचाई और प्रस्तावित किया कि पहले से अधिकार कर लिये गये क्षेत्र को तो छोडने के लिए रूस से न कहा जाय, पर बहुत देर हो जाने से पूव कदम उठाये जाय जिससे रूस का भारत की ओर बढना रुक सके और यह सबसे अच्छी तरह से रूस से अफगानिस्तान और काशघर के अस्तित्व को स्वीकार कराके तथा उसे तटस्थ क्षेत्र घोषित करके ही हो सकता है। लार्ड क्लेरेन्डन ने रूस के विदेश मत्रालय से इस

सबध मे पत्र व्यवहार प्रारभ किया।

पर तटस्थ क्षेत्र को बनाने का प्रस्ताव सबधित क्षेत्र मे प्रभाव स्थापना से अलग था। 3 जून 1869 के अपने एक प्रेषण मे लाड मेयो ने स्पष्ट किया जिसमे लाड क्लेरेडन से उसने कहा, "हमारी दृष्टि से जो नीति सरकार को सीमा के मामले मे अपनानी चाहिए वह यह है कि हम क्षेत्र के राज्यो को यह बताने का प्रयास करें और दुनिया को भी कि उनके मामले मे हमारे अपहरण की नीति का समय बीत चुका है, और यह कि ब्रिटिश सरकार की यह इच्छा है कि वह उन्हे शक्तिशाली और स्वतत्र बनाने मे सहायता करे, और यह कि विदेशी आक्रमण से रक्षा के लिए उनके ग्रेट ब्रिटेन से मिलना बहुत आवश्यक है, तथा न्यायपूर्ण और अच्छे प्रशासन द्वारा वे अपने अधिकार की सीमा मे जनता की भक्ति प्राप्त कर सकते हैं और साथ ही पडोसी राज्यो का आदर भी।"[1]

मेयो ने लिखा कि तटस्थ क्षेत्र की उतनी आवश्यकता नही है जितनी कि एक निश्चित प्रभाव क्षेत्र की। क्योकि पहले मामले म ता उन्हे उन राज्यो को समाप्त करना होगा पर दूसरी स्थिति मे तो ब्रिटिश भय बना रहेगा और उनके रास्ते म अनिच्छुक और कठोर कबीले के रूप मे सर झुकाने के लिए कुछ भी नही रहगा। पहली स्थिति मे ये राज्य ब्रिटिशो के विरुद्ध किसी विदशी राज्य से सपक कर सकती हैं पर दूसरी स्थिति मे तो उन्हे पता रहेगा कि ब्रिटिश की न्यायप्रियता मात्र ही उनके जीवन का आधार है। कभी कभी ब्रिटिश का दड देने के लिए या विजय के लिए ही सीमाओ को पार करना पडता था। सक्षेप मे प्रभाव क्षेत्र के द्वारा ब्रिटिश सीधे किसी क्षेत्र पर अधिकार करने की स्थिति म बने रहगे, वसे ऐसा कुछ करने की इच्छा नही रहेगी। पर तटस्थ राज्य स्थापन स उन्हे इन राज्यो पर कोई शक्ति नही प्रदान करेगा। और रूस को इससे समानता की स्थिति मिलेगी जिससे उसके षड्यत्र करने तथा अपने प्रभाव को बढाने की इच्छा को बल मिलेगा। लाड मेयो की योजना मे रूस को खीव और पडोस के राज्यो मे स्वतत्रतापूवक काय करने का अवसर प्राप्त होना था और ब्रिटिश को कलात,, अफगानिस्तान और पूर्वी तुर्किस्तान मे।

इस तक के दिये जाने के कारण लाड क्लेरेडेन ने इस विषय म अपना मत बदला और डगलस फोरसीथ को 1869 के उत्तराद्ध मे सेण्ट पीटसबग म बात चीत के लिए भेजा। इस बातचीत स जो समझौता हुआ उसके अतगत खीवा और खोखद रूस के प्रभाव क्षेत्र मे माने गय तथा अफगानिस्तान ब्रिटिश के। दोनो पक्षो को अपनी सीमाओ के बाहर आक्रामक रुख अपनाने से विरत होने को कहा गया, आक्सस का उत्तरी भाग दोनो के प्रभाव क्षेत्र की सीमा रेखा स्वीकार की

1 गोपाल एस० पूर्वोद्धृत पृ० 71।

गई, रूस को इसके लिए आश्वस्त किया गया कि ब्रिटेन का पूर्वी तुर्किस्तान में कोई विरोधी रुख अपनाने का इरादा नहीं है, जहाँ हम पहले ही देख आये हैं कि लार्ड मेयो के अति शीघ्रता में किये गये काम ने इस वादे को तोड़ दिया जिसके फलस्वरूप वहाँ रूसी व्यापारिक कार्य प्रारंभ हो गया। वैसे अफगानिस्तान तो ब्रिटिशों के लिए बचा रहा। यह भी तय किया गया कि उसकी उत्तरी सीमा इतनी बढ़ा दी जाय कि किसी अव्यवस्था से बचा जा सके। ब्रिटिश का प्रस्ताव यह था कि अफगान क्षेत्रों में वह सब स्थान होने चाहिए जहाँ पर दोस्त मुहम्मद का अधिकार था। रूस ने इसे स्वीकार किया और रूसी तुर्किस्तान के गवर्नर जनरल कौफ्मान से इस विषय पर रिपोर्ट देने के लिए कहा। ब्रिटिशों ने इस रिपोर्ट की बहुत दिनों तक प्रतीक्षा की, पर जब यह 1872 के अंत तक नहीं आई तो उन्होंने अपनी ओर से अफगानिस्तान के उत्तरी सीमा के लिए एक घोषणा कर दी। इस तरह रूस के समक्ष एक तथ्य आ पेश हुआ। कुछ समय बल्ख, बदख्शां और वाखान को अफगान राज्य में जोड़ने का विरोध किया, पर अंततः इसे स्वीकार कर लिया।

यह कहा जा सकता है कि अफगान सीमा के संबंध में यह एकतरफा घोषणा ब्रिटिश की विजय थी जिससे डॉ० विशेश्वर प्रसाद के मतानुसार[1] सीमा के इस क्षेत्र में उनका प्रभाव बढ़ गया। शेरअली भी अब निर्भीकतापूर्वक आंतरिक विकास के कार्यों में लग सकता था। पर ब्रिटिश यह नहीं समझते थे कि इसका कुछ बुरा असर भी पड़ेगा। रूस यह मानता था कि साधारण प्रभाव क्षेत्र में और किसी राज्य पर सीधे अधिकार में कोई विशेष अंतर नहीं था। इसीलिए जल्दी ही उसने विजय नीति प्रारंभ कर दी। इस तरह जिसे ब्रिटिश रूसी प्रभाव क्षेत्र मानने को तैयार थे वह सब रूसी साम्राज्य क्षेत्र का भाग बन गया। ब्रिटिश इस कार्रवाई को नहीं रोक पाये जबकि अफगानिस्तान में बातें दूसरे ढंग से होती रहीं। ब्रिटिशों ने इस पर अधिकार नहीं किया इसलिए नहीं कि वे ऐसा करने की इच्छा नहीं रखते थे बल्कि वे ऐसा करने में अपने को समर्थ नहीं पाते थे। लार्ड आकलैण्ड के काल का उदाहरण उनके सामने था। अम्बाला में ब्रिटिशों से भेंट कर शेरअली उनका मित्र हो गया था। पर जल्दी ही उसे कुछ कटु अनुभव हुए। जहाँ एक ओर रूस ने ब्रिटिश की एकतरफा घोषणा के बाद अपने प्रभाव क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया वहाँ ब्रिटिश के लिए उनके कदम को रोकना भी संभव नहीं रहा। रूस अफगानिस्तान में ब्रिटिश असफलता की बात बताकर एक स्थिति पैदा कर सकता था जिसके कारण आगे चलकर तृतीय अफगान युद्ध हुआ। इन परिस्थितियों में यह कहना कठिन है कि ब्रिटिशों की एकतरफा घोषणा उनकी स्पष्ट कूटनीतिक विजय ही थी। क्योंकि उतना ही जोर देकर यह भी कहा जा सकता है कि इस

1 प्रसाद बी० पूर्वोद्धत पृ० 48 49।

घोषणा को करके वे रूस के हाथ की कठपुतली हो गये और अतत विजय रूसिया को ही प्राप्त हुई, ब्रिटिशो को नही।

अरब राज्यो के प्रति नीति

अरब राज्यो के सबध म लारे स और मेयो ने एक ही तरह की नीति अपनाई। इस नीति का अग थी, उन राज्या के आतरिक मामलो मे निहस्तक्षेप, असली शासक या शासको को स्वीकृति, और विदेशी शासन में दखल देने पर उसकी सप्रभु शक्ति को स्वीकार करना। अफगानिस्तान और अरब राज्यो मे यह अतर था कि जहा अफगानिस्तान को रूसी महत्त्वाकाक्षा से बचाया जाना था वहा अरब राज्यो को फारस और तुर्की के प्रभुत्व से बचाया जाना था। इ ह फ्रासीसी व डच लोगो के बीच व्यापारिक प्रतिद्वद्विता से भी बचाना था। इन क्षेत्रो मे ब्रिटिश प्रभाव स्थापना का उद्देश्य, जिसने फारस की खाडी और अरब सागर के क्षेत्रो से समुद्रवर्ती समझौता किया था अपनी मातृभूमि और अपने पूर्वी साम्राज्य के बीच आवागमन की पक्ति का प्रभावी बनाना था।

लारे स वाले अध्याय म हम देख आये है कि किस तरह मस्काट की गद्दी से सैय्यद सलीम को अजान द्वारा हटा दिया गया था। एक बार अजान मस्काट का शक्तिशाली शासक हो गया तो ब्रिटिशो को उसे असली शासक मानने मे कोई आपत्ति नही हुई। इस सबध म ब्रिटिशा ने अति शीघ्र निणय लिया जिसस कि अजान डचा से कार्वेट के लिए या फ्रासीसियो से गोला बारूद युक्त नावो के लिए, जो मस्काट मे उपस्थित थी, बातचीत न प्रारभ कर दे। पर अजान का स्वीकृति दी जाय इसके पूव एक और विद्रोह हो गया जिसमे 1871 के बसत मे अजान को मार डाला गया और सलीम के भाई तुर्की ने गद्दी पर अधिकार कर लिया। भारतीय सरकार को तुर्की को असली शासक मानने मे कोई आपत्ति नही थी यदि वह अपनी गद्दी पर सुरक्षित हा जाय। पर कठिनाई तब आयी जब तुर्की के सुल्तान ने मस्काट के नये शासक की आर्थिक सहायता रोक दी। भारत सरकार इस धन को दिलाने के लिए बाध्य थी क्योकि मस्काट के शासक को स्वीकृति प्रदान करन का अथ ही यह था। साथ ही इस स्वीकृति मे लाभ ही क्या था यदि उसकी आर्थिक सहायता ही रुक जाय। पर गह सरकार ने फारस की खाडी की राजनीति को एक ओर रखकर यह निणय किया कि वह हस्तक्षेप नही करेगी। ऐसा करने मे रोकने के लिए लार्ड मेयो क सारे प्रयास बेकार गये। 'प्रभुत्वपूण निष्क्रियता' की नीति से यह नीति हट कर थी, पर इसके लिए लार्ड मेयो की सरकार को दोषी नही ठहराया जा सकता।

इस क्षेत्र मे लार्ड मेयो की सरकार का उद्देश्य समुद्र क्षेत्र मे शाति बनाये रखना था जिससे कि आवागमन के साधन सुरक्षित रहे। और जब इस सुरक्षा पर आघात

हुआ और वह भी एक ऐसे शासक द्वारा जो ब्रिटिश मैत्री और सुरक्षा की सीमा बधा था, तब ब्रिटिश ने हस्तक्षेप करने म सकोच नही किया। वैसे तो ब्रिटिशो की गलत काय करने वाले राजा के राज्य को छीनने का इरादा नहीं था, पर राजा को स्वय हटाकर किसी ऐसे व्यक्ति को राजा बनाया जा सकता था जो ब्रिटिश के पक्ष का हो। ऐसे बहरीन द्वीप के राजा के साथ हुआ। यहा का राजा ब्रिटिश का मित्र था जिसने लिखित रूप से बाह्य झगडा म ब्रिटिश मध्यस्थता स्वीकार करने का वचन दिया था। उसके ऊपर भी समुद्र क्षेत्रीय सधि लागू होती थी। पर इसका उसने उस समय उल्लघन किया था जब आबू धाबी के शासक की सहायता लेकर उसने क्वादुर पर आक्रमण कर दिया। लाड मेयो उत्तेजित हो गया और उसने बहरीन के शासक मुहम्मद बिन खलीफा को हटा दिया और उसके स्थान पर उनके भाई अली को वहां का शासक बना दिया। पर पदमुक्त शासक न नासिर बिन मुबारक की सहायता ली और शासन को पुन प्राप्त करने के लिए अली को मार डाला। पर नासिर न उसे भी मार डाला और सधि की शर्तों का उल्लघन किया। मेयो की सरकार न दूसरी बार हस्तक्षेप किया और अली के लडके को उन्हीं शर्तों पर गद्दी दिला दी जिन शर्तों पर मुहम्मद बिन खलीफा के साथ सधि की गयी थी।

कुछ ही दिनो बाद तुर्की और फारस दोनो ने बहरीन पर अपना अधिकार जताया। गृह सरकार ने फारस को रूस के प्रभाव से मुक्त करने के लिए उसके प्रति कुछ उदारता दिखायी। पर लाड मेयो न इस नीति स विमुख होने की अनुमति नही दी और दो सघष करने वालो के अधिकार अस्वीकृत कर दिये गय। उसी तरह से मसत तथा लहज पर तुर्की के अधिकार को नही स्वीकार किया गया। वैसे ब्रिटिश की इस क्षेत्र मे कोई क्षेत्रीय महत्वाकाक्षा नही थी पर इन राज्यो का स्वतत्र रहना आवश्यक था अन्यथा यहां पर किसी बडी शक्ति के आ जाने से पूव से ब्रिटिशो के व्यापार व आवागमन पर आघात हो सकता था।

इस तरह के काय भारत म लाड मेयो के थ। कहा जाता है कि उसने काय-क्षमता और सेवा हेतु जीवन समर्पित कर दिया और उसी के लिए जान भी द दी। जनवरी 1872 मे वाइसराय ने अडमान द्वीप समूह मे बसे अपराधियो की स्थिति का जायजा लेने के लिए यात्रा की। फरवरी मे जब वह पोर्ट ब्लेयर की ओर आगे बढ रहा था जहा उसकी भाप की नौका उपस्थित थी, उसी समय एक धमाका हुआ जिससे आतकित वाइसराय का अगरक्षक जबतक पहुचे, उसे भयावह रूप से चाकू मार दिया गया। यह काम एक कट्टर पठान का था जो गुप्त रूप से वाइसराय का पीछा कर रहा था। यह पठान पजाब की घुडसवार सेना मे भर्ती था। उसे पेशावर मे अपने शत्रु की हत्या के अपराध मे सजा देकर यहा भेजा गया था जिसे वह अपराध नही मानता था। अपराधी घोषित किये जाने के बाद से ही, जैसा उसने

बाद मे बताया, उसने यह तय किया था कि वह "किसी उच्च पदाधिकारी अग्रेज" को मारकर बदला लेगा। और यही उसन किया।

इस तरह एक अनुकरणीय और दयालु व्यक्ति की मृत्यु हुई जिसन दिय गये वादो को निभाया। उसने यह सिद्ध कर दिया कि उसकी नियुक्ति के समय उसके आलोचका का मत कितना गलत था। वह भारत के लोगो का एक महान शुभ-चिन्तक था जो राजाआ और जनता दोनो से प्रेमादर प्राप्त किये हुए था।

उसका भौतिक मृत्यु प्राप्त शरीर पानी की जहाज से इग्लैण्ड भेजा गया। उसके नियुक्ति के एक प्रमुख आलोचक ने भी अपनी गलती अत मे महसूस की। इग्लैण्ड के राष्ट्रीय जनल ने इस अवसर पर निम्न कविता का प्रकाशन किया—

सतही आख्याआ पर आश्रित—
भ्रमित बुद्धि से हमन मूल्य तुम्हारा आका।
आयर सचिव निम्न पद से ऊपर उठते देखा है तुमको
भारत के महान सिंहासन पर आरोहित।
वस्तु सत्य तेरे जीवन का उदघाटित करने मे सक्षम—
वे सम्पर्की, जिन्हे प्राप्त सौभाग्य तुम्हारे साहचय का।
(दख तुम्हारा निस्पदित शव)
उन्ह ध्यान आती है तेरी बहिरतर भव्यता—
सकुलित हषपूण छवि।
अविस्माय है—
कुशल प्रशासक की वह व्यापक दूर दृष्टि—
निर्भीक और सबके स्वागत को तत्पर वह उन्मुक्त वक्ष।
प्रायश्चित सम्मान समन्वित व्यथित हृदय जन
मुकुट सजाने को आतुर है—
शान्त और उद्वेग शून्य अदभुत विजयी सिर।
जो हरीतिमा लहराई तेरे सत्कर्मों की विलम्ब से,
वह सहसा मुरझाई, उसके चलदल मूर्च्छित,
वहन कर रहा पोत मन्द मन्थर, उदास सा
आज तुम्हारे कीर्ति भार पार्थिव शरीर को,
बन्धु बान्धवो के हाथो के पहुचाने के हित।

1 हटर डब्ल्यू डब्लू पूर्वोद्धत।

13

नार्थब्रुक (1872-1876)

वह 22 जनवरी 1826 को पैदा हुआ। इसी वर्ष उसका पिता सर फ्रांसिस बेरिंग संसद म प्रविष्ट हुआ। मैलट ने लिखा है कि "टामस जाज बेरिंग जिसे बाद मे अर्ल आफ नार्थब्रुक कहा गया ऊचे पद और व्हिग राजनीति के माहौल म पाला पोसा गया।"[1] बाल्यकाल से ही टामस जाज बेरिंग बौद्धिक दृष्टि से तीव्र था, उसकी "सामान्य बुद्धि और ज्ञान" उसके ट्युटर बड के अनुसार उसकी बुद्धि स ऊपर की थी। वह 22 वष का भी नहीं हुआ था कि अपनी शिक्षा पूरी करके वह अपन चाचा का प्राइवेट सचिव हो गया। उसके चाचा हेनरी लाबूसर आयरलैंड के मामलो के मुख्य सचिव थे। 1852 के चुनावो मे वह पनरीन और फालमाउथ ने ससद सदस्य के पद के लिए खडा हो गया। पर उसे सफलता नही मिली। 1857 के सामा य चुनाव मे उसने फिर तकदीर आजमाई और इस बार 'हाउस आफ कामन्स' के लिए चुन लिया गया। इसी के शीघ्र बाद ही लाड पामसटन की सरकार न उसे सिविल लाड आफ ऐडमिरेल्टी नियुक्त किया। इसके बाद उसके जीवन मे बहुत से उतार चढाव आये जब 1872 मे उसे भारत का वाइसराय और गवनल जनरल नियुक्त किया गया।

आन्तरिक नीति

भारत मे नाथब्रुक के आगमन के पहले, लाड मेयो के कमठ काल म देश के कई कमजोर क्षेत्रो मे सुधार प्रारम्भ हो गय थे। आर्थिक विकेन्द्रीयकरण या ऐसे ही अन्य सुधार जो सिद्धान्तत अच्छे थे "निस्सदह रूप स स्थानीय करो के आरोपण और दरो म उत्साह प्रदान किया था। पर आवश्यकता इसकी थी कि देश मे नहरो और सावजनिक निर्माण के क्षेत्र मे जो व्ययशील काय हुए थे उसके कारण बजट और आर्थिक क्षेत्र का सतुलन बनाय रखना था और इसीलिए अन्य साधनो क अतिरिक्त आयकर के दर मे वृद्धि कर दी गयी थी।"[2] विधान बनाने के क्षेत्र म भी गति धीमी नही रही थी।

लाड नाथब्रुक को एक सबोधन म पीपुल्स एसोसिएशन आफ ढाका' न यह

1 बर्नार्ड मलेट टामस जार्ज, अर्ल आफ नार्थब्रुक (1908) पृ० 16।
2 वही, पृ० 65।

घोषित किया कि, "तमाम करो के अनुपयुक्त आरोपण ने जनता की स्थिति देश की नागरिक, सामाजिक और धार्मिक प्रथा और परपरा के ऊपर हस्तक्षेप करने वाले तमाम अनुचित काननो ने लोगो के मस्तिष्क मे घबडाहट, परेशानी और अविश्वास को जन्म दे दिया था।"[1] कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश जे० पी० नामन की न्यायालय की सीढी पर ही हत्या एक मुसलमान कट्टर पथी द्वारा की जा चुकी थी। कुछ ही महीनो बाद अडमान द्वीप समूह मे लाड मेयो की भी इसी तरह हत्या कर दी गयी। ये दोनो हत्याए वहाबियो से सबधित थी पर ये सिद्ध नही हो सकी। पर वहाबी आदोलन सीमा पर सित्ताना राज्य तक ही सीमित था और पजाब के कूका आदोलन ने माहौल को गर्म कर दिया था जिससे बहुत से अग्रेज अपनी सुरक्षा के लिए चिन्तित थे। अपने आगमन के प्रथम सप्ताह मे, नाथब्रुक ने इस सबध मे एक जाच करायी और कहा कि देश मे असतोष और परेशानी है और "सभवत इसका जन्म करारोपण और कानूनो म सुधार आदि के कारण है जिसे आवश्यकता से कुछ अधिक तजी से लागू किया गया है। यह अति दुर्भाग्यपूर्ण है कि आयकर 1870 मे बढाया गया और स्थानीय कर 1871 मे। जबकि सच यह है कि इसकी आवश्यकता नही थी।"[2]

कलकत्ता के इन्चाज कमिश्नर सैम्युअल वान्चोप ने जैसा लिखा कि इस तरह की भावना व्याप्त थी कि 'प्रत्येक गवनर का उद्देश्य उसे उलट देना है जो उसके पहले के गवनर ने किया था, और कुछ नया प्रारभ करना है देशी लोग ऐसा समझते हैं कि उन्हे धोखा दिया गया है और पुरानी सभ्यता की स्थिति मे ढकेल दिया गया है कि उसी मे रहा जाय।"

'देशी लोग परिवतन से घृणा करते है और उनका कहना है कि पिछले 15 वर्षों म नये कानूनो के द्वारा देश मे बहुत उल्टा सीधा किया गया है। नये कर भी लगाये गय है और नयी सस्थाये भी स्थापित की गयी हैं।' नाथब्रुक ने एक मित्र को लिखा, 'जितना ही मैं इस देश को देखता हू मुझे उतना ही सन्तोष होता है कि हमने इसे तेजी से आगे बढाया है और अब इस पर रोक लगनी चाहिए।"[3] इसलिए उसने यह अनुभव किया कि अब देश को कुछ विश्राम की आवश्यकता है।

भारत मे पहुचने के तुरन्त बाद उसने छान-बीन की और उपरोक्त निष्कष पर पहुचा तथा भारत के लोगो के समक्ष घोषणा की कि, "अग्रेज क्षेत्रीय अधिकार

1 एड्रस टू नाथब्रुक, 15 मई 1872 मलिक जे० बी० लाड नाथब्रुक एण्ड हिज मिशन इन इण्डिया द्वारा उद्धत।

2 मरेट पूर्वोद्धत प० 23।

3 मोल्टन एडवड सी० लाड नाथब्रुक्स इडियन एडमिनिस्ट्रशन (1872 76) प० 13-14।

के करो मे भी वृद्धि की गयी जिसका परिणाम यह हुआ कि सभी ओर असन्तोष की भावना व्याप्त हो गयी। बहुत से मामलो मे इन करो का उद्देश्य विकास कार्यों को हाथ मे लेना था जिससे जनता को लाभ हो। पर जनता चूकि शिक्षित थी इस कारण वह इसे स्वीकार नही करती थी जिसका परिणाम यह था कि सरकार का मन्तव्य लोग नही समझते थे और उसकी आलोचना समाचार पत्र आदि तक करते थे।

नाथब्रुक ने सर्वोत्तम स्थानीय अधिकारियो, भारतीय और अग्रेजी ईसाई मिशनरियो और कुछ अच्छे जानेमाने नेताओ से इस सम्बन्ध मे उनके विचार तथा रिपोर्टें मागी। सभी की ओर से यह मत आया कि करो मे कमी किये जाने की आवश्यकता है। नाथ ब्रुक न पहले तो यह प्रस्ताव किया कि प्रातीय करो को या तो समाप्त कर दिया जाय या उनमे कटौती कर दी जाय पर उनके स्थान पर आयकर को कुछ दिन तक चलता रहने दिया जाय। पर इस प्रस्ताव म दो दोष थे। पहला तो यह था कि आत्म निर्भरता तथा प्रातीय उत्तरदायित्व की जो भावना प्रारम्भ हुइ है उसको ठेस लगेगी और दूसरे केन्द्रीय आय साधन के भविष्य के स्रोतो से हाथ धोना पडेगा। इसीलिए कौंसिल के गवनर जनरल द्वारा 3 की तुलना मे 4 वोट के बहुमत से आयकर वापस ले लिया गया और भविष्य के लिए एक प्रस्ताव मे सरकार ने यह घोषणा की कि "सरकार का यह विचार है कि भारत की आर्थिक स्थिति को सुदृढ और सन्तोषजनक बनाये रखने के लिए अतिरिक्त कर की कोई आवश्यकता नही है।"[1] आयकर की वापसी से 6,00,000 पौण्ड की हानि हुई।

आयकर समाप्त करने के बाद नाथ ब्रुक ने स्थानीय करो के क्षेत्र मे सुविधायें दने को सोचा। उसने सोचा कि भूमि पर चुगी की स्वीकृति चूकि सेक्रेट्री ऑफ स्टेट न प्रदान की है इस कारण इसे समाप्त नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त इसकी समाप्ति केन्द्रीय सरकार को अपने साधन से प्रातीय सरकार को सहायता करने को बाध्य करेगी जो वैसे भी कम है। इसलिए उसने एक ओर स्थानीय सरकार से स्थानीय क्षेत्रा म उत्थान हेतु जन सहयोग मागने को कहा जिसके लिए उन्हें कर प्राप्त होता है और उन्ह यह परामश भी दिया कि वे स्थानीय करो म वद्धि न करें। प्रातीय सरकारो ने इस निर्देश के अनुसार काय भी किया। मैलेट ने लिखा है कि, "आयकर की वापसी, कृषको के अतिरिक्त लोगो पर बम्बई मे कर न लगाना, मद्रास मे गह कर का न लगाया जाना, बगाल नगरपालिका बिल पर रोक तथा मध्य प्रात मे पडारी कर (एक तरह का स्थानीय आयकर) मे सशोधन आदि का एक अति विकसित स्थानीय पत्रिका के विचार से "लोकप्रिय मस्तिष्क पर इसका बडा शामक प्रभाव पडा।"[2]

---

1 मोल्टन पूर्वोद्धत पृ० 35-36।

2 मलेट पूर्वोद्धत पृ० 23 52।

नही चाहते, सभी को उचित न्याय प्राप्त होगा, धार्मिक स्वतत्रता बनाय रखा जायेगी, सभी जाति और बिरादरी की भावनाओ का उचित आदर किया जायगा, इन सिद्धाता के पालन की मेरी इच्छा भी है और कत्तव्य भी।"[1]

आर्थिक नीति

एक उदार व्यक्ति की तरह जो वह था भी, लाड नाथ ब्रुक न अहस्तक्षेप के आर्थिक सिद्धात मे विश्वास किया। उसन प्रत्यक्ष कर का पक्ष नही लिया और स्वतत्र व्यापार की नीति को पसद किया। उसने लाड कैनिंग से उसकी नीति पर सहमति व्यक्त करते हुए कहा, "खतरे के लिए खतरा, मैं भारत पर 40 हजार युरोपीय लोगो के द्वारा शासन करने का खतरा उठाऊगा, पर अलोकप्रिय कर लगाने का खतरा नही।"[2] उसे यह पक्का पता चल गया था कि भारत म असतोष का एक मुख्य कारण उन पर आरोपित प्रत्यक्षकर है और वह इस कम करन को आमादा था। 1872 73 के बजट आकलन मे 2,37,000 पौन्ड का लाभ दिखाया गया था। पर जैसे जैसे वष बीतता गया, पता चला कि इससे भी अधिक का लाभ होगा। नाथब्रुक ने यह निणय किया कि यही वह समय है जब कुछ एतराज वाले करो को कम कर दिया जाय या समाप्त कर दिया जाय।

ऐसा ही एक कर आयकर था जिसे मेयो ने 500 रुपये से ऊपर की आय पर 1% के हिसाब से 1869 मे लगाया था और 1870 मे इसे बढाकर 3% कर दिया था। इसका बडा विरोध था जिसके कारण मेयो ने 750 रु० की आय के ऊपर घटाकर 1% कर दिया। लाड मेयो की मृत्यु के बाद स्थानाप न वाइसराय लार्ड नेपियर ने इस प्रश्न की पूरी छानबीन की और यसे तो 1872 73 म इसे समाप्त नही किया गया पर छूट की सीमा 750 रु० से बढाकर 1,000 रु० कर दी गयी। जनता और अखबारो ने इसकी आलोचना की कि इसे समाप्त क्यो नही किया गया।

इसके अतिरिक्त 1870 मे मेयो द्वारा विके द्रीयकरण ऐक्ट के पारित होने के बाद स स्थानीय करो म अति वृद्धि हो गयी थी। सेक्रेट्री ऑफ स्टेट न प्रातीय सर कारो को भूमि पर कर लगाने की अनुमति इसलिए दी थी कि सडका, शिक्षा और अ य सावजनिक कार्यों पर व्यय किया जा सके, पर इसका उपयोग प्रात के रिक्त राजकोषा को भरने के लिए भी किया गया। बम्बई ने देहातो म कृषका के अति रिक्त लोगो पर एक कर लगाया, मध्य प्रात न सडका पर चुगी लगायी तथा बगाल व मद्रास ने भी तेजी से साधन बढाने के लिए कर लगाय। नगर पालिका

1 मलेट पूर्वोद्धत प० 23।

2 मौल्टन पूर्वोद्धत प० 33 द्वारा उद्धत।

के करो मे भी वृद्धि की गयी जिसका परिणाम यह हुआ कि सभी ओर असन्तोष की भावना व्याप्त हो गयी। बहुत से मामलो मे इन करो का उद्देश्य विकास कार्यों को हाथ मे लेना था जिससे जनता को लाभ हो। पर जनता चूकि शिक्षित थी इस कारण वह इसे स्वीकार नही करती थी जिसका परिणाम यह था कि सरकार का मन्तव्य लोग नही समझते थे और उसकी आलोचना समाचार पत्र आदि तक करते थे।

नायब्रुक ने सर्वोत्तम स्थानीय अधिकारियो, भारतीय और अग्रेजी ईसाई मिशनरियो और कुछ अच्छे जानेमाने नेताओ से इस सम्बन्ध म उनके विचार तथा रिपोर्टें मागी। सभी की ओर से यह मत आया कि करा म कमी किये जाने की आवश्यकता है। नाथ ब्रुक ने पहले तो यह प्रस्ताव किया कि प्रातीय करो को या तो समाप्त कर दिया जाय या उनम कटौती कर दी जाय पर उनके स्थान पर आयकर को कुछ दिन तक चलता रहने दिया जाय। पर इस प्रस्ताव म दो दोष थ। पहला तो यह था कि आत्म निर्भरता तथा प्रातीय उत्तरदायित्व की जो भावना प्रारम्भ हुइ है उसको ठेस लगेगी और दूसरे केन्द्रीय आय साधन के भविष्य के स्रोता से हाथ धोना पडेगा। इसीलिए कौंसिल के गवनर जनरल द्वारा 3 की तुलना मे 4 वोट के बहुमत से आयकर वापस ले लिया गया और भविष्य के लिए एक प्रस्ताव म सरकार ने यह घोषणा की कि "सरकार का यह विचार है कि भारत की आर्थिक स्थिति को सुदृढ और सन्तोषजनक बनाये रखने के लिए अतिरिक्त कर की कोई आवश्यकता नही है।"[1] आयकर की वापसी स 6,00 000 पौण्ड की हानि हुई।

आयकर समाप्त करने के बाद नाथ ब्रुक ने स्थानीय करो के क्षेत्र मे सुविधायें देने की सोचा। उसने सोचा कि भूमि पर चुगी की स्वीकृति चूकि सेक्रेट्री ऑफ स्टेट ने प्रदान की है इस कारण इसे समाप्त नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त इसकी समाप्ति केन्द्रीय सरकार को अपने साधन से प्रातीय सरकार को सहायता करने को बाध्य करेगी जो वसे भी कम है। इसलिए उसने एक ओर स्थानीय सरकार से स्थानीय क्षेत्रो मे उत्थान हेतु जन सहयोग मागने को कहा जिसके लिए उन्हें कर प्राप्त होता है और उन्ह यह परामश भी दिया कि वे स्थानीय करों मे वृद्धि न करें। प्रातीय सरकारो ने इस निर्देश के अनुसार काय भी किया। मैलेट ने लिखा है कि, "आयकर की वापसी, कृषको के अतिरिक्त लोगो पर बम्बई मे कर न लगाना, मद्रास मे गृह कर का न लगाया जाना, बगाल नगरपालिका बिल पर रोक तथा मध्य प्रात मे पटारी कर (एक तरह का स्थानीय आयकर) मे सशोधन आदि का एक अति विकसित स्थानीय पत्रिका के विचार से "लोकप्रिय मस्तिष्क पर इसका बडा शामक प्रभाव पडा।"[2]

1 मोल्टन पूर्वोद्धृत पृ० 35-36।
2 मैलेट पूर्वोद्धृत पृ० 23 52।

इसके अतिरिक्त म्युनिसिपल करो की बढोतरी रोकने के लिए केन्द्र ने एक कानून पारित किया, और नार्थब्रुक ने इन परिवतनो तथा कर मे कमियो का स्वागत किया और कहा कि 'स्थानीय क्षेत्रो के विकास की गति का धीमा हो जाना वह हल्की कीमत है जो हम प्रातीय करो को जनमत से जोडने के लिए देनी पडेगी।"[1]

पर भारत के सेक्रेट्री आफ स्टेट आर्गिल ने नार्थ ब्रुक की नीति से पूर्ण सहमति व्यक्त नही की और लिखा "कि मेरा तो मत है कर की वापसी (आयकर) तब बेहतर रही होती यदि नमक पर कर घटा दिया गया होता क्योकि आयकर के हटाये जाने से तुलनात्मक दृष्टि से थोडे और वह भी धनी लोगो को छोड किसको लाभ पहुचा है ?"[2]

आयकर समाप्त करने के अतिरिक्त नार्थब्रुक ने तमाम अन्य आर्थिक सुधार करने का प्रयास किया। पर इसमे उसे पूरी सफलता इसलिए नही मिली क्योकि गृह अधिकारियो ने उसे स्वीकृति नही प्रदान की या कुछ और कारण उपस्थित हो गये। इसी तरह का एक सुधार जो उसने करने का प्रयास किया वह नमक पर कर था जो दक्षिणी भारत मे बहुत कम था और राजपूताना मे था ही नही और इस तरह अलग प्रांतो मे इसकी दर अलग अलग थी। इसके कारण जहा पर नमक पर कर नही था या कम था वहा से उन क्षेत्रो मे जहा नमक का दाम अधिक था इसकी हेराफेरी शुरू हो गयी। इस तरह की बेईमानी पर रोक के लिए 2500 मील लम्बे कस्टम शक्ति को सुरक्षित रखने के लिए 13,000 आदमी नियुक्त किये गये थे जिन पर अत्यधिक खर्चा आता था। नार्थब्रुक ने करो मे समानता लाकर और कुछ तरीके अपनाकर 1,000 मील तक पर से कस्टम की व्यवस्था को बेकार कर दिया और इस तरह व्यय मे कटौती की।

नार्थब्रुक के काल मे एक महत्त्वपूर्ण घटना वह विवाद था जो उसके बीच तथा सेक्रेट्री आफ स्टेट सलिसबरी के बीच भारतीय सीमा शुल्क को लेकर उत्पन्न हुआ। 1871 के ऐक्ट के अनुसार 54 बाहर से मगाई जाने वाली वस्तुओ पर साढे सात प्रतिशत चुगी की सामान्य दर तय थी जिसमे थोडी बहुत घटी-बढी भी हो सकती थी। बाहर भेजी जाने वाली हर महत्त्वपूर्ण वस्तुओ पर 3% चुगी लगती थी। बम्बई के चैम्बर आफ कामर्स के एक निवेदन मे बाहर भेजी जानेवाली वस्तुओ पर लगाये जानेवाले कर को समाप्त करने को कहा गया जिससे कि विदेशी बाजारो मे भारतीय माल प्रतियोगिता मे खडा हो सके। दूसरी ओर मैनचेस्टर के चैम्बर आफ कामर्स ने लकाशायर के तैयार माल पर 5% और धागे पर साढे तीन प्रतिशत के आयात चुगी का विरोध किया। विद्रोह के बाद आर्थिक कठिनाइयो

1 माल्टन पूर्वोद्धत पृ० 39।
2 वही पृ० 41 मे उद्धत।

से निबटन के लिए कपडे और धागे पर लगाया गया 10 प्रतिशत का आयात कर लकाशायर के उद्योगपतियो के विरोध पर 1862 मे घटाकर उपरोक्त कर दिया गया था। पर अब व इन कम दरो पर भी एतराज कर रहे थे और स्वतन्त्र व्यापार नीति के नाम पर इसकी आलोचना कर रहे थे और चाह रहे थे कि भारत सरकार की नीति कपडे के उद्योग को इस तरह से सुरक्षा प्रदान करने की होनी चाहिए।

लकाशायर इंग्लण्ड म अनुदार दल वालो का गढ था। जब वे शासन मे आये तो उन्होने सैलिसबरी को हटाकर मैनचेस्टर चैम्बर ऑफ कामर्स के डाइरेक्टर को उसके स्थान पर भारतीय कौंसिल म रख दिया। अब उन्होने इन आयात-करो के विरुद्ध बार बार प्रार्थना पत्र भेजे जिस सलिसबरी न भारत भेज दिया। नाथब्रुक न एक सीमा शुल्क समिति की रचना इसलिए कर दी कि वह इस प्रश्न के तह मे जाकर खोजबीन करे और उसके आधार पर ही उसन कुछ परिवर्तन किये।

जो परिवर्तन किय गये उनके अनुसार सभी निर्यात करो को समाप्त कर दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि 1874 75 के आकडो के हिसाब से 17,30,000 रुपय की हानि हुई। आयात कर की सामान्य दर भी घटाकर साढे सात से 5 प्रतिशत कर दी गई जिसस 17,20,000 रुपय वार्षिक की हानि हुई। काफी पर आयात-कर जो भारत के काफी उद्योग को सुरक्षा प्रदान करता था, पूर्णतया समाप्त कर दिया गया। इसी तरह तम्बाकू जो कई उद्योगो को सुरक्षा प्रदान करता था उसपर से भी आयात कर 10 स घटा कर 5 प्रतिशत कर दिया गया। राजस्व मे उपरोक्त क्षति की पूर्ति के लिए शराब, अस्त्र, गोला-बारूद आदि पर या तो कर बढा दिये गये या नये सिरे से उनपर कर लगाया गया। पर धागे और कपडे पर क्रमश साढे तीन व 5 प्रतिशत का आयात कर बना रहने दिया गया। इस सबध म 1875 म नाथब्रुक ने सैलिसबरी को लिखा कि यह आयात-कर "रक्षात्मक रूप से इसके आकस्मिक प्रभाव के अतिरिक्त, जोकि एक दोष ही है, मेरी दृष्टि से भारत मे आरोपित करो मे सबसे कम एतराज के लायक है।"[1]

यह तर्क दिया गया कि साढे तीन से 5 प्रतिशत का नीचा आयात-कर भारत के कपडा उद्योग की अधिक रक्षा नही कर सकता था। यदि इसकी प्रगति हो रही थी तो लकाशायर की तुलना मे इसे कुछ स्वाभाविक लाभ थे। इसका मुख्य काम था इससे प्राप्त राजस्व जो सरकार उस समय खोने की स्थिति मे नही थी। इसके अतिरिक्त बढिया कपडो पर अलग से कर लगाया गया और इसलिए धनी वर्ग के लोगो को यह कीमत चुकानी पडी। पहले ही इसपर लगे कम कर पर जनमत विरोध मे था। यदि इन परिस्थितियो मे इसे समाप्त कर दिया गया और प्रत्यक्ष कर लगाने की चेष्टा की गई तो इसपर पढे लिखे लोग तथा समाचारपत्र विरोध

1 मोल्टन पूर्वोद्धत पृ० 185।

प्रमुख थे। भारत को उन युद्धो का व्यय भी देना पडता था जो मात्र ब्रिटिशो के साम्राज्वादी हित के लिए लडे जाते थे और जिनका दूर से भी इस देश से सवध नही था। इस तरह भारत ने 1867 मे लडे गये अबीसीनिया के युद्ध का व्यय दिया और सर जॉन लारेंस का वह सारा विरोध कि विद्रोह के कारण भारत का सब कुछ बर्बाद हो चुका है, काम नही आया। 1875 मे भारत से पेरक पर किये गये आक्रमण के लिए व्यय वसूल किया और नाथब्रुक के सारे विरोध को अस्वीकार कर दिया गया। नाथब्रुक के विरोध के बावजूद गृह क्षेत्र मे व्यय और बढा और वह असहाय बना रहा।

नाथब्रुक ने प्रान्तो से कहा कि वे असैनिक प्रशसान मे व्यय मे कमी करें। उसने कहा कि शिक्षा व आवागमन के विकास मे रोक से कम हानि है पर कर बढाने से अधिक। वैसे तो प्रान्तो ने वाइसराय के इस माग के विषय मे कुछ बताने मे सफलता नही प्राप्त की जिसमे कहा गया था कि वे ये बताए कि कहा-कहा लोगो को जगहो से हटाकर धन मे बचत की जा सकती है। पर नार्थब्रुक को इसमे सफलता मिली कि वह प्रान्तो को देय धन मे बढोतरी न करे।

मेयो की तरह नाथब्रुक ने सेना मे पुनसगठन की योजना बनाकर सैनिक व्यय मे कटौती की चेष्टा की। वैसे तो इस क्षेत्र मे भी वह बहुत कुछ नही कर सका, पर उसने सेनापति की बढती हुई माग की पूर्ति मे असमर्थता व्यक्त कर 4,00,000 पौण्ड प्रतिवर्ष के हिसाब से अपने पूर्व अधिकारी से अधिक की बचत की। इसके अतिरिक्त बम्बई, पजाब, सिंध और अवध के क्षेत्र द्वारा 1872 मे प्रस्तावित कुछ सिंचाई योजनाओ को उसने स्वीकार नही किया। इसी तरह 8 अक्तूबर 1874 मे सरकार के एक प्रस्ताव के द्वारा बगाल के अति व्ययसाध्य सिंचाई योजना को अस्वीकार कर दिया गया और उसके स्थान पर स्थानीय जानकारी और आवश्यकता पर आधारित एक सस्ती योजना को स्वीकृति प्रदान की गई।

नाथब्रुक की दृष्टि मे भारत की समस्याओ का समाधान बढे हुए करो से नही होना था बल्कि स्वतत्र व्यापार से होना था जिसम आयात कम किया जाना था और निर्यात अधिक। और इसलिए जैसा कि लार्ड क्रोमर ने लिखा है "लार्ड नाथब्रुक ने बम्बई पहुचकर जो पहला कार्य किया वह गेहू पर निर्यात कर को समाप्त करना था। उसने तेजी से सिंध घाटी रेलवे का पूरा करने का प्रयास किया और सफलतापूर्वक अर्गील के ड्यूक और इडिया आफिस द्वारा दवाव डालकर मुल्तान और हैदराबाद (सिंध) के बीच छोटी लाइन की रेलवे लाइन बनाने की माग के दबाव के सामने नही झुका। इन दोनो सम्मिलित प्रयासो म भारतीय गेहू का व्यापार बढा और ऊचे अनुपात मे पहुच गया। रेलवे जो सामाजिक महत्व को ध्यान मे रखकर बनाई गई थी, व्यापार के क्षेत्र म अत्यधिक मूल्यवान

व्यक्त करेंगे। पर नार्थब्रुक ऐसे कदम उठाने को तैयार था जिससे भारत मे बढ़िया कपडे के उद्योग का विकास रुके क्योंकि इससे लकाशायर के भविष्य के उद्योग पर विनाशकारी प्रभाव पड सकता था। वैसे ब्रिटिशो के लिए परेशानी पैदा करने वाला ऐसा कोई उद्योग था भी नही।

पर नार्थब्रुक के इस कदम से लकाशायर के उद्योगपति सतुष्ट नही हुए और उन्होने सैलिसबरी के विरोध भाव को उभारा जिसने इस सबध मे भारत सरकार अधिनियम को कायाथ अनुमति न देने की चेतावनी दी और एक अपूव कदम यह उठाया कि अपने अवर सचिव सरलुई मैलेट को व्यक्तिगत रूप से भारत वाइसराय को यह समझाने के लिए भेजा कि वह एतराज वाले करो को समाप्त कर दे। काफी कडवापन पैदा हो गया। नार्थब्रुक पूरे मसले पर फिर स विचार करने को उद्यत नही था। पर वह कुछ मागो की पूर्ति के लिए कुछ परिवतन के लिए तैयार था। पर सैलिसबरी ने कठोर रुख अपनाया जिसके लिए उसकी आलोचना ससद और समाचार-पत्रो मे की गई। 'टाइम्स' न सैलिसबरी के इस कारवाई की निदा की जिसके द्वारा उसने वाइसराय और उसकी कौंसिल को अपना कठपुतली बनाने की चेष्टा की और 'डाउनिंग स्ट्रीट से उसपर प्रभाव डाला"। इससे स्वाभिमानी व्यक्तियो को इस पद पर काय करने मे कठिनाई ही होगी "जब हम को यह न पता चल जाय कि किसी दुघटना के कारण स्थिति बद से बदतर होने वाली है।"[1] पर सैलिसबरी न अपने मे अधिक परिवतन नही किया जिसके फलस्वरूप नार्थब्रुक के उत्तराधिकारी लाड लिटन को उसकी इच्छानुसार परिवतन करना पडा।

बदोबस्त अधिकारियो का यह दृष्टिकोण था कि प्रत्येक राजस्व बदोबस्त के साथ वे कर की दर मे वद्धि करते थे। यह उन क्षेत्रो म वे करते थे जहा स्थायी बदोबस्त नही हो पाया था। नार्थब्रुक ने यह सूचना दी कि यदि ऊचे कृषि लाभ के साथ कृषकों के ऊपर साधारण कर लगाया जाय तो चुगी वाली वस्तुओ का प्रयोग कृषक अधिक करेंगे जिससे दूसरी तरह से सरकार को लाभ होगा। इसके स्थान पर ऊचे कर उन्ह गरीब, आलसी और असतुष्ट बना देंगे, परिणामस्वरूप प्रातीय सरकारो ने अपनी आदतें बदल दी। इसीलिए अवध सरकार न 12 लाख रुपये वसूले गय कर को वापस कर दिया। बम्बई मे 96 प्रतिशत कर म वृद्धि के स्थान पर केवल 33 प्रतिशत की ही वृद्धि की गई। पर इस ढील के बावजूद भू-राजस्व पर 1872 मे जहा 21 करोड 35 लाख पौंड कर लगा था, वहा अब इसे बढाकर 1875 म 21 करोड 50 लाख कर दिया गया।

भारत के सपूण व्यय मे से 25 प्रतिशत से ऊपर गृह क्षेत्र मे व्यय हो जाता था जिसम सैनिक क्षेत्र, पेंशन तथा लदन म इडिया आफिस पर होन वाले व्यय

1 मोन्न पूर्वोद्धृत 208-209।

प्रमुख थे। भारत को उन युद्धो का व्यय भी देना पडता था जो मात्र ब्रिटिशो के साम्राज्वादी हित के लिए लडे जाते थे और जिनका दूर से भी इस देश से सबध नही था। इस तरह भारत ने 1867 मे लडे गये अबीसीनिया के युद्ध का व्यय दिया और सर जॉन लारेंस का वह सारा विरोध कि विद्रोह के कारण भारत का सब कुछ बर्बाद हो चुका है, काम नही आया। 1875 मे भारत से पेरक पर किये गये आक्रमण के लिए व्यय वसूल किया और नाथब्रुक के सारे विरोध को अस्वीकार कर दिया गया। नाथब्रुक के विरोध के बावजूद गृह क्षेत्र मे व्यय और बढा और वह असहाय बना रहा।

नाथब्रुक ने प्रान्तो से कहा कि वे असैनिक प्रशसान मे व्यय मे कमी करें। उसने कहा कि शिक्षा व आवागमन के विकास मे रोक से कम हानि है पर कर बढाने से अधिक। वैसे तो प्रा तो ने वाइसराय के इस माग के विषय मे कुछ बताने मे सफलता नही प्राप्त की जिसमे कहा गया था कि वे ये बताए कि कहा कहा लोगो को जगहो से हटाकर धन मे बचत की जा सकती है। पर नार्थब्रुक को इसमे सफलता मिली कि वह प्रा तो को देय धन मे बढोतरी न करें।

मेयो की तरह नाथब्रुक ने सेना मे पुनर्संगठन की योजना बनाकर सैनिक व्यय मे कटौती की चेष्टा की। वसे तो इस क्षेत्र मे भी वह बहुत कुछ नही कर सका, पर उसने सेनापति की बढती हुई माग की पूर्ति मे असमथता व्यक्त कर 4,00,000 पौण्ड प्रतिवप के हिसाब से अपने पूव अधिकारी से अधिक की बचत की। इसके अतिरिक्त बम्बई, पजाब, सिंध और अवध के क्षेत्र द्वारा 1872 मे प्रस्तावित कुछ सिंचाई योजनाओ को उसने स्वीकार नही किया। इसी तरह ▮ अक्तूबर 1874 मे सरकार के एक प्रस्ताव के द्वारा बगाल के अति व्ययसाध्य सिंचाई योजना को अस्वीकार कर दिया गया और उसके स्थान पर स्थानीय जानकारी और आवश्यकता पर आधारित एक सस्ती योजना को स्वीकृति प्रदान की गई।

नाथब्रुक की दृष्टि मे भारत की समस्याओ का समाधान बढे हुए करो से नही होना था बल्कि स्वतत्र व्यापार से होना था जिसम आयात कम किया जाना था और निर्यात अधिक। और इसलिए जैसा कि लाड क्रोमर ने लिखा है "लाड नाथब्रुक ने बम्बई पहुचकर जो पहला काय किया वह गेहू पर निर्यात कर को समाप्त करना था। उसने तेजी से सिंध घाटी रेलवे को पूरा करने का प्रयास किया और सफलतापूवक अप्रील के डयुक और इडिया आफिस द्वारा दबाव डालकर मुल्तान और हैदराबाद (सिंध) के बीच छोटी लाइन की रेलवे लाइन बनाने की माग के दबाव के सामने नही झुका। इन दोनो सम्मिलित प्रयासो से भारतीय गेहू का व्यापार बढा और ऊचे अनुपात मे पहुच गया। रेलवे जो सामाजिक महत्त्व को ध्यान मे रखकर बनाई गई थी, व्यापार के क्षेत्र म अत्यधिक मूल्यवान

सिद्ध हुई।"[1]

1875 के अत म नाथब्रुक को जिस एक कठिनाई का सामना करना पडा वह थी विश्वजनीन चादी के दाम म भारी कमी। चकि भारत मे सिक्के का आधार चादी था और इग्लण्ड के सिक्के का आधार सोना, इसलिए भारत को गृहक्षेत्र मे होने वाले व्यय पर अधिक व्यय करना पडा। 1875 म ही केवल विनिमय के कारण उसे 14 लाख पौण्ड की हानि उठानी पडी। वाइसराय को 1873 74 म दुर्भिक्ष की कठिनाई का भी सामना करना पडा जिस पर 63,06,673 पौण्ड का व्यय आया जिसे राजस्व के स्थान पर वसूला गया। पर इस सबके बावजूद नाथब्रुक के वाइसरायत्व काल मे 2 लाख पौण्ड की शुद्ध बचत रही जो एक महत्त्वपूण बात थी।

'हिंदू पट्रियाट' ने स्थिति का आकलन इस तरह से किया, "आर्थिक क्षेत्र म किये कार्यों के महत्त्व की अनुभूति हम पूरी तरह स नहीं कर सकते जबतक कि हम नाथब्रुक के मेयो की सरकार के आर्थिक फिजूलखर्ची तथा अत्यधिक कर आरोपण काल के विषय म न जानें जिसके कारण पूरे देश मे एक कोने म दूसरे कोने तक असतोष व्याप्त था। भूतपूव वाइसराय ने 50 वष का काम 5 वष म करने की चेष्टा की जिसका परिणाम था लोगो पर लगने वाला अतिरिक्त कर नाथब्रुक के आर्थिक नीति का मूल उद्देश्य जनता के ऊपर से कर के बोझ को कम करना है जहा लाड नाथब्रुक ने जनता को कर के मामले म तमाम हिदायतें दी, उसने प्रगति की गति को तनिक भी धीमा नही पडने दिया जो इसके पूव के प्रशासन म प्रारभ हो चुका था।"[2]

नाथब्रुक ने सफलताए अर्जित की पर यह आवश्यक नही है कि हम उसकी तुलना मेयो से करें और न ही 'हिंदू पैट्रियाट' का मत मजबूत छानबीन पर आधारित है। सच तो यह है कि मेयो ने भारतीय अथ-व्यवस्था को स्वस्थ आधार प्रदान किया जो प्रतिवष घाटे मे चला करती थी इसमे विश्वसनीय व अनुशासित आकडो का भी अभाव था तथा नियमित आदता का भी जिससे प्रत्येक कोटि की विकास योजना अत्यधिक कठिन हो जाती थी। अत्यधिक परिश्रम करके उसने भूमि पर बीज बोया और लाड नाथब्रुक ने उसका फल प्राप्त किया।

शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र म लाड नाथब्रुक ने 1854 मे बने वुड के डिस्पैच के सिद्धात को स्वीकार किया। सर चार्ल्स वुड के व्यक्तिगत सचिव की हैसियत से इस डिस्पैच

---

1 छाबडा जी० एस० सोशल ऐण्ड इकोनामिक हिस्ट्री आफ पजाब, प० 271 75।
2 मोल्टन पूर्वोद्धत प० 59 60 द्वारा उद्धत।

को तैयार कराने मे उसकी अहम भूमिका थी। पर उसे खेद था कि शिक्षा के क्षेत्र मे भारत मे कोई प्रगति नही हुई है। उन्नीसवी सदी के छठें दशक मे उच्च शिक्षा के विकास पर वल दिया गया था जो इस वात से स्पष्ट है कि जहा बगाल सरकार ने इस पर प्रतिवर्ष 1,50,000 पौण्ड व्यय किया, प्रारंभिक शिक्षा को भूखों मरना पडा और उसे केवल 50,000 पौण्ड वार्षिक ही प्रदान किया गया। लाड मेयो इस नीति को बदलना चाहता था। इसीलिए उसके काल म डिग्री कॉलेजो की सख्या घटा दी गई। इससे बचा धन प्रारंभिक शिक्षा पर व्यय करने का निश्चय किया गया तथा शेष बचे उच्च शिक्षा पर उस धन को व्यय करने का निश्चय किया गया। उसने अपनी नीति मे यह घोषित किया कि उसकी सरकार अंग्रेजी शिक्षा पर होनवाले व्यय को घटायेगी और उसके स्थान पर वर्नाक्युलर शिक्षा पर जोर देगी। नीति की यह कुल्हाडी बगाल के बरहामपुर, कृष्णानगर और पटना कालेजो के गले पर पडी जिसके फलस्वरूप रामनाथ टैगोर जैसे शिक्षित व्यक्ति चिल्ला पडे कि मेयो की सरकार का उद्देश्य अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगो को नीचा दिखाना है। विरोध-सभायें की गइ, सेक्रेट्री आफ स्टेट को प्रार्थना-पत्र भेजे गये जिसमे यह कहा गया कि यह प्रशसनीय है कि सरकार वर्नाक्युलर शिक्षा बढाना चाहती है, पर इसे ऊची शिक्षा की कीमत पर क्यो किया जा रहा है?

जब नायब्रुक भारत पहुचा, भारत मे शिक्षितो का यह विरोध जारी था और उन्हे यह डर था कि सरकार अब 1854 के डिस्पैच के सिद्धातो को नहीं अपनाना चाहती। नये गवनर जनरल ने जनवरी 1873 मे एक प्रस्ताव स्वीकार किया कि सरकार का कोई ऐसा मन्तव्य नही है कि वह वुड के डिस्पैच को अस्वीकार करेगी तथा प्रारंभिक शिक्षा को ऊची शिक्षा की कीमत पर आगे नहीं बढायेगी। उपरोक्त तीनो कालेज धीरे धीरे अपने पूर्व स्थिति मे ले आये गये। और नायब्रुक ने घोषणा की कि वह भारत के भूतकालीन उपलब्धियो के प्रति आदर रखता है विशेषकर कला और निर्माण के क्षेत्र मे। देश के विभिन्न भागो मे उदाहरणार्थ उडीसा आदि मे निर्मित वास्तुकला भारतीय उर्वर कल्पना और उच्च बौद्धिक सफलता का स्मरण दिलाती है। इसीलिए वह चाहता है कि भारत पश्चिम का अनुकरण न करे। उसने कहा 'कि मैं इगलैण्ड और भारत मे लाभपूर्ण सपर्क देखना चाहता हू मैं भारत म अंग्रेजो या फ्रांसीसी कला की नकल देखना पसन्द नहीं करता।'[1] उसने प्रान्तीय सरकारो को सूचना भेजी कि वे वर्नाक्युलर स्कूलों की पुस्तको मे संशोधन की व्यवस्था करें जिससे कि उनमें भारतीय विवरण व कथायें आ सकें। पश्चिम की बातें उसमे न हो क्योंकि उन्हे समझना उनके लिए कठिन है।

---

1 मोस्टन पृ॰ 68 द्वारा उद्धृत।

मेयो की तरह नार्थब्रुक ने भी प्रान्तो मे मुसलमानो की पिछडी शिक्षा की ओर ध्यान दिया। उसने सर सैय्यद अहमद की मुस्लिम ऐंग्लो वर्नाक्युलर कॉलेज अलीगढ को हर तरह की सरकारी सहायता की और अपने पास से सदा के लिए 10 हजार रुपये वजीफे के लिए प्रदान किया। यह प्रस्ताव भी पारित किया गया कि उच्च शिक्षा म मुस्लिम साहित्य को इसका उचित स्थान प्रदान किया जाय। इस सबका सभावित परिणाम यह हुआ कि पढे लिखे लोगो का विश्वास वापस आ गया और उनका विद्रोह धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

असैनिक सेवायें

1833 के चार्टर ऐक्ट की धारा 87 मे घोषित किया गया था कि जाति, रग, या राष्ट्रीयता के आधार पर भारतीयो की असैनिक सेवा मे भर्ती के समय कोई भेदभाव नही किया जायेगा। 1853 के ऐक्ट ने इगलैण्ड मे प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन किया जिसमे भारतीय भी भाग ले सकते थे। पर भारतीयो के लिए इगलैण्ड जाकर परीक्षा देना बडा महगा था और वह भी एक विदेशी माहौल मे परीक्षा देनी पडती थी। 1833 और 1853 के ऐक्ट की घोषणा के बावजूद अग्रेजो का यह उद्देश्य मालूम होता था कि जैसे भी हो भारतीयो को असैनिक सेवाओ मे कम से कम प्रवेश करने दिया जाय। ऐसा इसलिए कि भारतीयो की विश्वस्तता सदेहपूर्ण थी। 1868 मे भारत सरकार ने 200 पौण्ड की 9 छात्रवत्तियो की व्यवस्था की जो तीन वर्ष के लिए होती थी जिसकी सहायता से मेधावी भारतीय छात्र इगलण्ड जाकर पढ सकते थे और प्रतियोगिता म बैठ सकते थे। सेक्रेट्री ऑफ स्टेट अग्राल ने इन छात्रवृत्तियो को रोक दिया और घोषणा की कि केवल परीक्षा मे सफलता ही किसी की प्रशासकीय योग्यता का स्पष्ट परिणाम नही है। उसने कहा कि भारतीयो का चरित्र अग्रेजो से भिन्न है।

एक पठान और सिख से प्रतियोगिता मे एक बगाली बाजी मार सकता है पर उसे "उत्तर भारत के किसी लडाकू कबीले का नेतत्व सौपना" खतरे से खाली नहीं है। इसलिए उसने प्रस्तावित किया कि भारतीय को असैनिक सेवाओ मे नामित करके नियुक्ति देनी चाहिए और उसने भारत सरकार से इस सम्बन्ध मे नियम बनाने को कहा। पर यह उन भारतीयो के अतिरिक्त होना था जो सभी कठिनाइयो के बावजूद इगलैण्ड जाकर प्रतियोगिता मे चुने जाते थे। नामित करने की परम्परा का उद्देश्य ऐसे भारतीयो को चुनना था जो विश्वस्त हो। और फिर महत्त्वपूर्ण स्थान अब भी भारतीयो के पहुच के बाहर थे।

लार्ड नार्थब्रुक की सरकार ने 1874 मे नामित करने के नियम बनाय पर गृह सरकार ने उसमे काट छाट कर दी और इस तरह से कडा कर दिया जिससे कि नामित भारतीयो की सख्या कम से कम रहे। और जब उन्हे प्रान्तो म प्रेषित

किया जाता तो वे सभी इन प्रस्तावो को भेजने मे टालमटोल करते जिसका परिणाम यह था कि जबतक लाड नाथब्रुक भारत से पदमुक्त हुआ तब तक एक भी भारतीय इसके लिए नामित नही किया जा सका ।

इगलैण्ड मे प्रशासनीय प्रतियोगिता परीक्षाओ के लिए कम से कम और अधिकतम आयु क्रमश 17 और 21 की रखी गई थी। अधिकतम आयु एक भारतीय के लिए इतनी नही थी कि वह विश्वविद्यालयीय परीक्षा पूरी करके प्रतियोगिता मे भी भाग ले सके । नाथब्रुक न प्रस्ताव किया कि यह आयु बढाकर 19 और 23 कर दी जाय। पर कौंसिल और गृह अधिकारियो ने उसके प्रस्ताव का विरोध किया जिसके फलस्वरूप अधिकतम आयु घटाकर 19 कर दी गई। इससे भारत मे पढे लिखे लोगो को एक धक्का लगा। एस० एन० बैनर्जी न चुनौती झेली, भारत का तूफानी दौरा किया और इसे राष्ट्रीय प्रश्न बनाया। एक आदोलन इगलैण्ड की अनुदारवादी सरकार के इस पीछे हटाने वाले कदम के लिए तुरन्त प्रारभ किया गया।

बगाल का दुर्भिक्ष

1874 म बगाल मे एक भयानक दुर्भिक्ष पडा। सर जाज कैम्पबेल न लिखा है कि, "भारत के इतिहास मे पहली बार फसलो की इतनी बर्बादी ने दुर्भिक्ष की स्थिति पदा की जिसके कठिनाइयो से जनजीवन बचाने का पूरा प्रयास किया गया।" लाड नाथब्रुक ने, जब दुर्भिक्ष पडा, तो यह कहा, "जनता को बचाने के लिए जो भी किया जाना सभव है किया जाएगा। यह तो युद्ध की तरह ऐसा मामला है जिसमे सब कुछ बर्बाद हो जाता है।"

जिस तरह से भारत सरकार ने इस स्थिति से निबटने की चेष्टा की उसकी आलोचना इगलैण्ड और भारत दोनो स्थाना पर हुई। यह परामश दिया गया कि मूल्य निर्धारित कर दिए जाय, व्यक्तिगत व्यापार को रोक दिया जाय और भारतीय जब स्वय चावल के लिए तरस रहा हे तो उस बाहर न भेजा जाय। पर नाथब्रुक ने यह सोचा कि जनता को अधिक आवश्यकता नौकरी प्राप्ति और धन अजन की है जिससे उसकी क्रय शक्ति बढ सके। खाद्यान्न का उतना अभाव नही है जितना उसे खरीदने के लिए धन का। इसलिए सभी आलोचनाओ के बावजूद लाड नाथब्रुक अपनी नीति पर अटल रहा और अपने वादे के अनुसार बाहर चावल भेजा। नाथब्रुक का कहना था कि यदि चावल को बाहर भेजना बद कर दिया जाता तो इससे यह भारत म अधिक रहता जिसस इसकी कीमत कम हो जाती और उपभोग बढ जाता, जबकि इसने जोर दिया कि 'और देशा की भाति भारत म भी दुर्भिक्ष के विरुद्ध सुरक्षा हेतु उपभोग मे कमी लाना आवश्यक है जो वस्तुओ की कीमत बढने से घट जाती है।" दूसरे उसका तक था कि यदि एक बार

किए गए वादे को पूरा न किया जाय तो इससे भारत की साख पर धक्का आएगा। उसके समर्थकों ने यह भी तर्क दिया कि अभाव भोजन का नहीं है क्योंकि यह हमेशा उपलब्ध है। अभाव धन का है। इसलिए इन परिस्थितियों में मुख्य आवश्यकता इस बात की है कि बड़ों को काम दिलाया जाय जिससे वे भोजन की व्यवस्था के लिए रुपया कमा सकें। और यही किया गया।

स्वस्थ लोगों को काम दिलाने के लिए विस्तृत ढंग से इंतजाम किया गया और जो काम करने में समर्थ नहीं थे उन्हें दान देने की व्यवस्था की गई। कृषकों को ऋण दिलाने की व्यवस्था की गई और भू राजस्व रोक दिया गया। दबावपूर्ण आलोचना के बावजूद नार्थब्रुक अपनी नीति पर आगे बढ़ता रहा जबतक कि आलोचक उसके ही पक्ष में नहीं हो गए और अब यह कहने लगे कि अत्यधिक सावधानी बरती गई है।

क्रोमर ने लिखा है कि, "नार्थब्रुक के द्वारा उठाये गए कदम पूर्णतया सफल रहे। भूख में बहुत कम मौतें हुई। परम्परा के विपरीत जन विरोध का एक ही परिणाम हुआ कि संभवतः भिन्न भिन्न रूपों में अत्यधिक मात्रा में सुविधाएं प्रदान की गईं जिससे कि इसपर व्यय अधिक आ गया।"

नार्थब्रुक और बड़ौदा का गायकवाड़

विद्रोह के अपने पूर्ववर्तियों के काल की तरह नार्थब्रुक के काल में भी शासन में अव्यवस्था की स्थिति में राज्यों के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप की नीति अपनाई गई। वैसे अपहरण की नीति समाप्त कर दी गई थी। बड़ौदा के गायकवाड़ के विरुद्ध यह आरोप लगाया गया, कि उसने ब्रिटिश रेजीडेंट कर्नल फायरे को विष दिलाने का प्रयास किया। इस आधार पर उसके राज्य को अव्यवस्था के अंतर्गत लाया गया। इस मामले को और उचित सिद्ध करने के लिए नार्थब्रुक ने बंगाल के एक न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक जांच आयोग बठा दिया जिसमें ▮ अन्य सदस्य रखे गए। इनमें से तीन अंग्रेज और तीन भारतीय थे। पर वाइसराय की कठिनाइयां उस समय बढ़ गई जब अंग्रेज सदस्यों ने मल्हार राव गायकवाड़ के विरुद्ध मत दिया और भारतीयों ने उसमें दोष नहीं पाया। पर वाइसराय गायकवाड़ के अपराध से आश्वस्त था और उसने भारतीय विरोध के बावजूद उसके विरुद्ध मजबूत कदम उठाया होता पर गृह मंत्रिमंडल ने गायकवाड़ को पद से हटाने का निर्णय लेकर स्थिति बचा ली। उसने न तो जांच आयोग की खोजबीन के आधार पर उसे पद से हटाया और न उसके अपराध को सही मानकर, बल्कि उसका यह कहना था कि गायकवाड़ का चाल चलन खराब है शासन कुशासित है और उसमें सुधार करने की क्षमता नहीं है।" गायकवाड़ परिवार के एक युवा बच्चे को उत्तराधिकारी बनाया गया और चूंकि बच्चा अल्पवयस्क था इसलिए

शासन का काय ब्रिटिशो ने अपने हाथ मे लिया जिससे इ हे अपनी इच्छानुसार काय करने का अवसर प्राप्त हुआ।

मैलेट ने इस सबध म लिखा है, "सही काय किया गया, पर इसे करने का तरीका उचित नही था। इससे एक असुविधाजनक उदाहरण की सृष्टि हुई जिसने जन-आक्रोश को उभारकर कठिनाइया पदा की, जिसे दूर करने के ही लिए यह किया गया था।"[1]

आय समाज

लाड नाथब्रुक के काल का कोई विवरण पूरा नही होगा यदि हम उसी के काल म स्थापित आय-समाज आदोलन के विषय म न बतायें। चूकि इस आदोलन ने हिदुओ के सामाजिक जीवन के विकास म नाथब्रुक के उत्तराधिकारियो के काल मे एक अहम भूमिका अदा की थी और इसका प्रभाव करोडो लोगो के मस्तिष्क पर अब भी पड रहा है, इसलिए पाठक हमे यहा इसका कुछ विस्तत इतिहास प्रस्तुत करने के लिए क्षमा करेंगे जो मात्र इसी वाइसराय के काल से जुडा नही है।

स्वामी दयानद

इस आदोलन के सस्थापक दयानद काठियावाड के सपन्न नगर मारवी मे 1824 म पैदा हुए। यह स्थान भारतीय प्रायद्वीप के उत्तर पश्चिम किनारे के निकट ही है। उनके पिता एक उच्च कुलीन ब्राह्मण थे और राज्य सरकार मे एक आदरणीय स्थान पर नियुक्त थ। वे 'कडे, सयमी ब्राह्मण थे, उनम धम के विश्वासो के प्रति कट्टरता और दृढता कट कूटकर भरी थी जबकि दूसरी ओर उनकी मा मधुरता, सज्जनता और अच्छाइयो की देवी थी।"

दयानद, जिनका बचपन का नाम मूलशकर था, की शिक्षा 5 वप की आयु स प्रारम्भ हुई और 8 वप की आयु म उनका यज्ञोपवीत हो गया। उनके पिता न स्वय उनके लिए अध्यापक की भूमिका अदा की पर मूलशकर पिता के अधिकार के विरुद्ध लडनेवाले पैदाइशी क्रातिकारी निकले। चौदह वप की आयु म जब पिता न पवित्र भाव स शिवरात्रि का व्रत करने को कहा तो लडका 'अपन काल का मूर्ति पूजा का सबसे विरोधी और सफल व्यक्ति निकल आया।" उसकी प्रिय बहन की मृत्यु ने उसका ध्यान जम और मृत्यु के रहस्य म लगा दिया। उनके प्रिय चाचा की मृत्यु जो उ हे गोद म उछाला करते थे 19 वप की आयु

---

1 मलेट पूर्वोद्धत पृ० 60 66।

2 लाजपतराय आय समाज, पृ० 4।

मे उन्हे परेशान करने लगी। पूछने पर उन्हे बताया गया कि इसकी जानकारी केवल योगाभ्यास से ही हो सकती है। पर उन्हे यह पता था कि योग बिना गृह त्याग किये सभव नही है।

अपने पुत्र के मस्तिष्क मे इस तरह के विचारो का अवलोकन कर उन्होंने उसके चारो ओर प्रेम का जाल डालना प्रारभ कर दिया। पर दयानद ने अपने पिता की योजना का विरोध किया और दृढ निश्चय के साथ विवाह करने से इनकार कर दिया। मित्रो के कहने पर विवाह एक वर्ष के लिए टाल दिया गया। लडके का यह प्रस्ताव था कि उसे आगे की शिक्षा प्राप्ति के लिए काशी भेज दिया जाय, अस्वीकार कर दिया गया। इसकी जगह पर उसे इस उद्देश्य के लिए पडोस के एक गाव मे एक धार्मिक व्यक्ति के पास भेज दिया गया। पर लडका इससे सतुष्ट नही हुआ जिससे उसे वापस बुला लिया गया और उसके विवाह की तिथि तय कर दी गयी। पर इस तय की गई तिथि के लगभग एक सप्ताह पूर्व लडका घर छोडकर भाग गया और साधु हो गया। फिर उसे खोजकर एक रक्षक के नेतृत्व मे बद कर दिया गया पर उसी रात लडका भाग खडे होने मे सफल हो गया और फिर अपने पिता से कभी नही मिला।

दूसरी बार घर छोडने के बाद अपना नाम बदल गेरुआ वस्त्र धारण कर पूरे 15 वर्ष '1845 से 1860 तक' दयानद उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिमी भारत के लगभग सभी क्षेत्रो मे ज्ञान और सत्य की तलाश मे घूमते रहे प्रसिद्धि प्राप्त गुरु और योगियो की तलाश मे वे हिमालय के अदर के क्षेत्रो तक गये उन्होने भारत की पवित्र नदियो गगा, जमुना और नर्वदा का बार बार पार किया और इन नदियो के निकट की ऊची पहाडियो पर वे चढे।[1] यही पर वे प्रकृति के रहस्यमयी महिमा मे रम गये। तीस वर्ष तक इस तरह शिक्षा प्राप्त करने के बाद ढाई वर्ष तक इस शिक्षा की अतिम सीढी उन्होंने गुरु विरजानद के पास रहकर पार की।

इसके बाद वे सामाजिक जीवन मे आ गये। उन्होने उत्तर प्रदेश के महत्त्वपूर्ण नगरो की यात्रा करके अपने दर्शन व शिक्षा का प्रसार किया। 10 अप्रल 1875 को उन्होंने बम्बई मे आर्य समाज आदोलन का प्रारभ किया। लाहौर मे आर्य समाज की स्थापना 1877 मे की गई और वह यही स्थान था जो इसका प्रमुख केन्द्र बना और जहा इसके सिद्धा तो को अतिम रूप प्रदान किया गया। 1877 से 1883 के बीच स्वामी दयानद ने "शिक्षा देने व पुस्तके लिखने मे बिताया तथा पूरे देश मे आर्य समाज सगठित करने मे लगाया।' उन्हे उत्तर प्रदेश आगरा व अवध, पजाब तथा राजपूताना मे शानदार सफलता प्राप्त हुई। ब्रह्म समाज की

1 लाजपत राय आर्य समाज पृ० 18।

तरह दयानंद के भी भाषण हिंदी मे होते थे। स्वामी जी ने 1874 मे 'सत्यार्थ प्रकाश' का काम समाप्त किया। कुछ समय के लिए उनकी और थियोसोफिकल सोसाइटी की संस्थापिका मडम ब्लावटस्की की बातचीत दोनो सगठना को एक साथ सगठित करने को लेकर हुई। पर यह सफल नही हो पायी। जोधपुर के महाराजा सज्जन सिंह की एक मुस्लिम रखल द्वारा भोजन मे हल्के विप दे दिये जाने के प्रभाव से स्वामी जी की अजमेर म 30 अक्तूबर 1883 को मृत्यु हो गई। स्वामी जी महाराज के आमत्रण पर वहा गये थे और नियमो का उल्लघन कर उस रखैल के साथ रहने को तैयार हुए थे।

उनका विश्वास—स्वामी के कुछ विश्वासो की यहा चर्चा आवश्यक है जिसके आधार पर बाद मे समाज के सिद्धान्त बनाये गये। स्वामी का यह विश्वास था कि कुछ लोगा मे दैवी शक्ति अन्य लोगो से कुछ अधिक हो सकती है। पर इसका अर्थ यह नही है कि वे ईश्वर की तरह एक ही तरह के है। उनका कहना था कि व्यक्ति चाहे जितना बडा क्यो न हो, वह अभ्रष्ट नही हो सकता। उनके अनुसार स्वीकृति उपासना की पद्धति है—स्तुति, प्रार्थना, और उपासना। प्रायश्चित का माग यह है कि पुन पाप न करने का सकल्प लिया जाय। स्वामी कर्म मे विश्वास करते थे और इसीलिए आवागमन मे भी उनका विश्वास था। वे भाग्य म उतना ही विश्वास करते थे जितना वह कर्म मे सहयोग देता था, इसके आगे नहीं।

व्यक्ति मे यदि दृढ इच्छा हो तो उसके पास भाग्य को बनाने या बिगाडने की शक्ति है। जीवित मा बाप को आदर देने के व पक्ष म थ पर पितृपूजा म उनका विश्वास नही था। वेद अभ्रष्ट है और ज्ञान का अजस्र स्रोत। स्वामी का न तो बहुदेववाद ही मे विश्वास था और न सर्वेश्वरवाद ही म। फिर भी व यह मानते थे कि या तो ईश्वर विश्व से अलग है पर वह जीवन के सिद्धान्तो के आधार पर अतर्यामी है। ईश्वर का कभी अवतार नही होता जबकि ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि जो केवल देवता है, उनका अवतार होता है। व पुराणो की धार्मिकता म विश्वास नही करते थे और जाति प्रथा उनकी दृष्टि म हिंदू समाज म बुराइयो की जड थी। कोई भी ब्राह्मण या शूद्र पैदा नही होता। शूद्र वह है जिसका कर्म बुरा है और ब्राह्मण वह है जिसका कर्म अच्छा है।

ईश्वर और आत्मा दो अलग इकाइया ह जिनक अलग-अलग गुण हैं। पर ये दोनो अभिन्न हैं एक व्यापक है और दूसरा व्याप्य। तीन चीजें अविनाशी हैं अथवा नित्य है—ईश्वर आत्मा और प्रकृति। प्रकृति का उद्देश्य देखना की उत्पादन शक्ति की आवश्यक और स्वाभाविक क्षमता का विकास है। एक व्यक्ति ने किसी से एक बार पूछा, "आखो का उद्देश्य क्या है?" उत्तर मिला 'देखा, देखना और प्रमाण रूप मे स्वीकार करना।' यहा भी यही बात है। ईश्वर की उत्पादन

क्षमता को अवसर मिलना चाहिए और आत्मा को अपने कर्म का फल चखना चाहिए।"

आत्मा के भौतिक बंधन का भी एक कारण है। कारण अज्ञान है जो सभी पापों का आधार है। आत्मा का अज्ञान से छुटकारा ही इस तरह मुक्ति है। पर मुक्ति का कुछ निश्चित समय होता है जिसके बाद आत्मा शरीर रूप धारण कर लेती है।

बुद्धिमान ही देवता है। पवित्र कार्य अकर्मण्यता से उत्तम है। सभी जीवों के साथ हमें वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जिस तरह के व्यवहार की अपेक्षा हम दूसरों से करें। स्वर्ग प्रसन्न मनोदशा के अतिरिक्त कुछ नहीं है जिसमें अच्छे कर्मों के आधार पर आत्मा रहती है। नरक कष्ट की ही स्थिति का दूसरा नाम है।

"जो सत्य है उसके परीक्षण के पांच आधार हैं—(1) इसे प्रकृति और ईश्वर प्रदत्त चीजों का विरोधी नहीं होना चाहिए, (2) यह वेद विमुख नहीं होना चाहिए, (3) इसे आठ तरह के प्रमाणों के आधार पर सत्य और स्वाभाविक नियमों पर आधारित होना चाहिए, (4) इसे आप्त पुरुषों (विद्वान, सच्चे और पवित्र लोगों) की स्वीकृति मिली होनी चाहिए, तथा (5) यह हमारे बुद्धि के तर्क पर उचित होना चाहिए। प्रत्येक सिद्धान्त इन पांच परीक्षणों पर खरा उतरना चाहिए और ऐसा होने पर उसे स्वीकार कर लिया जाना चाहिए।"

सच्चा अध्यापक वह है जो वेद ज्ञान की शिक्षा दे सके। और सच्चा शिष्य वह है जो अपने गुरु को अर्पित हो और कुछ सीखने को इच्छुक हो, जिसका चरित्र विश्वस्त हो और जिसमें ज्ञान प्राप्ति की पर्याप्त क्षमता हो। वे सभी गुरु हैं जो हमें असफलता से दूर ले जाते हैं और इनमें पिता, माता और शिक्षक सभी आते हैं।[1]

आर्य समाज वालों का नारा था कि 'वेदों का अध्ययन करो जो पूर्ण है और सभी ज्ञान व विज्ञान के स्रोत हैं।' इनके लिए कोई ऐतिहासिक या लौकिक संदर्भ उपलब्ध नहीं है।

सदस्यों की योग्यता—स्वामी जी ने बताया कि एक व्यक्ति जो निम्न नियमों का परिपालन करे वही आर्य समाज का सदस्य हो सकता है—

1 ईश्वर सभी सत्य ज्ञान का प्रारंभिक कारण है।
2 ईश्वर सत्य है, ज्ञान है, अनुपम है, अशरीरी है और ब्रह्माण्ड का कारण है। केवल उसी की पूजा की जानी चाहिए।
3 वेद सत्य ज्ञान की पुस्तक है। सभी आर्यों को उसे पढ़ना चाहिए।

---

1 स्वामी जी के ये सभी विश्वास उनकी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश के अंत में दिये गये हैं जिसे लाजपतराय ने उद्धृत किया है पूर्वोद्धृत पृ० 88 89।

4 आय को सत्य स्वीकार करने और असत्य को अस्वीकार करने को सद तैयार रहना चाहिए।

5 सभी काय अच्छाई के आधार पर किये जाने चाहिए और सही व गलत व गहन अध्ययन के आधार पर किया जाना चाहिए।

6 समाज का प्रारभिक काय पूरे विश्व की शारीरिक, आध्यात्मिक औ सामाजिक दशा मे सुधार करना है।

7 सभी के साथ प्रेम किया जाना चाहिए और उनके गुणो को आदर प्रदान किया जाना चाहिए।

8 अज्ञान को हटाना चाहिए और ज्ञान का प्रसार करना चाहिए।

9 सभी को अपने गुणो को ही दूसरे मे जोडने का प्रयास करना चाहिए।

10 व्यक्तिगत क्षेत्र मे सभी को स्वतत्रता प्राप्त होनी चाहिए पर किसी भी व्यक्ति को सामान्य हित की अच्छाइयो के पक्ष मे नहीं आना चाहिए।

प्रत्येक सदस्य को निम्नलिखित पाच महायज्ञ करने चाहिए—

1 ब्राह्म यज्ञ जो दो तरह का है

(अ) सध्या अर्थात ईश्वर की प्रतिदिन, प्रात एव साय पूजा।

(ब) स्वाध्याय अथात धार्मिक ग्रथो से कुछ न कुछ प्रतिदिन पढना।

2 दिवस का प्रारभ देव यज्ञ से होना चाहिए इसमे होम या घी को जलाया जाता है।

3 पित यज्ञ अर्थात इसमे माता पिता की प्रतिदिन कुछ सवा की जाय।

4 अतिथि यज्ञ अर्थात किसी साधु सत अथवा विद्वान को भोजन कराया जाय।

5 बलि वैश्व देव यज्ञ अर्थात गरीबो, असहायो तथा पालतू जानवरो के प्रति कत्तव्य पालन किया जाय।

मुख्य कायक्रम और क्रियाकलाप—मुख्य सिद्धात[1] जिसपर आय समाज के विचार आधारित थे, (1) ईश्वर का पिता तुल्य मानना और व्यक्तियो मे भाई-चारा, (2) लैंगिक भेद भाव नहीं, (3) आदमी और आदमी के बीच राष्ट्रो और राष्ट्रो के बीच पूण न्याय और सही काम। सभी क प्रकृति, कम और गुण के आधार पर समान अवसर की सुलभता, और (4) सभी के साथ प्रेम और दान की प्रवृत्ति का प्रयोग।

1910 म वालेन्टाइन चिरोल के मतानुसार हिन्दुओ म आय समाज का काय प्रशसा योग्य था, "इसका सपूण प्रयास किया गया कि छोटे लडको और लडकियो के बीच विवाह न हो क्योकि इससे हिन्दू समाज का शारीरिक और नतिक

1 सेन्सस रिपोट आफ पजाब 1901 प० 116।

दोनो पतन हुआ है, इसके अतिरिक्त हिन्दू विधवाओं की गिरी दशा सुधारने के लिए भी बहुत कुछ किया गया है। इसके लिए आर्यों ने नारी शिक्षा को उत्साहित करने में भी कदम पीछे नहीं रखा है। उन्होंने इसके लिए एक लड़कियों का अनाथालय जालंधर में खोला है तथा यहां पर विधवाओं के रहने की व्यवस्था की है जिसे देखकर लगता है कि इस दिशा में कितनी अच्छी व्यवस्था की जा सकती है। और पुनः अछूतों के मामले में आर्य समाज वह पहली देशी संस्था मानी जानी चाहिए जिसने नये कार्य किये और अपने समकालीन ईसाई मिशनरियों या कुछ कम इस्लाम के सामने सीना तान के खड़ा हो गया जहां पर अभी तक इन्हीं का एकाधिकार था। विद्यालय और विशेषकर औद्योगिक कक्षाओं की उन्होंने हर जिले में स्थापना की जिसने युवा पीढ़ी का स्तर ऊंचा किया और धीरे-धीरे छोटी जाति के लोगों को दासता के बंधन से मुक्त किया जिसमें वे अभी तक बंधे रह थे।"[1]

आर्य समाज द्वारा पहला हिन्दू अनाथालय पंजाब में फीरोजपुर में स्थापित किया गया। यह कार्य स्वामी जी के ही जीवन काल में एक शानदार और बड़े भवन में प्रारम्भ किया गया। बाद में इसी तरह के अनाथालय उत्तरी भारत में भिन्न भिन्न स्थानों पर स्थापित किये गए।

1897 98 में देश में बड़ा भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। आर्य समाज द्वारा इससे त्रस्त लोगों की सेवा के लिए स्तुत्य सेवा की व्यवस्था की गई। हजारों बच्चों को बचाया गया और तमाम नये अनाथालय पंजाब में खोले गए। 1908 में यू० पी० में दुर्भिक्ष काल में सेवा-कार्य का आयोजन किया गया। इस दुर्भिक्ष सेवा में अन्य बहुत सी समाज सेवायें भी जुड़ी थीं जैसे इस कठिनाई के काल में औषधि प्रदान करना, बीमारों की सहायता करना तथा मृत्यु प्राप्त लोगों के संस्कार की व्यवस्था करना। स्वामी जी ने 1904 में कांगड़ा घाटी में भूकम्प आने पर उच्च स्तर पर दुःखग्रस्त लोगों के सहायतार्थ चेष्टा की।

इसके अतिरिक्त आर्य समाज की एक रुचिकर योजना पढ़े और गैर पढ़े लोगों के बीच राष्ट्रीय भाषा के लिए अध्ययन की संगठित व्यवस्था करना था। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक सत्य पर जोर, संस्कृत भाषा के अध्ययन पर जोर तथा देश में अंग्रेजी साहित्य व भौतिक प्रगति के ज्ञान का उत्साहवर्द्धन सम्मिलित था। और इस क्षेत्र में भी आर्य समाज को सफलता प्राप्त हुई।

1889 में जून में लाहौर में दयानंद ऐंग्लो वैदिक कालेज खोला गया। 1901-02 के पंजाब ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट में इसके विषय में कहा गया कि यह "उत्तरी

1 चिरोल इंडियन अनरेस्ट (1910) पृ० 100-111।

2 डी० ए० वी० कालेज लाहौर में जन विचाराय 1885 में प्रसारित ड्राफ्ट योजना की भूमिका से।

भारत के रुचिकर शिक्षा प्रयासो मे से एक है।" इसके विषय मे स्वामी जी को विचार स्वय आया था। 9 नवम्बर 1883 को, स्वामी जी के मृत्यु के बाद, लाहौर मे एक बठक मे जो विचार हुआ उस सबध मे 20 जून 1885 के आय पत्रिका म लिखा गया, "हमारा एक मूल उद्देश्य है कि मृत्यु प्राप्त स्वामी का शानदार जीवन अमरत्व प्राप्त कर जाय और इसके लिए एक ऐंग्लो वैदिक कॉलज की स्थापना का प्रस्ताव सब-सम्मति से पारित कर दिया गया। जो दृश्य सामने आया वह देखने योग्य था। वैसे बैठक मे मध्य श्रेणी के लोग अधिक थे पर इसमे तुरन्त 7000 से 8000 रु० तक एकत्रित हो गए। स्त्रिया, बच्चे यहा तक कि गरीब नौकर चाकर तक अपने सामथ्य सहित सहायताथ सामने आये। कॉलिज का घोषित उद्देश्य था—(1) हिन्दी साहित्य के अध्ययन का प्रोत्साहन व विकास। (2) सस्कृत साहित्य और विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन। (3) अग्रेजी साहित्य और विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन।"

सस्था का स्कूल विभाग जून 1886 म और कॉलेज विभाग जून 1889 मे खोला गया। सस्था का विकास इतना तीव्र हुआ कि 31 दिसम्बर 1913 को इसके स्कूल विभाग मे 1737 छात्र और कालेज विभाग मे 903 थे। शीघ्र ही एक-एक जालधर, होशियारपुर और यू० पी० म कानपुर मे डी० ए० वी० कॉलिज खोले गये। और अब डी० ए० वी० कॉलेज आदोलन के पास 31 माच 1929 तक—26,51,206 रु० थे।

शिक्षा की गुरुकुल व्यवस्था—1892 मे आय समाज मे दो मत हो गये जिसका कारण था कि लाहौर म स्थापित डी० ए० वी० कालेज किस सद्धातिक आधार पर चलाया जाय। मतभेद का आधार था कि अग्रेजी विज्ञान और वेदो मे सस्था मे किसे प्रथम स्थान प्रदान किया जाय। जिन्होने वेदो को आधार मानकर शिक्षा देने को कहा उन्हे धार्मिक कट्टरपथी कहकर कॉलेज की समिति से हटा दिया गया। पर उन्होने अपने आदश को यथाथ मे बदलने के लिए हरिद्वार से 3 मील दूर एक नयी सस्था स्थापित की जिसका नाम गुरुकुल रखा गया। गुरुकुल की स्थापना 1902 मे मुशीराम के प्रयासो से हुई जो जालधर के एक सफल वकील थे।

गुरुकुल के सबध मे भी वी० चिरोल का मत था कि द्रष्टव्य है, "इस प्रथा के अन्तगत बच्चो को अल्पायु मे ही गुरु के पास छोड दिया जाता है जो उससे उसके पिता समान या उससे भी अभिन्न व्यवहार करता है। आय समाज के गुरुकुल मे 6 वष से 10 वष के बीच के चेलों का प्रवेश किया जाता है। इस समय से वे बाहरी दुनिया से एकदम अलग हो जाते हैं और अपने अध्ययनकाल तक वैसे ही अध्ययन-रत रहते हैं जिसमे 16 वष लगते हैं अर्थात 10 वष छोटी कक्षा मे और 6 वष ऊची कक्षाओ म। इस पूरे काल मे उन्हे ब्रह्मचारी ही रहना पड़ता है। इस पूरे

काल मे कोई भी छात्र अपने घर नही जाने पाता। अपवाद केवल आपत्ति काल म होता है। उसके मा-बाप बच्चे से गुरुकुल के प्राचाय की अनुमति से ही भेंट कर सकते हैं और वह भी 1 महीने म एक बार से अधिक नही। इस समय (1910) पजाब मे 3 गुरुकुल हैं जिनम से कागडी का सबसे महत्त्वपूर्ण है जिसम 250 छात्र अध्ययन करते हैं।"[1]

गुरुकुल को 16 माच 1913 म देखने पर यू० पी० के लेफ्टीनन्ट गवनर सर जेम्स मेस्टन ने कहा, 'गुरुकुल अति नवीन और रुचिकर प्रयोग है जो इस प्रान्त म क्या, भारत मे किया जा रहा है।"

आयसमाज का सविधान—आय समाज का नियमित सविधान है जिसम वद को ही सवशक्तिमान माना गया है। प्रत्येक प्रान्त म एक मुख्य आयसमाज हाना चाहिए और शेष उस क्षेत्र म उसकी शाखाए। प्रत्येक मुख्य आयसमाज का सस्कृत म वद सबधी और आय भाषा म एक पुस्तकालय हाना चाहिए। आय प्रकाश इसका साप्ताहिक मुखपत्र था। इसके सदस्यो को सत्यवादी और शुद्ध चरित्र का होना चाहिए। सदस्यो को विशेषकर अविवाहितो को समाज के काय के लिए समय देना चाहिए। आय समाज के अध्यक्ष सचिव और अन्य सदस्या को हर 8वें दिन एक स्थान पर मिलना चाहिए। इन बैठको में सभी को वेद के सामवद का गान करना चाहिए और बिना भेदभाव के विचार-विमश करना चाहिए। सदस्यो को अपने आय का 1% समाज को देना चाहिए। उन्हें वैदिक पद्धति स पूजा करनी चाहिए। आय समाज को वैदिक सस्कार करना चाहिए और आय विद्यालयो म वेद की शिक्षा देनी चाहिए। आय समाज को देश की प्रगति की ओर ध्यान दना चाहिए और विद्वानो को जनता के बीच शिक्षा देने के लिए भेजना चाहिए। आय समाज के अध्यक्ष और अन्य सदस्या को घमड नही करना चाहिए। सिद्धात पर चलने वालो और शुद्ध जीवन बिताने वाला को ही साधारण सदस्यता के ऊपर वाले वग मे लाना चाहिए। विवाह आदि अवसरो पर सदस्य को आय समाज का चन्दा देना चाहिए। इनमे कमी, बढोतरी या सशोधन काफी विचार के बाद ही हाना चाहिए।

प्रभावी सदस्या को 10 नियमों का पालन करना चाहिए, अपनी आय का 1% आयसमाज को देना चाहिए और नियमित रूप से बैठको मे भाग लेना चाहिए। आय समाज के 10 कमठ सदस्य अपना एक प्रतिनिधि प्रान्तीय सभा को भेज सकता है।

प्रत्यक आयसमाज मे एक कायकारिणी होनी चाहिए जिसम 5 पदाधिकारी होने चाहिए। इनका चुनाव कमठ सदस्य करेंगे। ये पाच पदाधिकारी हैं—

1 चिरोल पूर्वोद्धृत प० 114 15।

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव, लेखाकार और पुस्तकालयाध्यक्ष। इसके बैठक के लिए अपनी जगह होनी चाहिए और सुन्दर भवन होना चाहिए।

प्रत्येक प्रात मे एक प्रातीय सभा होगी जिसमे अपने सदस्यो के अनुपात मे निचली इकाइयो से प्रतिनिधि आएगे। प्रातीय सभा प्रबधतन्त्र के नियमो मे परिवतन कर सकती है, धन एकत्रित कर सकती है, प्रचार व्यवस्था कर सकती है, एक या एक से अधिक अखबार निकाल सकती है और प्रातीय शिक्षा सस्थाओ का प्रबध कर सकती है आदि। प्रातीय सभा के सदस्यो का चुनाव प्रति तीन वष मे होगा और अधिकारियो का प्रतिवष।

प्रातीय सभाओ के प्रतिनिधियो से बनाई गई एक अखिल भारतीय आयसमाज भी बनाया गया।

आयसमाज का विकास—1928 मे आयसमाज के दो अखिल भारतीय सगठन थे—1 सावदेशिक आय प्रतिनिधि सभा और 2 परोपकारिणी सभा जिसकी स्थापना स्वामी जी ने स्वय की। इसकी 9 प्रातीय सभाए थी। आयसमाजियो की प्रातो के हिसाब से निम्न सख्या थी[1]—

पजाब—500
यू० पी०—413
दिल्ली—200
सी० पी० और बरार—52
अजमेर—100
बम्बई—30
बगाल और बिहार—20
बर्मा—10

इसके अतिरिक्त भारत के बाहर भी आय समाज था।

स्वामी दयानद का आय समाज देश की अपार सेवा कर रहा था, जैसा कि 1901 मे पजाब के सेसन रिपोट से पता चला, दुर्भाग्य से इसके सदस्य अपने सुधार को हिन्दू समाज तक सीमित किये हुए थे। ईश्वर को पिता तुल्य मानना आदमी व आदमी के बीच सौहार्द्र व व्यक्ति व राष्ट्र के बीच मधुर सम्बन्ध केवल हिन्दू समाज के दायरे मे ही घुमा फिराकर रह जाता था। बाहर से इनका कोई सम्बन्ध नही था।

लाहौर के इम्पीरियल पपर ने 3 अक्टूबर 1888 को अपने अक मे लिखा कि आयसमाजी अपने सदस्यो को मुसलमानो के विरुद्ध भडका रहे हैं और उन्हें उनसे बदला लेने के लिए कह रहे हैं क्योकि उनका विश्वास है कि बाल विवाह

1 सेन्सस 1901 पृ० 115।

और पर्दा प्रथा की बुराइया भारत मे मुस्लिम शासन की देन है।

अखबरे आम ने 23 फरवरी 1889 के अपने अक मे लिखा कि कुछ आर्यों ने सिख गुरुओं के विरुद्ध कुछ कहा है। यह भी बताया गया कि किसी ने तमाम गल्तियो वाले ग्रथ साहब का प्रकाशन कराया है। रावी ने अपने 7 अगस्त 1889 के अक मे लिखा कि किसी न ग्रथ फोबिया नामक पुस्तक लिखी है जिससे सिखो की भावनाए आहत होती है।'[1]

वाले टाइन चिरोल ने लिखा है कि, "स्वामी दयानद का नैतिक नियम अस्पष्ट था और आश्चर्यजनक रूप से मानव स्वभाव की कमजोरो मे सहायक हो गया था और साथ ही लोकप्रिय भेदभाव को भी उभाडता था। उदाहरणाथ वेदा मे जानवरों को मारने और गोजातीय मास खाने पर कोई प्रतिबध नही था। पर विश्वजनीन हिन्दू अधविश्वास को आदर देते हुए उन्होने गोहत्या को घोर पाप बता दिया। यहा हमारे पास उनके सिद्धातो का सार है। गाय की पवित्रता ही हिन्दू सप्रदाय की ईसाइयो और मुसलमाना से विरोध का प्रमुख कारण है और दयानद का सम्पूण प्रयास व शिक्षा हिन्दू धम को सुधारने की कम और विदेशी प्रभाव का विरोध करने की अधिक है जिसने उनके अनुसार उन्हें अराष्ट्रीय बना डालने का खतरा पैदा कर दिया था। इसी कारण जहा भी वह ईसाई या मुसलमान का नाम लेते है उनकी लेखनी आक्रामक हो जाती है। मासाहारी और शराबखोर, गोमासभक्षी विदेशियो के कारण ही, उनके अनुसार आर्यों पर विपदा आ गयी है। उन्होने आर्यों के स्थान पर हिन्दू शब्द का इसीलिए प्रयोग नही किया है क्योकि इसकी उत्पत्ति फारसी से है जिसके अनुसार इस देश मे इनके आगमन से पूव भारत मे 'स्वण भारत' था और यहा की जनता 'रोगमुक्त' धनी मानी और सतुष्ट थी।" सच यह है कि उनका नारा था 'आय आर्यों के लिए।"

पर समय बीतने के साथ हिंदुओ मे यह आंदोलन लोकप्रिय होता जा रहा था। इसी कारण 1911 मे पजाब मे इसकी सदस्य सख्या 2,43,000 हो गयी जो 1901 की ढाई गुना थी और 1991 की छ गुना।[3]

नाथब्रुक की विदेश नीति

मेयो की तरह नार्थब्रुक ने भी सीमा क्षेत्र के प्रति सर जान लारेन्स की नीति अपनायी। 'फावड नीति' अपनाकर ब्रिटिश क्षेत्रा म इन स्थाना को मिलाने के

1 छाबडा जी० एस० सोशल ऐण्ड इकोनामिक हिस्ट्री आफ पजाब (1849 1901) पृ० 125 26।

2 चिरोल पृ० 109 10।

3 छाबडा जी० एस० हिस्ट्री आफ द पजाब भाग 2 पृ० 349 61।

स्थान पर वह मित्रतापूर्ण शक्तिशाली और स्वतंत्र राज्यों की एक ऐसी पट्टी चाहता था जो मध्यवर्ती राज्य का काम करे और ब्रिटिशों के विरुद्ध यदि उस ओर से कोई दबाव पड़े तो उसको सफलतापूर्वक झेल सकें।

बर्मा

ऐसा ही सीमा क्षेत्र एक राज्य बर्मा का था जिसे नार्थब्रुक उपरोक्त स्थिति में रखना चाहता था। उसका मत था कि, "जब तक सम्भव हो हमारे क्षेत्र और चीन की सीमा के बीच यह मध्यस्थ राज्य रहे।" उसने आगे कहा, "जबकि हमें बर्मा के राजा के उस उत्तर का इंतजार करना चाहिए जिसमें हमारी प्रतिष्ठा और लाभ से जुड़े मांगों संबंधी उत्तर होगा। पर मेरे विचार से इतने कमजोर और दयाश्रित राज्य के लिए मांगों में आवश्यकता से अधिक वृद्धि उचित नहीं है।"[1]

एमहर्स्ट के समय प्रथम आंग्ल-बर्मा युद्ध के कारण और डलहौजी के समय दूसरे युद्ध के कारण निचला बर्मा ब्रिटिशों के अधिकार में आ चुका था। राजा मिंडन, जो शेष क्षेत्र पर शासन कर रहा था, डलहौजी के बार बार के प्रयास के बावजूद ऐसी संधि पर हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं था जिसमें उपरोक्त राज्यों को गंवाने का विवरण हो। तभी से आंग्ल बर्मी संबंध मधुर नहीं रहे थे। 1862 और 1867 की संधि के आधार पर नियमित राजनैतिक और व्यापारिक संबंध स्थापित हो चुके थे और राजा ने मांडले में एक रेजीडेंट रहनेकी स्वीकृति भी प्रदान की थी। पर राजा की इटली से 1871 में होने वाली मैत्री संधि ने और फ्रांस से 1873 में होने वाली संधि ने ब्रिटिशों को उत्तेजित कर दिया। इंग्लैण्ड में सैलिसबरी किसी कारण पश्चिमी चीन से व्यापार करने में अधिक रुचि लेने लगा और नार्थब्रुक को लिखा कि वह इसके लिए अपना शिष्टमंडल भेजे। कर्नल ए० ब्राउन एक स्थलाकृति विशेषज्ञ अन्य लोगों सहित और 15 सिख सैनिकों के रक्षा घेरे में इसलिए भेजा गया क्योंकि राजा अपने क्षेत्र से होकर ब्रिटिश सेना का नहीं जाने देना चाहता था। बर्मा की सत्ता ने शिष्टमंडल को चीन की सीमा तक पहुंचा दिया जहां एकाएक सीमा पर चीनी सैनिकों ने उन पर आक्रमण कर दिया जिसमें कुछ अंग्रेज मारे गये जबकि बर्मा के सैनिकों की सहायता से शिष्टमंडल सकुशल वापस लौट आया। बर्मा के लोगों पर संदेह किया गया पर यह सिद्ध नहीं किया जा सका। पर बाद में जब मोमी के चीनी गवर्नर लिसितार्ड को बर्मा के राजा को अतिआदर से सम्मानित कर भेंट की जिसके विषय में संदेह था कि उसने ही आक्रमण को उत्साहित किया था, तो सैलिसबरी ने राजा के विरुद्ध तुरंत

1 मोल्टन ई० सी० लार्ड नार्थब्रुक इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ० 221।

कडी कारवाई का आदेश दिया यदि वह उचित स्पष्टीकरण न दे। राजा ने स्पष्टीकरण देते हुए इस तरह के सबध पुन न करने का आश्वासन दिया। पर सैलिसबरी ने ब्रिटिश सैनिको की रक्षा मे एक दूसरा शिष्टमडल भेजने पर जोर दिया। इस सबध मे दीर्घकाल तक सधि वार्ता चलती रही और राजा के विरुद्ध पुन युद्ध छेडने के लिए कहा गया जिसके बाद उसने ब्रिटिश माग तुरत स्वीकार कर ली।

दूसरे मसले पर भी बर्मा से सबध खराब हो गये। बर्मा के दक्षिण पूर्व म पश्चिमी करेनी नामक एक कबीले का एक छोटा स्थान था जिस पर राजा ने अपना अधिकार बताया। यह क्षेत्र सागौन की लकडी के लिए प्रसिद्ध था और यहा से होकर ही उत्तरी बर्मा, चीन व शान राज्य मे जाने का रास्ता था। ब्रिटिशो ने इसी कारण बर्मा के अधिकारो को चुनौती दी राजा नतमस्तक हुआ और 1878 मे सधि की जिसके अतगत दोनो ने पश्चिमी करेनी की स्वतत्रता स्वीकार की।

भारत के आग्ल भारतीय समाज मे नार्थब्रुक की कमजोर नीति की आलोचना हुई और शोर मचा। यह कहा गया कि उत्तरी बर्मा पर भी विजय प्राप्त की जानी चाहिए। सैलिसबरी ने भी वाइसराय को यह चेतावनी भेजी कि ऐसी नीति न अपनाई जाय कि जिससे यह लगे कि 'ब्रिटिशो ने युद्ध करने की परपरा का परित्याग" कर दिया है। पर नार्थब्रुक अपनी शातिवादी नीति पर स्थिर रहा और उसने शिक्षित भारतीयो की प्रशसा अर्जित की। नार्थब्रुक ने लिखा, "भारत मे पहले जैसा ही, स्थानीय रूप से उत्साहपूर्वक हो-हल्ला हुआ है जिसका अर्थ है कि हम बर्मा के राजा को जो हमारा सामना नही कर सकता, परेशान करें। पर मैं उसके साथ उचित व्यवहार करता रहूगा।"[1]

बलूचिस्तान

कलात या बलूचिस्तान म भी नार्थब्रुक ने उदारता की नीति अपनाई और सैलिसबरी समर्थित सिंध के कमिश्नर सर विलियम मेरीवेदर के फारवर्ड नीति को अस्वीकार कर दिया। कलात कुछ कबीलो के सरदारो का एक ढीला-ढाला सघ था जिसपर खुदाबाद खा का शासन था। खा के ब्रिटिशो के सबध 1854 की सधि पर आधारित थे जिसके अतगत उसे ब्रिटिश क्षेत्र पर हर आक्रमण को रोकना था, अपने देश से होकर गुजरने वाले कारवा की रक्षा करना, ब्रिटिशो से अपने विदेश नीति के सबध मे परामर्श लेना था और ब्रिटिशो को कही भी उसके क्षेत्र मे सेना रखने का अधिकार देना था। इस सबके लिए खा को 50 हजार रुपये वार्षिक की आर्थिक सहायता मिलती थी।

भारत मे नार्थब्रुक के पहुचने के समय यहा आतरिक द्वन्द्व मचा हुआ था।

---

1 मैलेट, बी., लाइफ आफ लार्ड टामस जार्ज, अर्ल आफ नार्थब्रुक पृ० 90-96।

खा को कबीले के सरदारो का विश्वास नही प्राप्त रह गया था, कारवाँ प्राय लूट लिये जाते थे और ब्रिटिश क्षेत्र तक पर आक्रमण होने लगे थे। मेरीवेदर ने प्रस्ताव किया कि खा को पद से हटा दिया जाय और कबीले के सरदारो का विश्वास प्राप्त करने वाले किसी और व्यक्ति को गद्दी प्रदान की जाय। उसने यह भी राय दी कि मारी कबीला जिसने ब्रिटिशो पर आक्रमण किया उसे घेर लिया जाय। पर नाथब्रुक ने ऐसे कडे प्रस्तावो से असहमति व्यक्त की। उसने डेराइस्माइल खा के डिप्टी कमिश्नर कैप्टन राबर्ट सा डेमन का शातिपूर्ण दृष्टिकोण स्वीकार कर लिया जिसके अतर्गत उसे ही भिन्न भिन्न कबीलो के सरदारो से मिलने तथा ब्रिटिश सीमा सुरक्षा मजबूत करने के लिए भेजा गया। उससे यह भी कहा गया कि उस क्षेत्र से होकर जाने वाले कारवा की सुरक्षा का भी ध्यान रखा जाय। सा डेमन का उद्देश्य सफल रहा। इससे उत्साहित होकर सा डेमन को दूसरा शिष्ट मडल लेकर इसलिए भेजा गया कि वह खा और अन्य कबीलो के सरदारो के बीच सुलह कराये। वह अपने इस कार्य मे भी सफल ही होने वाला था कि मेरीवेदर ने हस्तक्षेप किया और उससे यह पूछा कि वह किस अधिकार से सरदारो से सधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर रहा है। इस तरह का उसका शिष्टमडल बिना अपना उद्देश्य पूरा किये वापस लौट आया। नाथब्रुक ने मेरीवेदर की बातें पसद नही की और कलात के नियत्रण का कार्यभार पजाब के अधिकारियो को सौंप दिया और तीसरी बार अप्रैल 1876 मे उसने सा डेमन को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भेजा। सा डेमन का तीसरा प्रयास पूर्णतया सफल रहा, पर इसी बीच नाथब्रुक ने भारत के अपने पद से स्तीफा दे दिया।

कश्मीर

मेयो की भाति नाथब्रुक भी यह सोचता था कि कश्मीर पर और कडे नियत्रण की आवश्यकता है। पहले तो इसलिए कि मध्य एशिया मे रूसी लोगो को आगे बढने से रोकना था जो पूर्वी तुर्किस्तान मे ब्रिटिश प्रभाव को बढाकर ही पूरा किया जा सकता था और जिसका रास्ता कश्मीर से होकर था, दूसरे कश्मीर सीमा पर हुजा, नगर डीर, स्वात आदि जसे कबीले कश्मीर से होकर गिलगिट से ही नियत्रित किये जा सकते थे जिन्हें अफगानिस्तान वाले भडका सकते थे, तीसरे, क्योंकि कश्मीर के महाराजा भी विश्वस्त नही थे। उसके लिए पर्याप्त प्रमाण थे कि रूस के सम्पर्क मे वह थे। 1868 मे महाराजा ने सर जान लारेस की स्वीकृति तथा पजाब सरकार के सचिव टी० एच० थार्नटन की सस्तुति पर ताशकद एक गुप्त एजेन्ट भेजा। पर यह सब कुछ विस्मृति के अधेरे मे गायब हो गया और लारेस के उत्तराधिकारी के काल मे महाराजा के ऊपर यह आरोप लगाया जाने

लगा कि "उसने रूस के साथ सबध स्थापित करने का प्रयास किया है।"[1] 1873 मे महाराजा ने एक कश्मीरी खालिक्दार से एक सूचना प्राप्त की जो उसने कशगर मे रूसी शिष्टमडल के एक सदस्य से प्राप्त किया था। उसमे यह इच्छा व्यक्त की गयी थी कि वह महाराजा से सपर्क करना चाहता है। महाराजा ने यह सूचना नार्थब्रुक को प्रेषित कर दी। पर इससे प्रसन्न होने की जगह वह रूस-कश्मीर के सबध की सभावना से घबडा उठा। और अतत महाराज ने यारकद से अपने आप व्यापारिक सबधो के लिए वार्ता की जो अमृतसर की सधि के विरोध मे नहीं थी। 1867 मे जब यारकद से एक दूत कश्मीर पहुचा और व्यापारिक सधि पर हस्ताक्षर हो गये तो महाराजा ने इसकी पूरी सूचना भारत सरकार को दे दी। लारेस तब शक्ति मे था पर उसने इस ओर अधिक ध्यान नही दिया। पर उसके अधिकारी ने इसमे भी रूसी खतरे की सभावना देखी। इसका मूल परिणाम हुआ कि नार्थब्रुक इससे कश्मीर मे रेजीडेंट नियुक्त करने की अति आवश्यकता समझ बैठा जो दिन प्रतिदिन की सूचना ले उसके पास भेजा करे। उसकी उतावली इसी से सिद्ध है और उसने ह्वाइटहाल से इसके लिए आवश्यक मजूरी भी नही ली।

रेजीडेंट की नियुक्ति हेतु प्रस्ताव कश्मीर के महाराजा के पास यह बताते हुए भेज दिया गया कि मध्य एशिया की घटनाओ की देखरेख के लिए यह आवश्यक है और साथ ही इसमे उसके राज्य के आतरिक मामलो मे हस्तक्षेप की कोई इच्छा नही है।

पर महाराजा चौक पडा। उसके सामने पजाब का उदाहरण था जहा रेजीडेंट की नियुक्ति के बाद पजाब का अपहरण हो गया। इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल के आतरिक मामलो मे हस्तक्षेप करने के वायदा को भी वह सही नही मानता था क्योकि ऐसे मे विशिष्ट अधिकारी पर भी नियत्रण सभव नही था। उसने 1866 म घाटी मे कुछ आर्थिक परिवर्तन किये जिससे राजा को 3 लाख रुपये की हानि हुई पर इस सबध मे कोई भी विरोध किसी काम का नही रहा। एक कारण से लेह मे नियुक्त एजेंट अब स्थायी बन गया था। विशिष्ट अधिकारी की नियुक्ति भी कष्टदायी हो गयी थी। महाराजा ने निवेदन किया कि वह सदा ब्रिटिशो का विश्वस्त बना रहा है, उसने विद्रोह के काल मे की गयी अपनी सेवाओ की याद दिलायी जिसके लिए ब्रिटिश उसे जागीर देना चाहते थे और जिसे उसने यह कहकर नही लिया था कि वह उनकी कृपादृष्टिमात्र ही चाहता है। जहा इस तरह की सेवाओ के लिए पटियाला जसे राज्य को यह सुविधा मिली है कि वहा से सभी एजेन्सिया हटा ली गयी हैं, जबकि उसके ऊपर एक एजेसी आरोपित की जा रही है जो 1846 की सधि के अतर्गत उचित नही है। महाराजा ने वाइसराय से

1 कपूर एम० एल० पूर्वोद्धृत पृ० 37 रिचार्ड को कोट करते हुए।

कहा कि उनका आन्तरिक शासन सुधार की ओर है इसलिए उसे पारितोषिक के स्थान पर दड न दिया जाय।

पर महाराजा यह जानता था कि वह रेजीडेंट को रखने के प्रस्ताव से पूणतया मुक्त नही हो सकता और अतत "उसने स्वय एक मध्यमाग प्रस्तुत किया। विशिष्ट अधिकारी की यात्रा 6 माह से बढाकर 8 माह कर दी जाय और लेह के कमिश्नर की एक साल।"[1] चूकि मौसम के कारण मध्य एशिया से सपक 3 4 माह के लिए टूट जाता था इसलिए अधिकारी का कायकाल लगभग पूरे वष ही हो जाता।

नाथब्रुक का उद्देश्य पूरा हो गया। सभवत उसने यह सोचा कि आखिर नाम मे क्या रखा है और विशिष्ट अधिकारी भी तो रेजीडेंट का काय कर सकता है। इसलिए उसने पजाब सरकार को आदेश दिये, जिसके माध्यम से कश्मीर से सपर्क किया जाता था, कि इस अधिकारी के भविष्य मे सब सूचनाए दी जाए जो उनके और कश्मीर के बीच हो अथवा लाहौर मे कश्मीर के एजेन्ट के माध्यम से सूचनाए प्रेपित करें। यह चेष्टा की गयी कि विशिष्ट अधिकारी को इस सब सपर्कों की प्राप्ति की सुविधा प्राप्त हो जाय। इस अधिकारी को स्वय सूचना भेजी गयी कि किस तरह वह मध्य एशिया की घटनाओ पर निगाह रखे और बाद मे जब पजाब कश्मीर पर नियत्रण की समाप्ति हो गयी और सरकार ने सीधा उसका शासन अपने हाथ मे ले लिया तो महाराजा को कहा गया कि वह उस अधिकारी के माध्यम से ही सपक करे, सीधे नही जैसा कि वह पहले पजाब से किया करता था। नाथब्रुक नई व्यवस्था से सतुष्ट हो गया। कश्मीर पर पकड तगडी हो गयी।

अफगानिस्तान

लाड मेयो का उत्तराधिकारी 1872 मे नाथब्रुक हुआ। मध्य एशिया म रूसी विस्तारवाद की नीति के थोडे ही दिनो बाद खीव के खानाते पर उसने अधिकार कर लिया। इसके कारण शेर अली को विश्वास हो गया कि अफगानिस्तान मे उसकी शक्ति को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। इसीलिए 1873 मे उसने एक बार पुन ब्रिटिशो से अच्छे सबध स्थापित करने की चेष्टा की जिससे कि वह अपने को गद्दी पर सुरक्षित पा सके। शिमला मे अफगान राजदूत और लाड नाथब्रुक के बीच बातचीत हुई जिसमे राजदूत ने लिखित आश्वासन मागा कि रूस के द्वारा या किसी और देश द्वारा अफगानिस्तान पर आक्रमण की स्थिति म ब्रिटिश अमीर की सहायता के लिए एक सेना उस रास्ते से भेजेंगे जिससे अमीर

---

1 ऐल्डर जी० जे० ब्रिटिश इडियाज नादन फ्रटियस पृ० 110 रिकाड को कोट करते हुए।

लगा कि "उसने रूस के साथ सबध स्थापित करने का प्रयास किया है।"[1] 1873 में महाराजा ने एक कश्मीरी खालिकदार से एक सूचना प्राप्त की जो उसने कशघर मे रूसी शिष्टमडल के एक सदस्य से प्राप्त किया था। उसमे यह इच्छा व्यक्त की गयी थी कि वह महाराजा से सपर्क करना चाहता है। महाराजा ने यह सूचना नार्थब्रुक को प्रेषित कर दी। पर इससे प्रसन्न होने की जगह वह रूस-कश्मीर के सबध की सभावना से घबड़ा उठा। और अतत महाराज ने यारकद से अपने आप व्यापारिक सबधो के लिए वार्ता की जो अमृतसर की सधि के विरोध मे नही थी। 1867 मे जब यारकद से एक दूत कश्मीर पहुचा और व्यापारिक सधि पर हस्ताक्षर हो गये तो महाराजा ने इसकी पूरी सूचना भारत सरकार को दे दी। लारेंस तब शक्ति मे था पर उसने इस ओर अधिक ध्यान नही दिया। पर उसके अधिकारी ने इसमे भी रूसी खतरे की सभावना देखी। इसका मूल परिणाम हुआ कि नार्थब्रुक इससे कश्मीर मे रेजीडेंट नियुक्त करने की अति आवश्यकता समझ बैठा जो दिन प्रतिदिन की सूचना ले उसके पास भेजा करे। उसकी उतावली इसी से सिद्ध है और उसने ह्वाइटहाल से इसके लिए आवश्यक मजूरी भी नही ली।

रेजीडेंट की नियुक्ति हेतु प्रस्ताव कश्मीर के महाराजा के पास यह बताते हुए भेज दिया गया कि मध्य एशिया की घटनाओ की देखरेख के लिए यह आवश्यक है और साथ ही इसमे उसके राज्य के आतरिक मामलो म हस्तक्षेप की कोई इच्छा नही है।

पर महाराजा चौंक पडा। उसके सामने पजाब का उदाहरण था जहा रेजीडेंट की नियुक्ति के बाद पजाब का अपहरण हो गया। इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल के आतरिक मामलो मे हस्तक्षेप करने के वायदो को भी वह सही नहीं मानता था क्योकि ऐसे मे विशिष्ट अधिकारी पर भी नियत्रण सभव नही था। उसने 1866 मे घाटी मे कुछ आर्थिक परिवर्तन किये जिससे राजा को 3 लाख रुपये की हानि हुई पर इस सबध मे कोई भी विरोध किसी काम का नही रहा। एक कारण से लेह मे नियुक्त एजेंट अब स्थायी बन गया था। विशिष्ट अधिकारी की नियुक्ति भी कष्टदायी हो गयी थी। महाराजा ने निवेदन किया कि वह सदा ब्रिटिशो का विश्वस्त बना रहा है, उसने विद्रोह के काल मे की गयी अपनी सेवाओ की याद दिलायी जिसके लिए ब्रिटिश उसे जागीर देना चाहते थे और जिसे उसने यह कहकर नही लिया था कि वह उनकी कृपादृष्टिमात्र ही चाहता है। जहा इस तरह की सेवाओ के लिए पटियाला जैसे राज्य को यह सुविधा मिली है कि वहा से सभी एजेन्सिया हटा ली गयी हैं, जबकि उसके ऊपर एक एजेंसी आरोपित की जा रही है जो 1846 की सधि के अतर्गत उचित नही है। महाराजा ने वाइसराय से

1 कपूर एम॰ एल॰ पूर्वोद्धत प॰ 37 रिकार्ड को कोट करते हुए।

कहा कि उनका आतरिक शासन सुधार की ओर है इसलिए उसे पारितोषिक के स्थान पर दड न दिया जाय।

पर महाराजा यह जानता था कि वह रेजीडेंट को रखने के प्रस्ताव से पूणतया मुक्त नही हो सकता और अतत "उसने स्वय एक मध्यमाग प्रस्तुत किया। विशिष्ट अधिकारी की यात्रा 6 माह से बढाकर 8 माह कर दी जाय और लेह के कमिश्नर की एक साल।"[1] चूकि मौसम के कारण मध्य एशिया से सपर्क 3-4 माह के लिए टूट जाता था इसलिए अधिकारी का कायकाल लगभग पूरे वष ही हो जाता।

नाथब्रुक का उद्देश्य पूरा हो गया। सभवत उसने यह सोचा कि आखिर नाम मे क्या रखा है और विशिष्ट अधिकारी भी तो रेजीडेंट का काय कर सकता है। इसलिए उसने पजाब सरकार को आदेश दिये, जिसके माध्यम से कश्मीर से सपर्क किया जाता था, कि इस अधिकारी के भविष्य मे सब सूचनाए दी जाए जो उनके और कश्मीर के बीच हो अथवा लाहौर म कश्मीर के एजेन्ट के माध्यम से सूचनाए प्रेषित करें। यह चेष्टा की गयी कि विशिष्ट अधिकारी को इस सब सपर्कों की प्राप्ति की सुविधा प्राप्त हो जाय। इस अधिकारी को स्वय सूचना भेजी गयी कि किस तरह वह मध्य एशिया की घटनाओ पर निगाह रखे और बाद म जब पजाब कश्मीर पर नियत्रण की समाप्ति हो गयी और सरकार न सीधा उसका शासन अपने हाथ मे ले लिया तो महाराजा को कहा गया कि वह उस अधिकारी के माध्यम से ही सपक करे, सीधे नही जैसा कि वह पहले पजाब से किया करता था। नाथब्रुक नई व्यवस्था से सतुष्ट हो गया। कश्मीर पर पकड तगडी हो गयी।

अफगानिस्तान

लार्ड मेयो का उत्तराधिकारी 1872 म नाथब्रुक हुआ। मध्य एशिया म रूसी विस्तारवाद की नीति के थोडे ही दिना बाद खीव के खानाते पर उसने अधिकार कर लिया। इसके कारण शेर अली को विश्वास हो गया कि अफगानिस्तान म उसकी शक्ति को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। इसीलिए 1873 मे उसने एक बार पुन ब्रिटिशा से अच्छे सबध स्थापित करने की चेष्टा की जिसस कि वह अपने को गद्दी पर सुरक्षित पा सके। शिमला मे अफगान राजदूत और लार्ड नाथब्रुक के बीच बातचीत हुई जिसमे राजदूत ने लिखित आश्वासन मागा कि रूस के द्वारा या किसी और देश द्वारा अफगानिस्तान पर आक्रमण की स्थिति म ब्रिटिश अमीर की सहायता के लिए एक सेना उस रास्ते से भेजेंगे जिससे अमीर

1 एल्डर, जी० जे० ब्रिटिश इडियाज नादन फ्रन्टियर पृ० 110 रिपोर्ट का हवाला करते हुए।

"उसने रूस के साथ सबध स्थापित करने का प्रयास किया है।"[1] 1873
राजा ने एक कश्मीरी खालिकदार से एक सूचना प्राप्त की जो उसने काशगर
शिष्टमडल के एक सदस्य से प्राप्त किया था। उसमे यह इच्छा व्यक्त की
कि वह महाराजा से सपक करना चाहता है। महाराजा ने यह सूचना
को प्रेषित कर दी। पर इससे प्रसन्न होने की जगह वह रूस-कश्मीर के
ी सभावना से घबडा उठा। और अतत महाराज ने यारकद से अपने आप
क सबधो के लिए वार्ता की जो अमृतसर की सधि के विरोध मे नहीं थी।
मे जब यारकद से एक दूत कश्मीर पहुचा और व्यापारिक सधि पर हस्ता-
गये तो महाराजा ने इसकी पूरी सूचना भारत सरकार को दे दी। सारे स
त मे था पर उसने इस ओर अधिक ध्यान नही दिया। पर उसके अधि
इसमे भी रूसी खतरे की सभावना देखी। इसका मूल परिणाम हुआ कि
इससे कश्मीर मे रेजीडेंट नियुक्त करने की अति आवश्यकता समझ बैठा
प्रतिदिन की सूचना ले उसके पास भेजा करे। उसकी उतावली इसी से
और उसने ह्वाइटहाल से इसके लिए आवश्यक मजूरी भी नही ली।
ीडेंट की नियुक्ति हेतु प्रस्ताव कश्मीर के महाराजा के पास यह बताते हुए
ा गया कि मध्य एशिया की घटनाओ की देखरेख के लिए यह आवश्यक
साथ ही इसमे उसके राज्य के आतरिक मामला म हस्तक्षेप की कोई इच्छा
।

महाराजा चौक पडा। उसके सामने पजाब का उदाहरण था जहा रेजी
नियुक्ति के बाद पजाब का अपहरण हो गया। इसके अतिरिक्त गवनर
के आतरिक मामलो म हस्तक्षेप करने के वायदो को भी वह सही नही
था क्योकि ऐसे मे विशिष्ट अधिकारी पर भी नियत्रण सभव नही था।
866 मे घाटी मे कुछ आर्थिक परिवतन किये जिससे राजा को 3 लाख
हानि हुई पर इस सबध मे कोई भी विरोध किसी काम का नही रहा।
रण से लेह मे नियुक्त एजेन्ट अब स्थायी बन गया था। विशिष्ट अधिकारी
क्ति भी कष्टदायी हो गयी थी। महाराजा न निवेदन किया कि वह सदा
का विश्वस्त बना रहा है उसने विद्रोह के काल मे की गयी अपनी सेवाओ
दिलायी जिसके लिए ब्रिटिश उसे जागीर देना चाहते थे और जिसे उसने
कर नही लिया था कि वह उनकी कृपादृष्टिमात्र ही चाहता है। जहा इस
सेवाओ के लिए पटियाला जैसे राज्य को यह सुविधा मिली है कि वहा स
ेन्सिया हटा ली गयी हैं, जबकि उसके ऊपर एक एजेसी आरोपित की जा
ो 1846 की सधि के अतगत उचित नही है। महाराजा ने वाइसराय से

ृर, एम० एल पूर्वोद्धृत पृ० 37 रिगाड को कोट करते हुए।

कहा कि उनका आंतरिक शासन सुधार की ओर है इसलिए उसे पारितोषिक के स्थान पर दंड न दिया जाय।

पर महाराजा यह जानता था कि वह रेजीडेंट को रखने के प्रस्ताव से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सकता और अतत "उसने स्वय एक मध्यमार्ग प्रस्तुत किया। विशिष्ट अधिकारी की यात्रा 6 माह से बढाकर 8 माह कर दी जाय और लेह के कमिश्नर की एक साल।"[1] चूंकि मौसम के कारण मध्य एशिया से सपर्क 3-4 माह के लिए टूट जाता था इसलिए अधिकारी का कार्यकाल लगभग पूरे वर्ष ही हो जाता।

नार्थब्रुक का उद्देश्य पूरा हो गया। सभवत उसने यह सोचा कि आखिर नाम मे क्या रखा है और विशिष्ट अधिकारी भी तो रेजीडेंट का कार्य कर सकता है। इसलिए उसने पंजाब सरकार को आदेश दिये, जिसके माध्यम से कश्मीर से सपर्क किया जाता था, कि इस अधिकारी के भविष्य मे सब सूचनाएं दी जाए जो उनके और कश्मीर के बीच हो अथवा लाहौर मे कश्मीर के एजेंट के माध्यम से सूचनाएं प्रेषित करें। यह चेष्टा की गयी कि विशिष्ट अधिकारी को इस सब सपर्कों की प्राप्ति की सुविधा प्राप्त हो जाय। इस अधिकारी को स्वय सूचना भेजी गयी कि किस तरह वह मध्य एशिया की घटनाओ पर निगाह रखे और बाद मे जब पंजाब कश्मीर पर नियंत्रण की समाप्ति हो गयी और सरकार ने सीधा उसका शासन अपने हाथ मे ले लिया तो महाराजा को कहा गया कि वह उस अधिकारी के माध्यम से ही सपर्क करे, सीधे नही जैसा कि वह पहले पंजाब से किया करता था। नार्थब्रुक नई व्यवस्था से सतुष्ट हो गया। कश्मीर पर पकड तगडी हो गयी।

अफगानिस्तान

लार्ड मेयो का उत्तराधिकारी 1872 मे नार्थब्रुक हुआ। मध्य एशिया म रूसी विस्तारवाद की नीति के थोडे ही दिनो बाद खीव के खानाते पर उसने अधिकार कर लिया। इसके कारण शेर अली को विश्वास हो गया कि अफगानिस्तान मे उसकी शक्ति को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। इसीलिए 1873 मे उसने एक बार पुन ब्रिटिशो से अच्छे सबंध स्थापित करने की चेष्टा की जिससे कि वह अपने को गद्दी पर सुरक्षित पा सके। शिमला मे अफगान राजदूत और लार्ड नार्थब्रुक के बीच बातचीत हुई जिसमे राजदूत ने लिखित आश्वासन मांगा कि रूस के द्वारा या किसी और देश द्वारा अफगानिस्तान पर आक्रमण की स्थिति मे ब्रिटिश अमीर की सहायता के लिए एक सेना उस रास्ते से भेजेंगे जिससे अमीर

1 ऐल्डर जो० जे० ब्रिटिश इंडियाज नार्दन फ्रंटियस, पृ० 110 रिवाड को नोट करते हुए।

चाहेगा। वाइसराय को प्रस्ताव ठीक लगा और उसने सेक्रेट्री आफ स्टेट के पास यह लिखा कि "यदि वह पूर्णतया ब्रिटिश संबंध के मामले में हमारी बात स्वीकार करता और उसके अनुसार कार्य करता है तो हम उसे धन, अस्त्र और सेना से सहायता करेंगे जिससे विदेशी आक्रमणकारियों को ढकेला जा सके। आवश्यकता का निर्णय हमारी ओर से होगा।" पर सेक्रेट्री आफ स्टेट ने प्रस्ताव को ठुकरा दिया। और इच्छा व्यक्त की कि "अमीर को भौतिक सहायता देने के आश्वासन के समय अति सावधान रहने की आवश्यकता है जिससे कि उसमें अनावश्यक आशा का जागरण न हो"[1] इससे अमीर क्रुद्ध हो गया और 5000 राइफलों की भेंट तो उसने स्वीकार कर ली, पर वाइसराय के 10 लाख रुपये उसने लेने से इनकार कर दिया।

शेर अली पर यह बुरा प्रभाव दो घटनाओं के कारण और घनीभूत हो गया। भारतीय सरकार ने अफगानिस्तान और फारस के बीच मेयो के काल में सीस्तान में सीमा संबंधी झगड़े में मध्यस्थता का काम अपनी जिम्मेदारी पर बिना मतलब ही ले लिया। यह उसे मालूम था कि जिसके भी विपक्ष में मामला तय होगा वह तुरंत उससे रुष्ट हो जायेगा। निर्णय अफगानिस्तान के विरुद्ध गया। और दूसरे पर शेरअली ने इच्छा व्यक्त की कि उसका लड़का अब्दुल्ला जान उसका उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया जाय और बड़े लड़के को उत्तराधिकारी न बनाया जाय। ब्रिटिशों ने सम्भवतः किसी के पक्ष में स्वीकृति न प्रदान कर बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया क्योंकि उन्हें अब्दुल्ला जान की योग्यता का निश्चित रूप से पता नहीं था। पर उन्होंने यह बताकर भूल ही की कि अमीर के उत्तराधिकारी को उससे बेहतर व्यवहार की आशा नहीं रहेगी।

अमीर अब यह समझ गया कि इस समस्या का सही हल अब यही है कि रूस से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किये जाय। रूस पहले से ही अफगानिस्तान को मिलाने के लिए चेष्टाशील था। रूसी तुर्किस्तान के गवर्नर जनरल कौफमान ने 1870 में अमीर को मैत्रीपूर्ण तरीके से सूचना भेजी थी कि अमीर का भतीजा अब्दुल रहमान जिसने ताशकंद में शरण ली है उससे कोई सहायता नहीं प्राप्त करेगा। अमीर, जिस पर लार्ड मेयो का जादू अब भी सवार था, ने इस पत्र को उसके पास प्रेषित कर दिया। पर अमीर को अब्दुल्ला जान को अपना उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा के उत्तर में जो रूसी उत्तर मिला था वह चालाकी से भरा हुआ था। इस सबने शेर अली के समक्ष स्पष्ट किया कि रूस उसमें आधे रास्ते को तय करने के बाद मिलने को तैयार है। इसके बाद रूस और अफगानिस्तान के

1 प्रसाद बी० द फाउंडेशन आफ इण्डियाज फारेन पालिसी (1860-1882) दिल्ली (1967) पृ० 139।

बीच पत्रो का आदान प्रदान और जल्दी जल्दी होने लगा।

अफगानिस्तान से सबधो के मामला मे लाड नायब्रुक लाड लारेस से भी अधिक प्रभुत्वपूण निष्क्रियता की नीति का समथक लगता था। उसने इस नीति को कट्टरता के स्तर तक अपनाया। यदि 1869 म नही तो कम-से-कम 1873 तक अमीर न अपन को योग्य सिद्ध कर दिया था तथा अफगान स्तर पर उसे उदबुद्ध शासक भी कहा जा सकता था। उसने निश्चित रूप से अनुभव कर लिया कि उसके लिए यह आवश्यक है कि वह रूस या ब्रिटिशो से सबध निकट बना ले और उसने स्वाभाविक रूप से जानबूझकर अपन को ब्रिटिशो की ओर कर लिया था। पर ब्रिटिशा न एक निश्चित अवसर अफगानिस्तान म लाभ प्राप्ति का गवा दिया और लाड नाथब्रुक ने अमीर को अपने बडे लडके याकूब खा को षडयत्र के सहारे कैद करने के प्रयास के लिए डाटकर गभीर रूप स असतुष्ट कर दिया।

1874 मे माच मे इगलैंड म मत्रिमडल वदल गया। डिजरली ने ग्लैडस्टन का स्थान प्रधानमत्री के रूप म ने लिया, जबकि सैलिसबरी अग्रील के स्थान पर भारत के सेक्रेटी आफ स्टेट बा गये। नये प्रधान मत्री यह समझत थे कि उनके पूवाधिकारी ने मध्य एशिया मे ब्रिटिश प्रतिष्ठा को घटाया है। 1873 मे रूस ने इगलैंड को आश्वस्त किया कि वह खीवलेने म रुचि नही रखता पर थोडे काल वाद उसने इसका उल्टा किया। 10 मई 1874 को सेनापति लो माकिन को इस नये उत्तरी प्रात का सैनिक गवनर बनाया गया और उसने शीघ्र ही सभी तुर्किस्तानी कबीलो को एक पत्र लिखा जिन पर अपना प्रभुत्वपूण अधिकार जताया। इसी बीच कौफमान का पत्र-व्यवहार शेर अली से बढ गया और जब ब्रिटिशा ने विरोध किया तो यह बताया गया कि यह बधाई से सबधित पत्र-व्यवहार है। जब सलिसबरी ने इसे भी वद करने को कहा तो उसे डाट पडी।

दुर्भाग्य से नवीन मत्रिमडल ने इस स्थिति को बडी गभीरता से लिया। रूस से कठोर नीति अपनाने के स्थान पर, जिसका कि सभवत कुछ उत्तर भी मिलता, मत्रिमडल ने यह सोचा कि यदि रूसी सम्राट और मत्री जान बूझकर ब्रिटिशो से अपना सबध नही बिगाडते हैं तो उनका दूर के एजेटो पर तथा सैनिक नेताओ पर अधिकार कम होने के कारण, रूसी नीति अस्थायी ही होगी। आक्रामकता को बढाने वाली शक्तिया लगातार उपस्थित थी और रूसी अधिकारियो के मौखिक आश्वासन पर विश्वास नही किया जा सकता था। इन परिस्थितियो मे समस्या का समाधान लाड लारेस की पुरानी नीति को वदलना था तथा दो दिशाओ मे अतिरिक्त सुरक्षा की व्यवस्था करना था। पहली तो यह कि इगलण्ड अफगानिस्तान मे नेतृत्वपूण स्थिति अजित करे और दूसरे यह कि अमीर अपने देश मे एक ब्रिटिश एजेट स्वीकार करें। प्रथम दिशा मे कलातखा के साथ बातचीत प्रारभ हुई जिसका दो उद्देश्य था। पहला तो यह कि क्वेटा पर अधिकार कर लिया जाय और दूसरा

कलात मे ब्रिटिश एजेण्ट नियुक्त किया जाय जो सभवत मध्य एशिया म ब्रिटिश एजेण्टो की अगुआई करता और शेष स्थानो पर इनकी नियुक्तिया इसके बाद होती। पर अफगानिस्तान के अमीर ने इसे अस्वीकार कर दिया। अतत 1876 में खा के साथ एक सधि की गई जिसके अतगत ब्रिटिशो को क्वेटा प्राप्त हो गया।

दूसरी बात के सबध मे सेक्रेट्री आफ स्टेट सैलिसबरी न नार्थब्रुक को यह समझाया कि एक ब्रिटिश एजेण्ट हेरात मे नियुक्त किया जाय और सभवत कधार में भी जिसका उद्देश्य था, "सही और लगातार सूचना की प्राप्ति।" "यह वतमान समय मे सावधान नीति अपनाये जाने के लिए आवश्यक है।" लार्ड नार्थब्रुक न योग्य लोगों के बीच इनकी शुद्ध छानबीन कराई और फिर सैलिसबरी को लिखा, अम्बाला मे 1869 मे जो कुछ हुआ उसकी जाच के बाद हम यह नहीं सोचते कि यह कहना उचित है कि अमीर ने हेरात मे कभी ब्रिटिश अधिकारी का प्रस्ताव स्वीकार किया वे योग्य लोग जिनके मत की महत्ता है उनका कहना है कि अमीर अफगानिस्तान म ब्रिटिश अधिकारियो के रखने पर इतराज करेगा जब तक कि सरकार के गृह क्षेत्र मे नीति परिवर्तित करने की इच्छा नही है और अभी तक जिस तरह के सबध रहे हैं उससे बेहतर सबध की आवश्यकता नही है, हम ऐसी स्थिति म अमीर के पास एक औपचारिक घोषणा की सस्तुति नही कर सकते जिसमे हेरात मे ब्रिटिश अधिकारी के नियुक्ति की बात हो।"[1]

एक ब्रिटिश एजेण्ट का ऐसा प्रस्ताव सचमुच आश्चर्यजनक था। 1869 और 1873 मे जब अमीर ने ब्रिटिशो से सुरक्षात्मक सधि के लिए पहुच की थी तो उससे कहा गया था रूस का खतरा है ही नही पर अब एकाएक उसे यह समझाने का प्रयास किया गया कि रूसी खतरा तो है ही और यह कि उसे अपनी इच्छा के विपरीत भी अपने क्षेत्र म एक ब्रिटिश एजेण्ट रखना चाहिए। नार्थब्रुक को इस तक मे कोई जान नही दिखाई दी और उसने सेक्रेट्री आफ स्टेट को लिखा, "मैं अमीर के प्रति आपके सदेहो पर विश्वास नहीं कर सकता क्योकि वे किसी अधिकारी द्वारा सही नही बताये गये हैं।" पर सेक्रेट्री आफ स्टेट वाइसराय की बात सुनने को तैयार नही था और उसने यह कहते हुए एक शिष्टमडल भेजने की बात दुहराई, "स्पष्टतया किसी छोटे राजनैतिक लाभ की ओर उसे ले जाने से कई लाभ होगे जो कठिन नही होगा चाहे उसे खोजना ही हो या आवश्यकता हो तो चाहे पैदा ही क्यो न करना हो।"[2]

इस कारण इन परिस्थितियो म लार्ड नार्थब्रुक के समक्ष पद-त्याग करने के अतिरिक्त कोई रास्ता नही था। पर ऐसा करने से पूर्व उसने सेक्रेट्री ऑफ स्टेट

1 मलेट प० 108 प्रमाण बी० पूर्वोद्धृत प० 144 63 भा देखें।
2 देखें बर्नार्ड मलेट टामस जार्ज अर्ल आफ नार्थब्रुक (1908) प० 91।

को एक चेतावनी भेज दी कि अमीर की इच्छा के विरुद्ध उसपर शिष्टमंडल का आरोप ब्रिटिशों के लिए अफगानिस्तान में एक अनावश्यक और महंगे युद्ध को ला देगा जो कई वर्षों तक चलता रहेगा।"[1]

क्रोमर ने लिखा है कि, "भारतीय राजनीतिज्ञ के रूप मे लार्ड नार्थब्रुक लार्ड लारेंस की परंपरा से जुड़ा था। वह देशी राजाओ के हितो का सबल समर्थक था और दृढता से यह स्वीकार करता था कि लार्ड डलहौजी ने उनके अधिकारो की अवहेलना कर बडी भूल की थी। वह सभी प्रकार के बाह्य आक्रमणो के विरुद्ध था। वह उस राजनीतिक और कूटनीतिक पक्ष से घृणा करता था जो यह कहते थे कि पुरातनवादी लोगो का विरोध किया जाना चाहिए। उसका सीधा अस्त्र सत्यता का था।"

बाद मे लार्ड लिटन के काल मे जब अफगानिस्तान के प्रति उसकी नीति बदल दी गई तो उसके परिणाम भयानक हुए पर फावर्ड नीति वालो ने इसके लिए लार्ड नार्थब्रुक को दोषी ठहराया। आरोप यह लगाया गया कि उसने शेर अली के कहने पर उसे रक्षा की गारण्टी नहीं दी। पर नार्थब्रुक ने लार्ड्स को याद दिलाया कि उस समय सदन मे पूरे मसले पर विचार किया गया था और "वर्तमान अनुदार वादी सरकार की नीति जो उस समय के अभिभाषणो म व्यक्त की गई थी वह यह थी कि शेरअली की इच्छानुसार उसकी मांगा की पूर्ति नितांत असंभव है जिसमे वह बिना शर्त सुरक्षा की गारण्टी चाहता है।"

लार्ड नार्थब्रुक ने ऐसे प्रश्न पर स्तीफा दिया जिसने मैलेट की दृष्टि मे उसे भारतीय हित का ब्रिटिशपूर्वाधिकारो व हितो की तुलना मे, मसीहा बना दिया।"[2] लार्ड क्रोमर न इसकी विवेचना की है, "इस मामले मे लार्ड वैकसफील्ड (फरवरी 1874 मे) की सरकार ने कडे दबाव डालकर 5 प्रतिशत आयात कर को वापस कराना चाहा जो मैनचेस्टर के सामान पर लगाया गया था। लार्ड नार्थब्रुक ने मजबूती से इस दबाव को अस्वीकार कर दिया। वैसे तो वह स्वयं स्वतंत्र व्यापारी रहा था, पर उसने पूर्ण शक्ति के साथ उत्तर दिया कि यह कर रक्षण के कारण नहीं बल्कि राजस्व के लिए लगाया गया है और इसकी समाप्ति और अन्य करो को लगाने की बाध्यता प्रस्तुत करेगा जो भारतीयो को बुरे लगने वाले होगे और यह कि राजनैतिक दृष्टि से यह अत्यधिक बुद्धिहीनता की बात होगी कि हम स्पष्ट रूप से भारत के हित का मैनचेस्टर के लिए बलिदान कर दें।" सैलिसबरी बहुत परेशान था। वह नार्थब्रुक स पूर्णतया अफगानिस्तान मे एजेंट नियुक्त किये जाने के मामले पर भिन्न मत रखता था। स्थिति और गंभीर न हो जाये इसलिए

1 देखें, बर्नार्ड मलेट टामस जार्ज अर्ल आफ नार्थब्रुक (1908), पृ० 105।

2 वही।

जुड़े हो सकते हैं जिसने उसके चरित्र को उत्साहित किया है।" पर यह उत्तर यह सिद्ध करता है कि वाइसराय इन मामलो पर दूरदृष्टि नहीं रखता था।

पर ऐसे विषय वस्तु की कमी नही है जिसके आधार पर नाथब्रुक की प्रशसा न की जा सके। 1874 के बगाल दुर्भिक्ष के अवसर पर किस तरह पहली बार प्रत्येक जीवन बचाने का प्रयास किया गया, इसकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त उसने जब यह देखा कि लाड सैलिसबरी भारतीय आर्थिक हितो को ब्रिटिश आर्थिक हितो के नीचे दबा देना चाहता है तो उसने इसका सफलता-पूवक विरोध किया। और इसके लिए भी वह एक सिद्धान्तप्रिय व्यक्ति के रूप म काय न हो जान तक हमारी प्रशसा का पात्र है। पर प्रत्येक आक्रामकता के बावजूद उसन अपना सतुलन बनाये रखा।

अपनी जाति के प्रति घमड की भावना से अलस्त, नाथब्रुक की भारतीयो के प्रति नीति रिपन से मिलती-जुलती थी जिसके इल्बट बिल के सम्बध मे उसने कहा था, 'यह देशी लोगा की महत्तम आवश्यकता है कि व लगभग हमारी तरह ही शिक्षा प्राप्त करें, इन मामलो में रिपन की नीति का मैं हार्दिक समथन करता हू।"

एक बार समझौता हो जाने पर नाथब्रुक कभी भी उससे पीछे नही हटता था चाहे जो कुछ हो जाय। भारत मे दुर्भिक्षकाल मे भी चावल का निर्यात, उसका अफगानिस्तान के अमीर के साथ समझौते के विरुद्ध कुछ न करने से इनकार, तथा भारतीय राजाओ से हुए सधियो व समझौता पर उसका डटा रहना आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो उसके पक्ष मे प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

लाड कजन ने उसके विषय म लिखा, "लाड नाथब्रुक बहुत शक्तिशाली व्यक्ति था जिसे इग्लैंड की परिभाषा मे ह्विग मस्तिष्क वाला पुकारा जाता है। वह प्रशासन और अन्य कार्यों के मामले मे न्यायप्रिय और उदार था उसने भारत के प्रति कभी अपना आदर नही खोया। सभी पुराने वाइसरायो मे वह एक ऐसा व्यक्ति था जिसने भारतीय मामलो मे लगातार रुचि बनाये रखी। उसने मेरे कायकाल मे लगातार मुझसे पत्रव्यवहार बनाये रखा जैसा कि उसने इसके पहले के लोगो के साथ भी किया था जबकि उसे भारत छोड़े 30 वष हो चुके थे।"[1]

भारत स अपने पद से त्याग-पत्र देने के बाद नाथब्रुक को अल का पद प्रदान किया गया। 1880 मे जब ग्लैडस्टन ने शक्ति प्राप्त की तो उसे फस्ट लाड आफ ऐडमिरैल्टी नियुक्त किया और मत्रिमडल मे उसे पूर्वी मामलो का मुख्य परामशदाता नियुक्त किया गया। वह 1819 मे हैम्पशायर का लाड लेफ्टीनेन्ट नियुक्त किया गया और इसके 15 वष बाद स्ट्रेट्टन मे 15 नवम्बर 1904 को उसका देहान्त हो गया। माइकेलडेनर मे उसे दफनाया गया।

1 कजन पूर्वोद्धृत, पृ० 253।

14

लार्ड लिटन (1876-1880)

आन्तरिक नीति

एडवड रावट बुलवेर लिटन का जन्म 8 नवम्बर 1831 को हुआ । डिजरैली ने उसके विषय मे कहा था, "एक महत्त्वाकांक्षी, कल्पनाशील, दप और शक्ति वाला व्यक्ति ।" उसका पिता प्रथम लाड लिटन एडवड बुलवेर एक महान उपन्यासकार था । उसकी मा रोसिना भी एक सपन्न परिवार से जुडी थी । उसने अपनी शिक्षा हैरो तथा जमनी मे बान मे प्राप्त की । अपने पिता से उसने साहित्यिक रुचि सस्कार मे प्राप्त की और उसने 30 वप की आयु के पूव ही दो भागो मे अपनी अच्छी कविताओ का सकलन प्रकाशित कराया । विदेश सेवा के सदस्य होने के कारण उसने कई योरोपीय पदो पर काय किया । 1869 मे उसने एडवड विलियस की पुत्री से विवाह किया । विलियस ब्रिटिश विदेश मत्री लाड क्लेरेन्डन का भाई था । 1872 मे उसे लिस्बन मे मत्री नियुक्त किया गया । दूसरे वप अपने पिता की मृत्यु पर वह पियर बन गया । 1875 म उसने मद्रास की गवनरी लेने से इनकार कर दिया था और कवि का शातिपूण जीवन बिताना चाहता था । पर जब दूसरे वर्ष उसे भारत के गवनर जनरल का पद प्रदान किया गया तो उसकी पत्नी ने उसे वह पद स्वीकार कर लेने के लिए दबाव डाला ।

दुर्भिक्ष

भारत मे पहुचते ही लिटन का स्वागत भयकर दुर्भिक्ष ने किया । 1876 78 के वप इस देश के लिए विपदा और भय लेकर आ पहुचे जिसमें सामर्थ्य और जीवन का विनाश हो गया । लगातार दो मानसून असफल हो गये जिससे दुर्भिक्ष का काल भी बढ गया । मैसूर और हैदराबाद, बम्बई के तमाम जिलो और मद्रास के तमाम क्षेत्र इससे बहुत प्रभावित हुए। उत्त र पश्चिम प्रान्त और अवध भी इसके प्रभाव से वचित नही रह सके । पूरे तौर पर 3 करोड 90 लाख लोगो पर इसका

बाटने के लिए भारतीय भद्रजनो की समिति बनायी जानी चाहिए, (11) कि विशेष परिस्थितियो को छोडकर व्यक्तिगत व्यापारिया को भोजन सबधी सामग्री का पूर्ति का अवसर खुले बाजार म देना चाहिए वैसे उसके काय पर तीव्र दृष्टि रखी जानी चाहिए, (12) दुर्भिक्ष क्षेत्र मे भू राजस्व वसूली या तो रोक देनी चाहिए या वापस ले लेनी चाहिए। परिस्थिति के अनुसार अनाज और बैलो की खरीद के लिए ऋण प्रदान किया जाना चाहिए, (13) स्थानीय जमीदारो को ऋण आदि के द्वारा अपने क्षेत्र की जनता की सहायता के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, (14) जहा भी आवश्यक हो जानवरो को घास वाले क्षेत्रा म ले जाने की सुविधा दी जानी चाहिए, (15) जनता और स्थानीय सरकारो म उत्तरदायित्व की भावना के विकास के लिए व्यय का बोझ स्थानीय करो पर डाला जाना चाहिए और केन्द्र को सावधानीपूवक छानबीन के बाद अवश्य सहायता भी करनी चाहिए, (16) इस धन के व्यय के लिए, करदाताओ मे से कुछ प्रतिनिधियो को लेकर सहायता काय मे उत्तरदायी बनाना चाहिए, (17) कि उपरोक्त सस्तुतियो के प्रकाश मे एक सहायता योजना पहले से ही तैयार रखी जानी चाहिए जिसे आपातकाल मे तुरन्त लागू किया जा सके और (18) कि एक अस्थायी दुर्भिक्ष नियम बना डालना चाहिए जो स्थानीय सरकारें आवश्यकतानुसार अपना सकें, पर इन्हे केन्द्रीय नियन्त्रण मे रहना चाहिए।

इस तरह से सहायता सबधी य सस्तुतिया थी जो भारतीय दुर्भिक्ष इतिहास मे स्वर्णिम पृष्ठ के रूप मे हैं। नि सन्देह ये प्रस्ताव स्वीकार कर लिये गये और अतत यह निर्णय किया गया कि बजट मे 1 करोड 15 लाख रुपये का प्रावधान भविष्य के दुर्भिक्ष के लिए हर वष रखा जाय। यह धन फेमीन रिलीफ एण्ड इन्श्योरेन्स शीर्षक मे रखा जाना चाहिए जिसका कुछ भाग रेलवे और नहरो जैसे रक्षात्मक काय के लिए व्यय किया जाना चाहिए।

इन्ही सस्तुतियो के आधार पर 1883 का 'दुर्भिक्ष कोड' बनाया गया जिसके आधार पर 'प्रान्तीय दुर्भिक्ष कोड' बनाये गये। इस कोड के कई भाग थे। प्रथम भाग मे यह था कि अच्छे काल मे क्या सावधानिया बरती जाय, दूसरे मे आपदा काल मे क्या सहायता काय आयोजित किया जाय, तीसरे मे भिन्न भिन्न लोगो के कत्तव्य जब सहायता काय प्रारभ कर दिया जाय, चौथे म वे आकार जिस पर प्रभावित क्षेत्रो को 'अभाव' और 'दुर्भिक्ष' वाले जिलो मे बाटा जाय तथा उनका सहायता सकिलो मे विभाजन और शेष अन्य मामला के सम्बन्ध म।

1878 का वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट

पर एक क्षेत्र मे प्राप्त प्रतिष्ठा दूसरे क्षेत्र मे गवा दी गयी। सीमा पर 'फावड नीति' को अपनाने का निश्चय करके आने वाले, "भारत मे इस उतावले गवनर

ऐक्ट तुरन्त वापस न लिया गया तो यह आगे बढ रहे तकपूर्ण और उदार लेखको को उनके गन्तव्य पर पहुचने से पूव ही तबाह कर देगा, यह सरकार के लिए प्रदत्त एक निश्चित सूचना साधन को बर्बाद कर देगा जिससे जनमत की जानकारी मिलती है। यह स्वस्थ राजनातिक विकास को दबा देगा, उपयोगी आलोचना को समाप्त कर देगा और खुराफाती प्रवत्ति को तीव्रतर कर देगा। सर असकिन ने इस कुविचारित काय बताया जबकि मोदी ने कहा, "सभवत इस ऐक्ट का सबसे बुरा काय यह था कि इसे अग्रेजी समाचार पत्रो पर नही लागू किया गया, जो कि बहुत-से मामलो म पत्र शिखर पर पहुच चुके थे।"[1] पर लाड लिटन वह व्यक्ति नही था जिसके ऊपर इन आलोचनाओ का प्रभाव पडे। यह ऐक्ट चलता रहा और रुचिकर बात तो यह थी कि 'अमृत बाजार पत्रिका' ने अपने को वर्नाक्युलर से अग्रेजी भाषा मे ढाल लिया।

अन्य परिवतन

लाड लिटन के काल के कुछ प्रमुख घटनाओ मे से एक था सरजान स्ट्रेची द्वारा प्रस्तावित आर्थिक सुधार। वह वाइसराय के कौंसिल मे अथ सदस्य था। उसके सुधारो मे एक महत्त्वपूण सुधार नमक कर सब धी था जिसपर अभी तक अलग अलग प्रा तो मे अलग अलग दर पर कर लगता रहा था। इन परिस्थितियो मे एक प्रा त से दूसरे प्रा त मे नमक का अवैध व्यापार, एव उन भारतीय राज्यो से जहा इस पर कर नही लगता था कि उन ब्रिटिश क्षेत्रो मे जहा कर लगता था इसकी हेराफेरी चलती थी इसपर रोकथाम के लिए एक अभेदनीय चुगी की पक्ति सिंध म अटक से लेकर मद्रास मे महानदी तक के बीच 2500 मील की लम्बाई मे बनायी गयी थी। कही-कही पर इसके लिए दीवारें कही पर कैक्टस की झाडिया और गड्ढो से सुरक्षा की व्यवस्था की गयी थी। इतनी लम्बी पक्ति के लिए केवल पैट्रोल हेतु ही 13,000 आदमियो की आवश्यकता थी जिसका विवरण नार्थब्रुक के काल मे हम कर आये हैं। इसकी दवा केवल दो ही थी। प्रथम, भिन्न भिन्न प्रान्तो मे नमक कर एक दर पर कर दिया जाय और दूसरे, कि भारतीय राज्यो मे नमक उत्पादन पर नियत्रण स्थापित कर दिया जाय। दूसरी दिशा मे लाड मेयो और नार्थब्रुक के काल मे कुछ कदम उठाये जा चुके थे जिसके परिणामस्वरूप चुगी की पक्ति को 1000 मील लाड नार्थब्रुक के काल मे कम कर दिया गया। शेष 1500 मील को स्ट्रैची ने साफ कर दिया जिसके प्रयास के फलस्वरूप नमक कर मे उपस्थित भेदभाव मे काफी कमी आ गयी।

स्ट्रैची ने देश मे स्वतत्र व्यापार के क्षेत्र म भी कदम उठाये। 1878 म चीनी

---

1 मोदी पेरी सर फिरोजशाह मेहता, पृ० 521।

पर से 29 अन्य वस्तुओं सहित चुंगी हटा ली गयी। स्ट्रैची का एक और महत्त्वपूर्ण कदम मोटे सूती वस्त्रों पर से 5% के आयात कर से हटाना था, जिसके लिए देश में अच्छी बाजार थी। वाइसराय के बहुत से सदस्यों ने यह कहकर इस कदम की आलोचना की कि यह कदम भारत के अहित में है और इसके द्वारा इंगलैण्ड की सरकार को प्रसन्न करने की चेष्टा की गयी है जिसने ब्रिटिश उत्पादकों का समर्थन जुटाने के लिए 1877 में एक प्रस्ताव रखकर भारतीय सरकार से यह कदम उठाने को कहा। पर यह सरकार को कृतज्ञ बनाने के लिए लिटन ने विरोध की चिन्ता किए बिना उसने बहुमत को अस्वीकार करने के अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए इसे पारित कर दिया।[1] कलकत्ता के चैम्बर आफ कामर्स ने विरोध व्यक्त करते हुए कहा, 'इंग्लैण्ड के लोग भारत के आर्थिक क्रियाकलापों पर निर्णय और प्रभाव अधिक डालने की क्षमता रखते हैं जिनको भारत के हितों और जनता की इच्छा की चिन्ता नहीं है।"

लार्ड लिटन के सुधारों में एक उसके द्वारा 1879 में स्थापित स्टेच्युटरी सिविल सर्विस की स्थापना था। 1833 के चार्टर ऐक्ट और 1858 की घोषणा में यह आश्वस्त किया गया था कि भारत का कोई नागरिक किसी भी पद को भारत सरकार के अधीन प्राप्त करने में राष्ट्रीयता, धर्म, जाति या रंग के आधार पर रोका नहीं जायगा। इन परिस्थितियों में लार्ड लिटन की जो नीति थी उसके संबंध में उसने स्वयं कहा, "अस्पष्ट और शीघ्रता में रचित आश्वासनों को पहले परिभाषित किया जाय। सावधानीपूर्वक उसपर विचार किया जाय और फिर उनकी आवश्यक सीमाओं में उन्हें कार्यरूप प्रदान किया जाय।" इस नीति पर चलते हुए उपरोक्त सुधार किया गया जिसके अंतर्गत प्रतिज्ञाबद्ध कर्मचारियों का छठवां भाग अब उन भारतीयों में से होने थे जो प्रांतीय सरकारों द्वारा नामित और वाइसराय तथा सेक्रेट्री आफ स्टेट से स्वीकृत हों। स्टेच्युटरी सिविल सर्विस प्रतिज्ञाबद्ध और अप्रतिज्ञाबद्ध कर्मचारियों के बीच की स्थिति में थे और इन अभ्यर्थियों को दो वर्ष के परीक्षण काल पर कार्य करना होता था। और कुछ विशेष परीक्षायें भी उत्तीर्ण करनी पड़ती थीं। पर इस नवीन सेवा ने उच्च श्रेणी के लोगों को अपनी ओर आकृष्ट नहीं किया और जो आये भी वे आर्डिनरी साबार्डीनेट सर्विस के माध्यम से भी नियुक्त हो सकते थे। लिटन का उद्देश्य यह था कि 'पढ़े लिखे भारतीयों को समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त धनी युवकों से अलग कर

---

1 हमने इस विषय की विस्तृत चर्चा लार्ड नार्थब्रुक के अध्याय में की है और हमने यह देखा है कि किस तरह इसके कारण सैलिसबरी से उसके सम्बन्ध बिगड़ गये जो भारत का सेक्रेट्री आफ स्टेट था।

दिया जाय।"[1] पर वह सफल नही हो सका। इस नवीन प्रथा को 8 वष के प्रयोग के बाद समाप्त कर दिया गया।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण

लार्ड लिटन ने मेयो की आर्थिक विकेन्द्रीकरण की नीति को एक कदम आगे बढाया। 1877 के अपने प्रस्ताव द्वारा प्रान्तीय सरकार को भू राजस्व, सामान्य प्रशासन, *आबकारी लेखन सामग्री, विधि, न्याय, टिकट आदि के अधिकार दे* दिये। राज्यो को दिया गया राजस्व व व्यय 1877-78 के आकडे पर आधारित किया गया। पर चूकि अनुमानित आय व्यय से कम आयी, इसलिए केन्द्र ने प्रत्येक प्रान्त के लिए सीमित काल के लिए 'ऐडजस्टिग असाइनमेन्ट' का प्रावधान किया और यह तय किया गया कि यदि किसी प्रान्त ने असाइनमेन्ट से कम खच किया तो वह शेष प्रान्त के खाते मे जोड दिया जायेगा जबकि अधिक व्यय करने पर यह धनराशि काट ली जायेगी।

इस प्रस्ताव ने स्थानीय सरकारो पर कुछ अतिरिक्त बधन भी डाल दिये। उन्ह सभी आदेशो के नियमो का पालन करना होता था जो केन्द्र के आर्थिक नियम के अतगत बनने थे। उन्हे अब भी वार्षिक बजट का अनुमान और लेखाजोखा केन्द्र को प्रस्तुत करना पडता था। उन्हे अपने बजट अनुमानो स अधिक अपनी आय से व्यय करने की छट नही थी। केन्द्र से अनुमति पर इसे किया जा सकता था। अपन आय से अधिक का ये बजट भी नही बना सकते थे और न अपने धन को इन्हे पूणरूप से व्यय करने की अनुमति ही थी। यह स्पष्ट कर दिया गया कि स्थानीय सरकारें यह न समझें कि केन्द्र सरकार ने "खजाने के धन पर नियत्रण से पूणतया और बिना शत" अपने को दूर हटा लिया है। केन्द्र ने स्थानीय कार्यों हेतु प्रान्तो मे वार्षिक अनुदान देने का अधिकार अब भी अपने हाथ मे ही बनाये रखा जिसके लिए प्रत्येक प्रान्त को स्पष्ट रूप से "योजना की रूपरेखा यदि उसकी कीमत 1[illegible] लाख से कम न हो, और विस्तत योजना और व्यय अनुमान यदि वह इससे अधिक हो", रिपोट मागती थी। केन्द्रीय अधिकारी कभी भी इन योजनाओ के कायका निरीक्षण किसी समय कर सकते थे। प्रान्तो को ऋण लेने का अधिकार नही दिया गया। वैसे वे केन्द्र के नियमो के अन्तगत स्थानीय कार्यों के लिए ऋणपत्र प्रसारित कर सकते थे।

चूकि प्रत्यक प्रान्तो से अलग-अलग समझौते इस सुधार के लिए किये गये। इनमे थोडी थोडी भिन्नता भी थी। पर प्रत्येक प्रान्त इसे स्वीकार करे यह

---

1 कम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग 6 पृ० 361।

आवश्यक नही था जैसा कि मद्रास ने किया। उसने मेयो के काल की ही व्यवस्था अपने यहा चलते रहने दी।

इस तरह यह स्पष्ट है कि स्थानीय सरकारो को अब भी अपने प्रशासकीय रिपोर्टें और कारवाई को केन्द्र के पास बराबर भेजना पडता था और केन्द्रीय नियत्रण और देखभाल मे कोई कमी नही आयी। कभी-कभी केन्द्र ने नीति सबधी सामान्य बातें भेजनी जारी रखी जिनपर स्थानीय सरकारो को काय करना पडता था। पर नयी व्यवस्था के अपने लाभ थे। प्रान्तो ने राजस्व प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रो मे अपनी रुचि विकसित की और 1,60,00,000 पौण्ड का मुफ्त बजट प्राप्त किया।

1877 का लिटन का प्रस्ताव

अथ के क्षेत्र मे विकेन्द्रीकरण के सबध मे और तत्कालीन व्यवस्था म सुधार हेतु और कदम लाड लिटन ने उठाये। 1877 के लाड लिटन के प्रस्ताव ने स्थानीय सरकारो को कुछ और अधिकार प्रदान किये।

सामान्य

लाड लिटन ने भारतीय न्यायालयो के उस रुख का विरोध किया जिसके अतगत अपने भारतीय कमचारियो का हताहत करने वाले यूरोपीय लोगो को कम कठोर दड देने की परपरा थी। उसका यह भी मत था कि कुछ भारतीय राजाओ की एक इण्डियन प्रीवी कौंसिल होनी चाहिए जो गवनर जनरल को परामश दे। वैसे तो उसका प्रस्ताव स्वीकार नही किया गया। पर इस तरह का ही एक सगठन 1919 के गवनमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्ट के अतगत बनाया गया जिसका नाम था चैम्बर आफ प्रिसेज। मोहमडन ऐंग्लो ओरियन्टल कॉलिज जो बाद मे अलीगढ विश्वविद्यालय म परिवर्तित हो गया, लिटन ने ही स्थापित किया। उसी के काल म ब्रिटिश ससद ने 'रायल टाइटिल्स ऐक्ट' पारित कर दिया जिसके अतगत अग्रेज सम्राट को कैसर हिन्द की उपाधि दी गयी। औपचारिक रूप से इस ऐक्ट ने भारतीय राजाओ का स्थान कुछ नीचा कर दिया। लाड लिटन ने 1977 मे दिल्ली मे एक शानदार दरबार किया जिसमे रानी विक्टोरिया को भारत की महारानी घोषित किया गया। इस आयोजन पर अपार धनराशि व्यय की गयी जो भयकर दुर्भिक्ष और बर्बादीपूण युद्ध की पष्ठभूमि मे उचित नही लगा। राबट्स ने इस काय को उचित बताने का प्रयास करते हुए लिखा है कि, "इस तरह के कायक्रम कठिनाई से हटाये जा सकते है, और सिविल सेवाओ के सदस्य जब वे प्रसिद्ध रिज पर उस बडी सभा मे खडे हुए तो उन्हें यह लगा होगा कि इस कारवाई के पीछे राजनतिक बुद्धिमत्ता है जिससे साम्राज्य की शक्ति व गौरव के प्रतीक

साज के ब्रिटिश सेवक, भारतीय राजा व शासक पहले से निर्धारित स्थान पर बैठे हुए थे।''[1] हो सकता है इस तक मे कुछ दम हो कि इस तरह के आयोजन टाले नही जा सकते, पर हमारे कल्पना मे नही आता कि 'दरबार असीमित शान शौकत, का होना चाहिए जिससे भारतीयो को साम्राज्य की शक्ति का आभास हो। काश इस शक्ति का प्रदशन अफगानिस्तान मे किया गया होता।

द्वितीय अफगान युद्ध

परिस्थितिया

1876 मे लाड लिटन लाड नार्थब्रुक का उत्तराधिकारी होकर आया। वह लारेन्स की नीति मे परिवतन करने का निश्चय कर चुका था जिसके कारण प्रथम अफगान युद्ध की ही भाति आपदा आ गयी और जिसने एक राजनीतिज्ञ के रूप मे उसकी प्रतिष्ठा की कब्र खोद दी। वह भारत मे इस सूचना सहित भेजा गया था कि शेरअली को वह सब प्रदान कर दिया जाय जो उसने 1873 मे मागा था। या दूसरे शब्दो मे यह कि उसके छोटे लडके अब्दुल्ला जान का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया जाय, कि अमीर अली को विदेशी आक्रमण की स्थिति म ब्रिटिश सहायता प्रदान की जाय तथा उसे एक निश्चित पद और बढी हुई आर्थिक सहायता प्रदान की जाय। और इसके बदले मे अमीर हैरात मे ब्रिटिश रेजीडेन्ट रखना स्वीकार कर ले। ब्रिटिश मत्रिमडल ने लिटन को उपयुक्त तरीका और समय ढूढने के लिए अवसर दिया जिससे कि ब्रिटिश इच्छा की पूर्ति हो। इस कारण जो भूलें की गयी उस सबका मुख्य उत्तरदायित्व लाड लिटन पर ही आता है।

लिटन ने जो पहला काम किया वह था शेरअली से यह पूछना कि एक ब्रिटिश शिष्टमडल भेजा जाय जिसे शेरअली ने नम्रता से इनकार कर दिया और यह कह दिया कि इसकी आवश्यकता नही है। इसी बीच काबुल के एक स्थानीय एजेन्ट के द्वारा अमीर ने ब्रिटिशा से यह कहला दिया कि इस शिष्टमडल को न स्वीकार करने के कारण हैं—प्रथम, कि यदि वह ब्रिटिश शिष्टमडल को आने की स्वीकृति दे दे तो वह रूसी शिष्टमडल को आने से कैसे रोकेगा और दूसरे कि उसकी जनता का स्वभाव ऐसा है कि वह शिष्टमडल को उनसे बचा नही पायेगा। पर लिटन इस उत्तर से सतुष्ट नही हुआ और उसने इसे "मध्य एशिया मे ब्रिटिश हितो के प्रति घृणात्मक रूख" की सज्ञा दी। अक्तूबर मे शिमिला मे लाड लिटन और काबुल को ब्रिटिश मुस्लिम एजेन्ट से जो साक्षात्कार आयोजित किया गया

1 राबटस पूर्वोद्धत पृ० 462।

उसमे एजेन्ट से उसने कहा कि अफगानिस्तान "दो लोहे के बतनो के बीच मिट्टी की मटकी के समान है", अर्थात रूस और ब्रिटिशो के बीच उसकी यह स्थिति है, और यदि अमीर ब्रिटिशो से अच्छे सबध रखता है तो हमारी सैन्य शक्ति "उसके चारो ओर रक्षाथ लोहे की जजीर की तरह फल जायेगी और यदि शत्रु हो जाता है तो वह उसे सरकडे की तरह तोड डालेगी।"

इसी बीच ब्रिटिशो ने कलात के खा के साथ वार्ता की जिसके फलस्वरूप 1876 मे दोनो के बीच एक सधि हो गयी। इसके अतगत ब्रिटिशो को क्वेटा प्राप्त हो गया जिससे होकर बोलन दर्रे पर अधिकार रखा जा सकता था और जो उनकी सेना द्वारा प्रथम अफगान युद्ध मे सेना का केन्द्र था। शेरअली ने स्वाभाविक रूप से सोचा कि क्वेटा पर ब्रिटिशो का अधिकार उनके काधार पर अधिकार की प्रथम सीढी है। पर वह अब भी ब्रिटिश मिशनमडल को स्वीकृति देने को तैयार नही था। शेरअली के मत्री सैय्यद नूर मुहम्मद के पेशावर म सर लेविस पेली के साथ बातचीत के लिए जनवरी 1877 मे भेजा गया जहा मत्री ने नम्रता से कहा कि, "ब्रिटिश राष्ट्र महान एव शक्तिशाली है और अफगान साथ इसकी शक्ति का मुकाबला नही कर सकते। पर उनकी जनता अपनी इच्छा को सर्वोपरि मानती और स्वतत्रताप्रिय है और जीवन से भी अधिक इज्जत को ऊचा स्थान देती है।' और यदि अमीर अफगानिस्तान म शासन करना चाहता है तो वह जनता से यह कहने का साहस नही कर सकता कि वह एक विदेशी की सहायता से शासन कर रहा है। पर दुर्भाग्य से माच मे जब वार्ता चल रही थी सैय्यद नर मुहम्मद की मत्यु हो गयी। लिटन को अवसर मिल गया और इसके बावजूद कि नूर मुहम्मद के स्थान पर वार्ता करने के लिए दूसरा व्यक्ति रास्ते म ही था, उसने सम्मेलन की समाप्ति की घोषणा कर दी। अमीर से भी सभी सपर्क तोड दिये गये। वैसे लिटन अफगानो के लिए यह घोषणा की कि जबतक वे अपने शासक या अन्य किसी के द्वारा उत्तेजित किये जाने पर ब्रिटिशो के मित्रो के विरुद्ध आक्रामक रुख नही अपनाते कोई भी ब्रिटिश सैनिक अनाहूत अफगानिस्तान मे प्रवेश नहीं करेगा।'

पर लिटन की यह घोषणा सच्ची नही थी और न इसका पालन ही किया जाता था क्योकि उसी समय स उसन "अफगान शक्ति को असगठित और कमजोर करने की नीति" प्रारभ की। यही उसने कहा भी। उसने उत्तर पश्चिम के कबाइलियो से सपक कर विकास किया और उनके माध्यम से उसने अपनी चौकिया अफगानिस्तान की सीमा तक पहुचा दी। महाराजा कश्मीर से गुप्त व्यवस्था के अतगत गिलगिट मे लिटन ने एक ब्रिटिश ऐजेन्सी स्थापित की। और इस तरह से उसने अफगानिस्तान को अनुभव कराया कि हम अत्यधिक शक्तिशाली और सभ्य हैं और वे तुलनात्मक दृष्टि से कमजोर और अद्ध बबर हैं 'और इसीलिए वैसे तो अफगानिस्तान और ऐसे अन्य राज्य स्वतत्र थे, पर उन्हें 'ऐसा लगना चाहिए

कि वे निश्चित रूप से नीची स्थिति मे हैं कि उन्हें ऐसी नीति नही अपनाने दी जायेगी जो हमे खतरे के सामने प्रस्तुत कर दे।"

इसी बीच यूरोप मे भी कुछ घटनाएं घटी। 1875 मे बोजनिया और हर्जिगोविना मे विपदा आयी और 1876 मे सर्विया और माटेनग्रिन वाले हथियार लेकर लडखडाते तुर्की साम्राज्य के विरुद्ध खडे हो गये। विद्रोहियो की सहानुभूति मे रूस ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और मार्च 1878 की सेन स्टीफेनो की सधि द्वारा काले सागर मे कुछ लाभ प्रस्तुत किया। जैसा कि सर्वविदित है ग्रेटब्रिटेन अपने पूर्वी साम्राज्य के पथ मे रूस के प्रभाव वृद्धि का विरोधी था। उसने इस सधि को मान्य नही किया और तुर्की अनुमति से साइप्रस पर अधिकार करके रूस के विरुद्ध युद्ध की तयारी प्रारभ कर दी। पर युद्ध की विपत्ति को जमनी की मध्यस्थता से टाल दिया गया और जून-जुलाई 1878 मे बर्लिन के काग्रेस ने रूस से उसकी सुविधाए वापस ले ली। इसी बीच रूस को, ब्रिटिश अधिकारियो के अनुत्तरदायी बातो से और स्वेज नहर से होकर माल्टा की ओर कुछ भारतीय सैनिको को भेजे जाने से, उत्तेजना की स्थिति मे आने का अवसर आया। यूरोप मे ब्रिटिश शक्ति को कम करने के इरादे से रूस ने अफगानिस्तान मे युद्ध की स्थिति पैदा कर उनकी शक्ति उधर मोडने की चेष्टा की। रूस इसके लिए प्रयासशील था कि इग्लैण्ड अफगानिस्तान से युद्ध मे फस जाय। वैसे तो वह इससे कोई लाभ नहीं उठा सका पर वह अपने आग्ल-अफगान युद्ध कराने की योजना मे सफल हो गया।

जून 1878 मे रूस के कौफमान ने अफगानिस्तान के अमीर को लिटन की ही तरह की शर्तों पर सधि करने का प्रस्ताव किया। पर अमीर ने इनकार कर दिया। पर चूकि वह अपनी नीति को आगे बढाने पर आमादा था इसलिए उसने 13 जून को जिस दिन बर्लिन की काग्रेस प्रारभ हुई थी, उसी दिन से सेनापति स्टोलेटाफ ताशकद छोडकर काबुल की ओर तीन तरफ से सेनाओ से सुरक्षित घिरा आगे बढा। शेरअली के विरोध और अपील, किसी ओर ध्यान नही दिया गया बल्कि उल्टे उससे जार द्वार यह कहा गया कि यदि स्टोलेटाफ को कोई हानि हुई तो यह उसकी जिम्मेदारी होगी और उसके भतीजे तथा विरोधी अब्दुररहमान का अफगान गद्दी के लिए समर्थन किया जायेगा। शेरअली को हिचकिचाहट के साथ झुकना पडा। उसने रूस के साथ निश्चित और स्थायी मैत्री की सधि की।

अफगानिस्तान मे रूस शिष्टमडल का प्रवेश लिटन के लिए एक खतर की घटी थी जिसके विरुद्ध गह अधिकारियो की स्वीकृति से उसे कठोर कदम उठाना था जिमसे कि अफगानिस्तान पर सधि और शिष्टमडल दोनो आरोपित हो जाय। लिटन का पत्र अमीर के पास 7 अगस्त को इस प्रस्ताव सहित पहुचा कि

एक दूत भेजा जायेगा और यह कि अफगानिस्तान को बिना ब्रिटिश अनुमति के किसी और देश से संधि करने की अनुमति नही होगी और यह कि उसे हेरात म स्थायी रूप से निवास करने के लिए एक ब्रिटिश रेजीडेन्ट रहने की अनुमति देनी होगी और यह कि वह यह माने की ब्रिटिश को एक अधिकारी भेजने का अधिकार होगा जो अमीर से उसकी सुविधा से बातचीत करेगा। उसी दिन अमीर के उत्तराधिकारी अब्दुल्लाजान की मृत्यु हो गई जिससे वह अत्यधिक निराश हो गया। रूसी एजेन्ट ने उससे यह कहा कि वह अपना उत्तर तब तक न दे जब तक कि रूस के सम्राट से उत्तर न प्राप्त हो जाय और इग्लैण्ड को उसकी कारवाई से रोका न जा सके। पर लिटन को त्रस्त करना सरल न था। 30 अगस्त को उसने एक मुस्लिम दूत काबुल मे यह सूचना देने के लिए भेजा। एक ब्रिटिश शिष्टमडल आने वाला है। सर नेविल चैम्बरलेन जो इस शिष्टमडल का नेता था पेशावर के लिए रवाना हुआ। पर अग्रिम दल से अलीमस्जिद मे एक अफगान अधिकारी मिला और उसने नम्रता से कहा कि बिना अमीर के आज्ञा के वे आगे नही जा सकते। इस कारण ब्रिटिश दूत को पेशावर वापस लौटना पड़ा।

क्रुद्ध लार्ड लिटन ने यह घोषित किया कि "अमीर की नीति मध्य एशिया और पूर्णभारत मे हम मूर्ख बनाने की है" उसने गृह सरकार को झूठे ही यह सूचना दी कि ब्रिटिश शिष्टमडल को 'शक्तिपूर्वक ढकेल" दिया गया है और उनसे उसने निवेदन किया कि युद्ध घोषणा की अनुमति दी जाय।

लार्ड लिटन के समर्थको का कहना है कि इस समय उसे बहुत सी समस्याओ का सामना करना था। इस समय भारत पर आक्रमण की तनिक भी सभावना नही थी, हा अफवाह भले ही रही हो। और इसके अतिरिक्त यह भी एक कठिनाई थी कि उसके पास गृह विभाग की अनिश्चित सूचनायें थी जिसमे कोई भी उत्तरदायित्व लेने को तैयार नही था। इन परिस्थितिया मे उसके सामने कोई चारा नही था। 2 नवम्बर को उसने अमीर के पास एक चेतावनी भेजी कि वह 20 नवम्बर तक अपने देश मे स्थायी शिष्टमडल भेजने की अनुमति प्रदान करने का पत्रोत्तर भेज दे और इसके अतिरिक्त 'एक पूर्ण और उचित क्षमायाचना' जिसके अभाव मे उसे आक्रमण की विपत्ति झेलनी पडेगी।

किसी भी दृष्टि से देखने पर लार्ड लिटन की कारवाई क्रोधपूर्ण और राजनीतिज्ञतापूर्ण नहीं थी। शेरअली के रूस से गभीर विरोधो और अपीला से स्पष्ट था कि उसने रूसी शिष्टमडल का पूर्ण सकोचपूर्वक स्वागत किया। इस सबध मे सर्वोत्तम यह रहा होता कि ब्रिटिश रूस से सीधा सपर्क करते। फिर भी जो भी स्थिति लिटन के कारवाई का बहाना बनी थी, वह भी अब तिरोहित हो गयी थी क्योकि काबुल की ओर ब्रिटिश शिष्टमडल के आगमन की सूचना सुनकर रूसी शिष्टमडल ने अफगानिस्तान छोड दिया था। यह वापसी का उत्तम अवसर

था और इसके बाद उत्तम नीति यह थी कि इसपर ब्रिटिश सतोष जाहिर किया जाता और अमरीकी मैत्री जीतने की फिर से कोशिश की जाती।

युद्ध

पर लिटन इस बात के लिए आमादा था कि वह यह सिद्ध करे कि "हम अत्यधिक शक्तिशाली और अति सभ्य हैं और वे तुलनात्मक दृष्टि से कमजोर और अद्ध बवर हैं।" उसने किसी प्रतिष्ठापूण समझौते से आख मूद ली और युद्ध प्रयास प्रारभ कर दिये। अमीर का उत्तर जिसपर 19 नवम्बर की तिथि पडी थी, लाड लिटन के पास देर से 30 नवम्बर को पहुचा जिसमे उसने ब्रिटिश शिष्टमडल को स्वीकार करने की घोषणा की थी। पर उत्तर को अपर्याप्त माना गया क्योंकि इसके साथ "पूण और उपयुक्त क्षमायाचना" नही जुडी थी। इसके अतिरिक्त लाड लिटन ने यह आदेश दे दिया कि उसका सेना उसी दिन आगे बढ जाए, जिस दिन चेतावनी की तिथि समाप्त हो।

युद्ध घोषणा के तुरन्त बाद ब्रिटिश सेना अफगानिस्तान मे तीन दर्रों से प्रविष्ट हुई। मेजर जनरल रावट्स खुरमघाटी की ओर बढा जनरल स्टीवट बोलन दर्रा होकर कन्धार की ओर चला और सर सैमुअल ब्राउन खैबर दर्रा होकर जलालाबाद की ओर। अमीर ने बेकार ही कौफमान से सहायता की अपील की क्योंकि उसने उससे ब्रिटिशो से सधि कर लेने की सलाह दी। उसने बताया कि रूस के द्वारा अमीर अली को दी जाने वाली सहायता से उस सधि की शर्तों को आघात पहुचेगा जो बर्लिन मे हुई है। रूस उसकी अवहेलना नही कर सकता क्योंकि कुछ दिन पूव हुए युद्ध मे वह बहुत कुछ गवा चुका है। रूस ने बताया कि वह अमीर के लिए अधिक से अधिक यह कह सकता है कि वह लदन के अपने दूत के माध्यम से अफगानिस्तान के अस्तित्व को खतरा न पैदा होने देने का आश्वासन प्राप्त कर ले। पर ऐसा आश्वासन भी क्या अथ रखता था।

अमीर सच मे रूस द्वारा पूणतया धोखे मे रखा गया जिसके कारण उसे अत्यधिक आशायें हो गयी। पर जब समय आया कि कुछ किया जाय तो वह चुपके से शेरअली को उसकी ही दशा पर छोडकर खिसक गया जिससे कि वह अपनी सहायता स्वय करे। शेरअली ब्रिटिश शक्ति का मुकाबला अकेले करने मे अक्षम था। ब्रिटिशो की आगे बढती सेना को लगभग कोई विरोध नहीं झेलना पडा और शेरअली चुपके से रूस चला गया जहा मसरेशरीफ म 21 फरवरी 1879 को एक बीमारी के कारण इस निराश व्यक्ति की मृत्यु हो गयी।

अब शेरअली के पुत्र याकूब खा से वार्तायें प्रारम्भ की गयी और उसके साथ 26 मई 1879 को गडमक की सधि की गयी जिसके अतगत नये अमीर ने ब्रिटिशो को खुरम, पीशी और सीबी जिलो के अतिरिक्त खुरम दर्रा भी प्रदान

किया, उसने काबुल मे एक ब्रिटिश रेजीडेन्ट तथा हेरात व कुछ अन्य स्थानो पर ऐजेन्ट रखना स्वीकार किया, अपने विदेश सबध को ब्रिटिशो की सहायता से चलाने का वादा किया। अमीर को 6 लाख रुपये वार्षिक आर्थिक सहायत दी गयी तथा विदेशी आक्रमण की स्थिति मे आवश्यकतानुसार धन, जन और आय की सहायता के लिए भी आश्वस्त किया गया। ब्रिटिशो ने अफगानिस्तान से सेना वापस लेने का निर्णय किया। पर काधार से शरतऋतु मे सेना हटाने को कहा गया।

लार्ड लिटन की अफगानिस्तान पर विजय इस तरह पूर्ण हो गयी। वह अपने मन मे इस तरह के शानदार सफलता के कारण अति सतुष्ट और प्रसन्न हुआ होगा क्योकि यह विजय बहुत सस्ते मे उसने प्राप्त कर ली थी। पर उसे क्या पता था कि उसके नक्षत्र अफगानिस्तान मे उसकी महत्त्वाकाक्षा की बर्बादी का सामान जुटा रहे हैं और उसके राजनीतिज्ञ के रूप मे प्रतिष्ठा की राजनीतिक रूप से अतिम सस्कार की ऐसी तैयारी कर रहे है जैसी भारत के वाइसरायो मे कम ही को नसीब हुई। यह अति सदेहपूर्ण था कि नये अमीर की नियुक्ति जो ब्रिटिशो ने की, वह एक क्षण के विश्वास योग्य भी थी क्यो कि राबटर्स ने उसमे पहले ही फिरती आखो पीछे हटते माथे और शक्ति की कमी के दर्शन किये थे। सच यह था कि लिटन की इच्छा केवल हेरात मे ही मिशन खोलने की थी और उसने नये अमीर के परामर्श पर एक काबुल मे भी स्थापित कर दिया। यही इस बात का प्रमाण था कि अमीर को जनता का विश्वास नही मिलने जा रहा था क्योकि लोग मरना अधिक पसद करते थे और ऐसे शासक के अदर रहना कम जो किसी से सहायता प्राप्त करके शासन करे।

यह कहा जाता है कि इतिहास अपने को दुहराता है, पर यह कदाचित ही विश्वास किया जायगा कि यह द्वितीय अफगान युद्ध के मामले मे इतनी विश्वस्तता से ऐसा करेगा। सर लुई केवेग्नरी 24 जुलाई को काबुल ब्रिटिश रेजीडेन्ट की हैसियत से पहुचा। एच० एच० डाडवेल ने लिखा है[1] कि वह कठिनाई के काल मे एक बढिया व्यक्ति था, पर नाजुक काम के लिए उतना उपयुक्त नही था। 2 सितबर को उसने लिटन के पास शुभ समाचार का एक तार भेजा और 3 सितम्बर को एक विद्रोही अफगान सेना ने उसके निवास पर आक्रमण कर दिया और उसे तथा उसके सहायको को मार डाला। याकूब खा ब्रिटिशो की रक्षा करने म पूर्णतया असफल रहा या यो कह कि उसम उनकी रक्षा की कोई इच्छा ही नही थी। जनरल राबटस को एक तार म जो शिमला वापस आ गया था, उसने सूचित किया, 'अव्यवस्था आकाश छू रही है और नियत्रण के बाहर है, लोग नगर और आसपास के क्षेत्र से बालाहिसार म एकत्रित हो गय हैं, उन्होने तोपखाने के मैदान

1 दखें कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग 6, पृ० 419 31।

व मैगजीन को बर्बाद कर दिया है। सभी सैनिको और लोगो ने रेजीडेन्सी पर आक्रमण किया। मैंने डडशाह् को दूत के सहायतार्थ भेजा। पर उसे पत्थर और भाले से मार मारकर घोडे से उतार दिया गया, वह मृत्यु के निकट है। तब मैंने अपने लडके को कुरान, मुल्ला सहित सैनिका के पास भेजा पर कोई लाभ नही हुआ, होहल्ला अब भी जारी है, अभी शाम तक, अव्यवस्था नियत्रण के बाहर है।"[1] यह लार्ड लिटन के लिए अति कष्टदायी और व्यक्तिगत आघात था जिसने इसे स्पष्ट रूप से स्वीकार भी किया और कहा कि, "इस नीति का ताना बाना जो इतनी सावधानी और सतोष से बुना, कठोरता से तितर बितर हो गया वह सब जिससे मैं इस युद्ध मे बचना चाहता था भाग्य ने उसे हमारे सामने लाकर रख दिया।"

खेल को फिर से प्रारभ करने की आवश्यकता आ गयी। जनरल राबटस पुन खुरमघाटी होते हुए काबुल की ओर आगे बढा। रास्ते मे विद्रोहियो को दडित भी करता गया। सर डोनल्ड स्टीवर्ट ने कांधार पर अधिकार कर लिया और अपने को विश्वस्त सिद्ध करने के लिए याकूब ने आक्रामक सेना का काबुल पर अधिकार के पूर्व ही साथ दिया। उसने अपना शासक का पद छोडने की घोपणा करते हुए कहा कि वह ब्रिटिशो मे घास काटने वाला नौकर रहना अधिक पसद करेगा अफगानिस्तान का अमीर रहना कम। उसके चाल चलन के विषय मे छानबीन से यह सिद्ध हो गया कि रेजीडेन्ट के साथ जो दुर्व्यवहार किया गया उसमे वह सहापराधी नही था। पर यह निष्कर्ष तो स्पष्ट ही था कि वह "निन्दनीय तौर पर तटस्थ' था। उसे राज्य का कैदी बनाकर भारत भेज दिया गया।

अब अफगानिस्तान मे कोई नही था जिससे सधि की वार्ता किया जाय। खूखार अफगान चारो ओर हथियार लेकर उठ खडे हुए। राबटस को काबुल और बालाहिसार खाली करना पडा और शेरपुर मे शरण लेनी पडी जहा 10 हजार कबाइलियो ने इन्हें घेर लिया और ये लोग 1880 मे बसत मे कांधार से स्टीवर्ट के जाने पर मुक्त कराये जा सके। अब यहा से पूरे देश पर विजय प्राप्त करना काफी सनिको और धनी की सहायता से ही सभव था। और अब यह समझ लिया गया कि यह खेल अनुपयोगी सिद्ध हुआ। काबुल के गद्दी के लिए नये शासक की तलाश प्रारभ हुई। एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो कठोर और कट्टर अफगानों पर शासन कर सके और फिर भी ब्रिटिशो के हाथ की कठपुतली बना रहे। किसी मे ये दोनो गुण नही पाये गये, इस कारण लिटन ने देश को विभाजित करने का निश्चय किया। फारस से उसके द्वारा हेरात पर अधिकार करने की वार्ता प्रारभ हुई और सादोजाई घराने के प्रतिनिधि वलीशेर अलीखा को कांधार का शासक

1 सिम्सन आपर नाथ वेस्ट फटियर पृ० 171।

बना दिया गया।

पर समस्या का समाधान अब भी नहीं हुआ। एक व्यक्ति की आवश्यकता थी जो काबुल और उत्तर-पश्चिमी अफगानिस्तान पर शासन कर सके। इसकी आवश्यकता नही थी कि वह शक्तिशाली ही हो। भाग्य से इसी समय अफजल खां का पुत्र और शेरअली का भतीजा अब्दुर्रहमान जिसने अफगानिस्तान पर 1866 67 के बीच 17 माह तक शासन किया था और जो अब रूस की रक्षा म था, रूसियो के कुछ सैनिको के साथ अफगानिस्तान मे अपना भाग्य आजमाने पहुचा। अब्दुरहमान अपने बाबा दोस्त मुहम्मद की तरह ही शक्तिशाली व्यक्ति था। लिटन को जब उसके आगमन की सूचना मिली तो उसने अनुभव किया कि सही व्यक्ति आ गया है। लिटन न लिखा है[1] कि "अब्दुरहमान वैसे ही मिल गया जैसे "झाडी मे भेडा मिल गया हो।" रूसी सहायता के सहारे पहुचने वाले व्यक्ति के हाथ मे यह शक्ति सौपना एक साहसपूर्ण काय था और था 'अधेरे मे कूदना" पर लिटन को कुछ ऐसा विश्वास ही हो गया जो भविष्य ने सही ही सिद्ध किया।

अब्दुर्रहमान ने ब्रिटिश सहायता स्वीकार की। पर चूकि वह कुशल राजनेता था इसलिए उसे उन अमीरो के इतिहास की जानकारी थी जिन्होने विदेशी सहायता से शासन किया था। इसलिए उसने चालाकी से कदम बढाया। वह अपनी आत्मकथा म लिखता है "मैं खुलेआम अपने मे भी जाहिर करने म असमथ था क्योकि मेरे देशवासी अपढ और कट्टर थे। यदि मैं ब्रिटिशो के पक्ष मे कोई रुचि दिखाता तो वे मुझे मूर्तिपूजक कहते।"[2] इसीलिए आश्चय नहीं है कि वह पूण रूप से सफल हुआ। पर यह सब कुछ हुआ। उसी समय लिटन ने पद त्याग दिया और इग्लैंड वापस चला गया। "वैसे तो उसने चीजो के प्रति शक्तिपूण रुख अपनाया, पर उसकी 'फावड नीति' और अफगानिस्तान की स्थिति न उसके चेहरे पर तमाचा मारा। उसका स्वप्न धूल धूसरित हो गया। अफगानिस्तान पर अस्थायी कब्जे का प्रयास भी कितना महगा पडा था। और 36 वष पहले जैसे लाड आकलैण्ड अफगानिस्तान से निकलने का बहाना ढूढ रहा था वैसे ही लिटन भी।"[3]

लिटन की नीति के आलोचक और तीव्रभाषणकर्ता गृहक्षेत्र मे सफल हो गये। अप्रल 1880 के चुनाव मे अनुदारवादी सरकार चुनाव म हार गयी और लाड

1 देखें, लेडी बट्टी बालफोर परसनल ऐण्ड लिटररी लेटस आफ अर्ल आफ लिटन भाग 2 पृ० 202।

2 मीर मुशी सुल्तान मुहम्मद खा (सस्करण) द लाइफ आफ अ दुर्रहमान अमीर आफ अफगानिस्तान (दो भाग) भाग 2 पृ० 117।

3 सिवनन आथर पूर्वोद्धत पृ० 181।

वैक्सफील्ड के स्थान पर पुन ग्लैडस्टन प्रधान मंत्री बना दिया गया, सैलिसबरी का उत्तराधिकारी लार्ड क्रेनबुक के स्थान पर हार्टिंग्टन को भारत का सेक्रेट्री आफ स्टेट बनाया गया। लार्ड हार्टिंग्टन के आलोचनात्मक लिटन के विरुद्ध विचार सर्वविदित थे और इसी कारण उसने उसके पद सभालते ही तुरत स्तीफा दे दिया। वैसे उससे ऐसा करने को कहा नही गया। उदार सरकार अफगानिस्तान के मामले पर पुरानी सीमा पर आने को तैयार हो गयी और सीबी व पीशी जिले जो अफगानिस्तान के थे, उसे छोडने का आश्वासन रानी के भाषण मे रखा गया। लार्ड रिपन को भारत का नया वाइसराय बनाया गया जो इस नीति को कायरूप प्रदान कर सके।

नये मत्रिमडल की अफगान नीति लार्ड हार्टिंग्टन के मई और नवम्बर 1880 के प्रेषणो से स्पष्ट होती है जिसम उसने कहा, 'ऐसा लगता है कि दो सफल अभियानो के फलस्वरूप, अत्यधिक सेना लगाने तथा धन बर्बाद करने के बाद जो कुछ उपलब्ध हुआ है वह उस राज्य का पतन और असगठन है जिसे शक्तिशाली बनाया जाना था, मित्रतापूर्ण और स्वतत्र रखा जाना था। पर इसके स्थान पर एक प्रान्त को हाथ मे लेकर नयी और अनादरणीय उत्तरदायित्व का वहन कर लिया गया है जिससे पूरे देश मे अशाति व्याप्त है।" इसलिए नयी ब्रिटिश नीति अफगानिस्तान को युद्ध के पहले की स्थिति मे ले जाना है।

इस तरह भारत मे रिपन की नीति लिटन की प्रतिष्ठा को पर्दे के बाहर लाने की थी। पर अब्दुरहमान के साथ सधि वार्ता मे उसने वह दूरी देखी जहा तक चीजें पहुच गयी थी। और इसीलिए सभी नवीन घोषित नीति के साथ जिसमे वह और गृह सरकार दोनो सम्मिलित थे, वह वहीं पहुच सका जहा लिटन पहुचना चाहता था। अब्दुरहमान के साथ नवीन सधि मे पीशी और सीबी जिले ब्रिटिशो के पास बने रहे, नये अमीर ने ब्रिटिशो के अतिरिक्त किसी और से सबध न करने को आश्वस्त किया और इसके बदले ब्रिटिशो ने उसे वार्षिक आर्थिक सहायता दी और विदेशी आक्रमण की स्थिति मे जन, धन और अस्त्र की सहायता। इस समझौता की सबसे प्रमुख बात यह थी कि अफगानिस्तान मे कही भी ब्रिटिश रेजीडेन्ट नही रहेगा।

रिपन यह चाहता था कि कांधार और पश्चिमी अफगानिस्तान मे लिटन की व्यवस्था समाप्त कर दी जाय, पर वह उसे तुरन्त नही कर सका क्योंकि यह करना तभी सभव था जब कांधार के साथ लिटन द्वारा की गयी सधि को तोड दिया जाय। पर अफगानिस्तान मे शीघ्र ही स्थिति मे परिवर्तन हुआ। शेरअली का एक अन्य पुत्र अयूब खा जो हेरात का अधिकारी था, कांधार की ओर अपने पिता के अपमान और मृत्यु का बदला लेने के लिए बढा। वह वहा अधिकार भी करना चाहता था। जनरल बरोज ने उसका आगे बढना मैवन्द मे रोकना चाहा

पर वह अयूब खा से इतनी बुरी तरह स हारा कि पूर्वी सेना से इतनी बुरी तरह अभी तक अंग्रेजो ने कभी हार नही खायी थी। अयूब की विजयी सेना कांधार की ओर आगे बढी जहा स्टीवट द्वारा राबटस को 10 हजार सैनिको सहित भेजा गया। राबट्स ने 313 मील की यात्रा आश्चयजनक रूप स 20 दिन मे पूरी कर ली और कांधार के युद्ध मे अयूब को पूरी तरह पराजित किया जिसके बाद वह कांधार म 1881 तक रहा जब तक उसे वह स्थान खाली करन को नही कह दिया गया। इसी बीच स्टीवट भी समोझते के अनुसार निश्चित तिथि के पूव काबुल स वापस हो गया। कांधार के शासक शेरअली खा को पद से हटन को कहा गया। वस ब्रिटिशो द्वारा की गयी उससे पूव सधि का यह उल्लघन था। इस तरह अब्दुरहमान के नेतत्व म काबुल और कांधार एक हो गय और ब्रिटिशो को उसकी पूण विश्वस्तता प्राप्त हो गयी।

पर अभी ब्रिटिश सनाए अफगानिस्तान छोडकर आयी ही थी कि अयूब खा एक बार फिर हेरात से आग बढा और कांधार पर अधिकार कर लिया। कई महीने तक स्थिति ऐसी ही बनी रही और ब्रिटिशो को काबुल म अब्दुरहमान के विषय मे चिन्ता हुई। पर शीघ्र ही 1881 मे अक्तूबर मे अब्दुरहमान कांधार के विरुद्ध आगे बढा और ब्रिटिशो को आनन्द ही हुआ जब उन्होंने सुना कि उसी नगर के निकट अयूब पराजित हो गया है। अयूब फारस भाग गया और हेरात पर भी अब्दुरहमान का नियत्रण हो गया। इस तरह अब मध्य एशिया के एक खतरनाक प्रश्न का हल निकल आया।

लिटन की अफगान नीति का सिंहावलोकन

एच० एच० डाडवेल ने लिटन की अफगान नीति का समथन करने का प्रयास किया है। उसके अनुसार, "उसे अति कठिनाई उत्तराधिकार मे प्राप्त हुई।" 1873 का अप्रील का निणय ऐसा था जिससे शेरअली समझ गया कि ब्रिटिशो से किसी सहायता की आशा नही है और न उनसे डरने की ही आवश्यकता है। लिटन को अमीर की इस गलतफहमी को दूर करना था और डाडवल लिखता है कि, "सभवत लिटन का यह सोचना सही ही था कि युद्ध के अतिरिक्त कोई पथ नहीं है। स्टोलेटाफ के साथियो ने उससे अनुगामिता या शेरअली के विनाश की माग की थी और इस कारण "यह युद्ध 1878 मे रूसी कारवाई के कारण सभव हुआ। द्वितीय अफगान युद्ध की प्रथम से कोई समानता भी नही है सिवा बनावटी बातो के।" वैसे दोनो ने ऐसा मामला तैयार किया जिससे देश पर अधिकार किया जा सके और वह कठिनाई जिसे झेलकर अपने पास इसे बनाय रखा जा सके, इन दो युद्धो मे मुख्य अतर यह था कि प्रथम युद्ध के अत मे वह व्यक्ति शासक हुआ जिसे ब्रिटिशो ने पद से हटा दिया था, जब कि दूसरे युद्ध के बाद एक मित्र

शासक के स्थान पर एक विद्रोही शासक को गद्दी दिलाई गयी, दूसरे युद्ध ने लार्ड लारेंस और अर्गील के विनाशकारी नीति की समाप्ति की, इस युद्ध ने मुगल शासक के पतन के उपरान्त पहली बार एक ऐसी स्थिति प्रदान की जिससे कि वे आसानी से उत्तर-पश्चिम सीमा की रक्षा कर सकें।"[1]

डॉ० मजूमदार ने सिद्धान्त प्रस्तुत किया है कि द्वितीय अफगान युद्ध अफगानिस्तान होकर रूसी आक्रमण के भय के परिणामस्वरूप हुआ। क्या रूसी भय सचमुच था, यह एक संदेह का विषय है। "पर इसमे संदेह नहीं कि रूसी एक मित्र अफगानिस्तान के साथ ब्रिटिशो पर पर्याप्त दबाव डाल सकते थे और यूरोपीय युद्ध के चिन्तनीय अवसर पर उन्हे फसाये रख सकते थे और उनकी परिस्थिति का लाभ उठाकर यूरोप मे ब्रिटिशो से कुछ लाभ भी पा सकते थे।"[2]

पर तटस्थ भाव से देखने पर उपरोक्त बातें तर्क पर खरी नही उतरती। दोनो विद्वान यह मानते हैं कि कठिनाई तब प्रारंभ हुई जब रूस के शिष्टमंडल ने अफगानिस्तान मे जाकर संधि की। पर दोनो ने यह अनदेखी करने की चेष्टा की है कि शेरअली ने इस शिष्टमंडल को रोकने का हर संभव प्रयास किया और रूस की संधि उसके ऊपर आरोपित की गयी थी। शेरअली रूसी चरित्र को समझता था कि ब्रिटिशो से संघर्ष की स्थिति मे वह देश उनकी सहायता नही करेगा जैसा कि हुआ भी। शेरअली ने यह सब दबाव मे ही स्वीकार किया था। इन परिस्थितियो मे सबसे उचित यह हुआ होता कि पीटसबर्ग मे ब्रिटिश राजदूत अफगानिस्तान से उसी शिष्टमंडल की वापसी की मांग उठाता। यदि ऐसा किया गया होता तो रूस ने निश्चित रूप से यह बात मान ली होती जो इसी से सिद्ध है कि जैसे ही ब्रिटिश शिष्टमंडल अफगानिस्तान मे प्रविष्ट होने लगा, रूसी अपने-आप वापस हो गया।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिशो को अफगानिस्तान मे इतना कुछ नही हुआ जितना वे युद्ध के बिना नहीं प्राप्त कर सकते थे। सच तो यह था कि युद्ध प्रारंभ होने के पहले ही शेरअली न लिटन के पास पत्र भेजकर ब्रिटिश की बहुत सी मांगे स्वीकार कर ली थी। युद्ध ने ब्रिटिशो को कुछ लाभ प्रदान करने के स्थान पर उन्हे नीचा ही दिखाया और अब बड़े महगे अनुभव के बाद जो उन्होंने द्वितीय अफगान युद्ध मे प्राप्त किया कि अफगानिस्तान ने ब्रिटिश रेजीडेंट की उपस्थिति आवश्यक नही है।

इसके अतिरिक्त दोनो युद्धो के बीच अंतर करने की बात भी उतने महत्त्व की नही है। *यदि रूसी शिष्टमंडल की वापसी के बाद ब्रिटिश युद्ध मे न कूद पड़े* होते तो शेरअली से भी उनकी वैसी ही मित्रता बनी रहती जैसी अब्दुरहमान से उनकी हो गयी थी। यदि अफगानिस्तान मे लारेन्स की नीति मे परिवर्तन किया गया तो

1 कम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग, 6, पृ० 419 31।
2 मजूमदार आदि पूर्वोद्धत, प० 584।

यह भयानक परिणामो के बाद ही ऐसा किया गया। उत्तर पश्चिम सीमा पर जो लाभ प्राप्त हुए वे एक युद्ध के योग्य नही थे और इनमे स बहुत से तो बिना युद्ध के ही प्राप्त किये जा सकते थे क्योकि शेरअली ने अतत ब्रिटिश मागें मान ली थी।

सभवत बैंक्सफील्ड ने सलिसबरी को सच ही लिखा था कि लिटन की नीति "ऐसी स्थिति मे उचित रहती जब रूस आक्रमणकारी होता, पर रूस आक्रमणकारी नही है।" सच तो यह था कि सर स्टेफड नायकाट, लाड कैनस, क्रास और लाड सैलिसबरी सभी लाड लिटन की नीति के विरोधी थे। बैंकसफील्ड ने कहा था कि "वाइसराय" सरकार को कुछ करने को बाध्य कर रहा था, और ऐसा उसने वहा पहुचते ही करना प्रारभ कर दिया था। वह केवल भारत के विषय मे सोच रहा था और अपनी शर्तें लाद रहा था जिसके आधार थे उसके साधन, और यूरोप व टर्की मे सरकार की विदेश नीति। उसने दो बार आज्ञा का उल्लघन किया था और यदि उस पर रोक न लगती तो वह कोई भयानक आपदा आमत्रित कर लेता।"

ग्लैडस्टन सच ही बोला था जब उसने ससद मे कहा था, "1838 मे अफगानिस्तान मे हमने भूल से युद्ध छेड दिया। भूल होती ही है और क्षम्य भी है। पर हमने तो उसी मसले पर दूसरी बार भूल की है और वह भी बिना औचित्य के यह उचित ही कहा गया कि इतिहास अपने को दुहराता है और शायद ही इसके पूव ऐसा क्षण आया हो जब वर्तमान युद्ध और पिछले युद्ध मे इतनी एकरूपता देखी गयी हो।"[1]

दर्दिस्तान मे उसकी सीमा-नीति

इगलण्ड स अपने अनुदारवादी मालिको से 'फावड नीति' की छाया मे उत्साह प्राप्त करके जब लिटन भारत पहुचा तो उसने घृणापूवक घोषणा की, 'हम उत्तराधिकार मे गल्तियो का अम्बार मिला है जो चक्रवृद्धि दर पर बढता जा रहा है।" और विश्वस्तता के साथ उसने कहा, 'मुझे आशा है कि वप के अत तक निश्चित सीमा नीति के रूप म हमे कुछ दिखाना पडेगा ।"[2]

लिटन की सीमानीति, अफगानिस्तान के प्रति आक्रामक रूप के अतिरिक्त, दर्दिस्तान मे शक्तिशाली स्थिति प्राप्त करने की थी जो उसकी दृष्टि म गिलगिट म ब्रिटिश ऐजेण्ट नियुक्त करने से सभव थी। रूस, चीन और ब्रिटिश के केन्द्र स्थल होने के कारण कश्मीर की अपनी सामरिक महत्ता थी। इस घाटी के उत्तर-पश्चिम

1 देखें मैनैट बर्नाड टामस चार्जे अल आफ नार्थब्रुक मीरयुशी मुल्तान मुहम्मद खा द लाइफ आफ अब्दुल रहमान मडी-बेट्टी पूर्वोद्धत और विस्तार के लिए।

2 गोपाल एम० ब्रिटिश पॉलिसी इन इडिया, (1858 1905) पृ० 78।

मे र्दादस्तान है जिसमे हुजा, नागर, चितराल, दीर, स्वात, बाजौर, डारेल, तानगिर और चिलास के छोटे छोटे राज्य आते थे। इन पर प्रभाव की स्थापना इस क्षेत्र के एक के द्र स्थल गिलगिट से हो सकती थी जिसपर 1846 मे महाराजा गुलाब सिंह ने अधिकार किया था।

मध्य एशिया म रूस के आगे बढ़ने से तथा लाड मेयो द्वारा अपने आप अफगानिस्तान की सीमाओ के निर्धारण से र्दादस्तान की महत्ता और बढ गयी। इस घोषणा के अ तगत अलिखित रूप स 1873 मे आग्ल रूसी समझौते से आक्सस नदी तक अफगान सीमाए मान ली गयी। आक्सस के उस पार तक रूसी प्रभाव मान लिया गया पर रूस ने प्रभाव क्षेत्र और अधिकार क्षेत्र[1] मे विशेष अतर नहीं किया, और 1873 के समझौते के बाद इसी के सहारे उसने एक के बाद दूसरे स्थान पर अधिकार किया जब तक कि इसने एक साम्राज्य का रूप धारण नही कर लिया। जैसे-जैसे रूसी आगे बढ रहे थे, ब्रिटिशो ने डगलस फोरसीथ के नेतृत्व मे यारकद म एक व्यापारिक शिष्टमडल भेजा जिसका उद्देश्य ब्रिटिश क्षेत्र के चारो ओर एक दुहरी कुशन वाली पट्टी स्थापित करना था। फोरसीथ ने 1873 74 के दूसरे शिष्टमडल के अधीन एकाएक यह देखा कि पहाडियो मे दो दर्रे है जो चितराल और यासीन कबीले क्षेत्रो को आक्सस घाटी से अलग करते हैं। ये दर्रे थे इटकोमान जिससे होकर रूस अपनी सेनाए यासीन भेज सकता था और फिर गिलगिट, चिलास और तोरबेला होते हुए पजाब। दूसरा दर्रा बडोफिल का था जो चितराल के पास था और जिससे पशावर और जलालाबाद को खतरा था।

इन खोजो ने सरकारी क्षेत्र मे तहलका मचा दिया। लिटन ने उनके दृष्टिकोण की भत्सना की जिन्होने रूस के प्रति तटस्थ भाव दिखाया। इसके सबध मे उसने कहा कि, "यह मुर्गी के हृदय द्वारा तिनके के सिर पर आरोपित किया गया है'- और यह निश्चित था कि "यदि कश्मीर की उत्तरी सीमा पर रूसी सेनाए पहाडियो मे फैल जाय तो ऐसी स्थिति ,का भी नैतिक प्रभाव हमारी शक्ति की शाति व्यवस्था के लिए उतना ही हानिकर होगा जितना रूस के मेरू पहुचने का।"[3] ऐसी खतरनाक सभावनाओ के लिए गारटी लिटन की दृष्टि मे र्दादस्तान पर नियत्रण से ही सभव थी।

कुछ समय तक तो यह प्रस्ताव सामने आया कि एक त्रिगुटीय समझौते द्वारा ब्रिटिश अफगान और कश्मीर र्दादस्तान पर मिल-जुलकर अधिकार कर लें।

1 लाड मेयो का अध्याय देखिए।
2 गोपाल, एस० प० 80।
3 ऐल्डर जी० जे० ब्रिटिश इडियाज नार्दन फ्रटियर प० 114।

यदि अफगानिस्तान सहायता का दृष्टिकोण अपनाये तो उसे चितराल तक दिया जा सकता है। पर लिटन को यह लगा कि अफगानिस्तान ब्रिटिश विचारो के अनुसार काय करने को तैयार नही है और इसीलिए स्थिति पर नियत्रण हेतु कोई और रास्ता अपनाना होगा।

यदि ब्रिटिश के कहने मे अफगानिस्तान नही था तो कश्मीर तो ब्रिटिश प्रभाव मे था ही। इसलिए यह तय किया गया कि चूकि दर्दिस्तान पर सीधे अधिकार करना कठिन और महगा दोना है, इसलिए महाराजा को इन क्षेत्रो पर अपना राजनतिक प्रभाव स्थापित करने की छूट प्राप्त होनी चाहिए। यह काम शातिपूण ढग से हो तो अधिक ठीक है, पर आवश्यक होने पर इसके लिए ब्रिटिश सेना की सहायता भी ली जा सकती है। इसके बदले मे ब्रिटिशो को कश्मीर मे रेजीडेन्ट रखने की सुविधा मिल सकती थी और गिलगिट म एक एजे ट जो स्थिति पर आख रख सके।

इसलिए 17 और 18 नवम्बर 1876 को लिटन कश्मीर के महाराजा रणवीर सिंह से माधोपुर मे मिला और अपने प्रस्ताव रखे। महाराजा ब्रिटिश सहायता से दर्दिस्तान म अपना प्रभाव प्रसन्नतापूवक बढाने को उद्यत था पर गिलगिट मे एजेन्ट की नियुक्ति की बात उसके गले से नीचे नही उतर रही थी। पर लिटन अपनी मागा पर दृढ था जिससे महाराजा को झुकना ही पडा। पर इसके लिए कुछ शर्तें तय हो गयी जैसे कि एजेन्ट व्यापार और प्रशासन के मामले म हस्तक्षेप नही करेगा, वह कबीलो को राज्या के सबध मे रिपोट ही भेजेगा आदि। 1877 मे बिडुल्फ को एजेन्ट नियुक्त किया गया जो गिलगिट की ओर रवाना हुआ। उसे काय यह सौंपा गया कि "वह कश्मीर सीमा के आगे की घटनाओ की विश्वस्त सूचनाएं भेजेगा जो कश्मीर अधिकारियो के परामश से तयार की जाएगी वह सीमा पार के कबीला म मैत्री भाव स्थापित करेगा जिससे धीरे धीरे कश्मीर का उनपर नियत्रण और प्रभाव बढता जाय।"[1]

दर्दिस्तान मे कबीला के राज्य अफगानिस्तान के आक्रामक रुख से डरते थे और प्राय ब्रिटिशो से सहायता मागा करते थे। ब्रिटिशो और महाराजा न इस स्थिति का लाभ उठाया। जहा लाड लिटन ने एक ओर अफगानिस्तान के अमीर को एक बार से अधिक इसके कबीला के विरुद्ध नीति के लिए चेतावनी दी, वही दूसरी ओर उसने चितराल जैसे राज्या को कश्मीर से मिलने के लिए समझाया। इस तरह चितराल के अमनुलमुल्क ने कश्मीर से समझौता करके महाराजा की सत्ता स्वीकार कर ली और प्रतिनिधियो का आदान प्रदान करना स्वीकार कर लिया जिसके बदले उसे आर्थिक सहायता प्रदान की गयी। पर इस तरह के समझौतो

1 एल्डर, जी० जे० ब्रिटिश इडियाज नादन फ्रटियर पृ० 119 मे उदधृत।

की अफगानिस्तान तथा इन राज्यो के बीच धार्मिक सबधो के आगे कोई महत्ता न थी। क्बाइली नेता खुलेआम ब्रिटिशो व महाराजा के विरुद्ध घृणा की बातें करते थे और अमानुलमुल्क इस समझौते और आर्थिक सहायता प्राप्ति के बाद यह कहते सुना गया कि, "मैं कुछ काफिर औरतो को लाकर उन्ही दामो मे यहा बेच दूगा।" ये सरदार ब्रिटिश के विरुद्ध अफगान या रूसी आक्रमण के अवसर पर भी विश्वस्त नही हो सकते थे। इसलिए आश्चय नही कि इन राज्यो पर कश्मीर के प्रभाव स्थापित करने की चेष्टा ही क्यो की गयी जब पहले से ही सदेह के बादल उमड घुमड रहे थे।

पर लिटन इस बात पर आमादा था कि दर्दिस्तान को स्वतत्र नही रहने देगा। बाद के निरीक्षण से यह पता चला कि यहा के दर्रे किसी विदेशी के लिए अपने अधिकार मे रखने का अवसर बडी सुविधा से नही प्रदान करते। पर इसी बीच लिटन महाराजा से भी बिचक गया और उसने अब किसी और रास्ते की तलाश प्रारभ की जिसके द्वारा इन दर्रों पर नियत्रण सभव हो। ऐसा एक रास्ता, जो भारत से इन दर्रों के निकट पडता था, खोज भी लिया गया। यह रास्ता पेशावर से स्वात, दीर, चितराल होकर आक्सस के उत्तर की ओर घाटी तक जाता था और लद्दाख के रास्ते से निकट पडता था। एक दूसरा रास्ता पश्चिम मे जलालाबाद और कुन्दूज होकर था।[1] दीर का रहमतुल्ला खा पडोसी राज्यो से मतभेद रखता था और काबुल के आक्रामक रूस के प्रति भी भयातुर था। उसने ब्रिटिशो से सहायता की अपील की। लाड लिटन को यह समझ मे आया कि दीर को ब्रिटिश प्रभाव का केन्द्र बिन्दु बनाया जा सकता है और उसके द्वारा अन्य कबीलो के राज्यो पर ब्रिटिश राजनीति मे प्रभाव स्थापित किया जा सकता है। रहमतुल्ला खा के साथ तुरन्त वार्ता प्रारम्भ की गयी। पर जल्दी ही पता चल गया कि इस सरदार पर भी कश्मीर के महाराजा की तरह ब्रिटिश हितो के लिए बहुत अधिक निभर नही रहा जा सकता। लिटन ने परीशान होकर कहा, "यहा के सरदार, हम जब भी चाहेगे, हमारे पास आएगे। हमे उन्हे केवल कोचवान की तरह इशारा करना पडेगा। और यह उचित नही है कि हम तुरन्त ही नयी लालची बदमाशो को अपने हाथ मे रखे।"[2]

पर अनुदारवादी वाइसराय अब भी दर्रे की रक्षा की नीति पर दृढ था। जब उसकी एक सगठित अफगानिस्तान रखने की नीति, जो ब्रिटिश प्रभाव मे हो, पूरी नही हुई तो उसने उसे कई टुकडो मे बाटने का निश्चय किया। कवि वाइसराय को एक शानदार बात सूझी कि दर्दिस्तान मे गिलगिट मे ब्रिटिश एजेन्सी स्थापित

1 एल्डर जी० जे० ब्रिटिश इडियाज नादन फन्टियर, पृ० 184।
2 वही, पृ० 126 मे उद्धृत।

करने के स्थान पर इसे जलालाबाद में क्या न रख दिया जाय। पर जल्दी ही 'झाडी का बेडा' अब्दुरहमान प्रकट भी हुआ और उसने सारी योजना पर पानी भी फेर दिया।

इस तरह दो वैकल्पिक योजनाएं साथ साथ नहीं चल सकती थी। पर माधोपुर की योजना में जो थरथराहट और दरार नजर आयी थी वह भी इसी समय तीव्र हो गयी। कश्मीर के रूस समर्थक के प्रमाण सामने आने लगे। 'वह मित्र जिसका प्रभाव गिलगिट में ब्रिटिश एजेन्ट रूस व अफगानिस्तान के विरुद्ध प्रयोग में लाता था, पता चला कि दोनो से गुप्त सम्पर्क में है।"[1] महाराजा पहले से ही गिलगिट में एजेन्ट रखने के विरोध में रहे थे। इसीलिए एजेन्ट के कार्यभार ग्रहण के समय से ही सहयोग न करना और अच्छे सम्बन्ध न बनाये रखना स्वाभाविक ही था। गिलगिट में बिन्दुल्फ की एजेन्ट के रूप में और हेन्केकी कश्मीर में 'आफीसर आन ड्यूटी' के रूप मे नियुक्ति भी उचित नहीं मानी गयी। दोनों में निर्णय की परिपक्वता की कमी थी, वे प्राय अव्यावहारिक व खतरनाक योजनाओं में लगे रहते थे और आपस में उनके सबंध भी मधुर नहीं थे। इसके अतिरिक्त श्रीनगर से गिलगिट तक का 230 मील लम्बा कठिन रास्ता था जो साल में 6 महीने बर्फ से ढका रहता था और रास्ते में दर्रे और नाले पड़ते थे जिन्हें झेलना सरल नहीं था।

एक कठिनाई के बाद दूसरी सामने आती रही जब तक कि महाविपत्ति ने उसका स्थान नहीं ले लिया। इसके फलस्वरूप इंग्लण्ड से लायी गयी लिटन की वैज्ञानिक सीमा के सिद्धान्तों से भरी टोकरी का सामान अव्यावहारिकता की आंधी में तितर बितर हो गया। चपरोत नामक एक सामरिक किले को नागर ने हुंजा से जीत लिया पर इसपर अधिकार बनाये न रख सकने के कारण इसे अपने अधिकार में बनाये रखने के लिए महाराजा को आमन्त्रित किया। कश्मीर की सेनाओं ने तुरन्त किले पर अधिकार कर लिया और इस पर दर्प का प्रदर्शन किया कि उन्होंने उस क्षेत्र में अपने को मजबूत कर लिया है जहां पर वे पहले से ही नियन्त्रण रखना चाहते थे। पर इसकी कीमत काफी महंगी चुकानी पड़ी। शीघ्र ही हुंजा ने कबीले के लोगों की धार्मिक भावना का मूर्तिपूजकों के विरुद्ध उभारा और यासीन जैसे राज्यो की सहायता लेकर युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटिशों की सहायता से कश्मीर की सेनाएं किले की रक्षा कर रही थी और अंतत सफलता महाराजा के ही हाथ रही।[2] पर शांति स्थापना के पूर्व लिटन को अपने जीवन में एक और नयी शिक्षा मिली। अफगानिस्तान की ही भांति दर्दिस्तान के राज्यों को भी जीतना सरल तो था या उनके बीच सामरिक महत्त्व के स्थानों पर अधिकार किया जा सकता था पर कठिनाई यह थी कि उन पर अधिकार बना कैसे रहे।

---

1 ऐल्डर पृ० 130।

2 देखें कपूर एम० एल० कश्मीर सोल्ड एण्ड स्नब्ड, पृ० 88 95।

"माउण्ट ब्लाक' से ऊचे पवतों' ने होडम और ब्रिटिश सैनिक सगठन से अति दूर गिलगिट म स्थापित ब्रिटिश प्रभाव पयाप्त नही था। इसका असर न तो अमानुलमुल्क पर ही पड रहा था और न दुहरे व्यक्तित्व वाले कश्मीर के कमचारी ही इससे नियत्रित हो पा रहे थे।"[1] जून 1880 म भारतीय विदेश सचिव ने स्वीकार किया, "कठिनायी उत्पन्न होने पर यदि असभव नही, तो भारत सरकार के लिए महाराजा को या मेजर बिदुल्फ को रक्षाथ या शाति स्थापनाथ दूर सीमा पर सहायता पहुचाने म कठिनाई ही होगी।"[2]

इस तरह गिलगिट एजे सी का सारा खेल बेकार सिद्ध हुआ। लिटन की ददिस्तान की नीति अफगानिस्तान की तरह पुन एक अनुदारवादी साहसिक कदम सिद्ध हुआ क्याकि इससे शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य की जगह ब्रिटिश प्रतिष्ठा को आच ही पहुची। गिलगिट एजेन्सी की पूरी निरथकता तो स्पष्ट हो गयी और इसकी समाप्ति तो लगभग तय मान ली गयी। रिपन न एजेन्ट को वापस बुलाया। पर कश्मीर के महाराजा स कहा गया कि यह एक अस्थायी व्यवस्था है क्याकि ब्रिटिश उस अधिकार का परित्याग नही करना चाहते थे जो इतनी कटुता के बाद उन्होंने प्राप्त किया था।

लिटन क चरित्र का मूल्याकन बार-बार करने की आवश्यकता नही है, पर यह कहा जा सकता है कि कुछ क्षेत्रो मे उसकी आतरिक नीति उसके बाह्य सबधो की तुलना म अधिक बुद्धिमत्तापूण थी। लाड कजन ने उसके विषय मे लिखा, "पर उस काल के प्रकाशित कागजो तथा भारत के सरकारी रिकाड के अध्ययन से मेरे मन मे लिटन की अत्यधिक योग्यता और सामथ्य के विषय मे, जो उसने कागज पर दिखाया, एक आदर पैदा हुआ। अग्रेजी गद्य की सपूणता और मिनिट और डिस्पैचेज जो उसने भेजे वे सराहनीय थे।'[3] जहा एक ओर उसकी आर्थिक विकेन्द्रीकरण नमक कर का समायोजन और यूरोपीयो को हल्की सजा देने का विरोध करने की नीति उस भारतीय राष्ट्रवादियो की प्रशसा प्रदान करती है, वही उसके द्वारा मोटे कपडे पर 5 प्रतिशत आयात कर की समाप्ति निश्चित रूप से लकाशायर के उद्योगपतियो के प्रति मोह को दर्शाती है। पर उसकी अफगानिस्तान नीति और सीमा नीति ने उसकी छिछली राजनीतिज्ञता को सामने लाकर रख दिया तथा वर्नाक्युलर ऐक्ट एक प्रशासक की भेद भावपूण नीति लेकर लोगो के सामने उपस्थित हो गया। कुछ मामलो म जैसे भारत के लिए उसकी सोना को सिक्के का आधार बनाने की योजना, केन्द्र सरकार के अधीन अलग से उत्तर

1 ऐल्डर पूर्वोद्धत, पृ० 133।
2 वही उद्धत।
3 कजन ब्रिटिश गवनमेन्ट इन इण्डिया भाग 2 पृ० 255।

पश्चिम सीमा प्रान्त स्थापित करने की योजना तथा भारतीय राजाओं की एक प्रीवी कौंसिल बनाने की योजना में निश्चित रूप से वह अपने समय से आगे था जिससे यह सिद्ध होता है कि लिटन युद्ध में अधिक शांति काल के योग्य एक व्यक्ति था। सामरिक युद्धों और बाह्य कूटनीति में वह साधारण ही था और उसमें लारेंस की दूरदर्शिता नहीं थी।

लिटन ने 1880 में भारत छोड़ दिया और इंग्लैण्ड के जनजीवन संबंधी कार्यों में तब तक कोई रुचि नहीं लिया जब तक 1887 में फ्रांस में उसे राजदूत नहीं बना दिया गया। वह फ्रांसीसी का अच्छा ज्ञान रखता था तथा फ्रांसीसी कविता से उसे रुचि होने के कारण बड़ा प्रेम था। उसकी साहित्यिक रुचि और कलाप्रेम ने शीघ्र ही उसके दूतावास को कवियों और कलाकारों का अड्डा बना दिया जिससे वह फ्रांसीसी लोगों में बड़ा लोकप्रिय हो गया। यहीं पर 24 नवम्बर 1891 में उसकी मृत्यु हो गयी।

15

लार्ड रिपन (1880-84)

रिपन 24 अक्टूबर, 1827 को पैदा हुआ। उसके पिता का नाम फ्रेडरिक राबिन्सन (जो बाद मे रिपन का अर्ल हो गया) था। उसकी मा लेडी सारा होबर्ट बकिंघम-शायर के चौथे अर्ल की पुत्री थी। उसके बचपन का नाम जार्ज फ्रेडरिक सैमुअल राबिन्सन था। वह अपने पिता का दूसरा जीवित पुत्र था। चूंकि व्यक्तिगत रूप से इस सम्पन्न परिवार ने जार्ज के लिए घर पर ही शिक्षा की व्यवस्था कर दी इस कारण उसे किसी स्कूल या कॉलेज में नहीं जाना पडा। उसने 1849 मे हेनरिटा एने थियडोसिया से विवाह किया, 1852 मे संसद सदस्य चुना गया और 1859 मे अपने पिता के अर्ल रिपन के रूप मे उत्तराधिकारी हुआ। इसके अतिरिक्त युद्ध का अवर सचिव और भारत का सेक्रेट्री आफ स्टेट का पद भी उसने प्राप्त किया और अतत 1880 मे ग्लैडस्टन ने उसे भारत का वाइसराय बना दिया। लार्ड कर्जन ने लिखा है कि "लार्ड रिपन का वाइसरायत्व का काल मात्र 4 वर्ष रहा और यदि इसका अंत ब्रिटिश लोगो के पछतावे का कारण नही बना तो निश्चित ही भारत के सभी वर्गों ने इसके विरुद्ध उत्तेजनापूर्ण और बडे-बडे जुलूस निकाले क्योंकि उसे वे लोग राष्ट्रीयता और आत्म नियंत्रित सरकार की परंपरा को आगे बढाने वाला मसीहा मानते थे जो पिछले बहुत समय से चक्कर देनेवाली गति से धीरे धीरे आगे बढी थी।"[1] लार्ड रिपन सचमुच एक उदार सुधारक था और अपने दृष्टिकोण व विश्वास मे वह लार्ड बैंटिक से मिलता जुलता था। उसका स्थानीय स्वशासन स्थापना का प्रयास, उसका विकेन्द्रीकरण, उसकी शिक्षा नीति और उसके प्रशासनीय सुधार आदि के क्षेत्रो मे आधुनिक भारत के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण मील के पत्थर मान जायेंगे। हम उसकी कारवाइयो के सभी विभागो का संक्षिप्त विवेचन यहा करेंगे।

स्थानीय स्वशासन

लार्ड रिपन ने लिखा, 'मेरी इच्छा है कि धीरे धीरे स्थानीय कार्यों के प्रबंध मे रुचि और सहयोग के लिए सर्वोत्तम सबसे बुद्धिमान और प्रभावशाली लोगो को प्रशिक्षण प्रदान किया जाय। और अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए उसने कदम उठाये।

1 कर्जन ब्रिटिश गवनमेंट इन इंडिया, भाग 2 पृ० 258।

1881 का प्रस्ताव

इस संबंध में लार्ड रिपन की सरकार ने पहला प्रस्ताव 1881 में पारित किया जिसमें यह घोषणा की गई कि अब समय आ गया है कि जब लार्ड मेयो के स्थानीय स्वशासन सम्बन्धी कदम और आगे बढ़ाये जायं। इस प्रस्ताव ने केन्द्र से कहा कि वह प्रांतों की सहायता में इस मसले पर आवश्यक विचार करे। प्रांतीय सरकारों को निर्देश दिया गया कि वे प्रान्तीय और स्थानीय म्युनिसिपल कानूनों का ध्यान से अध्ययन करें जिससे कि यह निश्चित हो सके कि कौन-कौन से आयस्रोत प्रांतों से स्थानीय म्युनिसिपल प्रबंध को सौंपे जा सकते हैं। इस अध्ययन में यह भी देखा जाना था कि स्थानीय लोगों की महत्त्वाकांक्षाओं का ध्यान में रखकर कौन कौन प्रशासकीय अधिकार उन्हें प्रदान किये जा सकते हैं।

इस कारण केन्द्रीय सरकार ने इस प्रस्ताव पर अमल करते हुए प्रान्तीय सरकारों को पत्र भेजे जिसमें उपरोक्त निर्देश सम्मिलित किये गये। इसमें यह भी इंगित किया गया कि कौन कौन से व्ययमद नीचे की ओर भेजे जा सकते हैं। प्रांतीय सरकारों से कहा गया कि स्थानीय स्वशासन की प्रगति उस स्थिति में संभव नहीं है यदि स्थानीय बोर्डों पर कोई रोक लगाई जाएगी या हस्तक्षेप किया जायेगा। 'गवर्नर जनरल की इस इच्छा की भी चर्चा की गई कि वह स्थानीय लोगों को कुछ उत्तरदायित्व सौंपे जाने को उत्सुक हैं।

1882 का प्रस्ताव

दूसरा प्रस्ताव जो स्थानीय स्वशासन के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण है वह 1882 में पारित किया गया। गांव के बोर्डों की जो परंपरा आजादी प्राप्ति तक चलती रही यह इसी प्रस्ताव का परिणाम थी जो "भारत के विभिन्न प्रान्तों में तरह-तरह से प्रयोग में लाई जाती थी।'[1]

प्रस्ताव पारित करते हुए रिपन ने घोषणा की कि, 'उसका उद्देश्य मात्र प्रशासन में सुधार नहीं है यह इसलिए अति आवश्यक है जिससे यह' राजनैतिक और लोकप्रिय शिक्षा का साधन बन सके।" और इसी कारण प्रशासन के क्षेत्र में इसके कारण पतन भी हो तो भी इसे बर्दाश्त किया जाना था। उसने और आगे कहा कि यह कहा भी जाना ठीक नहीं है कि लोग स्थानीय बोर्डों के प्रति अन्य-मनस्क हैं। अभी तक सरकार के कार्यों से जनता को जोड़ने का प्रभावपूर्ण प्रयास नहीं किया गया था।

इस प्रस्ताव के द्वारा जो सुधार प्रारंभ किये गये उनमें यह था। जिला अधिकारियों को मात्र परामर्श देनेवाली समितियां समाप्त कर दी गयीं। यह निर्देश दिये गये

1 लिंडसे, जे० एच० कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 6 पृ० 516।

कि ग्राम बोर्ड स्थापित किये जाय जो छोटी छोटी इकाइयों पर शासन का काय देखें, पर शर्त यह भी है कि सबसे सर्बधित मसले जिले कौंसिलो मे तय होने थे जिसमे ग्राम कौंसिलो के प्रतिनिधि भी होते थे। धीरे धीरे यह राय दी गई कि स्थानीय बोर्डों पर नियंत्रण हेतु जिला बोर्ड स्थापित किये जाय। इसी बाद वाले प्रस्ताव को अधिकतर लोगो ने माना।

प्रत्येक बोर्ड का क्षेत्र इतना छोटा होता था कि इसे स्थानीय हित और जानकारी दोनो रहती थी। इन बोर्डों मे गैर सरकारी तत्त्व बहुमत मे होते थे। कर्मचारी 1/3 से अधिक नही होने थे। जहा भी सभव हो चुनाव पद्धति लागू करने को कहा गया और गैर सरकारी सदस्य केवल दो वर्ष के लिए ही थे। सरकार का इन बोर्डों पर नियन्त्रण आन्तरिक न होकर बाहर से होना था अथवा दूसरे शब्दो मे सरकार इन स्थानीय बोर्डों की कारवाइयां को देखती और उसमे परिवर्तन सुझाती थी, उनपर अपना मत आरोपित नही करती थी। कुछ ऐक्टो के वैधानिकीकरण के लिए सरकार की अनुमति आवश्यक थी। प्रारंभ मे ऐसे मामलो की सख्या तो अधिक थी पर धीरे धीरे यह कम होती गई। कठिनाई की स्थिति मे या लगातार कर्त्तव्याभाव म स्थानीय सरकार बोर्डों के काय को पूरी तरह से रोक सकती थी या अस्थायी तौर पर उस पर रोक लगा सकती थी। पर इसे पूर्णतया समाप्त करने के लिए भारत सरकार के अभिमत की आवश्यकता पडती थी।

"सरकार के कार्यपालिका अधिकारियो का यह सामान्य कर्तव्य है कि वे प्रारभ म ही स्थानीय बोर्डों के कारवाहियो पर दृष्टि रखें और उन्हे यह बतायें कि कहा लापरवाही हो रही है और उन्हे कहा रोक भी दें जहा वे अपने कर्त्तव्य से आगे जाने का प्रयास करें या अवैधानिक काय करें या अतर्कपूर्ण तरीके से मनमानी करे।"

इन स्थानीय बोर्डों म भारतीयो को सदस्य होन के लिए प्रोत्साहित किया गया और सरकार उनके कर्त्तव्य पालन मे सहायता करगी, यह भी निश्चित हुआ। उत्तरदायी लोगो को इन कामो की ओर आकृष्ट करने के लिए रायों का राय अथवा रायबहादुर की उपाधिया भी प्रदान की गयी। इस प्रस्ताव में [illegible] यह भी कहा गया कि जहा भी सभव हो अधिकतर सरकारी के स्थान पर गैर-सरकारी लोगो को चेयरमैन बनाया जाय।

स्थानीय स्वशासन के इतिहास मे 1882 का प्रस्ताव [illegible] थी और लार्ड रिपन को सत्य ही भारत मे स्थानीय स्व[illegible] [illegible] है। इस प्रस्ताव ने निश्चित रूप से इन सस्थाओ के लिए [illegible] भारतीयो को राजनतिक ज्ञान और प्रजातत्रीय [illegible] स्थानीय उपयोगितावादी कार्यों के लिए सुविधा [illegible]।

पर जसा कि लिंडसे ने लिखा है कि "[illegible]

आशाओं को जागृत किया था उसे पूरा नहीं किया।'[1] इन्हीं संस्थाओं के लिए अभी भारतीय तैयार भी नहीं थे और सम्भवतया उन्होंने इस तरह से काय किया कि चुनाव के लिए उनमें कोई उत्साह नहीं था। स्थानीय बोर्ड स्थानीय लोगों में लोकप्रिय भी नहीं हुए जिसका परिणाम यह हुआ कि इसका काम जनता न निकल कर सरकारी शक्ति और उत्साह द्वारा किया गया और फिर चूंकि इसके अधिकतर सदस्य निरक्षर होते थे और वे अपनी इकाई के बाहर के लोगों की आकांक्षाओं का भान नहीं रखते थे और इसीलिए जिले में अन्य इकाइयों से एकरूपता स्थापित करने का प्रयास भी नहीं करते थे इस कारण अधिकतर शक्ति अब भी अधिकारी के ही हाथ में रह जाती थी। इन संगठनों के पास पर्याप्त धन भी नहीं होता था। और न वे इसके लिए प्रयास ही करते थे। इनकी एक चौथाई आय सरकार स्थानीय चुंगियों से वसूल कर उन्हें देती थी और इसके अतिरिक्त दूकानों, स्थानीय चुंगियों और पशुओं के बाजार से कुछ आय होती थी। बाद के क्षेत्रों में आय अपने प्रयासों से ही बढ़ सकती थी पर इस क्षेत्र में कोई प्रयास ही नहीं किये गये। न ही इन संस्थाओं का चेयरमैन भारतीयों को ही बनाया गया। इस कारण स्वाभाविक रूप से थोड़े ही दिनों में ये संस्थायें एकदम बेकार हो गयी और ऐसा लगा कि लार्ड रिपन का पूरा उद्देश्य ही असफल हो गया है।

फिर भी इन संस्था की आधारशिला ही रखा जाना महत्वपूर्ण था। इस संस्था का मूल्य प्रशासकीय चाहे कम ही रहा हो पर शैक्षिक अधिक था। चूंकि इसमें कर्मचारियों के अनवरत और इमानदार प्रयास की आवश्यकता थी और इस क्षेत्र में जितना ही कुछ किया गया उत्थान उतना ही हुआ और उनके एक आकर्षक भविष्य की कल्पना भी उसी पर आधारित हुई।

जनपदीय कस्बे

जनपदीय कस्बों में स्थानीय स्वशासन के भाव का विकास भी रिपन के इस प्रस्ताव की एक महत्वपूर्ण विशेषता है जो बिल्कुल स्थानीय बोर्डों के काय प्रणाली से मिलती जुलती थी। 1882 तक का इसका संक्षिप्त इतिहास यहां उपादेय ही होगा। मुगल काल में जहां भी कस्बे का प्रशासन रहा वहां पुलिस और मजिस्ट्रेट दोनों की शक्तियां कोतवाल के नियंत्रण में रखी गई। पर ब्रिटिश काल में चूंकि स्थानीय समितियां मजिस्ट्रेटों के सहायतार्थ बनाई गयी, इसलिए स्थानीय जमींदार, व्यापारी और महत्वपूर्ण व्यक्ति इसके माध्यम से स्थानीय प्रशासकों के सहायतार्थ आ गये। इस तरह पुराने व्यापारिक केन्द्र और बड़े बड़े गांव जो जिला

1 लिण्जी जे० एच० कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग 6 पृ० 521।

मे ये नगर पालिका समितियो के स्थापित होने से जनपदीय कस्बो के रूप मे सामने आ गये इसके पूव इनकी कोई वैधानिक मान्यता नही थी।

लाड रिपन के काल से पूव अलग-अलग प्रान्तो म नगरपालिका समितियो के विकास के मामले मे हम सबसे पूव पजाब का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। 1849 मे इसके अपहरण के बाद यहा पर सरकार प्रत्येक कस्बे मे पहुचने वाले सामान पर पुराने कर ही लेती थी जिससे कस्बे का विकास किया जाता था और पुलिस की व्यवस्था की जाती थी। कस्ब के विकास के लिए विभि न समुदाया से निर्मित एक नगरपालिका समिति से सहायता ली जाती थी। कस्बो के छोटे और बडे होने के साथ साथ अपनी आवश्यकतानुसार वे अलग अलग तरह से काय करती थी। इस काय के पीछे भाव सराहनीय था। नाली व्यवस्था के लिए विस्तत याजना विशेषकर अमृतसर, लाहौर और अम्बाला मे बनाई गयी जिसकी लागत 1855 56 के पजाब ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोट के अनुसार 'नागरिको ने स्वेच्छा स वहन किया।" 1850 म इन समितियो की कायक्षमता म वृद्धि के लिए जनरल म्युनिसिपल ऐक्ट 26 पारित किया गया। इससे नयी समितिया भी स्थापित करन मे सहायता मिली। पर इससे तबतक कोई विशेष लाभ नही हुआ जबतक कि 1867 का ऐक्ट 15 नही पारित कर दिया गया जिनके अ तगत पजाब म लेफ्टीनेन्ट गवनर के हाथ मे विस्तत अधिकार सुरक्षित रखते हुए स्थानीय समितियो को वैधानिक बनाया गया और उन्हे अपने ढग से कर लगाने का अधिकार प्रदान किया गया जिसके धन का प्रयोग प्रथम कस्बे की पुलिस व्यवस्था पर और दूसरे उसके विकास कार्यो पर किया जाना था। उत्तर पश्चिम प्रा तो (यू०पी०) मे भी पजाब की तरह ही कानून बनाये गये।

1850 के 26वें ऐक्ट मे कस्बो मे कर तथा विकास काय हेतु एक स्थानीय समिति बनाई गई थी जिसके अतगत कम से कम यदि कस्बे के 6 सदस्य प्रायना पत्र दे दें तो उसपर विचार किया जाता था। बम्बई मे इस प्रावधान का खूब प्रयोग किया गया जहा पर जनपद के अधिकारियो ने 6 लोगो से प्रायना-पत्र दिला कर समितिया बनवा दी। 1873 के अपने ऐक्ट 6 के अतगत बम्बई मे अपन को अन्य प्रा तो की बराबरी पर लगा दिया। इसने 10 हजार से अधिक निवासियो के स्थान को नगर और 2 हजार से कम के निवासियो के स्थान को कस्बा का नाम दिया। नगरीय बोर्डों मे गर सरकारी तत्त्व लाय गये। पर चुनाव नही हुए। कस्बा मे नगरपालिकायें जिला अधिकारियो के हाथ मे चलती रही।

मद्रास के लोगो ने 1850 के एक्ट 26 का विरोध किया और कुछ लोगा न समितियो की स्थापना पर जोर दिया। इस तरह से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैकल्पिक परिषदो का ही सहारा लिया गया जो कही कही ही स्थापित हो पायी। मद्रास सरकार ने असतुष्ट होकर 1865 का ऐक्ट 10 पारित किया जिसके द्वारा

कस्बो से पुलिस प्रशासन के लिए धन की वसूली की गई थी। जहा आवश्यकता हुई उसके विकास के लिए सरकार ही धन वसूलने व इसके निर्धारण की नियंता थी। 1869 के एक दूसरे ऐक्ट के अनुसार 42 कस्बो मे नगरपालिका समितिया बनाई गई। वैसे अधिकतर मामलो म इसका विरोध किया गया या तटस्थ भाव दिखाया गया क्योकि लोग ब्रिटिशो के उद्देश्यो पर सदेह करते थे।

बगाल में 1864 मे एक्ट 3 पारित किया गया जो बडे कस्बो से ही सबधित था जबकि 1868 का ऐक्ट 6 छोटे स्थानो से सबधित था। पुलिस व रक्षा के लिए कर बढाये गये। पर दोनो स्थितियो मे नियत्रण मजिस्ट्रेटो के हाथ मे रहा। जिन समितियो मे गैर सरकारी लोग नामित किये गये वे परामश मात्र ही देती थी।

1885[1] मे म्यूनिसपल बोर्डो की रचना

	पूण म्युनिसिपल-टिया की सख्या	चुने गय सदस्यो का प्रतिशत	पूणतया अशत चुने गय बोड	पूणतयान नामित बोड	चयरमैन सरकार	चयरमैन गैर सरकारी
बगाल	147	50 4%	118	29	130 (?)	17 (?)
बम्बई	162	10 8%	40	122	152	10
मद्रास	54	24 6%	33	11	26	21
एन०डब्लू०पी०	109	79 8%	101	8	103	6
पजाब	197	42 6%	122	75*	120 (?)	77 (?)
सी०पी०	58	60 2%	58	—	18 (?)	40 (?)
बर्मा	13	45 8%	8	5	13	—

*इसम सीमा की म्युनिसिपलिटीज भी सम्मिलित है।

सी० पी० और अवध म 1867 के पजाब ऐक्ट 15 को आधार बनाकर कई कस्बो मे काय किया गया। नागपुर म बिना कानून के ही काय किया गया जबकि 1857 के बाद लखनऊ मे 1850 के ऐक्ट 26 का सहारा लिया गया जिसे 1864 के ऐक्ट 18 के अधीन वैधानिक बनाया गया।

इस तरह हम कह सकते हैं कि लोगो और सरकार दोनो का म्युनिसिपल शासन का विचार दश म अलग अलग तरह का था। पर देश मे कही भी चुनाव को इनके साथ नहीं जोडा गया था और न ही स्थानीय उत्तरदायित्व को इसका

1 टिकर ह्यू फाउन्डेशन आफ लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट इन इण्डिया पाकिस्तान ऐण्ड बर्मा (बम्बई, 1967) पृ० 48।

भाग बनाया गया था। 1874 मे मद्रास के गवनर लाड होबट ने कहा था कि सभी स्थानो पर "उच्च शक्ति पर एक अल्पतन्त्र का शासन था जो किसी सीमा तक अपनी शक्ति को बढ़ा सकती थी।"

लाड रिपन का 1882 का प्रस्ताव इस सदभ म नगरपालिका समितिया के इतिहास मे एक महत्त्वपूण घटना थी। इस प्रस्ताव मे सरकार से स्थानीय सगठनो को बाहर से नियन्त्रित करने को कहा गया, आन्तरिक रूप से नही। इसने चुनाव प्रथा के विस्तार का प्रारभ किया और चुने गये चेयरमैन की पद्धति की नीव डाली। इसन इन सगठनो को पुलिस व्यय से भी मुक्त किया और अब इनका उत्तरदायित्व स्थानीय जनता की शिक्षा और स्वास्थ्य ही बना दिया गया। अब सभी प्रान्तो ने ऐक्ट पारित कर दिये कि म्युनिसिपल समितियो के 1/2 स 2/3 सदस्यो का चुनाव होगा और चेयरमैन का भी चुनाव होगा।

पर गाव बोर्डों की ही भाति चुनाव मे भी स्थानीय जनता न बहुत उत्साह नही दिखाया। म्युनिसिपल समितिया ने अधिकतर चेयरमैन का चुनाव किया। पर इनम से अधिकतर चेयरमैन सदस्यो द्वारा जिला अधिकारियो को ही चुन लिया जाता था जिससे स्पष्ट था कि समितिया इस मामलो म शात थी। यदि कोई गैर-सरकारी व्यक्ति चेयरमैन चुन लिया जाता तो भी उसे सरकारी सहायता और प्रोत्साहन पर ही निभर रहना पडता।

रिपन के स्थानीय स्वशासन काय को इगलैण्ड की अनुदारवादी सरकार न ठीक नही माना क्योकि इसम उसे ब्रिटिश राज्य का खतरा नजर आया। रिपन स्वय सावधान था और इस क्षेत्र मे बहुत आगे नही जाना चाहता था जैसा कि उसने स्वय घोषित किया, "बगाली बाबू को अपने स्कूलो और सफाई के विषय मे विचार करने का अवसर देकर मैं ब्रिटिश साम्राज्य को खतरा नही पैदा कर रहा हू बल्कि इससे म उनका ध्यान अहानिकार विषयो की ओर ले जाकर उसको सुरक्षित रहने का अवसर प्रदान कर रहा हू।"[1] उसने भारतीय कौसिल के इसके विरोध को अच्छा नही माना और कहा, "जहा तक भारत का सबध है ऐसी उदार सरकार से लाभ ही क्या है यदि यह पुराने लोगो के परामश पर हाथ पैर बाधे खडी रहे। ऐसे पुराने लोग अधिक आयु के कारण अपनी शक्ति खो चुके हैं और अधिक वेतन ने उन्हे अनुत्तरदायी बना दिया है और वे नये भारत के प्रस्तावो को, जिन्ह तत्सबध मे अधिक जानकारी रखते है आलोचना करते है और उसकी योजना पर रोक लगाते हैं। और इन्हे ही देश के अच्छे प्रशासन का उत्तरदायित्व सौपा गया है।"[2]

---

1 गोपाल, एस० वाइसरायल्टी आफ लाड रिपन पृ० 95 द्वारा उदधृत।

2 वूल्फ, लूसियन लाइफ आफ फस्ट मार्क्विस आफ रिपन, भाग 2, पृ० 53 कुलकर्णी बी० बी० पूर्वोद्धृत पृ० 207।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण

रिपन का दूसरा महत्त्वपूर्ण सुधार भी 1882 के प्रस्ताव के माध्यम से आया जो आर्थिक विकेन्द्रीकरण के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अपने अर्थ सदस्य मेजर बेयरिंग की सहायता से उसने इस प्रस्ताव को पारित किया जिसने राजस्व स्रोतों को तीन भागों में विभाजित किया (1) इम्पीरियल जैसे नमक चुंगी, अफीम जिन्हें केन्द्र के हाथों में रहना था, (2) प्रांतीय जैसे नागरिक विभाग, सार्वजनिक निर्माण आदि का व्यय स्थानीय विभागों को सौंपा गया, और (3) सम्मिलित अधिकार में टिकट, जंगल, रजिस्ट्रेशन आदि रखे गये जिन पर साथ साथ दोनों का अधिकार रखा गया। भूराजस्व सम्मिलित अधिकार क्षेत्र में रखा गया जिसका कुछ भाग प्रान्तों के लिए निश्चित कर दिया गया जिससे वे अपने कमी की पूर्ति कर सकते थे। इसी कारण निश्चित अनुदान देने की परम्परा समाप्त कर दी गई। युद्ध जैसे आपात्काल में प्रान्तों को केन्द्र के सहायतार्थ तैयार रहने को कहा गया। केन्द्र ने अपनी ओर से आश्वस्त किया कि ऐसी मांगें "अत्यधिक विनाशावस्था में पेश की जायेगी जब सरकारी खातों के समाप्ति की स्थिति आ जायेगी।"[1] दूसरी ओर केन्द्र ने अपूर्व दुर्भिक्ष आदि की स्थिति में प्रान्तों को सहायता के लिए आश्वस्त किया। अब प्रान्तों के लिए दुर्भिक्ष आदि के लिये निश्चित धन रखने की आवश्यकता न रही क्योंकि केन्द्र स्वयं प्रतिवर्ष इसके लिए 1,50,00,000 पौंड वार्षिक का अनुदान इस मद में देता रहा। यह बंदोबस्त पंचवर्षीय था जिसके बाद अनुभव के आधार पर इसमें परिवर्तन किया जा सकता था।

यह प्रस्ताव आर्थिक हस्तांतरण के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। सी०एल० आनंद ने लिखा है कि इसका लाभ यह था कि इसने प्रान्तीय सरकारों की प्रान्तीय कृत करों में ही केवल रुचि नहीं रही बल्कि केन्द्र के लिए एकत्रित किये जाने वाले प्रान्तीय करों में भी हो गई।"[2] अनुदान प्रथा रोक दी गई और अब प्रान्तों को केन्द्र के खैरात पर रहने की आवश्यकता न रही। इस व्यवस्था का दूसरा लाभ यह था कि जिस आर्थिक क्षेत्र में कठिनाई की संभावना थी वह सभी केन्द्र ने संभाल ली। लार्ड क्रोमर ने इस संबंध में कहा है कि "चार विचित्र तरह के जिन खतरों से भारतीय अर्थ व्यवस्था को कठिनाई पेश हो सकती थी, वे थी, युद्ध, अफीम के राजस्व में कमी, विनिमय दर में कमी और दुर्भिक्ष। इनमें से प्रथम तीन भारत सरकार के अधीन थे और चौथा स्थानीय सरकार के अधीन।" पर चौथे मामले में भी केन्द्रीय सहायता प्रदान करने में संकोच नहीं किया गया। नयी व्यवस्था के

1 रिजोल्यूशन (फाइनांस) न० 3353 30 सितम्बर 1881 परा 6-8।
2. आनन्द, सी० एल० हिस्ट्री आफ गवर्नमेंट आफ इण्डिया पृ० 211।

द्वारा केन्द्र और प्रांतीय दोनो का आर्थिक प्रशासन स्वस्थ सिद्धान्तो पर आधारित हो गया जिनमें से कुछ तो आज भी हमारी आर्थिक व्यवस्था के आधार है। प्रान्तो का अधिकतर आर्थिक बोझ घट गया और वे अब भविष्य मे अधिक स्वतन्त्रता और विश्वास का भाव पैदा कर सके। इस नवीन व्यवस्था ने देश के आर्थिक प्रशासन को स्थायित्व प्रदान किया।

पर इस प्रथा म कुछ दोष भी थे। केन्द्र के सामान्य नियन्त्रण और निरीक्षण शक्ति म कमी नही आई और न केन्द्र ने कभी कभी प्रस्ताव भेजने ही बद किये। केन्द्र को नियमित रूप से रिपोट अब भी भेजी जाती थी और केन्द्र को अपने और प्रान्तो के हित मे प्रशासकीय विस्तार मे हस्तक्षेप का अवसर प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त पचवर्षीय सशोधना से कटुता और निराशा उत्पन्न होती थी। वे प्रान्त जो धन को सयम से व्यय करते और इसमे बचत करते थे उनका धन ले लिया जाता था और जो इतमीनान से अधिक खच करते उनको और अधिक प्राप्त हो जाता था। स्वाभाविक रूप से इसके कारण अनुत्तरदायित्व की भावना पनपी और बेकार की योजनाओ पर व्यय म वद्धि हुई। प्रत्येक सशोधन के समय सघष हुए प्रान्तो न अधिक की माग की और केन्द्र ने इस पर सीमा लगानी चाही। 1867 म बगाल के लेफ्टीनेन्ट गवनर ने लिखा कि प्रत्यक सशोधन के समय, प्रान्तीय भेंड का ऊनी खाल काटकर इसे कातने के लिए तब तक फेंक दिया जाता जब तक कि उसके बाल फिर न उग आयें।" बी०के० ठाकार ने भी लिखा है कि,'पचवर्षीय ठीको के समय तीन अवसरा पर केन्द्र सरकार न अपने प्रयोगाथ प्रान्तो द्वारा सावधानी सहित एकत्र की गई आय को तीन बार लगातार छीन लिया। इस काल म कई बार विशेष धन सग्रह भी किया गया। जिसका आवश्यक परिणाम यह हुआ कि प्रशासन कमजोर हो गया और प्रान्तीय अधिकारियो की आर्थिक भावना को ठेस पहुची।"[1] विभिन्न प्रान्तो को किया गया राजस्व सविभाजन भी तक पूण और निश्चित सिद्धान्ता पर आधारित नही था।

यह पचवर्षीय व्यवस्था 1904 तक चलती और जीवित रही। वैसे बीच बीच मे कुछ परिवतन भी किय गये। उदाहरणाथ 1884 मे प्रान्ता के धन रखे जाने की सीमा निर्धारित कर दी गई जिससे इस व्यवस्था को पर्याप्त शक्ति प्राप्त हो गई।

पर 1888 के दो वर्षो के बाद इस व्यवस्था का गभीर आघात पहुचा। देश मे दुर्भिक्ष पड गया जिसके कारण आर्थिक कठिनाइया हो गयी और अब आवश्यक यह हो गया कि कम व्यय किया जाय और नये मद पर तो बिल्कुल ही व्यय न किया जाय। साथ ही विनिमय दर पर भी इसका दुष्प्रभाव हुआ। केन्द्र

1 ठाकोर बी० के० इडियन ऐडमिनिट्रेशन टु द डान आफ रिसपासिबल गवनमेंट, पृ० 310।

ने कुछ शर्तों पर 1877 म प्रान्तो को कुछ अधिकार सौंप दिये थे। 1892 और 1897[1] मे इसे और व्यवस्थित और शक्तिशाली बना दिया गया। 17 मार्च 1892 के एक प्रस्ताव के द्वारा केन्द्र के इस 'अधिकार पर, कि वह "स्थानीय सरकारो को सामान्य और विशेष मसला पर जो राजस्व व सेवाओ के क्षेत्र म उसे प्रदान किये गये हैं, और बल दिया। सच तो यह था कि स्थानीय शक्ति को सीमित करने का ही यह प्रयास था।

पर ये विचार आकस्मिक और अस्थायी थे। स्थानीय सरकारो की असली शक्तियो पर आघात नही किया गया।' विशेष बात यह थी कि किस तरह से भारत सरकार अपनी शक्ति का प्रयोग करती और अंकुश लगाती थी। प्रान्तीय सरकारो को उनकी स्थिति का सदा ध्यान दिलाया जाता था। उनकी वैधानिक अधीनता पर जोर डाला जाता था।"

शिक्षा

लार्ड रिपन की एक अन्य देन शिक्षा के क्षेत्र मे थी। 1866 मे वुड के पद मुक्ति के बाद भी शिक्षा म प्रगति होती रही, पर इसकी गति बहुत धीमी रही। नारी शिक्षा के क्षेत्र में कुछ कदम उठाये गये। बम्बई मे इस दिशा मे मिशनरियो ने कुछ काय किया और 1823 से 1851 के बीच इस कार्य मे जुटी रही जबतक कि हिन्दू व्यापारी तथा मराठा नेता भी इस काय म नही लग गये। बम्बई सरकार न भी 1871 मे अच्छे अध्यापको को एकत्रित करने की योजना प्रारभ की। इसी तरह मद्रास में भी मिशनरियो ने ही काय प्रारभ किया और अन्य ने उसी पथ का अवलबन किया। ऐसा ही दक्षिणी और उत्तरी भारत मे भी हुआ। 1866 और 1882 के बीच इस तरह इस विषय को अधिक गभीरता से लिया गया। पर प्रगति बहुत धीमी रही। 1882 में पूरे भारत मे स्कूल जाने वाली छात्रायें 0 85% थी। इनम से बम्बई मे 1 59 प्रतिशत, मद्रास मे 1 50 प्रतिशत, बगाल मे 90प्रतिशत और पजाब मे सबसे कम अर्थात 72 प्रतिशत इनकी शिक्षा थी। उत्तर पश्चिम प्रान्तो मे यह सख्या 28 प्रतिशत ही थी।

जैसा हम बता आये हैं[3] 1871 मे लार्ड मेयो के शासन काल मे मुस्लिम शिक्षा ने भी कुछ प्रगति की। शीघ्र ही मौलवी (बाद मे सर) सैय्यद अहमद खां के नेतत्व मे कुछ मुस्लिम दानी भी इस क्षेत्र मे आये। हिन्दू आगे और मुस्लिम

---

1 रिजोल्यूशस आफ मार्च 27 1877 न० 1148 आफ मार्च 17, 1892 एण्ड न० 353 आफ अगस्त 11 1897।

2 देखें विशश्वर प्रसाद आरिजिन आफ प्राविन्सियल आटोनामी, पृ० 195।

3 मेयो वाला अध्याय देखें।

सरदारो ने इस क्षेत्र मे सहायता काय किया और एक के बाद दूसरे वाइसराय न भी चूकि इसमे सहायता की जिसके फलस्वरूप 1875 मे अलीगढ मे मुस्लिमो के लिए एक हाई स्कूल खोला गया जो 1878 मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध द्वितीय श्रेणी का एक कॉलेज हो गया। पर मुसलमानो मे अनुदारो ने इसका विरोध किया। मुहम्मडन ऐग्लो ओरिय टल कालज भी इसी काल म खोला गया। वैसे इसमे बाद म गैर मुसलमान भी प्रवेश पा सके, पर मुस्लिम शिक्षा म इसने बडी सहायता की। ये दोनो सस्थायें युरोपीय लागा की व्यवस्था के अधीन थी जिन्हाने आने वाले दिनो मे सरकार की ओर से मुसलमानो को भारत के प्रगतिशील राष्ट्रीय विचारा के विरुद्ध फुसलाया।[1]

इसके अतिरिक्त इस काल की एक प्रमुख घटना इस बात के लिए आदोलन की भी थी कि पजाब विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय। एक ऐग्लो ओरियन्टल कालेज खोला गया जो 1882 म पजाब विश्वविद्यालय के रूप मे बदल गया। एक और अ य महत्त्वपूण बात यह थी कि 1871 म लाड मेयो ने प्रा तो स सबधित शिक्षा की बाते प्रान्ता के ही अधीन कर दी जा इसके लिए के द्र से राजस्व सहायता भी पाती थी। क द्र अब भी जागरूक था और आवश्यकतानुसार अब भी अनुदान प्रदान करता था। सकेन्डी स्कूल और कालेज बढते गये और 1882 मे यह बताया गया कि इन सस्थाओ ने अब तक साढे बाईस लाख छात्रो को शिक्षा प्रदान की है।

1882 का हटर शिक्षा आयोग—भारत के शिक्षा के इतिहास मे हटर शिक्षा आयोग की रिपोट बहुत महत्त्वपूण मानी जाती है। यह शिकायत आनी प्रारभ हो गई थी कि 1854 के डिस्पच के अनुसार काय नही हो रहा है। ऐसी स्थिति म सर विलियम हटर के नेतृत्व मे 22 सदस्यीय एक आयोग नियुक्त किया गया जिन्ह यह बताना था कि "1854 के डिस्पैच के आधार पर किस तरह अब तक काय हुआ है और उससे यह भी बतान को कहा गया कि उपरोक्त डिस्पच के सिद्धान्तो को आगे बढान के लिए क्या नीति अपनायी जा सकती है।" इसे यह भी बताना था कि "किस तरह प्रारभिक शिक्षा की वतमान दशा मे" सुधार हो सकता है और किन साधना के आधार पर इसका विकास किया जा सकता है।" विद्यालय के प्रगति का काय और शिक्षा के अ य मसलो पर भी रिपोट दी जानी थी। वैसे विश्वविद्यालयो के कायप्रणाली को आयोग के दायरे मे नही रखा गया।

आयोग न पर्याप्त छानबीन के बाद अपनी रिपोट प्रस्तुत की। इसमे प्रमुख ये बाते थी (1) प्राइमरी शिक्षा गभीर रूप से पिछडी हुई है और यह कि इसे मजबती से आगे बढाया जाना चाहिए। इसके लिए प्रातीय राजस्व का कुछ भाग

1 देख, लावेट वर्नी (सर) ए हिस्ट्री आफ इडियन नशनल मवमेट।

यह बताकर आरक्षित हो जाना चाहिए कि "यह जन सूचना की कार्य प्रणाली का एक भाग है जिसका प्रान्तीय राजस्व पर पूर्ण अधिकार है।" आयोग ने यह भी संस्तुति की कि प्राथमिक विद्यालय म्युनिसिपल समितियों और बोर्ड के प्रबंध को सौंप दिये जायें जिससे निरीक्षण व देख रेख का अधिकार सरकार का हो। यह भी बताया गया कि स्थानीय संगठनों के शिक्षा के अधिकार को वैधानिक रूप प्रदान कर दिया जाय। (2) सेकेण्डरी शिक्षा के बारे में रिपोर्ट में कहा गया कि इसने अच्छी प्रगति की है, बंगाल में तो विशेषकर जहां सहायता अनुदान की प्रथा लागू कर दी गई है और जहां सरकार एक संस्था की व्यवस्था करती है, व्यक्तिगत स्तर पर दो विद्यालय चलाये जा रहे हैं। वहां पर बहुत कम अंग्रेजी मिडिल स्कूल हैं जिनकी व्यवस्था राज्य कर रहा है। रिपोर्ट में यह कहा गया कि सेकेण्डरी स्कूल धीरे धीरे व्यक्तिगत संस्थाओं को सौंप दिया जाय जिसे सहायता अनुदान प्रदान किया जाय। भविष्य में सेकेण्डरी शिक्षा की व्यवस्था सरकार को तब करने को कहा गया जब व्यक्तिगत संस्थाएं इसके लिए सामने न आयें। इसके साथ ही शिक्षा का स्तर न गिरे इसके लिए पूरी चेष्टा की जाय और इसके लिए कहा गया कि संस्था की स्वतंत्रता तो बनाये रखी जाय पर इसपर सीधे और सही नियंत्रण में ढिलाई न बरती जाय। (3) इसने यह भी संस्तुति किया कि वर्तमान इन्ट्रेन्स कोर्स की जगह पर कुछ ऐसे स्कूल पाठ्यक्रम लागू किये जाय जिनसे छात्रों को व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्र में आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हो। (4) एक संस्तुति यह भी की गई ऐसे बहुधंधी स्कूल भी खोले जाय जिन्हें परिणाम के आधार पर अनुदान देने को कहा गया। (5) सहायताप्राप्त स्कूलों और कालिजों को कम शुल्क पर शिक्षा देने की अनुमति होनी चाहिए और इनके पास तरह तरह के पाठ्यक्रम होने चाहिए और इन्हें अधिक से अधिक युरोपीय विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षित स्नातकों को अपनी शिक्षा संस्थाओं में रखना चाहिए। (6) मुसलमानों में शिक्षा के विकास के लिए विशेष प्रयास किया जाना चाहिए। (7) शारीरिक शिक्षा पर भी जोर देने की पहली बार संस्तुति की गई। इस संबंध में तमाम तरीके सुझाये गये। (8) छात्रवृत्तियों के संबंध में कुछ महत्त्वपूर्ण संस्तुतियां की गयी। अनुदान सहायता और व्यवसाय पर शिक्षा के विकास के लिए भी संस्तुतियां की गयीं। (9) आयोग ने यह भी बताया कि धार्मिक शिक्षा विद्यालयों में देने से बचाया जाय। पर यह चेष्टा की जाय कि छात्रों को ऐसी शिक्षा प्राप्त हो जिससे वे सही और गलत के भेद को पहचान सकें। इसके लिए नैतिक पाठ्य पुस्तकें तैयार की जानी चाहिए जिसका आधार "स्वाभाविक धर्म के आधारभूत सिद्धान्त हो" और दूसरे, यह कि सरकारी या गैर सरकारी सहायताप्राप्त कॉलिजों के प्राचार्य या प्रवक्ता प्रत्येक सत्र में "व्यक्ति और नागरिकों के कर्तव्य" विषय पर भाषण माला आयोजित कर सकते हैं। इस अंतवाली संस्तुति ने रुचिकर विवाद उत्पन्न कर दिया। उत्तर-पश्चिम

प्रान्तो के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर सर अल्फ्रेड लायल ने इसे अनुपयोगी बताते हुए कहा कि नागरिकों के कर्त्तव्य को लेकर कोई दो व्यक्ति आपस मे एकमत नही हो सकते। चूंकि स्थानीय सरकारो ने भी इस संस्तुति की आलोचना की इस कारण भारत सरकार और सेक्रेट्री आफ स्टेट लार्ड किम्बले ने इसे स्वीकार नही किया।

भारतीय शिक्षा के इतिहास मे हंटर आयोग एक प्रमुख चरण था। इसकी अधिकतर संस्तुतियां स्वीकार कर ली गयी जिसका परिणाम यह हुआ कि इसपर स्थानीय संगठनों का नियंत्रण बढ गया, अध्यापन और निरीक्षण के क्षेत्र मे भारतीय तत्त्व बढ गया। मद्रास मे इसका प्रभाव बहुत अधिक हुआ पर अन्य स्थानो पर इसका मिश्रित प्रभाव हुआ। 1882 के बाद एक महत्त्वपूर्ण बात पंजाब विश्वविद्यालय की उसी वर्ष स्थापना थी। इससे कलकत्ता विश्वविद्यालय का बोझ भी कम हो गया। कलकत्ता से इस विश्वविद्यालय मे अन्तर यह था कि इसने ओरियन्टल लर्निंग का एक विभाग खोला जो वर्नाक्युलर भाषा के लिए योग्यता परीक्षाएं लेता था। उत्तर पश्चिम प्रान्तों मे इसी उद्देश्य के लिए बनारस मे एक क्वीन्स कालेज खोला गया जिसमे संस्कृत इत्यादि की शिक्षा की व्यवस्था की गई। 1886 मे लोकसेवा आयोग ने शिक्षा को तीन भागो मे विभाजित किया—केन्द्रीय, प्रान्तीय और सहायक। प्रथम कोटि के लिए जिसे इण्डियन एजूकेशनल सर्विस का नाम दिया गया, इसकी परीक्षा इंग्लैण्ड मे आयोजित की गयी, जबकि शेष दो कोटि के लिए भारत म ही परीक्षा होती थी जिससे स्थानीय सरकार और संगठनो की शक्ति का विकास हुआ।

प्राइमरी शिक्षा मे छात्रों की संख्या जहा 22 लाख थी वह बढकर 1901 मे 32 लाख हो गई। सेकेन्ड्री स्कूलो मे यह संख्या 1886 मे जहा 4,29,093 थी वहा 1901 मे यह बढकर 6,33,728 हो गई। कॉलेजों मे यह संख्या 1886 म 11,501 थी जो 1901 मे बढकर 23,009 हो गयी। स्थानीय बोर्डों और सरकार द्वारा इस पद पर किया जाने वाला व्यय 1885 मे जहा 132 82 लाख रुपया था वहा यह 1901 म बढकर 177 04 लाख रुपया हो गया।

पर इसमें कुछ दोष थे जो समय के साथ बढते ही गये। शिक्षा के क्षेत्र में जो विकास हुआ वह पूर्णतया साहित्यिक शिक्षा के क्षेत्र म ही हुआ। तकनीकी शिक्षा का विकास नही के बराबर हुआ। यह शिक्षा छात्रों को अपने पैतृक पेशे जैसे कृषि के लिए अयोग्य बना देती थी। इस शिक्षा का यही लाभ था कि इससे लिपिक वर्ग के लिए लोग मिल जाते थे जिनमें से बहुत से लोग नौकरी भी नही पाते थे। साहित्यिक शिक्षा भी उनके उत्तम रुचि का विकास करने के स्थान पर पाठ्य पुस्तकें रटने की ओर ले जाती थी। नैतिक शिक्षा के लिए कोई प्रावधान नही किया गया। व्यक्तिगत संस्थाओं में स्तर भी ऊंचा नहीं रखा जा सका और इसमें

काम करते थे अध्यापकों को मशीनें और बना लगाव हो गया था।

एक अन्य दोष[1] इसमें यह था कि शिक्षा के क्षेत्र में उच्च स्तर (अनुसंधान) में कोई रुचि नहीं थी, न तो कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के बीच कोई सम्बन्ध ही था। विश्वविद्यालय केवल परीक्षा लेने का काम करते थे जबकि कॉलेज अध्यापन के कमरे का काम। शिक्षा की व्यवस्था में छात्र के शरीर पर भी ध्यान नहीं दिया जाता था। अंग्रेजी विधि की शिक्षा को रटने की प्रवृत्ति थी। शिक्षाएँ अंग्रेजी के प्रसार पर ही अधिक बल था, इसके पीछे छिपा भाव की ओर ध्यान नहीं देती थी। कॉलेजों के पास रहने के लिए स्थान और छात्रावास भी नहीं था। प्राइमरी शिक्षा में भी कुछ आशातीत प्रगति नहीं थी और न ही विश्वविद्यालय का प्रशासन ही इच्छानुकूल था। सीनेट में चूँकि कोई विशेष ज्ञान रखने वाले नहीं थे इसलिए इसमें कार्यक्षमता का अभाव था। शिक्षा को गृह विभाग का एक अनावश्यक भाग माना जाता था जिसके कारण "तरंगपूर्ण समुद्र में यह जीर्ण-शीर्ण जहाज की तरह डगमगाता था।"

इल्बर्ट बिल

लार्ड रिपन ने देश के न्यायिक संगठन के क्षेत्र में एक बहुप्रतीक्षित और उदार सुधार लाने का प्रयास किया। तत्कालीन क्रिमिनल प्रोसीजर कोड के अन्तर्गत कोई भी भारतीय सेशन न्यायाधीश प्रेसीडेंसी नगरों को छोड़कर कहीं भी जन्म से यूरोपीयों के मुकदमे को नहीं देख सकता था। यूरोपीय का प्रभाव यह विशेषाधिकार एक पुरातनता था जो न्याय के सामान्य और राज प्रशासन पर आघात पहुँचाता था। इस समय तक तमाम भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध सिविल सेवाओं में आ चुके थे और प्रतिष्ठा व उत्तरदायित्व के स्थानों पर काम कर रहे थे और उन्होंने अपनी योग्यता को सिद्ध कर दिया था। वे भी इस भेदभाव से दुखी थे जिससे ब्रिटिशों की उच्चता का भान होता था और वे भी इसे समाप्त होता देखना चाहते थे।

इस भेदभाव को दूर करने के लिए लार्ड रिपन के निर्देश पर भारत सरकार के विधि सदस्य इल्बर्ट को नियुक्त किया गया। उसने बिल तैयार किया जिसे गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी ने स्वीकार किया और लगभग सभी प्रान्तीय सरकारों ने भी फरवरी 1882 में इसे इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के समक्ष रखा। ए०के० रातक्लिफ ने लिखा है कि "यह एक छोटा कार्य था जिसका उद्देश्य न्यायिक क्षेत्र में हल्का-सा परिवर्तन करना था।" पर भारत में यूरोपीय लोगों ने इसके विरुद्ध तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की जो दूरदर्शिता, प्रतिष्ठा और उत्तरदायित्वपूर्णता

1 देखें रले : लार्ड कर्जन इन इण्डिया पृ० 322-339।
2 रैटक्लिफ एस०के० : सर विलियम वेडरबर्न पृ० 55।

के विरुद्ध थी। कलकत्ता टाउन हाल विरोध सभाओ और गदे भाषणो से गूजने लगा। बगाल प्रेसीडे सी और अय स्थानो पर शार शराबा हुआ जिसमे युरोपीय चाय और नील पैदा करने वालो ने अधिक भाग लिया 'युरोपीय महिलाए खतरे मे' का नारा बुनद किया गया। मेरीडिथ टाउन शे ड न स्पेक्टेटर मे लिखा, "क्या आप ऐसे देश म रहना पसद करेगे जहा किसी भी क्षण आपकी पत्नी अपनी आया को झापड मारने के झूठे आरोप मे 3 दिन कारावास की सजा पा जाय, जहा मजिस्ट्रेट तावे के रगवाला काफिर हो और सम्भवत लिंग की पूजा करता हो और जो इस तरह के अवसर की तलाश ही म रहता हो कि कब अवसर मिले और कब किसी गोर को दडित किया जाय?' भारतीयो के प्रति अनादर दिखाने के लिए 29 माच 1883 के इगलिशमैन म एक झूठा विज्ञापन छापा गया जो इस तरह से था, "भगिया, पखा कुलिया और भिश्तिया की सैदपुर निवास पर आवश्यकता है। इ ट्रे स परीक्षा उत्तीण बगाली बाबू ही आवेदन करे। भूतपूव मजिस्ट्रेटो (बगाली) को वरीयता दी जायेगी।"[1]

भारतीय यायाधीशो को 'आबनूसी रग के बाबू" कहा जाता था। महिला समितिया तथा ऐग्लो इडियन ऐण्ड युरोपियन डिफे स एशोसियेशन की स्थापना की गई। सरकारी ऋणो को छोडने के प्रस्ताव किये गये और कलकत्ता की गलियो मे, जब रिपन शिमला से वापस लौटा तो चाय व नील बागान वालो ने उस अपमानित किया। यहा तक कि जब वह गोली चलाने के लिए आगे बढा तो उसके अपहरण का भी प्रयास किया गया पर वह बच गया और उसके स्थान पर उसका लडका पकड लिया गया।

भारत के जन प्रतिनिधियो जैसे लाल मोहन घोष न इस उदार सुधार का गोरो द्वारा विरोध करने की भत्सना की। और कलकत्ता टाउन हाल की भरी सभा मे घोष ने उनके विषय मे कहा कि य 'गव नी, अध नी ये युरोपीय न तो मछली ही है और न गोश्त ही कि उ ह पचा लिया जायेगा।' यह अधिकारी और लाड रिपन दोनो अपने विचारा पर कुछ समय तक दृढ बने रहे। पर जब विरोध बढता गया ता रिपन को लगा कि कलकत्ता मे युरोपीय विद्रोह की स्थिति गभीर हो सकती है। उसने लिखा कि "बगाल सरकार के हाथ मे युरोपीय पुलिस फोस बहुत कम (सभी मिलाकर यही कोई 60 स 70 तक) है। किसी झगडे फसाद मे हम सेना की सहायता लेनी पडेगी। मैंने यह अनुभव किया और अब भी ऐसा ही अनुभव करता हू कि इस दश म युरोपीय सैनिको का यूरोपीया के ही विरुद्ध प्रयोग एक अति गभीर कदम होगा।'

इसलिए बिल मे कुछ सशोधन किया गया। इसके अतगत युरोपीय अपराधिया

1 गोपाल एस० ब्रिटिश पालिसी इन इडिया पृ० 146।

पर मुकदमा चलाने का अधिकार केवल भारतीय सेशन न्यायाधीशों या जिला धिकारियों को ही सौंपा गया। युरोपीयों को यह भी छूट दी गई कि वे चाहें तो जूरी की सहायता से अपना मुकदमा दिलवायें। यदि इनके विरुद्ध दंड कठोर हो तो हाईकोर्ट में इस तरह के मामलों को भेजना आवश्यक कर दिया गया।

इलबर्ट बिल संबंधी वाद विवाद ने भारतीय मस्तिष्क पर दूरगामी प्रभाव डाला। राटक्लीफ ने लिखा है कि, "समकालीन भारत पर कई अधिकारियों ने यह कहा है कि इल्बर्ट बिल के झगड़े ने पढ़े लिखे भारतीयों को संभावित राजनैतिक विरोध का तरीका सिखाया।"[1] वे अभी तक ऐसे शासकों के अंदर रहने में अभ्यस्त थे जिन्हें फुसलाकर, अनुनय विनय कर, घूस देकर या विद्रोह करके प्रभावित किया जा सकता था। पर यह एक बिल्कुल नया अनुभव था कि सरकार समाचारपत्रों की गालियों और बुरे व्यवहार के नीचे दब गई। बाद के दिनों में भारतीय राष्ट्रवाद ने इंगलैंड के मताधिकार आंदोलन से कुछ बातें सीखीं। कुछ उन्होंने आयरिश गृह शासकों से सीखीं। पर इल्बर्ट बिल के विरोध ने उनके कार्य पद्धति के लिए एक आधार तैयार कर दिया जिसके आधार पर भारतीय राजनीतिज्ञों ने अपनी कारवाई तेज की। यह महत्त्वपूर्ण है कि इस आंदोलन के दो वर्षों के बाद ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और युरोपियन एशोसियेशन की स्थापना हुई।"[2]

इस विवाद ने सचमुच ही इस देश में शक्तिशाली राष्ट्रीयता के सिद्धांत की भावना का विकास किया और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय विचारधारा को मजबूत बनाया। भारतीयों में योग्यता थी, पर उनके पास शक्ति नहीं थी। यह आंदोलन जो प्रत्येक भारतीय के स्वाभिमान पर एक धक्का था, भारतीयों को संगठित किया और वह रास्ता दिखाया जिससे कि शक्ति प्राप्त हो सकती थी। यह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था कि भारतीयों में इसके कारण जातीय विद्वेष की भावना का जन्म हुआ। रालिन्सन लिखता है कि सचमुच "लार्ड रिपन के वाइसरायत्व काल के अंत में भारत में जातीय भेदभाव से उठे झगड़ों के कारण पर्याप्त दिक्कतें आ गयीं।"[3]

पर लार्ड रिपन ने भारत में प्रतिष्ठा प्राप्त की, भले ही उसने इसे अपने देशवासियों में गवा दिया। उसने "इस उद्देश्य के लिए महत्त्व हासिल की जिसके लिए भारत के लोगों ने उसके प्रति उत्साहपूर्ण आदर, भक्ति और समर्थन व्यक्त

---

1 राटक्लिफ पूर्वोद्धृत पृ० 57।

2 टामसन एण्ड गरट राइज एण्ड फुलफिलमेंट आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया पृ० 498।

3 रालिन्सन, एच०जी० द ब्रिटिश अचीवमेंट इन इन्डिया पृ 152।

किया।"[1] और उसके "पद त्याग के समय 1884 मे उसका गमन-पथ स्वागताथ भीड से पटा पडा था और तब से उसका नाम भारत के राष्ट्रवादी लोगो के हृदय म लिखा दिया गया है कि वह उनके पक्ष का समथक मसीहा था।"

अन्य आन्तरिक सुधार

लाड रिपन के अय कार्यो मे चुगी और राजस्व सबधी कुछ मामले थे। सर जान स्ट्रैची के आर्थिक सुधारो के कारण अब तक आर्थिक परिस्थिति बहुत अच्छी हो चुकी थी। भारतीय बजट घाटे के स्थान पर लाभ होने लगे थे और ये परिस्थितिया ऐसा अवसर प्रदान कर रही थी कि आतरिक सुधारो के क्षेत्र मे कुछ प्रयोग किये जाय। इस अवसर का लाभ उठाकर लाड रिपन न लाड नाथ ब्रुक द्वारा प्रारम्भ की गई स्वतत्र व्यापार नीति को पूणता प्रदान की और 1882 मे उसने 5% का आयात कर समाप्त कर दिया। केवल नमक, स्प्रिट और शराब पर ही यह कर लागू रहा जिसपर आतरिक आबकारी क्षेत्र का नियत्रण था। राजनतिक उद्देश्यो के लिए अस्त्र शस्त्र और गोलियो को भी इसी श्रेणी मे रखा गया। 1882 मे पूण भारत म नमक कर मे कमी की गयी।

रिपन ने कृषको की दशा मे बडी रुचि ली और बगाल टेनेसी बिल तैयार करवाया जो उसके उत्तराधिकारी के काल मे पारित किया गया। उसने लाड मेयो द्वारा स्थापित राजस्व तथा कृषि विभाग को पुनगठित किया। दुभिक्ष आयोग की छानबीन के अतगत इस विभाग ने दुभिक्ष सहायता तथा राजस्व सुधारो का काय भी अपने हाथ मे लिया। यह विभाग दुभिक्ष आयोग की सस्तुतियो के अतगत स्वय पुनगठित किया गया। उसने यह भी प्रस्ताव किया कि जिन जिला मे भूमि निरीक्षण और कर निर्धारण का काय पूरा हो चुका है वहा पर राजस्व मे वृद्धि न की जाय। राजस्व म वृद्धि केवल बढी हुई कीमतो के आधार पर ही सभव थी। यह मत अति उत्तम था और इसने भू-राजस्व बन्दोबस्त को स्थिरता प्रदान की होगी। पर दुर्भाग्यपूण यह था कि सेक्रेट्री आफ स्टेट ने इसे मान्यता नही प्रदान की।

लाड रिपन ने द्वितीय अफगान युद्ध की अतिम क्रिया की ओर लाड लिटन के घृणायोग्य वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट को वापस लिया। उसने लाड हार्टिङ्गटन को लिखा 'तथ्य यह है कि भारत म कमचारी समाचारपत्र को एक बुराई मानते हैं, जो आवश्यक भी है, पर इन्हे जहा तक सभव हो एक दायरे म रखने की आवश्यकता है। स्वतत्र विचार विमश के लाभ जानने की उसम प्रवृत्ति ही नही थी।"

जब कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश सर रिचड गाथ अवकाश पर गये तो लाड रिपन ने सर रोमेशचन्द्र को स्थानापन्न मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया

1 रावटस हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया पृ० 470।

रिपन के इस काय की भी युरोपीयो न कटु आलोचना की पर रिपन अपने कृत्य पर अटल रहा। उसने इडियन सिविल सर्विस म भारतीयो की आयु बढवाकर 21 वष करवाई, पर उसे भारत म इगलैंड के साथ ही परीक्षा कराने मे सफलता नहीं प्राप्त हुई। दसवर्षीय जनगणना की प्रथा का प्रारभ करने का काय भी लाड रिपन ने ही किया।'[1]

1881 म लाड रिपन न प्रथम फैक्ट्री एक्ट पारित कराया जिसके अतगत फक्ट्रियो म मजदूरो की काय-दशा सुधारने व नियत्रित करने क लिए कदम उठाये गये। यह तय किया गया कि 7 स 12 वष के बीच की आयु क बच्चे 1 दिन म 9 घट से अधिक काय नही करेंगे। खतरनाक मशीने सुरक्षा हेतु ठीक से किसी चीज से घेर दी जायगी और निरीक्षण हेतु इसपेक्टरो की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी।

भारतीय राजाओ के प्रति भी उसकी नीति उदार थी जो इमस सिद्ध है कि उसने 1881 म मैसूर क राजा को कुछ प्रतिबधो सहित उसका राज्य वापस कर दिया। 1882 म कोल्हापुर का राजा पागल हो गया पर रिपन ने उसके राज्य म कोई अनावश्यक हस्तक्षेप नही किया। और जब पागल राजा की मत्यु हो गई तो उसके उत्तराधिकार को बिना किसी कठिनाई क शासन प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया गया।

रूस से सघष

जैसा हमने देखा है कि ब्रिटिशो और अफगानो के बीच रिपन ने शाति की स्थापना कर दी पर ब्रिटिशो से रूस का सघष जारी रहा। रूस ने 1876 म खोखद के खानात पर अधिकार कर लिया। और 1881 मे टेक्के तुर्कोमान क्षेत्रो पर अधिकार कर लिया। इसके बाद ब्रिटिशो को पता चला कि रूस अल के मर दारो का समपण कराने म जुटा है। यह स्थान अफगानिस्तान की सीमा से 130 मील पडता था। जब ग्लैडस्टन को सूडान का मेहदी परेशान कर रहा था उसी समय रूस ने उपरोक्त क्षेत्र के सरदारो को अनुगामी बना लिया जिसके कारण इगलैंड म तहलका मच गया और ऐसा लगने लगा कि रूस के साथ इस मसले पर कोई गभीर सघष न हो जाय। पर यह परिस्थिति किसी तरह बच गयी।

रूस ने उत्तर-पश्चिमी अफगानिस्तान से अपनी सीमाए रेखाकित करने हेतु एक सयुक्त आयोग का प्रस्ताव किया पर रिपन ने जब इस काय के लिए एक भारतीय अधिकारी सर पीटर लम्सडेन को ब्रिटिश शिष्टमडल का नतत्व करने के

---

1 देखें स्मिथ, डब्लू० आर० स्पीचेज आफ मार्क्विस आफ रिपन

2 लाड लिटन वाला अध्ययन देखें।

लिए घोषणा की और अमीर से भी अपना एक अधिकारी भेजने का आमत्रण भेजा। यह सब रिपन ने इस आशा से किया कि रूस सचमुच सहयोग करने का इच्छुक है। पर रूस का प्रत्युत्तर निराशाजनक था। वे सचमुच इस मसले पर देर लगाना चाहते थे और इसी बीच उस क्षेत्र म अपनी महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति करना चाहते थे। उनकी इच्छा पूण तुर्कोमान कबीलो पर नियत्रण की थी और इसीलिए रूसी सरकार ने अपने प्रतिनिधिमडल का नेतृत्व जनरल जेलेनाय के हाथ म सौंपा। पर चूकि वह बीमार था इसलिए उसे ठीक होने म कुछ समय लगा। फिर उसे इस काय म जाने मे भी कुछ समय लगा। इन कमिश्नरो की पहली बैठक इसी कारण बहुत देर म अक्टूबर 1884 म हुई। इसके एक ही माह बाद लाड डफरिन भारत म गवनर जनरल होकर आ गया। पर इस मामले पर गभीरतापूवक फरवरी 1885 से पूव विचार नही हो सका।

1884 मे रिपन भारत से वापस गया। उसकी वापसी इस देश से एक और उदार गवनर जनरल की वापसी थी जिसने ऐसे सुधार प्रस्तावित किये थे जो सीमा और महत्त्व दोनो दृष्टिकोण से बहुत आगे थे। इस देश मे लाड रिपन सदा एक प्रिय, उदार और विस्तृत मस्तिष्क वाले व्यक्ति के रूप मे याद किया जायेगा।

इस देश की उत्तम सेवाओ मे जो उसने की उनम स्थानीय स्वशासन को एक निश्चित आधार प्रदान करना माना जा सकता है। इसके पूव भारतीयो के जो स्व शासन के योग्य नही माना गया था और न ही उनकी आकाक्षा की ओर ध्यान देने का प्रयास ही किया गया था, उन्ह अपने प्रशासन मे इससे पूव न तो प्रतिनिधित्व ही प्रदान किया गया था और न आवाज उठाने का अवसर। ऐसा विश्वास किया जाता था कि भारत भूमि प्रजातात्रिक सस्थाओ के विकास के योग्य नही है। लाड-रिपन ने इस तरह के विश्वास को आघात पहुचाया और प्रतिनिधि सस्थाओ का सचमुच ही बीज बोया जो धीरे धीरे आगे बढा। उसकी उन सूचनाओ मे भी उदारता का पुट है जिसमे उसने बताया कि यह प्रयोग स्थानीय प्रशासन मे सुधार को ही ध्यान मे आवश्यक रूप से रखकर नही किया जा रहा है और न ही यह आवश्यक है कि लोग इसके गुणो को समझें। बल्कि यह उनके लिए अच्छा है क्योंकि इसका उद्देश्य आत्म प्रशासन मे उन्ह प्रशिक्षित करना है और इसी कारण जनता को इसके साथ जोडकर इसे सफल बनाया जाय।

आर्थिक क्षेत्र मे भी जो कुछ उसने किया उसका उद्देश्य तरह-तरह के लोगो मे इनके अपने लाभ के विषय मे रुचि पैदा करना था। आर्थिक क्षेत्रो का उसके द्वारा तीन भागो म विभाजन तात्कालिक परिणामो की दृष्टि से उतना महत्त्वपूण नही था जितना अपने अतिम प्रभावो के कारण। समय यह था कि यहीं से प्रान्तीय स्वायत्तता की आधारशिला रखी गयी जो धीरे धीरे बनते-बनते आगे चलकर 1919 और 1935 मे एक भवन के रूप मे सामने आयी।

शिक्षा के क्षेत्र म उसके द्वारा नियुक्त हटर आयोग की भी कम महत्ता न थी। 1854 का वुड का डिस्पैच अच्छा था, पर तभी जब कि इस धाराओ पर कार-वाई हो और लोगो को उसका लाभ प्राप्त हो। लाड रिपन न इस डिस्पैच के भाव को काय रूप मे बदलने की चेष्टा ही नही की वल्कि इसमें कुछ लाभपूण शर्तें जोडी भी। उसका उद्देश्य यह था कि भारतीय हितो की रक्षा होनी चाहिए।

सच तो यह था कि लाड रिपन ब्रिटिश गवनर जनरलो की भीड म एक ऐसा श्रेष्ठ व्यक्तित्व था जिसने भारत पर यह सोचकर कभी शासन नही किया कि इस देश पर ब्रिटिशो का नियत्रण सदा बना रहेगा। वल्कि उसका उद्देश्य यह था कि भारतीयो को इस सबम प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए जिससे कि अतत व अपना उत्तरदायित्व स्वय सभाल सकें। उसका इलवट बिल और कलकत्ता हाइ कोट के मुख्य यायाधीश के पद पर एक भारतीय की नियुक्ति इसके विश्वस्त प्रमाण हैं। उसने अप्रत्यक्ष रूप से, इलबट बिल मे सशोधन के विरुद्ध हुई भारतीय प्रतिक्रिया के माध्यम से देश मे राजनतिक और राष्ट्रीय भावना को जगाया। सच तो यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि भारतीय राष्ट्रवाद की नीव लाड रिपन के भारत के प्रति कारवाइयो के द्वारा यदि रखी नही गई तो शक्तिशाली अवश्य हुई। वर्नाक्युलर प्रेस को दी गयी उसके द्वारा स्वतत्रता उसका फैक्ट्री ऐक्ट और ऐसे ही अय काय उसे आधुनिक भारतीय इतिहास का चमकता हुआ तारा सिद्ध कर देते है।

जब लाड रिपन भारत से पदमुक्त हुआ तो उसे एक नायको जैसी विदाई प्राप्त हुई। इगलैड वापस जाते समय लाड रिपन ने बम्बई म विक्टोरिया टर्मिनल रेलवे स्टेशन के सामने नगरपालिका भवन की नीव रखी थी। नगरपालिका कार्पो रेशन के प्रेसीडेन्ट फीरोज शाह मेहता ने एक स्वागत भाषण इस अवसर पर पढा था और बम्बई के अलग अलग कस्बा न टाउन हाल म अपने अपने स्वागत भाषण अलग स पढ थे। अपने वापसी के समय जब उसकी गाडी गलियो से होकर गुजरी तो इसे भुलेश्वर और मुबादेवी मदिर के सामने रोका गया जहा के पुजारियो ने उसके माथे पर कुमकुम और चावल लगाकर पद मुक्त नायक को आशीर्वाद दिया। चादी की तश्तरियो मे गरी के गोले उसे भेट किये गये और व्यापारियो ने उसके गले मे हीरों और जवाहरात की मालाये पहनाई। प्रत्येक भारतीय का हृदय चीत्कार कर उठा, भारतीय स्वतत्रता के नायक रिपन दीर्घायु हो।

1884 मे जब वह इगलैंड पहुचा तो ग्लैडस्टन ने उसे ऐडमिरेल्टी का प्रथम लाड नियुक्त कर दिया। बाद मे उसे उपनिवेशो का सक्रेट्री आफ स्टेट बना दिया गया। आयरलैंड के लिए गृह शासन के समथन न उसे डब्लिन नगर की स्वतत्रता की उपाधि दिलाई। 1905 मे वह हाउस आफ लार्ड्स का प्रतिनिधि हो गया पर उसने एशक्वीथ के प्रधानमत्री होने पर इस पद से स्तीफा द दिया। उसका 9 जुलाई 1909 को देहान्त हो गया।[1]

16

लार्ड डफरिन (1884-1888)

डफरिन के मार्क्विस का जन्म 21 जून 1826 को हुआ था। उसका पिता चौथा लार्ड डफरिन प्राइस ब्लैक वुड था और उसकी मा टामस शेरिडान की पुत्री हलेन सेलिना थी। फ्रेडरिक टेम्पुल ब्लेकवुड के नाम से जन्म से जाने वाले डफरिन के मार्क्विस को 1884 मे जब रिपन का उत्तराधिकारी बनाया गया तो वे काफी उम्र के हो चुके थे। इस नियुक्ति के 20 वर्ष पूर्व डफरिन ने भारत के लिए अंडर सेक्रेटी के पद पर कार्य किया था। 1872 78 के बीच वह कनाडा का गवनर जनरल रहा था और इसके बाद उसे सेण्ट पीटसबर्ग मे और फिर कुस्तुनतुनिया मे राजदूत का पद प्रदान किया गया था। उसे मिस्र का विशेष कमिश्नर भी बनाया गया था। इस तरह भारत आने से पूर्व उसे प्रशासन और कूटनीति के क्षेत्र म तरह-तरह के अनुभव प्राप्त थे। पर अधिक आयु होने के कारण उसमे नयी योजनाओं को प्रस्तावित करने और सुधार योजनाए प्रस्तुत करने की शक्ति का अभाव था। जो भी समस्याए उसके सामने आयी उसने उन्हे अनुत्साही ढग से हल करने मे ही सतोष व्यक्त किया।

आन्तरिक सुधार

उसके आतरिक सुधारो के मामले में थोडा ही बताना पर्याप्त होगा। इस काल के प्रशासनिक क्षेत्र म टेनेंसी ऐक्टो का पारित किया जाना एक महत्वपूर्ण बात थी जिसके कारण किसानो को अधिक सुरक्षा और अधिकार प्राप्त हुए। 1885 के बगाल टेनेंसी ऐक्ट म अनावश्यक कर बढाने पर प्रतिबंध लगाया गया। 1886 के अवध टेनेंसी एक्ट के अतगत सात वर्ष के लिए वहा के किसानो को इच्छानुसार भूमि पर अधिकार प्रदान किया गया और उन्हे पिछले 30 वर्षों के अन्दर कृषि म सुधार के लिए हरजाना प्रदान किया गया। 1887 के पजाब टेनेंसी एक्ट ने एक सीमा के भीतर किसानो को कर वृद्धि से भी बचाया और उनके भूमि अपहरण पर भी प्रतिबध लगाया।

उसने 'द एज ऑफ कन्सेंट ऐक्ट' के द्वारा भारतीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति भी सुधारनी चाही। डफरिन ने इस ऐक्ट के अंतर्गत 8 से 12 वर्ष तक की लड़कियों को राजकीय सुरक्षा प्रदान किये जाने का प्रावधान किया।

डफरिन के काल में चाँदी के मूल्य के घटने और सैनिक व्यय बढ़ने के कारण सरकार को अतिरिक्त आय के स्रोत की तलाश करनी पड़ी। डफरिन भारतीयों में रिपन की लोकप्रियता से ईर्ष्या करता था और अपने लिए भी ऐसी लोकप्रियता का इच्छुक था। पर यह काम ब्रिटिश वर्ग को अप्रसन्न करके वह नहीं चाहता था। लार्ड नार्थब्रुक ने उसे परामर्श दिया, "जो आपको कार्य करना पड़ेगा वह कोई अन्य बेहतर तरीके से नहीं कर सकता। हमारे राज्य को भारतीयों में लोकप्रिय बनाइये। मेरा विश्वास है कि यह कार्य कम से कम परिवर्तन करके आप करिये। विशेषकर नये कर आरोपण से बचिये और उनमें भी प्रत्यक्ष करों से और प्रत्यक्ष करों में से भी आय कर से।"[1]

इस मत को ही ध्यान में रखकर डफरिन ने आयकर को हाथ नहीं लगाया। इसके स्थान पर उसने भूकर को छोड़कर सभी आय पर लाइसेंस कर को कुछ काल के लिए और बढ़ा दिया, जो भारतीयों और यूरोपीयों पर बिना भेद भाव के लागू किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि वह प्रेस और जनमत को शांत रख सका और फिर भी अपनी आय बढ़ा ली। पर तब बर्मा के युद्ध, सीमा सुरक्षा, नयी रेलों और चांदी के मूल्य में और कमी ने अतिरिक्त आय को भी अपर्याप्त कर दिया। इसीलिए उसने पेट्रोलियम पर भी थोड़ी सी चुंगी लगायी। नमक पर भी थोड़ा सा कर बढ़ा दिया गया और इस तरह बिना कुछ अधिक विवाद खड़ा किये उसने कठिनाइयों पर विजय पा ली।

डफरिन ने मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए उन्हें हज की सुविधाएं और बढ़ायीं। उनकी शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया और राज्य सेवाओं में उन्हें अधिक स्थान प्रदान किया। उसके काल ही में रानी विक्टोरिया की सिल्वर जुबिली मनायी गयी जो एक महत्त्व की घटना थी।

एक आयोग की नियुक्ति भी इस काल में की गयी जिसे भारतीयों के सिविल सेवाओं में भर्ती की समस्या पर रिपोर्ट देना था। इस आयोग ने जनवरी 1888 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें यह कहा गया कि कुछ अधिक संख्या में उत्तरदायी पद भारतीयों को सौंपे जायें। इसमें भारतीयों की आयु सीमा में वृद्धि हेतु कोई संस्तुति नहीं की गयी। पर इसमें यह इंगित किया गया कि यदि सभी की आयु बढ़ा दी जाय तो यह लाभपूर्ण होगा क्योंकि इससे भारत में सिविल सेवा हेतु अंग्रेज अधिक परिपक्व हो जाएंगे। डफरिन ने स्टेचुटरी सेवाओं को समाप्त करने

1 गोपाल, एस० ब्रिटिश पालिसी इन इंडिया (1858 1905) पृ० 156 57।

का निश्चय किया और यह भी तय किया कि कुछ केन्द्रीय सेवा के पदो पर काम करने वाले कर्मचारी प्रान्तो म भेज दिये जाय । पर वह इस क्षेत्र मे कुछ कर सकता उसके पहले ही वह पद मुक्त हो गया ।

कश्मीर पर ब्रिटिश नियन्त्रण शक्तिशाली बनाया जाना

लार्ड डफरिन के काल म एक प्रमुख घटना यह थी कि उसके काल ही म कश्मीर म रेजीडेन्ट की नियुक्ति की गयी । कश्मीर मे गर्मी म जानेवाले युरोपीयो के कारण समस्या पैदा हो गयी । वे प्राय वहा दुर्व्यवहार करते जिसके कारण महाराजा गुलाब सिह को 1882 मे एक विशिष्ट अधिकारी की नियुक्ति की स्वीकृत करनी पडी जिससे कि वह उनपर नियन्त्रण रख सके। पर बाद की मध्य एशिया की घटनाओ ने कश्मीर मे ब्रिटिश पालिटिकल एजेन्ट की नियुक्ति आवश्यक बना दी और नार्थब्रुक ने एक रेजीडेन्ट की नियुक्ति का प्रस्ताव कर दिया। महाराजा राजवीर सिह ने इसका विरोध किया और यह कहा कि अमृतसर की 1846 की सधि इसके लिए आज्ञा नही प्रदान करती । पर उसने स्वय ही यह प्रस्ताव किया कि विशिष्ट अधिकारी कश्मीर मे 6 माह रहने के स्थान पर मध्य एशिया की स्थिति का जायजा लेन के लिए 8 महीने रह क्योकि शेष 3 4 महीन ऐस देखभाल की कोई आवश्यकता नही है क्योकि जलवायु के कारण आवागमन के साधन वैसे ही अवरुद्ध रहते है । विशिष्टाधिकारी इस तरह राजनैतिक अधिकारी हो गया और उस सीमा तक यहा पर ब्रिटिश अधिकार सम्पन्न हो गया । हमने यह देखा है कि किस तरह इस काल मे गिलगिट म भी एक एजेन्ट की नियुक्ति की गयी, पर बाद म इसे वापस बुला लिया गया । इसी तरह लार्ड मेयो के विरुद्ध दुहरे कुशानकी पट्टी बनाने की व्यवस्था के अतगत लद्दाख से होकर पूर्वी तुर्किस्तान से व्यापार सबध आवश्यक कर दिय गय आर जबकि 1867 म लेह मे केवल 6 महीने के लिए एजेन्ट नियुक्त कर दिया गया । यह नियुक्ति बाद मे स्थायी कर दी गयी ।

पर ब्रिटिश अब भी सतुष्ट नही थ । महाराजा ने लगातार रेजीडेन्ट रखना अस्वीकार किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश उसके मत्यु की प्रतीक्षा करने लगे । उनका यह मत था कि उसके उत्तराधिकारी को तभी वैधानिक माना जायगा जब वह रेजीडेन्ट रखना स्वीकार कर लेगा । 1884 मे जब रणवीर सिह बीमार पडा तो उसने अपने सबसे बडे लडके प्रताप सिह के स्थान पर अमर सिह को उत्तराधिकारी बनाना चाहा । लार्ड डफरिन ने गृह अधिकारियो से सपर्क स्थापित किया और उनकी स्वीकृति से प्रताप सिह के पक्ष मे निणय किया । पर प्रताप सिह उत्तराधिकारी हो, उसके पूव उससे कहा गया कि तुरन्त उसके राज्य मे सुधारो की आवश्यकता पडेगी क्योकि उसके पिता क बीमारी की अवधि मे

राज्य प्रशासन को बड़ी हानि उठानी पड़ी है। चूंकि एक सुधार उत्तम ब्रिटिश मत से ही संभव है, इस कारण विशिष्ट अधिकारी सर आलीवर सेण्ट जान के माध्यम से उसे सूचित किया गया कि जिस दिन वह उत्तराधिकारी होगा उसी दिन रेजीडेंट की नियुक्ति आवश्यक होगी। पर प्रताप सिंह ने असफल विरोध किया। उसने कहा कि वह स्वयं प्रशासकीय पुनर्गठन की आवश्यकता का अनुभव करता है, उसके पास कई सुधार योजनाएं हैं और वह कुछ काल अपनी योग्यता प्रदर्शन हेतु चाहता है। पर उसे स्पष्ट बता दिया गया कि एक रेजीडेन्ट ही उसकी प्रशासकीय योजनाओं में सहायता करेगा। उसे यह भी सूचित किया गया कि अन्य प्रान्तों में रेजीडेन्टों ने कितनी उत्तम सेवाएं अर्पित की है।

रणवीर सिंह की 12 सितंबर 1885 को मृत्यु हो गयी। सेण्ट जान रेजीडेन्ट नियुक्त किया गया और उसने प्रताप सिंह के राजा होते ही अपना नया कार्यभार ग्रहण कर लिया। नव शासक को एक निश्चित अवधि में कुछ निश्चित सुधार करने को कहा गया। इन सुधारों में सीमा तक ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों हेतु सड़कों का निर्माण सम्मिलित था जिसे 1885 में इंडियन स्ट्रेटजिक समिति ने प्रस्तुत किया था। स्पष्ट रूप से इनके लिए साधनों और अच्छे अधिकारियों की आवश्यकता थी। पर ब्रिटिशों द्वारा हर तरह का हस्तक्षेप किया गया। महाराजा के अविश्वस्त दीवान लक्ष्मणदास को उनके ऊपर थोप दिया गया। स्वतन्त्रता के अभाव में एक निश्चित अवधि में महाराजा के लिए सुधार करना संभव नहीं हुआ। इस परिस्थिति में उस पर अक्षमता का आरोप लग गया और परिवर्तन के लिए उसमें चालाकी और प्रशासकीय योग्यता का भी अभाव बताया गया। यह प्रस्ताव भी किये गये कि कुछ काल के लिए वह गद्दी का परित्याग कर दे जिससे कि अति आवश्यक सुधार उनके द्वारा कर दिया जाय जो उस मामले में योग्य है। प्रस्तावों को लार्ड डफरिन के उत्तराधिकारी लार्ड लैंसडाउन ने आगे चलकर कार्य रूप में परिणत किया।

दर्दिस्तान

इस काल का एक अन्य महत्वपूर्ण मसला जो सामने आया वह दर्दिस्तान और गिलगिट से जुड़ा था जहां पर ब्रिटिश ने पुनः एजेण्ट नियुक्त करने की चेष्टा की। हम पिछले अध्यायों में देख आये हैं कि किस तरह ब्रिटिश इस कबीले क्षेत्र को काबुल के प्रभाव से मुक्त रखना चाहते थे और साथ ही रूसी आक्रमण के संभावित खतरे से दूर। उन्होंने कश्मीर को दर्दिस्तान पर प्रभाव बढ़ाने की चेष्टा में सहायता की थी और अफगानिस्तान के अमीर अब्दुर्रहमान से बार बार अपनी लालची आंखें इधर न करने को कहा था। इस तरह 1882 में जब अब्दुर्रहमान ने एक बार पुनः अफगानिस्तान का चितराल पर अपना प्रभाव बढ़ाना चाहा तो रिपन ने

उसे स्पष्ट शब्दो म यह चेतावनी द दी कि भारत वहा पर कश्मीर की प्रभुसत्ता स्वीकार करता है और आवश्यकता पडने पर इसकी रक्षा करेगा। पर अब्दुरहमान ने इसका उत्तर कूटनीतिज्ञता से दिया। उसने बताया कि वह अब चितराल मे हस्तक्षेप नही करेगा चाहे उस राज्य को ब्रिटिश अफगानिस्तान से अलग ही क्या न कर दें। स्पष्टतया अमीर ने अपना अधिकार नही त्यागा। और 1883 मे इस क्षेत्र पर अफगानो द्वारा आक्रमण की सभावना हुई। इससे चितराल का शासक अमानुलमुल्क कश्मीर के निकट आ गया और ब्रिटिश प्रसन्न हो गये।

पर अफगानिस्तान के अमीर ने केवल चितराल को ही अपने म मिलाने का खतरा ही नही पैदा किया बल्कि बाजौर, स्वात और दर्दिस्तान के अन्य क्षेत्रो पर अपनी दृष्टि गडाये रखी। 1885 म जब वह भारत आया और रावलपिंडी मे डफरिन के साथ बातचीत की, उस समय ब्रिटिशो ने एक व्यक्तिगत प्रस्ताव पर विचार किया कि यदि अमीर अपनी रूस से लगने वाली उत्तरी सीमा के कुछ क्षेत्रो की हानि बर्दाश्त करे तो उसे अपने दक्षिण पूर्व सीमा के कुछ क्षेत्रो को लेने की छूट दी जा सकती है। पर यह मसला अमीर के साथ बातचीत म नही आया, क्योकि वह स्वय रूसी लाभो के पक्ष म आश्चर्यजनक रूप से पाया गया था। इसी कारण पूरे दर्दिस्तान को कश्मीर के नियत्रण म रखना लगातार जारी रखा गया।

ब्रिटिशो मे इस भय की सभावना बनी रही कि दर्दिस्तान से होकर रूसी आक्रमण सभव है। इसके अतिरिक्त पूर्वी तुर्किस्तान की ओर बढता चीनी प्रभाव भी एक समस्या बन गया। 1885 म इसीलिए डफरिन ने यह निश्चित किया कि भारत की उत्तरी सीमा की पूर्णतया खोज बीन की जाय जिससे यह पता चले कि आखिर एक आक्रामक सेना किन रास्तो को प्रयोग मे ला सकती है और दर्दिस्तान के उत्तर पश्चिम म किन दर्रों की रक्षा की आवश्यकता पडेगी। इस कार्य के लिए दो ब्रिटिश दल तैयार किये गये। एक दल कशगर की ओर से और दूसरा अफगानिस्तान की ओर से रवाना हुआ। इनका उद्देश्य आक्सस नदी के उत्तर के क्षेत्रो का निरीक्षण करना था। कर्नल लोकहार्ट के नेतृत्व मे एक तीसरा दल दर्दिस्तान के क्षेत्र के परीक्षण के लिए रवाना हुआ।

लोकहार्ट ने इस कबीले के 12 हजार वर्ग मील के क्षेत्र का गहन परीक्षण किया और इस निष्कर्ष पर पहुचा कि बरोधिल दर्रा जो पहले एक समस्या बना हुआ था, उससे होकर बडी विदेशी सेना के आने की सभावना कम ही है। इसलिए रक्षार्थ जो उपाय किये जाय वे छोटे और हल्के हथियार वाली सेना के विरुद्ध ही होने चाहिए जो वसत या शरद काल मे आ सकती है।

इन निरीक्षणो के फलस्वरूप दर्दिस्तान क्षेत्र मे कुछ और समस्यायें भी सामने आ गयी। हुंजा मरस्तर गजन खा चपरोत किले की हानि अभी नही भूल पाया था। 1886 मे जब लोकहार्ट इस कबीले के क्षेत्र मे प्रविष्ट हुआ तो उसे काफी देरी

के बाद ही आगे बढन दिया गया। पर जल्दी ही गजन खा को उसके लडके सफदर अली ने मार डाला और नागर व अपनी सेना की सम्मिलित शक्ति से 1888 म किले पर आक्रमण कर दिया। कश्मीर की सेना खदेड दी गयी और एक क्षण तो ऐसा लगा कि ददिस्तान पर स कश्मीर की पकड ढीली पड रही है। पर कश्मीर की सेनाओ ने यहा पर अधिकार कर लिया और वहा पर शाति की स्थापना की। पर अब इस प्रश्न पर विचार प्रारभ हो गया कि क्या कश्मीर इस कबीले म क्षेत्र पर प्रभाव बनाये रखने मे समथ है। इसके अतिरिक्त सफदर अली कश्मीर के प्रति शत्रु ही नही बना रहा बल्कि 1888 के अत तक उसन एक रूसी अधिकारी ग्रोमचेव्स्की का स्वागत किया और यह अफवाह फैली कि एक समझौते के अतगत हुजा लोगो को रूस मे प्रशिक्षण प्रदान किया जायेगा जिससे वे ब्रिटिश म तव्यो को ध्वस्त कर सकें। इसके अतिरिक्त कशगर क्षेत्र से होकर जानेवाले नेता इलियस ने यह रिपोट दी कि यारकद म चीनी हुजा को अपने सिकियाग प्रा त के सीमा पर स्थित एक जिला मानते हैं जिसे व अतत उसम मिलाने मे इच्छुक हैं। लोकहाट ने भी यह रिपोट दी कि हुजा सरदार गजन खा अपने को केवल चीनी राजा का ही अनुगामी बताता है। "फिर भी यदि गजन खा और उसके बाद सफदर अली ने बवकूफी से भरी पराकाष्ठा का दृष्टिकोण न अपनाया होता तो वे चीन और कश्मीर दोना को कर न देते और आर्थिक सहायता प्राप्त करते जिसको ब्रिटिश अधिकारी अनदेखी कर देत थे।'[1]

पर 1888 मे चपरात की समस्या ने स्थिति म परिवतन ला दिया और डफरिन ने जोर देकर कहा कि चूकि हुजा गिलगिट स केवल 50 मील ही दूर है इसलिए यह कश्मीर का 'स्वाभाविक एव आवश्यक' सहायक राज्य है। इसी बीच डफरिन के विदश सचिव के छाट भाई कैप्टेन अल्गरनान डूरण्ड और विदेश सचिव के मित्र मार्टिमेर डूरण्ड को इस प्रश्न का पुनपरीक्षण करने के लिए भेजा गया और उनसे यह सस्तुत करत को कहा गया कि वे ददिस्तान म ब्रिटिश हितो की रक्षा के उपाय सुझायें। डूरण्ड न यह सतुस्ति दी कि गिलगिट मे पुन एजेंसी की स्थापना की जाय, उस क्षेत्र मे सडकें और तार लाइन तयार की जाय, सरदारा को आर्थिक सहायता प्रदान कि जाय गिलगिट मे 2 हजार सैनिक रखे जाय चितराल पर 5 हजार का स्थानीय कर लगाया जाय और दीर चितराल सडक खाली जाय।

1889 मे ये सस्तुतिया प्राप्त हुईं जिस समय कि डफरिन इग्लैण्ड वापस जान वाला था। पर इन सस्तुतिया को उसके उत्तराधिकारी लाड लसडाउन और

1 एल्डर जी० ने ब्रिटिश इडियाज नादन फटियर (1865 93) प० 161।
2 वही, प० 163।

कैप्टेन अलगरनान ने स्वीकार कर लिया। 1889 मे डूरण्ड को स्वय गिलगिट मे ब्रिटिश एजेन्ट नियुक्त किया गया।

पजदेह का सकट

लार्ड रिपन के काल मे हमने यह देखा है कि किस तरह रूसियो ने अफगानिस्तान से मात्र 130 मील दूर मव पर अधिकार करके ब्रिटिश के लिए एक कठिन स्थिति पैदा कर दी थी। तुर्किस्तान मे रूसी सेनापति थे जो क्षेत्रीय विजय की कामना से अभिभूत थे। उनमे से एक स्कोबेलेव ने घोषणा की कि, "तुर्किस्तान मे हमारी स्थिति अच्छी नही है और ब्रिटिशो का सदेह निराधार नही है। रूस यदि 15 हजार की एक सेना हिन्दूकुश के पास भेज दे तो भारत विद्रोह के लिए उठ खडा होगा। भारतीय सेना व्यवस्था स्थापित करने मे इतनी व्यस्त हो जायेगी कि उत्तर-पश्चिम सीमा के दरवाजे तुरत खुल जायेंगे। यदि हम अपने इस साहसपूर्ण कदम मे सफल हो गये तो भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य बिल्कुल ही समाप्त हो जायेगा और इगलण्ड पर इसका कितना दुष्प्रभाव होगा उसकी कल्पना भी सरल नही है। चतुर अग्रेजो का तो यहा तक कहना है कि भारत की सीमा पर यह हलचल इगलण्ड मे सामाजिक क्राति ला देगी एक शब्द मे भारत म ब्रिटिश प्रभुत्वशक्ति का पतन इगलण्ड के पतन को ही प्रारभ कर देगा।" पुन यदि "मध्य एशिया मे शक्तिशाली रूस हो, भारत मे कमजोर इगलण्ड हो, तो यह यूरोप मे और नरम पड जायेगा।"[1] रूसी समाचार-पत्र, दूसरी ओर, मात्र मव पर अधिकार करने से सतुष्ट नही थे। वे चाहते थे कि बीच मे पडने वाले पजदेह पर भी अधिकार किया जाय और आगे बढकर हेरात पर अधिकार करके दक्षिणपूव मे एक खिडकी खोल दी जाय। वहा से वे भारतीय सागर तक जा सकते थे और ऐतिहासिक ढग से भाग्य पर अधिकार कर सकते थे।[2]

हमने रिपन के काल म देखा है कि किस तरह उसने सयुक्त आयोग का निर्माण कर अफगानिस्तान से अपनी सीमा निर्धारण का प्रयास किया था।

पर लार्ड डफरिन के भारत म पहुचने के बाद इसी बीच रूस ने यह अधिकार जताया कि पजदेह को अफगानिस्तान के अमीर से स्वतत्र किया जाना चाहिए। ब्रिटिशो ने ये व्यथ म ही चेष्टा की कि अफगान सीमा का मामला आयोग के जिम्मे ही छोड दिया जाना चाहिए। अप्रैल 1885 तक कमिश्नरो के बीच की बातचीत टूटने की स्थिति म पहुच गयी। आयोग के ब्रिटिश सदस्य लक्सडेन ने रूसी सैनिको के बार-बार आक्रामक कारवाई की सूचना दी। 9 अप्रैल को एक देर की सूचना के

1 स्विनसन आथर नाथ वेस्ट फ्रन्टियर, पृ० 198 99।
2 वही पृ० 201।

प्रेषण में बताया गया कि रूसी सैनिकों ने 30 मार्च को पंजदेह पर आक्र
करके वहां से अफगान सैनिकों को निकालकर बाहर कर दिया है। यह ब्रिटि
के लिए एक चुनौती थी। इंग्लैण्ड में भी वातावरण गरम हो गया और अनु
वादियों ने ग्लैडस्टन पर रूस के प्रति नरमी बरतने की नीति का आरोप लगा
ग्लैडस्टन ने इसे गम्भीर स्थिति करार दिया और बड़ी आसानी से सैनिक तै
के लिए 1 करोड़ 10 लाख पौण्ड व्यय की अनुमति प्राप्त कर ली। सुरक्षित सै
वापस बुलाये गये। पर न तो रूसी और न ही ब्रिटिश युद्ध के पक्ष में थे।
डफरिन ने स्थिति का मुकाबला चतुराई से किया। चुपचाप एक समझौत
गया और अमीर से यह कहला दिया गया कि पंजदेह अफगानिस्तान का भाग
है। उसने यह भी कहा कि वह वहां पर अपना अधिकार छोड़ने के लिए तैय
यदि 85 मील पश्चिम जुल्फिकार पर उसका अधिकार स्वीकार कर लि
जाय। चूंकि रूसी पंजदेह चाहते थे जुल्फिकार नहीं, और चूंकि मध्य एशि
के भूगोल की जानकारी इंग्लैण्ड के जनमानस को नहीं थी, इस कारण ग्लैड
ने मन्त्रिमंडल के इस रूसी रियायत की सौगात को जो ब्रिटेन की इच्छा
के लिए उसने किया था, प्रस्तुत किया। इस तरह पंजदेह से रूसी आक्रमण
जिसे ग्लैडस्टन ने स्वयं 'अनुत्तेजित आक्रमण' की संज्ञा दी थी, ब्रिटिशों ने
से बचने के लिए टाल दिया। ग्लैडस्टन के पतन के बाद सालिसबरी ने
समझौता किया उसमें केवल जुल्फिकार ही सम्मिलित किया गया था।

अब्दुर्रहमान को इस बात के लिए आश्वस्त किया गया कि किसी भी कीमत
पंजदेह पर उसके अधिकार का समर्थन किया जायेगा। पर उपरोक्त वर्णित घटन
से स्पष्ट है कि अफगानिस्तान के लिए रूस या इंग्लैण्ड में से कोई भी युद्ध करने
तैयार नहीं था। अमीर ने अपनी आत्मकथा में इस सन्दर्भ में लिखा, ' हमारा
बेचारी बकरी की तरह है जिस पर शेर और रीछ दोनों ने अपनी निगाह गड़ा
है और बिना खुदा की मदद के यह सबसे अरसे तक नहीं बच सकती।" और ि
अन्य स्थान पर उसने और लिखा "अफगानिस्तान दो मिलों के बीच में पिस
राख हो गया।'

कमिश्नरों के बीच अफगानिस्तान के उत्तरी सीमा के निर्धारण हेतु
चलती रही। कुछ समय के बाद लम्सडेन को वापस बुलाकर उसके स्थान
सर वेस्ट रिजवे को नियुक्ति प्रदान कर दी गयी। अन्ततः इस आयोग ने प
मिसस के पर्वत के स्कंधों के उत्तर बसे हरी रुड और आक्सस घाटी के दक्षि
बीच सीमा रखा खींच दी। रूस, फारस और ब्रिटिशों के बीच बातचीत जारी
और 17 जुलाई 1887 को सण्ट पीटर्सबर्ग में एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर
गये। आक्सस के किनारे किनारे सीमा का निर्धारण हो जाने से ब्रिटिशों की कू
में रूसियों की हेरात की ओर प्रगति रुक गयी। इसके बाद 6 वर्ष तक शांति

जा पामीर सबधी झगडे को लेकर अतत टूटी। इसके लिए 1895 म एक दूसरा समझौता किया गया। अफगानिस्तान ने पजदेह के उत्तर के क्षेत्र दे दिय और बुखारा ने आक्सस के दक्षिण मे स्थिति दरवाज पर अपना अधिकार त्याग दिया। इसके बाद इस मसले पर रूस और ब्रिटेन के बीच कोई झगडा नही हुआ। पर आपस मे विरोध भाव जारी रहा जो बाद म कश्मीर और तिब्बत के मसलो को लेकर दोना अपना अपना अधिकार बताने लगे। पर अफगानिस्तान सबधी झगडा तय हो गया। इस सबध म एल्फ्रेड लायल ने लिखा है कि "हिंदूकुश और आक्सस के किनारे किनारे ब्रिटिश और रूसी अधिकारियो द्वारा गाडे गये सीमा के खभो ने पहली बार दो एशियाई देशा की लगातार बढती साम्राज्यवादी प्रवृत्ति पर अकुश लगाया।'[1]

1885 मे अब्दुरहमान ने भारत की यात्रा की और लाड डफरिन से रावल पिंडी मे भेंट की। वाइसराय ने हेरात की कमजोर किलेबदी की ओर गभीरता दिखाई और इसे शक्तिशाली बनाने के लिए इगलिश रायल इजीनियस को भेजने का प्रस्ताव किया। पर अमीर ने यह कहकर इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया कि इसे उसकी देश की जनता स्वतत्रता से समझौता मानेगी। डफरिन ने चतुराई ही की जो इसपर जोर नही दिया। मैत्री और दृढ हा गयी और अमीर भारत से प्रसन्न हो वापस लौट गया।

बर्मा का तृतीय युद्ध

वैदेशिक मामले म एक महत्वपूण घटना तृतीय बर्मा का युद्ध (1885) था जिसके फलस्वरूप बर्मा पर विजय पूरी हा गयी। इस देश का अधिकतर भाग 1826 के प्रथम बर्मा युद्ध द्वारा और 1852 के द्वितीय बर्मा युद्ध द्वारा जीता जा चुका था। अब केवल उत्तरी बर्मा के क्षेत्र थे जहा ब्रिटिश व्यापारियो को कठिनाइया हो रही थी। 1878 म थीबा गद्दी पर बैठा और उसके काल म समस्या ने गभीर रूप धारण किया। नये शासक ने अपने देश मे ब्रिटिश आक्रामक व्यापारिक हिता के प्रति अच्छा अनुभव नही किया और उसने इसम बुद्धिहीन तरीके से कटौती करनी प्रारभ कर दी जिसके कारण उसका पतन प्रारभ हा गया। ब्रिटिश राजदूत के साथ इसके खराब व्यवहार ने और इसे ठीक करने से इनकार करने की प्रवृत्ति ने आपसी सबधो की कटुता को और बढा दिया जिसके फलस्वरूप अतत 1879 म ब्रिटिश राजदूत को वापस बुला लिया गया। नये सधि के प्रस्तावों के असफल बना दिय जाने पर यह प्रस्ताव किया जाने लगा कि उत्तरी बर्मा पर अधिकार ही क्या न कर लिया जाय। पर अब भी पराकाष्ठा नही आयी जब तक

1 लायल, सर एल्फ्रेड द ब्रिटिश डोमीनियन इन इण्डिया पृ० 356।

कि राजा ने ऐसा कदम नहीं उठा लिया जिससे कि उस देश में ब्रिटिश सामरिक नीति को एक बड़ा धक्का नहीं लग गया। उसने जर्मनी और इटली से व्यापारिक संधि करने के लिए प्रयास किया। इसमें भी खतरनाक तरीके से उसने फ्रांस से बातचीत की जिसके उपनिवेश बर्मा के पूर्वी सीमा पर इंडोचाइना में थे।

लार्ड डफरिन के लिए अब यह इतना गंभीर मसला हो गया कि वह इससे बच नहीं सकता था। 1883 में एक बर्मी शिष्टमंडल पेरिस गया और 1885 में एक फ्रांसीसी राजदूत मांडले पहुंचा। वैसे तो फ्रांसीसी सरकार ने इससे इनकार किया पर पता चला कि मांडले में एक फ्रांसीसी बैंक स्थापित करने का प्रयास चल रहा है। बर्मी सरकार ने इसी समय एक ब्रिटिश व्यापारिक कंपनी पर ऊंचा अर्थ-दंड कर दिया। डफरिन ने इस अवसर का लाभ उठाया और इस मसले की फिर से छानबीन करने को कहा। चूंकि इससे उसने इनकार कर दिया, इसलिए उसके पास एक चेतावनी भेजी गयी कि वह मांडले में एक ब्रिटिश राजदूत रखना स्वीकार करे और जब तक राजदूत न पहुंच जाय कंपनी के विरुद्ध कारवाई रोक दी जाय। इसके अतिरिक्त ब्रिटिशों को बर्मा से होकर चीन से व्यापार करने की अनुमति दी जाय। और यह कि ब्रिटिश विदेशी मसलों को ब्रिटिश भारतीय सरकार की राय से ही निबटाया जाय। राजा ने इन शर्तों में कुछ संशोधन की मांग की पर तबतक उसने आश्चर्यचकित यह देखा कि ब्रिटिश सेना उसके देश में प्रवेश कर गयी है। इसका कोई विरोध नहीं किया जा सका और राजा को बिना शर्त आत्मसमर्पण करना पड़ा। इस तरह उत्तरी बर्मा का संपूर्ण क्षेत्र जिसमें 40 लाख निवासी थे और जिसका क्षेत्र फ्रांस से भी बड़ा था, शांति से जनवरी 1886 में ब्रिटिशों के हाथ में चला गया। कुछ थोड़े से सैनिक जो बर्मा के जंगलों में इधर उधर भाग गये थे उन्होंने 2 वर्षों तक गुरिल्ला युद्ध नीति के सहारे ब्रिटिश अधिकारियों को परेशान किया। पर पर्याप्त जन और धन की हानि के बाद अंततः शांति स्थापित हो गयी। समस्या प्रधान जगहों पर छोटे छोटे किलों का निर्माण किया गया और चलते फिरते ब्रिटिश सैनिकों ने विद्रोहियों को शांत किया। विजित क्षेत्रों में सर चार्ल्स बर्नार्ड को चीफ कमिश्नर बनाया गया जिसने अपनी शक्ति और उत्साह से देश को आर्थिक और सामाजिक विकास के पथ पर ला दिया।

नैतिकता के आधार पर ब्रिटिश कारवाई का औचित्य सिद्ध करना सरल नहीं है। कुछ ब्रिटिश लेखकों ने राजा के निरंकुश और कठोर चरित्र की आलोचना की है जो यदि सच भी हो तो भी उससे ब्रिटिश कारवाई का औचित्य सिद्ध नहीं होता। इसमें संदेह नहीं कि ब्रिटिशों की इस कारवाई ने निर्बल पर शक्तिशाली के अधिकार की कहानी दुहरा दी थी। फिर भी, राजा को फ्रांस से मैत्री करने का जो भी अधिकार रहा हो इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों की पृष्ठभूमि में और फ्रांसीसियों के चरित्र व पड़ोस में इंडो-

मे अपनी अक्षमता का अनुभव कर उसने 1888 म स्वय पद त्याग दिया। उसका कार्यकाल तो अभी और आगे तक चलना था।

राष्ट्रवादी आदोलन

लाड डफरिन के काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना 1885 म भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना था। 1857 के भारतीय विद्रोह के समय राष्ट्रवाद सगठित शक्ति के रूप म नही था। पर 1857 का वप उस जल विभाजक के समान था जिनसे नयी-नयी शक्तिया प्रवाहित हुइ और 1885 तक इन्होने महाराजा का रूप ग्रहण कर देश की प्राचीन भूमि को विकसित कर दिया और उवरा बना दिया। इस राष्ट्रवाद के विभिन्न शक्तिशाली धाराओ ने साधारण हस्ताक्षर अभियान से लेकर स्थानीय राजनतिक सगठनो क माध्यम तक से जो कुछ किया उससे एक रुचिकर अध्ययन हम लोगो के समक्ष उपस्थित होना है।

राष्ट्रवादी आदोलन को आगे बढ़ाने वाले तत्त्व

पुराने काल से भारत पर अनेकानेक आक्रमण हुए थ जिनम से बेक्ट्रियना, हूणो, अरबो, तुर्कों और मुगलो के प्रमुख थ। वे सब एक के बाद दूसरे आय। पर वे 'इतिहास के अमर नियमो के द्वारा अपनी प्रजा के उत्तम सभ्यता द्वारा स्वय जीत लिय गय।'[1] पर 18वी सदी म भारत न एक दूसरे तरह का अनुभव प्राप्त किया जिसके अतगत डचो, पुतगालियो फ्रासीसियो और अग्रेजो न व्यापारी के वेश मे समुद्र पार से आकर प्रवेश किया, पर जल्दी ही अपना चरित्र बदलकर व साम्राज्य निर्माता हो गय। इनम से ब्रिटिशो ने और सभी को हटा दे दिया और अपने साम्राज्य की स्थापना करने मे सफल हो गये। नये विजेता पुराने विजेताओ से भिन्न थे। वे यहा पर लोगो म मिल जाने के लिए नही आये बल्कि उन्होने अपना स्वतत्र अस्तित्व बनाये रखा और इस देश पर शासन करते रहे इसका शोषण करते रहे और इस देश का धन लूट खसोटकर इग्लैण्ड भेजते रहे। उन्होंने 'हिन्दुओ को मुसलमानो स लडाया जाटो को राजपूतो से, राजपूतो को जाटो स, मराठों को दानो से, रुहेलो को बुदेलो से, और बुदेलो को पठानो से और इसी तरह वे आपस मे इन्हे लडाते रहे।' मैकाले ने बताया भी कि इस देश की ब्रिटिश सरकार एक ऐसा राज्य है, 'जो इतिहास म किसी और राज्य स नही मिलती जुलती और अपने-आप मे यह अलग ही एक राजनैतिक चमत्कार है।'[3]

1 मार्क्स आन इडिया प० 59।
2 लाजपत राय यग इण्डिया, प० 103।
3 कूपलड द इण्डियन प्राबलेम भाग 1, पृ०19।

सकारात्मक ब्रिटिश देन—ब्रिटिशो ने अपनी शक्ति स्थापित की और बने रहे। पर राष्ट्रवादी आदोलन को आगे बढाने वाले कुछ तत्त्व सामने आये। उधर ब्रिटिश विदेशी ही बने रहे। भारत म ब्रिटिश शासन की देन के सकारात्मक और नकारात्मक दोनो पहलू है। सकारात्मक देन के क्षेत्र मे ब्रिटिशो ने अपने साम्राज्यवाद और अग्रेजी भाषा के सहारे देश को राजनतिक एकता प्रदान की। जब ब्रिटिश भारत मे आये तो भारत मे भि न भि न लोगो का शासन था। मराठे, जाट, सिख और मुसलमानो की अपनी बिखरी शक्ति न देश को भिन्न भिन्न छोट छोट राज्यो मे विभाजित करा दिया था जिनकी अपनी राजनैतिक और क्षेत्रीय सीमाए थी। ब्रिटिशा ने इन सभी को अपने सैनिको की शक्ति के रोलर के नीचे रौंदा जिसमे अन्य लोगो के अतिरिक्त लाड हेस्टिग्स का सबसे अधिक योगदान था जिसके कारण राष्ट्रवादी आदोलन को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ।

ब्रिटिशो के अधीन शासन मे एकरूपता स्थापित हुई। स्थानीय विचित्रताए और जातीय भेदभाव समाप्त होने लगे। शासन का आचरण "कानून पर आधारित सिद्धात पर चलना"[1] प्रारभ हो गया। यह ब्राह्मणा और शूद्रो, मुसलमानो और हिंदुओ और बगालियो तथा मद्रासिया पर समान रूप से लागू होने लगा। नियमित न्यायालयो की पक्ति स्थापित हो गयी जो राजा और रक की समानता के आधार पर न्याय देन लगी। इस तरह की व्यवस्था निश्चित रुप से "देश की मौलिक एकता पर प्रभाव डालने वाली थी। भौगोलिक अलगाव या राजनैतिक प्रभुता से इसके ऊपर उतना प्रभाव नही पडना था" क्योकि देश के कोने कोने मे यह प्रसारित हो गयी थी।

तीव्रता से हुई आवागमन के साधन म प्रगति भी कम महत्व की बात नही थी। आर्थिक शोषण और सामरिक उद्देश्य से बनायी गयी सडकें और बिछाई गयी रेल लाइने निश्चित ही उस क्षेत्र मे भी प्रभाव स्थापित करनेवाली थीं जिस ओर लोगा की दृष्टि भी नही गयी थी। मार्क्स ने कहा था कि "रलवे व्यवस्था भारत मे आधुनिक उद्योग के विकास मे सहायता करेगी।"[3] और यह सच सिद्ध हुआ। इन आवागमन के साधनो ने देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन म क्रान्ति मचा दी। भारतीय लोग नौकरी के लिए देश के एक कोने मे दूसरे कोन मे जाने लगे। जनसख्या मे मल जोल प्रारम्भ हुआ। रेल के डिब्बा मे ऊची और नीची जाति के लोग साथ साथ बठने लगे। लोग चलने लग, स्थानो की दूरी घट गयी। इसके कारण राष्ट्र नताओ के उभरकर सामने आन का अवसर आया जिसन

---

1 देखें स्पस्टर एण्ड विस्ट इडिया ऐण्ड डिमोक्रसी पृ० 69।
2 स्मिथ द आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० IX।
3 मार्क्स आन इण्डिया पृ० 63।

अलगाववादी प्रवृत्ति के स्थान पर राष्ट्रवादी विचारधारा को जन्म दिया और इस तरह राष्ट्रवादी आन्दोलन का पथ प्रशस्त हो गया।

इसके अतिरिक्त पश्चिमी शिक्षा ने भारत को कट्टरता के गंदे पानी से बाहर निकाला और भ्रष्ट आध्यात्मिक दर्शन की कल्पना से विरत कराया। एक काल था जब भारत विश्व की प्रतिष्ठा था, जब आर्य नेता वेद गीत गाते थे, और उपनिषद व पुराण, रामायण व महाभारत, प्रतिष्ठा प्राप्त गीता का अध्ययन ही नहीं होता था, इसे समझा भी जाता था। राजनीति दर्शन वक्ता कौटिल्य, भारतीय वैयाकरण पातंजलि, महान बौद्धधर्म ज्ञानी अश्वघोष "के काव्य जो सम्पूर्णता और विभिन्नता में मिल्टन, गेटे, कान्ट और वाल्टेयर की याद दिलाते हैं", एक औषधि ग्रंथ सुश्रुत के लेखक चरक, 'भारत के शेक्सपियर' कालिदास और अन्य महान ज्ञानी यहीं तो पैदा हुए। विज्ञान, कला और धर्म का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं था जो अपनी गहनता और ऊंचाइयों के शिखर पर नहीं पहुंच गया। पर कष्ट तो इस बात का है कि विचारों में गहनता प्राप्ति के साथ समय बीतते जाने पर भारत अपनी क्या' 'कैसे और 'कहां से' की तर्कबुद्धि खो बैठा। समझदारी का स्थान कट्टर बौद्धिक अभ्यासों ने ले लिया। और अब भारत आध्यात्मिक आधारहीन कल्पनाओं का देश हो गया और यह देश हो गया विलक्षणतापूर्ण और चंचल धार्मिक भावनाओं का। भूतकाल से नाता तोड़ लिया गया और प्राचीन देश पर अंधेरा छा गया।

दूसरी ओर यूरोप में इसका उल्टा हुआ। वहां लोग धीरे धीरे अंधेरे से निकलकर बौद्धिक प्रकाश की पराकाष्ठा पर पहुंच गये। पुनर्जागरण ने यूरोपीय विचारों में क्रांति ला दी। ब्रिटिश भारत आये और वे अपने साथ इस देश में अपना ज्ञान भी लाये। अंग्रेजी साहित्य की विचारधारा—बाइरन की स्वतंत्रता की प्रशंसा, वर्ड्सवर्थ की मानव प्रतिष्ठा की स्वीकृति, शेले की धर्मतंत्र के विरुद्ध जिहाद का उद्बोधन, लाक स्पेंसर, मिल मैकाले और बर्क जैसे इंग्लैण्ड के राजनैतिक दार्शनिकों के राष्ट्रीय और प्रजातंत्र प्रेम के तथा आत्म प्रशासन के विचार, अमेरिका स्वतंत्रता के युद्ध का 'कर प्रतिनिधित्व नहीं तो कर भी नहीं' का नारा, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व का फ्रांस की क्रान्ति का उद्बोधन, इटली के स्वतंत्रता संघर्ष की गाथाएं तथा माजिनी जैसे नेताओं की बलिदानपूर्ण कार्य प्रणाली यात्रा करके इस देश में भी पहुंच गयी।

पश्चिमी शिक्षा का भूत भारतीय मस्तिष्क पर सवार हो गया। परंपरावाद का संबंध तथ्यवाद से हो गया भ्रष्ट कल्पनाएं लड़खड़ाकर गिरने और मरने लगीं। नयी रोशनी आयी और भारत अपने वैचारिक और कर्म के आलस्य से ऊपर उठा। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र की पश्चिमी मान्यता भारत ने ग्रहण करनी प्रारंभ कर दी। भारत पुनः सोचने और योजनाएं बनाने लगा और

एक नये युग का प्रारंभ हुआ । महान आशाए और आकाक्षाए अवतरित हुइ । रैम्जे मैक्डानल्ड ने लिखा है "हर्बट स्पेन्सर का व्यक्तिवाद और लार्ड मैकाले का उदारवाद ही ऐसे अस्त्र हैं जिसे भारतीयो ने हमसे छीना है और नीचतापूर्वक उसका प्रयोग हमारे ही विरुद्ध कर रहे है ।"[1]

पर इसका अधकारपूर्ण पक्ष भी था । अति अधेरा ! नयी विचारधारा और नयी आकाक्षाए भारतीय नही विदेशी थी जिसमे खोकर भारत ने अपनी अस्मिता खोनी प्रारभ कर दी और उसकी सास्कृतिक मृत्यु के काले बादल मडराने लगे । भारत जो अपना भूतकाल भूल चुका था, उसे अपने पर घमड नही रह गया था । उनका अपना कोइ विचार और उपलब्धि भी नही थी जिसपर वे घमड करते ।

पर इसी समय भारत को मानसिक और नैतिक मृत्यु से उबारने के लिए एक नया आदोलन उठ खडा हुआ । भारतीय और युरोपीय विद्वान भारत के भूतकालीन रहस्यो की खोज मे जुट गये । रानाडे हरप्रसाद शास्त्री, पी० जी० भडारकर और राजेन्द्रलाल मिश्र, मैक्समूलर, मोनियर विलियम्स, सर विलियम जोन्स, जैकोबी, कोलब्रुक एव रोथ, एशियाटिक सोसाइटी और ऐसी ही अन्य सस्थाओ ने धीरे धीरे पर परिश्रम मे सदियो के उस कूडे को साफ कर भूतकालीन हीरो की तलाश करने म सफलता प्राप्त की । धीरे धीरे सभी कुछ सामने ले आया गया । भारत ने अपनी पुन खोज कर ली "और पुन प्रतिष्ठापूर्ण आध्यात्मिक क्षेत्र मे विश्व की प्रशसा प्राप्त करने म सफल हो गया । इसने अपनी भक्ति और बद्धिक प्रतिभा की गहराई मे पैठ भी बना ली एक ऐसी सस्कृति जिसने करोडो लोगो को पेला था, एक ऐसी सभ्यता जिसकी बराबरी की सभ्यता दुनिया ने देखी नही थी ।'[2] ये बाते थी जिनपर गर्व किया जा सकता था और पश्चिमी सस्कृति के आक्रमण से अपने को बचा भी सकती थी ।

इस पूरी स्थिति का पुनर्परीक्षण प्रारभ हुआ जिसने भारतीय बुद्धिजीवियो को दो मतो मे विभाजित कर दिया—अनुदारवादी और उदारवादी । राधाकान्त देव जैसे लोगो का विश्वास था कि भारत की प्राचीन परपराए इतनी ऊची रही जहा तक पहुचना सरल नही है और इसीलिए उनकी महत्त्वाकाक्षा भूतकाल म वापसी की थी । पर उदारवादियो की दृष्टि मे भारत की मुक्ति पुरानी विचारधारा और पश्चिम से प्राप्त आधुनिक विचारधारा के सामजस्य मे निहित थी । रोमा रोला के मतानुसार श्रीअरविन्दो 'पूर्व और पश्चिम के बौद्धिक सामजस्य के' एक उत्तम और पूर्ण उदाहरण थे और वे इसी धारा के व्यक्ति थे । पर ये दोनो मतावलबी अपने मत को अति दृढता से मानने के लिए आतुर नही थे । इसीलिए यदि एक ने

1 मक्डानल्ड, रम्जे अवेकनिंग आफ इडिया पृ० 124 25।
2 बस ट, एनी इडिया ए नेशन, पृ० 71 ।

पश्चिम से खुलेआम कुछ प्राप्त करने की चेष्टा की तो दूसरे न अनजान मे वैसा ही स्वय कर दिया। प्रभाव दोना स्थितिया म एक ही होता था—यानी राष्ट्रवादी आदोलन का विकास।

चार महत्त्वपूण सुधार आदोलन उस समय सामन आय जिन्होंने पुरातन और नवीन से अलग-अलग सीमा म चीजें ग्रहण कर भारतीय जनमानस को जगाने का प्रयास किया। 'युरोप मे सुधार आन्दोलनो ने ही प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय एकता को जन्म दिया था। भारत मे भी सुधार आदोलनो ने ही राष्ट्रीय एकता की स्थापना की।' ये आदोलन थे ब्रह्मसमाज, आयसमाज, थियोसाफिकल सोसाइटी और रामकृष्ण मिशन।

ब्रह्मसमाज के० टी० पाल ने लिखा है कि भारत भारत नही रहता यदि उसका राष्ट्रीय आदोलन धम के स्थान पर प्रारभ नही होता। और पुन राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज "आर्थिक जीवन व दशन को मुखरित करने का एक प्रयास था जिसमे पश्चिमी विचारो और प्रयोगो को भी सम्मिलित किया गया था।' यह "पश्चिम की भावना का प्रथम उत्तर था।"[1] पिछले पृष्ठो म हम इस आदोलन के विषय म बता आये हैं।

आयसमाज आयसमाज "पश्चिमी अधानुकरण स जान बूझकर अलग चलने का प्रयास था जिससे हिन्दू जीवन और धम का पश्चिमी प्रभाव का शिकार होने से बचाया जा सके।' इसकी स्थापना बम्बई मे 1875 मे स्वामी दयानद सरस्वती (1824 83) न की जिन्हे रोमा रोला ने 'इलियड या गीता का ऐसा नायक बताया है जिसके पास हरक्युलिस की शक्ति थी।' इसकी लाहौर शाखा 1877 म प्रारभ की गयी जहा पर इसे बहुत सफलता प्राप्त हुई। 1892 मे समाज दो भागो मे विभाजित हो गया, 'व जो वदिक आदश ब्रह्मचय और धार्मिक सेवा मे विश्वास करते थे और वे जो समाज को आधुनिक पश्चिमी सस्कृति की सहायता से शिक्षा सस्थाओ के माध्यम से समाज मे जीवन फूकना चाहत थ।' श्रीमती बसेन्ट न लिखा है कि ये "दयानद सरस्वती ही थे जिन्होन भारत भारतीयो के लिए सिद्धात की घोषणा की।' उनका दशन यह था कि लोगो को वेदो की ओर वापस ल जाया जाय और उनम भूत के प्रति गव की भावना भरी जाय। समाज न हिन्दू अनाथालयो को प्रारभ किया, विधवा विवाह प्रारभ कराय और हिन्दुओ म बुराइयो को दूर करन के लिए सघष किया। दुर्भिक्ष राहत काय और शिक्षा क्षेत्र मे इसकी सेवाए सराहनीय रही।[3]

---

1 पाल के० टी० द ब्रिटिश कनेक्शन विद इण्डिया (1927), पृ० 39।

2 सीतारमय्या, पी० द हिस्ट्री आफ कांग्रेस भाग 1 पृ० 11।

3 नायडु वाला अध्याय देखें।

थियोसोफिकल सोसाइटी थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना एक रूसी महिला हेलाना पट्रोना ब्लावटस्की तथा एक अमेरिकी सज्जन कर्नल हेनरी स्टील ओल्काट द्वारा नवम्बर 1875 म न्युयाक मे की गयी। इस सोसाइटी के प्रमुख सिद्धात थे, (1) वर्ग, धर्म, लिंग, जाति और रगभेद पर अनाधारित मानव मे विश्व-बंधुत्व की स्थापना। (2) धर्म, दर्शन और विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहन और (3) अनजान प्रकृति नियमो की खोज और मानव में छिपी शक्ति का पता लगाना। एच० पी० ब्लावटस्की ने घोषणा की, "थियोसोफियो का कार्य मनुष्य के हृदय और समझ को दान, न्याय और उदारता के समक्ष खोलना है।"[1]

इस सोसाइटी के संस्थापको को स्वामी दयानद ने भारत मे आने और बस जाने के लिए आमत्रित किया जिसे उन्होंने स्वीकार किया। 1882 मे उन्होने मद्रास के निकट अदयार म इसका केन्द्र स्थापित किया। एक समय तो आर्य समाज और सोसाइटी को आपस मे मिलाने का भी प्रयास चला पर सोसाइटी समाज के जातीय भाव को नही पचा सकी और वह अलग ही बनी रही। 1893 मे एक अंग्रेज महिला एनी बेसेन्ट भारत आयी और उन्होने सोसाइटी का सदस्यत्व स्वीकार कर लिया। एनी बेसेन्ट ने भारत के भूत मे विश्वास को जगाया और यह घोषणा की कि हिन्दू विचारधारा विश्व दर्शन की सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। वे अति उत्तम भाषण देती थी और अच्छी लेखिका भी थी। अपने भाषणो और लेखनी के माध्यम से उन्होने भारतीय उदासीनता को समाप्त किया और भारतीयो को और बडे काम के लिए तैयार किया। उन्होंने कहा कि भारतीयो को अतर्राष्ट्रीय घटनाओ मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी चाहिए।

रामकृष्ण मिशन रामकृष्ण मिशन ने अपनी प्रेरणा रामकृष्ण (*1836 86*) से ग्रहण की जिनके समर्थक और शिष्य स्वामी विवेकानद ने अपने गुरु का विश्व सदेश दूर-दूर तक फैलाया जिसे 'प्रबुद्ध भारत का सदेश' कहा जाता है। स्वामी विवेकानद "19वी सदी के अंतिम 25 वर्षों के शक्तिशाली पुनरुत्थानवादी शक्ति थे। पर आधुनिक वेदान्तवाद के अग्रदूत थे जिन्होने यह बताया, दुनिया माया नही है बल्कि मानव प्रगति की दिशा मे एक चरण है। 1893 मे शिकागो मे विश्वधर्म ससद म उन्होंने अपने अति उत्तम भाषण से लोगो को चकाचौंध कर दिया।"

मिशन की स्थापना औपचारिक रीति से विवेकानद ने किया। ये कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक थे और ये अपने धनी मा बाप के बिगडे बेटे। यही 1 मई 1897 म स्वामी हो गये।

---

1 थियोसोफिकल रिविउ जनवरी 1970 पृ० 2 (वाराणसी)।

2 रघुवशी पूर्वोद्धृत, पृ० 29।

भारत म सम्थापित धार्मिक आन्दोलन इस तरह सामने आये। इनम स सभी ने भारत के भूतकाल से प्रेरणा ग्रहण की और भारत को जगाने का प्रयास किया तथा भारत म राष्ट्रवादी आदोलन को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया। आर्य समाज को छोडकर जो अनुदारवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता था अन्य सभी पथ पुनआमपश्चिमी सस्कृति की अच्छाइया को स्वीकार करते थे और पूर्व पश्चिम म सामजस्य का प्रयास करते थे।

इन सगठनो के अतिरिक्त कुछ लोग भी व्यक्तिगत स्तर पर इसी दिशा म काय किया। सच तो यह था कि प्रारभ म समाज सुधार आदोलन व्यक्ति प्रधान ही रहा। इसका नेतृत्व बगाल ने किया। यहा म शशिपद बैनर्जी और ईश्वरचद्र विद्यासागर न कुछ सामाजिक बुराइयो के विरुद्ध आवाज उठायी। महाराष्ट्र म यही काम रानाडे, मालाबारी और नारायण चन्दावरकर न किया, जबकि दक्षिण म रघुनाथ राव, वीरेशलिगम पन्तुलु और नटराजन सामने आये। "व्यक्तियो न धीरे धीरे अपने को हर प्रान्त म समूह म परिवर्तित कर लिया और यदि समाज ने किसी बुराई को समाप्त करने मे सहयोग नही किया तो वे उसम जुट गये।"[1] इन सभी सुधारो का एक प्रिय विषय जाति प्रथा की बुराई करना था और साथ मे भारतीयो म एकता स्थापित करने की चेष्टा। इससे राष्ट्रवाद के उत्थान का अवसर प्राप्त हुआ।

कला-क्षेत्र मे पुनर्जागरण मे देश पीछे नहीं रहा। "दूसरे क्षेत्रो की भाति इस क्षेत्र मे भी पश्चिमी तौर तरीक स भारतीय विषयो पर काय करने की चेष्टा हुई। इसका नेतृत्व ट्रावनकोर और पूना न किया। इसका शीघ्र ही बगाल ने विरोध किया जिसन बुद्ध काल की परपरा पर चलने का आह्वान किया यह एक अति साहस पूर्ण कदम था जिसके फलस्वरूप विभिन्न कालो के विभिन्न कलाओ क क्षेत्र मे अध्ययन प्रारभ हुआ।' इस तरह इस क्षेत्र म भारत का शानदार भूत काल सामन आ गया जिसने भारतीय राष्ट्रवाद को आगे बढान मे सहायता प्रदान की।[2]

भारतीय प्रेस ने भी इसम अहम भूमिका अदा की। इस क्षेत्र म नेतत्व किया हिकी ने जिसने भारत मे 1780 मे बगाल गजट' नामक प्रथम सप्ताहिक समाचार पत्र निकाला। उसका अनुकरण और लोगो ने किया और कलकत्ता गजट, इण्डियन वर्ल्ड अखबारो का ज म हुआ। ये अखबार वैसे अग्रेजो के द्वारा अग्रेजी मे छापे जाते थे पर अपने उदारवादी विचारो स ये भारतीयो को प्रभावित करत थे। शीघ्र ही वे भी मैदान मे आ गये और अमत बाजार पत्रिका, इडियन मिरर, केशरी,

1 पान पूर्वोद्धृत पृ० 54।
2 मजूमदार सीप्वाय म्युटिनी एड रिवोल्ट आफ 1857।

हिन्दू और बगाली का प्रकाशन प्रारभ हुआ। भारतीय प्रेस ने बहुत सी कठिनाइया झेलीं, सरकार की दबावपूर्ण नीति के बावजूद आगे बढा और "दजनो इच्छुक पर अपढ लोगो की भीड स्टेशनरी की दूकान पर एक अखबार पढने वाले से समाचार सुना करती। यह दृश्य आम हो गया था।"[1]

इस नय युग की देन के रूप मे जो प्रमुख लेखक सामने आये और जिन्होने विचार को प्रभावित किया वे थे, बकिमचद्र चटर्जी, केशवचद्र सेन, हेमचद्र और रवीन्द्रनाथ टगोर। वकिम के वन्दे मातरम् के गीत ने जिसको जनता न राष्ट्रीय गीत के रूप मे स्वीकार किया और जिसके कारण उनपर मार पडी और उन्हे कैद किया गया, भी ब्रिटिश के विरुद्ध भारतीयो को सगठित करने मे भूमिका अदा की।

नकारात्मक ब्रिटिश देन—पर इसके साथ ही ब्रिटिश की कुछ नकारात्मक देने भी थी जिन्होन भारतीयो को उनके विरुद्ध कर दिया। पर इसने भी भारतीयो मे एकता पैदा करन मे कम सहायता नही की।

कुछ भारतीय गवनर जनरलो की निरकुश और साम्राज्यवादी नीतियो ने देश में जागरूकता को जन्म दिया। बैनर्जी ने लिखा है कि, "राजनैतिक प्रगति के विकास म खराब शासक प्राय मददगार होते हैं।" लाड लिटन एक ऐसा शासक था जिसकी कुछ नीतिया ने भारतीय बुद्धिजीवियो मे जो तहलका मचाया वह "वर्षों का विरोध भी शायद ही उतना फलीभूत होता।"[2] दक्षिण भारत के अति निदय दुर्भिक्ष की पृष्ठभूमि म उसका अति महगा दिल्ली दरबार, उसका महगा और आक्रामक प्रथम अफगान युद्ध, लकाशायर के उद्योगपतियो को प्रसन्न करने हेतु उसका कपास पर से आयात कर का हटाना, उसका वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट जिसने वर्नाक्युलर समाचार-पत्रो पर कई प्रतिबध लगा दिय एव उसका आर्म्स ऐक्ट जिसके अतगत केवल भारतीयो का विना लाइसेन्स के हथियार लेकर चलने पर प्रतिबध लगा दिया गया इन सभी न जनमत को बिगाड दिया। केवल लाड लिटन के आर्म्स ऐक्ट ने, "अविश्वसनीयता और सन्देह की नीति का प्रारभ किया जिसकी आवश्यकता नही थी और जिसका हमारी जनता न विरोध भी किया। इसने हम पर एक जातीय हीन भाव लाद दिया।"

रिपन एक उदार शासक था जिसके भारतीयो के प्रति उदार विचारो ने भारत म युरोपीय समुदाय का उसे कोप भाजन बना दिया। उसके इल्बट बिल ने जिसके अतगत भारतीय न्यायाधीशो को यूरोपीयो का भी मुकदमा देखने का अधिकार प्रदान कर दिया था, युरोपीय वकीलो, व्यापारियो, बागान मालिकानो और सपादको का विरोध प्रारभ करा दिया। इन लोगो ने सदाचरण और उदारता

1 मजूमदार सीप्वाय म्युटिनी एण्ड रिवोल्ट आफ 1857।
2 बनर्जी ए नेशन इन मेकिंग पृ० 63।

का तार पर रखकर उन पर गालियो की बौछार तक की। एस० एन० बैनर्जी ने लिखा है कि ऐसा माहौल था कि, "कोई भी आत्मसम्मान वाला भारतीय इस भीषण आदोलन मे सुस्त नही बैठ सकता था। यह देशभक्ति के कर्त्तव्य निर्वाह करने वालो के लिए एक पुकार थी जो इसकी महत्ता समझते थे।"[1]

इसके अतिरिक्त 1857 के विद्रोह के उपरान्त जातीय सघर्ष ने उग्र रूप धारण कर लिया। यूरोपीय भारतीयो को "आधा गुरिल्ला और आधा नीग्रो" पुकारते और उन्हे "पत्थर-पूजक और बास पर झूलती हुई मधुमक्खी कहकर" उनकी अवहेलना करते। जी० टी० गैरेट ने लिखा है कि, 'ब्रिटिश एक के बाद एक अनेक भारतीयो की हत्या करते जाते और उनके विरुद्ध अत्याचार करते जाते थे। इसके लिए या तो उन्हे दडित नही किया जाता था या पूरे यूरोपीय समुदाय की माग पर उनके ऊपर हल्का अर्थ दड आदि कर दिया जाता।"[2] एक यूरोपीय का जीवन कई भारतीयो के बराबर माना जाता। वे कहते कि भारतीय केवल भय की भाषा जानते हैं। जकारिया ने लिखा है कि, "इगलण्ड के भारत से सबधो पर अविश्वास का पर्दा पडना प्रारभ हो गया है। इन लोगो ने एक बार विद्रोह किया था और आतकपूर्ण अत्याचार किया था। कोई कैसे सोच सकता था कि वे पुन षडयन्त्र नही करेंगे।"[3]

फिर भारतीय पढे लिखो मे नौकरी की समस्या थी। सभी प्रमुख स्थान यूरोपीय हथिया लेते थे और भारतीय "भू दासो, लकडी काटने वालो और पानी भरने वालो से बेहतर हालत मे नही थे। केवल नव स्थापित मध्य वर्ग, बुद्धिजीवी लोग ही विश्वस्त बने रहे और शेष "ने नेताओ के नेतृत्व मे अपने को सगठित कर लिया जिन्हे बाद के इतिहास को देखकर उदार और पराकाष्ठावादी कहा जा सकता है।"[4]

पर ब्रिटिश शासन की सबसे अनादरणीय बात उसके द्वारा इस देश का आर्थिक शोषण था। ब्रिटिशो के यहा आगमन से पूर्व गाव सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक दृष्टि से एक पूर्ण इकाई था। गाव की मिट्टी खेतिहर की समझी जाती थी और वहा पर इसके अतिरिक्त "कोई अवधारणा ही नही थी कि भूमि का मालिक किसान के अतिरिक्त भी कोई हो सकता है।"[5] पर शीघ्र ही यह

---

1 बनर्जी ए नेशन इन मेकिंग पृ० 65।
2 गरेट, जी० टी० ऐन इडियन कमेन्ट्री, पृ० 116 17 —दत्त ड्ब्लू० एस० इण्डिया अडर रिपन पृ० 46 74 को भी देखें।
3 जकारिया पूर्वोद्धृत पृ० 158।
4 बनर्जी पूर्वोद्धृत, पृ० 66।
5 मुकर्जी, राधाकमल लैंड प्राबलम्स इन इण्डिया पृ० 30।

प्रथा तोड दी गयी और जमींदारो का एक नया वग तैयार कर लिया गया जिसने ब्रिटिशो के दुहरे उद्देश्य की पूर्ति की—प्रथम तो इसने भू राजस्व एकत्रित करने के लिए एक सस्था का काय किया और दूसरे ये ब्रिटिशो के लिए एक अति विश्वस्त वग तैयार हो गया। जहा साधारण बात थी अब वहा जटिलता आ गयी। जमीदारो का अत्याचार और उनके विचित्र ढग के शासन ने किसानो का जीवन पहले से अधिक महगा बना दिया। इसके अतिरिक्त भू राजस्व म बढोतरी एव आम बात हो गयी जो फसल तैयार होने के समय धन या अनाज के रूप मे ही ली जाने लगी। इस सबने किसानो के आर्थिक जीवन पर प्रभाव डाला।

ब्रिटिश प्रशासन का भारतीय उद्योग पर भी प्रभाव बडा फायदे का नही रहा। भारत म ब्रिटिशो के आगमन से पहले जितनी ढग से खेती होती थी उतने ही ढग से 'औद्योगिक काय' भी होते थ। इसका प्रमाण 1840 मे ससदीय छान बीन के समक्ष माट गोमरी मार्टिन का वह असरदार वक्तव्य है जिसमे उसने बताया कि "उसके यहा युगो से तरह तरह के वस्तु निर्माता चले आये है और जहा उन्ह उचित अवसर मिला है कोई भी राष्ट्र उनके सामने खडा नही हो पाया है।' यह सच था कि 'अग्रेज उत्पादको न प्रारभिक 18वी सदी म ईस्ट इण्डिया कपनी के विरुद्ध बहुत कहा और किया क्योकि उत्तम भारतीय वस्त्र उसके लिए खतरनाक स्पर्द्धा उत्पन्न किये हुए थे। "धीरे धीरे ईस्ट इण्डिया कपनी को समझाया गया और 1720 मे अग्रेज व्यापारी "भारतीय व्यापारियो का सिल्क और छपे वस्त्र कौलिको को इग्लैण्ड मे पूणतया रोकने मे सफल हुए और भारतीय वस्त्रो पर धीरे धीरे बाहर भेजने वाले वस्त्रो पर कर बढाया जाता रहा।[1] अन्य बहुत से काय ब्रिटिशो ने किये जिसने ब्रिटिश उद्योग को प्रभावित किया। और अतत प्रकट हुई 19वी सदी की औद्योगिक क्राति जिसने भारत के बाजारो म मशीनो से बनी सस्ती वस्तुओ का अम्बार लगा दिया और जो भी भारतीय उद्योग शेष रहे थे व पूणतया स्वतत्र व्यापार की नीति के नाम पर बबाद हो गये।

भारत मे सरकारी प्रशासन मशीनरी पर भी पयाप्त धन व्यय हो जाता था जो सबका सब इग्लैण्ड भेज दिया जाता था। भारत मे लगी अग्रेजी पूजी पर आने वाला कर, इण्डिया ऑफिस पर होने वाला व्यय, और अग्रेजी अधिकारियो को दी जाने वाली वृत्तिया—सभी अति ऊचे बोझ थे। साथ ही जैसा नेहरू ने कहा, "भारत को अपनी विजय पर स्वय व्यय भार वहन करना पडता है। ईस्ट इण्डिया कपनी से जो चीजें ताज को प्रदान की जाती ह उसका खच बोझ भी उसे ही ढोना पडता है। बर्मा मे ब्रिटिश साम्राज्य बढाना हो अथवा अफ्रीका, फारस पर आक्रमण करना हो तो भारत को अपनी सुरक्षा भारतीयो से ही करने के लिए धन व्यय

1 देखें, दत्त इंडिया टुडे पृ० 27 एव 104।

करना पड़ता है। इसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अड्डा ही नहीं बताया गया है जिसके लिए इसे कुछ प्राप्त नही होता। बल्कि इसके अतिरिक्त इग्लैण्ड म ब्रिटिश सेना के प्राशिक्षण के लिए इसे 'कैंटोनेशन' शुल्क देना पडता है। सच म भारत को ब्रिटेन के अ य तरह के व्ययो को भी वर्दाश्त करना पडता है जसे चीन और फारस म कूटनीतिक और कासलर काय के लिए किया जाने वाला व्यय एव इग्लैण्ड से भारत तक खीची जाने वाली तार लाइन का व्यय, ब्रिटिश मेडीटरेनियन फ्लीट पर आनेवाले व्यय का कुछ भाग, और यहा तक कि लदन म तुर्की के शासक के स्वागत म होने वाला व्यय।"[1]

भारत से इग्लण्ड चले जाने वाले धन की ओर कल्पना 1773 के ससदीय रिपोर्ट से की जा सकती है जिसमे यह बताया गया कि उस समय प्रति वष बगाल के राजस्व का 1/3 भाग इग्लण्ड चला जाता था। यह धन उस 1,00 000 पौण्ड के अतिरिक्त था जो प्रतिवष कपनी के चीन म व्यापार की क्षतिपूर्ति के लिए भेजा जाता था। एक एक दिन बीतने के साथ यह आर्थिक बोझ बढता ही गया। 1880 मे सर विलियम हटर ने उचित ही लिखा कि इससे "भारत के हृदय का खून ही निकल रहा था। हटर ने आगे लिखा कि इस वष तक सचमुच "करोडो भारतीयो को ठीक से भोजन भी नही मिलता था।"

राष्ट्रवाद की दिशा मे आगे बढने मे 1857 के विद्रोह ने भी सहयोग दिया। यदि राष्ट्रवाद विद्रोह का कारण नहा था तो भी यह इसका परिणाम अवश्य था। जब हि दू और मुसलमान एकजुट होकर लडे और जब बहादुरशाह ने यह घोषणा की कि वह राजाओ के एक सगठन के पक्ष मे अपना पद त्यागने को तयार हैं तो उस समय यह निश्चित ही स्पष्ट हो गया कि भारत एक राष्ट्र है। इसके अतिरिक्त यहा के लोग चाहे जिस जाति या बिरादरी के हो वे सभी भारतीयो से ऊपर हैं और यह कि देश के हित मे सभी हित ताक पर रख दिये जाते हैं। जब विद्रोह समाप्त हो गया तो 1861 का कौंसिल ऐक्ट पारित किया गया और इसने एक ऐसी व्यवस्था का प्रारभ कर दिया कि भारत को स्वतत्रता प्रदान करने को छोड कुछ भी प्राप्त करत उन्हे सतोष न होता।

कुछ बडे नेताओ की उपस्थिति और प्रेरणा ने राष्ट्रवाद को आगे बढाने मे सहायता की। दादा भाई नौरोजी ' मानवता के सेवक एक सीधे-सादे पर बहादुर व्यक्ति चिन्तामणि[3] की भाषा म गोपाल कृष्ण गोखले "एक सीधे अपनी बात को प्रस्तुत करने मे माहिर व्यक्तित्व', तिलक "भारतीय असतोष के जनक",

1 नेहरू, जे० एल० द डिस्कवरी आफ इडिया पृ० 252।
2 देखें फिशर एफ० वी० इडियाज साइलेन्ट रिवोल्युशन पृ० 37 38।
3 चिन्तामणि पूर्वोद्धृत पृ० 356।

एनी बेसेंट "एक भारतीय ढोल जिन्होंने मोने भारत वासियों को जगा दिया और मातभूमि की सेवा के लिए उन्हें प्रेरणा दी', अपने विषय मे उन्होंने स्वय ऐसा ही लिखा[1] और लाला लाजपत राय जैसे उत्साही व साहसी नायक।

इन परिस्थितियों मे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने धीरे धीरे कार्यारभ किया, फिर इसने प्रगति की ओर शक्तिशाली हो गया। सुधारका के जनक राजाराम मोहन राय ने 1829 मे एक हस्ताक्षर अभियान चलाया जिसमे ससद से पारित उस जूरी एक्ट का विरोध किया गया। जिसमे योरोपीय और भारत मे धम परिवर्तित ईसाइयो के मुकदमे देखने से हिन्दू और मुसलमान न्यायाधीशो को रोका गया था। इन दो वर्गों के लोगो पर यह प्रतिबंध लगाया गया था कि वे अपने धम के लोगो के मामले म ग्रैण्ड जूरी के सदस्य बनाये जा सकते हैं।

टैगोर परिवार ने भी लोगो की रुचि अपने राजनतिक समस्याओ की ओर ले जाने म सहायता की। दोनो—पिता द्वारका नाथ और पुत्र देवेन्द्रनाथ ने अपनी शक्ति का प्रयोग राष्ट्रीय जागरूकता पैदा करने में की। द्वारकानाथ के ही प्रयास से 1837 म जमीदार एशोसियेशन का सगठन हुआ जिसम इंग्लिशमैन के सपादक डब्लू० सी० हरी को एक सचिव पद प्रदान किया गया। यह एशोसिएशन बगाल, बिहार और उड़ीसा के जमीदारो का था और इसका उद्देश्य सरकार की राजस्व नीति से आत्म रक्षा था और साथ ही य भारतीयो के लिए कुछ राजनैतिक अधिकार भी चाहते थे। इतिहास के पाठको को यह स्मरण रखना चाहिए कि यह वह काल था जब भारतीय बुद्धिजीवियो का आधुनिक वग अभी पैदा भी नही हुआ था और इस कारण जो सबसे सही तत्त्व सगठित राजनैतिक आदोलन के योग्य था वह जमीदारो का ही था। यह वग अपनी विचित्रताओ के कारण ब्रिटिश प्रशासकीय प्रथा द्वारा ही उत्पन्न किया गया था।

उस काल के इन एशोसियेशनो मे, जिनमे राष्ट्रीय भाव था, ब्रिटिश इण्डियन एशोसिएशन एक था। इस सगठन को बैथम के उस बिल के गिर जाने से शक्ति प्राप्त हुई थी जिसमे ब्रिटिश प्रथा के ऊपर मुकदमे चलाने के लिए सुप्रीम कोट के अधिकार स्थानीय न्यायालयो को सौंपे जाने की सस्तुति की गयी थी। इसकी स्थापना पहले 1839 म लदन म हुई। इसकी स्थापना एक अच्छे उद्देश्यो वाले अग्रेज जाज टाम्सन ने की जो 1843 मे द्वारकानाथ टैगोर के और बगाल इडिया सोसाइटी के आमत्रण पर भारत आया। इस सस्था को बाद मे 1851 जमीदार एशोसिएशन के साथ मिला दिया गया और इसका नाम ब्रिटिश इडियन एशोसिएशन रख दिया गया। इससे सबद्ध व्यक्ति थे—राय गोपाल घोष, हरीशचद्र मुकर्जी, राजेन्द्रलाल मित्र और पियरेचन्द मित्तर। देवेन्द्रनाथ टैगोर

1 बसेण्ट पूर्वोद्धत, पृ० 77।

के प्रयास से इसकी शाखायें शीघ्र ही मद्रास, बम्बई और अवध में स्थापित हो गयी। इसकी सदस्य संख्या भी बढ़ाई जाने लगी।

इस संस्था का उद्देश्य देश में संवैधानिक सुधारों को आगे बढ़ाना था और भारतीयों के लिए राजनैतिक अधिकार प्राप्त करना था। इस संस्था ने ताज को प्रार्थना पत्र भेजे जिसमें भारत में लेजिस्लेटिव कौंसिलों की स्थापना की माँग की गयी, शिक्षा को प्रोत्साहित करने को कहा गया और भारतीय उद्योगों को आगे बढ़ाने की माँग की गयी। इस एसोसियेशन का 'हिन्दू पैट्रियाट' नामक अपना समाचार पत्र था जिसके संपादक अंग्रेजी भाषा के विद्वान हरीशचन्द्र मुकर्जी थे। उन्होंने लार्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति की कटु आलोचना की और 1857 के विद्रोह को कुछ भटके देश प्रेमियों का कार्य बताया। इस एसोसियेशन को पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त थी और कहा जाता है कि 1853 के चार्टर एक्ट में इनकी कुछ मांगों को स्वीकार कर लेने की चेष्टा की गयी थी।

बंगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी ऐसे एसोसियेशन स्थापित किये गये। 1852 में गुजुलु लक्ष्मी नरासु चेट्टी ने मद्रास में मद्रास नेटिव एसोसियेशन की स्थापना की जिसने ब्रिटिश संसद के पास भेजने के लिए एक लंबा प्रार्थना पत्र तैयार किया। इसमें शिक्षा क्षेत्र में सुधार, स्थानीय स्वशासन, सिंचाई की व्यवस्था और सड़कों आदि के निर्माण की मांगें की गयी।

1852 में बम्बई में बाम्बे एसोसियेशन की स्थापना की गयी जिसे जगन्नाथ शंकर सेठ ने प्रारंभ किया। बाद में बम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिल के स्थापित होने पर वे इसके गैर सरकारी सदस्य बनाये गये। इस संस्था ने भी जनता के राजनैतिक अधिकारों के लिए संघर्ष किया और 1853 में चार्टर ऐक्ट पास होने के समय प्रार्थना पत्र भिजवाये। बाद में यह एसोसियेशन बाम्बे प्रसीडेन्सी एसोसियेशन में मिला दिया गया जिसे सर दिनशॉ वाचा और सर फीरोजशाह मेहता के प्रबुद्ध नेतृत्व का लाभ प्राप्त हुआ।

1870 में महादेव गोविन्द रानाडे के नेतृत्व में सार्वजनिक सभा पूना में प्रकट हुई। सी० वाई० चिन्तामणि ने लिखा है कि, "रानाडे बुद्धि में प्रबल थे, अपूर्व क्षमता वाले थे और विस्तृत ज्ञान वाले थे और वे गहन विचारक व शुद्ध देशभक्त। संपूर्ण जीवन सरकारी सेवा में उनका बना रहना उनकी असुविधा थी, पर फिर भी वे दृढ़ राजनैतिक कार्यकर्त्ता, एवं धर्म सुधारक और एक समाज सेवक थे। वे भारतीय अर्थशास्त्र पर आधिकारिक विद्वान, एक महान शिक्षाविद, एक प्रेरक और युवा लोगों के पथ प्रदर्शक थे जो उनके पीछे पड़ा हुआ था।"[1] बी० जी० तिलक, जी० के० गोखले और जी० वी० जोशी सभी ने अपना प्रारंभिक प्रशिक्षण रानाडे के

1 चिन्तामणि पूर्वोद्धत पृ 236।

नेतत्व मे ही प्राप्त किया और जिन्होंने देश को राजनीति के क्षेत्र मे स्वय प्रशिक्षण प्रदान किया। सावजनिक सभा के उद्देश्यो म सरकार के सवैधानिक सुधार भी आते थे।

इसके अतिरिक्त सावजनिक सभा की ही तरह की एक सस्था डेकेन सभा भी स्थापित की गयी जिसे मूल प्रेरणा रानाडे और गोखले से प्राप्त हुई थी। गोखले इस सभा के कइ वर्षों तक सचिव रहे थे।

भारत के महान वद्ध व्यक्ति दादा भाई नौरोजी ने 1866 मे लदन मे ईस्ट इडिया एशोसियेशन की स्थापना की जिमका उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय समस्याओ के प्रति इग्लैंड की जनता की सहानुभूति प्राप्त करना था। नौरोजी के विषय मे सी० वाई० चिन्तामणि ने लिखा है, "इग्लैंड और भारत मे पूरे 61 वष की लबी अवधि तक, दिन रात अच्छी और बुरी दोनो परिस्थितिया मे, अनुत्साह की स्थिति मे भी जिसमे साधारण आदमी का दिल ही बैठ जाता, दादा भाई नौरोजी ने बिना पथ बदले पूण नि स्वाथ भाव से तथा पूण शक्तिमय विश्वास से जो भारत के युवा लोगो के लिए भी चुनौती बन गया, मातृभूमि की सेवा की।"[1] इस एशोसियेशन ने, एस० एन० बैनर्जी जैसे युवा लोगो को जो इग्लैंड मे विधि के छात्र थे, भारत मे उत्तरदायी सरकार की स्थापना की माग रखने के लिए एक स्थान प्रदान किया।

पर ये सभी एशोसियेशन केवल स्थानीय थे जिन्होंने राष्ट्रीय सगठन के लिये पथ प्रशस्त किया। इस मामले मे बगाल के प्रान्त ने नेतृत्व लिया। 1875 मे एस० एन० बैनर्जी ने इडिया एशोसियशन की स्थापना की। वह शेर दिल व्यक्ति थे जिन्होंने जनता को राजनैतिक समस्याओ से परिचित कराने के लिए पूरे देश का एक कोने से दूसरे कोने तक दौरा किया। जब अपनी जमीदारी प्रवृत्ति और नेतत्व के कारण ब्रिटिश इडियन एशोसियशन जन आकाक्षाओ की पूर्ति नही कर सका और जब इसी उद्देश्य के लिए स्थापित बगाल नेशनल लीग भी कोई सफलता नही प्राप्त कर सकी तो इस एशोसियेशन की स्थापना की गई। जल्दी ही इस सस्था से केशव चद्र सन, आनद मोहन बोस और द्वारकानाथ गागुली जुड गये।

इस एशोसियेशन का उद्देश्य था (1) जनता म राजनतिक जागरण पैदा करना और (2) भारत के विभिन्न जातियो विशेषकर हिदुओ और मुसलमानो को एक निश्चित योजना और उद्देश्य के लिए तैयार करना। इस तरह यह वह पहला सगठित एशोसियेशन था जिसने सपूण देश के एशोसियेशन होने की कल्पना की और इस कारण सत्यता मे यह इण्डियन नेशनल काग्रेस की स्थापना की एक प्रेरक सस्था थी।

लाड सैलिसबरी की वह कारवाई, जिसमे इडियन सिविल सर्विसेज मे बैठने

1 चिन्तामणि पूर्वोद्धृत पृ० 236।

को भारतीयों की आयु घटाकर 19 वर्ष कर दी गयी, विरोध भाव पैदा करने का एक अच्छा मसाला बन गई। इसी कारण 1877 में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने बनारस से रावलपिंडी तक उत्तरी भारत का दौरा किया जिसका उद्देश्य भारतीय सिविल सर्विस में परीक्षा देने हेतु आयु का बढ़ाना था और इस परीक्षा का इंग्लैंड और भारत में साथ साथ आयोजन था। बनर्जी की "विजयिनी प्रगति ने उन्हीं की भाषा में यह स्पष्ट किया कि एक तरह के प्रशासन और शिक्षा के फलस्वरूप हमारे आदर्श पूर्ति की घड़ी आ गई है अर्थात् विभिन्न भारतीय प्रांतों द्वारा सामूहिक प्रयास द्वारा राष्ट्रीय उद्देश्यों और महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति।"[1] 1878 में एक ऐसी ही यात्रा उसने दक्षिण भारत की की। एक अखिल भारतीय स्मृतिपत्र तैयार किया गया जिसे संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाना था। एक तीक्ष्ण वक्ता लाल मोहन घोष को इंग्लैंड, वहां की जनता को तथा ब्रिटिश संसद को भारत की कठिनाइयों और समस्याओं की जानकारी करने के लिए भेजा गया।

"सच तो यह है कि लिटन और रिपन का काल राष्ट्रीय आंदोलन के बीज वपन का काल था।"[2] लार्ड लिटन का अति व्ययशील अफगान युद्ध और दरबार जिसे उचित ही "अति व्ययपूर्ण और ऊंचे ढोंग" का विशेषण प्रदान किया गया, बी० लोवट की नजर में उसके वर्नाक्युलर ऐक्ट ने "सरकार और यूरोपीय अधिकारियों के प्रति घृणा की भावना का जागरण किया तथा शासन करने वाली जाति तथा शासितों के बीच एक तीव्र विरोध भावना को जन्म दे दिया।"[3] और उसके आर्म्स ऐक्ट ने भारतीयों को बिना लाइसेंस हथियार रखना, धारण करना या उसके साथ यात्रा करना अपराध घोषित कर दिया' जो सुरेन्द्रनाथ के विचार से उनमें अविश्वास और संदेह का प्रारंभ था।"[4] इन सभी ने इण्डियन एशोसियशन की प्रगति में सहयोग ही प्रदान किया। और आश्चर्य तो यह था कि लार्ड रिपन के इल्बर्ट बिल ने यूरोपीय लोगों के संबंध में जो नियम बनाया उससे वह उनका कोप भाजन हुआ। इस प्रवृत्ति ने भी इस दिशा में कार्य को आगे बढ़ाया।

1883 में इण्डियन एशोसियशन ने कलकत्ता में एक राष्ट्रीय सम्मेलन किया जिसे देश के राष्ट्रीयता के आंदोलन में एक दिशा बदलने वाली घटना बताया जाता है। इस सम्मेलन में पंजाब, यू० पी०, मद्रास और बम्बई से प्रतिनिधि आये। यह तीन दिनों तक चला और इसका सभापतित्व आनन्द मोहन बोस ने किया और भारतीय राष्ट्रीय समस्याओं जैसे भारत की संसदीय सरकार एवं भारतीय

---

1 बनर्जी ए नेशन इन मेकिंग पृ० 46 51।
2 रघुवंशी वी० पी० एस० द नेशनलिस्ट मूवमेंट ऐण्ड थाट प० 43।
3 लोवट वी० हिस्ट्री आफ नेशनल मूवमेण्ट प० 22।
4 बनर्जी ऐ नेशन इन मेकिंग पृ० 50।

छात्रो को *विदेश औद्योगिक प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए भेजना आदि* पर विचार किया। यह सम्मेलन सचमुच "ही एक विचित्र नजारा था जिसके अत मे वहा पर उपस्थित सभी ने नयी रोशनी प्राप्ति का ही अनुभव नही किया वल्कि नवीन प्रेरणा भी ग्रहण की।"[1]

इडियन एशोसियेशन का सम्मेलन दिसम्बर 1885 म पुन पूण सफलता के साथ आयोजित किया गया। इसके अतिम दिन शीघ्र ही बम्बई मे प्रस्तावित इडियन नेशनल काग्रेस की प्रथम बैठक की घोषणा की गयी और प्रतिनिधियो न इस घोषणा का तालियो की गडगडाहट के बीच स्वागत किया। ऐशोसियेशन ने बाद मे काग्रेस का दिल से साथ दिया और धीरे धीरे राष्ट्रीय कारवाई काग्रेस के हाथ मे चली गयी।

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस

एक पद निवृत्त अग्रेज कमचारी एलेन आक्टेवियन ह्यूम के प्रयासो के फलस्वरूप *अखिल भारतीय काग्रेस का जन्म लाड डफरिन के काल मे दिसम्बर* 1885 मे हुआ। ह्यूम ने बगाल सिविल सर्विस मे 1849 मे काय करना प्रारभ किया और अपने उत्तम काय के कारण 1870 मे उसे भारत सरकार का सचिव पद प्रदान किया गया। इस पद पर वह अपने पद-निवृत्ति के काल तक बना रहा। 1880 मे उसे पजाब के लेफ्टीनेन्ट गवनर का पद भी प्रदान किया गया जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। इसके वाद वह शिमला मे बस गया जहा से उसने काग्रेस स्थापना के प्रयास का काम प्रारभ किया।

श्रीमती एनी बेसेन्ट[2] का कहना था कि काग्रेस की स्थापना का कुछ श्रेय थियोसोफिकल सोसाइटी को जाता है। पर इसकी स्थापना का आधार 19वी सदी से ही *प्रारभ होने वाले राजनैतिक आदोलन थे जिन्होने अब जड पकड ली थी।* विलियम वेडरबन के अनुसार ह्यूम को यह अन्दाज था कि 'वर्तमान सरकार जो निरकुशता के आधार पर विदेशियो द्वारा चलायी जा रही है अब जनता से अलग थलग पड गयी है।" इसीलिए वह लाड डफरिन से मिला जो उसके इस बात से सहमत था कि भारत मे एक राजनैतिक सगठन की आवश्यकता है जो "इगलैण्ड के सम्राट के विरोधियो की ही भाति' यहा भी विरोध की भूमिका अदा करे। वाइसराय ने ह्यूम से कहा कि यह आशा है कि भारतीय राजनीतिज्ञ 'प्रति वष एक साथ मिलेंगे और सरकार को यह वतायेगे कि उसके दोष क्या है और इसमे

1. मजमदार इण्डियन नेशनल इवोल्यूशन प० 45।
2 देखें हाऊ इडिया राट फार फ्रीडम प० 12।

सुधार कैसे किया जाय।"[1] या दूसरे शब्दों में उन्होंने एक ऐसी संस्था म सगठन का अनुभव किया कि जो भारतीय राजनीतिज्ञों की तीव्र महत्वाकांक्षा के लिए 'सुरक्षा कपाट' का काय कर सके। और यह उद्देश्य था जिसके लिये कांग्रेस सगठित की गयी।

पर ऐसे कुछ लेखकों के मत को स्वीकार करना कठिन होगा जसाकि डा० रघुवशी[2] ने भी लिखा है कि ह्यूम का इस सगठन को स्थापित करने का मूल उद्देश्य 'ब्रिटिश साम्राज्य को बचाना" था। हो सकता है वाइसराय की यह धारणा ह्यूम से बातचीत के समय रही हो पर ह्यूम का अतिम उद्देश्य इससे अलग था।

'ऐन ओल्ड मैन्स होप' नामक अपने पर्चे म ह्युम न अंग्रेजों को सबोधित करते हुए कहा, "सभी लोग खूब खायें और प्रसन्न रह क्या आप लोग इन असख्य लोगों की अनगिनत कष्ट गाथाओं को जानते हैं ? काम, काम, काम, भूख, भूख, भूख, बीमारी कष्ट, कठिनाइयां, हाय, यही, यही, यही उनके सक्षिप्त और कष्टमय जीवन की कुजी है।" पुन 1 माच 1883 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों को सबोधित एक पत्र मे उसने कहा, "चकि आज उच्च शिक्षित भारतीय समूह म से एक है, आप भारत के लिए स्वाभाविक रूप से बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और राजनतिक उत्थान मे सहयोग दे सकते हैं हमारे जैसे बहुत से विदेशी बेकार ही अपने बच्चों से प्यार करते हैं क्योंकि उनमे राष्ट्रीयता का नितात अभाव है और सही काम तो देश के लोग स्वय ही अपने लिए कर सकते हैं।' और फिर अप्रैल 1888 म इलाहाबाद मे दिया गया उत्तेजक भाषण जिसमे जनता के बीच यह जानकारी वसे ही फैलाने को कहा गया जैसे इग्लैंड म ऐन्टी कार्न लीग ने की थी। ये सभी बाते और काय ब्रिटिश साम्राज्य बचाने के लिए कांग्रेस स्थापना के सिद्धान्त मानने वालो के लिए कठिनाई पैदा करते हैं। इसी के फलस्वरूप भारत के ब्रिटिश अधिकारियो ने ह्युम को देश से वापस भेज देने की चेतावनी भी दी। अक्टूबर 1888 मे उत्तर पश्चिम प्रान्तों के लेफ्टीनेन्ट गवनर सर ए० कालविन न उसे चेतावनी से भरा 20 पष्ठो का एक पत्र लिखा जिसका उत्तर ह्युम न 60 पष्ठो म दिया।

पर फिर भी यह कहना अधिक होगा कि उस प्रारंभिक काल म ह्युम या किसी भी उसके साथी ने ब्रिटिश शासन को पूणतया समाप्त कर देने की कल्पना की होगी। उनका तात्कालिक उद्देश्य एक ऐसे सरकार की चाह थी जो भारत के लिए कुछ करे, इगलड के लिए नही। उसका अतिम उद्देश्य भारतीयों को एस ढग

1 वडरबन विलियम ए ओ ह्यूम, पृ० 122 31।
२ रघुवशी पूर्वोद्धृत पृ० 44 47।

से प्रशिक्षित करना था कि वे राष्ट्रीय स्तर पर अपनी समस्याओ को स्वय हल करें ।[1] और यदि यह सच था तो ब्रिटिश सरकार का अत पूव निश्चित था ।

जो भी हो, ह्युम की पुकार का भारतीयो ने अच्छा स्वागत किया । 1885 मे इसकी पहली बैठक बम्बई मे कलकत्ता के नामी बैरिस्टर डब्लू० सी० बैनर्जी की अध्यक्षता मे बुलाई गई और इसका नाम 'इण्डियन नेशनल युनियन' रखा गया । पर दादा भाई नौरोजी के परामश पर इसका नाम बदलकर 'इण्डियन नेशनल काग्रेस' रख दिया गया ।

काग्रेस के प्रथम प्रेसीडे ट ने अपने भाषण म इसके जो उद्देश्य बताये, वे थे—(1) व्यक्तिगत मैत्री और निकटता का, देश के लोगो के लिए काय करनेवालो के बीच, विकास जो पूण साम्राज्य मे हो । (2) राष्ट्रीय भावनाआ को सगठित करना और जाति, बिरादरी और प्रान्तो मे भेदभाव को दूर करना, (3) परिपक्व भारतीय विचारो को आधिकारिक रूप से एकत्रित करना जो देश के महत्त्वपूण मसलो से सबधित हो और (4) अगले 12 महीनो म देश के राजनीति और जनहित म क्या किया जाय उसके विषय मे कायपद्धति को निश्चित करना ।"

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की योजनाओ और प्रगति का 1885 से 1905 के बीच का इतिहास निश्चित चरणो पर आधारित होकर चलता रहा ।

इस काल मे काग्रेस ने पश्चिमी विचारो से प्रेरणा प्राप्त की और भारतीय समस्याआ के सबध मे प्रश्नात्मक छानबीन की, धीरे धीरे सुधार के सिद्धाता को पूरा किया और अपने उन उद्देश्यो को परिपक्वता प्रदान की ।

इस काल मे काग्रेस ने जिन उद्देश्यो के लिए काय किया वे प्रमुख रूप से ये थे—(1) सिचाई का विस्तार, (2) राजस्व मे उदारता, (3) भारत से बाहर अनाज न भेजा जाय, (4) कृषको को सूदखोर व्यापारियो से बचाना, (5) भारत मे उद्योग का विकास, (6) गरीबो पर प्रत्यक्ष कर मे कमी, (7) सरकार मे विदेशी तत्त्व को घटाना जिससे व्यय मे कमी आये, (8) शिक्षा का विकास, (9) कायपालिका को न्यायपालिका से अलग करना, (10) पुलिस सुधार, (11) विदशो म भारतीयो के हिता की रक्षा, (12) जनता के नागरिक अधिकारो और स्वतत्रता की रक्षा, (13) तीसरे काग्रेस मे सुरेन्द्र नाथ ने घोषित किया, "हम काग्रेस के झडे को फहरा रहे हैं, इनपर स्वर्णाक्षरो मे वह लिखा है जिसे कोई नही मिटा सकता, प्रस्ताव का साराश है—भारत के लिए प्रतिनिधित्वपूण सस्थाए ।"

काग्रेस की कायविधि प्रस्ताव पारित करना, प्रतिनिधि मडल भेजना और प्रायना

---

1 वेडरवन, डब्लू बायोग्राफिकल स्केच आफ ए० ओ० ह्यूम पृ० 20-21 ।

2 ऐन्ड्रूज सी० एफ० द राइज एण्ड ग्रोथ आफ काग्रस इन इडिया पृ० 3 27
बनर्जी ए० सी० इण्डियन का स्टीच्युशनल डाक्यूमेण्ट्स, भाग 2, पृ० 83, 84 ।

पत्र भेजना था। कांग्रेस की नियमित बैठकें होती थी और यह चेष्टा इसकी ओर से की जाती थी कि महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया जाय। और एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि इसने अपना कार्यक्षेत्र केवल भारत को ही न बनाकर यह भी चेष्टा की कि इंग्लैंड के लोगों की विचारधारा उनके मत से प्रभावित हो। 1887 में इसी तरह इंग्लैंड में दादा भाई नौरोजी के प्रयास से 'इण्डियन रिफार्म एशोसियेशन' की स्थापना हुई जिन्होंने इसी कार्य के लिए वहीं रहना प्रारंभ कर दिया। लेबर नेता चार्ल्स ब्रैडला ने इस एशोसियेशन का खुला समर्थन किया जिसके कारण संसद में उन्हें लोग "भारतीय सदस्य" पुकारने लगे। 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की 'ब्रिटिश कमिटी' इंग्लैंड में 1889 में स्थापित हुई जिसमें बहुत से अच्छे मतव्यों वाले अंग्रेज सम्मिलित हुए जैसे वाल्टर एस० बी० मक्लारेन, डब्लू० एम० केन और जार्ज युल। इस कमिटी ने 1890 में अपनी पत्रिका 'इण्डिया' नाम से निकाली जिसमें एक के बाद एक विलियम डिगबी, गार्डन हेवड और हेनरी काटन ने संपादक के रूप में कार्य किया। दादा भाई 1892 में ब्रिटेन के संसद सदस्य चुने गये। 1893 में भारतीय संसदीय समिति बनाई गयी जिसने सर विलियम वडरबर्न, डब्लू० सी० केन और लार्ड कनावर्ड ने कार्य किया। कुछ स्वतंत्र और लेबर सदस्यों का सहयोग प्राप्त कर इन्होंने संसद के समक्ष भारतीय समस्या का सही पक्ष प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की।

कांग्रेस के प्रति प्रारंभ में भारत सरकार का रुख मित्रतापूर्ण था जो धीरे धीरे विरोधी होता गया। इसके पहले सम्मेलन में कुछ प्रमुख अधिकारी जैसे भारत सरकार के मुख्य सचिव सर हेनरी काटन और सिविल सेवाओं के सर विलियम वेडरबर्न सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन में कुल 72 प्रतिनिधि आये थे। दूसरे सम्मेलन में जो 1886 में कलकत्ता में हुआ, 404 सदस्य आये थे। यहां पर कुछ का तो लार्ड डफरिन ने ही स्वागत किया था। इसके तीसरे सत्र में जो 1887 में मद्रास में हुआ 600 प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिनका स्वागत मद्रास के गवर्नर ने गवर्नमेण्ट हाउस में बड़ी शान से किया।

सरकार की प्रतिकूल दृष्टि

पर अब तक जब कांग्रेस की स्थापना करनेवालों ने अपने उद्देश्य को सामने लाने में अपने पर्चों और ह्यूम की कविता के माध्यम से सफलता अर्जित कर ली तो इसी समय से सरकार ने कांग्रेस के प्रतिकूल दृष्टि अपनानी प्रारंभ कर दी। सरकार ने इलाहाबाद के सत्र में बाधा डालने में, जो 1888 में होना था, कोई कोर कसर न रखी। साथ ही डफरिन ने मुसलमानों को यह कहकर फुसलाया कि वही उनका रक्षक है। मुसलमानों को एक कर कांग्रेस से अलग करने का प्रयास

किया जाने लगा। कहा गया कांग्रेस हिंदुओ का सगठन है। डफरिन को प्रसन्नता ही हुई कि उसकी नीति के कारण साम्प्रदायिक दगो की घटनाओ का प्रकोप हुआ। शिक्षित मुसलमानो के नेता सर सैय्यद अहमद ने इन परिस्थितियो मे अवसर पाकर कांग्रेस के एक मुस्लिम नेता बदरुद्दीन तैय्यबजी को 1888 मे एक पत्र लिखा, "मेरी यह समझ मे नही आता कि 'नेशनल कांग्रेस' का अर्थ क्या है। क्या यह मान लिया गया है कि भारत मे अलग-अलग जाति बिरादरी के लोग एक राष्ट्र के है, या (एक) राष्ट्र हो सकते है और उनका उद्देश्य और महत्त्वाकांक्षाए एक ही होगी? मैं सोचता हू यह असभव है आप गलत नामधारी कांग्रेस के कार्य को लाभकारी समझते हैं, पर मुझे यह कहते हुए दुःख है कि मैं उसे अपने सम्प्रदाय के ही लिए हानिकर नही मानता बल्कि पूरे देश के लिए ऐसा ही मानता हू।" तय्यबजी ने इस पत्र का उत्तर देते हुए लिखा कि कांग्रेस "एक ऐसी पढे लिखो की सस्था है जहा भारत से सभी एकत्रित होकर जिसमे सभी जाति बिरादरी के लोग सम्मिलित होते है और भारत के हित से सबधित प्रश्नो पर विचार करते है।"[1]

1885 मे कांग्रेस की स्थापना पर आशीर्वाद देते हुए डफरिन लगता है ह्यूम के तर्कों और गुह्य अनुभवो से बहुत प्रभावित हो गया था। पर बाद मे जब उसने देखा कि यह सस्था प्रशासकीय प्रकोपो का सगठित विरोध करने लगी है और अपने देश के सरकार मे देशवासियो का भाग मागने लगी है तो डफरिन तीव्र रूप से इसका आलोचक हो गया। उसने घोषणा की कि 20 करोड भारतीयो मे से आठ हजार से अधिक लोगो को विश्वविद्यालयीय शिक्षा नही प्राप्त है। उसने कहा, 'फिर मेरा प्रश्न है, कैसे कोई भला आदमी यह कामना करता है कि ब्रिटिश सरकार इस अल्पमतीय वर्ग के हाथ मे ऐसे बडे और विविध साम्राज्य का कार्य-भार सौंप देगी जिनकी सुरक्षा और हित के लिए वह ईश्वर के सामने ही नही सभ्यता के सामने भी उत्तरदायी है?'

सरकार का यह विरोध इस तरह 1888 के बाद बढता ही गया जबतक कि 1906 का वह काल नही आ गया जब कांग्रेस के कुछ थके हारे कांग्रेसियो ने दल से नाता तोडकर सरकार के प्रति विरोध की पराकाष्ठा की नीति अपना ली।

पर सरकार के विरोध के बावजूद कांग्रेस भारतीयो मे लोकप्रिय होती गयी। इसके इलाहाबाद के सत्र मे 1248 लोगो ने भाग लिया और यह सख्या प्रतिवर्ष बढती ही गयी। 1889 म कांग्रेस की जो सभा हुई, वह और आकर्षक इसलिए थी क्योकि इसमे ब्रिटिश ससद सदस्य मि० ब्रडला सम्मिलित हुए और उन्होंने प्रति-निधियो के समक्ष यह घोषणा की कि, "हम किसके लिए कार्य करें, यदि जनता न

1 गोपाल, एस० ब्रिटिश पॉलिसी इन इण्डिया (1858 1905), पृ० 159।
2 वही 175।

लिए न करें ? जनता ने ही हम जन्म दिया, इसने ही हमें विश्वास दिया, हम तो उसके लिए मर मिटेंगे। और मैं तो कोई भौगोलिक या जातीय सीमा मानता ही नही हू।"[1]

जहा तक इसकी सफलता का प्रश्न है हम जी॰ एन॰ सिंह के मतानुसार यह कह सकते हैं कि, "अपने प्रारम्भिक दिनो म कांग्रेस ने राष्ट्रीय जागरण, राजनैतिक शिक्षा और भारतीयो को एक करने म तथा उनमे राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने के सबध म महत्त्वपूण काय किया।' इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने एक खाई पाटने मे भी सफलता प्राप्त की "जो उदबुद्ध निरकुशता के बाह्य दीवार म दिखी थी।" प्रशासकीय समस्याओं के लिए नियुक्त ससदीय छानबीन और 1892 के इडियन कौंसिल ऐक्ट म भारतीयो को दिये गये राजनैतिक अधिकार कांग्रेस के ही लाभ मान जाते हैं। 1890 की सरकार की वह अधिसूचना कि सरकारी कमचारी कांग्रेस की सभा विजिटर की हैसियत से भी न देख सकें और 1894 का सरकार का प्रस्तावित निणय, जिसके अतगत वकीलो की राजनैतिक स्वतत्रता पर आघात किया गया था, कांग्रेस के जोर डालने पर समाप्त कर दिय गय।

पर कांग्रेस भारतीयो म प्रगतिवादियो को सतुष्ट करने मे सफल नही हुई जो 1892 के कौंसिल एक्ट द्वारा प्राप्त सुविधाओ पर हसते थे जो सच मे एक पाखड थे, तथ्य नही। यह कहा जाता है कि उन दिनो की कांग्रेस समाज के उच्च वर्गों से ही जुडी थी और उसका भारतीय जनता की समस्याओ से कोई नाता नही था जो अपढ और गरीब थी। इसने रियायतें ही मागी अधिकार नही और इसका उदय जनता के भीतर से न होकर बाहर से हुआ। इसी कारण इसमे से युवा और उत्साही तत्त्व, कांग्रेस के काबू मे नही रह सका और अतत यह तत्त्व, जिसे उग्रवादी नाम दिया गया, इससे अलग हो गया जिससे अपन अनुसार अपना काम कर सके।

डॉ॰ पट्टाभि सीतारमैय्या का कहना है कि फिर भी जब सपूणता से विचार किये जाने पर, "हम उन्ह उस दृष्टिकोण के लिए दोषी नही ठहरा सकते जो उन्होने भारतीय राजनीति मे सुधार के लिए नेतृत्व करके किया। जो ईंटा और गारा आधुनिक भवन के बनाने मे इसकी नीव मे प्रयोग मे लाया गया उसकी आलोचना तो सभी करेंगे।"[3]

1888 मे भारत से डफरिन पद मुक्त हुआ और उसे लार्ड डफरिन का आवा बना दिया गया। उसे सिंक पोर्ट का लार्ड वार्डेन भी नियुक्त किया गया। उसे

---

1 देखें बसेण्ट एनी हाऊ इण्डिया राट फार फ्रीडम पृ॰ 99।

2 सिंह, जी॰ एन॰ लैडमाक्स इन द इण्डियन का स्टीच्युशनल एण्ड नेशनल डेवलपमेण्ट।

3 सीतारमय्या पट्टाभि पूर्वोद्धत भाग 1 पृ॰ 79।

17

लार्ड लैन्सडाउन (1888-1893)

लैंसडाउन का मार्क्विस चौथ मार्क्विस हनरी का उत्तराधिकारी और सबसे बडा पुत्र था। वह 14 जनवरी 1845 को पदा हुआ। उसने ईटन और बलियाल मे शिक्षा प्राप्त की और वह 24 वष का ही था जब उसके पिता की मृत्यु हो गयी और वह हाउस आफ लाडस का सदस्य हो गया। लगभग उसी समय वह अवर ह्विप बना दिया गया। उसने 1869 मे अबरकान के प्रथम डयुक की पुत्री मौद हैमिल्टन से विवाह किया। वह 1872 से 1874 के बीच युद्ध का अडर सेक्रेट्री रहा और 1883 मे कनाडा का गवनर जनरल बनाया गया। 1888 मे इस स्थान से पद मुक्ति के बाद उसे भारत का वाइसराय बनाया गया।

आन्तरिक स्थिति

वाइसराय की जगह पर लैंसडाउन डफरिन के बाद आया। आते ही उसे आ तरिक क्षेत्र मे सबसे पहली समस्या भारतीय रुपय की अवमूल्यन की झेलनी पडी जिसन दश की आर्थिक स्थिति पर आघात प्रारभ कर दिया था। 19वी सदी के उत्तराद्ध मे कई नयी चादी की खानें खुदनी प्रारभ हो गयी थीं जिसने विश्व के बाजार मे इनकी बाढ ला दी। लैटिन युनियन राज्यो ने द्विधातुवाद का परित्याग कर दिया जबकि जमनी मे चादी का विमुद्रीकरण कर दिया गया। सोने को सिक्के का आधार मानने वाले देशो पर इसका बहुत प्रभाव नही पडा, पर चादी को आधार बनाने वाले देश, विशेषकर भारत जैसे देश जो सोने को आधार मानने वाले देशो के तमाम कजदार थे बहुत कठिनाई म थे। भारत जिसे इग्लैंड को तमाम धन देना था—और जिसका आधार भी सोना ही था वृत्ति के रूप मे, इण्डिया आफिस पर होने वाले व्यय के रूप मे, भारत मे लगे ब्रिटिश पूजी पर ब्याज के रूप मे उसे धन प्राप्त होना था। उसने चादी का दाम गिर जाने मे कठिनाई अनुभव की। 1873 से रुपये की कीमत बराबर गिर रही थी। 1873 मे इग्लण्ड म एक रुपये

का मूल्य 1 शिलिंग 3 पेंस था। 1892 आते आते यह मूल्य और घटकर 1 शिलिंग 1 पेनी रह गया। बर्मा के युद्ध ने भारत की आर्थिक स्थिति की पहले ही अच्छी खबर ली थी। पर रुपये के घटते मूल्य ने स्थिति को और कठिन बना दिया। आशा के प्रतिकूल घाटा होने लगा और भारतीय अर्थ व्यवस्था संबधी सभी भविष्यवाणियां झूठी सिद्ध होने लगी। उदाहरणार्थ 1892 में भारत सरकार को पता लगा कि इसे कर लगाकर साठ लाख स्टलिंग का अतिरिक्त धन जुटाना पड़ेगा जो मात्र व्यय के लिए पर्याप्त होगा। आयकर फिर से लगा दिया गया और पहले से ही अलोकप्रिय नमक कर और बढ़ा दिया गया। पर समस्या अब भी हल नहीं हुई। अतत गृह सरकार की संस्तुति से लार्ड लैंसडाउन को दूसरा रास्ता अपनाना पड़ा। बजट अनुमान से पता चला कि यदि भारत इग्लैण्ड को 1892-93 में 1873 74 के औसत के आधार पर भुगतान करे तो इसे देय धनराशि से 12,21,27,160 रुपये कम देना पड़ेगा। स्थिति की गंभीरता की कल्पना इससे की जा सकती है कि 1892-93 मे बजट में व्यय के लिए केवल 93 करोड़ रुपये[1] की व्यवस्था की गयी थी। अतर्राष्ट्रीय मानेटरी सम्मेलन ने जो 1892 मे ब्रुसेल्स मे इस समस्या के समाधान के लिए बुलायी गयी, किसी निष्कर्ष पर नही पहुच पायी। चान्सलर आफ एक्सचेकर लार्ड हर्सचेल के नेतृत्व मे एक समिति नियुक्त की गयी जिसने कुछ संस्तुतियां की और कुछ इससे बचने हेतु भी कदम उठाये गये।

पर समस्या अब भी काबू मे नही आ रही थी। अतत गृह सरकार की स्वीकृति से लार्ड लैन्सडाउन ने एक दूसरी विधि अपनायी जिसके अधीन भारतीय टकसालो मे असीमित सिक्के ढालने पर पाबंदी लगा दी गयी और सम्राट के सिक्के व रुपये मे 1 और 15 का अनुपात घोषित कर दिया गया। पर रुपये के मूल्य मे गिरावट के लक्षण मे अब भी कमी नही आयी। भारतीय अधिकारियों के लिए यह समस्या 1895 तक सर का दर्द बनी रही।

लैन्सडाउन के काल मे नवीन फैक्ट्री अधिनियम पारित किया गया जिसने 1881 के फैक्ट्री एक्ट मे कुछ परिवर्तन किये। इसके द्वारा स्त्रियों के काम के घंटे 11 निश्चित कर दिये गये। फैक्ट्रियो मे काम करने वाले बच्चों की आयु बढ़ाकर 7 से 9 कर दी गयी और उनके काम का काल 7 घंटे कर दिया गया। अब बच्चों को रात मे काम करने पर पाबन्दी लगा दी गयी। प्रत्येक मजदूर के लिए साप्ताहिक छुट्टी आवश्यक कर दी गयी।

उसके काल मे 1889 का आफीसियल सीक्रेट ऐक्ट पारित किया गया जिसके

1 देखें, मिश्रा जे० पी० द ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ इंडिया अंडर लार्ड लैन्सडाउन (1888 94), नयी दिल्ली, 1975, पृ० 136-137।

अधीन वे अखबार जो सरकार की अनुमति के बिना सरकारी विवरण छापते थे, या किसी कर्मचारी के गुप्त सूचना प्राप्त करने का प्रयास करते थे उन्हें दंडित करने की व्यवस्था की गयी। इस कानून की समाचार-पत्रों ने एक स्वर से भर्त्सना की और अमृत बाजार पत्रिका ने तो इसे "गला दबाने वाला एक्ट"[1] का नाम ही दे दिया।

1890 में इण्डियन सेन्सस ऐक्ट, पारित किया गया जिसके द्वारा सेन्सस अधिकारियों को कुछ ऐसे अधिकार प्रदान किये गये जिससे उनके काम होने में सहायता प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त जो लोग इस कार्य में बाधा डालें, उदाहरणार्थ घर की संख्या आदि मिटाना, उन्हें दण्डित किया जाय।

तत्कालीन नियमों के अंतर्गत एक व्यक्ति द्वारा अपनी 10 वर्ष से कम आयु की पत्नी के साथ काम-क्रिया चूंकि बलात्कार नहीं था इसीलिए उसे दंडित नहीं किया जा सकता था। पर 10 वर्ष की आयु की सीमा बहुत कम थी जिसके कारण असंख्य पूर्वकालिक कामक्रिया की सूचनाएं आती थी जिसमें अपरिपक्व लड़कियों को शारीरिक क्षति पहुंचती थी। 1890 में बंगाल में एक घटना के अन्तर्गत अपरिपक्वावस्था में दुल्हन के साथ कामक्रिया के कारण उसकी मृत्यु हो गयी और कानून उसके पति को एक वर्ष से अधिक की कैद की सजा नहीं दे सका। इसके कारण जनता में असन्तोष फैला। समकालीन समाचार-पत्रों ने भी इस मामले को उठाया। मिशनरी सम्मेलनों और न्यायाधीश के० टी० तिलंग की अध्यक्षता में हुई, 'इण्डियन नेशनल सोशल कान्फरेन्स' में इसके विरुद्ध उपचार कार्य की मांग की गयी। इन सबके दबाव के कारण सरकार ने 1891 में 'एज आफ कन्सेन्ट ऐक्ट' पारित किया जिसके अंतर्गत लड़कियों की विवाह की आयु 10 से बढ़ाकर 12 वर्ष कर दी गयी। नयी आयु सीमा अधिक तो नहीं थी पर इससे तमाम लड़कियों को काम क्रीडा की कठिनाइयों से बचाया जा सका।

1892 का इण्डियन कौंसिल ऐक्ट

1892 के कौंसिल ऐक्ट को पारित कराने वाली कौन सी परिस्थितियां थी, पहले उसके विषय में जानकारी आवश्यक है। 1861 के कौंसिल ऐक्ट ने लेजिस्लेटिव कौंसिलों की रचना की थी पर इनमें भारतीयों की इच्छा पूरी नहीं हुई। गैर सरकारी तत्त्वों ने जनता का प्रतिनिधित्व नहीं किया। इसमें या तो बड़े-बड़े जमीदार आते थे या पदमुक्त अधिकारी, या भारतीय राजा। इनमें से कोई जनता की समस्याएं नहीं समझता था। ये प्रतिनिधि न तो कौंसिल में रुचि रखते

---

1 देखें मिश्रा जे० पी० द एडमिनिस्ट्रेशन आफ इंडिया अंडर लार्ड लैन्सडाउन (1888-94) नई दिल्ली, 1975 पृ० 163।

थे और न कानून बनाने में। इन कौंसिलो की शक्ति इतनी कम थी कि इनके कानून सरकारी आदेश जैसे प्रतीत होते थे। इनमे चुने हुए तत्व थे ही नही और वे रजिस्टरिंग बाडी के रूप मे ही काम करते थे।

जबकि दूसरी ओर एक नये भाति का बुद्धिजीवी वग, पश्चिम की विचार-धारा से प्रेरणा ग्रहण किये हुए, तेजी से देश मे बढ रहा था जिसकी इच्छाओ और आकाक्षाओ को निश्चित ही तत्कालीन प्रथा पूरी नही कर सकती थी। "सचमुच, 1870 के अत तक जब द्वितीय अफगान युद्ध छिडा, एक शक्तिशाली आलोचना पूण प्रेम भारत मे कायरत था, विशेषकर बगाल मे। प्रेस सरकारी आलोचना मे इतना मुखर था कि इससे निबटने के लिए उसे विशेष अधिकारो का प्रयोग करना पडा। पर यह तो आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता के आदोलन का प्रारभ सिद्ध हो गया।"

नवीन विश्वविद्यालयो ने अपनी भूमिका अदा की और उसने भारतीयो को पश्चिमी उदारवादी विचारधार के निकट ले जाकर खडा कर दिया, दूसरी ओर निरकुश सरकारी नीति ने अपनी कारवाई जारी रखी। विशेपकर विद्रोह के बाद इसने उभरती हुई भावना को दबाने की चेष्टा की जो उल्टे ही और अधिक शक्ति-शाली हा गयी। लाड लिटन के काल ने चीजो को टूटने की स्थिति तक पहुचा दिया पर वह लोगो की विचार स्वतत्रता की प्राप्ति के आकाक्षा को नही दबा सका।

फिर इसी समय इग्लण्ड मे भारतीय मामलो मे विशेप रुचि रखने वाले ग्लैडस्टन को पुन शक्ति प्राप्त हो गयी और उसने यह निश्चय किया कि भारतीय सरकार के प्रति अधिक उदारता की नीति अपनायी जायेगी। 1881 मे एक उदार-वादी व्यक्ति लाड रिपन की वाइसराय के पद पर नियुक्ति ही इस बात का प्रतीक थी। और रिपन के उस सुधार ने जिसम यूरोपीयो को भारतीय न्यायाधीशा के न्यायालय मे खडा करने का प्रावधान किया एक ऐसी घटना थी "जिसने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस को जन्म दिया।"[1]

1885 मे ए० ओ० ह्यूम और सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के प्रयास से स्थापित इण्डियन नेशनल काग्रेस ने शीघ्र ही लोकप्रियता प्राप्त की। 1885 के प्रथम सम्मेलन ही म इसने यह प्रस्ताव पारित किया कि सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल में चुने सदस्यो को लेकर इसे और विस्तृत किया जाय। उसने यह भी माग की कि प्रति वष का बजट इसके सामन विवादाथ रखा जाय और कौंसिल के प्रति कायपालिका को उत्तरादायी बनाया जाय।[2] ऐसी मागें हर वर्ष दुहरायी गयी

1 कोटमैन पूर्वोद्धत पृ० 22।
2 देखें, बैनर्जी ए० सी० इडियन कान्स्टीच्युशनल डाकूमेन्टस भाग 2, पृ० 85 89।

और जैसे जसे कांग्रेस की सदस्यता बढ़ी और इसे लोकप्रियता प्राप्त हो गयी अर्थात प्रथम सम्मेलन मे 72, दूसरे म 450, तीसरे मे 600 और चौथे म 1250, वैसे वसे इसकी मागो को आसानी से टालना सरल न रहा। वैसे तो कांग्रेस के प्रति सरकार का प्रारभ मे सबध मित्रतापूण रहा, पर बाद म इसमें गडबडी पैदा हो गयी। पर फिर भी जी० एन० सिंह न लिखा है कि 1892 का कौंसिल ऐक्ट 'मुख्यतया कांग्रेस के प्रयासो का परिणाम था।'[1]

1892 के कासिल ऐक्ट को सुविधा से इसलिए भी प्रस्तुत किया जा सका क्योंकि युरोपीय व्यापारी कौंसिल म व्यग्रता से अपनी बात प्रस्तुत करना चाहते थे जिससे लदन नगर के व्यापारियो के कारण व्यापारिक हितो की बलि न चढ जाय। और सरकार ने इसे मानकर सुधार की तैयारी प्रारभ की। पर इसमे लाड डफरिन का अपना स्वाथ भी था उसकी धारणा थी कि भारत मे एक शक्तिशाली कौंसिल भारतीय सरकार को इडिया ऑफिस से स्वतत्रता प्रदान करे। और कौंसिल की बढी हुई सदस्यता से सरकार के सामने अधिक प्रभावी ढग से जनमत आ सकेगा।

1888 म लाड डफरिन ने इन्हीं परिस्थितियो म अपनी कौंसिल की एक समिति बनाई जिसका नेतत्व जाज चेम्ने को सौंपा गया। इस समिति से कहा गया कि वह "प्रान्तीय कौंसिल को विस्तत करने की योजना तैयार करे, इसकी स्थिति ऊची करने का यह प्रयास करे, इसके काम मे भी वद्धि करे, कुछ चुनाव सबधी सिद्धात भी लागू किये जाय और राजनैतिक सस्था के रूप मे इसे कुछ और उदार बनाया जाय।" पर साथ ही उसने स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की कि "भारत का भाग्य एक विदेशी जाति के हाथ मे सीमित कर दी गयी है। सरकार जो करने की आशा करती है वह है कि वह भारतीय मत के और निकट आने के लिए चेष्टा करेगी।" उसने कहा कि यह सोचना एक भूल होगी कि सरकार का उद्देश्य ब्रिटिश आदर्शों पर ससदीय प्रणाली प्रारभ करना है। भारतीय कायपालिका किसी भी भारतीय अधिकार के अधीन नही रहेगी बल्कि ब्रिटिश शासक और ससद का अनुगमन करती रहेगी। ऐसा दष्टिकोण प्रस्तुत किया गया था जिस माहौल मे समिति को अपना काय करना था। इस समिति की रिपोट और लाड डफरिन के विचार दोनो साथ ही गृह विभाग को प्रेषित किये गय जिसम कौंसिल मे सुधार हेतु निवेदन किया गया। इसका उद्देश्य यह बताया गया गया कि "जनता के काय के प्रशासन मे ऐसे भारतीय सज्जनो को और सहभागी बनाना जिन्होने अपने प्रभाव, आवश्यकता और विश्वास को अपने देशवासियो मे प्रेरित कर अपने मत से उत्तर

1 उनकी पुस्तक ल डमाक्स इन इडियन कांस्टीच्यूशनल ऐण्ड नेशनल डेवलमेंट, पृ० 216 देखें।

दायित्वपूर्ण भारतीय शासकों को सहायता देने मे समर्थ हैं।" बाद मे जब डफरिन का उत्तराधिकारी होकर लाड लैंसडाउन आया तो इस संबंध मे उसका भी मत मांगा गया। इन्हीं आधारों पर वहा पर अनुदारवादी सरकार धीरे-धीरे आगे बढ़ी। 1890 मे हाउस आफ लार्डस मे एक बिल रखा गया जो धीरे धीरे खिसका और जाकर कही 1892 मे इंडियन कौंसिल ऐक्ट के रूप मे पारित हो पाया।[1]

ऐक्ट की धाराए

इस ऐक्ट मे पूर्णतया भारत की लेजिस्लेटिव कौंसिलो की शक्ति, कार्य और रचना पर ही विचार किया गया। जहा तक मुख्य विधायिका का संबंध था इस ऐक्ट मे प्रावधान किया गया कि 'अतिरिक्त सदस्यो' की संख्या बढ़ाकर कम से-कम 10 और अधिक से-अधिक 16 कर दी जाय। कौंसिल मे सेक्रेट्री आफ स्टेट की स्वीकृति से गवर्नर जनरल को वे नियम बनाने थे जिसके आधार पर 'अतिरिक्त सदस्यो' को नामित किया जाना था। 'अतिरिक्त सदस्यो' मे से से 2/3 गैर सरकारी लोग होने थे जिनमे से 1/2 के लिए एक सीमा के भीतर चुनाव पद्धति स्वीकार कर ली गयी। पर चुने जाने के बाद ऐसे सदस्य को कौंसिलो मे बैठने से पूर्व अपने को सरकार से नामित कराना आवश्यक था। कौंसिल के कार्यो मे पर्याप्त वृद्धि कर दी गयी। वार्षिक 'आर्थिक' विवरण पर एक सीमा मे विचार करना और संभव कर दिया गया। लार्ड कर्जन ने इस संबंध मे कहा कि, "यह कोई सोच भी नही पाता कि भारत मे बजट पर विचार होते समय एक एक मद पर मत डाले जाय जैसा कि हम संसद मे करते है। पर यह प्रस्तावित किया गया कि कौंसिल सदस्य भारत की आर्थिक नीति के संबंध मे पूर्ण, स्वतंत्र और शुद्ध आलोचना मे भाग लें।" सदस्य जनता के हित संबंधी सरकार से प्रश्न कर सकते थे "पर उसमे शर्त और प्रतिबंध यह था कि वह देश के गवनर जनरल या प्रान्त के गवनर के द्वारा बनाये गये नियमो के विपरीत न पड़ता हो।" पर ऐसे सभी प्रश्न करने के लिए 6 दिन की नोटिस देनी पडती थी तब उनका उत्तर प्राप्त होता था। प्रेसिडेन्ट को किसी प्रश्न को उठाने से रोकने का भी अधिकार था।

प्रान्तीय कौंसिलो मे भी 'अतिरिक्त सदस्यो' की संख्या बढा दी गयी। उदाहरणार्थ बम्बई और मद्रास की कौंसिलो मे उनकी कम से-कम संख्या 8 और अधिक से अधिक 20 रखी गयी। बंगाल मे भी अधिकतम संख्या उतनी ही रखी गयी जबकि उत्तरपश्चिम प्रांतो मे अधिकतम संख्या 15 रखी गयी। अपने कार्यो मे सदस्यो को जनहित मे प्रश्न करने का अधिकार प्राप्त हुआ। वे सरकार की

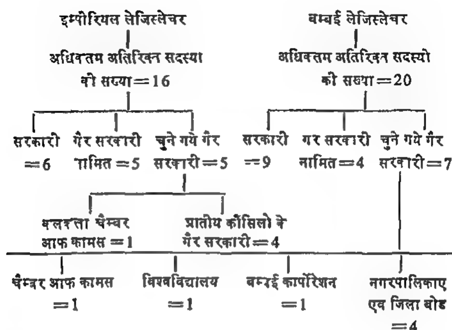
1 देखें रिपोर्ट आन इंडियन कान्स्टीच्यूशनल रिफार्म्स 1918 पृ० 428।

नीति पर विचार विमर्श कर सकते थे और प्रश्न पूछ सकते थ। पर केन्द्र की भांति यहा भी 6 दिन की सूचना पर ही यह समव था और इनके प्रश्न भी बिना कारण दिये पूछने मे रोके जा सकते थ।

किम्बरले धारा—अधिक महत्वपूर्ण बात चुनाव के सिद्धान्त की थी जो इस एक्ट ने प्रस्तावित किया। वैसे बडी चतुराई से 'चुनाव' शब्द का प्रयोग नही किया गया। यह सिद्धान्त प्रारभिक पत्रावलिया म नही था। बिल के द्वितीय वाचन मे एक सशोधन जब लाड नाथ ब्रुक ने रखा और उसका समथन लाड रिपन और किम्बरले ने किया तो यह उसम जुड गया। पर्याप्त कठिनाइया के बाद सशोधन स्वीकार किया गया। सरकारी लोगा और गैर सरकारी नामित लोगों सहित 'इम्पीरियल लेजिस्लेचर' मे चुने हुए गैर सरकारी लोग आने थे जिनकी सख्या 5 थी और उन्हे एक एक कर चार प्रान्तीय कौंसिलो के गैर सरकारी सदस्या से चुनकर आना था और शेष एक को कलकत्ता चैम्बर आफ कामस द्वारा चुनकर आना था। प्रान्तीय कौंसिलो के लिए जो सदस्य चुने जाते थे उनका चुनाव नगरपालिकाए, डिस्ट्रिक्ट बोडस, विश्वविद्यालय सीनेट, जमीदार और चैम्बर आफ कामस करते थे। चुनाव की पद्धति भी भिन्न थी। केन्द्र और प्रान्त के लिए एक एक सदस्य चुनने के स्थान पर य सगठन नामो के पनल का चुनाव करती थी जिसम से कोई नाम सबधित विभाग का अधिकारी चुन लेता था। इस सबध वाली धारा म कहा गया कि गवनर जनरल को यह अधिकार होगा कि वह ऐसी व्यवस्था कर सके जिसके लिए उसके सामने कुछ लोग प्रस्तुत किये जा सकेंगे जो चुने हुए होंगे। गवनर जनरल चाहने पर उनम से किसी एक का उपयोग कर सकेगा। इसी कारण इसके विस्तृत नियम लाड लैसडाउन ने स्वय ही बनाये जो सचमुच प्रत्यक्ष चुनाव के पक्ष म था पर उसका प्रस्ताव गृह सरकार ने अस्वीकार कर दिया था।[1] चुने हुए सदस्यो का विभाजन इम्पीरियल और बम्बई के विधायिका के निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा—

1892 के कौंसिल ऐक्ट ने इस तरह पुरानी प्रथा मे महत्वपूर्ण परिवतन किया। इस एक्ट की सर्वोत्तम विशेषता चुनाव के सिद्धान्त का प्रारभ था, भले ही यह अप्रत्यक्ष रहा हो। प्रारभ हो चुका था, वैसे तो प्रतिनिधि सरकार का गन्तव्य अतिदूर था, पर प्रगति, धीमी ही सही सही दिशा म थी। यह पहली बार था कि भारतीय उच्चतम सस्था से सही तरीके से सम्बद्ध किये गये। वसे तो इनकी सख्या 1/3 ही थी और सरकारी बहुमत उनपर हावी हो सकता और उनके मत को दबा सकता था पर उनके विचारा को आवश्यक ध्यान और आदर प्राप्त हुआ और उनके माध्यम से यदि पूण नही तो कुछ सीमा तक भारतीय जनता की कठिनाइयां सामने

1 विस्तार के लिए देखें, मिश्रा जे० पी० पूर्वोद्धत पृ० 185 198।



लायी जा सकी । 1892 का कौंसिल ऐक्ट निश्चित रूप से 1861 से बेहतरी की ओर था । सरकार की आर्थिक नीति पर अभी तक कर आरोपण काल के अतिरिक्त विचार करने का कभी अवसर ही नही प्रदान किया गया था । पर अब नियमित रूप से आर्थिक विवरण सदस्यो के समक्ष रखे जाने थे और उन्हे इसकी आलोचना करने और करदाता के पक्ष मे सरकार को परामर्श देने का अधिकार था । अधिकारियो ने यह सच ही सोचा था कि इस प्रावधान के द्वारा "सरकार को अपनी आर्थिक नीति को प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त होगा, वह गलतफहमिया दूर कर सकेगी, आक्रमणो और आलोचनाओ का मुकाबला कर सकेगी, और वे इस आलोचना से लाभ भी उठा सकेंगे । गैर सरकारी सदस्य अपने उत्तम प्रतिनिधित्व से उत्तरदायित्व की भावना का निर्वाह करेंगे ।" कार्यपालिका से प्रश्न करने की अनुमति भी कम महत्त्व की बात नही थी । वैसे इस पर कुछ प्रतिबंध भी थे, पर ये प्रतिबंध ब्रिटिश ससद से कडे नही थे । कौंसिल की शक्ति और कार्य मे बढोतरी कर दी गयी और वैसे ही उनका आकार भी बढा दिया गया ।

इसमे सदेह नही कि इसके प्रावधानो मे कुछ दोष भी थे जिससे पूर्णतया न तो जनता सतुष्ट हो सकती थी और न ही सरकार । जनता के असतोष का कारण था । सर वी० चिरोल ने लिखा है कि, "1892 का भारतीय कौंसिल ऐक्ट ऐसा पहला प्रयास था जिसमे चुनाव सिद्धात को स्वीकृति प्रदान की गयी जिसमे भारतीय गैर

सरकारी मत का प्रतिनिधित्व होता था। पर इसका पैमाना अति सूक्ष्म था और यह अप्रत्यक्ष था।"[1] चुनाव का सिद्धांत या प्रतिनिधित्व के द्वारा सरकार "लार्ड सैलिसबरी ने बनाया, "कोई पूर्वी विचारधारा नहीं थी और यह परंपरा या पूर्वी मस्तिष्क के साथ ठीक भी नहीं बैठती थी।" पर इस तरह का तर्क बुद्धिजीवियों के उभरते वर्ग को संतुष्ट नहीं कर सकती थी जो पश्चिम के उदार विचारों का अपने देश में आयात करना चाहते थे। जबकि दूसरी ओर, 1907 के सरकारी सर्क्युलर में जैसा जोर देकर कहा गया, भारत सरकार इन प्रस्तावों के प्रभाव को अपनी आशा से दूर समझती थी और भारतीयों को दी जानेवाली छूट का उन्हें अधिकारी नहीं मानती थी।

न ही कौंसिल में प्रविष्ट कराये गये गैर सरकारी सदस्यों की संख्या लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करती थी। उदाहरणार्थ 'इम्पीरियल लेजिस्लेचर' में 25 सदस्यों में से नामित और चुने गये सदस्यों की संख्या 10 थी और यह भी यह संख्या अप्रभावी थी क्योंकि नामित सदस्य सदा सरकार का साथ देते थे। इस तरह 5 सदस्य शेष बचते थे जो लार्ड कर्जन के मतानुसार "एक आम्रूहिक वाद विवाद वाली संस्था में कार्यक्षमता केवल संख्या से संबद्ध नहीं रहती" किसी भी जनवर्ग को संतुष्ट नहीं कर सकती थी। यहां तक कि कुछ युरोपीय जैसे स्वान ने स्वीकार किया कि गैर सरकारी सदस्यों में बढोतरी "अति सूक्ष्म और दयनीय" थी। आर० सी० दत्त ने ठीक ही लिखा है कि "आधे दर्जन सदस्य विभिन्न नियमों के आधार पर चुने गये जो 30 40 करोड़ जनता की ओर से शायद ही उनकी भावना को प्रस्तुत कर सकते थे।"[2]

इस ऐक्ट ने विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व संबंधी संतुलन बनाये रखने की चेष्टा नहीं की। सामान्य जनता को दिया गया प्रतिनिधित्व निरर्थक था। किसी को आवश्यकता से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ जबकि किसी को कुछ भी नहीं। उदाहरणार्थ बम्बई में युरोपीय व्यापारियों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया, पर भारतीयों को नहीं। क्षेत्रीय मामलों में भी कोई सिद्धांत नहीं स्वीकार किया गया। पं० मदन मोहन मालवीय ने कहा कि, ऐक्ट ने भारतीयों को अब भी देश के प्रशासन में सही आवाज बुलंद करने का अवसर नहीं दिया।'

कौंसिल को जो अधिकार प्रदान किये गये उनमें भी अब बहुत कुछ होना शेष था। डब्लू० सी० बनर्जी ने ठीक ही कहा कि "ऐक्ट हमें कुछ अधिक देने के लिए आश्वस्त नहीं करता। हमें अपने विरोध भाव के साथ आगे, बढ़ते रहना चाहिए और तबतक नहीं रुकना चाहिए जबतक हम सबकी इच्छा की चीज हमें न मिल

1 चिरोल वी० इंडियन अनरेस्ट पृ० 269।

2 दत्त आर० सी० इंडिया इन द विक्टोरियन एज पृ० 386।

जाय जिससे हम सभी अधिकारी है।" ऐक्ट के अतगत "बजट पर बहस तो हो सकती थी पर तब जब कायपालिका इसको पूणतया तैयार कर लेती थी।" कोई प्रस्ताव प्रस्तुत नही किया जा सकता था और कोई पूरक प्रश्न विचाराथ प्रस्तुत नही किया जा सकता था। प्रेसीडेन्ट चाहे तो प्रश्न रखने की अनुमति दे या न दे जिसके लिए उसे कारण बताना आवश्यक नही था। कौंसिल के अधिकार भी नही के बराबर हो बढे और फीरोज शाह मेहता ने ठीक ही कहा कि ऐक्ट को "तथ्य मे एक अति उत्तम भाप के इजन की उपमा से विभूषित किया जा सकता था जिसमे चतुराई से भाप पैदा करने वाले आवश्यक चीजो को उसमे से हटा दिया गया था और उसकी जगह पर नकली भाप जैसी दिखने वाली रगीन चीजें लगा दी गयी थी।"

ऐक्ट ने गवनर जनरल को अधिकार प्रदान किया था कि वह सेक्रेट्री आफ स्टेट की स्वीकृति से नियम बना सकता था कि अतिरिक्त सदस्यो का नामित करने के लिए क्या शर्तें हो। इसके आधार पर बनाये गये नियमो के विषय म गोखले ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "मैं यह नही कहूगा कि इन्हे जानबूझकर इस तरह से बनाया गया है कि इससे 1892 के ऐक्ट का उद्देश्य न पूरा हो, पर मैं यह कहूगा कि यदि वह अधिकारी जिसने इस नियम को तैयार किया उससे कहा जाता कि वह बैठकर ऐसा नियम तैयार कर जिससे 1892 के ऐक्ट का उद्देश्य विफल हो जाय तो वह इससे अच्छा तैयार नही कर पाता।"[1]

बनाये गये प्रावधानो के अन्तगत कौंसिल के सदस्यो की शक्ति ईर्ष्या की वस्तु नही थी। सर बार्स पीकाक ने कहा, "उसने सदा यह समझा और वह आज भी यह जानता है कि सदस्य की शक्ति ऊची और आदरणीय है, पर यदि उसने यह विश्वास किया कि कौंसिल का सविधान ऐसा है कि इसके सदस्य जैसे भी हो वे विधान बनाने के लिए बाध्य होगे चाहे उन्हें बोड आफ कट्रोल से या कोट आफ डाइरेक्टस से आदेश मिले तब वह यह कहेगा कि ऊचे और प्रतिष्ठापूण शक्ति के स्थान पर यह एक ऐसी चीज थी कि जो भी व्यक्ति प्रतिष्ठाप्रिय और स्वतत्र होगा वह उसे तुरन्त छोड देगा "

फिर भी, प्रजातत्र की ओर कदम उठ चुका था, अभी वहा तक पहुच नही हुई थी। पर एक सीमा तक इसके द्वारा भारतीयो की गयी और तुलनात्मक रूप से एक कमजोर माग मान ली गयी। इसके अतिरिक्त राजाओ और जमींदारो के स्थान पर चुनाव सिद्धान्त से इतना अतर तो आ ही गया कि कौंसिल मे उनका आन की सभावना बढ गयी जिसम गुण था और जो लोगो मे आदर का पात्र था। ये चुने हुए लोग वैसे तो कमचारियो द्वारा छोटे समझे जाते थे पर उन्हें अब

1 बनर्जी ए० सी० पूर्वोद्धत भाग 2 प० 137 139।

अपनी योग्यता दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ। इसके कारण उन पर विश्वास करने के दिन निकट आये। गोपाल कृष्ण गोखले और फीरोजशाह मेहता जैसे लोगों को जब यह अवसर मिला तो उन्होंने भी अपने लिए स्थान बनाया और देश को राष्ट्रवादी आन्दोलन के लिए तैयार किया।

हम कोटमैन के मत से निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि इस ऐक्ट ने, "भारत में प्रतिनिधियों के चुने जाने की प्रणाली का प्रारंभ किया, प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त भी मजबूत हुआ और फिर उत्तरदायी संसदीय स्वशासन की दिशा में गाड़ी आगे बढ़ चली।"[1]

भारतीय राज्यों से संबंध

मणिपुर

भारतीय राज्यों से संबंध के मामले में लैंसडाउन को मणिपुर में समस्या का सामना करना पड़ा जहां का राजा सूरचंद्र 1880 में अपने भाई और राज्य के सेनापति के विद्रोह के कारण राज्य से खदेड़ दिया गया। युवराज इस समय अनुपस्थित था। पर उसपर विद्रोह में सहयोग का संदेह किया गया क्योंकि जैसे ही राजा अपने क्षेत्र से बाहर गया उसने आकर गद्दी पर अधिकार कर लिया। सूरचंद्र ने गवर्नर जनरल से सहायता की अपील की जिसे उसकी अकर्मण्यता के कारण सहायता देने से इनकार कर दिया गया। नये शासक को स्वीकार करने को तो कहा गया पर उसके साथ यह शर्त लगायी गयी कि सेनापति को पद से हटा दिया जाय। पर यह मामला शांतिपूर्वक न हल हो सका। आसाम के कमिश्नर क्विंटन को स्थिति का आकलन करने के लिए भेजा गया। पर सेनापति ने उसका विरोध किया। इसके फलस्वरूप एक छोटी सी लड़ाई दोनों के बीच हो गयी जिसमें कुछ ब्रिटिश अधिकारी मारे गये। लार्ड लैंसडाउन ने तुरन्त वहां पर आक्रमण का आदेश दिया जिसके फलस्वरूप सेनापति और नये शासक दोनों को पकड़ लिया गया। कानून के अनुसार दोनों पर मुकदमा चलाकर मौत की सजाएं दी गयीं। कुछ अन्य लोग जो इस मामले से संबद्ध थे उनके साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया गया। इसी परिवार के एक लड़के को गद्दी दिलायी गयी। बच्चे के बालिग होने तक एक अंग्रेज एजेन्ट के हाथ में वहां का शासन सौंप दिया गया। लार्ड लैंसडाउन ने घोषणा की कि "यह सरकार का अधिकार और कर्त्तव्य है कि वह अपने देश के संरक्षित राज्य के उत्तराधिकार का निर्णय करे।" पर साथ ही इससे यह भी

---

1 कोटमैन पूर्वोद्धृत पृ० 24 25 कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 6 अध्याय 12 चिन्तामणि, सी० वाई० पूर्वोद्धृत पृ० 47 48।

स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश किसी राज्य पर अधिकार रखने म कोई रुचि नही रखते थे चाहे वहा कुछ उत्तेजक कारवाइया ही क्यो न हो रही हो। पर ब्रिटिश अफसरो के मारे जाने पर इससे कम किया ही क्या जा सकता था।

सिक्किम

सिक्किम ने 1861 मे ब्रिटिशो के साथ एक समझौता किया था और उसके अतगत उनका नेतत्व उन्होने स्वीकार किया था। यहा का राजा इस समझौते के अतगत सीधे किसी भी विदेशी शक्ति से सबध नही स्थापित कर सकता था पर इधर सिक्किम का राजा तिब्बत के प्रभाव मे आ गया था। उसकी तिब्बती पत्नी राज्य के मामले मे बडा प्रभाव रखती थी। राजा साल मे तीन महीने स्वास्थ्य के नाम पर तिब्बत ही मे रहने लगा। 1886 मे तिब्बत की सेना ने कुछ सिक्किम क्षेत्रो पर अधिकार कर लिया और लिगतू के किले को घेर लिया। महाराजा ने इस सब पर कोई चिता नही व्यक्त की। इसपर ब्रिटिशो को अपने आप 1888 मे सना भेजनी पडी जिससे विदेशिया को खदडा जा सके।

चीन तिब्बत को अपना सहायक राज्य मानता था और 1888 के अत तक चीनी रेजीडेंट गगटोक समझौते के लिए आया। भारत सरकार ने उस समय उससे समझौता करने मे कोई आपत्ति नही की। रेजीडेंट न कहा सिक्किम तिब्बत का सहायक राज्य है जो इससे सिद्ध है कि सिक्किम का राजा चीन को और लासा को भेंटें और प्राथना-पत्र भेजता है। इसी बीच गृह अधिकारियो ने भारत सरकार से बातचीत की और यह तय पाया कि चीन से अच्छे सबध की आवश्यकता है इसलिए उनकी कुछ बातें मान लेनी चाहिए। पर लैंसडाउन न एक कडा रुख अख्तियार किया और बताया कि ऐस मामला म हिमालय पवत के उस पार के किसी विदेशी देश का अधिकार नही स्वीकार किया जायगा। विदश सचिव एच० एम० डूरण्ड जो चीनी रेजीडेंट से बातचीत के लिए भेजे गय थे उन्होने कहा, "यदि हम सिक्किम के मसले म चीनियो की बात मान लें तो हम भविष्य म किसी भी समय इस बात के लिए तैयार बठा रहना होगा कि केवल भूटान और नेपाल ही नही, बल्कि कश्मीर और उसके सहायक राज्यो जस हुजा और नागर तथा हिमालय के किसी छोट से छाटे राज्य के लिए हम यही करने को तैयार रह।"[1] इसके अतिरिक्त ब्रिटिशा न तिब्बत की सेना को सिक्किम से खदेड भी दिया था और वहा पर उनका अधिकार भी हो गया था इसलिए चीनेना की भाति वे अपनी स्थिति को जता भी सकत थे।

---

1 देखें मिश्रा जे० पी० द ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ इंडिया अंडर लाड लैंसडाउन (1888 1894), नई दिल्ली, 1975 पृ० 71।

इन परिस्थितियो मे 21 दिसम्बर 1888 को प्रारभ हुआ समझौता 18 जनवरी 1889 को टूट गया। ब्रिटिश इस बीच राज्य का प्रशासनीय पुनगठन करने लगे। अप्रैल 1889 मे चीनियो ने पुन इस मामले को प्रारम्भ करने के लिए कहा। रुक रुककर बातचीत होती रही, जाकर कही 17 माच 1890 को लैंस डाउन ब्रिटिशो की ओर से एक सधि पर हस्ताक्षर कर सका। चीन के रेजीडेट न तिब्बत और चीन की ओर स इसपर हस्ताक्षर किया।

कलकत्ता की सधि के नाम मे विख्यात इस सधि (1890) मे दो प्रमुख धाराए थी। पहली धारा मे तिब्बत और सिक्किम के बीच सीमा रेखा को चीनियो ने स्वीकार किया, जबकि दूसरी धारा के अतगत चीन ने स्वीकार किया कि ब्रिटिश सरकार इस राज्य के आतरिक प्रशासन और वैदशिक सबध के मामले मे उनके सीधे तथा पूण नियत्रण को स्वीकार करती है।"[1]

इस सधि के बाद गगटोक म एक अग्रेजी अधिकारी रख दिया गया जो सिक्किम का राजनैतिक निरीक्षण करता था और महाराजा के अधीन 5 प्रमुख भिक्षुओ व प्रमुख लामो की एक सभा प्रशासन का काम देखती थी। पर महाराजा न कौसिल की सहायता से शासन करना कभी स्वीकार नही किया। वह रोबदे ची मे पडा रहा और इस कौसिल का सभापतित्व करने गगटोक कभी नही आया। 16 माच 1892 का नपाल होकर उसा तिब्बत भागने की चेष्टा की, पर नेपाली अधिकारियो ने उसे रोक लिया और उसे दार्जिलिंग ले जाकर नजरबद कर दिया गया। इसके बाद उसके विरुद्ध और कोई कारवाई नही की गयी और इस सबध म समाचार प्रसार से बचा गया।

कश्मीर

हम यह देख आये हैं कि किस तरह 1846 की सधि के बाद ब्रिटिशो ने तेजी से वहा एक विशेषाधिकारी नियुक्त करके तथा लेह और गिलगिट मे एजेट नियुक्त करके अपनी स्थिति मजबूत बना ली। 1885 म इन्होने महाराजा रणबीर सिंह के मरते ही कश्मीर पर एक रजीडेन्ट ठोक दिया और नय उत्तराधिकारी महाराजा प्रताप सिंह इसका विरोध नही कर पाये। रेजीडेन्ट को जान बूझकर यह कहकर नियुक्त किया गया कि रणवीर सिंह की बीमारी की अवधि म कश्मीर का शासन तेजी से बिगड गया था और यदि प्रताप सिंह को ब्रिटिशो का जागरूक सहयोग नही मिलेगा तो वहा सुधार नही हो पायेगा। इस तरह रेजीडेन्ट की नियुक्ति के साथ ही वहा प्रशासनिक हस्तक्षेप प्रारभ हो गया। उनके मन के

1 देख मिश्रा ज० पा० द एडमिनिस्ट्रेशन आफ इडिया अडर लाड लैन्सडाउन (1888 1894) नई दिल्ली 1975 प० 73।

आदमी नये राजा पर थोप दिये गये जिससे प्रशासन के मामले मे वह अपनी बुद्धि मे कुछ अधिक नही कर सका। कुछ देर होने लगी तो ब्रिटिश क्रुद्ध होन लगे क्योकि वे तो कश्मीर प्रशासन को ऐसा मोड देना चाहते थे जिससे कि उनकी मध्य एशिया से सबधित आवश्यकताए पूरी हो जाय। वे सुधार के बडे इच्छुक नही थे। उन्होने अब यह सोचा कि घाटी मे स्वतन्त्रतापूवक काय तभी सभव है यदि महाराजा को दृश्य स्थल से हटा ही दिया जाय।

भाग्य से फरवरी 1889 मे ब्रिटिश रेजीडेन्ट कनल निस्बेट को डोगरी भाषा म लिखे 34 पत्रो का एक पुलिन्दा प्राप्त हुआ जो बताया गया कि उन्ह प्रताप सिंह ने अपने प्रियजनो को लिखा था जिसमे महाराजा ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि वह अपने भाइयो राम सिंह और अमर सिंह को मरवाना चाहता है, इसके अतिरिक्त वह अपनी एक रानी तथा रेजीडेन्ट से भी सदा के लिए छुट्टी पाना चाहता है। इन पत्रो मे गुप्त रूप स रूस मे एक दूत भेजने का प्रस्ताव था तथा दूसरा पजाब के राजा दलीप सिंह के पास जो पत्रानुसार सहायताथ आकर ब्रिटिशो को वहा से खदेड देंगे। महाराजा ने यह समझाने की व्यथ चेष्टा की कि यदि वह ब्रिटिशो के विरुद्ध षडयन्त्र नही करता तो खुलेआम पत्र क्या लिखता तथा उसके अनुसार यदि दलीप सिंह वहा आ जाता तो यह उसके अस्तित्व के लिए ही एक खतरा था। उसने यह भी समझाया कि इसके पहले भी जाली पत्रो द्वारा कश्मीर के राजाओ को फसाने की चेष्टा हुई है। पर इस अवसर का ब्रिटिश त्याग करने को तैयार नही थ। महाराजा को हर तरह की चेतावनिया दी गयी। उससे कहलाया गया कि पत्र विश्वस्त है और इसकी एक ही सजा उसका पद से हटाया जाना है। लैन्सडाउन पूरा प्रशासन अपने हाथो मे लेने पर आमादा था जिससे इसे ब्रिटिश हाथो मे सौपा जा सके। पर वह भारत तथा इगलैड के जनता से भय खाता था इसलिए सावधानीपूवक फूक फूककर कदम आगे बढा रहा था।

8 अगस्त 1889 को महाराजा प्रताप सिंह ने एक 'इरशद' प्रसारित किया जो फारसी मे था और उसके भाई राजा अमर सिंह को सबोधित किया गया था। इस 'इरशद' के माध्यम से उसने अपना पूरा शासन एक कौसिल के हाथ मे सौपा जिसमे राजा अमर सिंह और राम सिंह तथा भारत सरकार के परामश से नियुक्त एक यूरोपीय अधिकारी को यह काय सौपा गया। यह कौसिल 5 वष के लिए प्रशासन का काय करेगी जिस बीच वह अपने अधिकार से पूणतया मुक्त रहेगा। पर उसके व्यक्तिगत जीवन मे कोई हस्तक्षेप नही किया जायेगा और उसे अपन व्यय तथा महल के व्यय के लिए आवश्यक धन प्राप्त होता रहेगा। बतलाया गया कि महाराजा ने अपनी इच्छा से 'इरशद' तैयार किया, पर प्रताप सिंह ने इससे इनकार किया और कहा कि इसपर उससे जबरदस्ती हस्ताक्षर कराया गया। इसी तरह की परिस्थिति मे ब्रिटिशो ने पजाब के ऊपर प्रथम सिख युद्ध के बाद भैरोवाल

थी जो संधि आरोपित की थी उसे भी नहीं भुलाया जा सकता। अनिच्छित सरदारों से इसे कैसे निकाला गया, फिर भी उनसे इच्छापूर्वक हस्ताक्षर कराया गया, ठीक 'इरशाद' की ही भाँति यह भी गाथा थी।

जैसा भी हो महाराजा ने 5 वर्ष के लिए प्रशासनिक अधिकार का त्याग कर दिया। सरकार इन षड्यन्त्रकारी पत्रों की विश्वस्तता सिद्ध नहीं कर सकी, फिर भी इन पत्रों पर अपने निर्णय को आधारित करते हुए 'इरशाद' पर आधारित करते हुए, और प्रशासकीय क्षमता पर इसे आधारित करते हुए उन्होंने यह तय कर लिया कि महाराजा को उसी की शर्तों पर पाँच वर्ष के लिए शक्तिविहीन कर दिया जाय। लार्ड लैंसडाउन ने महाराजा को अगले आदेशों तक हटा दिया। उसे सूचना भेज दी गयी। "कम से कम कुछ काल के लिए प्रशासन में वह हस्तक्षेप नहीं करेगा। उसके पास राज्य का पद और प्रतिष्ठा बनी रहेगी, पर सरकार की पूर्ण शक्ति उस कौंसिल में निहित रहेगी जिसमें महाराजा के भाइयों के अतिरिक्त तीन या चार भारत सरकार द्वारा चुने गये अधिकारी होंगे। यह सोचा गया कि इन अधिकारियों में से एक अंग्रेज होगा।"[1] पर कौंसिल रेजीडेंट के पूर्ण देखभाल में चलेगी। कौंसिल नियमानुकूल स्थापित कर दी गयी और महाराजा को स्पष्टतया पद से हटा दिया गया। 18 अप्रैल 1889 की अपनी पहली बैठक में ही कौंसिल ने घोषणा की "सभी मामलों में रेजीडेंट का निर्णय अंतिम होगा। उसे किसी भी कौंसिल के प्रस्ताव पर नकारात्मक मत प्रयोग करने का अधिकार होगा। वह उसकी कारवाई को और विवरण प्राप्त करने तक रोक भी सकेगा।"[2] कौंसिल में कोई अंग्रेजी अफसर नहीं रखा गया, पर फिर भी पूर्ण शासन अंग्रेज द्वारा चलाया जाने लगा।

महाराजा का पद से हटाया जाना जनता के अत्यधिक आलोचना का विषय था। तत्कालीन समाचारपत्रों का मत रुचिकर है। 'हिन्दू पैट्रियाट' ने सच ही कहा, "यदि सच कहा जाय तो यह है कि इसकी (कश्मीर की) सामरिक स्थिति इतनी भयानक है कि इसे स्वतंत्र या सहायक राज्य के रूप में रखा जाने लायक नहीं है।" अमृत बाजार पत्रिका और तमाम अन्य अखबारों ने भी इसी तरह का मत दिया। विलियम डिग्बी ने टाइम्स में एक लम्बे लेख में सरकार के कारवाई की आलोचना की। ब्रडलॉ ब्रिटिश संसद के एक प्रभावशाली सदस्य ने कहा कि कश्मीर लगभग अपहृत कर लिया गया है और उसके शासक को अपमानित किया गया है। यहाँ तक कि लैंसडाउन ने सेक्रेट्री आफ स्टेट का एक पत्र अस्वीकार किया कि महाराजा से संबंधित पत्र जाली हो सकते हैं विशेषकर तब, जब

1 कपूर एम० एल० कश्मीर सोल्ड एण्ड स्नैच्ड पृ० 166 से उद्धृत।
2 वही पृ० 168।

प्रताप सिंह के दोनो छोटे भाइया राम सिंह और अमर सिंह से उसका अच्छा सबध नही था और व "समय समय पर रेजीडेन्ट को गुप्त सूचनाए प्रेषित करन की आदत से ग्रस्त थे।" महाराजा को इस छान बीन के बिना ही दडित किया गया कि क्या उसके भाई उसके विरुद्ध षडयत्र मे सम्मिलित थे या नही। उसके भाइयो को दडित करने के स्थान पर राम सिंह को सेनापति बना दिया गया और अमर सिंह को कौंसिल का अध्यक्ष। भारत के विदेश सचिव ने इसे बुद्धिमत्तापूण नही माना था जो रेजीडेन्ट न 'पत्रो को लेकर एक बवाल मचा दिया था।" यहा तक कि लैंसडाउन भी जब बाद म महाराजा से मिला तो उसने कहा, "मैंने उसको अधिक अच्छा और बुद्धिमान व्यक्ति पाया जैसाकि मैं सोचता भी नही था।" 1890 म वाइसराय न रजीडे ट निस्बेट को उसके पद से हटा दिया और सेक्रेट्री आफ स्टट को उसने लिख भेजा कि उसने (निस्बेट ने) "कई बेवकूफी भरे काय किये है।"

पर मामला जैसा भी रहा हो, लैंसडाउन इस अवसर को खोने को तैयार नही था। उसने कहा, "हम ने निश्चित ही तेजी से उसका गला पकड लिया और राज्य की स्थिति को ठीक करने का इससे अच्छा अवसर अब हाथ मे कहा आ सकता था।"[1]

पर महाराजा अब भी जनप्रिय बना रहा। नयी कौंसिल भी बहुत कुछ नही कर पायी और 1891 मे महाराजा को पुन पद पर वापस आने की दिशा मे काय किये गये और उसे राज्य की कौंसिल का प्रेसीडेन्ट बनाया गया। पर रेजीडेन्ट अब भी महत्त्वपूर्ण बना रहा और महाराजा को पुन शक्ति अजन मे अभी बहुत समय लगना था।

विदेशो से सम्बन्ध

अफगानिस्तान

लाड डफरिन से अब्दुरहमान के चले आ रह मधुर सबध लाड लैं सडाउन के काल मे नही चल सके। ऐसा ब्रिटिश विदेश नीति म 'फावड' दिशा की ओर परिवतन के कारण सभव हुआ। इसके कई कारण थे। अफगान और ब्रिटिश प्रशासित क्षेत्र के बीच 25 हजार वग मील की पटटी का एक क्षेत्र था जिसकी चर्चा एक बार पुन अगले पृष्ठो मे आयेगी। इस क्षेत्र मे विश्व की अत्यधिक खूख्वार जाति निवास करती थी जिसपर अमीर का नियत्रण नही के बराबर था। पर वह उन्हे अब भी ब्रिटिश के विरुद्ध भडका सकता था और स्वय पर्दे के पीछे रहकर उनके लिए कठिनाइया पैदा कर सकता था। इस कबीले के लोग प्राय ब्रिटिश सीमा का

1 दखें, मिश्रा जे० पी० - पूर्वोद्धत पृ० 74 83।

अफगानिस्तान एक शिष्टमडल भेजने का प्रस्ताव किया जिसमे भेदभाव दूर किया जा सके। पर रावटस चूकि 'फावड नीनि' का अनुमोदक था, अमीर ने उसका स्वागत न करने के लिए क्षमा मागी और बाद मे सर मोर्टीमेर डूरण्ड के स्वागत के लिए तैयार हो गया। डूरण्ड को भेजा गया जिसका अच्छा स्वागत हुआ और उसे अमीर से एक महत्त्वपूर्ण समझौता करने मे सफलता भी प्राप्त हुई। इस समझौते को डूरण्ड समझौते का नाम दिया गया जिस पर 1893 मे हस्ताक्षर किये गये। इसमे यह तय हुआ कि अमीर अब वजीरियो, अफरीदियो और अन्य सीमा के कबीलो के साथ हस्तक्षेप नही करेगा। जहा भी सभव होगा ब्रिटिश और अफगान कमिश्नर मिलकर सीमा रेखा स्पष्ट कर लेंगे। अमीर ने चित्राल, दीर, स्वात और बाजौर मे हस्तक्षेप न करने का निणय किया और ब्रिटिशो ने उसे कुछ जिले प्रदान कर दिये। अमीर ने चमन रेलवे स्टेशन से अधिकार त्याग दिया और ब्रिटिशो ने उसे भारत से होकर युद्ध सामग्री खरीदने व आयात करने की छूट दी। उसकी आर्थिक सहायता 12 लाख रुपये से बढाकर 18 लाख वार्षिक कर दी गयी। और इस तरह लैन्सडाउन अमीर से पुन मधुर सबध स्थापित करने मे सफल हुआ और 1893 मे पदमुक्त हुआ।

अमीर ने स्वय कहा, "सर मोर्टीमेर डूरण्ड के शिष्टमडल ने कुछ लाभ प्रदान कर सहयोग की वृत्ति का परिचय दिया और मैं पूर्णतया सतुष्ट हू कि हमने ब्रिटिश मैत्री से पाया अधिक है और खोया कम।" ये मैत्रीपूर्ण सबध तब तक चलते रहे जब तक 1895 म अमीर उस समय निराश नही हो गया जब उसका सेण्ट जेम्स के सामने सीधे उपस्थित होने का निवदन ठुकरा नही दिया गया।

पामीर का झगडा

1887 मे सेण्ट पीटसबग मे जिस प्रोटोकाल पर हस्ताक्षर हुए थे उनके अतगत ख्वाजा सालेह तक रूस और अफगान सीमा निर्धारित कर दी गयी थी। यहा से लेक विक्टोरिया तक सीमा रेखा 1873 के एक अलिखित समझौते के द्वारा तय कर दी गयी थी। पर दोना पक्षो म सीमा रेखा के आसपास के क्षेत्रो पर परस्पर अधिकार को लेकर तनातनी अब भी थी। लेक विक्टोरिया के पूव और पामीर के उस पार पूर्ण अव्यवस्था थी। यहा पर अफगान और चीन क्षेत्र के बीच बहुत बडा क्षेत्र था जो खाली पडा हुआ था। यह एक ऐसा क्षेत्र था जहा घूमने घामने वाली जाति निवास करती थी। ब्रिटिशो की सबस बडी चिन्ता यह थी कि व रूसियो को इस खाली जगह को भूचना नही होन देना चाहते थ क्योंकि एस म व यहा अधिकार कर सकते थे और भारत की सीमा के निकट पहुचकर कबीलो को उनके खिलाफ भडका सकते थे।

ऐसे भी क्षेत्र थे जहा अनाज का एक दाना भी नहीं होता था और जहा पानी

की पूर्ति अत्यधिक कठिन थी। यहा तक की गिलगिट जैसी जगह मे सारे वस्तुओ की पूर्ति कश्मीर से होती थी। इस तरह इस ओर से रूसी आक्रमण सरल नही था। पर इससे कोई इनकार नही कर सकता कि रूसियो की इस क्षेत्र मे चहल-पहल ब्रिटिशो को यहा व्यस्त बना सकती थी जब उनको पूरा ध्यान युरोप की ओर लगाना था। स्पष्टतया इसीलिए ब्रिटिश यह नही चाहते थे कि रूसी इस क्षेत्र मे आ जाय। पर ब्रिटिशा की ही भाति रूसी खोजबीन करने वाले भी इस क्षेत्र मे बहुत समय से व्यस्त थे और 1880 मे ही एक सरकारी प्रकाशन मे सेण्ट पीटर्स बग मे घोषणा की गयी थी कि, "फरगाना प्रान्त के सुदूर दक्षिण मे और (दारकाट) दर्रे के बीच जो क्षेत्र है वह पामीर का भाग है और उसपर किसी का अधिकार नही है यह गैर बसे भूमि के क्षेत्र की पट्टी सभवत देर सबेर रूसी क्षेत्र मे मिला ली जाएगी और इस तरह सिंध नदी के पानी के क्षेत्र को छू लेगी।"[1] गोमचेवस्की ने जो एक मानचित्र तैयार किया उसमे इसे लालरेखा से चिह्नित कर दिया। इसके विषय मे 1889 मे ब्रिटिशो को पता चला। अब उनकी चिता बढ गयी और वे इस आधार पर भी सोचने लगे। यह खाली क्षेत्र या तो अफगानिस्तान के हाथ मे चला जाय या चीन के जिससे रूस यहा पर अधिकार न जमा पाये। 1891 म कसगर में उपस्थित चीनी अधिकारियो को इस सबध मे समझाया गया कि वे अपनी सेना लाकर पामीर पर अधिकार कर लें। पर उस समय ब्रिटिशा के आश्चय का ठिकाना न रहा जब उन्हे यह पता चला कि चीनी लोगो ने उस सबकी पूरी जानकारी रूसियो को प्रेषित कर दी है। इस तरह चीनी आधा रास्ता भी उस दिशा मे तय करे उसके पूव ही रूसियो को वहा अधिकार करने का अवसर प्राप्त हो गया।

एक ब्रिटिश अधिकारी यगहस्बैड, जो पामीर मे खोज बीन के लिए गया हुआ था, 13 अगस्त 1881 को बोजाई गुम्बज मे रूसी दल स मिला। रूसी दल के नेता कनल लानोव ने आश्चयचकित रह जानेवाले ब्रिटिश अधिकारी को सूचित किया कि रूसिया ने छोटे और बडे पामीर पर ही अधिकार नही कर लिया है बल्कि तगदुम्बस, रगकुल और अक्सू घाटी पर भी अधिकार कर लिया है। लेफ्टीनेन्ट डेविडसन सोमताश गया हुआ था। यह वह स्थान था जहा पर कुछ समय पूव ब्रिटिशा न अफगानिस्तान के अधिकार के विरुद्ध चीनी अधिकार का समथन किया था। रूसियो ने उसपर अपने क्षेत्र म आने का आरोप लगाकर इसे बदी बना लिया। रूसी लोगो ने अपनी कारवाई यही तक सीमित नही रखी। उन्होंने दारकोट दर्रे तक पहुचने के लिए हिंदूकुश मे बडोगिल होकर अफगान कारवा पहुचते हुए बोजाई तक का रास्ता खोज लिया। रूसिया का यह काम धाव

1 एल्डर जी० जे० ब्रिटिश इंडियाज नादन फ्रंटियर, 1865 1895 पृ०220

पर नमक छिड़कने के समान हो गया। अफगान कारवा मे उनका हस्तक्षेप सचमुच गभीर था। उनका हिंदूकुश पार करना जिसे ब्रिटिश सीमा मानते थे कम गभीर बात नही थी। रूसियो ने अपने को इस क्षेत्र म खोजबीन तक सीमित नही रखा था। ऐसा करते समय उन्होने चितराल व पास-पडोस के क्षेत्र के कबीलो मे कठिनाई पैदा करने की चेष्टा की थी जिसे अपने प्रभाव से ब्रिटिशो ने दबा दिया। बोजाई से हुआ कुछ ही घटो की यात्रा थी। और छोटे पामीर पर रूसी नियत्रण कशगर कारवा व्यापार माग पर भी मुसीबत ला सकता था।

पामीर मे रूसियो की उपस्थिति ब्रिटिशो के लिए पचा पाना सरल नहीं था। पर साथ ही वे इस बात से इनकार नही कर सकते थे कि जहा से ब्रिटिश अफसर को खदेडा गया था वहा पर किसी का भी अधिकार नही था। उन्होने बेकार ही रूसी अधिकारियो को सूचित किया कि बोजाई जहा ब्रिटिश अधिकारी अपमानित किया गया था वह अफगान वाखा का था। पर कुछ ही दिनो बाद उन्होने यह छोड़कर यह कहना प्रारभ कर दिया कि यदि यह स्थान अफगानो का नही है तो रूसी चीनी क्षेत्र मान लिया जाना चाहिए। पर चीन ने इसे अपना क्षेत्र कभी माना ही नही था और न वह सौंप जाने पर लेने को तयार था।

पामीर मे स्थिति सचमुच कठिन थी। ब्रिटिश स्वय भी इतनी दूर जाकर पामीर पर अधिकार करने के पक्ष मे नही थे, पर साथ ही वे इसे रूसी हाथो मे पड़ने नही देना चाहते थे। प्रश्न यह था कि यह भूमि किसकी थी? अगर इन्हे तटस्थ भी बना दिया जाय तो इस तटस्थता की गारटी कौन लेगा? रूसी पामीर को अपना मानते थे क्योकि उनके अनुसार खोकद का इन क्षेत्रो पर पहले अधिकार रह चुका था। ब्रिटिशो ने बेकार कागजातो को विस्तार से देखकर माथा-पच्ची की। उन्हे अपने समथन म जुटाने के लिए कोई तक नही मिला। तभी एकाएक उन्ह पता चला कि 22 मई 1884 को रूस ने चीन के साथ एक प्रोटोकाल पर हस्ताक्षर कर दिया है जिसकी तीसरी धारा म कहा गया था, "यह घाटी (उजबेल) दोनो देशो के सीमा रेखा का बिन्दु है। रूसी सीमा दक्षिण, पश्चिम और चीन की दक्षिण म।"[1] इससे स्पष्ट हो गया कि कम-स-कम 1884 म रूसी इन क्षेत्रो को विवादग्रस्त नही मानते थे।

इस प्रोटोकाल के अवतरित होने की ब्रिटिशो की जानकारी रूसियो के लिए कष्टकारी सिद्ध हुआ। इसका प्रयोग कर ब्रिटिशो ने रूसी लोगो के पामीर पर अधिकार को चुनौती दी और अपने अधिकारी को अपमानित किये जान पर विरोध व्यक्त किया। रूसी अब अपनी कमजोरी समझने लगे। इससे ब्रिटिश और उत्साहित हो गये और दिसबर 1891 म उन्होने घोषणा की "उस (हिन्दूकुश)

1 एल्डर जी० ज० ब्रिटिश इंडियाज नादर्न फ्रंटियर 1865-95 पृ० 243।

पहाड़ी का उत्तरी सिरा पहले की ही भांति किले के वाल के रूप मे है और यह समझ बैठना कि वहा पर एक शक्तिशाली राष्ट्र का हम रहने देंगे और वह भी कर्नल लानोव की विचारधारा के अनुसार स्वतत्र और आसानी से, कोई उचित बात नही होगी इससे काफी कठिनाइया सामने आएगी।"[1] दोनो सरकारा के बीच इस सबध मे लवी लिखा पढी हुई और अतत रूसिया को स्वीकार करना पडा कि उनके अधिकारी ने अवैधानिक काय किया था और इस कारण वह प्रायश्चित योग्य था। रूस से क्षमा निवेदन के साथ पूरी बात समाप्त कर दी गयी। यह भी तय हुआ कि सामूहिक रूप से स्थल विनानीय छानबीन करके सीमा का पुनर्निधारण आगे कर लिया जायगा।

पर रूसिया की यह घोषणा अतिम नही थी। रूसी युद्ध विभाग और विदेश विभाग मे मतभेद हो गये। युद्ध विभाग पामीर के पर्वतीय क्षेत्र के मामले म अधिक आक्रामक था। रूसी क्षमापत्र की स्याही अभी सूखी भी नही थी कि रूसियों ने पामीर पर अधिकार का निणय लिया। वे हिंदूकुश पवत के अधिक से-अधिक निकट आना चाहते थे जिससे कि जब सयुक्त सीमा विवाद हेतु आयोग बैठे तो व अधिक भाग करने की स्थिति मे रहें। लानोव की पुरानी मागें दुहराई जाने लगी और रूसी सैलिसबरी की इगलैंड मे राजनतिक कठिनाइयो का लाभ उठाने लगे। अफगानिस्तान और चीन के बीच यह विस्तत क्षेत्र ब्रिटिशो की आखो के सामने नाचने लगा। उनका यह प्रयास कि अफगानिस्तान या चीन म से कोई अपना अधिकार जताये, सफल नही हुआ। उन्होने स्वय भी इन पवतो के लिए लडाई करना उचित नही समझा। पर फिर भी व यह चाहते थ कि रूसी मागें न मानी जाय और बदख्शान को विदेशी हस्तक्षेप से एकदम दूर रखा जाय। अफवाह तेज हो गयी कि पामीर क्षेत्र मे रूसी आ गये हैं, पर ब्रिटिश शात बैठ रहे और सयुक्त सीमा निर्धारण की ढोल पीटते रहे।

आगे और पत्र व्यवहार हुआ और 1893 मे ब्रिटिशो को सूचित किया गया कि रूसी सीमा लेक विक्टोरिया न होकर उसके दक्षिण मे स्थित शाखा शु है। भारत म लैंसडाउन की सरकार और दूसरी ओर गह विभाग के अधिकारी ने 1773 की सीमा रेखा को स्वीकार करने पर जोर डाला जिसमे लेक विक्टोरिया तक आवश्यकतानुसार कुछ फेर-बदल किया जा सकता था। इसम लेक विक्टोरिया से पूव होकर चीन की सीमा तक सीमारेखा खीची जानी थी। गर्मा गर्मी प्रारभ हो गयी। ब्रिटिश अब लेक विक्टोरिया के पूव के भागो पर अधिकार को लेकर युद्ध तक की तैयारी करने लगे, पर साथ ही साथ वे रूस को ट्रास आक्सस, शिग्नान व रोशन मे रियायत देने को तैयार थे जिसपर अफगानिस्तान अपना अधिकार

1 एल्डर जी० ज० ब्रिटिश इडियाज नादन फटियर, 1865 95, पृ० 244 पर उद्धत।

बताता था। यदि रूस इस पर तैयार हो जाय तो अफगानिस्तान अकेला पड जायगा। लार्ड लैं सडाउन ने अपने विदेश सचिव सर मोर्टीमेर डूरण्ड को काबुल मे अमीर का मन्तव्य पता लगाने के लिए भेजा। लबी बातचीत हुई। अतत भारत अफगान सीमा पर कुछ छूट प्रदान कर डूरण्ड ने अमीर को ट्रा सआक्सस पर अधिकार त्यागने के लिए मना लिया और 1873 के सीमा समझौत को भी स्वीकार कर लिया जो इग्लड और रूस के बीच हुई थी। प्रतिष्ठा बचाने के लिए इतना पर्याप्त था। 7 दिसबर 1893 को रूस से एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमे उन्होंने लेक विक्टोरिया को चीन की सीमा मानना स्वीकार किया।

यह ब्रिटिशो की एक बडी कूटनीतिक विजय थी। रूसियो का इस विस्तत क्षेत्र पर अधिकार की बात समाप्त हो गयी। पर एक प्रश्न अब भी था, स्वीकृति रेखा और हिन्दूकुश का भाग किसका है? यह तय हो जाने पर ही रूस के अधिकार की पूर्ण समाप्ति सभव होती। यह समस्या भी शीघ्र ही हल कर ली गयी जब अतत लार्ड एल्गिन के समय मे मार्च 1895 मे रूस के साथ एक औपचारिक समझौता कर लिया गया। इस समझौते के अतगत यह तय किया गया कि रूस की सीमा लेक विक्टोरिया से पूर्व चीन की सीमा तक है और इसके तथा हिन्दूकुश के बीच का क्षेत्र (जो पहले किसी के अधिकार मे नही था) अफगानिस्तान का है।

इस तरह प्रश्न हल कर लिया गया। अब केवल चीन और लद्दाख व अफगानिस्तान के बीच खाली जगह को ही भरा जाना था। कश्मीर के मानचित्र मे सीमा यारकद नदी से लगती हुई दिखाई गयी थी जबकि 1878 मे सिंकियाग पर अधिकार के बाद अपना क्षेत्र केवल किलिया, कोग्यार और साजू दर्रे तक ही मानते थे। बीच के क्षेत्र कुएन लुन पर किसी ने अधिकार नही जताया। ब्रिटिश तो उत्सुक थे कि चीन अपनी सीमा कश्मीर तक ले आये जिससे रूस को ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्रा मे प्रवेश का अवसर न मिले। 1889 मे यगहस्बैण्ड ने इन अनधिकृत क्षेत्रा का दौरा किया। उसकी कारवाई ने कशगर मे उपस्थित चीनियो को आतकित कर दिया। ब्रिटिशो को तब बडा सुखद आश्चर्य हुआ जब चीनियो ने यगहस्बैण्ड के उन लोगो के बीच उपस्थिति का विरोध किया जो चीन की सत्ता स्वीकार करते थे। चीन के अधिकार को उत्साहित भी किया गया और स्वीकार भी और 1890 मे लैंसडाउन की सरकार ने कश्मीर मे अपने कर्मचारियो को सूचना भेजी कि कराकोरम का पानी का क्षेत्र कश्मीर की उत्तरी सीमा और चीन की दक्षिणी सीमा मान ली जाय। 1892 मे चीन को इस रेखा पर खभे लगाते देखा गया और ब्रिटिश प्रसन्न थे कि एक समस्या समाप्त हुई।

चीन और अफगानिस्तान के बीच खाली पामीर का भाग एक दूसरी समस्या थी। पर यह भी 1895 के आग्ल-रूसी समझौत द्वारा हल की गयी जिसके द्वारा रूस ने इस रेखा को लेक विक्टोरिया के पूर्व मे असली चीनी सीमा तक बढाने

का निर्णय लिया। वैसे तो स्थलीय छानबीन न इन कागजी समझौता को सपादित करने म कठिनाइया पैदा की और ब्रिटिश के लिए इस स्वीकार करने मे थाडी कठिनाई भी हुई, पर कागजी निर्णयों को ही स्वीकार किया गया और 1895 म जो समझौता हुआ उसन उस समय की एक अति महत्त्वपूर्ण समस्या को समाप्त कर दिया। 'तमाम कठिनाइया के बावजूद 1873 की सीमा रेखा जो आक्सस के किनारे किनारे कोकचा जक्शन स लेक विक्टोरिया तक जाती थी और जिसे 1895 म स्वीकार कर लिया गया और जो और आग पूव होती पामीर पार करती चीन की सीमा तक चली जाती थी, आज तक वसे ही कायम है। आज यह सार्विमत केंद्रीय एशिया के साम्राज्य की दक्षिणी सीमा है और भारतीय महाद्वीप से इसकी राजनैतिक सीमा अति निकट है।"[1]

वजिरिस्तान

लाड ल सडाउन फाँवड स्कूल विचार स जुडे थ। लाड लिटन द्वारा प्रारभ की गयी यह नीति डफरिन के काल स होकर गुजरी। लाड लैसडाउन इस नीति का समापन चाहता था जो उसकी इस घोषणा से स्पष्ट है "मैं जल्दी स जल्दी सीमा के कबीलो का मिलाने की भावना की आवश्यकता से अति आकृष्ट हू।" पुन "इधर की घटनाओं ने यह आवश्यक कर दिया है कि सीमा के कबीलो के मामले में निहस्तक्षेप की नीति का परित्याग कर दिया जाय।"[2] व्हाइटहाल ने उसकी इस नीति का समथन किया। गोमाल को इसी कारण खोल दिया गया, क्वेटा की किलेबदी कर दी गयी और 1892 तक बोलन दर्रे म रेलवे लाइन दौडन लगी। गिलगिट एजेन्सी की पहले ही स्थापना हो चुकी थी। इन तीव्र कारवाइयो ने स्वाभाविक रूप से काबुल के सदेह को बढा दिया। पर वजिरिस्तान के लोग इससे अधिक परीशान हुए। नवीनतम घोषित अपहरण नीति भी गुप्त नहीं रह सकी और कबीले के लोगो ने आपस मे समझौता करना और योजना बनानी प्रारभ कर दी जिससे ब्रिटिश आक्रमण का मुकाबला किया जाय।

1889 मे ड्रण्ड की हुजा और नागर की यात्रा और इन राज्यो से प्राप्त सूचनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि यहा पर विद्रोह और विरोध भावना सरदारो मे व्याप्त है जो उन्हे दडित किय बिना काबू में नही आ सकती। हुजा के सरदार अली न विशेषकर कठिनाई पैदा की। रूसी अधिकारी ग्राम्चेवस्को ने दो बार इस राज्य का दौरा किया। एक फ्रासीसी छानबीन करने वाला दावज भी इसम

---

1 विस्तार के लिए देखें ऐल्डर जी० ज० पूर्वोद्धत पृ० 206 287 स्विसन, आयर नाथ वेस्ट फ्रंटियर पृ० 140 206।

2 वही, पृ० 208 209 से उद्धृत।

बड़ी रुचि दिखा रहा था। एक हुजाकुट शिष्टमडल ने कशगर की यात्रा की और अफवाह थी कि सफदर अली का ओश के रूसियो से पत्र-व्यवहार चल रहा है। रूसियो की पामीर मे उपस्थिति से ब्रिटिश पहले से ही चिंतित थे और यह खतरा था कि हुजा मे रूसी सेना न ला दी जाय जो गिलगिट से बहुत दूर नही था। 1890 के प्रारभ से चीन ने हुजा मे जो विशेष रुचि लेनी प्रारभ कर दी उसे भी एक तरफ नही रखा जा सकता था। कुछ समय से हुजा और कशगर के बीच भेंटो का आदान-प्रदान हो रहा था। अब एकाएक चीन ने यह कहना प्रारभ कर दिया कि ये भेंटे भेटें न होकर कर थी और ब्रिटिशो को उसके सहायक राज्य मे राजदूत या सेना भेजने का कोई अधिकार नही है। 1890 मे हुजा और नागर के राज्यो ने एक समझौता किया कि चाल्ट और चक्रोत किलो के बीच जाने वाली सडक को और ठीक ठाक करने का वे विरोध करेंगे। यह क्षेत्र ब्रिटिश अधिकार म था। सफदर अली ने कहा भी, "ये दो किले हमे अपनी पत्निया के पाजामे की डोरिया से भी अधिक पसद हैं।"

1891 मे यह अफवाह फैली कि इस कबीले के लोग इन किलो पर अधिकार करने का प्रयास करेंगे। मई मे डूरण्ड एकाएक गिलगिट से आगे बढा और नागर नेता उज्जखा को चाल्ट का मालिक बना दिया। पर वह यह जानता था कि ब्रिटिशो की इस सफलता ने उन्हे थोडा सा आराम दिया है। दिसबर 1891 मे दोनो सरदारो को दडित करने के लिए एक नियमित आक्रमण की व्यवस्था करनी पडी। सफदर अली और उज्ज खा दोनो ब्रिटिशा के सामने भाग खडे हुए और वहा पुन शाति हो गयी। ब्रिटिशो की यह सफलता आश्चर्यजनक थी क्योकि यहा पर 1895 के चितराल कठिनाई और 1897 के दर्दिस्तान के ऊधम के समय भी शाति बनी रही।

पर हुजा पर आक्रमण ने चीनियो को खिन्न कर दिया और उन्होने ब्रिटिशा से अपने सहायक राज्य मे उपस्थिति के कारणा की माग की। पामीर के रूसी उपस्थिति के कारण ब्रिटिश चीनिया से अनबन नही करना चाहते थे और लैंस-डाउन के कहने पर अतत एक समझौता किया गया जिसमे हुजा पर कश्मीर की सत्ता को स्वीकार करते हुए वहा पर चीन के हितो को भी स्वीकृति प्रदान की गयी।

ऐसी ही कठिनाई चिलास मे भी व्याप्त हो गयी जो गिलगिट को घेरे हुए था और जिसकी मैत्री गिलगिट की सुरक्षा के लिए आवश्यक थी। चिलास ने अपन क्षेत्र म कश्मीर के प्रतिनिधि की हत्या कर देने की चेष्टा की। सिंध के निकट थोडे से गोरा लोगा ने 1891 म ब्रिटिशो स चिलास बचाने का निवेदन किया। यह अत्यन्त उत्तम अवसर था। एक छोटी-सी सेना गोर भेज दी गयी और चिलास के किले पर अधिकार कर लिया गया जबकि कश्मीर की सरकारी सेना को रसाय छोड दिया गया। मार्च 1893 मे 1000 कबीलो का चिलास पर आक्रमण

आसानी से पराजित कर वापस कर दिया गया और कश्मीर के सैनिक किले पर अधिकार किये रहे।

पर चितराल के अमानुलमुल्क और जान्दुल के उमरा खा ने एक अधिक गभीर समस्या उत्पन्न कर दी। जान्दुल की मित्रता इसलिए आवश्यक थी क्योंकि चितराल के लिए यही से होकर एक छोटा रास्ता जाता था। चितराल से उत्तरी दर्रों को सुरक्षित बनाये रखने के लिए कहा गया। अमीर अब्दुल रहमान जान्दुल क्षेत्र म कुछ क्षेत्रो पर कुदृष्टि रखता था जिसे ब्रिटिशो को रोकना था। पर साथ ही अमीर से सबध भी बुरे नही बनाये जाने थे क्योंकि उस पर उत्तरी दर्रों की सुरक्षा तो निभर ही करती थी साथ ही उत्तर-पश्चिम सीमा की भी। सरदारो की इस आपसी द्वद्वता ने लैंन्सडाउन सरकार को काफी परीशान कर रखा था।

1892 मे सीमा पर स्थिति तनावपूण थी। पर अगस्त 1892 म चितराल के अमीर अमानुलमुल्क के मरने के काल तक यहा शाति बनाये रखी गयी। अमान ने अपने पुत्र निजामुलमुल्क को अपना उत्तराधिकारी बनाया था पर उसके दूसरे भाई अफजलुलमुल्क ने गद्दी छीन ली और निजाम को भागकर गिलगिट मे शरण लेनी पडी। ब्रिटिश इस मामले मे हस्तक्षेप नही करना चाहते थे इसीलिए अफजल को उन्होने स्वीकृति प्रदान कर दी। पर अफजल अधिक दिना तक शासन नही कर सका। वह एकाएक अपने चाचा शेर अफजल द्वारा आक्रमण कर मार डाला गया। चितराल मे प्रस्तुत अनवरत अव्यवस्था को ब्रिटिश अपने लिए खतरनाक मानते थे क्योंकि वे यह सोचते थे कि कही रूसी पामीर मे हस्तक्षेप न करें। इन परिस्थितियो ने गिलगिट के ब्रिटिश एजेन्ट डूरण्ड ने सोचा कि तुरन्त कारवाई आवश्यक है। इसलिए वाइसराय से स्वीकृति मे समय न बबाद कर वह सेना लेकर चितराल पहुच गया। अफजल अफगानिस्तान भाग गया और निजाम को पुन गद्दी प्राप्त हो गयी। नये शासको को अपने पडोस मे रूसी कार वाइ की ओर ध्यान दन और तत्सबध मे ब्रिटिशों को सूचना देते रहने को कहा गया और इसके बदले मे ब्रिटिशा का आर्थिक सहायता के लिए आश्वस्त किया गया। उसने आवश्यकता पडने पर ब्रिटिश अधिकारियो का स्वागत करने को भी कहा। पर वह स्वय जनता मे अलोकप्रिय था जिसके कारण पूरे राज्य मे राजनैतिक स्थिति पहले की ही भाति असतोषजनक बनी रही। अफगानिस्तान मे अफजल खा की कारवाइयो पर भी दृष्टि रखनी थी और उमरा खा की विश्व स्तता भी भरोसे की नही थी। पर फिर भी शाति कुछ काल तक चलती रही और 1894 मे लैंसडाउन के भारत छोडने के पहले यह सूचना भेजी गयी थी कि चिलास और चितराल दोनो स्थानो से जल्दी ही ब्रिटिश सेना वापस बुला ली जाय। लैंसडाउन के उत्तराधिकारी लाड एल्गिन ने भी इस नीति को स्वीकार किया और गिलगिट म भी सेना घटाने की घोषणा की गयी।

पर ब्रिटिशों ने दर्दिस्तान के अग्रिम क्षेत्रों से वापसी से पूर्व यह चाहा कि पामीर पर रूसी खतरे का कोई-न-कोई समाधान हो जाय। 1895 में इस समस्या के समाधान हो जाने के बाद, चितराल से सेना वापसी की तैयारियां हो गयी। पर ब्रिटिश सेना वहां से हट कि घटनाओं ने उसे मोड़ लिया। 14 मार्च को यानी रूस से पामीर समझौते के ठीक तीन दिन बाद 15 हजार ब्रिटिश सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया गया क्योंकि एक छोटी-सी ब्रिटिश सेना चितराल में घेर ली गयी थी। यह घटना तब हुई जब निजामुलमुल्क की हत्या उनके भाई अमीरुलमुल्क ने कर दी। शेर अफजल जो लोकप्रिय था अफगानिस्तान से चितराल की ओर रवाना हुआ। उम्र खां एराएक चितराल के दक्षिण की ओर प्रकट हुआ और चितराल का किला घेर लिया गया।

चितराल केन्स के आकार की एक छोटी जगह, पेशावर से लगभग 200 मील दूर ऊंचे ऊंचे पहाड़ों से जिनमें से सबसे ऊंचा 20 हजार फीट का था, घिरा हुआ, भिन्न भिन्न अस्सी हजार लोगों की बस्ती वाला जिसमें मुसलमान भी थे, एक समस्या हो गया। इसकी सामरिक महत्ता यह थी कि यह हिन्दूकुश पर्वतमाला के जल-क्षेत्र से 47 मील ही दूर था जहां से एक आक्सस की ओर पानी बहता था और दूसरी ओर भारत की ओर। इस रूसी महत्त्वाकांक्षा से भी बचाया जाना था जिसके कारण ब्रिटिश पहले भी बेचैन रह चुके थे।

400 ब्रिटिश सैनिक जिनका नेतृत्व रावटसन कर रहा था, शेर अफजल और उम्र खां के नेतृत्व में कबीलों की सेना द्वारा किले में घेर लिये गये थे। रावटसन को आगाह कर दिया गया कि वह किला खाली कर दे या परिणाम भुगतने को तैयार रहे। किले पर बार-बार आक्रमण किये गये पर कठिनाइयों के बावजूद रावटसन वहां जमा रहा। सहायता के लिए सूचनाएं भिजवा दी गईं। नौशेरा से सर राबर्ट लो के नेतृत्व में और गिलगिट से कर्नल जी॰जे॰ केली के नेतृत्व में सेना रवाना हुई। लो नौशेरा, शाहकोट और मालकंद दर्रों को पार करता हुआ मालकंद से स्वात घाटी की ओर जाने वाली सड़क को सुरक्षित करता हुआ आगे बढ़ा। मालकंद में 2000 कबीले के लोग मार डाले गये और 90 हजार तितर बितर कर दिये गये। लो ने स्वात और पंजकोरा नदियां पार कीं। दीर के खान ने हर तरह की सहायता की। मुंडा में उम्र खां के किले पर अधिकार कर लिया गया और सरदार स्वयं अफगानिस्तान भाग गया। केली भी 220 मील की यात्रा करता पहाड़ों, दर्रों और नदियों से जूझता आगे बढ़ा। रावटसन के पास सहायतार्थ ये लोग तब पहुंचे जब वह और उसके साथी भूख की पराकाष्ठा पर थे। चितराल में शांति पुनः स्थापित हो गई और एक छोटे बच्चे शुजाउलमुल्क को वहां का शासक बना दिया गया।

अब पुनः यह प्रश्न उभर कर सामने आया कि इतने बलिदानों के बाद क्यों चितराल से सेना वापस बुला ली जाय या उसे वहां रहने दिया जाय। लार्ड एल्गिन

ने सेना वहा बने रहने देना ही उचित माना क्योंकि चितराल की रक्षा गिलगिट की ओर से सुविधाजनक न थी। यह प्रस्तावित किया गया कि दीर सडक को स्थायी रूप से खोल दिया जाय और पूर्ण लम्बाई म इसकी सुरक्षा की व्यवस्था की जाय। यदि ब्रिटिश चितराल छोड देते तो इससे उनकी प्रतिष्ठा को भी आच आती और इस क्षेत्र मे अफगानो का षडयन्त्र भी बढ जाता। पूरी समस्या का पुनःपरीक्षण किया गया और एल्गिन ने अपने विचार इग्लैंड की उदार सरकार के पास भेजे। पर ब्रिटिश सरकार ने कहा कि पामीर समझौते के बाद चितराल म ब्रिटिश सेना रखने की कोई आवश्यकता नही है। इस तरह एक बार पुन सेना की वापसी के आदेश दिये गये।

पर सैनिको की वापसी के पूर्व ही स्थिति ने एक और नया मोड लिया। जून 1895 म ही उदार सरकार न एल्गिन के प्रस्ताव को नकार दिया था और अगस्त म उन्हे स्वय ही सरकार से हाथ धोना पडा जिससे 'फावर्ड नीति' को पुन प्रोत्साहन मिला। लार्ड कर्जन, जो इसी विचारधारा का था, ने यह घोषणा की कि "यदि आप एक बडी शक्ति से सीमा के मामले मे समझौता कर चुके हैं, तो एक पक्ष ही अपनी ओर से भाग खडा नही हो सकता। दोनो पक्षो को अपने-अपने क्षेत्र म अधिकार और प्रभाव बनाये रखना चाहिए।"[1] इसका अर्थ है कि रूस से पामीर समझौते के बाद चितराल से ब्रिटिश सैनिको की वापसी उचित नही है। इस तरह 1895 का चितराल समझौता अपरिवर्तित बना रहा।

लैंसडाउन अतत 1894 मे इग्लैण्ड वापस लौट गया। 1895 म उसे लार्ड सैलिसबरी ने युद्ध का सेक्रेट्री आफ स्टेट बनाया और 1900 मे विदेश सचिव। विदेश कार्यालय मे लैंसडाउन का प्रमुख कार्य 1902 म जापान से स्थापित मैत्री तथा 1904 की आग्ल फ्रेंच मैत्री थी। 1903 मे वह हाउस आफ लार्डस मे अनुदारवादी दल का नेता बना। उसे प्रथम विश्व युद्ध मे बिना पोर्टफोलियो के मन्त्री का पद प्रदान किया गया। 1927 म 82 वर्ष की आयु म वह एकाएक मर गया।

1 ऐल्डर जी० जे० पूर्वोद्धृत पृ० 297, स्विंसन आर्थर नार्थवेस्ट फ्रंटियर, पृ० 207 231।

18

लार्ड एल्गिन (1894-1899)

एल्गिन के आठवें अर्ल जेम्स ब्रूस के सबसे बड़े पुत्र विक्टर अलेक्जेंडर ब्रूस का जन्म 16 मई 1849 को हुआ। उनकी मां मेरी लुइसा लम्बटोन डरहम के प्रथम अर्ल की पुत्री थीं। उनकी शिक्षा ग्लेनालमाड और ईटन में हुई। अपने पिता की उपाधि उन्हें 1863 में प्राप्त हुई। शिक्षा प्राप्ति के बाद उनने उदार राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और वह स्कॉटिश लिबरल एसोसिएशन का प्रेसीडेंट हो गया। 1876 में उसने साउथेस्क के 9वें अर्ल की पुत्री कान्स्टेन्स मेरी से विवाह किया। 1886 के अल्प समिमिश्र काल में ग्लैडस्टन ने उसे हाउस होल्ड का कोषाध्यक्ष नियुक्त किया और जब 1892 में उदारवादियों की सरकार बनी तो एल्गिन को भारत के वायसराय का पद प्रदान किया गया।

आन्तरिक स्थिति

लार्ड एल्गिन भारत 1894 में पहुंचा। उसका प्रशासन का काल भारतीय इतिहास का अत्यधिक विपत्तिपूर्ण काल बताया जाता है। उसके काल में अत्यधिक भयानक दुर्भिक्ष पड़ा, दिल दहला देने वाले प्लेग ने अपना [illegible] देश की सीमा पर युद्ध हुए और भारतीय रुपये की क्रय शक्ति घट गयी। लोगों ने आह भरी और कष्ट सहा सरकार ने अपने वश भर सहायता की पर उसे [illegible] सफलता [illegible]। इस सबका संक्षेप यहां पर दिया जा रहा है।

एल्गिन के देश में प्रवेश करते ही गम्भीर घाटे ने उसको घेर लेना प्रारम्भ कर दिया। कपास को छोड़कर पुरानी 5% वाली चुंगी प्रत्येक आयातित वस्तु पर फिर से लगा दी गयी। पर समस्या का अब भी समाधान नहीं हुआ जिसके कारण कपास को भी चुंगी के दायरे में लाना पड़ा। पर यह सब भारतीय वस्तुओं के सुरक्षार्थ या मैनचेस्टर के विरोध में नहीं किया गया था। इसी तरह का कर भारतीय मिलों की वस्तुओं पर भी लगाया गया जिसके कारण भारतीय उत्पादकों को और सबसे अधिक हानि हुई। 1895 तक रुपये की कीमत गिरती ही गयी जिसके बाद इसमें कुछ स्थिरता के लक्षण दिखे। [illegible] 1 शिलिंग 4 पेन्स

इसका दाम बनाये रखा गया। दूसरे वर्ष आयात और आबकारी पर कर 3½% घटा दिया गया और इस तरह कुछ काल के लिए आर्थिक समस्या का समाधान कर दिया गया।

1896 97 में वर्षा न होने से ब्रिटिश भारत में ही केवल 2,25,000 वर्ग मील के क्षेत्र में सूखा पड गया। 6 करोड 20 लाख लोग भूख और मृत्यु के शिकार हो गये। इसमें से 1,25,000 वर्ग मील में और 3 करोड 20 लाख लोगो पर सूखे का अति गंभीर प्रभाव पडा। सरकार ने राजस्व कर माफ कर दिया और उन्हे सहायता पहुचाई जिसमे सरकार का 55 लाख स्टर्लिंग व्यय हुआ। पर फिर भी मानव-जीवन की हानि सबसे अधिक हुई। इस सम्बन्ध में जाच के लिए पंजाब के भूतपूर्व लेफ्टीनेन्ट गवर्नर सर जेम्स लायल को नियुक्त किया गया।

इसी समय, जब देश दुर्भिक्ष से परेशान था, संभवत हागकाग की जहाज पर अनाज के साथ आये चूहो के साथ देश में प्लेग ने प्रवेश कर लिया और बम्बई मे यह भीषण रूप से प्रकट हो गया। 1896 के शरद में प्रकट होकर फरवरी 1897 तक इसने ढाई लाख लोगो को शहर छोड देने के लिए बाध्य कर दिया। सरकार ने इस बीमारी के नियंत्रण और रोक के कडे उपाय किये। सूई, गृह निरीक्षण, रोगाणुनाशन और पृथक्करण आदि तुरन्त आयोजित किया गया और उसे कार्यरूप में परिणत किया गया। इतने कडे उपायो का जो सरकार ने किया, जनता ने विरोध भी किया। उनका यह सोचना था कि यह बीमारी विदेशी सरकार ने जान बूझकर थोपी है और वे अपने एजेन्टो से उनके व्यक्तिगत जीवन मे भी बाधा पहुचा रहे हैं। 1897 मे पूना मे दो ब्रिटिश अधिकारियो को प्लेग से बचाव काल मे ही मार डाला गया। मार्च 1898 मे बम्बई मे जनता ने दगा कर दिया। छापाई समाचार पत्रो ने सरकार के कारवाइयो के विरुद्ध आवाज उठाई जबकि सरकार जनता की भावना को न समझने का प्रयास करते हुए और कडी हो गयी और उसने षडयंत्रकारी प्रकाशन के लिए नियम और कडे कर दिए। बाद मे आगे चलकर 1898 मे सरकार को अपनी बेवकूफी समझ मे आई और यह समझते हुए कि जनता की कठिनाइया उचित हैं और उनसे अशान्तता का कोई संबंध नही है। सरकार ने कार्रवाई मे कुछ उदारता को स्थान दिया जिसके सचमुच अच्छे परिणाम हुए।

एल्गिन के शेष काम के विषय मे साधारण संदर्भ ही आवश्यक है। 1895 मे सेना मे एक सुधार किया गया। तीनो प्रेसीडेंसियो के लिए अलग-अलग सेनापतियो के स्थान पर अब एक सेनापति बनाया गया और उसकी सहायता के लिए 4 लेफ्टीनेन्ट जनरल नियुक्त किये गये। इनमे से एक एक बम्बई, मद्रास, बंगाल तथा पंजाब व उत्तर पश्चिम प्रान्त के लिए हुए। एक प्रशासकीय सुधार के

अतिरिक्त इसकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि इसने भारत की एकता को स्वीकृति प्रदान की।

लाड एल्गिन का एक अन्य काय राज्य के काय क्षेत्र मे देश म अफीम के तैयार करने का था। इसके लिए देश म बडा विरोध हुआ और यह कहा गया कि इससे प्राप्त आय अनैतिक है। कहा गया कि अफीम की बिक्री केवल औषधि क्षेत्र तक ही सीमित रहनी चाहिए। ससद के एक ऐक्ट के अनुसार 1893 मे एक आयोग नियुक्त किया गया जिसने 1895 म इस विषय पर अपनी रिपोर्ट दी। इसम विरोध करन वालो की बात को अस्वीकार कर दिया गया। तक म यह बताया गया कि यह चीन का काम है कि वह देखे कि उसे भारत से अफीम मगानी चाहिए या नही। यह भी कहा गया कि इस घडी इस आयस्रोत का त्याग अत्यधिक कठिन काम है। अफीम के विरुद्ध कारवाई करने और आदोलन करने वाले इससे सतुष्ट नही हुए और उन्होने अपना विरोध जारी रखा जिसका सुफल उन्ह मिला, पर एल्गिन के वापसी के काफी बाद।

पठान विद्रोह

लिटन द्वारा वर्दिस्तान मे अपनाई गयी 'फावड नीति' लाड लैं सडाउन और एल्गिन के काल मे समापनावस्था को पहुचा दी गयी। सीमा कबीलो के विषय म निहस्तक्षेप की नीति का परित्याग कर दिया गया और उनको मिलाने का काम तेजी से चलता रहा। पर इस नीति का जो परिणाम हुआ, जो बाद म सामने आया, वह कडुवा था। यूनान और तुर्की के युद्ध मे ब्रिटिशो के तथाकथित धोखा देने से तुर्की का शासक सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय आग-बबूला हो गया। काबुल का अमीर भी डूरण्ड पक्ति से सतुष्ट नही था। अफगान सीमा पर ब्रिटिशो की युद्ध जैसी कारवाई ने अमीर के सदेह को और बढा दिया और वह अफगानिस्तान ही म ब्रिटिश आक्रामकता का सदेह करने लगा।

इसलिए इसमे आश्चय नही हुआ जब वर्दिस्तान म अमीर और सुल्तान दोनो प्रकट हुए और कट्टर मुल्लाओ के कानो मे उत्तेजक अफवाह फैलाई जाने लगी। उनम से एक "पागल मुल्ला या 'स्वात का मुल्ला" एकाएक जुलाई 1897 मे प्रसिद्धि की ऊचाइयो पर पहुच गया। पागलपन की सीमा को छूने वाली अफवाहे फल गयी कि मुल्ला के पास अपार शक्ति है। वह गाव गाव 13 वष के एक बच्चे को लेकर घूमने लगा जिसे वह बताता कि, "यही एक दिल्ली की गद्दी का उत्तराधिकारी बचा है।" यह मुल्ला कुछ और कट्टर तत्वो के सपक मे था। विशेषकर वजीरिस्तान के मुल्ला पोविन्दा और हड्डा के मुल्ला से उसके सबध थे। अनजान जनता मे खूब प्रचार था और यह कहा जाने लगा था कि स्वात का मुल्ला ब्रिटिशो को चकदारा और मालकन्द से थोडे ही समय मे खदेड देगा। हजारो उसके साथ हो

गये। उनके पास तलवारें और राइफलें थी जिसका अर्थ था शीघ्र ही आगे बढ़ा जायगा। 1895 मे जो शांति दर्दिस्तान मे स्थापित की गयी थी वह एकाएक 1897 म टूट गयी। 'फारवर्ड नीति' सचमुच अपना प्रभाव दिखा रही थी। 'फारवर्ड स्कूल' के लोगो को सीमा पर उदार नीति त्यागने की भारी कीमत चुकानी पड रही थी। एल्गिन की चितराल मे बने रहने की नीति, दीर होकर सडक से जाने का प्रयास, कबीले के सरदारो को पर्याप्त आर्थिक सहायता आदि केवल दो वर्ष तक आगे चल सकी।

अफरीदियो, स्वातियो, उत्मन खेला मोहमदो और सालारजाइयो म शांति स्थापना के लिए नयी सेना द्वारा आक्रमण करना पडा। ब्रिटिशो को लडी कोटल और दरगाई की ऊचाइयो पर बडी हानि उठानी पडी। हजारो कबीलो के लोगो को मौत के घाट उतार दिया गया। लगभग 50 हजार सेना पूरे अशांत क्षेत्र म फैला दी गयी जिसने एक के बाद दूसरे गाव को जला डाला, घर बर्बाद कर दिये, खडी फसलें तहस-नहस कर दी। शांति फिर स्थापित हो गयी।

1897 के झगडे फसाद ने पुन विवचनाथ एक प्रश्न खडा कर दिया कि क्या 'फारवर्ड नीति' अच्छी है या नही। "लोग पूछने लगे कि क्या इसमे कोई बुद्धिमानी है कि मैदानो के पठानो पर वैसे ही शासन करने की चेष्टा की जाय जसे कि वे यूरोपीय हो। जबकि पहाडो के पठान अब भी पुराने जमाने के कबीलो की दशा मे थे? क्या यह किसी उपयोग का था कि एक से हथियार रखा लिये जाय जिससे दूसरा पहाडो से उतरकर उन्हे लूटे? क्या ब्रिटिश न्याय प्रणाली सर ओलाफ कैरो के अनुसार थी जिसमे कहा गया कि, "इसके वकील और इसकी अपीलें और इसके यूरोपीय अपराध मूल्यो को पार कर जाते है।' और प्रशासन क्षेत्र मे कोई भी उनका न्याय कर सकते है? "इसका मुख्य उद्देश्य पर्वतों के स्वतंत्र और सुन्दर जीवन पर जोर देना था।'[1] आर्थिक सहायता प्रदान किये जाने और भत्ता प्रदान करने की नीति, जिसे मुवाजिब भी कहा जाता था, पर जिसे इसके आलोचक 'अप्रत्यक्ष भयादोहन की नीति कहते थे भी विरोध का शिकार हुई। पिछले सघर्ष मे ब्रिटिशो को 70 लाख पौण्ड व्यय करना पडा था और कम से कम 800 सैनिको से हाथ धोना पडा था। क्या ऐसी सीमा को ब्रिटिश प्रशासन म बनाये रखना आवश्यक था? राबर्टस जो अबतक इगलड वापस आ गया था, उसने 1898 म हाउस आफ लार्डस में 'फारवर्ड नीति' पर विवाद का प्रारम्भ किया। उसने यह कहते हुए इसका समर्थन किया कि, "यह इस अपरिवर्तनीय तथ्य के कारण आवश्यक है कि बडी सैनिक शक्ति हमारे भारतीय अधिकार क्षेत्र के माथे पर निकट ही खडी है और यह किसी भी समय उसके लिए समस्या बन सकती है

1 दि मन आवर पूर्वोद्धृत • 257।

जिसकी रक्षा का वचन हमने दिया है।"[1] पर अपने वृहद अनुभव के बावजूद यह बडा बुजुर्ग सेनापति सत्य से थोडा हटा हुआ लगता था। लम्बे अर्से से (1849) कबाइलियो से सपर्क के बावजूद ब्रिटिश अब भी इनका चरित्र नही समझ पाये थे।

"उत्तर पश्चिम सीमा का नाम आने पर ससद मे इतने भावपूर्ण, गदे और आलोचनापूर्ण भाषण प्रारम्भ हो जाते कि तर्क और तथ्य ताक पर रख दिए जाते। 'फारवर्ड नीति' पूरा दिन ले लेती।" और एक ही वर्ष मे यह घोषित कर दिया गया कि सबसे अधिक 'रूस फोबिया' से ग्रस्त सर हेनरी रॉलिन्सन के शिष्य भारत वाइसराय बनाकर भेजे जा रहे हैं। 39 वर्षीय इस व्यक्ति का नाम था जार्ज नथानियल कर्जन। इस उच्च पद को प्राप्त करने वाला यह सबसे असाधारण व्यक्ति था।

1899 मे एल्गिन अपने पद से मुक्त हो गये। इसके बाद उन्हें गार्टर का नाइट बना दिया गया। शीघ्र ही उन्हे एक के बाद एक दो रायल कमीशनो का चेयरमैन नियुक्त किया गया। 1905 म उन्हे उदार मत्रिमडल मे उपनिवेश सेक्रेट्री बनाया गया। इसी समय विन्टसन चर्चिल ने उसके नेतृत्व म अडर सेक्रेट्री के रूप म कार्य किया। 1910 म उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी। 1913 मे उन्होने जरट्रूड लिलियन से दूसरा विवाह किया जो एक सैनिक अधिकारी की विधवा थी। उन्होने और कई उत्तरदायी पद प्राप्त किए। 1917 ई० म 68 वर्ष की आयु म उनकी मृत्यु हो गयी।

1 विन्सन आर्थर पूर्वोद्धृत पृ० 253 से उद्धृत।
2 वही पृ० 254।

19

लार्ड कर्जन (1899-1905)

अपनी वाक्पटुता और परिश्रम के लिए प्रसिद्ध, केड नेस्टन के बैरन कर्जन का जन्म 1859 में हुआ। ऊंचे कुल में जन्म होने के कारण, बताया जाता है, वह बचपन से ही श्रेष्ठता भाव से ग्रस्त था। आक्सफर्ड जहां उसने शिक्षा पायी, उसके साथी उसके विषय में निम्न पंक्तियां कहा करते थे—

> "जार्ज नथानियल कर्जन मेरा अभिधान,
> मैं समाज का सर्वाधिक उत्कर्ष प्राप्त हूं व्यक्ति महान,
> केश प्रसाधित रक्तिम पाटल से हैं मेरे लोल-कपोल,
> सप्त दिनों में एक बार ब्लेनहम होटल में अशन अडोल।"

1886 में 27 वर्ष की आयु में वह संसद सदस्य चुन लिया गया। यहां उसने एशिया और भारत के संबंध में पर्याप्त अनुभव और जानकारी प्राप्त की। उसने काफी समय तक भारत के अंडर सेक्रेट्री आफ स्टेट के पद पर कार्य किया। वह भारत बार बार आया और इसकी खूब यात्रा की। उसने एशिया की समस्याओं को लेकर तीन महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी। वह एशिया के शासकों से मिला और उनके देश व समस्याओं के विषय में जानकारी प्राप्त की। भारत में गवर्नर जनरल बनकर आने से पूर्व उसने भारत की उत्तर-पश्चिम समस्या की वृहद जानकारी प्राप्त की। 1898 में उसकी नियुक्ति की घोषणा की गयी। वह कलकत्ता जनवरी 1899 में पहुंचा। फ्रेजर ने लिखा है कि, "जिस अवसर की छिप छिपकर वह कामना करता था वह अंततः आ ही गया।"[1]

उसकी नयी नियुक्ति को लेकर भारत में तरह तरह की बातें कही गयी, कुछ तो पक्ष में और कुछ विपक्ष में। उदाहरणार्थ डेली ग्रैफिक ने लिखा कि सरकार और भारत के लोग "इससे बहुत लाभान्वित होंगे।' पर लिवरपूल मर्करी के अनुसार उसमें "युवाओं के स्वभाव के बहुत से दोष थे।' सैटर्डे रिव्यु ने लिखा कि "उसकी विश्रामहीनता और दर्प 'हमारे लिए" "भारत में कष्ट लावेंगे।"

---

1 फ्रेजर लोवट इंडिया अंडर लार्ड कर्जन ऐंड आफ्टर 1911।

2 रोनाल्डशे अर्ल आफ द लाइफ आफ लार्ड कर्जन भाग 2 पृ० 295।

आन्तरिक प्रशासन

उत्तर-पश्चिम सीमा समस्या एव कृषि, सिंचाई, रेलवे, पुलिस, शिक्षा, लोकप्रिय राजनैतिक विद्रोह आदि से सबधित समस्याओ के अतिरिक्त कर्जन की भारत म सबसे प्रमुख देन प्लेग और दुर्भि ा क्षेत्र मे थे जिसके कारण पुरानी अनुपयुक्त नौकरशाही ने "प्रशासन के सामने एक नयी और परेशान करनेवाली समस्या रखी जिसके लिए आवश्यक और कठोर औषधि की आवश्यकता थी।"[1]

अगस्त 1896 मे यह सही पता चला कि बम्बई नगर म गिल्टी वाला प्लेग फैल गया है। यह वह काल था जब इस बीमारी के विषय म न तो सरकार को ही जानकारी थी और न ही जनता को। यह 1905 के प्लेग आयोग से ही पता लगा कि यह बीमारी 1896 म हागकाग से अनाज के साथ चूहो के साथ आ गयी। बीमारी चूकि अधिकतर भारतीयो मे फली, जनता ने यह समझा कि इसे यूरोपीय ले आय हैं। उनका यह विश्वास इसलिए और जोर पकड गया क्योकि बीमारी के विषय मे न जानने के कारण, इसे रोकने के लिए बम्बई की लाड सन्डहस्ट की सरकार ने कठोर कदम उठाने प्रारभ किय। बीमारी के क्षेत्र स लोगो को निकालना, सुई लगाना, व्यक्तिगत निवासो की जाच जिसे तीव्रता और कठोरता से किया गया आदि—इस सबसे जनरोप म वद्धि हुई और लोग य कहने लगे कि उनके व्यक्तिगत जीवन म हस्तक्षेप किया जा रहा है और उनकी महिलाओ की इज्जत खतर म है। प्लेग के विरुद्ध किये गये और प्रयासो न जन असतोप को और बढाया। हिंदू और मुसलमान सभी असतुष्ट हो गये। माच 1898 म मुस्लिम जुलाहो ने विद्रोह कर दिया जिसम कई को गोली मार दी गयी। दो ब्रिटिश अफसरो लेफ्टीनन्ट आयस्ट और रैन्ड जो विशेष प्लेग ड्युटी पर थे, मार डाल गये। फिर भी यह बीमारी बम्बई से देश के और भागो म फैलती गयी और 1911 की जनगणना ॥ पता चला कि लगभग 80 लाख लोग देश मे प्लेग की बीमारी से मर गय।

पर देश म मुसीबत लाने के लिए केवल प्लेग ही नही था। प्लेग के बाद दुर्भिक्ष पड गया और कहीं-कहीं पर दुर्भिक्ष के बाद प्लेग। इसके बाद इन्फ्लूयन्जा और मलेरिया की बारी आयी। सच पूछा जाय तो 1896 से 1900 के बीच का भारत कष्टो का भारत था जिसमे करोडो न कष्ट सहा और लाखो ने जान गवाई। पूरे भारत म 1896 97 के बीच पानी नहीं बरसा। केवल बगाल इसका अपवाद रहा। सर जेम्स लायल के नेतत्व म एक आयोग बैठाया गया। पर सरकार इन सस्तुतियों पर विचार करती कि इसी समय पूरे देश मे सूखे का आगमन हो गया 'जो सीमा और गहनता दोनो मे पिछले 200 वर्षों मे नहीं देखा गया था।' 1899 1900 का दुर्भिक्ष 1896 97 के बाद जल्द ही आ गया जिसमे 4 लाख की मौत

1 रोनाल्डशो अर्ल आफ द लाइफ आफ लाड कर्जन भाग 2 पृ० 291।

का ब्रिटिश भारतीय तथा भारतीय राजाओ का क्षेत्र प्रभावित हुआ। गुजरात और बडौदा की दुर्गति हो गयी। तथ्य मे भोजनाभाव तथा साथ ही काय की भी कमी ने कठिनाइया बढा दी। जो रेलवे लाइनें बनी थी उनका उद्देश्य सामरिक था आर्थिक और सामाजिक नही था इस कारण उनसे भी कोई लाभ नहीं मिल पाया। पानी की भी कमी थी, और लोगो के पास भोजन, जानवरो के चार तथा वह सब सामग्री जिससे आदमी औरत और पशुओ का पट भर सकता, उपलब्ध नही था। लाग सैकडा-हजारो मे मरने लगे। सरकार असहाय, चिडचिडेपन, बेवकूफी और लापरवाही से इसे देखती रही। दुर्भिक्ष प्रशासन प्रान्त का मामला होने के कारण कुछ प्रान्ता न तो फजूलखर्ची का प्रदशन किया तो कुछ ने हाथ खीचकर काय किया। कुछ तज थे तो कुछ धीमे। 1883 के दुर्भिक्ष के नियमो व सिद्धान्तो का अनुपालन परिश्रम और ईमानदारी से नही किया जा रहा था। लार्ड कर्जन के प्रभावित क्षेत्र मे दौरा ने दुनिया मे इन स्थानो की समस्याओ की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया और भरतीय सरकार इन मुसीबता के उत्तरदायित्व के लिए आलोचना का पात्र बनी। बहुत से आलोचको का तो यह कहना था कि सरकार की राजस्व कर नीति ने जनता के पास अपनी सहायता के लिए कुछ शेष रखा ही नही जिससे दुर्भिक्ष की स्थिति देश मे और तीव्रतर हो गयी। दुर्भिक्ष सहायता की कारवाई रुक रुककर चलायी गयी।

इस दुर्भिक्ष के कारण देश की बडी हानि हुई। गुजरात मे तो पूरा गोवश ही समाप्त हो गया। केवल ब्रिटिश भारत मे ही व्यक्तियो के मरने वालो की सख्या 15 से 20 लाख के बीच बतायी गयी। तथ्यगत हानि तो और रही होगी। यदि इसमे भारतीय राजाओ के राज्य को जोड दिया जाय तो यह हानि और बढ जायेगी।

दुर्भिक्ष से बचने के उपाय

स्पष्ट था कि कर्जन कौन सा प्रशासकीय पथ अपनायेगा। मार्च 1905 के अपने बजट भाषण मे उसने कहा "हम पूरे क्षेत्र मे सावधानीपूर्वक ऐसे कदम उठाने होगे जिससे कि हम पुन इस तरह की कठिनाई" से निपट सकें।

लार्ड कर्जन ने ऐंथनी (बाद मे लार्ड) मैकडानेल के नेतृत्व मे दुर्भिक्ष पर रिपोर्ट देने के लिए एक आयोग नियुक्त किया। 1901 मे उसे रिपोर्ट मिली जिसम सहायता काय प्रणाली म कुछ दोष बताकर सुधार के लिए कुछ तरीके सुझाय गय थे। यह बताया गया कि ऐसी स्थिति मे यह आवश्यक है कि जनता मे नैतिक बल पैदा किया जाय जो नैतिक सामरिकता की नीति द्वारा तीन तरह से किया जा सकता है जैसे पहले तो इस अवस्था के आते ही राजस्व कर की वसूली को स्थगित कर दिया जाय, दूसरे दुर्भिक्ष के विरुद्ध सहायता काय शीघ्र ही प्रारम्भ कर दिया

जाना चाहिए और शीघ्र बीज और पशु खरीदने के लिए रुपये बाटा जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त इस आयोग ने यह भी संस्तुत किया कि सरकार को गैर सरकारी सहायता को उत्साहित भी करना चाहिए और आमंत्रित भी करना चाहिए, गावो मे निर्माण काय प्रारभ कर देना चाहिए, रेलवे लाइनो को और बढाना चाहिए, सिंचाई की व्यवस्था मे वृद्धि करनी चाहिए और कृषको के लाभ के लिए कृषि बैंको की स्थापना की जानी चाहिए। यह पहली बार संस्तुत किया गया कि सरकार को पशुओ के चारे की भी व्यवस्था करनी चाहिए और प्रभावित क्षेत्र से इन्हे निकलवाना भी चाहिए। इस तरह की संस्तुतिया थी जिनके आधार पर दुर्भिक्ष कोडो मे परिवतन किया गया।

कृषि सुधार

कृषि की ओर अभी तक ध्यान नही दिया गया था। सरकार चूकि मात्र भू राजस्व मे रुचि रखती थी इसलिए इस क्षेत्र मे वैज्ञानिक प्रयोगो से उत्पादन बढाने के लिए कुछ नही किया गया था। लार्ड कर्जन ने पहली बार इस ओर गभीरता से ध्यान दिया और इस सबध मे कुछ सुधार भी किये। वसे य सब उसके काल मे ही प्रारभ नही हो गये, पर भविष्य के लिए इससे दिशा निर्देश तो प्राप्त हुआ ही।

इस क्षेत्र मे एक सबसे महत्त्वपूण सुधार भू राजस्व प्रशासन के क्षेत्र म था। इसके सबध मे एल० फ्रेजर ने लिखा है "लार्ड कर्जन ने भारत के राजस्व प्रशासको मे अपने काय द्वारा एक प्रतिष्ठापूण जगह अर्जित की।"[1] इस प्रथा मे कई गभीर दोष थे। इनमे सबसे प्रमुख तो था अत्यधिक औपचारिकता और भीरुतापूण काय। बदोबस्त अधिकारियो मे यह अवधारणा ही पायी जाती थी कि कर की दरें बढा दी जाय। कुछ प्रान्तो मे कर वसूली मे बडी कडाई की जाती थी और कृषक बुरी तरह परेशान किये जाते थे। लोगो ने यह धारणा बना ली थी कि दुर्भिक्ष पानी के अभाव मे उतना नही पडता जितना कि सरकार के जनता से कठोर मागो के कारण। यह मत हो सकता है बढा-चढाकर कहा गया हो पर कर्जन का इससे सबधित उत्तर सतोषजनक नही था।

दिसम्बर 1900 मे 11 पद निवृत्त भारतीय सिविल सेवाओ मे अच्छे अधिकारियो ने, जिनमे से 10 अंग्रेज और एक भारतीय था, सक्रेट्री आफ स्टेट के पास एक स्मरण-पत्र भेजा, जिसमे उन्होंने तत्कालीन राजस्व प्रशासन म दोष गिनाये। उन्होंने संस्तुत किया कि (1) भू राजस्व की माग जहा पर किसान को सीधे लगान देना हो लाभ के 1/2 से अधिक नहीं होना चाहिए। पर इसम स

---

1 फ्रेजर पूर्वोद्धृत पृ० 356।

किसान के कृषि व्यय निकला होना चाहिए, (2) जब जमींदार के माध्यम से कर लिया जा रहा हो तो यह 1/2 होना चाहिए। (3) जमीन का बन्दोबस्त 30 वर्ष के लिए किया जाना चाहिए (4) किसान के लगान मे तभी वृद्धि होनी चाहिए जब कीमतें बढ जाने के कारण या सरकार द्वारा दी गयी सिंचाई सुविधाओं के कारण भूमि की कीमत बढ गयी हो, और (5) भूमि पर स्थानीय कर 10% से अधिक कतई नही बढना चाहिए।

लार्ड कर्जन की सरकार ने उपरोक्त स्मृति पत्र का उत्तर अपने 16 जनवरी 1902 के भूमि प्रस्ताव मे दिया। उन्होंने प्रथम दो बातो पर कोई नियम बनाने से इनकार कर दिया। तीसरी बात के लिए एक सतर्कतापूर्ण उत्तर देते हुए कहा गया कि यह कोशिश की जायेगी कि 30 वर्ष से कम के बन्दोवस्त को समाप्त कर दिया जाय। चौथे प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया गया जबकि पाचवें के विषय मे कहा गया कि इसपर पहले से ही कार्य हो रहा है। राजस्व वसूली म और अधिक ढिलाई बरतने को कहा गया और जहा पर स्थानीय क्षेत्रों म पतन हुआ हो वहा कर म कमी करने पर भी विचार करने को कहा गया। भारतीय प्रतिनिधि आर० सी० दत्ता ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि 'लार्ड कर्जन ने इस विषय पर एक राजनीतिज्ञ की दृढ़ता का महत्त्वपूर्ण परिचय दिया।" पर बाद में उसने लिखा, यदि इस सबध ब्रिटिश ताज न कुछ स्पष्ट और कामकाजी सीमाए रैय्यतवाडी भू-क्षेत्रो मे सरकार के ऊपर लगायी होती और इस तरह के क्षेत्रो मे राजस्व वृद्धि हेतु बुद्धिमत्तापूर्ण और समान सिद्धान्तों को परिभाषित किया होता तो सरकार का यह प्रस्ताव लाखो कृषको को आश्वासन और रक्षा दोनो प्रदान करता जिसकी उन्हें इतनी आवश्यकता थी।'

सक्षेप मे लार्ड कर्जन ने सपूर्णता म कृषको की दशा ठीक करने के लिए निम्न कदम उठाये। 1849 मे पजाब अपहरण का एक भयानक परिणाम किसानो के ऊपर ऋण वृद्धि म सामने आया था जो लार्ड कर्जन के काल तक और वृहदाकार हो गया था। रेलवे लाइनो और सचार के अन्य साधनो ने पजाब के कृषि उत्पादनो का सरलता से बाजार मे पहुचाने मे सफलता प्राप्त की। इस कारण इन वस्तुओं का दाम बढ गया जिससे भूमि के दाम मे भी वृद्धि हो गयी। अब किसान यह समझने लगा कि जो जमीन पहले कठिनाई से बेची जा सकती थी अब अच्छे दामो मे बिक सकती थी। इस जानकारी के मनोवैज्ञानिक प्रभाव से ही वह विवाह जैसे सामाजिक कार्यों मे फजूलखर्च हो गया। भूमि गिरवी रखी जाने लगी और अतत सूदखोर गैर कृषिकर्मी के हाथ मे पहुचने लगी जिसे इसम अनाज पैदा करने की न तो जानकारी ही थी और न इच्छा ही। इस तरह जहा एक ओर किसान बर्बाद हो गये दूसरी ओर कृषि उत्पादन म भी कमी आयी। इससे गभीर समस्या उत्पन्न हो गयी।

लाड कजन ने बुद्धिमत्ता से कारवाई करते हुए पजाब लैंड एलियेनेशन ऐक्ट (1901) पारित किया जिसमे यह शर्तें रखी गईं कि किसान की पैतक भूमि अब किसी मुकदमे मे विजय के कारण बेची नही जा सकती और न बिना सरकार की पूव अनुमति के इसे कोई खरीद ही सकता है। 1901 क इस सुधार के सम्ब घ म पायनियर ने लिखा कि 'यह जिसकी लाठी उसकी भैंस' सिद्धात वाला के लिए एक बहादुरीपूण विरोध था।' पजाब कृषक सचमुच ही बच गए और लाड कर्जन ने जनता से एक अपील मे कहा, 'सरकार न अपनी भूमिका अदा की है, मैं उन्हे उनकी अपनी भूमिका निभान के लिए आमत्रित करता हू।"

लाड कजन के काल म एक दूसरा महत्त्वपूण सुधार कोआपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट था जिन्होंने देहात के सूदखोरो का स्थान लिया। मद्रास सरकार के फ्रेडरिक निकलसन और एम० डूपरनेक्स आई० सी० एस०, जिन्हे इटली और फास म एसी सासाइटियो की कायशैली का विस्तत ज्ञान था, कजन की इसमे सहायता की। कृषि बैंक और कोआपरेटिव सोसाइटियो को देहात और शहरा मे पूरे दश म स्थापित किया गया। कोआपरेटिस ने लोगा को आपसी सहायता और आत्म-निभरता का पाठ पढाया पर प्रगति धीमी रही जिसके अनेक कारण थे। कोआपरेटिव का प्रयोग देश मे अभी प्रारभिक अवस्था मे था। लोग इसके लिए अभी पूणतया शिक्षित नही थे और अभी उनका वनिया से अधिक लगाव था जिसे उन्हें कोई प्राथना पत्र नही दना पडता था और न रुपया प्राप्त करने के लिए औपचारिकतायें निभानी पडती थी। इसके अतिरिक्त इन सोसाइटियो की स्थापना ही एक बडी समस्या थी जो इतनी सुविधा से और इतनी जल्दी नही निभाई जा सकती थी। पर इसके लिए कजन की प्रशसा करनी ही होगी कि उसने इस दश मे पहली बार इस प्रथा की शुरुआत की।

एक अय कृषि से सबधित काय 1905 का सस्पसस ऐण्ड रेमिशस' का प्रस्ताव था जिसमे यह बताया गया कि अब कृषक के 50% फसल बर्बाद हो जाने पर राजस्व वसूली तुरत रोक दी जाएगी, तथा फसल की बर्बादी का अनुमान जिला अधिकारी ही करेगा। इसके लिए और कही से आदेश नही लेन होंगे। कजन के भारत पहुचन के समय भारत मे केवल 4 कृषि सस्थाए थी। ये पूना, नागपुर, सईदपुर और कानपुर म थी—पर सतोषजनक ढग से काम नही कर रही थी। प्रातीय सरकारो के कृषि फाम भी नई जानकारी और जनता की शिक्षा के स्रोत नही रह गए थ। गभीर धनाभाव भी कृषि की वैज्ञानिक प्रगति मे बाधा डालता था। लाड कजन के नीति की कल्पना उसकी घोषणा स की जा सकती है जिसमे उसने कहा कि, 'पहली बार भारतीय कृषि के सबध मे विस्तार मे वैज्ञानिक आधार पर अध्ययन व व्यवहार के द्वारा सुधार की चेष्टा की गई। 1901 मे नई नीति के नियत्रण और निर्देश क लिए कृषि विभाग म एक

इन्पेक्टर जनरल नियुक्त किया गया। एक अमेरिकी दानी द्वारा 20 हजार पौंड दान प्राप्त कर बगाल म पूसा मे एक कृषि शोध सस्थान खोला गया जिसका उद्देश्य 'इस उष्णकटिबंधीय कृषि क्षेत्र की मूलभूत समस्याओं की जानकारी और निदान था।' कजन न प्रान्तो के लिए कृषि अनुसधान और अध्ययन पर काम हेतु प्रतिवर्ष 1 30 000 पौड देने का भी निणय लिया।

सिंचाई के क्षेत्र मे भी कुछ काय किया गया। जनरल सर आथर काटन जैसे भारत म आधुनिक सिंचाई के दूत द्वारा, कृषि उत्पादन मे वृद्धि हेतु तथा दुर्भिक्ष पुन न फैले उसके हेतु अधिकारियो के समक्ष विस्तृत सिंचाई योजना प्रस्तुत की गई। कजन न सर कालिन स्काट मानसरीफ की अध्यक्षता म एक आयो इसकी जानकारी के लिए नियुक्त किया जिसन अपनी रिपोट 1903 म प्रस्तुत की और सस्तुत किया कि सरकार को इस काय पर अगले 20 वर्षों म देश की 65 लाख एकड मे सिंचाई की व्यवस्था हेतु 44 करोड रुपया व्यय करना चाहिए। पर कजन न उसकी सभी सस्तुतिया नही मानी। सिंचाई के लिए एक इन्स्पेक्टर जनरल की नियुक्ति की गई। पहले से बनी पजाब की नहर व्यवस्था में विकास का काय प्रारम्भ किया गया तथा लोअर बडी दोआब अपर चेनाब और अपर झेलम मे नहर निर्माण का काय प्रारम्भ किया गया। लाड कजन की सरकार न इस सम्बध म आने वाले वर्षो म काम आन वाले कुछ निर्देशक सिद्धान्त भी बनाए।

दुर्भिक्ष ने दोषपूण रेलवे व्यवस्था को भी सामने ला उपस्थित किया। कजन के पूव रलवे का प्रबध दो तरह से होता था, एक तो कम्पनी के प्रबध के अन्तगत और दूसरा राज्य प्रबध के अन्तगत जो सावजनिक निर्माण विभाग के हाथ म होता था। इस सम्बध मे विशेष ज्ञान रखने वाले सर टामस राबट सन को रिपोट देने को कहा गया जिसने 1903 मे अपनी रिपोट प्रस्तुत की और यह सस्तुत किया कि रेलवे के कायकलाप मे पूणतया परिवतन की आवश्यकता है और इसे 'भूतकाल की लीक से हटाकर व्यापारिक आधार प्रदान किया जाना चाहिए।" इन सस्तुतियो पर ध्यान देते हुए कजन न तीन लोगो का एक रलवे बोड बनाया जिसम एक चेयर मैन और दो सदस्य रखे गए। इन्हे भारत सरकार के व्यापार विभाग के अधीन रेलवे म प्रशासन और काय करना था। नई रेल लाइनो का काय भी प्रारम्भ किया गया जिसम प्रशसात्मक प्रगति हुई। इसके फलस्वरूप जब कर्जन ने भारत छोडा, उस समय तक 6 000 मील लम्बी रेलवे लाइन बिछाई जा चुकी थी जिसके फलस्वरूप अब रेलवे लाइनो का सम्पूण जाल सब मिलाकर 28,150 मील हो गया था। जबकि 3,167 मील रेलवे लाइनें अभी निर्माण की स्थिति म ही थी।

प्रशासकीय सुधार

सितम्बर 1905 मे शिमला के एक विदाई समारोह मे कर्जन ने कहा "यदि मुझसे अपने काम को एक शब्द मे परिभाषित करने को कहा जाए, तो मेरा उत्तर होगा—कार्यक्षमता। यही मेरा सिद्धान्त था और यही हमारे प्रशासन की कुंजी।' इस देश म पहुचने के बाद पहली चीज जो उसने दखी वह प्रशासकीय सगठन मे गम्भीर दोष की थी जिसे लेकर उसे देश का शासन चलाना था। इसम धीमापन और औपचारिकताओ का बोझ था। कर्जन ने केन्द्रीय सचिवालय के विषय मे कहा था कि यह "एक बडा दलदल या गड्ढा है जिसमे सभी प्रश्न डूब जाते हैं। जब तक आप काम रुकने वाले स्थान पर कागज को चिह्नित न कर दें और समय समय पर जाकर उसे उखाडकर ऊपर न ले आयें, आपको इसम कुछ होता नजर नही आएगा।" एक मामला जिस पर विशेष निर्णय लेना था कर्जन को पता लगा कि वह 61 वर्ष से निर्णय की प्रतीक्षा मे पडा है और ऐसे ही अन्य मामले थे जिससे यह निष्कर्ष निकलता था कि सम्पूर्ण सगठन को ही झकझोरने की आवश्यकता है। केवल "स्क्रू को कसने या पहिया मे तेल डालने से ही" काम नही चलना था।

उसके सुधारो के अन्तर्गत अधिकारियों को यह कडी सूचना प्रसारित की गई कि वे विभाग के नोटिंग्स को अनुपात म कम करें। विभागो को जहा तक सम्भव हो, अपना कार्य निबटाने मे आपसी बातचीत से निबटाने को कहा गया। सचिवालय की कार्य पद्धति के लिए एक तरह के नियम बनाए गए। ऊपर से नीचे तक सभी कर्मचारियो के लाभार्थ वेतनमानो मे सशोधन किया गया। सरकारी रिपोर्टों और आकडो को कम करने के लिए प्रयास किए गए। प्रान्तीय सरकारो से भी अपनी प्रशासकीय मशीनरी मे सुधार के लिए कहा गया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि "पूरी शासन व्यवस्था तेजी से कार्य करने के प्रभाव से जागरूक हुई और शासन मे एक शक्ति आ गई।"

बम्बई और मद्रास की सरकारो की स्वतन्त्रता को उसने पसन्द नही किया और उसने मई 1899 म सेक्रेट्री आफ स्टेट को लिखा, "विकेन्द्रीकरण तो ठीक है, पर बम्बई और मद्रास के मामले म तो यह इस सीमा तक पहुच गया है कि केन्द्र सरकार का कही अस्तित्व ही नही मालूम पडता। वहा पर छोटे छोटे राजाओ को भी यह नही जानकारी है और वे अपने हो हाथ म सारे अधिकार रखे हुए हैं।" उसने सस्तुति भेजी कि प्रेसीडेन्सी गवर्नरो की स्थिति घटाकर यू०पी० के लेफ्टीनेंट गवर्नर के बराबर कर दिया जाय। इससे आई० सी० एस० के प्रति आकर्षण मे वृद्धि हो जायेगी। यद्यपि उसके प्रशासकीय केन्द्रीकरण की बात अस्वीकार कर दी गई पर इससे यह स्पष्ट हो गया कि उसका मस्तिष्क किस दिशा मे कार्य कर रहा था।

कर्जन के सुधारों के फलस्वरूप स्पष्टतया कार्यक्षम प्रशासकीय मशीनरी का प्रारम्भ हुआ। पर इसमें बुराई यह थी कि इसमें आकर्षक व्यापारिक खर्च का अभाव हो गया। फ्रेजर सरकारी रिपोर्ट के सम्बन्ध में लिखता है कि यह एक 'कल्पनापूर्ण सूखी हड्डियों का गणित समूह था।" कार्यक्षमता के छोटे छोटे केन्द्रीयकरण को ले आया गया, और नई व्यवस्था में भारतीयों पर अविश्वास प्रधान रूप से दिखाया गया और साथ ही उनमें अयोग्य एवं बेईमानी के भी दर्शन किए गए। यह सोचा गया कि अंग्रेज अपनी उच्च शिक्षा के कारण उच्च स्थानों के योग्य हैं। भारतीयों के विचार और इच्छा को जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रशासन की कुंजी थी कि "नौकरशाही को यह पता है कि जनहित में क्या है।" इस तरह कर्जन का इस क्षेत्र में जो भी प्रतिष्ठा प्राप्ति का अधिकार हुआ, वह उसके संकुचित दृष्टिकोण और क्रुद्ध स्वभाव के बादलों के नीचे ढक गया।"[1]

आर्थिक सुधार

19वीं सदी के अन्त ने देश की आर्थिक दशा में निश्चित आर्थिक उत्थान देखा। 1899 के आगे के बजटों ने अच्छे लाभ दिखाने प्रारम्भ किए और इस कारण कर्जन के लिए कुछ कर हटाना सरल हो गया। इंडिया आफिस में 1898 में नियुक्त एक आयोग ने यह संस्तुति की थी, ब्रिटिश सिक्का भारत में 15 रुपए की कीमत पर वैधानिक सिक्का बना दिया जाय और कर्जन ने इसके लिए सितंबर 1899 में एक एक्ट पारित कर दिया। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि इस देश में सोना आना प्रारम्भ हो गया। लार्ड कर्जन ने चांदी के सिक्के से लाभ प्राप्ति के लिए सोने का एक अलग से रिजर्व फंड बनाया जो कर्जन के भारत छोड़ने के समय तक बढ़कर 90 00,000 पौंड हो गया।

देश में आर्थिक स्थिति में इस सुधार से जनता के कुछ कष्टों को दूर करने का प्रयास किया गया। कुछ कर समाप्त कर दिए गए और वे प्रान्त जिन्होंने दुर्भिक्ष का कुफल सबसे अधिक भोगा था, उन्हें 1902 में 12½ लाख रुपया उनके राजस्व में वापस दे दिया गया। नमक कर घटा दिया गया। 1904 आते-आते यह दर 1856 के बाद सबसे कम हो गई।

उसकी केन्द्रीकरण की नीति में एक ही अपवाद था—आर्थिक सुधार के रूप में चलती रहने वाली उसकी आर्थिक विकेन्द्रीकरण की परम्परा। 1882 से चल

---

1 विस्तार के लिए देखें फ्रेजर इण्डिया अंडर कर्जन एण्ड आफ्टर 1911 दुर्गादास इण्डिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड आफ्टर भी देखें एडवर्ड माइकेल हाई नून आफ एम्पायर।

था रहे पचवर्षीय प्रथा के दोष को समाप्त करने के लिए लार्ड कर्जन ने 1904 में अर्द्ध स्थायी व्यवस्था' का प्रारम्भ किया जिसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रान्त के लिए उसके राजस्व का भाग स्थायी तौर पर निश्चित कर दिया गया जिसे विशेष आपात काल ही मे बदला जा सकता था या स्पष्ट अनुभव से इसके कम होने पर भी इसमे परिवर्तन किया जा सकता था। नई व्यवस्था मे वार्षिक अनुदान विशेष उद्देश्यो के लिए प्रदान किए जाते थे और प्रान्तीय लाभ प्रान्तो मे ही रह जाते थे। अलग-अलग मदो की प्रथा पहले जैसी ही चलती रही और ऐसे ही प्रान्तीय बजटो पर केन्द्रीय नियन्त्रण जारी रहा। प्रान्तीय नियुक्तिया भी पहले जैसे ही होती रही।

नई आर्थिक व्यवस्था का गुण यह था कि प्रान्तो ने आर्थिक मामलो मे अधिक स्वतन्त्रता अर्जित की और आर्थिक आशाओ के मामले मे अधिक निश्चितता आ गई। चूकि लाभ अब उन्ही के पास बना रहता था, नई व्यवस्था ने व्यय के मामले मे कमखर्ची को प्रोत्साहित किया और आर्थिक मामलो मे अस्पष्टता की बात समाप्त हो गई।

पुलिस

देश की पुलिस व्यवस्था मे भी कुछ दोष थे। पुलिस की सेवा मे अधिकतर लोग अशिक्षित थे और अकार्यक्षम भी। लोग उन पर अपराधियो से मिले रहने का सदेह भी करते थे। 1902 मे कर्जन ने इस मसले पर रिपोर्ट देने हेतु सर ऐन्ड्रिन फ्रेजर के नेतृत्व मे एक आयोग नियुक्त किया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे कहा, "पुलिस शक्ति नितान्त अयोग्य है, यह सामान्य तथा भ्रष्ट और निरकुश मानी जाती है और यह पूर्णतया जनता का विश्वास और मित्रतापूर्ण सहयोग पाने में असफल रही है।' दोषो को दूर करने के लिए आयोग ने सस्तुति दी कि पुलिस विभाग मे प्रोन्नति के स्थान पर सीधे भर्ती की जाय। पुलिस शक्ति मे केवल "इगलण्ड से युरोपीय सेवा के व भारत में प्रान्तीय सेवा के लिए भर्ती की जाय। इसके अतिरिक्त अपर सर्वडिनेट सर्विस मे इस्पेक्टरो और सब इस्पेक्टरो की भर्ती तथा लोअर सबर्डिनट सर्विस मे हेड कान्स्टेबुल और कान्स्टेबुलो की भर्ती की जाय।' वेतन-क्रम बढाए जाए और कान्स्टेबुल का वेतन कम से कम 8 रुपये रखा जाय। प्रान्तो मे पुलिस की सख्या बढाई जाय और इसके लिए ग्राम इकाइयो मे सहायता प्राप्त की जाय। अधिकारियो और कान्स्टेबुलो के प्रशिक्षण के लिए स्कूल खोला जाय। प्रत्येक प्रान्त मे एक 'क्रिमिनल इन्वेस्टीगेशन विभाग खोला जाय। केन्द्र मे भी ऐसा ही एक विभाग हो जिसका नेतृत्व 'डाइरेक्टर आफ क्रिमिनल इन्टेलीजेन्स' को सौंपा जाय। अपराधो की छान-बीन उसी स्थान पर की जाय और सदेह पर लोगो को जेल न ले जाया जाय। ये

सस्तुतिया थी जिसके आधार पर कजन ने 1905 म पूरी पुलिस व्यवस्था को पुनर्गठित किया।

पर इन सुधारो के बावजद पुलिस अब भी जनता का सुखद सहयोग नही प्राप्त कर सकी। यह अब भी भ्रष्ट, अकार्यक्षम और दु खद बनी रही। और लोगो का यह विश्वास, कि वे अपराधियो से मिले रहते हैं, अब भी जारी रहा।

शिक्षा

फ्रेजर ने लिखा है कि लाड कजन की महान सफलताओ म एक शिक्षा का क्षेत्र भी था। पर इस पर मतभेद हो सकता है कि यह सफलता कितनी सकारात्मक थी और कितनी नकारात्मक। तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था का आधार 1833 का मैकाले का मिनिट और 1854 का वुड का डिस्पच था। इसकी बुराइया म से एक प्रमुख यह थी कि भारत की जनता इससे नही जुड पायी थी। इसके अतिरिक्त यह "अत्यधिक दास भाव वाली अंग्रेजी के आदर्शों की नकल थी और इससे लिपिको की सेना ही तैयार हो सकती थी जनमत तथा दशन वाले नेता नहीं।" केन्द्र के नियन्त्रण का भी अभाव था। व्यवस्था सामान्य सिद्धान्त से प्रेरित नही थी और न ही इसका कोई जनहितकारी सामान्य गन्तव्य था। इस सबने कजन को क्रुद्ध कर दिया। उसने कहा कि इस व्यवस्था को उत्तम होने के लिए 'एक निश्चित और वैज्ञानिक आधार ग्रहण करना होगा जिसके लिए अन्तत केन्द्र सरकार को उत्तरदायी होना होगा, चाहे इसकी प्रशसा की बात हो या बुराई की।"

अपने विचारो को काय रूप प्रदान करने के लिए लाड कजन ने सितम्बर 1901 मे उच्च सरकारी अधिकारियो और प्रतिनिधिया का एक सम्मेलन शिमला मे बुलाया। कोई भारतीय नही बुलाया गया। गैर सरकारी लोगो मे मद्रास क्रिश्चियन कालेज के प्रिंसिपल डॉ॰ मिलर का ही आमन्त्रित किया गया। सम्मेलन म पूण गुप्तता बनाये रखी गई जिसके वादविवाद कभी नही छपे। विस्तार से सम्मलन मे बातचीत के बाद 1902 मे सर टामस रले के नेतत्व म जो लॉ मेम्बर थे एक युनिवर्सिटी कमीशन बनाया। इस कमीशन मे भारतीय सदस्य केवल सैयद हुसैन बिलग्रामी भी थे जो निजाम के राज्य मे "पब्लिक इन्स्ट्रक्शन के डाइरेक्टर" थे। जब हिन्दुओ ने इसम भी अपने प्रतिनिधित्व के अभाव के विरुद्ध विरोध व्यक्त किया तो बाद म कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश गुरुदास बैनर्जी का नाम इसम जोड दिया गया। पाच महीने के सलाह मशविरे के बाद कमीशन ने जून 1902 मे एक रिपोट प्रस्तुत की जिसमे गुरुदास ने अपना विरोध मत नोट किया था। रिपोट 1902 म अक्टूबर म प्रकाशित की गई

और इसके ही आधार पर युनिवर्सिटी बिल मार्च 1904 म कानून बनाया गया।

इस कमीशन की सम्तुतिया ये थी कि (1) अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण बनाने हेतु विश्वविद्यालयो म सीनेटो, सिडीकेटो और फैक्टरियो को पुनर्गठित की जानी चाहिए। (2) पुराने विश्वविद्यालयो की वैधानिक शक्ति विस्तृत की जानी चाहिए तथा पुराने व नये सभी विश्वविद्यालयो को अध्यापन सगठन के रूप मे भी स्वीकृत किया जाना चाहिए। (3) प्रत्येक विश्वविद्यालय का क्षेत्र निर्धारित हो जाना चाहिए और सी० पी० और यु० पी० के सम्बद्ध कॉलेजो को कलकत्ता विश्वविद्यालय से हटा लेना चाहिए। (4) विश्वविद्यालय के सम्बद्धीकरण नियमों को और कडा व कायक्षम बनाया जाना चाहिए और किसी भी सस्था की शर्तें पूरी किए बिना सम्बद्ध नही किया जाना चाहिए और इसी स्तर पर उसे सदा बनाए रखना चाहिए जिसके लिए विश्वविद्यालयो के सीनटो को इस मामले म अपने को सतुष्ट कर लेना चाहिए। (5) प्रत्येक कालेज की उचित रीति से गठित प्रबधकारिणी समिति होनी चाहिए। (6) पाठ्यक्रमो और परीक्षा प्रणाली म सुधार किया जाना चाहिए। इसके लिए कई परामर्श प्रदान किए गए। (7) और अतत छात्रो को आवासीय सुविधा दी जानी चाहिए और उनमे अनुशासन कायम करने की सही चेष्टा की जानी चाहिए।

इन सस्तुतियो को स्वीकार करते हुए लार्ड कर्जन ने 1904 मे युनिवर्सिटी एक्ट पारित किया जिसमे निम्न धारायें रखी गइ।

(1) विश्वविद्यालयो की प्रबधकारिणी सगठन को पुनर्गठित किया जाना था और सीनेटो मे कम से कम 50 और अधिक से अधिक 100 की सख्या निर्धारित हो गई। चुने हुए सदस्यो की सख्या बम्बई, मद्रास और कलकत्ता के लिए 20 तथा शेष के लिए 15 रखी गई। सीनेटो मे 'पब्लिक इन्स्ट्रक्शन के डाइरेक्टरो' को भी रखा जाना था। कलकत्ता के डाइरेक्टर को इसका स्थायी सदस्य बनाया गया।

(2) विश्वविद्यालयो की शक्ति बढा दी गई। उन्हे स्नातकोत्तर कक्षाओ के शिक्षण का कार्य प्रारम्भ करने, प्राफेसरो एव प्रवक्ताओ की इस हेतु नियुक्ति करने तथा अध्ययन व शोध को आगे बढाने का कार्य सौपा गया।

(3) विश्वविद्यालयो के सिंडिकेटो को स्टेट्युटरी स्वीकृति प्राप्त हुई और विश्वविद्यालय के अध्यापको को उसमे पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया।

(4) सीनेटो को परीक्षा पाठ्यक्रमो, पाठ्य पुस्तको व छात्रो की सुविधा प्रदान करने का स्तर बनाए रखने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। उन्हे सरकार को हाई स्कूल की स्वीकृति हेतु नियम बनाकर भी भेजना था।

(5) स्नातक कक्षाओं का अध्ययन विद्यालयों के लिए छोड़ दिया गया और नए कालेजों के खोलने हेतु कठोर नियम पालन करने को कहा गया जिसके निरीक्षण के लिए सिंडिकेट के द्वारा समय समय पर व्यवस्था करने को कहा गया।

(6) विश्वविद्यालयीय नीति विद्यालयों की सम्बद्धता व असम्बद्धता की शर्तें आदि विषय सरकार की स्वीकृति से ही तय होने थे।

(7) सरकार द्वारा वाइस चांसलरों की नियुक्ति होनी थी।

(8) कौंसिल में गवर्नर जनरल विश्वविद्यालयों के क्षेत्र निर्धारण पर निर्णय करने का अधिकारी था।

इस ऐक्ट पर विचार करते हुए वी० चिरोल ने लिखा है 'एक अत्यधिक निरंकुश वाइसराय के काल से जो सरकारी मशीनरी की योग्यता में अत्यधिक विश्वास करता था, जैसी आशा थी, 1904 के इस एक्ट में वैसा ही विश्व विद्यालयों पर सरकार की पकड़ को मजबूत करने के लिए सब कुछ किया गया अब आगे व्यवहार में सरकार की स्वीकृति के बिना कुछ नहीं होना था।"[1]

कमीशन की संस्तुतियों को भारतीयों ने पसन्द नहीं किया। सर पी० महता सर एस० एन० बैनर्जी और जी० के० गोखले ने इसकी आलोचना की और इस बिल का जमकर विरोध किया। आलोचकों का कहना था कि प्रस्तावित सुधार विश्वविद्यालयीय शिक्षा पर कम जोर देते हैं और उसके प्रशासकीय मशीनरी पर अधिक। सम्बद्धीकरण और असम्बद्धीकरण उनके अनुसार शिक्षा विकास रोकने का एक अवैधानिक काम है। द्वितीय श्रेणी के कालेजों की समाप्ति जो कि अधिकतर बहुधंधी थे आतंकपूर्ण थे और इस बात के सबूत थे "कि ऊंचाई कम करने के लिए आधार को ही काटा जा रहा था।' कालेज शुल्क बढ़ाया जाना बुरा था और यह उच्च शिक्षा में बाधा डालने के बराबर था। सीनेट के आकार में कमी और सरकारी तत्व का उसमें बाहुल्य मात्र इसका प्रयास थे कि विश्वविद्यालय को एक सरकारी विभाग में बदल दिया जाय। लार्ड कर्जन पर शिक्षा का दृष्टिकोण न अपनाकर राजनैतिक दृष्टिकोण अपनाने का आरोप लगाया गया क्योंकि जोर इस पर दिया गया कि विश्वविद्यालयों को वह राष्ट्रवाद की अभिवृद्धि का केन्द्र नहीं होने देना चाहता और यह कि वह चाहता है कि भारत की जनता अपढ़ बनी रहे जिससे इंगलैण्ड को अपना साम्राज्यवादी शासन चलाने की छूट मिली रहे।

एस० एन० बनर्जी ने कलकत्ता के टाउन हाल में विरोध सभायें आयोजित की। और गोखले ने भी वाइसराय के दृष्टिकोण की हिंसात्मक अवहेलना की।

---

1 चिरोल वी० पूर्वोद्धृत पृ० 214।

लोवट फेजर के अनुसार इस नीति ने वास्तव म "भारतीय विचारको म अत्यधिक उग्रता ला दी।" बाद मे 1917 म सेडलर आयोग ने भी यह स्वीकार किया कि जिन सुधारो की वास्तव मे आवश्यकता थी वे नही किए गए। हाई स्कूल प्रशिक्षण और सगठन का मसला हल नही किया गया। कॉलेजो और विश्वविद्यालयो के बीच समन्वय स्थापित नहो किया गया। और न ही स्वस्थ विश्वविद्यालय की शिक्षा की आधारशिला ही रखी गई।

अतत हम लाड कजन की जीवनी लेखक लाड रोनाल्डशे के विचारो के आधारपर निष्कष मे कह सकत है कि 'यह सोचा जा सकता है कि वाइसराय जैसी हस्ती का परिश्रम उचित रुप से फलीभूत नही हुआ सत्य यह स्वीकार करने को बाध्य करता है कि जो परिवर्तन न लाय गए थे वे वाइसराय द्वारा दिए गए समय और विचार किसी के भी अनुपात मे निश्चित रुप स कुछ नही थे। विरोधियो की आलोचना उसे अलग से झेलनी पडी थी। विस्तार का ध्यान म रखकर महत्त्वपूण परिवतन निश्चित रुप से किए गए थे पर अपन बाह्य आकार म उच्च शिक्षा की परम्परा लगभग यथावत बनी रही।"[1]

पर फिर भी कजन द्वारा किए गए परिवतनो म गुण भी थे। लोवट फ्रेजर का कहना है कि अखिल भारतीय स्तर पर उसके शिक्षा सुधार के विरुद्ध किया गया आदोलन मुट्ठी भर राजनीतिज्ञो का काम था "जिनका विचार था कि राष्ट्रीय शिक्षा पर नियन्त्रण करके अपने उद्देश्यो की पूर्ति कर सकते थ।" य विचार अधिक सामान्य ह, पर इसमे दो राय नही कि शिक्षा को प्रोत्साहन मिला भले ही लाड कजन के काल मे इसे कुछ कम मिला हो। प्राइमरी शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया जिसे 1902 के विशेष अनुदान के अतिरिक्त प्रति वष 2 30 000 पौंड स्थायी अनुदान मिला। अध्यापको के वतन मे वद्धि की गई। कृषि शिक्षा और शोध की आवश्यकता अनुभव की गई और नारी व तकनीकी शिक्षा की ओर ध्यान दिया गया। लाड कजन के ही प्रयास से जमशेदजी टाटा ने बगलोर म इस्टीच्युट आफ साइन्स की स्थापना की।

स्थानीय स्वशासन

अप्रैल 1900 म कलकत्ता म्युनिसपल बिल, जिसे अलेक्जाडर मकेन्जी के प्रयास से लाया गया था, वह कजन के भारत आन पर लेजिस्लेटिव कौन्सिल के सामने था। उसके आते-आत यह कानून बन गया। इसके अ तगत एक स्थायी यूरोपीय बहुमत की स्वतन्त्र कायपालिका सहित कलकत्ता कार्पोरेशन की व्यवस्था

1 रोनाल्डशे द लाइफ आफ लाड कजन भाग 2 प 253।

2 फ्रेजर पूर्वोद्धत प० 191 200।

की गई। कार्पोरेशन का आकार छोटा कर दिया गया। कार्पोरेशन के 25 चुने गए सदस्य हटा दिए गए और जो बच उन्हें अल्प संख्या में कर दिया गया जिसके फलस्वरूप अब वे कार्पोरेशन के किसी निर्णय को प्रभावित नहीं कर पाते थे। इसका प्रेसीडेन्ट पद भी कर्मचारियों में से किसी व्यक्ति को सौंपा गया।

प्रारम्भिक अवस्था में कर्जन ने स्वयं इस बिल की भर्त्सना की जो "कुछ आतंक और कुछ नौकरशाही में" लिखा बताया गया था। चुने गए सदस्यों को न रखा जाना और साथ ही असली शक्ति को कार्यपालिका के सीमित हाथ में सौंपा जाना जिसमें अधिकतर अंग्रेज ही थे, कर्जन ने पसन्द नहीं किया और इसे उसने 'गन्द और शरारतपूर्ण द्वैतवाद' की संज्ञा दी। पर अंतत उसने इसे स्वयं स्वीकार कर लिया और इस बिल के साथ हो गया।

जैसा इसकी धाराओं से स्पष्ट है यह एक्ट राष्ट्र के भारतीय बुद्धिजीवियों द्वारा आलोचना किए जाने योग्य था ही जिन्होंने कर्जन पर सारा आरोप लगाते हुए घोषित किया कि उसकी जनता को शिक्षित करने में कोई रुचि नहीं है। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित कर यह कहा कि कर्जन की नीति स्थानीय स्वशासन को नीचा दिखाने की है। विरोध सभायें आयोजित की गई और कलकत्ता तो आन्दोलन के एसे भंवर में फंस गया कि इससे आगे तो केवल विभाजन विरोध की सभायें ही की जा सकीं। 28 कमिश्नरों ने विरोध में स्तीफा दिया। एस० एन० बैनर्जी जो इस विरोध के नेता थे, 1923 तक कार्पोरेशन में गए ही नहीं। और प्रवेश तब किया जब बिल में संशोधन किया गया चुने गए सदस्यों की संख्या 4/5 कर दी गई और मेयर व चीफ 'इक्जीक्युटिव' आफिसर का पद कार्पोरेशन के चुने हुए सदस्यों को सौंपा गया जिस पर सरकार की स्वीकृति ली जानी थी। यह संशोधन एस० एन० बैनर्जी द्वारा स्वयं पेश किया गया और इसे उन्होंने अपने लिए एक महान दिन कहा जिससे 'उन्हें व्यक्तिगत सान्त्वना और सौहार्द्र मिला।"

बंगाल का विभाजन

बंगाल का विभाजन कई कारणों से आवश्यक बताया गया। यह बहुत बड़ा था जिससे इसके प्रबन्ध में बाधा पड़ती थी। इसकी जनसंख्या 6 करोड़ 80 लाख थी जो इंगलैण्ड की लगभग दो गुनी थी, और इस तरह कर्जन के ही शब्दों में यहां 'प्राचीनता थी, तर्क का विरोध था और कार्यक्षमता की कमी थी। इसके कारण गंगा के पूर्व में पड़ने वाले जिलों की ओर ध्यान ही नहीं जाता था। पुलिस व्यवस्था यहां पर सबसे खराब थी। आन्तरिक आवागमन का साधन असंतोषजनक था। एक जांच में एक आयोग ने लिखा था कि 'नदिया के किनारे जीवन और धन इतना असुरक्षित था कि किसी भी समय देश की सरकार इसे

बर्दाश्त नही कर सकती थी।" किसान अनुपस्थित जमीदारो के अनियमित कर आरोपण से दु खी थे। और लेफ्टीनेन्ट गवनर इतने बडे प्रशासन के भार से ऐसा दबा रहता था कि वह स्थिति के सुधार के लिए कुछ अधिक नही कर सकता था।

इस प्रान्त के विभाजन की योजना 1896 मे उस समय से प्रारम्भ हुई जब आसाम के चीफ कमिश्नर सर विलियम वाड ने यह परामश दिया कि चटगाव, ढाका और मैमनसिंह डिवीजन आसाम मे मिला दिए जाय। 1901 मे इस प्रश्न ने कर्जन का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। पर रावट स ने लिखा है कि "शीघ्रता नही थी जैसा कि आरोप लगाया जाता है, और न कोई जोर-जबरदस्ती वाली कारवाई ही। नीति पर पूण रूप से विचार हुआ, अन्य योजनाओ पर भी विचार किया गया और समय समय पर बाह्य आलोचना के सदभ मे योजनाओ में सशोधन भी किया गया।"[1] जनता की आलोचना सचमुच कठोर थी। लाड कर्जन के शैक्षिक सुधारो प्रान्तीय सवाओ मे प्रतियोगिता की समाप्ति और ऐसे ही अन्य कार्यों ने लोगो के मस्तिष्क म उसके राष्ट्रीय हित के उद्देश्यो के प्रति सदेह पैदा कर दिया था। और अब बगाल के बटवारे का प्रस्ताव बम की तरह जनता के बीच गिरा। पर लाड कर्जन ने सेक्रेट्री आफ स्टेट को लिख भेजा कि इस विषय पर 'अपूर्व एकमतता" है। हमारे यह समझ मे नही आता कि यह "अपूव एकमतता' कमचारियो के बीच थी या यह जान-बूझकर गह अधिकारियो को भेजी जाने वाली एक गलत सूचना थी। बगाल के विभाजन का प्रस्ताव 3 दिसबर 1903 को सामने आया और 19 जुलाई 1905 को बटवारे का विस्तार म प्रकाशन हुआ। ईस्टन बगाल ऐण्ड आसाम" नामक एक नया प्रान्त बनाया गया जिसमे आसाम, चटगाव, ढाका और बगाल के राजशाही डिवीजन सम्मिलित किए गए। इसका पूरा क्षेत्र 1,06,540 वग मील का था और इसकी जनसख्या 3 करोड 10 लाख जिसमे से 1 करोड 80 लाख मुसलमान और 1 करोड 20 लाख हिन्दू थे।

सरकार ने इसे केवल प्रशासकीय सीमाओ का पुनर्रेखाकन" नाम बताया। पर उत्तेजित जनता के लिए यह एक प्रान्त के राजनैतिक एकता को तोडने का प्रश्न था जिसमे हिन्दुओ और मुसलमानो को लडाने की चेष्टा की गई थी और "नई उभरने वाली राष्ट्रीयता" की भावना को नीचा दिखाने का प्रयास किया गया था। उपरोक्त बातें वाइसराय के कुछ अनुत्तरदायी कार्यो से अपने आप सिद्ध हो गइ। लोवट फ्रेजर ने इस सम्बन्ध मे लिखा है, पूर्वी बगाल की उसकी यात्रा मुस्लिम सभाओ मे उसके उग्र भाषण जिसमे उसने साम्प्रदायिक आधार लाभ

1 रावटस पूर्वोद्धत प० 548 49।

बताकर उनका समर्थन जुटाने की चेष्टा की, ऐसी विधियां थीं जो राजनैतिक विरोध स्वभाव की थी और भारत के वाइसराय के पद और प्रतिष्ठा के प्रति भूल थी।" फ्रेजर आगे लिखता है कि फिर यह आग सिद्ध हो गया कि "नवनिर्मित प्रान्त के गवर्नर सर बैम्फफील्ड फुलर के मूर्खतापूर्ण इस उक्ति की घोषणा से, कि उसकी दो पत्नियां थी एक हिंदू और दूसरी मुसलमान पर मुसलमान पत्नी के वह अधिक पक्ष में था स्थिति और बिगड़ गई।"[1]

एस० एन० बैनर्जी ने लिखा 'यह घोषणा बम की तरह गिरी। हमने अपमानित और धोखे का अनुभव किया यह हमारे राजनैतिक प्रगति के लिए मौत सिद्ध होता और उस हिन्दू और मुस्लिम एकता के लिए तो यह आघात ही होता जिसके आधार पर भारत का उत्थान निर्भर करता था।" विरोध सभायें आयोजित की गई और पूरे देश में इसके विरोध में भाषण आयोजित किए गए जिसमें बटवारे के सम्बन्ध में घोषणा की गई कि यह मिले-जुले लोगों को बांटने का प्रयास है। यह शताब्दियों की परम्परा इतिहास और भाषा तक पर जान बूझकर किया गया पापपूर्ण आक्रमण है।"[2] 17 अगस्त 1905 को कलकत्ता टाउन हाल की एक सभा में स्वदेशी आन्दोलन का प्रारम्भ किया गया। अंग्रेजी माल का परित्याग भी प्रारम्भ हुआ। और यह सेना भविष्य के कांग्रेस के युद्धों में ब्रिटिश के विरुद्ध प्रमुख अस्त्र बने।

बटवारे का पहला दिन 16 अक्टूबर 1905 को बंगाल ने शोक दिवस के रूप में मनाया। लोगों ने व्रत किया और गंगा गए। उन्होंने एक-दूसरे के हाथ में राखी बांधी जो एकता का प्रतीक थी और वन्देमातरम् का गगनभेदी नारा लगाया। लोगों ने अंग्रेजी माल के न प्रयोग करने का संकल्प लिया।

पर बी० सी० चटर्जी ने लिखा है कि 'पूरे राष्ट्र का संगठित स्वर उठा और तिरोहित हो गया जैसे कि कोई जंगल में चिल्ला रहा हो। किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। वाइसराय ने प्रशासकीय विभाजन की योजना द्वारा उन्हें समझाने की चेष्टा की, और ब्रिटिश संसद ने इसे अपनी मंगल कामना भेजी। कांग्रेस का राजनैतिक तरीका (संवैधानिक विरोध) आजमाया गया और असफल हो गया—और जनता का आपस में सम्बन्ध बिगड़ गया।'[3] फ्रेजर लिखता है कि आन्दोलन ने वाइसराय को 'क्रुद्ध कर दिया, उसकी घृणात्मक तटस्थता ने जन आन्दोलन को तीव्र कर दिया तमाम सभायें हुई और तमाम प्रार्थनापत्र उसके पास भेजे गए पर सब बेकार गए।' बंगाल में वंदेमातरम के नारे पर प्रतिबंध

1 फ्रेजर पूर्वोद्धृत पृ० 380-96।
2 बनर्जी एस० एन० ए नेशन इन द मेकिंग, राबटस, पृ० 550।
3 चटर्जी बी० सी० द हार्ट आफ आर्यावर्त, पृ० 88।

लगा दिया गया और इसे अवैधानिक करार दिया गया। स्कूल और कालेजो को यह चेतावनी दी गई कि यदि छात्र आन्दोलन करना बद नही करते तो उनका अनुदान रोक दिया जायेगा। बगाल के वकीलो ने इस आन्दोलन की भत्सना की। एक ब्रिटिश पक्षीय समाचार पत्र स्टेटसमन ने लिखा, 'ब्रिटिश भारत म ऐसा समय कभी नही देखा गया जब जन विचारो की ओर केन्द्र सरकार न इतना कम ध्यान दिया हो जितना वतमान प्रशासन द रहा है।' और पुन 'स्पष्ट रूप से सरकार ने महान बचपने की भूल की है और ऐसी नीति अपनाई है जो प्रभाव मे केवल हमारे समक्ष शहीदो की सेना ही तैयार कर सकती है।"

विधायिका मे गोखले ने तक पेश किया महोदय बगाल को शात कीजिए।" लदन के डेली निउज न मि० ब्रोड्रिक से अपील की कि बटवारे के मामले को रोकिए।" लाड मैक्डानेल ने घोषित किया कि "यह प्लासी के युद्ध के बाद सबसे बडी भूल है।" काग्रेस ने इस अखिल भारतीय प्रश्न बनाया। और उदारवादियो ने "इगलैण्ड के उदारवादियो के एक समूह के समथन और सिविल सेवाओ के कुछ लोगो की सहायता से तक दिया कि इस योजना के चाहे जितन भी गुण क्यो न हो जब यह पता चल गया कि यह राष्ट्रीय विचारधारा के साथ मेल नही खाता तो इस तुर त त्याग दिया जाना चाहिए।"[1]

यह एक उत्तम हल होता यदि सयुक्त बगाल गवनर के शासन के अधीन कर दिया जाता और उसके सहायताथ एक 'इक्जीक्युटिव कौंसिल' बना दी जाती। पी० ई० रावट् स का मत है कि ऐतिहासिक दृष्टि से इसके पक्ष मे बहुत कुछ कहा जा सकता था जसे, "1833 के और 1853 के चाटर ऐक्टो ने सचमुच ऐसे सरकार की रचना की थी, और 1853 के ऐक्ट न कवल लेफ्टीनन्ट गवनर की नियुक्ति को केवल कानूनी बनाया था जब तक कि यह परिवतन सुविधा स न कर दिया जाय।"

यह महान आन्दोलन जो बगाल के विरुद्ध प्रारम्भ हुआ था दिसम्बर 1911 तक चलता रहा। इसके बाद ऐतिहासिक राज्याभिषेक दरबार मे विभाजन का समाप्त घोषित कर दिया गया और सरकार की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली कर दी गई। इस विभाजन के समाप्ति के निणय के सम्बन्ध म पालमेन्ट मे लाड हार्डिन्ज ने लिखा, "दोनो बगाल के बगाली अपने प्रान्त की पुनएकता के लिए अति उत्सुक थे, क्योकि लाड कजन ने बटवारा उनके ऊपर थोप दिया था और

1 देखें फ्रेजर पूर्वोद्धत पृ० 380-96।
2 राबटर्स पूर्वोद्धत पृ० 551।

उन्होंने इस परिवर्तन को सम्राट की राजनीति विज्ञान और सुलह का प्रतीक बताया।"[1]

अन्य परिवर्तन

लार्ड कर्जन के काल के अन्य सुधारों में एक संवैधानिक कदम था 1904 का ऐक्ट जिसने वाइसराय को अपनी कौंसिल में छठा सदस्य नियुक्त करने का अधिकार दिया। इस सदस्य को व्यापार और उद्योग मंत्रालय सौंपा गया जिसके लिए 1905 में एक नया विभाग स्थापित किया गया।

लार्ड कर्जन ने देश के प्राचीन स्मारकों की रक्षा में बड़ी रुचि ली और उसने 'प्रारम्भ में ही अपना पद ग्रहण करते समय ही यह स्पष्ट कर दिया कि वह भारत के स्मारकों की खोज, रक्षा और जहां आवश्यक हो उसे ठीक कराने को वह बिना हिचक देश की सरकार का कर्त्तव्य मानता है।" मुगल वास्तुकला के प्रति उसकी स्वागत योग्य उदारता इसी से स्पष्ट है कि उसने ताजमहल के लिए मुगल शैली का एक लैम्प खुजवाने में 6 माह का समय दिया और इस काम के लिए वह कैरो तक स्वयं गया। लार्ड कर्जन ने विशिष्ट व्यक्तियों की नियुक्तियां की जिससे देश में कला के क्षेत्र में विचार, परम्परा और विश्वास का प्रतिनिधित्व करने वाली पुरातन सामग्रियों को एकत्रित किया जा सके। दरबार के समय ऐसी वस्तुओं को दिल्ली में प्रदर्शित किया गया। उसकी उन कारवाइयों के कारण रोनाल्डशे लिखता है कि, 'वह निश्चित रूप से भारतीय कला की सामर्थ्य में स्वस्थ रुचि उत्पन्न करने में सफल रहा।'[3] पर इस सम्बन्ध में उसका सबसे बड़ा योगदान 1904 में उसके द्वारा पारित 'ऐन्सियन्ट मान्यूमेन्ट्स प्रोटेक्शन ऐक्ट' था जिसके अन्तर्गत देश के ऐतिहासिक भवनों को सरकार की रक्षा में ले लिया गया।

खदानों में मजदूरों की कार्यदशा देखने के लिए—चीफ इन्स्पेक्टर आफ माइन्स' की नियुक्ति की गई। स्वच्छता ने भी उसका ध्यान आकृष्ट किया और इसके लिए एक चीफ सैनिटरी इन्स्पेक्टर की नियुक्ति की गई। समुद्र में मछली के व्यापार को बढ़ाने की चेष्टा की गई। 1903 में एक एक्ट पारित किया गया जिसके कारण बिजली जलाने व अन्य कार्यों में प्रयोग के लिए नियम बनाए गए।

---

1 हार्डिञ्ज माई इण्डियन इयर्स पृ० 52।

2 रोनाल्डशे द लाइफ आफ लार्ड कर्जन भाग 2 पृ० 332।

3 वही, भाग 1, पृ० 333।

महारानी की मृत्यु एवं दरबार

23 जनवरी 1909 मे महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हो गई। इंगलैण्ड की एक महान शासिका का नाम भारत के इतिहास म आदर के साथ सदा लिया जायेगा जिसने 1858 की ऐतिहासिक घोषणा भारत क लिए की जिसके आधार पर यदि ईमानदारी से काय किया गया होता तो इस देश की उत्तम सेवा भी हुई होती और उत्थान भी। भारत ने इस अवसर पर जलूस निकालकर और अन्य तरीको से अपने कष्ट का इजहार किया। रानी की ही याद म लार्ड कर्जन ने विक्टोरिया मेमोरियल हाल का निर्माण किया।

भारत मे खेद व्यक्त करने के लिए आयोजित जुलूसो से उत्साहित हो लार्ड कर्जन ने महारानी के उत्तराधिकारी सम्राट को एक पत्र मे लिखा 'मुझे नही मालूम कि आपके मन मे कभी भारत की सक्षिप्त यात्रा पर आने का विचार भी आया होगा और यहा आकर भारत के सम्राट के रूप म ताज ग्रहण करने का। ऐसी स्थिति म भारत मे ऐसी स्वामिभक्ति का व्यक्तीकरण हो गया जैसे भारत ने इसके पहले कभी न देखा होगा। और इस कारवाई स अथाह राजनैतिक लाभ भी होगा।'[1] पर राजा इस देश म नहीं आ सका और लार्ड कर्जन न इस अवसर का दिल्ली मे एक दरबार करने के लिए मनाने का निश्चय किया जहा पर राजा के पद ग्रहण की सूचना प्रसारित की गई। 1903 म लार्ड कर्जन न एक सजे हुए हाथी पर सवार हो दिल्ली मे विजेता की तरह प्रवेश किया। यह दिल्ली जो मुगलो की ऐतिहासिक राजधानी थी और यहा नगर म एक शानदार दरबार किया गया जिसमे 4,000 पौंड का व्यय आया। प्रान्तीय सरकारो ने भी इस अवसर को शानदार तरीके से मनाया और उनके द्वारा इस पर मत्र मिलाकर 1,00,000 पौंड खच किया गया।

इंगलैण्ड और भारत दोनो स्थानो पर वाइसराय के इस कारवाई की कडी आलोचना की गई। कहा गया कि दरबार 'उसके दम्भ और बनावटीपन के प्रति प्रेम का नतीजा था।" लार्ड कर्जन न दरबार को उचित बताने के लिए कहा "मुझे आशा है कि मुझे कारण या द्रष्टा नहीं समझा जाता। पर मुझे, और मैं आशा करता हू कि हममे से बहुतो को दरबार एक दृश्यावली या जुलूस नहीं था। यह जनता के इतिहास म एक प्रमुख दिवस था और राज्य के परम्परा म एक अध्याय।' उसन पुन कहा 'भारत म सबस अधिक आवश्यकता यहा के राजनैतिक व्यवस्था म सामूहिक रूप से सम्मिलित होने की है जो ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिको म समभाव का प्रतीक हो।'[1] पर यदि वाइसराय का यह उद्देश्य था तो वह पूरा कहा हुआ ? सच तो यह था कि देश की आर्थिक दुव्यवस्था को पृष्ठ-

1 कजर पूर्वोद्धृत पृ० 399।

भूमि मे यह अनावश्यक था क्योंकि इस समय देश प्लेग और दुर्भिक्ष से ग्रस्त था। दरबार का सही मूल्य सचमुच यह नही था कि इसने ब्रिटिश साम्राज्य मे विनम्रतापूर्ण नागरिकता" के लिए प्रदर्शन किया बल्कि यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शक्ति का खुला प्रदर्शन था। भारत को तो अब तक यह पता ही हो गया था कि गले पर लदा हुआ जुआ कितना बोझपूर्ण है। सच तो यह था कि कर्जन जो कह रहा था उसका एकदम उल्टा दिख रहा था। भयाक्रांत भारतीय सरदारो को दरबार मे लार्ड लिटन के काल का भी सम्मान नही प्राप्त हुआ। उनके लिए दरबार अपमान स्थल था और उनके द्वारा प्रकट की गई विश्वस्तता असत्य और जोर-जबरदस्ती की थी। इसके अतिरिक्त उस प्रान्तीय जमाने मे यह घटना एक तमाशा ही थी और विशेष कर उस इंगलैण्ड के लिए जो प्रजातन्त्र का अत्यधिक हामी था।

कर्जन किचनर विवाद

एक बडी समस्या जिसे कर्जन को झेलना पडा, और अन्तत जिसके कारण उसे पदमुक्त होना पडा, वह लार्ड किचनर से सैनिक प्रशासन के सम्बन्ध मे मत वभिन्य था। भारत के तत्कालीन व्यवस्था मे सेना का प्रधान 'कमांडर इन चीफ' कहलाता था जो आमतौर पर वाइसराय के कौंसिल का असाधारण सदस्य भी नियुक्त कर लिया जाता था। इसके अतिरिक्त सेना का प्रशासनिक विभाग कौंसिल के एक साधारण सदस्य के अधीन रहता था जिसे मिलिटरी मैम्बर का नाम दिया जाता था पर अपने अधिकार काल मे उसे सेना पर कोई अधिकार नही प्राप्त था। यह सदस्य सदा वाइसराय के निकट होता था क्योंकि वह उसका सैनिक परामर्शदाता भी होता था जिसे वह कमान्डर इन चीफ के पास से आने वाले प्रस्तावो पर अपने विचार व आलोचना प्रस्तुत करता था जो सैनिक प्रशासन के सम्बन्ध मे होती थी। लार्ड किचनर 1902 मे भारत का 'कमान्डर इन चीफ' होकर आया। वह एक दृढ इच्छा और महत्वाकांक्षा का व्यक्ति था और उसने इसे पसन्द नही किया। रूस का खतरा सर पर था इसलिए उसने लिखा, इसमे सन्देह नही कि यदि हमे सीमा पर बडी लडाई लडनी हो तो बडा भयानक संघर्ष होगा। एक ऐसी व्यवस्था जिसमे परिवहन, आपूर्ति, 'रीमाउन्ट आर्डनन्स पूर्णतया सेना के नेतृत्व मे अलग है और एक स्वतन्त्र अधिकारी के पास हैं इसमे तुरन्त युद्ध घोषित होने के पूर्व पुनर्गठन की आवश्यकता है इसमे देर नही होनी चाहिए।' वर्तमान व्यवस्था के कारण 'पर्याप्त देर भी होती है और अन्तहीन विवाद भी।' उसने प्रस्तावित किया कि वर्तमान ऊल-जुलूल संगठन के स्थान पर एक सैनिक विभाग होना चाहिए जिसे पूर्णतया कमान्डर इन चीफ के अन्दर होना चाहिए। वर्तमान स्थिति मे मिलिटरी मैम्बर वैसे तो नीचे पद पर है, पर उसके

पास 'कमाडर इन चीफ' से भी अधिक अधिकार है और किचनर ने वाइसराय को लिखा कि "उसने सम्भवत कमाडर इन चीफ का पद स्वीकार करके भूल की और उसे तो इसके स्थान पर मिलिटरी मेम्बर होना चाहिए था।"

1905 मे सेक्रेटी आफ स्टेट ने इस प्रश्न पर वाइसराय से उसका मत मागा। इस सम्बन्ध मे वाइसराय की कौसिल मे विचार हुआ। लाड राबर्टस ने किचनर के मत का समथन किया और कहा कि वतमान प्रणाली परेशानीपूण और पेचीदी है और इस कारण इसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए।[1] किचनर का कहना था कि जो परिवतन उसने सुझाया है उससे वाइसराय की स्थिति मे कोई अन्तर नही पडेगा क्योकि वह अब भी उसके प्रस्ताव को स्वीकार या अस्वीकार कर सकेगा। सेना के प्रधान का सरकार के प्रधान से अच्छा सम्बन्ध होना चाहिए। उसने आगे कहा कि यह बिल्कुल गलत है कि कमाडर इन चीफ "की आलोचना कौसिल के मिलिटरी मेम्बर के विचारो के आधार पर की जाय जो पद और अनुभव दोनो मे कमाडर इन चीफ से नीचा हो।"

पर लाड कजन का अलग ही मत था। उसकी दृष्टि मे एक ही व्यक्ति द्वारा कमाडर इन चीफ और मिलिटरी मेम्बर का काय करना असम्भव था। चूकि इस तरह के सयुक्तीकरण से भारत सरकार के सैनिक अधिकार एक ही व्यक्ति के हाथ म आ जायेंगे इसलिए 'इसम कमाडर इन चीफ मे तानाशाही प्रवत्ति पैदा हो जायेगी।" इसके अतिरिक्त एक असनिक वाइसराय को किसी योग्य सैनिक अधिकारी का परामश प्राप्त ही होना चाहिए जिसके बिना वह किसी दृढ इच्छा वाले 'कमाडर इन चीफ' को कैसे रोक सकेगा और इस तरह असैनिक अधिकारी सनिक अधिकारी का अनुगामी हो जायगा। उसने आगे कहा कि यह प्रश्न पिछले 40 वप से विवादित है पर किसी वाइसराय के अधीन यह बात नही आई कि इस व्यवस्था म दोप है। मिलिटरी मेम्बर सर एडमड एलेस न अपने तक अलग से दिए जो वाइसराय के मत के समथन मे थ।

इस तरह कौसिल का मत जिसे वाइसराय ने सेक्रेट्री आफ स्टेट का भेजा उस पर किचनर न अपना विरोध मत का नोट लगाया। पर शेप सदस्य कजन के पक्ष म थे। सेक्रेट्री आफ स्टेट मि० ब्रोड्रिक ने समझोता की सलाह दी जिसे मन्त्रिमडल न स्वीकृति प्रदान की। इसके अन्तगत पूण सैनिक मामला का नियत्रण कमाडर इन चीफ को सौंप देने का निश्चय किया गया। उसे ही कौसिल मे सनिक मसले पर बोलने का अधिकार प्रदान किया गया। जबकि कौसिल के अन्य सदस्य को सहायक विभाग की देखभाल का अधिकार सोपा गया जो पूणतया

1 और विस्तार के लिए देखिए सर जाज आथर लाइफ आफ किचनर भाग 2 पृ० 200 02।

सैनिक न हो। उसे मिलिटरी सप्लाई मेम्बर का नाम दिया गया। यह परामर्श दिया गया कि सर एडमंड एलेस जो पुरानी परम्परा के अधीन काय करते रहे हैं अब पदमुक्त हो जाय और उनके स्थान पर नया अधिकारी नियुक्त किया जाय जो कटौतीपूर्ण अधिकारों के आधार पर काय करे।

चूंकि लार्ड कर्जन को ये प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं थे इस कारण उसने स्वयं स्तीफा देने का प्रस्ताव किया पर परिस्थितियों को किसी तरह सर डेन्जिल इबेटसन ने बचाया—जिसने समझौते की शर्तों में कुछ परिवर्तन किया। इसके अन्तर्गत एक सप्लाई मेम्बर 'वाइसराय के लिए सरकारी सैनिक परामर्श हेतु नियुक्त किया गया।" लार्ड किचनर ने इसे स्वीकार कर लिया और मन्त्रिमंडल ने भी। पर यह व्यवस्था अब ठीक से नहीं चली क्योंकि बाद में पता यह लगा कि दोनों पक्षों ने प्रस्तावित परिवर्तन भिन्न भिन्न मनोभावों के लिए किए। कठिनाई उस समय सामने आई जब कर्जन ने जनरल बैरो को मिलिटरी सप्लाई का नया सदस्य चुनना चाहा। सेक्रेटरी आफ स्टेट ने इसे अस्वीकार कर दिया और यह इच्छा व्यक्त की कि कोई तकनीकी क्षेत्र का व्यक्ति इस काय हेतु नियुक्त किया जाय। प्रश्न था कि कर्जन का बलिदान हो या किचनर का। सक्रेटरी आफ स्टेट ने कर्जन पर उंगली रखी। इस तरह लार्ड कर्जन ने 1905 में स्तीफा दे दिया।

पर बाद में मेसोपोटामिया में महान युद्ध के अवसर पर ब्रिटिश अनुभव से पता चला कि निस्सदेह रूप से कर्जन का मत सही था और किचनर का गलत। मेसोपोटामिया के आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा "यह स्पष्ट है कि भारत में कमांडर इन चीफ और कौंसिल के मिलिटरी मेम्बर का काय उचित रीति से युद्धकाल में एक ही व्यक्ति नहीं सम्भाल सकता और साथ वतमान संगठन ऊपर तो अत्यधिक केन्द्रित है और नीचे गुणात्मक रूप से बेकार है।

सैनिक सुधार

पर इन कठिनाइयों के बावजूद लार्ड कर्जन के काल में सेना में कई सुधार किये गये। 1902 और 1904 के बीच मापला गुरखा और पंजाबियों ने पैदल और घुड़सवार सैनिकों के स्थानीय तत्वों का स्थान ले लिया। 1900 में भारतीय पैदल सेना 4 दुहरे कम्पनी बटालियनों में पुनर्गठित की गई। भारतीय अधिकारी प्रत्येक कम्पनी के आंतरिक प्रशासन के लिए उत्तरदायी बनाये गये। पर परेड और युद्ध मैदान में नेतृत्व ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ में रहता था। भारतीय रेजीमेन्टों को फिर से हथियार दिये गये और तोपखाने को बेहतर बन्दूकें प्रदान की गईं। भारवहन सेना पूर्ण रूप से पुनर्गठित की गई। 1901 में राजपरिवारीय और सामंतपरिवारीय युवक लोगों की एक इम्पीरियल कैडेट कोर की स्थापना की गई। 1871 का नेवल डिफेंस स्क्वाड्रन 1901 में समाप्त कर दिया गया

और इसके स्थान पर रायल नेवी ने देश की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। भारतीय सेना का प्रयोग बाहर चीन में बाक्सर विद्रोह को दबाने में किया गया और सोमालीलैंड में मुल्लाओं के विरुद्ध। दक्षिणी अफ्रीका में भारतीय सैनिकों ने नेटाल को बचाया और लेडीस्मिथ पर कब्जा बनाये रखने में सहायता की।

उत्तर पश्चिम सीमा नीति

"उत्तर पश्चिम सीमा की समस्या भारत की सरकार की एक गुरुतर कठिन समस्या थी।"[1] भारत सरकार की उत्तर पश्चिम में दो सीमायें थी—एक तो थी प्रशासकीय सीमा और दूसरी थी राजनीतिक सीमा। प्रशासकीय सीमा के क्षेत्र में साधारण तरह की सरकार थी। पर प्रशासकीय सीमा के आगे उदाहरणार्थ प्रशासकीय और राजनैतिक सीमा के बीच, एक भूरे पर्वतों का ऊबड़ खाबड़ चक्र था जिसमें दुनिया की सबसे खूंखार और युद्धप्रिय जाति निवास करती थी। इस सीमा क्षेत्र का दायरा लगभग 25,000 वर्ग मील था और इसकी जनसंख्या 15 लाख जिसमें लगभग सभी लड़ाकू थे और उनमें लगभग 3,00,000 सैनिकों की सेना एकत्रित करने की क्षमता थी। सीमा का यह भाग पामीर में अफगानों के बाघा जिले से प्रारम्भ होकर बलूचिस्तान की सीमा तक चला जाता था। दक्षिण का आधा भाग कुरम घाटी से कटा हुआ था। जबकि कुरम घाटी से आगे काबुल नदी से थोड़ा उत्तर अफगान क्षेत्र की निश्चित सीमायें कभी निश्चित नहीं हो पाईं।

इस क्षेत्र के लोग असंख्य वर्गों और उपवर्गों में बटे थे। उत्तर में ये स्थानीय सरदारों का हल्का नेतृत्व स्वीकार करते थे जबकि दक्षिण में ये लगभग प्रजातान्त्रिक थे। पर ये हर जगह कट्टर मुल्लाओं द्वारा उत्तेजित किए जा सकते थे क्योंकि उनका उन पर बड़ा प्रभाव था। पुरातन काल से विश्व का यह भाग कभी भी स्थायी रूप से किसी के द्वारा नहीं जीता जा सकता था। जब कभी मध्य एशिया से कोई विजेता आया, ये कबीले या तो घूस पा गए, या आक्रमण के साथ उसे लूटने या भागने के लिए लगा लिए या वे अपने पर्वतीय सुरक्षा स्थानों में तब तक के लिए चले गए जब तक कि शांति नहीं स्थापित हो गई। कभी कभी अफगान शासक छाया की तरह अपने को उनका शासक बता देते, पर उन्हें इन लोगों को दर्रों का मुंह खुला रखने के लिए घूस देना पड़ता था। इस क्षेत्र के लोग समूहों में भारत में भी दूर दूर तक घूमते थे चोरी करते थे और कभी कभी मद्रास व बंगाल के सुदूर गांवों में भयादोहन करते थे। अफगान क्षेत्र में ये कबीलों से

---

1 फ्रेजर इण्डिया एण्ड कर्जन एण्ड आफ्टर पृ० 39। इस पुस्तक में विस्तृत वर्णन मौजूद है।

लडते थे और धनी भारतीय गावो को लूटते थे। उनका आपस म भी झगडा था, उनके झगडे अधिकतर औरता से सम्बधित होते थे और प्रतिष्ठा के सम्बध मे उनकी परिभाषायें विचित्र थी। उनमे जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ होती थी।

ब्रिटिश इनके सम्पक मे 1849 मे पजाब पर अधिकार करने के बाद आए। इसके थोडे ही बाद उन्हे सवाती कबीले के विरुद्ध आक्रमण करना पडा जो भारत पर बार बार आक्रमण करते रहते थे। पर यह आक्रमण उन 53 आक्रमणा का अग्रगामी सिद्ध हुआ जिसमे 280 सैनिका से लेकर 40 हजार सैनिको तक अलग-अलग समय पर प्रयोग म लाये गए। करोडा रुपया का व्यय हुआ और हजारा जीवन की बलि चढानी पडी जिससे देश म शाति स्थापित रह सके। कभी कभी व इन निरकुश कबीलो को कडा दड देन मे भी सफल हुए, पर अधिकतर इन्ह उनसे अधिक कठिनाइयो का सामना करना पडा। ये कबीले चट्टाना के पीछे से लडत थे, ब्रिटिश कैम्पा पर रात को गोलाबारी करते थे इसलिए ब्रिटिशो के पास 'मारो-भागो' की नीति अपनाने के सिवा कोई चारा नही था।

पर सीमा के सम्बध म नीति अब भी अनिश्चित थी। दो ही तरीके थ जिससे समस्या का समाधान हो सकता था। पहली तो यह कि भारत सरकार वैसे ही आक्रमण करती रहे जसी अभी तक करती रही थी और दूसर यह कि वह अपन प्रशासकीय नियन्त्रण को राजनैतिक सीमा तक बढा ले। बाद वाला तरीका बडा कठिन था। इसके अनुसार काय करने के लिए सरकार को तीन रेलवे लाइनें बनवानी जरूरी थी और एक बडे सनिक सडको का जाल बिछाना था। तिराह के बीच के क्षेत्र मे मैदान नामक स्थान पर एक छावनी बनानी थी। इसके अतिरिक्त इसमे अथाह धन का व्यय होता। इस काय मे होने वाला व्यय पूरे देश का विकास काय रोक देता जिसके फलस्वरूप भारत के प्रत्येक नगर मे असतोष व्याप्त हो जाता। सेना के सम्पूण साधनो को 3,00,000 लडने वाले सैनिका को तैयार करने मे व्यय करना पडता। इसके अतिरिक्त अभी कुछ पहले यह समस्या और कठिन इसलिए हो गई थी क्याकि इस क्षेत्र में तमाम हथियार और गोलाबारूद—यहा बाहर से आ गया था। इसके अतिरिक्त जसे ही ब्रिटिशा क इस मन्तव्य का उन्ह पता चलेगा कि व वहा अधिकार करना चाहते हैं तो पूरा सीमा क्षेत्र एक कोने से दूसरे कोने तक जल उठेगा। अफगानिस्तान का शासक अपने ही क्षेत्र पर उनके अधिकार का इसे बहाना समझेगा और ब्रिटिश उस देश से एक अनिवाय युद्ध मे फस जायेगा। इस तरह स्पष्ट है कि दूसरा तरीका अपनाना कठिन था। पर प्रति वष आक्रमण करते रहना और उस पर अपार धन और जन की हानि करना भी उचित तरीका नही था। इसलिये समस्या के समाधान के लिए कोई तीसरा रास्ता निकाला जाना था।

इसके लिए लाडं कर्जन की प्रशसा करनी होगी कि उसने इस समस्या का समाधान निकालने मे सफलता प्राप्त की। लोवट फ्रेजर लिखता है, "उसने सीमा की समस्या का समाधान सदा के लिए नही किया क्योकि ऐसी समस्या के निदान मे अतिम कुछ हो ही नही सकता। पर उसने ऐसी नीति अपनाई जिसे समय ने उचित सिद्ध किया। उसन अनावश्यक युद्ध भी टाले और उसने भारत को 11 वष तक तुलनात्मक रूप से सीमा पर शाति प्रदान की।"

चितराल

पर सीमा प्रश्न पर सपूण रूप से विचार करने से पहले और इसके लिए सामान्य नीति तय करने मे पूव, लाड कजन को चितराल मे कुछ कठिनाइयो से निबटना पडा जहा पर उस सामान्य नीति से उसे हटना पडा जो उसने बाद मे सीमा के लिए अपनाई। चितराल का राज्य हिदूकुश पवत माला के नीचे था जो प्राकृतिक दीवार की तरह मालूम पडता था और भारत को रूस प्रभाव से पामीर में अलग करता था। यह अनुभव किया गया कि ब्रिटिश को चितराल मे कुछ स्पष्ट प्रभाव चिह्न स्थापित करना चाहिए अ यथा यह आशका थी कि रूसी अपने दूत भेजकर ब्रिटिश के विरुद्ध यहा षड्यत्र प्रारभ कर देंगे। चितराल ही ऐसी जगह थी जहा रूसी सीमाए भारत से मिलती थी। चितराल के लोग वसे तो ब्रिटिश के विरुद्ध युद्ध की बात नही सोचते थे, पर उच्च मतो के अनुसार उन पर उस क्षेत्र की रक्षा का उत्तरदायित्व डालना विश्वासजनक नही था जब तक कि ब्रिटिशो की उन्हें प्रभावपूण सहायता प्राप्त हो।

कजन के पूव इस क्षेत्र म जो नीति अपनाई जाती रही थी वह [illegible] नही थी पर थी 'फावड पालिसी'। 1895 मे, जैसा हमन देखा है, [illegible] गद्दी को लेकर उत्तराधिकार की एक लडाई हुई थी। ब्रिटिशो ने [illegible] किया जिसके फलस्वरूप एक छोटी ब्रिटिश सेना जो सर जाज राबटसन [illegible] म थी एक स्थानीय किले मे घेर ली गयी। इस कारण सर राबर्ट [illegible] सना भेजकर चढाई करनी पडी जिससे फसी हुई सेना को बचाया [illegible] लो को स्वात और डीर होकर गुजरना पडा। रास्ते मे उ[illegible] जसे ही चितराल मे उनका उद्देश्य पूरा हो जायेगा ब्रिटिश [illegible] जायेंगी।

स्वात और दीर के लोगो ने इस आश्वासन को नही [illegible] लो को उनसे लडना पडा। उद्देश्य पूरा हो जाने के बाद [illegible] से मई 1895 मे यह इच्छा व्यक्त की कि चितराल [illegible] रोजबरी के मत्रिमडल ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार [illegible] किया। पर [illegible] रोजबरी सदन मे मत के मसले पर हार गय जिसके [illegible]

हुए। इन्होने भारत सरकार का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और चितराल मे स्थायी रूप से एक सेना रख दी गयी।

आवागमन सुधार हेतु उपरोक्त कदम उठाये जाने के बाद चितराल मे एक सडक बनाई गयी जिसका स्वात और दीर के लोगो ने कोई विरोध नही किया। पर जुलाई 1897 म पूरे सीमा क्षेत्र म एक विद्रोह फैल गया। स्वात कबीले के लोगो ने, जिनम मुस्लिम कट्टरपंथियो ने मुख्य भूमिका अदा की, स्वात नदी के किनारे चकदारा की एक छोटी ब्रिटिश पुलिस चौकी पर आक्रमण कर दिया। इसके अतिरिक्त मालकद मे एक बडी ब्रिटिश सेना पर भी आक्रमण कर दिया। फरवरी 1898 के एक वादविवाद के बीच ससद म लार्ड कर्जन ने इस विषय पर एक अति सुन्दर भाषण दिया। इसमे उसन चितराल म भारतीय सरकार की नीति की आलोचना की और कहा कि बलूचिस्तान मे जैसी सर राबर्ट सान्डेमन ने नीति अपनाई वैसी ही अपनाई जाय जिसका उद्देश्य "साहस और उदारता का मिला-जुला रूप हो और घूम घूमकर विश्वास पैदा कर कबीलो से मैत्री भी स्थापित की जाय।" उसने नीति के कुछ आधार भी बताये जिसे आधार बनाकर आगे उसने काय भी किया।

इस तरह कर्जन जब इस देश मे आया तो उसके मन म यह स्पष्ट विचार थे कि किस तरह चितराल की समस्या को हल किया जाय। इसके अतगत "चितराल मे ब्रिटिश सर्वेक्षण चौकी हलकी पर पर्याप्त रखने की योजना बनी।" यहा पर एक कैण्ट बनाने के स्थान पर जिससे कि यहा के शासन को इसकी अनुभूति हो, यह तय किया गया कि यहा से कुछ दक्षिण द्रोश म एक छोटी सी सैनिक टुकडी रखी जाय। इस तरह द्रोश मे एक छोटा किला बनाया गया। चितराल के किले को अदर से मजबूत बनाया गया और बाहर से रक्षा योग्य बनाया गया। साथ ही-साथ सडक भी ठीक की गयी और एक या दो साल बाद एक तार लाइन भी वहा बनाई गयी। सडको पर बनी चौकियो के लिए चितराल म एक अनिवाय छोटी सेना तयार की गयी। और इस नीति की एक मुख्य बात यह थी कि चितराल स्काउटो की सख्या बढा दी गयी जिन्हे थोडे थोडे काल पर टुकडियो मे प्रशिक्षण दिया जाता था।

चितराल स्काउटो की सख्या 1910 तक 1200 हो गयी। फ्रेजर लिखता है कि इस सेना की कायक्षमता "सदेहास्पद है क्योकि चितराली लोग अनुशासन अधिक समय तक बर्दाश्त नही कर सकते और व अच्छे लडने वाले भी नही हैं। पर यह आशा की जाती है कि ये स्काउट सीमित दायरे मे उद्देश्य को पूरा करेंगे जिसके लिए इनकी नियुक्ति की गयी है।" भारत म आने से पूव ही कर्जन ने अपनी नीति घोषित करते हुए कहा था, "रूस ने आक्सस नदी तक अपने सैनिक स्थापित

कर दिये हैं और हम भी उतना ही करने को बाध्य हैं।"[1] सीमा के स्थानीय लोगो के सन्देह को दूर करने हेतु यह सबसे उत्तम उपाय था कि उनकी ही सेना तैयार करके ब्रिटिश हितो की रक्षा की जाय।

कुछ उत्तरदायी ब्रिटिश अधिकारियो ने चितराल मे एक ही रेजीमेन्ट सेना रखने की आलोचना की क्योकि यह जगह अत्यधिक दूर होने के कारण खतरे की थी। पर उच्च अधिकारियो ने इस आलोचना को गलत बताया क्योकि वे दृढता से यह आशा करते थे कि चितराल की सेना आपातकाल मे तब तक अपने को सुरक्षित रख सकेगी जबतक कि कोई सहायता वहा नही पहुच जाती। इसके अतिरिक्त वह कारण, जिसके नाते सेना भेजने की आवश्यकता पडी, काफी आगे के काल तक बना रहा और यह नीति 1911 तक खरी उतरी जब फ्रेजर ने अपनी पुस्तक लिखी।

पर चितराल उसकी सीमा नीति का एक भाग ही था, किसी भी स्थिति मे बहुत महत्त्वपूर्ण भाग नही था जो उसके वाइसरायत्व काल मे सामने आये।" सच मे, चितराल की समस्या का हल उस नीति के प्रारभ का इशारा था जिसके आधार पर पूरे पठान सीमा की परीक्षा होनी थी जहा की दशा विचित्र रूप से मिश्रित और खतरनाक थी। इसका कोई भी भाग अभी युद्ध के प्रभावो से मुक्त नहा हो सका था। जगह जगह कबीलो के क्षेत्र मे वापस लौटती ब्रिटिश आक्रमण कारी सेना ने सैनिक टुकडिया छोड रखी थी। इतनी बेशर्मी से छोडी गयी खैबर दर्रे के निकट लडी कोटल्स मे एक नियमित सैनिक टुकडी थी। समाना रैंज क्षेत्र मे सामरिक दृष्टि से बेकार क्षत्र मे नियमित सेनाए थी। कुरम घाटी की दूसरी ओर एक सेना थी, स्वात मे चलने फिरने वाली एक टुकडी थी, कुछ सेना टोचीघाटी मे थी और कुछ अन्य निर्जन स्थानो पर।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि सीमा समस्या पर दो तरह के विचार थे। एक 'फावर्ड पालिसी' का पक्ष लेता था और दूसरा 'सिध वापसी की नीति' की इच्छा रखता था। पर कर्जन इनमे से किसी का भी पक्ष नही लेता था। वह चितराल मे बने रहने के अतिरिक्त 'फावर्ड नीति' मे अविश्वास करता था। वह निश्चित वापसी के भी पक्ष मे नही था। सच तो यह था कि कर्जन ने इस मामले मे एक नयी विचारधारा को ही जन्म दिया जो उसकी इस घोषणा से ही स्पष्ट है, "अगले क्षेत्रो से ब्रिटिश सेना की वापसी, कबीलो को सेना से ही कबीलो के देश की रक्षा के लिए उन्हे नौकरी, ब्रिटिश क्षेत्र मे उनके पीछे ही सैनिको का अपनी सुरक्षा के लिए जमाव और इधर उधर आवागमन की व्यवस्था मे विकास" आवश्यक है। इस नीति मे नियमित ब्रिटिश सेनाओ को अपने क्षेत्र से बहुत दूर

---

1 फ्रेजर पूर्वोक्त पृ० 44 46।

किला मे नही रखा जाना था, पर साथ ही जिन क्षेत्रो से उन्हे वापस बुलाया जाना था उन पर नियत्रण भी बनाये रखा जाना था। नीति का सक्षेप यह था कि, "बलूचिस्तान से यह नीति उधार ली गयी थी जिसके अतगत शाति व्यवस्था के लिए कबीला को स्वय उत्तरदायी बनाया गया था।" कछ क्षेत्रा म स्थानीय लोगा को सैनिक पुलिस म भी भर्ती का प्रस्ताव किया गया, जब कि उन अन्य स्थाना पर जहा के लोग अधिक सैनिक गुणो वाले थे या जो क्षेत्र अधिक महत्त्वपूण थे वहा के कबीले के लोगा को अनियमित सैनिक के रूप से निश्चित सैनिक सेवा म भर्ती किया जाना था। और लगभग इन सभी मामला म जो सेना बननी थी उनका नेतृत्व ब्रिटिश अधिकारिया के हाथ म रहना था। इसके अतिरिक्त चूकि य अनियमित और पुलिस सेनाए विद्रोह की स्थिति मे इन्हे अपने मन स कुछ न करने दिया जाता और चूकि उनसे स्वय के विद्रोह करने की आशा रहती, इसलिए लाड कर्जन ने "मैदान और पवत की सीमाओ पर जगह जगह चलने फिरने वाली नियमित सेनाओ की व्यवस्था की जो सूचना पाने पर क्षणो म कबीला की सेना से मुक्त कराने के लिए पहुच जाते।"

यदि उपरोक्त नीति काय रूप म लायी जानी थी तो यह आवश्यक था कि सीमा की ओर जानेवाली सडको का आवश्यक विकास हो, रेलव का विस्तार हो जिसमे हल्की लाइनें लगाई जाय और प्रशासकीय सीमा क्षेत्र म आधारा को और विस्तृत किया जाय। और ये सभी काम तुरन्त प्रारभ किये गये।

यह नीति काय रूप मे बदली गयी। दीर और स्वात मे और अधिक लोग अनिवाय रूप से भर्ती किये गये। चित्राल म एक रेजीमेण्ट रखा गया। उत्तर म सबसे दूर जो सैनिक टुकडी रखी गयी वह स्वात नदी के किनारे चक्दार पुल पर थी जिसके समथन के लिए एक छोटी टुकडी मालकद क ऊचे पहाडो पर स्थित थी। खैबर दर्रे मे नियुक्त 4000 की नियमित सेना सबकी सब वापस कर ली गयी और उसके स्थान पर अफरीदिया की एक खैबर राइफल और कुछ अन्य कबीलो की सना तैयार करके उस दर्रे के रक्षाथ नियुक्त कर दी गयी। एक हल्की रेलवे लाइन मुख्य रेलवे लाइन नौशेरा स मालकन्द के निकट दरगाय तक जोडी गयी। दूसरी रलवे लाइन जमरुद तक ले जाई गयी और एक दूसर रास्ते के रूप म खैबर के उत्तर म पवतो के पीछे पीछे लडी कोटाल तक एक गाडी का भार सहन करने वाली सडक ले जाइ गयी। इस सडक का निर्माण पूरी तरह से कबीला के मजदूरा ने किया।

अन्य बहुत से काय और किये गये जिसका विस्तार मे विवरण देना कठिन है। फ्रेजर ने जिस तरह स 1911 म इसे सक्षेप मे बताया, हम भी उस यहा प्रस्तुत कर सकते हैं 'भिन्न भिन्न रूपा म भर्ती होकर कबीले के लोग सक्षेप मे उत्तर पश्चिम के हर दरवाजे के मुख्य दरवाजो की रक्षा कर रहे हैं। वे सीमा सैनिक पुलिस द्वारा समर्थित हैं जिनका काय यह है कि वे हजारा, पेशावर, कोहाट, बन्नू

और डेरा इस्माइल खा जिलो, जो ब्रिटिश प्रशासकीय क्षेत्र मे है, मे लूटमार करने से उस क्षेत्र को बचाए।"[1]

जब कर्जन इस देश से वापस लौटा उस समय तक नियमित सेनाओ की संख्या प्रशासकीय सीमा की ओर 15 हजार से घटकर 4 हजार रह गयी थी। उसके अदर भर्ती की गयी सेना बढाकर 10 हजार कर दी गयी। इसके अतिरिक्त समय समय पर कुछ कबीले वालो को घूस के रूप मे कुछ धन दे दिया जाता था। यह धन बहुत अधिक तो नही था और कभी कभी कबीले वालो से वसूला गया अर्थ दड इस व्यय को अधिक सीमा तक पूरा कर देता था। इन धनो का देने का सबसे अधिक लाभ यह था कि उनके वहा से वापस होने की चेतावनी से उनकी उग्रता समाप्त हो जाती थी।

लाड कर्जन द्वारा स्थापित सीमा नीति की अच्छाइया प्रशसा योग्य थी। गवर्नर जनरल के रूप मे इस देश के उसके पूर्ण शासन काल म शाति केवल एक बार भग हुई। यह काम महसूद वजीरियो ने किया जिनके विरुद्ध कोई आक्रमण नही किया गया। उन्हे घेर लिया गया और उनके गावो पर तेजी से प्रहार किया गया। उसके द्वारा स्थापित शाति लाड मिण्टो के काल मे भी चलती रही जिसे एक ही बार कबीले वालो ने तोडा।

इस नयी नीति के कारण रुपये मे भी बहुत बचत हुई। अपने पूर्ण शासन काल (1899 1905) मे लाड कर्जन ने उत्तर पश्चिम सीमा सबधी सेना पर 2,48,000 पौण्ड व्यय किया जबकि 1894 98 के बीच ही इस मामले पर 45,84,000 पौण्ड व्यय किया गया था। 1908 म लाड कर्जन ने स्वय कहा कि, "यदि किसी को सीमा नीति की सफलता मे सदेह रहा हो तो अब 10 वर्षों के बाद उसका सदेह समाप्त हो गया होगा "

उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त

उपरोक्त विवेचित नवीन नीति की स्थापना ने सीमाओ पर नये प्रान्त की स्थापना मे सहयोग दिया। 1849 मे पजाब पर अधिकार काल से उत्तर-पश्चिम सीमा पर पजाब सरकार का नियत्रण रहा था। पर इस नियत्रण व्यवस्था म बहुत से दोष थे। तथ्य रूप मे भारतीय सरकार ही उत्तर पश्चिम के प्रशासन के लिए उत्तरदायी थी। वे ही युद्ध की घोषणा और शाति की स्थापना करते थे। कोई गडबड सीमा पर हो जाने पर इग्लैण्ड मे जनता और समाचार पत्र पजाब सरकार की ओर ध्यान दिये बिना ही भारत सरकार की खबर लेते थे। पर वाइसराय के जो उत्तरदायित्व थे उनके अतगत उसका सीमा पर सीधा कोई नियत्रण नही था

1 फ्रेजर पूर्वोद्धृत पृ० 46-47।

किलो मे नही रखा जाना था, पर साथ ही जिन क्षेत्रो से उन्हे वापस बुलाया जाना था उन पर नियत्रण भी बनाये रखा जाना था। नीति का सक्षेप यह था कि, "बलूचिस्तान से यह नीति उधार ली गयी थी जिसके अतगत शाति व्यवस्था के लिए कबीलो को स्वय उत्तरदायी बनाया गया था।" कुछ क्षेत्रो मे स्थानीय लोगो को सैनिक पुलिस मे भी भर्ती का प्रस्ताव किया गया, जब कि उन अन्य स्थानो पर जहा के लोग अधिक सैनिक गुणो वाले थे या जो क्षेत्र अधिक महत्त्वपूर्ण थे वहा के कबीले के लोगो को अनियमित सनिक के रूप से निश्चित सैनिक सेवा मे भर्ती किया जाना था। और लगभग इन सभी मामलो मे जो सेना बननी थी उनका नेतत्व ब्रिटिश अधिकारियो के हाथ मे रहना था। इसके अतिरिक्त चूकि ये अनियमित और पुलिस सेनाए विद्रोह की स्थिति मे इन्हे अपने मन से कुछ न करने दिया जाता और चूकि उनसे स्वय के विद्रोह करने की आशा रहती, इसलिए लार्ड कर्जन ने "मैदान और पर्वत की सीमाओ पर जगह जगह चलने फिरने वाली नियमित सेनाओ की व्यवस्था की जो सूचना पाने पर क्षणो मे कबीलो की सेना से मुक्त कराने के लिए पहुच जाते।"

यदि उपरोक्त नीति काय रूप मे लायी जानी थी तो यह आवश्यक था कि सीमा की ओर जानेवाली सडको का आवश्यक विकास हो, रेलवे का विस्तार हो जिसमे हल्की लाइनें लगाई जाय और प्रशासकीय सीमा क्षेत्र मे आधारो को और विस्तत किया जाय। और ये सभी काम तुरन्त प्रारभ किये गये।

यह नीति काय रूप मे बदली गयी। दीर और स्वात मे और अधिक लोग अनिवाय रूप से भर्ती किये गये। चितराल मे एक रेजीमेण्ट रखा गया। उत्तर मे सबसे दूर जो सैनिक टुकडी रखी गयी वह स्वात नदी के किनारे चक्दार पुल पर थी जिसके समथन के लिए एक छोटी टुकडी मालकद के ऊचे पहाडो पर स्थित थी। खैबर दर्रे मे नियुक्त 4000 की नियमित सेना सबकी सब वापस कर ली गयी और उसके स्थान पर अफरीदियो की एक खैबर राइफ्ल और कुछ अन्य कबीलो की सेना तैयार करके उस दर्रे के रक्षाथ नियुक्त कर दी गयी। एक हल्की रेलवे लाइन मुख्य रेलवे लाइन नौशेरा से मालकन्द के निकट दरगाव तक जोडी गयी। दूसरी रेलवे लाइन जमरूद तक ले जाई गयी और एक दूसरे रास्ते के रूप मे खैबर के उत्तर मे पवतो के पीछे पीछे लडी कोटाल तक एक गाडी का भार सहन करने वाली सडक ले जाइ गयी। इस सडक का निर्माण पूरी तरह से कबीलो के मजदूरो ने किया।

अन्य बहुत से काय और किये गये जिसका विस्तार मे विवरण देना कठिन है। फ्रेजर ने जिस तरह से 1911 मे इसे सक्षेप मे बताया, हम भी उसे यहा प्रस्तुत कर सकते हैं, "भिन्न भिन्न रूपो मे भर्ती होकर कबीले के लोग सक्षेप मे, उत्तर पश्चिम के हर दरवाजे के मुख्य दरवाजो की रक्षा कर रहे हैं। वे सीमा सैनिक पुलिस द्वारा समर्थित हैं जिनका काय यह है कि वे हजारा, पेशावर कोहाट, बन्नू

और डेरा इस्माइल खा जिलो, जो ब्रिटिश प्रशासकीय क्षेत्र मे हैं, मे लूटमार करने से उस क्षेत्र को बचाए।"[1]

जब कर्जन इस देश से वापस लौटा उस समय तक नियमित सेनाओ की सख्या प्रशासकीय सीमा की ओर 15 हजार से घटकर 4 हजार रह गयी थी। उसके अदर भर्ती की गयी सेना बढाकर 10 हजार कर दी गयी। इसके अतिरिक्त समय समय पर कुछ कबीले वालो को घूस के रूप म कुछ धन दे दिया जाता था। यह धन बहुत अधिक तो नही था और कभी कभी कबीले वालो स वसूला गया अथ दड इस व्यय को अधिक सीमा तक पूरा कर देता था। इन धनो को देन का सबसे अधिक लाभ यह था कि उनके वहा से वापस होने की चेतावनी से उनकी उग्रता समाप्त हो जाती थी।

लार्ड कर्जन द्वारा स्थापित सीमा नीति की अच्छाइया प्रशसा योग्य थीं। गवनर जनरल के रूप म इस देश के उसके पूण शासन काल म शाति केवल एक बार भग हुई। यह काम महसूद वजीरिया ने किया जिनके विरुद्ध कोई आक्रमण नही किया गया। उन्हें घेर लिया गया और उनके गावो पर तजी म प्रहार किया गया। उसके द्वारा स्थापित शाति लार्ड मिण्टो के काल मे भी चलती रही जिसे एक ही बार कबीले वालो ने तोडा।

इस नयी नीति के कारण रुपये म भी बहुत बचत हुई। अपने पूण शासन काल (1899-1905) मे लार्ड कर्जन ने उत्तर पश्चिम सीमा सबधी सेना पर 2,48,000 पौण्ड व्यय किया, जबकि 1894 98 के बीच ही इस मामले पर 45,84,000 पौण्ड व्यय किया गया था। 1908 म लार्ड कर्जन न स्वय कहा कि, "यदि किसी को सीमा नीति की सफलता म सदेह रहा हो तो अब 10 वर्षों के बाद उसका सदेह समाप्त हो गया होगा "

उत्तर पश्चिम सीमा प्रा त

उपरोक्त विवेचित नवीन नीति की स्थापना न सीमाओ पर नय प्रान्त की स्थापना मे सहयोग दिया। 1849 म पजाब पर अधिकार काल म उत्तर-पश्चिम सीमा पर पजाब सरकार का नियत्रण रहा था। पर इस नियत्रण व्यवस्था म बहुत से दोष थे। तथ्य रूप म भारतीय सरकार ही उत्तर-पश्चिम के प्रशासन के लिए उत्तरदायी थी। वे ही युद्ध की घोषणा और शाति की स्थापना करते थे। कोई गडबड सीमा पर हो जाने पर इग्लैंड मे जनता और समाचार पत्र पजाब सरकार की ओर ध्यान दिये बिना ही भारत सरकार को उत्तरदायी मानते थे। पर वाइसराय के जो उत्तरदायित्व थे उनके अतगत उसका सीमा पर सीधा कोई नियत्रण नही था

1 फ्रेजर पूर्वोक्त पृ० 46-47।

क्योंकि उसे पंजाब के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर के माध्यम से ही सारे आदेश देने होते थे। सीमा पर जो कुछ अधिकारियों पर निर्भर करता था वे उसके द्वारा नियुक्त न होकर लाहौर सरकार द्वारा नियुक्त होते थे और जब कभी नयी नीति अपनाई जाती तो भी यह उनके ऊपर था कि वे उसे कैसे कार्यान्वित करें। इसके अतिरिक्त यह मामला जिन अधिकारियों के हाथ में था वे इससे वैसे भी बहुत परेशान थे। जो चीज प्रारंभ में साधारण लगती थी अब बड़ी पेचीदी हो गयी थी और इस संबंध में सभी पंजाब सचिवालय से निर्देश प्राप्त करते थे जहां के कर्मचारियों को इस संबंध में और इससे संबंधित गहन नीति में छिपे सिद्धान्त की कोई जानकारी नहीं थी। जैसाकि एक बार लार्ड कर्जन ने स्वयं कहा कि पंजाब के प्रथम पांच लेफ्टीनेन्ट गवर्नरों और मुख्य सचिवों को सीमा के संबंध में कोई राजनैतिक अनुभव नहीं प्राप्त था। सच तो यह था कि पंजाब सरकार उत्तरदायित्व से बचने में प्रवृत्ति की थी और यहां का सचिवालय पोस्ट ऑफिस से बेहतर और कुछ नहीं था जो सूचना प्राप्त होते ही हर कठिन समस्या की जानकारी केन्द्र को तुरन्त करा देता था। 1897 में सीमा युद्ध के काल में स्थिति विषमता की पराकाष्ठा को पहुंच गयी जब विनाशकारी स्थिति उस क्षेत्र में उत्पन्न हो गयी, पर अपनी अज्ञानता के कारण पंजाब सरकार ने मामले की जो रिपोर्ट भेजी उसके अनुसार स्थिति ठीक बताई गयी।

पर इनके लिए केवल पंजाब के अधिकारी ही दोषी नहीं थे। वे जो भी कदम उठाते उसके लिए केन्द्र से ही अंतिम स्वीकृति प्राप्त होती थी और उनके लिए यह मामला दिन प्रतिदिन पेचीदा ही होता गया क्योंकि एक के बाद एक सभी वाइसरायों ने सीमा के संबंध में अपनी पकड़ कड़ी कर दी। यदि पंजाब सरकार की अपनी कोई सीमा नीति नहीं थी तो हम इसके लिए पंजाब को दोष नहीं दे सकते क्योंकि वे ऐसा करने की स्थिति में ही कहां थे। अभी कुछ दिन पहले तक सीमा पर उन्होंने प्रशंसापूर्ण कारवाई की थी और यदि अब वे असफल हो गये तो इसका कारण साम्राज्यवाद था। इतना ही नहीं पंजाब की आंतरिक स्थिति भी पेचीदी हो गयी थी। अब पंजाब सरकार के लिए कार्य क्षमता-पूर्वक इस बोझ को संभालने में कठिनाई ही थी।

इस समस्या का बेहतर हल यह था कि सीमा पर एक नया प्रान्त स्थापित कर दिया जाय जो अपनी समस्या का समाधान सीधे केन्द्र से निर्देश प्राप्त करके करे। इस तरह का प्रस्ताव बहुत पहले आ चुका था। लार्ड डलहौजी इस प्रान्त की रचना करना चाहता था पर उसे इस विचार का इसलिए परित्याग कर देना पड़ा क्योंकि कर्नल मकेसन जिसे वह यह कार्य सौंपना चाहता था उसकी पेशावर में हत्या कर दी गयी। लार्ड लिटन ने 1877 में इस प्रस्ताव को दुहराया और उसकी योजना यह थी कि इसे लंबा चौड़ा क्षेत्र वाला प्रान्त बनाया जाय जो समुद्र तक पहुंच जाय

और जिसमे बलूचिस्तान भी सम्मिलित हो। पर इसी समय द्वितीय अफगान युद्ध ने मामला खटाई मे डाल दिया। इस प्रस्ताव को 1893 मे पुन सर मार्टिमेर डूरण्ड द्वारा लाया गया जब उसने अब्दुरहमान से समझौते मे भारत और अफगानिस्तान के बीच सीमा के विषय मे बातचीत की। लाड लैंसडाउन इस प्रस्ताव के पक्ष मे था पर वह इस मसले के विषय मे कुछ करता उसके पहले ही उसे भारत छोडकर जाना पडा। लाड एल्गिन ने 1898 मे पुन इस प्रस्ताव को दुहराया। उसने पजाब सरकार से इस सबध मे पत्र मागा जिसने इसके विरुद्ध अपना मत दिया। लाड एल्गिन ने पजाब सरकार के मत सहित अपने विचार भी सेक्रेट्री आफ स्टेट को भेजे। पर सेक्रेट्री आफ स्टेट ने इस तरह के क्षेत्रीय परिवतन इस समय न करने की सलाह दी जिससे यह प्रस्ताव फिर टल गया।

पजाब सरकार इस प्रस्ताव का मुख्यतया इसलिए विरोध करती थी क्योकि एक नये प्रान्त के निर्माण से उनकी राजस्व व्यवस्था गभीर रूप से प्रभावित होगी। इससे पजाब अधिकारियो को सीमा समस्या के विषय मे प्रशिक्षण भी नही मिल पायेगा और साथ ही कुछ क्षेत्रीय आदान प्रदान भी इसके साथ जुडेगा जिसके लिए पजाब सरकार तैयार नही थी। इसके अतिरिक्त इस काय से फावड नीति को प्रोत्साहन मिलेगा जिसके परिणाम अभी तक ठीक नही आ पाये है।

लाड कर्जन ने इस प्रश्न को दढता से लिया। उसने पजाब सरकार के सभी विरोधो को नामजूर कर दिया और उसे बेकार बताया, उसने पजाब सरकार के उस प्रस्ताव को भी स्वीकार नही किया कि बम्बई प्रेसीडेन्सी से सिंध लेकर पजाब को सीमा प्रान्तो की क्षतिपूर्ति के रूप मे सौंप दिया जाय। कुछ पजाब के अधिकारियो ने कडाई से कर्जन के प्रस्तावो का विरोध किया, यहा तक कि एक प्रतिष्ठाप्राप्त अमैनिक अधिकारी ने स्तीफा तक दे दिया, पर कर्जन हिला डुला तक नही।

अपनी कासिल और सेक्रेट्री आफ स्टेट से आवश्यक स्वीकृति प्राप्त कर लाड कर्जन ने नवीन प्रान्त की रचना कर दी। नये प्रान्त मे सिंध पार के जिले पेशावर, कोहाट, बन्नू और डेरा इस्माइल खा सम्मिलित किये गये। दीर, स्वात और चितराल मे राजनैतिक एजेन्सिया स्थापित की गयीं। इसमे खैबर, कुरम, तोची और वाना दर्रे भी सम्मिलित थे। बाद मे इसमे सिंध के इस पार के क्षेत्र हजारा को कबीलो की सख्या के आधार पर सम्मिलित किया गया। इस तरह पजाब के हाथ मे सिंध के पश्चिम क्षेत्र निकल गये और अब उसका उस क्षेत्र के डेरा गाजी खा पर ही अधिकार रहा।

जो नया प्रान्त बनाया गया इसमे सिंध के पार बराबर भूमि वाली एक लबी सकरी पट्टी जुडी थी तथा इसमे अफगानिस्तान तक का पहाडी क्षेत्र सम्मिलित था। इसका क्षेत्रफल 38665 वर्गमील था जिसमे से 13,193 वग मील प्रशासकीय

सीमा के अतगत थे। प्रान्त की जनसख्या 40 लाख थी जिसमे से अधिकतर पठान और मुसलमान थे। इस प्रात की स्थापना राजा एडवड के जन्म दिन पर 1901 मे की गयी और इसका नाम रखा गया नार्थ वेस्ट फ्रण्टियर प्राविन्स। नार्थ वेस्ट प्राविन्स का नाम बदलकर युनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा व अवध रख दिया गया। रोनाल्डशे के अनुसार इस तरह "अत्यधिक देर तक जन्म मे पूर्व के कष्ट के बाद नार्थ वेस्ट फ्रटियर प्रात का जन्म हुआ।"[1] इस प्रान्त का प्रथम कमिश्नर लेफ्टीनेन्ट कर्नल डीन को बनाया गया जो बाद मे सर हैरल्ड डीन कहलाये। 1908 मे उनकी मृत्यु हो गयी और वे सर जाज रूस केप्पेल उनके उत्तराधिकारी हुए।

इस प्रात के जन्म के औचित्य को सिद्ध करते हुए फ्रेजर ने 1911 म कहा, "जिस तीव्रता से सीमा के मामले अब निपटाये गये हैं, अपराधो को दबाने म जो सतकता बरती गयी है, तथा अधिकारियो व सीमा के नेताओ म जिस तरह का अच्छा और निकट का सबध स्थापित हुआ है, वह पहले की स्थिति का एकदम विलोम है।"[2] सी० सी० डेवीज ने लिखा है कि लाड कजन के काम की महत्ता "इसम है कि उसने एसे सुधार को मूत रूप प्रदान किया जिसपर लगभग पिछले 25 वष से विचार हो रहा था।"[3]

सचमुच लाड कजन की पूरी उत्तर पश्चिम सीमा नीति हमारी प्रशसा का अधिकार रखती है। इस सबध मे बहुत से जानकारो ने घोषणा कर रखी थी कि सान्डेमन की बलूचिस्तान सबधी पठानो के विरुद्ध नीति सफल नही हो पायेगी। पर लाड कजन अपनी नीति पर अडा रहा और जो प्रयोग बलूचिस्तान म सफल रहे थे वे उत्तर पश्चिम सीमा पर भी सफल हुए। लाड कजन तय कर चुका था कि वह नियमित ब्रिटिश सैनिको को असुरक्षित स्थानो पर नियुक्त नही करगा और उसका विचार था कि स्थानीय अनियमित सेनाए जो इस उद्देश्य के लिए सगठित की गयी है उनसे उद्देश्य पूरा हो जायगा। और यह सब सिद्ध भी हुआ। अपनी नीति के द्वारा उसने अपने नियमित सैनिको को अनियमित और खतरनाक कार्यों से बचाया ही नही बल्कि इससे सीमा म होने वाले व्यय मे भी बहुत बचत हो गयी। जबकि अन्य लोग सुधारो की बात करते रह कजन ने उसे करके दिखा दिया। उसने "भारत की उत्तर पश्चिम सीमा पर सबसे लबे काल तक की शाति प्रदान की जो अभी तक जानी नही गयी थी" और जो तरीका उसने प्रारभ किया वह अनवरत काल तक के लिए चलता रहा। कजन ने स्वय घोषणा की, "मैं इस बात से ही सतुष्ट

1 रोनाल्डशे ■ लाइफ आफ लाड कजन II पृ० 263।
■ फ्रेजर पूर्वोद्धृत पृ० 39 77।
3 वही

हू कि सात वर्षों तक हमे सीमा पर एक भी आक्रमण नही करना पडा, और यही सात वर्ष हुए थे जबसे सीमा ब्रिटिशो के हाथ मे आयी थी "[1]

अफगानिस्तान से सबध

उत्तर पश्चिम सीमा के पार लाड कर्जन के अफगानिस्तान से सबध उतने सफल नही थे जितनी कि उसकी इच्छा थी। अफगानिस्तान का शासक अब्दुरहमान लाड कर्जन से पहले से ही परिचित था। उसे ब्रिटिश सहायता से ही 1880 मे अफगान युद्ध के बाद अफगान गद्दी प्राप्त हुई थी। अमीर को यह ब्रिटिशो की ओर से आश्वस्त किया गया था कि वे उनके आतरिक मामलो मे हस्तक्षेप नही करेंगे। यदि कोई विदेशी आक्रमण उन पर होगा तो ब्रिटिश अमीर की सहायता करेंगे और यह कि उसे ब्रिटिशो से 80,000 पौण्ड की वार्षिक आर्थिक सहायता तब तक प्राप्त होती रहेगी जब तक उसके उनसे अच्छे सबध बने रहेंगे। 1893 मे यह आश्वासन पुन दुहराये गये जब डूरण्ड समझौते पर हस्ताक्षर किये गये और अमीर की आर्थिक सहायता बढाकर 1,20,000 पौण्ड कर दी गयी। वैसे इस सबध मे कभी औपचारिक सधि पर हस्ताक्षर नही हुए, पर अमीर की वैदेशिक नीति का सचालन ग्रेट ब्रिटेन के माध्यम से होता रहा और रूस को बार बार सूचना भेजी गयी कि अफगानिस्तान उसके प्रभाव क्षेत्र के बाहर है।

अफगानिस्तान के प्रति ब्रिटिश नीति का मुख्य सिद्धात यह था कि वे उनके राज्य को एक मध्यवर्ती राज्य के रूप म अपने प्रभाव मे बनाये रखना चाहते थे और वे प्रमाण पत्र चाहते थे कि अफगानिस्तान इतना शक्तिशाली हो कि वह विदेशी आक्रमण का मुकाबला कर सके।

पर इस सबके लिए अमीर ने ब्रिटिशो के लिए कोई कृतज्ञता नही दिखाई। उसने ब्रिटिश धन तो लिया पर उनसे दूर बना रहा। उसने भारत सरकार से पत्र व्यवहार तक करना पसद नही किया और इस बात पर जोर डाला कि उसकी प्रतिष्ठा का तकाजा है कि उसका एक प्रतिनिधि सेट जेम्स के दरबार मे भेजा जाय। इस उद्देश्य के लिए उसके लडके नसरुल्लाह खा को 1895 मे भेजा भी गया पर उसे वहा निराशा के अतिरिक्त कुछ नही प्राप्त हुआ। भारत सरकार को प्रेषित उसके पत्र सदा अपने को महत्त्वपूर्ण ही जताते थे। अपने जीवन के अतिम वर्षों मे उसने सोचा कि उसकी सेना इतनी शक्तिशाली है कि रूसियो के आक्रमण को पिछाड सके इसलिए उसकी इच्छा है कि अब ब्रिटिश उसकी केवल धन और हथियार से सहायता करें। उसने अफगानिस्तान और भारत के बीच व्यापार ठप कर दिया और आमतौर पर ब्रिटिश क्षेत्र के कबीलो से षड्यत्र म तल्लीन रहा।

---

1 डवीज, सी० सी० द प्राब्लेम आफ द नार्थ वेस्ट फ्रटियर्स (1932), पृ० 258।

उसने तीरा के विद्रोह मे भी अप्रत्यक्ष पर महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

पर इस सबके बावजूद उसने वह किया जो ब्रिटिश से कहा। इस तरह ब्रिटिशसे उसके सबध न तो बहुत अच्छे और न बहुत खराब रहे। डूरण्ड समझौते के अन्तगत अमीर को ब्रिटिश भारत से होकर हथियार आयात करने का अधिकार दिया गया, और उसने इस सुविधा का इतना अधिक प्रयोग किया कि उसकी कुछ सामग्री भारत रोक ली गयी जिसे कर्जन ने भारत पहुचने पर अफगानिस्तान चले जाने की आज्ञा दे दी। अब्दुर्रहमान की अक्तूबर 1901 मे मृत्यु हो गयी।

उसके मरने के बाद उसका लडका हबीबुल्लाह गद्दी पर बैठा जिसने कुछ पेचीदे और महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रश्न उठाये। फ्रेजर के मतानुसार अब्दुर्रहमान और ब्रिटिश के बीच जो सुरक्षा-समझौता हुआ था वह परम व्यक्तिगत था और किसी अथ मे यह पैतृक नही था, एक अद्ध-बबर देश मे तो और नही जहा शासक की मृत्यु उत्तराधिकार के प्रतियोगियो म खून-खराबा मचा देती थी।" यही बात आर्थिक सहायता पर भी लागू होती थी। यह प्रश्न तो इस तरह हल हो गया कि हबीबुल्लाह ने आर्थिक सहायता लेने से ही इनकार कर दिया। पर ब्रिटिश तब परेशान हो गये जब हबीबुल्लाह ने कई निमत्रणो को अस्वीकार कर दिया जिसमे उससे भारत आने और पुराने समझौते को फिर से करने को कहा गया था। उसने जोर दिया कि समझौता वशगत था और इस कारण उसके पिता के मर जाने से यह टूटा नही है।

मामला तब और गभीर हो गया जब अमीर ने अपने बहुत से अधिकार अपने भाई को सौंपना प्रारभ कर दिया। कभी-कभी तो वह राज्य के काम मे बिल्कुल ही भाग न लेता। उसकी सेना का अनुशासन भी ढीला पडने लगा और इसके अतिरिक्त यह भी पता चला कि उसकी रुझान रूस की ओर हो रही है। वैसे इस सबध मे कोई विश्वस्त प्रमाण नही मिले। इस सबके बावजूद उसने जोर देकर भारत के माध्यम से युद्ध सामग्री आयात करने पर जोर दिया और उसने यह भी कहा कि वह उतना ही शक्तिशाली है जितना कि जापान का सम्राट। 1904 आते-आते अमीर और ब्रिटिशो मे सबध बिगाड की सीमा पर पहुच गये जब लार्ड कर्जन लदन अवकाश पर चला गया और लार्ड ऐम्पथिलको स्थानापन्न वाइसराय बनाया गया।

जब बार बार भारत-यात्रा का ब्रिटिश आमत्रण अमीर ने नही माना तो कर्जन और गृह सरकार की स्वीकृति से लार्ड ऐम्पथिल ने डेन के नेतृत्व म अफगानिस्तान मे एक शिष्टमडल भेजा। अमीर ने शिष्टमडल का स्वागत करना स्वीकार किया और उसने अपने 16 वर्षीय पुत्र इनायतुल्ला को भारत की यात्रा पर भेजने के लिए आश्वस्त किया। अमीर की भारत यात्रा करने से इनकार करना उसके द्वारा दरबार मे उस भाषण से स्पष्ट होता है जो उसने 21 अगस्त 1906 म लार्ड मिण्टो के निमत्रण प्राप्ति के बाद आयोजित किया। उसने कहा, इसके

पहले लार्ड कर्जन ने भी मुझे भारत से निमंत्रित किया। पर उसके पत्र में यह चेतावनी थी कि यदि मैं नहीं आता तो आर्थिक सहायता बंद कर दी जायेगी। इसलिए यह बिल्कुल स्पष्ट है मैंने निश्चित कर लिया कि मैं कभी नहीं जाऊंगा लार्ड मिण्टो का व्यवहार इतना मित्रतापूर्ण है कि इस निमंत्रण को स्वीकार करने में मैं नहीं हिचक सकता।"

1904 के अंत में अमीर के लड़के ने भारत की यात्रा की, पर इसकी कोई राजनैतिक महत्ता नहीं थी। अफगानिस्तान जो शिष्टमंडल भेजा गया उसके भी कोई अच्छे परिणाम नहीं हुए। डेन के नेतृत्व में शिष्टमंडल काबुल 12 दिसंबर 1904 को पहुंचा। यह अफगानिस्तान में दो सप्ताह से अधिक रुकने की आशा नहीं करता था पर अफगान सरकार की उनके प्रति कारवाई इतनी अनुत्साहपूर्ण थी कि इसे वहां दूसरे वर्ष 29 मार्च तक रुकना पड़ा। अमीर ने कूटनीतिज्ञता ज्ञापन करते हुए शिष्टमंडल के साथ व्यक्तिगत साक्षात्कार में बड़ा अच्छा व्यवहार किया। पर समझौते के मामले में पत्रों द्वारा बातचीत की गयी और उसके सरकारी पत्र व्यवहार गुस्ताखी से भरे हुए थे। शिष्टमंडल लगभग अलग थलग पड़ गया था जिनसे कभी-कभी कोई महत्वपूर्ण अफगान मिलने चला आता था। शिष्टमंडल के साथ ऐसे व्यवहार किया गया जैसे कि वह दरवाजे का पहरेदार हो। इस तरह के व्यवहार करने का उद्देश्य संभवत अफगान अमीर द्वारा अपनी जनता को अपनी महत्ता और बड़प्पन दिखाना था क्योंकि पूरा नगर यह जानता था कि अमीर ने कई ब्रिटिश के भारत जाने के निमंत्रणों को ठुकरा दिया है और अब ब्रिटिशों ने अंतत अपना ही शिष्टमंडल अमीर के पास भेजा है।

शिष्टमंडल का उद्देश्य दुहरा था पहला यह कि अमीर और ब्रिटिशों में जो भेदभाव हो गया है वह समाप्त हो जाय, और दूसरा यह की उससे वह संधि पुन कर ली जाय जो उसके पिता के काल से चली आ रही थी। उनके पास जेब में ही संधि की शर्तें तैयार रखी थी जिसे अमीर ने देखा पर यह प्रस्ताव रखा कि वह स्वयं शर्तें तैयार करेगा। जिसे उसने शुद्ध फारसी में लिखा। दोनों संधि-पत्रों में अंतर था। जहां डेन के संधि-पत्र में पुराने आधार पर कई वादे करने को कहा गया था, वहां अमीर के संधि-पत्र में केवल यह लिखा गया था कि अमीर अपने पिता के समय से चले आ रहे समझौते का पालन करेगा। अपने संधि पत्र में पहली बार अमीर ने 'हिज मॅजेस्टी" शब्द के समानांतर शब्द का प्रयोग किया। तीन सप्ताह इसी तरह के पत्रों के आदान प्रदान में लग गये पर कोई निष्कर्ष नहीं निकल पाया।

इस कठोर दृष्टि के लिए केवल अमीर दोषी भी नहीं था। इस तरह का उदाहरण था जिसमें दोस्त मुहम्मद से हुई ब्रिटिश से संधि को उसके उत्तराधिकारी शेरअली के शासन काल में बिना नवीनीकरण के चलता रहने दिया गया। पर

भारत सरकार के विचार भी पूर्णतया तर्क से परे नहीं थे। इसमे सदेह नही कि एक देश म जहा गृह युद्ध सामान्य हैं और एक देश के बाद दूसरे का आगमन होता है, बडकजाई वश से ब्रिटिश सधि तमाम अज्ञात सभावनाओ से उन्हे बाध देती। और फिर हबीबुल्लाह का शासन भी बहुत सुरक्षित नहीं था। उसका भाई जिसके पास तमाम शक्ति थी वह स्वय शासक बनने का महत्वाकाक्षी था। पर पुरान उदाहरणो से अमीरो ने उनको लिया जो उसके लिए हितकर था और उसे मानने से इनकार कर दिया जो उसके हितो के प्रतिकूल था 40,00,000 पौण्ड, जो आर्थिक सहायता का अब तक एकत्रित हो गया था उसे उसने अपना जन्मसिद्ध अधिकार बताया और ऐसे ही भारत से होकर हथियार आयात करने के अधिकार के विषय म भी उसकी धारणा थी। उसने इन प्रश्नो के विवाद को झगडा नही माना। जबकि दूसरी ओर उसने कहा कि वह अपनी वदेशिक नीति पर ब्रिटिश नियत्रण नही बर्दाश्त करेगा।

वार्ता लम्बी अवधि तक चली और इसका अत नजर नही आया क्योकि दोनो पक्ष अपने अपने मत पर अटल बने रहे। पर एकाएक मार्च की समाप्ति आते आते स्थिति बदल गयी और शिष्टमडल ने अमीर की सभी शर्तें मान ली। अमीर को अपनी इच्छानुसार सब प्राप्त हो गया और उसने शिष्टमडल को भद्र विदाई दी।

डेन ने कहा कि उसका शिष्टमडल सफल होकर लौटा है। पर सत्य भी क्या छिप सकता था? सच तो यह था कि शिष्टमडल ने जो कुछ पाया वह तो पत्र व्यवहार से ही प्राप्त हो जाता। इस शिष्टमडल के कारण अफगानिस्तान म ब्रिटिश प्रतिष्ठा अत्यधिक नीचे आ गई। और यह बहुत देर मे समझ मे आया कि शिष्टमडल 'भेजे जाने की आवश्यकता ही नही थी।'

1907 मे लार्ड मिण्टो के निमत्रण पर अमीर भारत आया। उसका गवनर जनरल द्वारा पहले आगरा मे और फिर कलकत्ता मे स्वागत किया गया। यह समस्या थी कि अमीर को कहा 'हिज मजेस्टी' की उपाधि प्रदान की जाय जिसे उसने अपनी सधि मे एक शर्त बनाया था। पर समस्या तब हल हो गयी जब सम्राट एडवर्ड ने एक तार मे अमीर को 'योर मैजेस्टी' कहकर सबोधित किया। अमीर की इस यात्रा ने दोनो सरकारो के सबध सुदृढ किये और इससे अमीर की प्रतिष्ठा मे वृद्धि हुई।

फारस की खाडी

फारस की खाडी मे ब्रिटिश अत्यधिक विशिष्ट स्थिति मे थे। इस सबध मे 5 मई 1903 को विदेश सचिव लार्ड लैंसडाउन ने हाउस आफ लार्डस मे कहा 'मैं यह बिना हिचक के कहना हू कि हम फारस की खाडी मे किसी और शक्ति के द्वारा नव सेना का अड्डा या बदरगाह की किलेबदी के प्रयास को ब्रिटिश हितो के

प्रतिकूल मानकर इसे प्राणपण से अपने साधनों से विरोध करना चाहिए।" और इस बात को सेण्ट पीटसबर्ग में ब्रिटिश राजदूत सर एडवर्ड ग्रे ने 29 अगस्त 1907 को अपने एक प्रेषण में दुहराया भी।

लार्ड कर्जन जब भारत का गवर्नर जनरल हुआ उस समय उसे भी इस स्थिति का भान था क्योंकि उसने अपनी फारस संबंधी पुस्तक मे लिखा था, "फारस की खाडी में किसी भी शक्ति द्वारा रूस को बंदरगाह बनाने की सुविधा को हमे ब्रिटेन का अपमान मानना चाहिए, यथास्थिति का अनुशासनहीन तरीके से अवमानना माननी चाहिए और इसे मानना चाहिए एक अंतर्राष्ट्रीय युद्ध का आक्रमण। और ऐसी स्थिति में इस अपराध की मौन स्वीकृति के लिए तो हमे ब्रिटिश प्रधानमंत्री को गद्दार मानकर उसके विरुद्ध महाभियोग का मुकदमा चलाना चाहिए।" और जब वह भारत मे वाइसराय होकर आया तब भी उसके इस सम्बन्ध मे विचार वैसे ही थे।

सच तो यह था कि फारस की खाडी की सुरक्षा से ब्रिटिशो के भारत की भी सुरक्षा थी। खाडी पर ब्रिटिश नियंत्रण आवश्यक था, जैसा कि पिछले अध्यायों मे हम देख आये हैं, क्योंकि यह इंगलण्ड और भारत के व्यापार पथ मे पडता था, और इसके अतिरिक्त अब ऐसी स्थिति पैदा हो चुकी थी कि फारस की खाडी मे विदेशो की रुचि निश्चित ही ब्रिटिशो की एक कमजोरी मानी जाती। इसके अतिरिक्त यह भी भय था कि यदि खाडी पर से ब्रिटेन का नियंत्रण ढीला हुआ तो दास व्यापार और आक्रमण प्रतिआक्रमण पुन प्रारंभ हो जाएगे।

कर्जन के यहा पहुचने पर फारस के खाडी की स्थिति पेचीदी थी, यह लगभग वही काल था जब मध्य पूर्व, और विशेषकर फारस और फारस की खाडी अंतर्राष्ट्रीय राजनीति मे अत्यधिक क्रियाशीलता के दर्शन कर रही थी। रूस इस समय उत्तरी फारस में धीरे धीरे अपनी स्थिति मजबूत कर रहा था और खुलेआम दक्षिणी फारस तक रेलवे लाइन बनाने की योजना बना रहा था। सच तो यह था कि रूस फारस की खाडी मे आवश्यकता से अधिक रुचि ले रहा था। खाडी मे प्लेग के विषय में जानकारी प्राप्त करने के बहाने रूसी डाक्टर व्यापारिक रास्तो की खोज में जुटे हुए थे और रूसी अधिकारी बदरगाहो व सडको के परीक्षण में लगे थे। ब्रिटिश इस स्थिति से परेशान हो गये।

फ्रास और अन्य यूरोपीय देश भी इस मामले में ढीले नही थे। मस्काट मे चल रहा फ्रासीसी षड्यंत्र उसे उस क्षेत्र मे एक कोयला स्टेशन दिलाने की स्थिति मे पहुच गया था। दूसरी ओर जर्मनी भी अपनी बगदाद रेलवे की योजना को आगे बढाने की चेष्टा मे लगा था और फारस की खाडी मे एक रास्ता चाहता था। कुवैत के शेख मुबारक की स्वतंत्रता टर्की के इस प्रयास के कारण खतरे मे थी क्योंकि वह उसे अपने अधिकार में लाना चाहता था। फ्रेजर लिखता है कि सच तो यह था कि, "यूरोप की आधी शक्तिया लगता था कि भारत के एक किनारे शक्ति

स्थापित करने मे लगी हैं। उनका उद्देश्य खाडी के क्षेत्र म ब्रिटिश महत्ता को कम करना है।"

और विस्तार म खाडी क्षेत्र म इन देशो की कारवाई को देखने के लिए और लाड कजन की प्रतिक्रिया के अध्ययन के लिए पहले रूस स प्रारम्भ किया जाय। हम ऊपर देख चुके हैं कि रूस किस तरह से खाडी में अत्यधिक रुचि ले रहा था। 1899 मे जिस वष 'कजन भारत आया उसी वष सेण्ट पीटर्सबग वीदोमोस्टी ने एक लेख छापा जिसमे इस बात पर जोर दिया गया कि सरकार को बदर अब्बास पर अधिकार कर लेना चाहिए और इसे रेलवे का अतिम स्टेशन बनाना चाहिए जिसे रूस फारस मे बनाना चाहता है। इसके अतिरिक्त उसे हमुज क्षेत्र मे द्वीपो पर भी अधिकार कर लेना चाहिए। इग्लैण्ड इसी समय दक्षिणी अफ्रीका मे गभीर कठिनाइयो मे फसा हुआ था और रूस ने इससे अत्यधिक लाभ उठाना चाहा। इसी समय एक छोटी-सी यद्धयुक्त एक छोटी जहाज जिसका नाम गिल्जक था बदर अब्बास पहुच गयी। ब्रिटिश अधिकारियो ने इस ओर गभीरता से ध्यान नहीं दिया जो वे निश्चित रूप से देते यदि कोई बडा लडाकू पानी का जहाज आया होता। गिल्जक के नेता न कोयले की आवश्यकता बताई। रूसी अधिकारियो ने बम्बई के एक फम स बातचीत की जिसने 300 टन कोयला अपने ही स्टीमर से भेजा। कोयले का जो आदेश दिया गया था वह नाव के आकार के हिसाब से अधिक था। रूसी अधिकारियो न स्थानीय गवनर से निवदन किया कि कुछ कोयला उसे वहा गिराने की आज्ञा दी जाय, पर चूकि यह जानते थे कि यदि रूसी एक बार घुसे तो जल्दी वापस नहीं जाएगे और इसके अतिरिक्त उनके उद्देश्यो पर सदेह हो जाने के कारण, उन्होंने इसकी आज्ञा नही दी। इसी बीच एच० एम० एस० पोमोन भी एकाएक वहा पहुचा और इस मामले म रुचि लेनी प्रारम्भ कर दी। गिल्जक के नेता को स्थिति समझ म आ गयी और उसन अपने जहाज पर जितना कोयला आया उसे लादकर शेष वहीं के स्थानीय नाविको को बाटकर वह वापस लौट गया। इसम सन्देह नहीं कि रूस ने एक मूखतापूण विधि से वहा पर एक कोयला स्टेशन खोलने की कामना की थी। पर भारत सरकार के ध्यान देने से उसकी महत्त्वाकाक्षा पूरी नही हुई।

इसी बीच रूसी 1900 मे और क्षेत्रो मे भी अपनी कारवाई मे जुटे थे। एक रूसी शिष्टमडल दक्षिणी फारस मे रेलवे लाइन बनाने के लिए नाप जोख कर रहा था। इसका एक दल एकाएक बदर अब्बास मे प्रकट हुआ जबकि दूसरा एक दल एक अन्य भाग पर चहबार की ओर नाप जोख के लिए पहुच गया जो बलूचिस्तान से केवल 100 मील दूर था। वसीरा और बदर अब्बास म रूसी कासला की स्थापना कम गभीर घटना नही थी। लाड कजन इस सब पर तीव्र रूप से निगाह गडाये हुए था जिससे कि खाडी क्षेत्र म ब्रिटिश हितो को हानि न पहुचे।

इस समय फ्रांस भी अपनी कारवाइयो मे व्यस्त था। जैसे ही कर्जन भारत पहुचा मस्काट मे फ्रास के षडयत्र के कारण कठिनाइया बढ गयी। 1862 मे जब ब्रिटेन और फ्रास के बीच सधि हुई तो दोनो ने मिलकर ओमान के सुल्तान की स्वतत्रता की रक्षा का वचन दिया। और मस्काट सबधी वैदेशिक, राजनैतिक और व्यापारिक हित की रक्षा ब्रिटेन के नियत्रण मे आ गयी। उसी समय से भारत सरकार अपनी शक्ति वहा बढाने के लिए सुल्तान के लिए बहुत सी रियायतें करती रही। ब्रिटिश ने उसे आर्थिक सहायता प्रदान की, विरोधियो से उसकी गद्दी को बचाया, आतरिक विद्रोहो को दबाने मे उसकी सहायता की और इस सबके अभाव मे वह राज्य पर अपनी पकड बनाये नही रह सकता था। वर्तमान सुल्तान सैय्यद फैजल भी ब्रिटशो के पक्ष मे था। पर 1894 मे जब मस्काट मे फ्रासीसियो ने अपने कासल की वहा स्थापना कर ली और ब्रिटिशो के विरुद्ध षड्यत्र करने लगे तो स्थिति बदल गयी। फ्रासीसी कासल एम० ओत्तावी एक कूटनीति बुद्धि का व्यक्ति था और अपने पीछे प्रचार द्वारा सुल्तान को ब्रिटिशो के विरुद्ध करने मे सफल हो गया। नवम्बर 1898 मे 'जनल देस देबात' मे यह घोषणा की गयी कि सुल्तान न फ्रासीसियो को बदर जिस्सेह मे एक कोयला स्टेशन बनाने की अनुमति प्रदान की है। यह स्थान मस्काट से 5 मील दक्षिण पूर्व मे बदरगाह की ही तरह का था। इस बदरगाह के निकास पर एक द्वीप था जिसकी किलेबदी की जा सकती थी। ब्रिटिशो ने इस सूचना को गभीरता से नही लिया, पर बाद मे उन्हे पता चला कि यह बदरगाह फ्रासीसियो को पिछले मार्च मे ही दिया जा चुका है। जब इस सबध मे ब्रिटिश राजदूत द्वारा फ्रासीसी विदेश मत्री एम० देलकास से इस सबध मे पूछा गया तो उन्होने इस सबध मे अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की और यह माना जाने का कारण था कि फ्रासीसी सरकार को इसकी सूचना नही रही होगी। मस्काट के ब्रिटिश एजेन्ट को भी इसके विषय मे लबे अरसे तक जानकारी नही हो पाई। वहा पर कुछ ऐसे और मामले थे जिनको लेकर ब्रिटिशो और सुल्तान मे मतभेद हो गया था और वह अब पराकाष्ठा को पहुच गया था। सुल्तान ने मस्काट म ब्रिटिश प्रजा पर कुछ अवैधानिक कर आरोपित कर रखे थे और उसने उनको तीन वर्ष पूर्व हुए विद्रोह के अवसर पर ब्रिटिश हानि की क्षति-पूर्ति से इनकार कर दिया।

फरवरी 1899 म फारस की खाडी का ब्रिटिश एजेन्ट कर्नल मीड मस्काट पहुचा और सुल्तान से मतभेद समाप्त करने का निवेदन किया। इसी बीच जब कर्जन को यह पता चला कि सुल्तान ने बदर जिस्सेह फ्रासीसियों को दे दिया है तो उसने कर्नल मीड को यह लिखा कि वह सुल्तान से यह भी जोर देकर कहे कि वह फ्रासीसियो को दिये गये क्षेत्र को वापस ले ले। कर्नल मीड की सहायता करने के लिए कर्जन ने एडमिरल डगलस को एच० एम० एस० एक्लिप्स मे भेजा जो ईस्ट

इडीज स्क्वाड्रन की फ्लैगशिप थी। और जब कर्नल अपने मंतव्य में सफल नहीं हुआ, तो डगलस ने बातचीत अपने हाथ में ली और सुल्तान को चेतावनी दी कि यदि निश्चित कालावधि में उसके फ्लैगशिप पर आकर ब्रिटिशों की सारी बात नहीं मानता तो वह उसके महल पर बमबारी प्रारंभ कर देगा। सुल्तान साहस खो बैठा और उसने वही किया जो उससे कहा गया था। बंदर जिस्सेह को वापस ले लिया गया और ब्रिटिश पूरी तरह संतुष्ट हो गये।

हम ब्रिटिशों के इस कड़ी कारवाई की, जो उन्होंने सुल्तान के विरुद्ध की, आलोचना भी नहीं कर सकते। सुल्तान ने स्वयं 1891 के गुप्त संधि के अंतर्गत यह वादा किया था कि वह अपने क्षेत्र का कोई भाग किसी को प्रदान नहीं करेगा। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि गृह सरकार को सुल्तान के विरुद्ध इतना कड़ा नहीं पड़ना चाहिए था। टाइम्स ने लार्ड कर्जन के शीघ्रता और निर्णय की चर्चा की। सच यह था कि कर्जन के जोर देने पर ही बंदर जिस्सेह के वापसी की बात ब्रिटिश भाषणों में जोड़ दी गयी। और बाद में गृह सरकार ने लार्ड कर्जन के इस कारवाई की प्रशंसा की।

पर फ्रांसीसी मनोभावों को सहलाने के लिए ब्रिटिशों ने फ्रांसीसियों को मस्काट बंदरगाह के प्रवेश द्वार पर अपने ही क्षेत्र में से कोयला स्टोर बनाने के लिए थोड़ा सा स्थान दे दिया। लार्ड कर्जन ने कर्नल काक्स को नमस्कार भेजा जिसने अपनी चतुराई और कूटनीति से शीघ्र ही ब्रिटिशों के सुल्तान से संबंध को मधुर बना दिया। ब्रिटिशों को मस्काट में फ्रांसीसियों से कुछ कठिनाइयाँ थी, पर वे सब 1905 के हेग ट्रिब्युनल द्वारा तय हो गयी।

अब जर्मनी की ओर आया जाय। यह पता चलता है कि उसने 1897 में बुशायर में वाइस कांसलेट की स्थापना की जिसकी देखभाल के लिए केवल 6 जर्मन थे। 1899 में उसने खाड़ी बंदरगाह में क्रूजर आरकोना को भेजा और यह स्पष्ट रूप से पता था कि इस तरह की यात्रा के पीछे जर्मनों के मन में कुछ प्राप्ति की भावना थी। 1900 में जर्मनी के अति महत्वपूर्ण व्यक्ति हर स्टरमृच के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल कुवैत पहुँचा और सुल्तान शेख मुबारक से आवश्यक सुविधा प्राप्ति के लिए निवेदन किया। शिष्टमंडल ने कुवैत बंदरगाह पर बगदाद रेलवे के अंतिम रेलवे स्टेशन बनाने की भी माँग की पर सुल्तान ने माँग मानने से इनकार कर दिया। फ्रेजर लिखता है कि, "जनवरी 1899 में जो पहला प्रशासकीय कार्य लार्ड कर्जन ने किया वह था कर्नल मीड को यह सूचना भेजना कि वह मुबारक से एक समझौता कर ले जिसमें यह शर्त अवश्य जुड़ी हो कि वह अपने राज्य का कोई क्षेत्र किसी वैदेशिक शक्ति को नहीं प्रदान करेगा।'[1]

---

1 फ्रेजर पूर्वोद्धृत पृ० 78 115।

तुर्की ने भी खाडी म कठिनाई पैदा करने की चेष्टा की। उसने कुवैत पर अस्पष्ट सप्रभुता की माग की और उस पर अधिकार करने का प्रयास किया। मध्य एशिया मे 1900 म पराजित हो जाने के कारण सुल्तान मुबारक कमजोर पड गया था। टर्की ने इसी का लाभ उठाना चाहा और 1901 मे उसने कुवत पर अधिकार करने के लिए कार्वेट भेज दिया। जब लाड कर्जन को इसका पता चला तो उसने तुरन्त एक क्रूजर उस स्थान के लिए रवाना कर दिया। इसे देखते ही टर्की का कार्वेट भाग खडा हुआ। उसी वष के अत म तुर्की ने फिर कार्वेट भेजकर शाति भग करने की कोशिश की। सुल्तान को चेतावनी दी गयी। सयोग से कैप्टन साइमन्स इस समय कुवत म थे जिन्होने अपने ही उत्तरदायित्व पर कारवाई कर दी क्योकि भारत से आज्ञा प्राप्त करने का अवसर नही था। उसने कार्बेट को चुनौती दी जो लज्जित होकर वापस चला गया। तुर्की ने खाडी म और अशाति पदा करने की चेष्टा की। पर उनका सही समय पर मुकाबला कर लिया गया और ब्रिटिश हितो की रक्षा कर ली गयी।

एत कतार के निकट बहरीन मे भी 1904 म कुछ विद्रोह हुए जिसे वहा का शासक शेख ईसा दबा नही सका। परिणामस्वरूप इस छोटे से राज्य म ब्रिटिश हितो की रक्षा नही हो पायी। शातिपूवक यह माग की गई कि ब्रिटिश हानि की पूर्ति की जाए, पर शेख ने इसे स्वीकार नही किया। लाड कर्जन ने कनल काम्स को तीन युद्धपोतो सहित आगे बढ़कर आवश्यक कारवाई करने को कहा। कनल 1905 के फरवरी मे मानागाह पहुचा, शेख को चेतावनी दी और 24 घटे के अन्दर सभी ब्रिटिश मागें पूरी कर दी गइ।

लाड कर्जन को अपने काल म खाडी क्षेत्र के फारस के समुद्र तटीय भागो मे भी कठिनाइयो का सामना करना पडा। वे स्थान थे मोहम्मेराह, बुशायर जो रूस का प्रमुख बदरगाह था एव लिगाह। पर ये सब कठिनाइया तय हो गइ और फारस को यथोचित अधिकार प्राप्त हो गय।

इस तरह स्पष्ट है कि लाड कर्जन ने फारस की खाडी के मामले मे अत्यधिक रुचि ली और यह चेष्टा की कि विदेशी शक्तियो से इसकी रक्षा की जाय। इसके लिए भी वह प्रशसा का पात्र है कि उसने खाडी पर विदेशी आक्रमणो का विरोध ही नही किया वल्कि उसने कदम भी उठाय जिससे कि भविष्य म वहा कोई कठिनाई न हो। उसने—एलफिन्स्टन द्वीप की जल सना सबधी महत्ता स्वीकार की और पहले छोड दिय गय हेन्जाम मे तार स्टेशन बनवाया तथा वहा केबुल भी लगवाया और बाद म इसे बदर अब्बास से जोड दिया। उसने हेन्जाम की सामरिक महत्ता समझी और उसके प्रयोग के लिए आवश्यक कदम उठाये। बसीद पर ब्रिटिश अधिकार और प्रभावी बनवाया गया। फारस की खाडी के पुराने सर्वेक्षण परिवर्द्धित किय गये, उन्ह जाचा गया और नये सर्वेक्षण किय गये।

19वीं सदी के छठे दशक मे फारस और अफगानिस्तान के बीच कटु सीमा सघर्ष सामने आया। ग्रेट ब्रिटेन से झगडा निबटाने को कहा गया। ब्रिटिश विदेश मत्रालय ने मेजर जनरल सर फ्रेडरिक गोल्डस्मिड के नेतत्व मे एक शिष्टमडल भेजा जिसने 1872 मे मामला तय कर दिया। पर निणय के अनुसार न तो फारस सतुष्ट हुआ और न अफगानिस्तान। पर अतत दोनो ने निणय को स्वीकार कर लिया। इस निर्णय के अनुसार हेलमड नदी को दोनो देशो के बीच सीमा बनाया गया। पर बाध के ऊपर पूरी नदी जहा कोबाक बसा हुआ था, अफगानिस्तान को दिया गया।

पर भाग्य का विधान ही था कि नदी ने 8 मील पर पश्चिम की ओर अपना रास्ता ही बदल दिया जिसके फलस्वरूप बीच मे एक लम्बा चौडा ताल बन गया। पुराने निणय को ध्यान मे रखे बिना अफगानिस्तान नदी के दक्षिण तट पर अपना अधिकार मानता रहा और यह जताता रहा कि बाध के नीचे नदी के दोना किनारो पर उसका अधिकार है। उसने बाध के ऊपर नदी के पानी की दिशा बदलनी प्रारभ कर दी जिससे फारस को आवश्यकता भर को पानी न प्राप्त हो। पहले तो यह झगडा स्थानीय रहा पर फिर महत्त्वपूण हो गया। तब तो यह बहुत गभीर हो गया जब एक मिलर नामक चतुर रूमी कान्मल 1900 मे सीस्तान पहुचा और फारस के मामले का पूण समथन करने लगा।

1902 मे फारस की सरकार ने ग्रेट ब्रिटेन से 1857 की पेरिस की सधि के अधीन हस्तक्षेप करन का निवेदन किया। गह सरकार के निर्देश पर लाड कजन ने सर हेनरी मकमोहन को, जो एक अनुभवप्राप्त सीमा अधिकारी रहा था, दश्य स्थल पर भेजा। रूसी सरकार ने अपने अधिकारियो को शिष्टमडल पर आरोपित करने का बडा प्रयास किया, पर उसे सफलता नही मिली। पर इस पर भी रूसी वापस नही हुए। मिलर और उसका एक डॉक्टर भाई अतत फारस को इतना समझाने मे सफल हो गये कि मैकमोहन के रास्ते म हर तरह मे रोडा अटकाया जाय। इस तरह मैकमोहन को सामग्री तक नही दी गई और एक बार तो उसे वापस जाने तक को कह दिया गया। पर मैकमोहन दढ बना रहा और प्रयास किये जाने के बावजूद उत्तेजित नहीं हुआ।

इस सबध म काय करने म देरी हुई और शिष्टमडल अपना काय जनवरी 1903 मे ही प्रारभ कर सका। यह काम मई 1905 तक किया जाता रहा जिसके बाद शिष्टमडल भारत वापस लौट आया। वसे तो दोनो ने अधिक क्षेत्रा पर अपना अधिकार बताया और फारस न तो बाध के ऊपर के क्षेत्रो को भी अपना बताया। पर मैकमोहन ने गोल्डस्मिड एवाड को आधार बनाकर काय किया। और अपना निणय दिया जिस कजन के प्रयास से दोना दलो न स्वीकार किया, पर पूण रूप से नही।

मैकमोहन के निर्णय के अनुसार यह तय हुआ कि अफगानिस्तान के अधिकार में नदी के बाध के ऊपर का जितना भाग है उसके पानी मात्र से उसका काम उसकी इच्छानुसार नहीं चल सकता। 40 मील बाध से ऊपर के कमाल खां को एक केन्द्र बिन्दु मानकर और यह विचार कर कि सीस्तान प्रान्त में हेलमन्द नदी प्रविष्ट होती है, यह घोषित किया गया कि फारस का इस क्षेत्र तक गुजरने वाले पानी में से 1/3 पर फारस का अधिकार है, पर वह इस पानी को बाध से नीचे फारसी सीस्तान में ही अपनी ओर ले जा सकता है। फारस पर यह भी प्रतिबंध लगाया गया कि वह अपने पानी के अधिकार का प्रयोग अफगानिस्तान की मर्जी के बिना नहीं करेगा। यह भी निर्णय किया गया कि एक ब्रिटिश सिंचाई विशेषज्ञ सीस्तान में यह देखने के लिए नियुक्त किया जायगा जो यह देखेगा कि दोनों को अपना हिस्सा पानी मिलता है।

मैकमोहन निर्णय लार्ड कर्जन के व्यक्तिगत प्रभाव से यद्यपि देर में, स्वीकार कराया जा सका। पर एक ब्रिटिश सिंचाई विशेषज्ञ की नियुक्ति की बात अब भी कार्य रूप में नहीं बदल पायी। पर लार्ड कर्जन ने नसरताबाद में एक बाध के निकट एक ब्रिटिश कांसलेट खोल दिया और व्यापार वृद्धि के लिए उसने अफगानिस्तान होकर एक व्यापार मार्ग का विकास किया जो उसके जाने के समय तक काफी लाभपूर्ण हो गया।

इस तरह लार्ड कर्जन ने सीस्तान समस्या का समाधान किया और रूसी प्रभाव वहां स्थापित होने की सम्भावनाएं समाप्त कर दीं। यह अधिकारियों ने सीस्तान की महत्ता नहीं समझी थी पर लार्ड कर्जन ने उन्हें इस समझाया क्योंकि वह फ्रेजर के मतानुसार "इसमें दृढ़ विश्वास करता था कि भू क्षेत्र से भी सीस्तान होकर व्यापार किया जा सकता है और उसकी दृष्टि में इस प्रान्त पर से रूसी प्रभाव समाप्त करने की भी बात थी।'[1]

इसके अतिरिक्त लार्ड कर्जन के समय में ब्रिटिशों ने दक्षिणी फारस के क्षेत्र की चुंगी में विशेष रुचि दिखाई और इस देश से बार बार आश्वासन प्राप्त किये कि वह इसे किसी और देश को नहीं सौंपेगी। 1898 में फारस सरकार ने बुशायर और कमनशाह की अपनी चुंगी का अधिकार एक ऋण के एवज में सौंप दिया जिसे उन्होंने एक ब्रिटिश संस्था इम्पीरियल बैंक आफ पर्शिया से प्राप्त किया था। ब्रिटिशों ने फारस वालों को 1903 में उसी बैंक से 20,00,000 पौंड का ऋण दिलवाया और 1904 में एक और ऋण 1,00,000 पौंड का दिलवाया। और इन दो ऋणों के बदले फारस ने ब्रिटिशों को डाक और तार के राजस्व, कैस्पियन सागर के मछली उद्योग से प्राप्त धन तथा फारस व फारस की खाड़ी की चुंगी की राशि

1 फ्रेजर पूर्वोद्धत पृ 115 134।

सीक्युरिटी के रूप मे प्रदान किया। इससे ब्रिटेन की दक्षिणी फारस मे शक्ति बढ गयी।

तिब्बत से सबध

रोनाल्डशे ने लिखा है कि, "लाड कजन यह जानता था कि यह केवल भारत के ही नही बल्कि पूण ब्रिटिश साम्राज्य के हित म है कि हमारा अधिकार एक स्वर से और आडबरपूण तरीके से हमारी सीमाओ तक ही नही बल्कि उस ढाल तक जहा तक हमारी सीमा की परिधि है, स्वीकार किया जाय, अयथा विरोधी प्रभाव वहा पर अपना निवास न बना ले।"[1] और मत्रिमडल और लाड कजन के बीच तिब्बत के सबध मे मतातर सामने आ गये।

लाड कजन का तिब्बत पर आक्रमण जनता मे आलोचना का प्रमुख विषय था। कजन के ऊपर आरोप लगाया गया कि उसने आक्रमण सात भौगोलिक रुचि को सतुष्ट करन के लिए किया। आक्रमण के द्वारा उसने सीधे सादे अनाक्रामक लोगो के लिए मुसीबत और मौत ला दी। और यह कि यह सीमा बढाने के उद्देश्य का एक निराशाजनक कदम था। आलोचना के माध्यम से बना दृष्टिकोण उस समय और शक्ति प्राप्त कर गया जब लासा की सधि को लेकर गह सरकार और भारत सरकार मे मतभेद हो गये।

तिब्बत के सबध मे लाड कजन की नीति को समझने के लिए, यह आवश्यक है कि उस देश से ब्रिटिश सबधो का सक्षिप्त परिचय प्राप्त किया जाय। वसे दार्जीलिंग के उस पार शक्तिशाली हिमालय की पहाडिया थी, पर उन्होने मानव काय मे कोई बाधा नही डाली थी। कजन से लगभग 100 वष पूव एक चीनी सेना इस क्षेत्र को भी लाघ आई और नेपाल की राजधानी के निकट तक आ गई। तिब्बत गरीब देश नही था जैसा देखने मे लगता है। इसका व्यापार पर्याप्त था और यह अधिक हो सकता था। पर साधुता की कट्टर प्रवृत्ति इसम बाधक थी। सभवत इस दश मे विश्व का सबसे अधिक प्लेसर सोना मौजूद था। इस कारण ब्रिटिश साम्राज्यवादियो का यदि यहा अधिकार न हो सके तो यहा से व्यापार करने की स्वाभाविक इच्छा तो थी ही। पर चीन की व्याप्त यहा पर सप्रभुता एक बाधा थी।

1774 75 म वारेन हेस्टिग्स ने एक दूत इन सभावनाओ का पता लगान के लिए यहा भेजा था कि वहा से व्यापार किया जाय। पर यह काम पूरा नही हो पाया। और अब काफी काल तक के लिए तिब्बत अकेला पड गया। वैसे 1783

1 रोनाल्डश पूर्वोद्धत भाग 2 पृ० 276 विस्तार के लिए दखिए मेहरा पुरुषोत्तम ॥ यगहस्बड एक्सपेडीसन (1968)

मे सेमुअल टनर ने इस देश की यात्रा की और 1811 12 म मैनिंग दलाई लामा स मिलने गया। 1886 म एक शिष्टमडल को लासा जाने का प्रोत्साहन मिला, पर इस ऐसी असफलता मिली कि तिब्बती ब्रिटिशो के विरुद्ध हो गये और चीनियो के उत्तेजित किये जाने पर उन्होंने ब्रिटिश क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। शानदार दीवार निर्माता तिब्बतियो ने एक गत म भारत की सीमा के 3 मील भीतर एक दीवार खडी कर दी और ब्रिटिश को उन्हे पीछे ढकेलने के लिए गभीर सनिक कदम उठाने पडे। इसके 10 वष बाद तिब्बतियो ने "हमारी सीमा क्षेत्र मे हस्तक्षेप करना प्रारभ किया। पर हमने अपनी सेना को उनकी सीमा म एक दिन भी नहीं रुकने दिया। सतोष की सीमा इसस अधिक और क्या हो सकती थी। पर फिर भी सबध सुधरने की जगह बिगडते ही रहे।' य व्याख्या यगहस्वण्ड की है जिसे लाड कजन ने ब्रिटिश आक्रमण का नेतत्व सौंपा था और जिसन उपरोक्त बातें बताकर अपने काय को न्यायसगत सिद्ध किया।

1890 मे ब्रिटिश ने चीन से बातचीत प्रारभ की जिसके फलस्वरूप एक कन्वेशन म सिक्किम और तिब्बत के बीच की सीमा तय की। यह भी तय हुआ कि सयुक्त आयोग एक स्थान पर मिलकर दोना देशो के बीच व्यापार आदि का मामला तय करे। पर चूकि चीनी अपनी पकड तिब्बत पर कमजोर हो जाने के कारण उससे उपरोक्त बात मनवा नही सके इसलिए कन्वेशन नही हो सका। पर सयुक्त आयोग मिला और उसने एक और समझौता किया। पर यह एकदम बेकार था। यातुग मे व्यापार का जो केन्द्र खोला गया वह अनुपयुक्त और बेकार था क्योकि तिब्बतियो ने अपने व्यापारियो को वहा जाने से रोकने के लिए एक दीवार खडी कर रखी थी और समझौते के विपरीत व भारतीय माल पर चुगी अलग से लगाते थे। इसके अतिरिक्त चीन द्वारा स्वीकृत सीमा की वे अवहेलना करते थे जिससे पेचीदगी और बढ गयी। इस तरह लाड कजन के भारत पहुचने पर इस मसले पर एकदम मामला रुका पडा था। दलाई लामा को उसके द्वारा भेजे गये सीमा पत्र बिना खुले ही वापस कर दिये गये। एक अनुभवी राजनैतिक अधिकारी व्लाड को कजन ने सीमा-यात्रा पर यह पता लगाने के लिए भेजा कि क्या यह कठिनाई हल करने का कोइ तरीका है। पर व्लाड की यात्रा भी निष्फल रही। और न ही चीनियो का यह प्रस्ताव कि ह्वाइट चीनी और तिब्बती प्रतिनिधि एकत्रित हो बात करें, सफल हो पाया।

ह्वाइट के अतिरिक्त लाड कजन ने कनल फासिस यगहस्बैंड को तिब्बत की सीमा खम्बाजोग भेजा। 1903 मे यह आयोग महीनो यहा पडा रहा। जो तिब्बती अधिकारी इनसे मिले वे पद म छोटे थे। इसी बीच समय का उपयोग कर तिब्बतियो ने सैनिक तैयारी की। चीन ने इस मसले पर विचार कुछ समय के लिए टालने को कहा और यह वादा किया कि वह इस बीच तिब्बतियो पर प्रभाव

डालेगा। पर चीनी इस मामले मे निहायत अयोग्य सिद्ध हुए।

तिब्बत पर चीनी प्रभाव और प्रभुत्व घटने के कई कारण थे जिसके फल स्वरुप लासा के चीनी रेजीडेंट ने तिब्बत के मामलो पर अपना नियत्रण खो दिया था। कई दशको के बाद पहली बार दलाई लामा वयस्क हो पाया था और अपने पूवजो की भाति मृत्यु को प्राप्त नही हुआ था और अपनी शक्ति अपने हाथ मे लेने की स्थिति मे था। इसके अतिरिक्त उसकी पीठ पर कोई हाथ था जो उसकी महत्वाकाक्षा को उभार रहा था। अल्पवयस्क काल म दलाई लामा का एक शिक्षक दोरजीफ था जो साइबेरिया का रहने वाला था पर अपने को बुद्ध धम से सबद्ध बताता था। पर वह रूसी प्रजा था। लासा मे अपने निवास काल के 20 वर्षों म इस व्यक्ति ने बडा प्रभाव जमा लिया था। उसे 1900 1901 मे जार ने दलाई लामा के राजदूत के रूप मे रूस मे स्वागत किया था। यह वही समय था जब रूस और ग्रेट ब्रिटेन के बीच मतभेद गभीर रूप ग्रहण करते जा रहे थे। दोरजीफ रूस से दलाई लामा के लिए कुछ भेंट भी लाया था। इस भेंट के विषय मे एक जापानी भक्त कावागुची ने जो उस समय लासा मे था बताया कि यह 500 ऊटो पर लदा था जिनमे से आधे पर तो अस्त्र और शस्त्र थे।

दोरजीफ सचमुच दुहरी भूमिका अदा कर रहा था। लासा मे वह बताता कि जार बुद्ध धम के उत्थान के लिए उत्सुक था और बौद्ध साम्राज्य को बढाना चाहता था, जबकि पीटसबग मे वह कहता था कि दलाई लामा रूस के रक्षा के हाथ चाहता है। रूस इस आशा मे सहायता करना चाहता था। इसी कारण रूसी सेना तिब्बत वालो के लिए उपलब्ध करायी गयी।

ब्रिटिश अधिकारियो के पूछ ताछ पर रूस ने ऐसी रिपोर्टों की सत्यता से इनकार किया कि उसके और चीन के बीच कोई गुप्त समझौता हुआ है जिसके द्वारा तिब्बत उसका प्रोटेक्टरेट बन जाएगा। पर जब ब्रिटिशो ने तिब्बत पर आक्रमण किया तो लदन मे रूस के राजदूत ने विरोध किया और इससे ब्रिटिश मस्तिष्क मे खलबली मच गयी। बाद मे लाड लैसडाउन और काउण्ट बेनेकडाफ मे जब साक्षात्कार हुआ तब ब्रिटिश दृष्टिकोण मे परिवतन आया पर रूसी एजेण्टो का तिब्बत म लगातार षडयत्र ब्रिटिश मे सदेह का कारण बन चुका था। दोरजीफ ने भी लासा मे अपनी कारवाइया नही बद की। 1903 तक वह लामा को यही समझाता रहा कि रूस उसके साथ है। वैसे इस बात के प्रमाण थे कि वह अनाधिकारिक रूप से यह काय करता रहा है। पर उसने ब्रिटिशो के विरुद्ध यह षड्यत्र किया।

इस तरह यदि तिब्बत पर आक्रमण से पूव की स्थिति का आकलन किया जाय तो यह निष्कष निकलता है कि तिब्बत पर चीन की प्रभुत्व शक्ति समाप्त हो चुकी थी। चीन और ब्रिटिशो के बीच हुई सधि को तिब्बत वालो ने स्वीकार नही

किया। तिब्बती प्राय ब्रिटिश क्षेत्र मे हस्तक्षेप करते रहते थे और ब्रिटिश का तिब्बत से व्यापार करने का प्रयास बेकार किया जा चुका था। इतना ही नही, दलाई लामा रूस के सपर्क म था और रूस जापान से अभी तक पराजित न हो जाने के कारण अपनी साम्राज्य विस्तार की नीति एशिया म विस्तृत करने मे लगा हुआ था।

इन परिस्थितियो मे लार्ड कर्जन ने गृह सरकार से तिब्बत के विरुद्ध कारवाई करने की अनुमति मागी। पर गृह अधिकारी इस मामले म हिचकिचा रहे थे। उनके लिए उस समय जर्मन खतरा अधिक बडा था। इग्लिश व रूस को मित्र बनाना चाहते थे। पर लार्ड कर्जन के बार बार ये कहने पर गृह अधिकारियो ने अतत एक हल्के दण्ड देने की अनुमति प्रदान कर दी।

आक्रमण—6 नवम्बर 1903 को आदेश दिया गया कि आक्रमणकारी लासा को आधे रास्ते ग्यान्तसे तक आगे बढ़ जाय। सेक्रेट्री आफ स्टेट ने यह जोर दिया कि तिब्बत के मामले म हस्तक्षेप स्थायी नहीं होना चाहिए। आक्रमण का उद्देश्य क्षतिपूर्ति है और जैसे ही यह प्राप्त हो जाए आक्रमण समाप्त कर दिया जाना चाहिए। इसलिए एक सेना यगहस्बैण्ड के नेतृत्व म आगे बढी। आक्रमणकारियो को काफी ऊचाई पर चढना था। इस चढाई की अत्यधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि गुरु नामक स्थान पर 31 मार्च 1904 को एक लडाई हुई जिसम तिब्बतियो ने थके हारे ब्रिटिश सनिको पर आक्रमण कर दिया। उन्ह उनके शक्ति और उत्साह का अन्दाज नही था। इस लडाई मे 600 तिब्बती मारे गये और घायल हो गये और उन्ह अपमानजनक ढग से वापस लौटना पडा। और "यह सब 10 मिनट मे ही हो गया।" ग्यान्तसे म सेना 11 अप्रैल को पहुच गयी पर अब भी कोई चिह्न ऐसा नजर नही आया जिससे ये पता चले कि तिब्बती सधि वार्ता करना चाहते थे। इसी बीच 30 अप्रैल को लार्ड कर्जन इग्लैण्ड रवाना हो गया और अब यह मसला स्थानापन्न वाइसराय ऐम्पथिल के हाथो मे आया। उसी के काल म सधि हुई।,

5 मई को तिब्बतियो का आकस्मिक आक्रमण ब्रिटिश और उनके सनिको के लिए कठिनाई का कारण बन गया। नयी सैनिक सहायता मैक्डाल्ड के नेतृत्व मे 26 जून को आ पायी जिसने स्थिति मे अतर किया। जोग पर 6 जुलाई को अधिकार कर लिया गया और दो दिन बाद सेना लासा की ओर रवाना हुई। रास्ते मे कुछ देर हो जाने के कारण लासा म सेना 3 अगस्त को पहुची।

लासा पहुचने पर यगहस्बैण्ड को पता चला कि दलाई लामा राजधानी छोड कर भाग गया है। इस कारण बातचीत तिब्बत के प्रमुख पर छोटे पद वाले कर्मचारियो से करनी पडी। यगहस्बैण्ड ने सचमुच अपने को कठिन परिस्थिति म पाया। यहा से शिमला सूचना भेजने मे पूरे 12 घटे का समय लगा जहा से सरकार

के सही दृष्टिकोण की सूचना नही आ पायी । और फिर उससे यह भी कहा गया था कि यह जल्दी-से जल्दी लासा को छोड दे । उसके पास भारत सरकार द्वारा प्रेषित ड्राफ्ट कन्वेशन था । जबकि दूसरी ओर सेक्रेट्री आफ स्टेट मि० ब्रोड्रिक से एक तार मिला जिसके विचार लार्ड कर्जन और उनके सहायकों से अलग थे । उसकी कठिनाइया उस समय और बढ गयी जब तार मे सेक्रेट्री आफ स्टेट के मत का पता नही चला । उसे विस्तार मे चीजें तब प्राप्त हुइ जब वह सधि पर हस्ताक्षर कर चुका था ।

भारत सरकार सतोषजनक समझौता चाहती थी जबकि सेक्रेट्री आफ स्टेट यह चाहता था कि जल्दी से मामला निबटा के सेना तिब्बत छोडकर वापस चली आये । तार ने यगहस्बैंड से आशा की कि तिब्बत पर क्षतिपूर्ति का भार इतना न लादा जाय कि वह उसे देने म समय न हो और यदि आवश्यक हो तो यह धन उससे 3 वर्षों मे लिया जाय । इसके अतिरिक्त चुम्बी घाटी पर अधिकार तभी तक रखा जाय जब तक कि क्षतिपूर्ति का धन प्राप्त न हो जाय या व्यापार के बाजार 3 वष के लिए खोल न दिये जाय । यगहस्बैंड को यह स्वतन्त्रता भी प्रदान की गयी कि परिस्थितियो को ध्यान मे रखकर वह उचित कारवाई करे । इसका अय उसने अपने पक्ष ही मे लगाया । सक्रेट्री आफ स्टेट की सावधानी समझ म इसलिए आती है कि उसने रूस को यह आश्वासन दिया था कि ब्रिटिश सेना अपने उद्देश्य प्राप्ति के बाद तिब्बत छोडकर वापस लौट आयेगी । यह ऐसा आश्वासन था जिसे भारतीय अधिकारी बेकार मानते थे ।

सधि —सधि मे, जिसपर हस्ताक्षर किये गये, यगहस्बैंड ने क्षतिपूर्ति की राशि 5,00,000 स्टर्लिंग तय की जो उसके अनुसार तिब्बत देने की स्थिति म था और जिसे भारत सरकार के परामश के अनुसार जोडा गया था । तिब्बतियो ने क्षति-पूर्ति की राशि 1 लाख रुपये (6,666 पौंड) प्रति वष के हिसाब म देने का आग्रह किया । यगहस्बैंड ने यह सोचकर कि यदि वह इस शत को स्वीकार न करें तो हो सकता है कि उसे सधि पत्र पर हस्ताक्षर कराये बिनावापस लौटना पडे, इसलिए उसने अन्त इसे स्वीकार कर लिया । इससे इस धन के अदा होने तक के काल तक के लिए चुम्बी घाटी पर ब्रिटिश का 75 वष तक के लिए अधिकार हो गया जबकि सक्रेट्री आफ स्टेट न यह कालावधि 3 वष की ही रखी थी । जब इस सबध म बाद म यगहस्बैंड से पूछा गया तो उसने उत्तर दिया कि घाटी का अधिक दिनो तक अपने अधिकार मे रखना न्यायसगत है क्योंकि यही तिब्बत के रास्ते की कुजी है और इसी रास्ते स उधर के लोग भारत मे प्रवेश भी कर सकते हैं । बर्मा और कश्मीर के बीच उसके अनुसार यही एक सामरिक महत्त्व का स्थल है और इस पर अधिकार बनाये रखने से किसी वादे के खिलाफ कोई बात नही जायेगी । इस तरह उसके ही शब्दों म उसने "स्वर्ण अवसर अपने हाथ से नहीं जाने

दिया" और उपरोक्त शर्तों के आधार पर संधि कर ली।

संधि की अन्य शर्तें यह थी कि यातुग, ग्यातसे और गंगतोक मे व्यापारिक बाजारें स्थापित की जाय। ब्रिटेन का व्यापारिक एजेण्ट ग्यातसे मे रहेगा, पर उसे आवश्यकतानुसार लासा जाने का भी अधिकार होगा। तिब्बत की विदेश नीति पूर्णतया ब्रिटिशो के हाथ मे होगी और तिब्बत किसी विदेशी एजेण्ट को यहा आने की छूट नहीं देगा। न तो किसी विदेशी शक्ति को तिब्बत मे कोई छूट दी जायेगी जैसे रेलवे का निर्माण, सड़को व तार लाइनो का निर्माण या किसी क्षेत्र की प्राप्ति।

7 सितबर को दलाई लामा के धार्मिक महल पोटाला में संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये गये और 23 सितबर को ब्रिटिश सैनिको के घर की ओर वापसी प्रारभ हुई।

आलोचना—सेक्रेट्री ऑफ स्टेट ने यगहस्बैण्ड की कारवाई पर गभीर रुख अपनाया और उसके अनुसार यह, "उसकी आज्ञा का उल्लघन" था। कुछ लोगो ने सेक्रेट्री ऑफ स्टेट के इस पर इतना गभीर रुख अपनाने पर भर्त्सना का रुख अपनाया और ब्रिटिशो को प्राप्त इतने लाभो की ओर आख मूदने पर चिन्ता प्रकट की। पर जो यह कहते हैं उन्हें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि सेक्रेट्री आफ स्टेट ने इस सबध मे स्पष्ट निर्देश दिये थे और परिस्थितियो के अनुसार काय करने का यह अथ नहीं था कि पहले से स्पष्ट किये गये सिद्धाता से इतना हटा जाय। यह कहना भी उचित नही था कि चुम्बी घाटी तिब्बतियो के हाथ मे ही सदा नही रही थी, यह उस देश का प्रवेश द्वार थी, भारत मे प्रविष्ट क्षेत्रीय जिह्वा थी और यह कि भारत के लिए इसकी सामरिक महत्ता थी। ब्रिटिशो के समक्ष इस समय जमनी की उभरती हुई महत्त्वाकाक्षा का खतरा था जिसके सदभ मे गृह सरकार रूस से मत्री करना चाहती थी। इस कारण यगहस्बैंड की कारवाई ने निस्सदेह इस प्रस्तावित मैत्री को खतरे मे डाल दिया था। इसके अतिरिक्त उच्च अधिकारियो ने आदेश भेज दिये थे, और छोटे लोगा द्वारा उसे न मानना उचित बात नही हो सकती थी, और फिर इसको इस आधार पर यायसगत कैसे माना जा सकता था कि यह उच्च अधिकारिया के हित म ही किया गया है। भारत सरकार ने अपने अधिकारी के कारवाई को उचित बताया, पर उन्होने भी इस बात को स्वीकार किया कि उसने अपने कत्तव्य की अवहेलना की है।

रूस ने गृह अधिकारियो से इस पर विरोध व्यक्त किया, जिसके फलस्वरूप क्षतिपूर्ति की धन राशि घटाकर 1,66,000 पौण्ड कर दी गयी। शीघ्र ही मत्रि महल मे परिवतन हुआ जिसके फलस्वरूप ब्रोड्रिक का उत्तराधिकारी मार्ले हो गया जिसने संधि की शर्तों मे और परिवतन किया। बतलाया गया कि क्षतिपूर्ति 3 साल मे दी जायेगी, इसके लिए चीन धन देने को तयार हो गया जिसको तिब्बत

पर सप्रभुता को स्वीकार किया गया। चुम्बी घाटी को जनवरी 1908 मे खाली कर दिया गया और ग्यान्तसे म ब्रिटिश एजेण्ट को लासा जाने की छूट समाप्त कर दी गयी।

यगहस्बैण्ड की सधि मे कहा गया था कि तिब्बत अपने क्षेत्र का कोई भाग किसी विदेशी के हाथ नही सौंपेगा और न कोई विदेशी प्रतिनिधि रखेगा और न ब्रिटिश से पूछे बिना किसी को कोई छूट देगा। पर 1907 मे रूस और इगलैड के बीच जो समझौता हुआ उसके अतगत ब्रिटेन को तिब्बत से सपक चीन के ही माध्य म से ही करना था। इस तरह दोनो देशो की तिब्बत मे स्थिति एक समान हो गयी।

इस तरह तिब्बत आक्रमण का फल केवल यह हुआ कि ग्यान्तसे और गार्टोक मे ब्रिटिशो को बाजार प्राप्त हो गया और ग्यान्तसे मे उसे एक व्यापारिक एजेण्ट रखने की सुविधा मिल गयी। पर इन लाभो का भी ठीक से प्रयोग नही किया जा सका। अधिक लाभ तो चीन के हिस्से मे आ गया जिसे तिब्बत पर थोडी सी धन राशि देने के बदले म सप्रभुता प्राप्त हो गयी। इस तरह "यगहस्बैड आक्रमण अनावश्यक और बेकार सिद्ध हुआ।"[1]

पर इसके लिए कर्जन को उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता। एल० फ्रेजर लिखता है कि उसने एक अवसर को हाथ मे लिया और यदि उसे "उसके उत्तराधिकारियो ने गवा दिया तो दोष उसे नहीं दिया जा सकता।" पर फिर भी ब्रिटिश लाभो को कम बताना भी उचित नही होगा। यदि चीन की सप्रभुता तिब्बत पर स्वीकार कर ली गयी तो तिब्बत पर रूसी महत्वाकाक्षा से तो मुक्ति मिली। वैसे यह कल्पना तो मूर्खतापूर्ण होगी कि रूसी सैनिक भारत मे लासा होकर प्रवेश कर सकते थे। पर इससे इनकार नही किया जा सकता कि इस स्थान पर एक स्थायी रूसी प्रतिनिधिमडल को रखना, जो भारत की सीमा के इतना निकट था, निश्चित रूप से ब्रिटिशो के लिए कठिनाई पैदा करता। रूसी यहा से आवश्यक सूचनाए प्राप्त करके अन्य स्थानो पर इसका प्रयोग करते और तिब्बतो को वे ब्रिटिशो के विरुद्ध उत्तेजित करते। ऐसी सभी सभावनाए समाप्त हो गयी।

लार्ड कर्जन को ऐसे भारतीय गवर्नर जनरलो मे माना जाता है जिसका आगमन और वापसी दोना अवसरो पर स्वागत हुआ। उसके आगमन ने ऐसी आशाओ को जागरित किया कि उसका प्रशासनकाल अत्यधिक क्रियाकलाप और प्रगति के लिए देश मे जाना जायेगा। पहली आशा तो पूर्णरूपेण पूरी हो गयी क्योकि इसमे सदेह नही कि लार्ड कर्जन के काल मे अत्यधिक कारवाई का नया

---

1 फ्रेजर पूर्वोद्धृत, प० 134 146।

पूछना। पर प्रगति सकारात्मक से अधिक नकारात्मक होने के कारण यह आशा पूरी नहीं हो पायी।

लार्ड कर्जन के जीवनी लेखकों में से एक रोनाल्डशे ने अपने नायक के विषय में लिखा है कि उसमें "आश्चर्यजनक विभिन्नताओं और दोषों" का समावेश था। उसके चरित्र में जो विरोधाभास था वह उसके, 'आडम्बरपूर्णता और सादगी, एकाकीपन और सामाजिकता, विचार विशालता और असहिष्णुता, उदारता और ओछापन'[1] में साफ झलकते हैं। एक अत्यधिक समय और कभी न थकने वाला लार्ड कर्जन नैपोलियन की तरह ही एक दोष अपने में पाले हुए था जिसके विषय में लार्ड रोसबरी ने लिखा है कि, "राज्य के कार्यालयों के सभी चीजों के विषय में उसे पूरी जानकारी थी, वह सभी का निर्देश देता था और प्रेरणा भी।' और इसके कारण कभी-कभी काम अधूरा अधिक रह जाता है या पूरा कम।

अपने काम और प्रशासन के प्रति वह इतना सतर्क था कि कौंसिल सदस्यों की वेशभूषा तक पर उसकी दृष्टि रहती थी जिसके विषय में उसने लिखा कि यह लार्ड चैम्बरलेन द्वारा स्थापित नियमों के अनुसार होना चाहिए। वह एक ऐसा तानाशाह था जो विरोधियों को नहीं बर्दाश्त कर सकता था। इसमें संदेह नहीं कि उसने प्रशासकीय मशीनरी में कुछ सुधार प्रारंभ किये, पर प्रशासन को केन्द्रित करने का उसका प्रयास अंग्रेजों और भारतीयों—दोनों ने नापसन्द किया।

एक ओर तो उसने दुर्भिक्ष और प्लेग के विरुद्ध संपूर्ण मन से लड़ाई छेड़ी, जिसने देश का चेहरा ही भद्दा कर दिया था, पर दूसरी ओर एक कठिन आर्थिक अवस्था के बीच उसने दिल्ली में एक शानदार दरबार किया जिस पर अनावश्यक ही अपार धनराशि का व्यय हुआ जिसे इस देश के हजारों गरीब नर-नारियों के आंसू पोंछने के प्रयोग में लाया जा सकता था।

सफल वे लोग माने जाते हैं जो अपने मस्तिष्क का दरवाजा खुला रखते हैं। पर कर्जन में हम एक विचित्र व्यक्तिवादी और क्रुद्ध स्वभाव का यूरोपीय प्रतिनिधित्व देखते हैं जो कभी-कभी जान-बूझकर चीजों को व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेता था। बंगाल का विभाजन ऐसा ही एक प्रश्न था जिसे उसने व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाया और इस मामले में तो उसका खुराफाती स्वभाव भी सामने आया जब उसने सब रास्तों को बंद देख हिंदू मुस्लिम भेदभाव की नीति अपनानी प्रारंभ कर दी।

लार्ड कर्जन की कलकत्ता कार्पोरेशन के विरुद्ध अलोकतांत्रिक और प्रतिक्रियावादी नीति, उसकी शिक्षा की राष्ट्र विरोधी नीति, तथा प्रांतीय सेवाओं के लिए प्रतियोगिता परीक्षाओं की उसके द्वारा समाप्ति की चर्चा पीछे की जा चुकी

---

1 रोनाल्डशे पूर्वोद्धत भाग 2, पृ० 384।

है। इस संबंध में हम हेनरी काटन को उद्धरित कर सकते हैं जिसने लिखा है कि, "लार्ड कर्जन ने स्वशासन की योजना को कमजोर और हतोत्साहित किया। उसने विश्वविद्यालयों का कर्मचारीकरण कर दिया और ऐसा ही अन्य लोकप्रिय शिक्षा के क्षेत्र में भी उसने किया, उसने प्रतियोगिता के स्थान पर सेवाओं में सरकारी नामांकन की प्रथा प्रारंभ की, और उसने इस बात की प्रत्यक्ष घोषणा की कि कुछ जाति के लोग ही ऊंचे पद प्राप्त कर सकते हैं।'[1]

लार्ड कर्जन को अपनी जाति की उच्चता में अत्यधिक विश्वास था और वह कहा करता था कि ईश्वर ने भारतीय भाग्य को ब्रिटिश के हाथ में सौंप रखा था और इसलिए ब्रिटिश को ही यह अधिकार है कि वह अपनी कार्यविधि तय करे और इसके लिए उन्हें जनमत लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। 1903 में 'चैम्बर आफ कामंस' के समक्ष बोलते हुए उसने घोषणा की कि, "यदि मुझे ये लगा कि हम उच्च कानून और उत्तम उद्देश्यों से प्रेरित होकर भारत के हित के लिए कार्य नहीं कर रहे हैं, तो मैं उसे लोन की तलाश करके, जो भारत और इंगलैंड के संबंध को एक किये हुए है, उससे अपना संबंध बिना आह भरे समाप्त कर दूंगा। पर यह इसलिए है क्योंकि मैं इस देश के भविष्य में विश्वास करता हूं और यह भी विश्वास करता हूं कि हमारी'जाति इन्हें उन ऊंचाइयों पर पहुंचा देगी जहां तक अभी वे नहीं पहुंचे। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर मैं साहस करता हूं और आगे बढ़ता हूं।" लार्ड कर्जन के मतानुसार ब्रिटिश से अधिक भारतीय हितों का ज्ञान किसी को नहीं था।

पर डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि, "उसका 'अहम' उसके माथे पर सवार था, जिसने उसे उदीयमान राष्ट्रवाद के चिह्न को भी नहीं देखने दिया, उसकी मिशन भावना को भी कलुषित कर दिया, उसे उद्धत बना दिया और कठोर, तथा उसे स्वभाव से लोगों के भाग्य पर शासन करने के अयोग्य, जो नये जीवन व नयी आशा की ओर आंख उठाकर देख रहे थे।"

गोखले ने लिखा कि लार्ड कर्जन में बुद्धि तो थी पर उदार कल्पना का अभाव था। गृह अधिकारियों से जो संबंध उसके प्रारंभ में अच्छे थे बाद में कठिन और खराब हो गये। भारत में उसके साथी उससे डरते अधिक और आदर कम देते थे। जब वह प्रसन्न होता तो आकर्षक लगता था। पर जब वह अप्रसन्न होता तो, सर वाल्टर लारेन्स के मतानुसार 'वह अपने विरोधी को मौत के शिकंजे तक खींच के ले जा सकता था।" उसमें भक्ति और महत्त्वाकांक्षा की भावना की पराकाष्ठा थी। कभी-कभी अपने मित्र के मृत्यु पर "वह नागरिक तौर पर प्रतिक्रिया व्यक्त करता

1 काटन सर हेनरी इंडिया ओल्ड न्यू, पृ० 423।
2 प्रसाद ईश्वरी माडर्न इंडिया पृ० 339।

था।" जाज व धाम और अल्फ्रेड लिट्टिलटन की मृत्यु पर टाइम्स मे 10 जून और 7 जुलाई 1913 के उसके पत्रो से यह स्पष्ट है। फिर भी यदि, "किसी बात के कहने या हो जाने से वह पराकाष्ठा व दु ख की स्थिति मे पहुच जाता था, तो साथ ही किसी बात को न तो वह भूलता था और न क्षमा करता था। वह अपराधी को केवल पूणतया रास्ते से हटा देता था या फिर उसका जीवन ही सदा के लिए समाप्त करा देता था।" और इस विरोधाभासी तत्वो के विषय मे इसके अतिरिक्त कहा जा सकता है कि, "अपने अतिशक्तिशाली स्नायुओ मे वह उस वातावरण का विचित्र सस्कार रखता था जो कम ही देखने मे आती हैं।"

पर इतनी निष्ठुरता और अनन्य निश्चय के साथ जो परिश्रम उसने किया उसके प्रति आदर व्यक्त किये बिना भी नही रहा जा सकता। वैसे ऐसे भी तमाम लोग निस्सदेह होंग जो या तो उसकी कारवाइयो पर तालो ही बजाएग या लम्बे अर्से तक बिना साम रुके चलनेवाले काम की आलोचना ही करेंगे।' उनके लिए जिनके प्रस नता का आदश शातिपूण ढग से काय करने म है जैसाकि पूण शिक्षा मे देखने को मिलता है, उसका जीवन एक अनत कष्ट का मायाजाल जसा लगेगा—तमाम जीवनो म एक ऐसा जीवन जिससे जान बूझकर बचने की चेष्टा की जायगी।"[1]

अ य क्षेत्रो की भाति उसके भाषण की शली और लखन विधि म भी गभीर विरोधाभास था जिसके अतगत वह "कभी-कभी अपने उत्तेजक भाषण की पराकाष्ठा पर पहुच सकता था, पर साथ ही वह व्याकरण की अशुद्धि भी कर सकता था और सीधे अत्यधिक ऊचाई से गड्ढे के गत म सीधे सर के बल अपने भाषण के माध्यम से गिर सकता था।'

सचमुच लाड कजन के जीवन के प्रत्यक क्षेत्र म एक श द का बाहुल्य था और वह था—'पराकाष्ठा'। जब वह किसी से प्रेम करता पराकाष्ठा तक करता और जब घृणा करता तो उसम भी पीछे न रहता। यही 'पराकाष्ठा' उसके गृह अधिकारियो के सदभ म भी दिखाई पडती है उसकी विदेश नीति मे भी और देश के प्रशासनिक और आतरिक सुधारो मे भी। इसी के कारण उसकी अच्छाई बुराई मे परिणत हो गयी। रोनाल्डशे इस सबध मे एक रुचिकर तथ्य हमारे सामने प्रस्तुत करता है ',जो प्रस्ताव बनाये गय उसम यह भी सूचना थी कि जब वाइसराय कोई नोट प्रेषण के लिए लिखे तो बिल्कुल वही शब्द लिपिक द्वारा प्रयोग करना चाहिए जिसका काम ड्राफ्ट तैयार करना है।" बाद के एक वाइसराय न जो मजाकिया प्रवृत्ति का था, अपने सामने आनेवाले प्रस्तावो के सबध मे जिसमे बर्मा के टट्टू के वशके विषय मे लिखा हुआ था। उसने इसपर लिखा, "मैं

---

1 देखें, फ्रेजर पूर्वोद्धृत।

सहमत हू । बर्मा का टट्टू एक बेकार पर ठीक छोटी सी चीज है ।" और नियमो के प्रति सावधान रहने वाले लिपिक ने जो पत्र लिखा वह इस तरह था, "महोदय, मुझे यह कहने का आदेश हुआ है कि गवनर जनरल की दृष्टि मे बर्मा का टट्टू एक बेकार पर ठीक छोटी-सी चीज है ।"[1]

पर अपनी कमियो तथा अच्छे व बुरे के सम्मिलित विरोधाभास के बावजूद लाड कजन अपने कुछ काय क्षेत्रो मे हमारी प्रशसा का तो अधिकारी है ही दुर्भिक्ष और प्लेग के विरुद्ध उसके काय, भारतीय कृषि मे उसके सुधार, रेलवे लाइनो के उसके द्वारा निर्माण तथा ऐसे ही और सुधार, उसकी उत्तर-पश्चिम सीमा नीति तथा उसके कुछ विदेशी देशो से सबध राबटस की बात को सही सिद्ध करते हैं जिसम वह लिखता है कि, "जो भी भूलें हो, जो भी असफलताए हो लाड कजन का नाम उन भारतीय गवनर जनरलो मे लिया जायगा जिन्होने अत्यधिक महत्त्वपूण भूमिका अदा की ।' कजन धम का विश्वासी भी था जो उसके स्वभाव के अनुकूल तो नही था पर उसे उसमे सफलता मिली । उसका अपने मे विश्वास था और एक ऐसे व्यक्ति ने, जो उसे अच्छी तरह जानता था, उसके विषय मे लिखा, "आज कजन ही एक ऐसा आदमी है जिसे मैं जानता हू कि वह पायजामा पहनकर भाषण दे सकता है और वह बुरा भी नही दिख सकता था ।"

कजन 1905 मे इगलैंड वापस लौटा । छ माह बाद उसकी पत्नी का देहान्त हो गया । वैसे तो उसे हाउस आफ लाडस मे आयरलैंड के पियर के रूप मे एक जगह प्राप्त हो गयी, पर उसने काफी समय तक राजनीति मे अधिक भाग नही लिया । 1911 मे उसे अल का पद प्रदान किया गया और 1915 मे उसे सयुक्त मन्त्रिमडल म लाड प्रीवीसील नियुक्त किया गया । 1916 म उसे अपने पिता के पदो का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ । 1917 मे उसने दूसरा विवाह किया । इसी समय वह कौंसिल का लाड प्रेसीडेण्ट हो गया और साथ ही हाउस आफ लाडस का नेता । प्रथम विश्व युद्ध के बाद उसने पेरिस शाति सम्मेलन मे विदेश मन्त्री की हैसियत से भाग लिया । 1921 मे उसे मार्क्विस बनाया गया । वह एकाएक बीमार पडा और लदन मे 20 माच 1925 मे उसकी मृत्यु हो गयी ।

1 रोनाल्डशे पूर्वोद्धत भाग 2 पृ॰ 385 ।
2 राबटस पूर्वोद्धत पृ॰ 340 ।

20

लार्ड मिण्टो (1905-1910)

गिल्बर्ट जान इलियट मरे किनिन माउन्ड, जो बाद मे मिण्टो के चौथे अर्ल हो गये, का जन्म 1 जुलाई 1845 को हुआ। वह तीसरे अर्ल विलियम ह्यू का पुत्र था। उसकी मा इम्मा थी जो दक्षिणी भारत मे 1817-18 मे तथा तृतीय मराठा युद्ध का नेतत्व करने वाले सर टामस हिसलाप की पुत्री थी। मिण्टो का प्रथम अर्ल 1807-1812 के बीच भारत का गवनर जनरल रह चुका था। गिल्बर्ट जान के पास पर्याप्त और तरह-तरह के अनुभव जीवन से जुड़े थे। 1805 म उसे लार्ड कर्जन के उत्तराधिकारी के रूप म भारत का गवनर जनरल बनाया गया। उसे इटन और ट्रिनिटी कालेज म शिक्षा प्राप्त हुई। 19 वर्ष की आयु मे वह स्काटस-गार्ड्स मे भर्ती हो गया, स्पेन म युद्ध सवाददाता की हैसियत से काय किया। वह लार्ड लिटन के अधीन द्वितीय अफगान युद्ध के अवसर पर सर फ्रेडरिक राबर्ट्स का ए० डी० सी० रहा था, 1882 मे तिब्बत म एक रेजीमेण्ट का प्रधान था। उसने ब्रिटिश प्रधानमत्री लार्ड ग्रे की पौत्री मेरी से 1883 मे विवाह किया और 1891 मे अपने पिता के पदो का उत्तराधिकारी हुआ। 53 वष की आयु मे 1898 मे वह कनाडा का गवनर जनरल बनाया गया। यहा वह 1904 तक रहा जहा उसे सफलता और प्रशासकीय लोकप्रियता प्राप्त हुई।

कनाडा से पद छोडने के थोडे ही दिनो बाद लार्ड कर्जन के उत्तराधिकारी के रूप मे उसे भारत का गवनर जनरल नियुक्त किया गया। "1905 स 1910 के बीच भारतीय प्रशासन का दिशा निर्देश भारत के सेक्रेट्री आफ स्टेट जान मार्ले और वाइसराय मिण्टो से प्राप्त हुआ। ये दोनो अत्यधिक योग्य और चतुर व्यक्ति थे जो एक टीम के रूप मे अग्रेजी राजनीति दशन मे सबसे शक्तिशाली तत्त्व थे। भारत मे यह वही काल था जब पूव गाधी राष्ट्रीय नेतृत्व उच्चतर रचनाकाल से होकर गुजर रहा था राजनीति की लडाई लडी जा रही थी और इससे निकल कर जो राजनतिक दिशा बन रही थी वह स्थायित्व ग्रहण कर रही थी। इस तरह 20 वर्ष जी लेने के बाद भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस राष्ट्रीय विकास की दिशा पा गई थी। उस समय की मुख्य बात सुधार प्रस्तावो ने भारतीय सरकार म विकास

और प्रगति पर ही विशेष बल दिया जिसमे प्रतिनिधित्वपूर्ण सिद्धान्त को आगे बढाने को कहा गया। और अतत ब्रिटिशो द्वारा मुस्लिम मागो को स्वीकृति और प्रोत्साहन ने, जिसका आधार अलगाववादी विचारधारा थी, ऐसी राजनीतिक स्थिति को जन्म दे दिया जिसका अत भारत के विभाजन म ही हुआ।"[1]

उग्रवाद का उत्थान और सरकार के उपाय

उग्रवाद के प्रेरणात्मक तत्त्व

1905-10 का काल भारतीय इतिहास का एक कठिन काल था। कर्जन का जो काल समाप्त हो चुका था वह अत्यधिक प्रतिक्रियावादी सिद्ध हुआ था। कर्जन का कलकत्ता कार्पोरेशन ऐक्ट स्थानीय स्वशासन के गला घोटने का एक प्रयास माना जाता था। उसकी शिक्षा-नीति जन-आकाक्षाओ को अपमानित करती थी और उसका बगभग राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पर एक करारा वार था। उसका व्ययशील दरबार और प्रशासन को केन्द्रीकृत करने का प्रयास आदि ने जनमानस म विरोध की भावना उत्पन्न की। कर्जन के प्रशासन की चर्चा करते हुए गोखले ने लिखा, 'ऐसे प्रशासन का समानान्तर तलाश करने के लिए हमे भारतीय इतिहास के औरगजेब के काल म वापस जाना पडेगा।" मिण्टो ने भी मार्ले को लिखा, "मुझे कर्जन का इतिहास काल देखकर शर्म आती है। एक तरफ तो ऐसी सपूर्ण योग्यता और परिश्रम है जो लोगो को चकाचौंध कर देता है, और दूसरी ओर सभी चीजो पर निरकुश नियत्रण तथा दैनिक जीवन की छोटी छोटी चीजो मे ओछे हस्तक्षेप जिसके कारण ही पतन की स्थिति आई होगी।" कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर 1905 मे अपने कुख्यात भाषण मे कर्जन ने घोषणा की कि सत्य का विचार पश्चिम का ही है और "पूर्व म तो चालाकी और कूट नीतिक दोष को ही प्रतिष्ठा प्राप्त होती रही।" ऐसी बातो से जनता की सहानुभूति प्राप्त होने की जगह गवा ही दी जाती थी। "सभवत किसी प्रशासन ने अकेले राष्ट्रीय आदोलन को उतना आगे नही बढाया जितना लार्ड कर्जन ने।'[2]

1896 से 1900 के बीच के काल ने दुर्भिक्ष के बाद प्लेग और प्लेग के बाद दुर्भिक्ष का दुर्दिन देखा था। हजारो-हजार लोग मरने लगे, भूमि सूखकर बेकार हो गई और लोग गलियो मे रेंग रेंगकर मर गये। औरतो ने अपने बच्चो तक को छोड दिया और चारो ओर निराशा फैल गई। सब ओर लोग सरकार को अपने

---

1 दास, एम० एन० इंडिया अडर मार्ले एण्ड मिण्टो लदन, 1964 पृ० 7।
2 लेडी मिण्टो (मेरी काउटस आफ) मिटो ऐण्ड मार्ले, प० 232 कोटमन पूर्वोद्धत, *प० 35, ऐना बेसेट हाऊ इंडिया राट फार फ्रीडम,'पृ० 383, 427 28।*

दु ख के लिए दोप देते थे और विश्वमत इस सबध म उनकी ही तरफदारी करता था। प्लेग के बचाव के लिए उठाय गय कठोर कदम, जिसने लोगो के व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित किया, उनको अपना स्थान छोडने के लिए बाध्य किया जाना तथा कठोरतापूवक उनका अपमान सब कुछ उनकी कठिनाइया बढा ही रहा था। रामगोपाल ने लिखा है, "सारी कारवाई विजित क्षेत्र पर शत्रु द्वारा लूट जैसी लगती थी।'[1]

1858 के रायल प्राक्लेमशन म सरकार ने जनता स कुछ वादे किय थे और ऐसा ही 1833 के चाटर ऐक्ट म भी उन्होने किया था। पर वादो को पूरा न किये जाने पर लोगो की निराशा बढ़ गई। 1861 और 1892 के ऐक्टो को अब अद्ध मन से बनाया गया सुधार माना जाता था जिसस लोगो की इच्छा नही पूरी होती थी। 1882 क ऐक्ट क अतगत कौसिल मे चुने गये तत्वो का प्रवेश हो गया था पर यह नही के बराबर था और एम ही था। कौंसिल सदस्य न तो प्रस्ताव ला सकते थे और न पूरक प्रश्न ही कर सकते थे। बजट म अलग-अलग मदो पर मत नही लिया जाता था। लाजपत राय न कहा, "लगभग 20 वप तक रियायत और कष्टहरण के लिए किय गय जन आदोलन के बाद जनता को रोटी की जगह पत्थर दिया गया है।' और पुन उन्होने कहा, "ब्रिटिश प्रजातत्र को अपने ही मामलो म फुसत नही है ब्रिटिश समाचारपत्र जन-आकाक्षाओ के लिए कुछ नही कर रहे हैं उन्हे अपनी स्वतत्रता के लिए स्वय प्रहार करना होगा।"[2] "सरकार ने विधायिकाओ की रचना क्या की है एक राजनतिक थियेटर खोल दिया है" जाज स्वस्टर और म्वायविड ने लिखा, "19वी सदी ने भारत को जो शाति प्रदान की जो जातीय परिवतन उपस्थित किया, मध्यवग की उत्पत्ति की शिक्षा को आग बढाया सपक साधन बढाय राजनतिक प्रेस को देश के जीवन के साथ जोडा—इन सबने मिलकर एक ऐसा वातावरण विकसित किया जिसके कारण भारत म अभूतपूव ढग से राजनतिक जीवन के पुष्प को प्रस्फुटित कर दिया।'[3]

शिक्षा के विकास और औद्योगिक केन्द्रो की स्थापना के साथ नगरो और कस्बो की सख्या तथा शहरी जनसख्या म वद्धि हो रही थी। यही स्थान राजनतिक जागरण के भी केन्द्र बन गये थे। औद्योगिक विकास या शिक्षा के विकास की तुलना म पिछड जाने के कारण शिक्षित लोगो को नौकरी मिलने मे कठिनाई होने लगी जिसके कारण लम्बे चौडे स्तर पर असतोष व्याप्त हो गया। वस्त्र और चाय जसे नये उद्योगो के विकास ने, बैंको की स्थापना ने, व्यापार की प्रगति आदि ने

1 रामगोपाल लोकमा य तिलक प० 137।
2 लाजपतराय यग इडिया प० 158 169-70।
3 स्वस्टर जाज एड विट जी० इडियन डमाक्रसी प० 90-92।

एक नवीन औद्योगिक वर्ग का उदय किया। पर प्रारंभ से ही यह इस वर्ग को ई० ई० कृष्णन के अनुसार, 'व्यापारिक भेदभाव के विरुद्ध लड़ना पड़ रहा था। उन्हें विदेशी पूंजी से प्रतियोगिता के विरुद्ध लड़ना था। उन्हें स्वतंत्र व्यापार के विरुद्ध लड़ना था।''[1] इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति ने सचमुच भारत को आर्थिक स्थिरता से दूर किया, उसका कच्चा माल बाहर भेजा जाने लगा और उसके बाजारों को अंग्रेजी औद्योगिक माल से पाट दिया गया।

मजदूरी पर जीने वाला नया वर्ग भी, जो फैक्ट्रियों, आवागमन के साधनों, चाय बागानों आदि में काम कर रहा था, साम्राज्यवादी सरकार के अत्याचार का मुकाबला करने में अक्षम था। 1908 में वस्त्र उद्योगों में काम करने वाले लोगों ने बी० जी० तिलक के कैद किये जाने पर जब आम हड़ताल कर दी तो पता चला कि हवा का रुख किधर का है।

भारत में प्रेस भी तेजी से विकसित हो रहा था। 1882 में प्रेस की स्वतंत्रता की जो स्थापना हुई उसने भारत के राजनैतिक विचारों में महान परिवर्तन ला दिया। 1892 के असंतोषजनक ऐक्ट के बाद नवीन समाचार पत्रों ने ब्रिटिश प्रशासन की इतनी हिंसात्मक आलोचना की कि मिण्टो को मार्ले को इस तरह से लिखना पड़ा, ''मुझे भय है कि हमें इसके लिए गंभीरता से सोचना पड़ेगा कि स्थानीय प्रेस के साथ कैसे निबटा जाय क्योंकि बहुत से मामलों में उनका विचार हिंसात्मक है।''

दूसरी बात, जिसने भारतीय वातावरण को प्रभावित किया, वह थी विदेशों में रहने वाले भारतीयों को दिया जाने वाला अपमान। जैसा कि डा० तारकनाथ दास ने लिखा है कि ब्रिटिशों द्वारा साम्राज्यवादी और आर्थिक तरीके के शोषण ने कुछ साहसी जातियों विशेषकर पंजाब के लोगों को देश के बाहर जाकर नौकरी करने को बाध्य कर दिया था। ऐसे लोग बर्मा, मलाया राज्य, हांगकांग, चीन आदि चले गये। कनाडा और अमेरिका में प्राप्त उच्च पारिश्रमिक और लाभ ने भारतीयों को वहां जाने को भी आकर्षित किया। बाहर जाने वाले भारतीयों की संख्या हर जगह बढ़ने लगी और 1904 आते आते यह संख्या 20 लाख हो गई। सस्ते दर पर काम करने वाले भारतीय मजदूरों के अमेरिका में प्रवेश ने 1906 और 1907 में अमेरिकन मजदूरों को अधिक मजदूरी के लिए आंदोलन करने को बाध्य कर दिया जिसके फलस्वरूप अमेरिकन मजदूर भारतीय मजदूरों से घृणा करने लगे। 1906 में कनाडा विधायिका ने 'इमीग्रेशन ऐक्ट' पारित करके भारत में एशियाइयों के आने को नियंत्रित किया। 1907 में ब्रिटिश कोलंबिया की विधायिका ने

1 कृष्णन के० ई० द प्राब्लम आफ माइनारटीज, पृ० 146।
2 लेडी मिण्टो पूर्वोद्धृत पृ० 122।

भारतीयों को मत देने के अधिकार से वंचित कर दिया और 1908 में उनका नगरपालिका अधिकार भी छीन लिया गया। दक्षिणी अफ्रीका सरकार ने भारतीयों को अपने स्टेच्युट बुक्स में "अर्द्ध बर्बर एशियाई या भारत की असभ्य जाति" कहकर संबोधित किया। ब्रिटिश सरकार का इन भारतीयों की रक्षा न करना और गांधी का दक्षिणी अफ्रीका में जाति भेद के विरुद्ध संघर्ष ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को आगे बढ़ने का अवसर प्रदान किया। इन्हीं भारतीयों ने बाद में विदेशों में गदर आंदोलन चलाया जिसने ब्रिटिशों के विरुद्ध एक वातावरण तैयार किया।

पश्चिम की क्रांतिकारी विचारधारा का भी प्रभाव पड़े बिना न रहा। फ्रांस, अमरिका, इटली, जर्मनी, मिस्र, रूस, फारस और टर्की के हिंसात्मक स्वतंत्रता संघर्षों ने तथा गैरीबाल्डी और माजिनी के साहसपूर्ण कदमों ने शिक्षित भारतीयों के मस्तिष्क पर जादू जैसा असर किया। लाजपत राय का विचार है कि, 'इसमें संदेह नहीं कि भारतीय राष्ट्रवाद का विश्व प्रतिक्रिया से भी जो भारत के बाहर कायरत है, तमाम सहायता प्राप्त हो रही है। राजनैतिक क्षेत्र में इस यूरोपीय राष्ट्रवाद से बड़ी प्रेरणा और शक्ति मिलती है—अंग्रेज श्रमजीवियों का संघर्ष और उनकी सफलता, फ्रांस की क्रांति व अपार कष्ट और अंतत उसकी सफलता, इटली वासियों के प्रयास और उनकी विजय, तथा अनवरत चल रहा रूसियों, पोलों, फिनों और हंगरी के रहने वालों तथा अन्यों का संघर्ष।'[1] सर हेनरी काटन ने लिखा है कि, 'भारतीय लोगों ने अपने चारों ओर विश्व में फैली हुई देशभक्तिपूर्ण भावना की लौ से आग प्राप्त कर ली है।'[2]

अबीसीनिया की इटली पर तथा जापान की रूस पर प्राप्त वीहड़ विजय के परिणाम भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हुए। पश्चिम के अपराजेयता पर से पर्दा उठ गया और एशिया के लोगों में विश्वास करवटें लेने लगा। लार्ड मिण्टो ने स्वयं कहा, 'पूरा एशिया जापान द्वारा एक यूरोपीय शक्ति के पराजय पर प्रसन्न है। इसके प्रभाव दूरगामी होंगे। नयी संभावनाओं के जन्म की आशाएं बढ़ गई हैं। चीन, फारस, मिस्र और तुर्की में लोकप्रिय मांग जोर पकड़ रही है। पूरा विश्व जाग रहा है और भारत इस बीमारी से मुक्त नहीं है।'[4]

फिर 19वी सदी के अंतिम वर्षों ने भारत के इतिहास में एक नयी बात देखी।

---

1 लाजपतराय यंग इंडिया पृ० 232।

2 काटन सर हेनरी न्यू इण्डिया इंडिया इन ट्रांजिट पृ० 210।

3 देखें दुआ आर० पी० द इम्पैक्ट ऑफ रशो जापानीज (1905) वार ऑन इंडियन पॉलिटिक्स नई दिल्ली, 1966।

4 मोदी होमी फीरोजशाह मेहता दिल्ली 1967 पृ० 177।

धार्मिक पुनरुत्थानवाद के आंदोलन ने जमीन में गड़े भारत के भूतकाल को खोदकर निकाला और भारत के पुनर्जागरित लोगों के सामने लाकर उसे पेश कर दिया। स्वामी दयानन्द और विवेकानन्द ने, थियोसोफी आंदोलन की धनी श्रीमती एनी बेसेन्ट ने, भारतीयों की भावनाओं को झकझोर दिया और उन्हें निराशा की निद्रा से जगा दिया। भारत की प्राचीन संस्कृति की महानता और उसके राजनैतिक दर्शन का दृढ़ भाषा में जिस जोरदार ढंग से कहा गया उसका प्रभाव हुआ। वी० चिरोल ने लिखा है कि एनी बेसेन्ट ने खुलेआम हिन्दू व्यवस्था को पश्चिम के शेखीभरे सभ्यता से उच्च घोषित किया।"[1]

पुनः यूरोपीय अपनी जातिगत उच्चता को भारतीयों पर थोपते थे जिससे लोगों में विरोध भाव पनप रहा था और उससे ब्रिटिश शासन का आधार कमजोर हो रहा था। भारत में जाति के आधार पर संघर्ष का मुख्य कारण यह था कि अंग्रेज कभी जनता के निकट संपर्क में आने की चेष्टा नहीं करते थे। भारत में अंग्रेज जनसंख्या गतिमोह में फंसी रहती थी और अंततः इंग्लैंड वापस चली जाती थी। आवागमन के साधन के उत्थान ने उन्हें अपनी जन्मभूमि जाने के लिए बार-बार और प्रोत्साहित किया। इस तरह उनके प्रति शासितों की सहानुभूति नहीं जुट पायी। 'यूरोपीयों के पूर्व में सत्ता प्राप्ति के समय से ही पश्चिम के जाति उच्चता के सिद्धान्त ने उनका मस्तिष्क खराब कर रखा था। पर 20वीं सदी में, जबकि सामान्य जागरण पूर्वी लोगों में भी उत्पन्न हो गया था, इसका चल पाना बड़ा कठिन था।"[2] 1908 में मिण्टो ने स्वयं स्वीकार किया कि, 'प्रतिदिन के जीवन का वातावरण उत्तेजित है और जातिगत दुर्भावनाओं को खतरनाक ढंग से प्रज्वलित कर दिया गया है।"

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस इस वातावरण से प्रभावित हुई। 1905 के अपने बनारस सम्मेलन में इसने ब्रिटिश उपनिवेशों में स्थापित होने योग्य स्वशासन पर विचार किया। इसने लेजिस्लेटिव कौंसिलों में तुरन्त सुधार की मांग की। पर, इसकी विधियां साधारण रहीं जिससे भारतीयों की नयी पीढ़ी की आकांक्षाएं संतुष्ट नहीं हो पायीं क्योंकि उसने अंग्रेजी साहित्य के स्वर्णिम खजाने से राजनैतिक स्वतंत्रता का सिद्धान्त पा लिया था। इन्हीं परिस्थितियों में इंडियन नेशनल कांग्रेस में उग्रवादी तत्त्व शक्ति प्राप्त करने लगा। 1905 के सम्मेलन में यह खुलकर सामने आया और 1906 के सम्मेलन में इस तत्त्व और उदारवादियों के बीच का भेदभाव दादाभाई नौरोजी ने बड़ी चालाकी और सूझबूझ से रोका। पर अंतिम विघटन अधिक समय तक के लिए नहीं रोका जा सका। 1907 के सूरत सम्मेलन

1 चिरोल वी० इंडियन अनरेस्ट पृ० 369।
2 दास, एम० एन० इंडिया अंडर मार्ले ऐण्ड मिण्टो, लंदन, 1964, पृ० 213।

जितना भारतीय गावो मे धूल और धूप मे तूफानी गति से दौडने वाला बाल। उन्होंन लाड कजन के काल की कारवाइयो को प्रतिक्रियावादी बताकर भर्त्सना की जिसने उनके अनुसार नवजन्म लेती भारतीय राष्ट्रीयता के पुष्प को मसल देने की चेष्टा की। कजन के विश्वविद्यालय ऐक्ट को उन्होने उदार भारतीय विचारधारा पर सुनियोजित प्रहार बताया तथा बगभग को उन्होने साम्राज्यवादी हिंसोन्मत्त प्रयास बताया। उन्होने विरोध सभाए आयोजित की और भारतीयो को कजन के बुरे उद्देश्य से प्रेरित सामाजिक नीति की शक्ति से मुकाबला करने की प्रेरणा दी। यूरोपीया की क्रूर हत्याए और उनकी सपत्ति का विनाश जो हुआ पाल के प्रयासो से ही प्रभावित था।

पाच नदियो के क्षेत्र पजाब ने अपने शेर लाला लाजपत राय को जन्म दिया जो तूफान की तरह दौडे और ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध शेर की तरह गरजे। जब वे भाषण देते तो उससे राजनैतिक विरोध की आग बरसती। उन्होने लोगो को अपनी सहायता आप करने और प्रतिष्ठापूण जीवन जीने की कला की शिक्षा दी। लाड मिण्टो ने मार्ले को लिखा, ' हमे लाजपतराय और अ य आन्दोलनकारियो की ओर से अमीर के साथ कुछ रुचिकर समाचारो के आदान प्रदान की सूचना मिली है यदि वह भारत मे होनेवाले षड्यत्र से जुडा था जिसका समथन सीमा के कबीले कर रहे थे, तब तो हमारी परेशानी कल्पनातीत है।" सच तो यह था कि लाहौर मे दगे हुए और वहा का वातावरण राष्ट्र प्रेम से ऐसा उद्वेलित हुआ जैसा पहले कभी नही हुआ था। मिण्टो ने लिखा, ' सब जगह उग्रवादी खुलेआम और लगातार विद्रोह की शिक्षा देते है। वे ऐसा अखबारो के माध्यम से और अपनी आयोजित सभाओ मे भी करते हैं।" और ऐसी स्थिति म उसन मार्ले को लाजपत राय के बारे मे पुन लिखा, "इससे यह स्पष्ट है कि इसकी मित्रता हमारे लिए कितनी महत्त्वपूण है।"[1]

गोखले और तिलक म अन्तर को स्पष्ट करत हुए डॉ० पी० सीतारमैय्या न लिखा है ' गोखल उदार थे और तिलक उग्रवादी। गोखले की योजना वतमान सविधान को सुधारने की थी, तिलक इसकी पुनरचना चाहते थे। गोखले नौकरशाही के साथ काय करना आवश्यक मानते थे और तिलक उनसे लडना आवश्यक समझते थे। गोखले आवश्यकतानुसार जहा सभव हो सहयोग और जहा आवश्यक हो विरोध के पक्षधर थे तिलक रोक थाम की नीति में विश्वास करते थे। गोखल की विधि विदेशियो को जीतने की थी, तिलक उन्हें हटाना चाहते थे, गोखले दूसरो की सहायता पर निभर करते थे, तिलक अपने द्वारा सहायता मे विश्वास करते थे। गोखले की वर्गो और बुद्धिजीवियो की ओर निगाह थी, तिलक की प्रजा

1 लेडी मिन्टो पर्वोद्धत पृ० 151 55।

है और ऊंचे ऊंचे यूरोपीय व्यापार घराना ने या तो अपना काम बद कर दिया है या छोटा मोटा व्यापार प्रारम्भ कर दिया है।"[1]

आग और हिंसा पूरे देश मे फैल गयी और विद्रोह के भाव भारतीय सेना तक पहुच गय। तमाम उदाहरण दिये जाते कि गोखल जैसे लोग सेना के लोगो से गुप्त सपर्क मे हैं। आग बरसाने वाले पर्चे सैनिको मे बांटे जाते और रूसी अधिकारियो से सपर्क के तथ्यपूर्ण प्रमाण थे। सर माइकेल ओ' डायर के अनुसार पजाब मे छानबीन से पता चला कि, "जो लोग इसमे पकड मे आयें हैं उनमें बहुत से आयसमाज के सदस्य हैं।" लाजपतराय के निर्वासन से घबडाकर, इसके एक प्रमुख सदस्य, समाज के सदस्यो के एक प्रतिनिधिमडल सहित सर डेन्जिल इबटसन गवर्नर स मई 1907 मे मिला और उन्हे बताया कि समाज का सगठन सामाजिक व धार्मिक है और राजनीति से उसका कुछ लेना देना नही है। आयसमाज ने इसी तरह का एक प्रस्ताव भी पारित किया। पर सरकार इतने से सतुष्ट नही हुई क्योकि ओ' डायर के मतानुसार समाज मे पजाब के हिन्दुओ का 5% भी सम्मिलित नही था। पर हिन्दुओ मे जो लोग सजा के भागी हुए उनमें से अधिकतर आयसमाज क सदस्य थे। 'ट्रिब्युन' मे छपे एक रिपोर्ट के अनुसार, सर इबटसन ने कहा, कि जहा वह समाज से आश्वासन पाकर प्रसन्न हैं, वहा उसे प्रत्येक जिले के अधिकारी से सूचना प्राप्त हुई है, कि जहा भी आयसमाज है, वहा विद्रोह के बातचीत का केन्द्र है। सच यह लगता है कि समाज सगठन के रूप मे राजनीति की रुचि से परे रहा होगा। पर इसके केन्द्रो ने उस सुविधा जनक कार्य स्थल का काय किया होगा जहा लोग उनके सपर्क में आये होंगे जो व्यक्तिगत रूप में या किसी सगठन की ओर से राजनीति में रुचि रखते रहे होंगे और जिन्होने विदशी गुलामी जुये का तोड फेंकने के लिए प्रेरणा दी होगी।

छुट-पुट हिंसात्मक प्रयास भी सामने आय। अप्रल 1908 मे एक यूरोपीय ऐडवोकेट मि० पिगल केनेडी की पत्नी और लडकी के वाहन पर मुजफ्फरपुर मे बम फेंका गया। कु० केनेडी मारी गयी और श्रीमती केनेडी बुरी तरह घायल हो गयी। दिसबर 1907 मे मुजफ्फरपुर म पुन बगाल के लेफ्टीनन्ट गवनर सर ऐन्ड्रिव फ्रेंजर को ले जानेवाली गाडी को ही उडाने की चेष्टा की गयी। ढाका के जिला मजिस्ट्रेट बी० सी० आनद को एक रिवाल्वर से गभीर रूप से घायल कर दिया गया। नवम्बर 1908 मे जीतेन्द्रनाथ राय चौधरी नामक एक छात्र को सर ऐन्ड्रिव फ्रेजर की हत्या के प्रयास मे बदी बना लिया गया। जुलाई 1909 मे लेफ्टीनेन्ट कनल सर डब्लू० कजन—विली को लदन के इम्पीरियल इन्स्टीच्युट म

---

1 देखें देसाई, ए० आर० पी० सोशल बैकग्राउन्ड आफ इन्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ० 307 44।

एक भारतीय मदन लाल धींगरा द्वारा मार डाला गया। नवम्बर 1909 में लार्ड और लेडी मिण्टो को अहमदाबाद में जान से मार डालने का प्रयास किया गया। उसी वर्ष दिसबर में नासिक के कलेक्टर जैम्सन को एक ब्राह्मण युवा ने इससे बदला लेने के लिए मार डाला क्योंकि उसने जी० डी० सावरकर को दड दिलाने में भाग लिया। उसी महीने एक बम पार्सल से अम्बाला के डिप्टी कमिश्नर को भेजा गया। जनवरी 1910 में खान बहादुर शम्सुल आलम को जो बगाल 'क्रिमिनल इनवेस्टीगेशन डिपार्टमेण्ट' में डिप्टी सुपरिंटेंडेंट आफ पुलिस थे, कलकत्ता हाई कोर्ट में गोली से मार डाला गया। भारत सरकार का विश्वास था कि उग्रवादियो का देश के फ्रांसीसी केन्द्रो मे सगठन मौजूद है।[1] इसके पर्याप्त प्रमाण थे कि उन्हे अमेरिका और पश्चिम के कुछ देशो से, व्यक्तियो और सगठनो से आर्थिक सहायता प्राप्त हो रही थी।

सरकार की प्रतिक्रिया—इन परिस्थितियो मे किया क्या जाय? कर्जन सत्य से दूर था। और जब कांग्रेस भारतीय लोगो मे लोकप्रिय होती जा रही थी और 1901 मे ब्रिटेन मे भी अपना सगठन इसने स्थापित किया तो कर्जन ने कहा, "जब कि मैं स्वय भारत की जनता के मत जानने और उसे समझने-बूझने की इच्छा रखता था, कांग्रेस की रचना ने विगत वर्षों मे ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि उनसे उनका वह अधिकार भी छिन गया है। वह अपने म मुट्ठी भर लोगो का ही प्रतिनिधित्व करती है। मेरा विश्वास है कांग्रेस म अच्छे लोग धीरे धीरे अपने कार्यों की सफलता के नैराश्य से परिचित हो रहे है। और सच मे उनके बहुत से समाचारपत्रो ने यह तक कहना प्रारभ कर दिया है कि बेहतर यह होता कि वे हमारे ऊपर विश्वास करते जिससे मैं उन्हे अधिक से अधिक दे सकता। पर इसकी जगह पर वे अपनी शक्ति शोर मचाने म बर्बाद कर रहे हैं जिसके बदले मे कोई भी वाइसराय उन्हे कुछ नही देगा।" मिण्टो ने चीजो को ठीक से समझा जब उसने यह कहा 'मेरी समझ से कांग्रेस की स्थिति की कल्पना न करना भूल है। जिस जनसख्या की यह सस्था प्रतिनिधित्व करती है वह मेरे विचार से कभी ऐसी शक्ति नही प्राप्त कर पायगी कि वह भारत सरकार मे नेतृत्व की भूमिका अदा कर सके। पर यह बहुत स ऊचे विभिन्न विषयो के भारतीय विचारो का प्रतिनिधित्व करती है जिससे देश के भविष्य का प्रशासन प्रभावित होगा। इसलिए कांग्रेस को एक तरफ छोड देना भूल होगी और इसको बिना विश्वास मे लिए कुछ करना भारतीय इतिहास के लिए उचित नही होगा।"[2] मिण्टो ने अनुभव किया कि भारत मे ब्रिटिश शासन का स्थायित्व "इस बात पर निर्भर करता है कि

---

1 देखें दास एम० एन० पूर्वोद्धृत, पृ० 104 120।

2 दास एम० एन० पूर्वोद्धृत प० 167 89।

हम अपने चारो ओर बदलती स्थिति से समझौता करें" और इसके लिए उसने कांग्रेस का अस्तित्व ही नही स्वीकार किया बल्कि इसके दो समूहा का भी—उग्रवादी जिन्होंने इसे छोड दिया था और उदारवादी जो सगठन को अब भी अपने नियत्रण मे रखे हुए थे। उसने लाड मार्ले स इस विषय पर विस्तार से पत्र व्यवहार किया और एक राजनीति तैयार की।

नयी राजनीति जो लाड मिण्टो ने सर्जित की उसके आधार पर तीन कारवाइया की जानी थी। पहली, काग्रेस के अदर और बाहर उग्रवादी तत्वा को बुरी तरह से दबा दिया जाना था। दूसरी, काग्रेस के भीतर और बाहर जो उदारवादी तत्व था, जहा तक सभव हो उसे तुष्ट किया जाना था। स्पष्ट था कि इसे तभी किया जा सकता था जब काग्रेस के द्वारा पारित प्रस्ताव मे से कुछ मागें मानकर इस कदम की शुरुआत हो सकती थी। तीसरे, उदारमत वालो को तुष्ट करते समय यह ध्यान मे रखना था कि वे इतने शक्तिशाली न हो जाय कि सरकार के लिए समस्या बन जाय। भारत के ऊपर सेक्रेट्री आफ स्टेट मार्ले न मिण्टो की दूसरी बात स्वीकार कर ली, पर वह वाइसराय के साथ पहले या तीसरे प्रस्ताव पर बहुत आगे जाने को तैयार नही था। पर मिण्टो अपनी योजना पर आबद्ध रहा और अपने प्रथम प्रस्ताव के आधार पर उसने क्रातिकारी कारवाइयो को दबाने के लिए भारत म कई कठोर कदम उठाय। दूसरे प्रस्ताव के अतगत कुछ और कदम स्थानीय स्वशासन के विकास के लिए भी उठाये गये और 1909 का मिण्टो मार्ले ऐक्ट भारतीय विधायिका को विस्तत करने के लिए उठाया गया। उसे शक्ति भी अधिक प्रदान की गयी। अपने तीसरे प्रस्ताव के अतगत उसने मुस्लिम लीग के सगठन को प्रोत्साहित किया जो काग्रेस सगठन के विरुद्ध खडी हो सके और इन सस्थाओ के भी विरोध मे उसने भारतीय राजाओ को भी खडा किया।

उग्रवादियो को दबाने के लिए सेक्शन 124ए और 153ए को इडियन पेनल कोड म जोडा गया और 1907 म 'प्रीवेन्सन आफ सेडीस ■ ऐक्ट' पारित किया गया। 1908 मे 'एक्सप्लोसिव सब्सटेन्सेज ऐक्ट' की भी स्थापना हुई। इसी वष आतकवादियो पर विशेष मुकदमा चलाने के लिए 'क्रिमिनल ला अमेन्डमेन्ट ऐक्ट' पारित किया गया। बहुत से उग्रवादियो को कैद किया गया, मुकदमा चलाया गया और दडित किया गया। तिलक, लाजपतराय और अजीत सिंह को निर्वासन दड दिया गया।

प्रेस की स्वतत्रता अपहरण करने के लिए भी कठोर कदम उठाये गये। 1906 मे लाहौर के पजाबी को सेक्शन इडियन पेनल कोड के 153 के अधीन दडित किया गया जिसके आधार पर इसके सपादक को कैद कर लिया गया और इससे अथ दड भी लिया गया। इसी तरह की कारवाई बम्बई के हिन्दू स्वराज के साथ भी की

गयी। यह कार्यवाई भी 'क्रिमिनल प्रोसीजर कोड' के सेक्शन 108 के अधीन की गयी। अन्य समाचार पत्र, जिन्होने 'क्रिमिनल प्रोसीजर कोड' और 'इडियन पेनल कोड' झेले थे—बिहारी, इडिया, हिन्दुस्तान, वन्दे मातरम, सध्या, युगान्तर, केशरी आदि।

1908 म समाचार पत्रों को एकदम समाप्त करने के लिए 'इनसाइटमेण्ट टू आफे स ऐक्ट' पारित किया गया। इसके अनुसार उन समाचारपत्रो का प्रकाशन विधि सदस्य के ही अनुसार उस स्थिति मे बद कर दिया जाता था जब ये हत्या या हिंसा को प्रोत्साहित करता था। इस पर 'एक्सप्लोसिव सब्सटैंसेज ऐक्ट(1908)' के अधीन कारवाई की जाती थी।

इस ऐक्ट के अधीन जिला मजिस्ट्रेटो को ऐसा प्रेस जब्त कर लेने का अधिकार था जो हिंसा के प्रोत्साहन के लिए कोई चीज छापता था। यदि मजिस्ट्रेट का सदेह होता तो वह प्रेस वाले को बुलाकर उसे कारवाई करने हेतु कारण बताओ नोटिस देता था। यदि तत्सबधी उत्तर सतोषजनक नही होता और मजिस्ट्रेट उसके अपराधी होने के प्रति आश्वस्त हो जाता तो वह पुलिस को कारवाई का आदेश दे देता जो प्रेस और अन्य धन को ले लेता। आपातकाल मे इसे जब्त करने का अधिकार बिना कारण बताये नोटिस के भी दिया जा सकता था। 15 दिनों के आदेश दिये जाने के भीतर हाई कोर्ट मे इसकी अपील की जा सकती थी। यह ऐक्ट स्थानीय सरकार को प्रकाशक और मुद्रक के काय को 1867 के ऐक्ट के अधीन बेकार घोषित कर सकता था।

देखने से ही इसकी कारवाई की भयानकता का अन्दाज होता है। इसका उद्देश्य राजनतिक स्वतत्रता और राष्ट्रीय एकता के भाव को समाप्त करना था। सध्या और युगान्तर जसे समाचार पत्र सचमुच समाप्त कर दिये गये और शेष ब्रिटिश निरकुशता के दाब म छटपटाते रहे।

सरकार अब भी अपनी सजित शक्ति से सतुष्ट नही थी इसीलिए 1910 का 'इण्डियन प्रेस ऐक्ट' पारित किया गया। इस ऐक्ट की धारा 4 म उस बात को इतराजपूर्ण विषय वस्तु माना गया जो लोगो को परेशान करके क्रांतिकारी कारवाइयों के लिए धन दिलवाते थे, सेना के लोगो को लालच देते थे, क्रांति से सबधित लोगो के विरोध मे गवाही देने मे रोकते थे तथा राजाओ, कमचारियो, अधिकारियो व न्यायाधीशो की आलोचना करते थे। और यह निर्णय कि एक विशेष लेख ने धारा 4 का उल्लघन किया है या नही, इसका निर्णय न्यायालय नहीं, स्थानीय सरकार करती थी।

इस ऐक्ट के अतर्गत मजिस्ट्रेट प्रेस या समाचार पत्र से कम-से-कम 500 रु० और अधिक से अधिक 2,000 की सीक्योरिटी माग सकता था। और स्थानीय सरकार कम से कम 500 रु० और अधिक से अधिक 5,000 रु० इस उद्देश्य के

लिए पहले से स्थापित प्रेसो और समाचार पत्रो से सीक्योरिटी माग सकती थी। यह धन सरकार के आदेश पर जब्त किया जा सकता था। चुगी घरो और डाकखानो को ऐसे पैकेटो को रोकने का अधिकार था जिसके विषय मे उनको सदेह हो कि इसमे इतराजपूर्ण प्रकाशन सामग्री है। वे यह सामग्री प्रान्तीय सरकार को प्रेषित कर देते थे। यदि कोई उपरोक्त वर्णित धारा 4 का उल्लघन करता तो उसकी सीक्योरिटी राशि जब्त कर ली जाती। और यदि नये तरीके से काय प्रारम करना चाहता तो उसे फिर वही उपरोक्त प्रक्रिया अपनानी पडती। कार्यपालिका के इन आदेशो के विरुद्ध केवल हाई कोट मे अपील हो सकती थी जिसे तीन न्यायाधीशो की एक बेंच सुनता था।

एक बार यह बिल पारित हो गया, सरकार ने इसका तगडे मे प्रयोग किया। विशेषकर युद्ध काल मे, और 1919 तक इसके अतगत 300 समाचार पत्रो, 350 प्रेसो और 400 प्रकाशनो को दडित किया गया। इन 300 समाचार पत्रो से 40 हजार रु० की सीक्योरिटी धन राशि मागी गयी और यह कहा जाता है कि 200 प्रेसो और 130 समाचार पत्रो ने इसी कारण अपना काम नही प्रारम किया। इनमे से जिनका सबसे अधिक नुकसान हुआ वे थे, ट्रिब्यून, द हिन्दू, अमृत बाजार पत्रिका, द बाम्बे क्रानिकिल, द हिन्दवासी।

ऐक्ट की धाराए ऐसी थी कि इसके विरुद्ध कितना भी कठोर शब्द प्रयोग किया जाय या आलोचना की जाय, वह कम थी। तमाम मुकदमे जो न्यायाधीशो के सामने लाये गये उनमे से कुछ ऐक्ट के विरुद्ध कटु आलोचना की गयी। यह बुद्धिजीवियो के विरुद्ध एक अपमानजनक ऐक्ट था जो उनसे सुरक्षा धन राशि मागता था, पर साथ ही हाई कोट मे अपील दायर करने का अवसर भी दे देता था जिसे कार्यकारिणी के निणय पर उगली उठाने का अधिकार नही था। और इस ऐक्ट के अतगत अपराधी को अपनी निरपराधिता सिद्ध करने का कहा जाता था और इस तरह यह ऐक्ट विधि शासन के प्रथम सिद्धान्त का ही हनन करता था। एक मुकदमे मे न्यायाधीश टी० वी० शेषगिरि अय्यर ने कहा भी, "सक्शन 4 का काय क्षेत्र इतना अधिक है कि यदि प्रेस एक सुपरवाइजर भी नियुक्त कर ले तो यह सभावना थी कि थोडी-सी भी लापरवाही से यदि आख से कोई चीज ओझल हो गयी तो प्रेस और प्रेस म काय करने वाला का जीवन ही बर्बाद हो गया।' न्यायाधीश अब्दुल रहीम ने कहा फिर न्यायाधीश को केवल अपील या सुरक्षा धन राशि के जब्त किये जाने के विरुद्ध या पक्ष मे ही निणय लेना था। वह तनिक भी जब्तीकरण के आदेश मे परिवतन नही कर सकता था।" 'पजाब के मुख्य न्यायाधीश ने गुलाम कादिर खा बनाम ताज के मुकदमे म कहा "प्रेस कानून क्रिमिनल लॉ से भी आगे निकल गया जिसके फलस्वरूप जहा क्रिमिनल ला का उल्लघन नही होता था, पर प्रेस कानून का होता था।' मुहम्मद अली बनाम सम्राट के मुकदमे

म मुख्य न्यायाधीश जेनकिन्स और न्यायाधीश स्टीफेन न भी इसी तरह मत व्यक्त किया।

इसे गला बाधने वाला दूसरा ऐक्ट कहा गया। जिसका उद्देश्य प्रेस को बर्बाद करना था और इसका विरोध स्वाभाविक था। पर 1922 म जाकर यह कानून तब वापस लिया जा सका जब सर तजबहादुर सप्रू समिति की सस्तुतियो के प्रकाशन के तत्सबध म एक सशोधन लाया गया। नय निणय के अनुसार 1910 का ऐक्ट वापस ले लिया गया।[1]

1909 का मिण्टो-मार्ले सुधार

उग्रवादियो के विरुद्ध दमन की नीति अपनाते हुए मिण्टो ने जो सामरिक नीति अपनाई थी, उसके अतगत काग्रेस के बाहर और भीतर उदारवादी तत्वो को तुष्ट किया जाना था। 1907 म लाड मार्ले ने सर चाल्स हॉबहाउस के नेतृत्व मे एक रॉयल कमीशन की स्थापना की जिसका उद्देश्य यह पता लगाना था कि भारत म असतोष का कारण क्या है और उससे यह भी कहा गया कि वह आर्थिक व्यवस्था म सुधार के कदम भी सुझाये। कमीशन न यह सुझाव प्रस्तुत किया कि एक बार प्रा त मे जो कर निर्धारित कर दिय जाय उनम अनावश्यक रूप से केन्द्र द्वारा फिर हस्तक्षेप न किया जाय। राजस्व का वितरण अस्त व्यस्त तरीके से न करके प्रा तो की आवश्यकतानुसार किया जाय। कुछ और बटे हुए मदो का प्रा तीयकरण कर दिया जाय तथा बडे निश्चित मदो की जगह पर निश्चित राजस्व मदो को ल आया जाय। प्रा तो को प्रा तीय कर केन्द्रीय अनुमोदन से ही लगाने का अधिकार दिया जाय। उन्ह भू राजस्व बदोबस्त मे अधिक अधिकार प्रदान किया जाय तथा सिविल एकाउन्टस कोड को उदार बनाया जाय।

1909 के कमीशन ने सरल बोर्डों के सबध म भी कुछ सस्तुतिया की, लाड रिपन के प्रस्ताव से ही चुने गये सदस्यो को लेने का सुझाव दिया गया था जिन्हें जिला बोर्डों मे प्रारभ भी कर दिया गया था। पर ये चुने गय सदस्य कुछ प्रा तो मे लोअर बोड के सदस्यो म से ही चुने जाते थे जबकि व सभी सदस्य नामित होते थे। 'जिस तरह के निर्वाचक वे थे उसके अनुसार चुनाव कहा था, इसमे जनसख्या के 6% लोग ही तो भाग लेते थे।' इस दोष को दूर करने के लिए विकेन्द्रीकरण आयोग ने सस्तुति दी कि चुने हुए सदस्यो की सख्या हर स्थान पर बढाई जाय। इस सस्तुति के ही आधार पर आसाम, बिहार, बगाल और उडीसा मे चुने हुओ

---

1 और विस्तार के लिए दखें नटराजन एस० ए हिस्ट्री आफ द प्रस इन इडिया राव एम० चलपति प्रस इन इडिया।

के बहुमत की प्रणाली लागू की, जबकि सी० पी० और मद्रास ने चुने जाने वाले तत्वो की सख्या 2/3 और यू० पी० ने 3/4 बढा दी। पर फिर भी बम्बई ने चुने गये लोगो की परपरा की शुरुआत ही नही की। आयोग की दूसरी सस्तुति यह थी कि जिला बोर्डों को एक रुपये पर एक पैसा अतिरिक्त चुगी लगाने का अधिकार दिया जाय जिस धन से वे हल्की रेलगाडिया और ट्रामे अपने क्षेत्र मे चला सके। और इसे किया गया।

मिण्टो के काल का एक अन्य सुधार 1907 मे उसके निणय के माध्यम से सामने आया जिसम बताया गया कि चीन को भेजी जाने वाली अफीम को धीरे-धीरे कम करते करते समाप्त कर दिया जायगा। यह चीन सरकार के निवेदन पर मानवतावादी आधार पर किया गया जिसके लिए इग्लैंड मे भी आदोलन प्रारभ हो चुका था। अतन इस व्यापार की समाप्ति के कारण 8 से 10 करोड वार्षिक का घाटा सरकार का हुआ। पर यह हानि बर्दाश्त करने योग्य थी क्योकि इसके प्रयोग से जनता का नैतिक स्तर गिरता था।

पर मिण्टो के काल का अधिक महत्त्वपूर्ण ऐक्ट 1909 का 'इण्डियन कौंसिल्स ऐक्ट' या मिण्टो मार्ले सुधार था।

सेक्रेट्री आफ स्टेट से लबे पत्र व्यवहार के बाद मिण्टो ने सर अरुडाले के नेतृत्व मे समिति नियुक्त की जिससे देश मे सवैधानिक सुधार सस्तुत करने को कहा गया। समिति ने अपनी रिपोर्ट अक्टूबर 1906 मे प्रस्तुत की जिसपर वाइसराय की कौंसिल मे विचार किया गया और फिर इसे सेक्रेट्री आफ स्टेट के पास भेजा गया। मिण्टो ने मार्ले को लिखा, "समय बीतता जा रहा है और हम अपने सुधारो को योजनाबद्ध तरीके से प्रस्तुत करना चाहिए जिसम सुधार की प्रकृति ही न हो पर यह भी हो कि इसे कब और कैसे प्रारभ किया जाय। मार्ले ने रिपोर्ट को इस आदेश के साथ वापस कर दिया कि इन्हे स्थानीय सरकारो के पास जनता की आलोचना के लिए प्रेषित कर दिया जाय। और उसी प्रकाश मे बिल को पुन तैयार किया गया और मत्रिमडल से स्वीकृति प्रदान कर फरवरी 1909 मे ससद से पारित कर दिया गया।

ऐक्ट की धाराए

रालिन्सन ने लिखा है कि, "1909 के 'इडियन कौंसिल्स ऐक्ट ने कोई क्रातिकारी परिवतन न करते हुए भी भारत को स्व शासन की सडक के प्रथम चरण तक पहुचा दिया।"[1] केन्द्रीय विधायिका के सबध मे इसने इसकी सदस्य सख्या बढाकर 69 कर दी जिसमे से 37 सरकारी अधिकारी होने थे और 32 गैर-

1 रालिन्सन ब्रिटिश अचीवमेन्ट इन इडिया, पृ० 225।

सरकारी लोग। सरकारी अधिकारियों में से गवनर जनरल, उसकी कौंसिल के 6 सदस्य और दो असाधारण सदस्य, उदाहरणार्थ सेनापति और प्रात का शासक जहा कौंसिल की बैठक होती यानी सब मिलाकर य 9 होते थे। शेष 28 सदस्यों को गवनर जनरल नामित करता था। 32 गैरसरकारी लोगों में से 5 को गवनर नामित करता था और शेष 27 चुने जाते थे।

चुने जानेवाले सदस्यों के विषय मे बताया गया कि क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व भारत के लिए उपयुक्त नही है और यह कि, "इडियन लेजिस्लेटिव कौंसिलो की रचना मे चुनाव का सिद्धान्त वर्गों और हितो के ऊपर आधारित होना अधिक व्यावहारिक है।" इस तरह 27 सदस्यों में से 13 को तो सामान्य मतदाताओं के माध्यम से आना था जिसमे बम्बई, मद्रास के विधायिका मे गैर सरकारी सदस्य आते थे, बगाल और यू०पी० को दो-दो सदस्य भेजना था (=8), तथा मध्य प्रात, आसाम, बिहार व उडीसा, पजाब व बर्मा इन विधायिकाओ को एक-एक सदस्य (=5) भेजना था। शेष 14 सदस्यो म से 'क्लास यलेक्टोरेट' से आते थे, 6 सदस्य बम्बई मद्रास, बगाल, बिहार व उडीसा, यु० पी० तथा मध्य प्रात के जमीदारो के क्षेत्रो से आते थे, तथा 6 मुस्लिम क्षेत्रो से आते थे। इनमे से मद्रास, बम्बई, यू० पी० तथा बिहार व उडीसा से 1-1 (=4) और बगाल से दो। शेष दो 'स्पेशल यलेक्टोरेट' से आते थे—एक बगाल तथा दूसरे बम्बई चैम्बर आफ कामर्स से। पृष्ठ 613 के रेखाचित्र से यह और स्पष्ट हो जायगा—

प्रान्तीय कौंसिलो की सदस्यता म भी वृद्धि कर दी गई। बगाल, मद्रास और बम्बई के इक्जीक्युटिव कौंसिलो की सदस्य सख्या बढाकर 4 कर दी गई और सरकार को अधिकार प्राप्त हुआ कि वह चाहे तो लेफ्टीनेन्ट गवनर के लिए भी कौंसिलो की रचना कर दे। भिन्न भिन्न प्रातो की विधायिकाओ की सदस्यता बढाकर अधोलिखित कर दी गई—

बर्मा	16
ईस्ट बगाल और आसाम	41
बगाल	52
मद्रास	47
बम्बई	47
यू०पी०	47
पजाब	25

इस ऐक्ट म प्राता मे गैर सरकारी लोगो म बहुमत की व्यवस्था की गई। पर इसका अथ यह नही था कि चुने गये तत्त्व को बहुमत प्राप्त हुआ। चूंकि कुछ गैर-सरकारी सदस्य गवनर के द्वारा नामित होते थे इसलिए उसकी सहायता से कौंसिल

इम्पीरिल लेजिलेचर की पूण सख्या =69

- सरकारी अधिकारी =37
  - पदेन =9
    - गवनर जनरल =1
    - कौसिल के साधारण सदस्य =6
    - असाधारण सदस्य =2
      - सेनापति
      - प्रात का गवनर जहा बैठक होनी थी
  - नामित =28
- गैर सरकारी लोग =32
  - नामित =5
  - निर्वाचित =27
    - स्पेशल एलेक्टोरेट्स =2
    - जनरल एलेक्टोरेटस =13
    - क्लास एलेक्टोरेटस =12
      - जमीदारो के क्षेत्र से =6
      - मुस्लिम क्षेत्र से =6

पर सरकारी नियत्रण बना रहता था। उदाहरण के लिए गैर-सरकारी सदस्या की सख्या मद्रास म 26 थी और सरकारी सदस्या की केवल 21। पर गैर सरकारी सदस्या मे से केवल 21 का चुनाव होता था जबकि 5 को गवनर नामजद करता था जो सरकारी सदस्यो की सहायता अनिवाय रूप से करता था और इस तरह उनकी शक्ति 26 सदस्यो की हो जाती थी। इसी तरह बम्बई मे चुन गय सदस्या की सख्या 47 म 21 थी।

प्रातीय विधायिका मे चुने गये सदस्य अलग-अलग क्षेत्रा से चुनकर आत थे। उदाहरणाथ बम्बई मे 21 सदस्या मे से 6 'स्पेशल एलेक्टोरेट्स' स चुनकर आत थे जिसमे बम्बई कार्पोरेशन और बम्बई विश्वविद्यालय भी सम्मिलित थे, 8 'जनरल एलेक्टोरेटस' से आते थे जिनका चुनाव जिला बोर्डों, नगरपालिकाओ आदि से होता था और शेष 7 'क्लास एलेक्टोरेट' से आते थे जिसमे 4 मुसलमानो और 3 जमीदारों का प्रतिनिधित्व करते थे। उपरोक्त सदस्यो के अतिरिक्त यह

भी प्रावधान किया गया कि आवश्यक होने पर प्रात का गवनर सहायताथ एक या दो विशेषज्ञ सदस्यो को भी नामित कर सकता है।

इम्पीरियल और प्रातीय दोनों विधायिकाओ के अधिकार भी पर्याप्त बढा दिये गये। अब सदस्यो को विचार विमश और पूरक प्रश्न पूछने का भी अधिकार प्राप्त हुआ। पूरक प्रश्न से सबधित सदस्य को यह अधिकार प्रदान किया गया कि तुरन्त सूचना न दे पाने की स्थिति म हो तो और अधिक समय माग ले। 'इम्पीरियल लेजिस्लेचर' में बजट पर वादाविवाद के लिए निश्चित नियम बना दिये गये। सदस्य, मताधिकार के तो अधिकारी नही थे पर उन्हे यह अधिकार प्राप्त था कि वे स्थानीय सरकारो के लिए अतिरिक्त अनुदानो हेतु प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकें। उन्हे कर प्रणाली मे परिवतन आर्थिक विवरण मे जोडा जाने योग्य नवीन ऋण या विवरणात्मक स्मृति पत्र प्रस्तुत करने का भी अधिकार प्राप्त हुआ। आर्थिक विवरण कौसिल म प्रस्तुत होने से पूव एक समिति को सौंपा जाता था जिसमे आर्थिक सदस्य सभापति के रूप मे, आधे गैर सरकारी सदस्यो और आधे सरकार द्वारा नामित सदस्यो द्वारा बनती थी।

सामान्य जनहित के मामलो सबधी विवादो के लिए भी नियम बनाये गये। सदस्य इस सबध म प्रस्ताव पेश कर सकते थे, मत द सकते थे और विचार कर सकते थे। पर प्रेसीडेन्ट को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वह ऐसे प्रस्तावो का कुछ भाग या पूण प्रस्ताव ही बिना कोई कारण दिये अमान्य कर दे। सरकार भी ऐसे प्रस्तावो के पारित हो जाने के बावजूद, चाहे वे जनहित सबधी हों या आर्थिक विवरण सबधी, इन्हे स्वीकार करने को बाध्य नही थी।

ऐक्ट ने सदस्यो के ऊपर कुछ प्रतिबध भी लगाया जिसके अतगत उन्ह काम करना पडता था। उदाहरणाथ वे भारत सरकार के वैदेशिक सबधो और राजाओ से सबध पर विचार-विमश नही कर सकते थे। वे न्यायालय म चल रहे मामले पर भी विचार नही कर सकते थे और न वे अनधिकार किसी बात पर बहस कर सकते थे। इसी तरह वे राज्य रेलवे के व्यय पर, ब्याज व ऋण पर बहस नही कर सकते थे। राजस्व के कुछ मदो पर भी उन्ह बहस करने का अधिकार नही था।

ऐक्ट का महत्त्व

1909 का कौंसिल्स ऐक्ट कुछ मामलो मे 1892 के कौसिल्स एक्ट की तुलना मे सुधरा हुआ था। प्रातो मे गैर-सरकारी बहुमत का प्रारभ हो गया। वैसे तो नामित गैर-सरकारी सदस्यो के कारण, जो सरकार का ही पक्ष लेते थे, बहुत लाभ पूण तो नही सिद्ध हुआ, पर इससे गैर सरकारी सिद्धान्त को बल मिला और अब समय बहुत दूर नही था जब इसे सचमुच प्राप्त किया जा सकता था। चुनाव का सिद्धान्त भी सतह पर आ गया। और वैसे तो तमाम प्रतिबध लगाये गये और

उपरोक्त परिस्थितियो म सदस्य अपनी स्थिति को महसूस तो नही करा सके, पर उन्होने जनमत को सरकार के सामने रखने का अवसर पा लिया जबकि दूसरी ओर सरकार अपनी नीति इस भरोसे जोरदार ढग से रखने लगी कि यह जनता के बीच पहुच जायगी । इसके अतिरिक्त नवीन ऐक्ट ने नयी भावना का जागरण किया जिसके अतगत दो भारतीया, एक हिन्दू के०जी० गुप्ते तथा निजाम हैदराबाद के प्रमुख परामशदाता सय्यद हुसैन बिलग्रामी को सक्रेट्री आफ स्टेट मार्ले ने कौंसिल के लिए नियुक्त किया बगाल के एडवोकेट जनरल एस०पी० सिन्हा को वाइसराय की कायकारिणी कौंसिल का सदस्य नियुक्त किया गया, और इनके अधीन भारतीयो को अधिक अवसर प्राप्त होने की स्थिति पदा हुई । वाद विवाद अब खुले रूप म होने लगे पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार छोटी सफलता नही थी और न ही प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार कम महत्त्वपूण था । सदस्यो पर प्रतिबध भी लगाय गय, पर एस० आर० शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि जो सवैधानिक निरकुशता स्थापित कर दी गई थी वह "सवैधानिक तरीके से विरोध भी झेलने को बाध्य थी और इस चुनौती का उत्तर ढूढा जाना आवश्यक था । निरकुशता को तो हटना ही था ।"[1]

फिर भी ऐक्ट म कई स्पष्ट दोष थे । ऐक्ट का सबसे बडा दोष मुसलमाना के लिए साम्प्रदायिक प्रतिनिधिया का चुनाव था जो जवाहरलाल के मतानुसार, "उनके चारो ओर भारत से बाहर एक अलग करने वाला घेरा बना दिया गया और शताब्दियो से चली आ रही एकता और सम्मिश्रण की धारा को उलट दिया गया ।"[2] मुसलमाना की तथाकथित महत्ता को बढाने के लिए उनके अलग मताधिकार के द्वारा प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया जबकि पूरे राष्ट्र म सामा य मत दाताओ मे से उन्ह चुनकर आने का अवसर प्रदान किया जा सकता था । इतना ही नही अपनी तथाकथित साम्राज्य की सेवा के लिए उन्हे अपनी जनसख्या से अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया । पर खेल वही समाप्त नही हुआ । मुसलमानो के प्रति विशेष व्यवहार ने उन जाति के लोगो को खिन्न कर दिया जिनका यह कहना था कि उन्होने साम्राज्य की सेवा और अच्छे ढग से की है पर उन्ह ऐसा विशेषाधिकार नही प्रदान किया गया । सिखो ने इस अधिकार के लिए लडाई की और 1919 मे विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त कर लिया । सिखो के पक्ष मे निणय ने और सम्प्रदाय वालो को अपना विरोध और दढ करने का अवसर प्रदान किया । सभी यह महसूस करने लगे कि उनका हित दूसरे सम्प्रदाय के कारण मारा जा रहा है और इस कारण वह विशेष सुरक्षा की माग करने लगा । ब्राह्मण मद्रास मे चिल्ला

1 शर्मा एस० आर० कान्स्टीच्युशनल हिस्ट्री आफ इडिया, पृ० 281 ।
2 नेहरू ज० द डिस्कवरी आफ इडिया पृ० 295-96 ।

उठे, हरिजन, भारतीय ईसाई, यूरोपीय और आग्ल भारतीय फिर पीछे क्यो रहते। सदियो से सहेजी गई राष्ट्रीय एकता एक ही प्रहार से चकनाचूर कर दी गई और सभी चीजें बिखरने लगी। महात्मा गाधी ने कहा भी कि, "मिण्टो-मार्ले सुधारो ने हमे कही का नही रखा है।" इन सुधारो ने मुसलमानों के निम्न स्तर के जीवन से केन्द्रापसारी भावना को बाहर ला उपस्थित किया जिससे प्रगतिशील राष्ट्रवादी मुसलमान प्रतिनिधित्वहीन व्यक्तियो की खराब कोटि मे आ गये। इसके कारण मुसलमानो की बौद्धिक और राजनैतिक प्रगति एक ओर अपने-आप रुक गई, जबकि दूसरी ओर झगड़ो के और साम्प्रदायिकता के कटु बीज बो दिये गये जो बढ़कर अतत 1947 मे अलग से पाकिस्तान राज्य बनाने का एक कारण बन गये।[1]

इस ऐक्ट ने भारत मे ससदीय सरकार की स्थापना के लिए भी कुछ नहीं किया। मार्ले ने ससद मे स्पष्ट घोषणा की थी कि, "यदि मैं भारत मे ससदीय प्रणाली प्रारभ करने का प्रयास करता, तो मुझे अकेले इसके विषय मे करना ही क्या था यदि मेरा व्यक्तिगत या कार्यालयीय अस्तित्व 20 गुना भी बढ जाता तो भी ससदीय पद्धति मेरा मन्तव्य नही था जिसकी मैं आकाक्षा करता।"[2] यदि परिस्थितियो ने मार्ले की दृढता को झूठा सिद्ध किया तो यह उसका दोष नही था। उसकी धारणा स्पष्ट थी। राष्ट्रीयतावादी शक्तिया जो जन्म ले रही थी उनके लिए यह सतुष्टि का साधन नही था। उनका असतोष बढता ही गया।

ऐक्ट मे प्रतिनिधियो के लिए निर्धारित योग्यता भी असतोषपूर्ण थी। यह तो समझ मे आता था कि उन्हे अभ्यर्थी बनने मे रोक दिया गया जो अधिकारी थे, जिनका मस्तिष्क विकृत था, जो सरकारी नौकरी से हटा दिये गये थे और वे जो ब्रिटिश प्रजा नहीं थे अथवा जिनकी आयु 25 वर्ष से कम थी। पर यह समझ मे नही आता था कि बम्बई, मद्रास और बगाल मे प्रान्तीय प्रतिनिधि होने के लिए वही खडे हो सकते थे जो नगरपालिका या जिला बोर्ड के सदस्य हो। युनाइटेड प्राविन्सेज मे कौंसिल का चुनाव लडने के लिए जो योग्यताए थी वह अन्य प्रान्तो से भिन्न थी। सपत्ति का होना एक आवश्यक योग्यता थी जो किसी वर्ग जैसे जमीदार क्षेत्र से खडे होते थे उनकी योग्यताओ मे कुछ और योग्यता जुडी हुई थी। और सबसे खराब बात यह थी कि सरकार किसी को भी चुनाव लडने से रोक सकती थी और इस तरह वह किसी को भी राजनैतिक जीवन जीने मे बाधा पैदा कर सकती थी।

मताधिकार मे एकरूपता और विस्तृत दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया था। एक मुसलमान स्नातक जो पाच वर्ष पहले डिग्री पा चुका हो, मत दे सकता था,

1 बनर्जी ए० सी० पूर्वोद्धृत, पृ० 269 70।

2 देखें, कूपल्ड द इडियन कान्स्टीच्यूशनल प्राब्लम, पृ० 34।

जबकि एक गैर मुसलमान 25 वर्ष पहले भी यदि स्नातक हो चुका हो तो मत नही दे सकता था। पुन एक मुसलमान जो 3,000 रुपये का वार्षिक भू राजस्व या आयकर दे रहा हो, मत दे सकता था जबकि एक गैर मुसलमान चाह एक लाख रुपये का भी वार्षिक कर दे रहा हो मत नही दे सकता था। मताधिकार केवल सप्रदायों म ही अलग अलग तरह का नही था बल्कि एक ही सप्रदाय मे भी अलग-अलग तरह का था। उदाहरणार्थ मुस्लिम मतदाता की योग्यता प्रान्तो प्रान्तों म अलग-अलग थी। और जो प्रान्तीय कौंसिल के लिए मत देने के सक्षम था कोई जरूरी नही था कि वह इम्पीरियल कौंसिल के लिए मत देने की क्षमता रखता हो। इसी तरह मताधिकार भी वर्गों-वर्गों मे और एक ही वर्ग म भी अलग-अलग तरह का था। एक जमीदार जो एक प्रात मे मत देने का अधिकार रखता था कोई आवश्यक नही कि उसे दूसरे प्रात मे मत देने का अधिकार हो ही।

और फिर विशेषाधिकार वाले और सपन्न वर्ग के लोग ही मत दे सकते थे जबकि पढे लिखो को तो लगभग कोई भी प्रतिनिधित्व नही प्राप्त हुआ। मताधिकार की सकुचितता तो इससे स्पष्ट हो जाती है कि कभी-कभी एक क्षेत्र म मतदाताओ की सख्या 10 तक भी नही पहुच पाती थी। सब बडे चुनाव के क्षेत्र मे मतदाताओ की सपूर्ण सख्या 700 से अधिक की नही हो पाती थी। प्रातीय कौंसिलो मे गैर-सरकारी सदस्यो की पूर्ण सख्या जिन्ह केन्द्रीय लेजिस्लेचर के लिए 13 सदस्य चुनने थे, 200 से भी कम थी। मत कम होने के कारण प्रभावित किये जा सकते या खरीदे जा सकते थे जिसने चुनाव की प्रणाली को झूठा बना दिया था।

इस ऐक्ट ने तथाकथित प्रारभिक मतदाता और उसके द्वारा चुने गये प्रतिनिधि मे सबध स्थापना के लिए कुछ नही किया। जबकि तत्सबध मे माटेग्यु चेम्सफोर्ड (1918) रिपोर्ट को स्वीकृति प्रदान की गयी थी। एकाध व्यक्ति जो केन्द्रीय लेजिस्लेचर म आता वह कभी कभी प्राथमिक मतदाता को बहुत पीछे छोड देता। उदाहरण के लिए बम्बई, मद्रास और बगाल म गाव और कस्बा के करदाता जो प्रारभिक मतदाता थे स्थानीय बोर्डों और नगरपालिकाओ के सदस्यो का चुनाव करत थे। इन बोर्डों और नगरपालिकाओ के सदस्य प्रातीय कौंसिलो का चुनाव करते थे। और प्रातीय कौंसिलो के गैर सरकारी सदस्य इम्पीरियल लेजिस्लेचर का चुनाव करते थे।

यदि 1909 के ऐक्ट मे बहुत कुछ करना शेष रह गया था, तो इसके अतर्गत बनाये गये नियमो ने उसे भी छीन लिया था जो थोडा-बहुत ऐक्ट की कृपा स प्राप्त हुआ था। इन नियमो से सबधित एक प्रस्ताव म भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आपत्ति व्यक्त करते हुए प्रस्ताव पारित किये कि पजाब मे कौंसिल के सदस्यो की सख्या इतनी अपर्याप्त है कि विभिन्न वर्गो का वह प्रतिनिधित्व नही करती, कि कौंसिल मे चुना गया तत्त्व कम है, कि और स्थानो पर मुसलमानो को प्रदान

विशेष अल्पसंख्यक सुरक्षा यहां पर गैर मुसलमानों को नहीं प्रदान की गयी है, और यह कि यहां नियम इस ढंग से बनाये गये हैं कि यहां के गैर मुसलमानों के लिए केन्द्रीय लेजिस्लेचर हेतु दरवाजा बंद हो गया है। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने स्पष्ट-भाव से कहा भी था, कि इस तरह का नियम बनाकर "नौकरशाही हमसे इस बात का बदला ले रही है कि हमने छूट प्राप्त करने के लिए लड़ाई क्यों की ?"

कौंसिल के सदस्यों को जो कार्य और अधिकार सौंपे गये थे भी संतोषजनक नहीं थे। वे राजस्व और व्यय के कुछ मदों पर विचार नहीं कर सकते थे। उनके प्रस्ताव, चाहे वे जनहित हों या न हों, अस्वीकार किये जा सकते थे और यदि वे पारित भी हो जायें तो भी सरकार उन्हें अस्वीकार कर सकती थी। इस तरह सदस्यों को केवल बात करने का ही अधिकार प्राप्त हुआ। भारतीय संवैधानिक सुधार की रिपोर्ट में सच ही कहा गया, 'संसदीय परंपराओं का श्रीगणेश हो गया है और कौंसिल में उन्हें उस सीमा तक मान्यता दी जाती है जिस सीमा तक वे अत्यधिक अनबन पैदा करते हैं। पर इसे छोड़कर जिसपर उनकी इच्छा होती है वे उच्छा भी कर डालते हैं। इस समय भारत में हमारे पास न तो पुरानी पद्धति का उत्तम मौजूद है और न ही नये का। उत्तरदायित्व लोकप्रिय सरकार भी गंध है, पर वह गंध वर्तमान कौंसिल में बिल्कुल नहीं है।"

चुनाव और नामकरण को एक-दूसरे से ऐसे विभिन्न ढंग से मिला दिया गया था कि चुनाव से जो कुछ लाभ होने की संभावना रहती, नामकरण उसे अनुपयोगी बना देता। इम्पीरियल लेजिस्लेचर में गैर सरकारी सदस्य अल्पमत में थे, जबकि सरकारी बहुमत ऐसे दबाव में रहती थी कि सरकार को निरंकुश अधिकार प्राप्त हो जाते थे। ये सरकारी सदस्य न तो प्रश्न पूछ सकते थे और न सरकार के विरुद्ध मत दे सकते थे। वे अनुमति के बिना प्रस्ताव भी नहीं ला सकते थे और अनुमति के बिना भाषण भी नहीं दे सकते थे। वे गैर सरकारी सदस्यों के प्रत्येक प्रगतिशील कदम के विरुद्ध चट्टान की तरह अड़ जाते थे और उसे टुकड़े-टुकड़े हो जाने को बाध्य कर देते थे। इन परिस्थितियों में चुने गये सदस्य असहायावस्था में थे। इस तरह यदि गैर सरकारी सदस्य बढ़ भी जाते तो भी बेकार था।

प्रान्तीय लेजिस्लेचरों में जहां गैर सरकारी सदस्य बहुमत में थे, वहीं अच्छी स्थिति में नहीं थे। एस० आर० शर्मा ने लिखा है कि, "यूरोपीय चुने गये सदस्य सरकारी सदस्य की ही तरह थे। जमींदार और मुसलमान साम्राज्य सेवा के लिए बुलाये ही जाते थे जो अपने ही वर्ग के हित के विकास की धुन में रहते थे और इसके लिए उन्हें सरकार के प्रति और विश्वस्त होना पड़ता था।"[1] सभी गैर-

1 शर्मा, एस० आर० पूर्वोद्धृत पृ० 148 और आगे देखें कीथ ए० बी० स्पीचेज ऐण्ड डाकूमेन्ट्स आफ इण्डियन पालिसी भाग 1 एवं भाग 2।

सरकारी सदस्य चुन भी नही जाते थे। चाह यूरोपीय हा या भारतीय इनमे से कुछ को नामित भी किया जाता था जो अपने हितपी सरकार का समथन करते थे। इस तरह प्रान्ता म गैर सरकारी बहुमत वैस ही बेकार था जस केन्द्र म गैर सरकारी अल्पमत।

प्रान्तो पर केन्द्र की पकड़ पहले जसी ही बनी रही। प्रान्तो के आर्थिक अधिकार अमहत्वपूण थे और प्रान्त किसी कायपालिका शक्ति से युक्त नही थे। मसालदान ने लिखा है कि "सक्षेप म केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय विधायिका को उनके स्थानीय बिलो पर गवनर जनरल के हस्ताक्षर के द्वारा और प्रान्तीय प्रशासन को उनके प्रस्तावो सबधी सूचना मागकर एव वहा के कमचारियो पर पूण नियत्रण के द्वारा अपने हाथ म बाधे हुए थे। इस तरह केन्द्र के सरकार की महत्ता यथावत बनी हुई थी।"[1] स्थानीय सगठना को सुधारने के लिए भी कुछ नही किया गया जो पूववत सरकारीकृत बनी रहीं। इक्जीक्युटिव कासिलो मे भारतीयो को स्वतत्र प्रवश नहीं प्राप्त था और उनके प्रति यह भेदभाव यथावत चलता रहा।

पर जब यह सब कहा गया है तो अत मे यह कहे बिना भी नही रहा जा सकता कि कई अर्थों म यह एक्ट 1892 के ऐक्ट से सुधरा हुआ था। पर कुछ मामला म, उदाहरणाथ साम्प्रदायवादी चुनाव के मामले को प्रारभ करने म, यह अत्यधिक बुरा था। इसकी सबसे अच्छाई यह थी कि इसन भारतीयो मे असतोष और खिन्नता म वृद्धि की। और जसाकि डा० ए० बी० कीथ न लिखा है कि, "इसने स्वशासन के सबध मे शोर मचान म सफलता नही प्राप्त की।"[2]

सम्प्रदायवाद एव मुस्लिम लीग

मुस्लिम सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहन और भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के विरुद्ध मुस्लिम लीग के सगठन मे सहायता, मिंटो के तीसरी सामरिक नीति थी। मुस्लिम सम्प्रदायवाद का प्रारभिक इतिहास जिसने मिंटो के काल म मुस्लिम लीग की रचना मे सहायता की, विवेचन यहा समीचीन होगा।

"पूरी 19वी सदी म मुसलमान हिन्दुओ से पिछडते गये थे। ये वे ही थे जिनके हाथ से भारत का राज्य छिनकर ब्रिटिशो के हाथ मे पहुच गया था। प्रशासन को विश्वास था कि विद्रोह उन्होने ही कराया। ऐसी परिस्थिति मे वे खीझ गये थे और पीछे हट गये थे। वे अपनी फारसी सस्कृति से लिपट गये जबकि हिन्दुओ न ब्रिटिश

1 मसालदान पी० एन० इवोल्यूशन आफ प्राविंसियल आटोनामी इन इडिया (1953), प० 13।
2 कीथ ए० बी० कास्टीच्यूशनल हिस्ट्री आफ इडिया प० 232।

शिक्षा का लाभ उठाया इस तरह दो सम्प्रदायो की प्रतियोगिता मे उन्हें सबसे कम प्राप्त हुआ।"[1]

सर जार्ज स्कस्टर और ग्रे विट के उपरोक्त शब्द यदि मुसलमानो के लिए सदी के अतिम 25 वर्षों के लिए सही न भी हो, तो भी 19वी सदी म मुसलमानो की स्थिति का इससे कुछ अदाज मिलता है। मुसलमाना के मनहूसियत का कारण और उनके प्रति ब्रिटिश भेदभाव स्पष्ट है। जब ब्रिटिशो न मुसलमाना के शासन को अपने हाथ म ल लिया, ता हिन्दुआ के लिए इससे कोई विशेष अतर नहीं पडा बल्कि इससे उन्हें लाभ ही हुआ क्योकि ब्रिटिश शासन मुसलमाना स कम कट्टर और अधिक अनुशासनपूर्ण था। जबकि मुसलमाना के लिए दूसरी ओर यह उनके जीवन रुधिर की ही हानि थी। इसलिए उनस कोई विश्वस्तता प्राप्ति की न तो आशा थी और न उनमे विश्वास हो किया जा सकता था। मोहम्मद नामन ने लिखा है कि ब्रिटिशा के लिए ऐसी परिस्थिति मे एक ही रास्ता था कि वे "मुसलमान को दबा दे और इसीलिए उन्होने जान बूझकर ऐसी नीति अपनायी जिससे मुसलमानों का आर्थिक विनाश हो तथा बौद्धिक दृष्टि से वे पिछड जाय और उनका सामा म पतन हो।"

1793 म लार्ड कार्नवालिस के स्थायी बदोबस्त ने प्रथम महत्वपूर्ण अतर प्रस्तुत किया। पहले जो हिन्दू अमहत्त्वपूर्ण पद ही प्राप्त करते थे उन्हे जमीदार की स्थिति म पहुचा दिया गया। वे इस तरह ब्रिटिशा की ओर आकृष्ट किय गय और धन एकत्रित किया जो दूसरी स्थिति म मुसलमाना के पास ही चला जाता। इसके कारण वे ब्रिटिशा के प्रति यदि खुलेआम विरोधी नही तो रुष्ट हो गय और उनस डरन भी लग।

ईस्ट इडिया कम्पनी की सेवाओ म वे इसलिए पसद नहीं किय जात थे क्योकि उनके सम्प्रदाय का अविश्वास और सदेह की दृष्टि स देखा जाता था। सैनिक सेवा जिस पर मुसलमाना का ही अधिकार रहा करता था अब उसम उनका बहुत सूक्ष्म हिस्सा था। साधारण पेशा म भी मुस्लिम स्थिति ईर्ष्या की बात नहीं थी। उदाहरण के लिए 1852 से 1862 के बीच हाई कोर्ट मे 240 वकीलो म से मुसलमान एक ही था।[3]

अब भी भूतकालीन गौरव की कल्पना करते हुए जब व शासक रह थे व सबकी बराबरी म आना स्वीकार नहीं करते थ। अपनी संस्कृति और साहित्य के प्रति गौरव की भावना से ग्रस्त वे ब्रिटिशो द्वारा प्रदत्त शिक्षा का लाभ उठाने को

1 स्कस्टर एण्ड विट इडिया एण्ड डिमोक्रेसी प० 101।
2 देखें मोहम्मद नामन द मुस्लिम इडिया।
3 हन्टर डब्ल्यू० डब्लू० द इडियन मुसलमान्स प० 165 68।

तैयार नहीं थे। पर चूंकि उनके पास पर्याप्त साधन नहीं थे इस कारण उनकी पढाई का विकास रुक गया। उनके मध्य कोई कला भी नहीं पनप पायी। इस तरह वे अज्ञानता और पिछडेपन की ओर खिसकते गये। शासन करने वालों के साथ इनका सम्बन्ध अविकसित ही रह गया जिससे उनकी ओर ध्यान नहीं दिया गया।

धीरे धीरे मुसलमान नाराज और असंतुष्ट हो गये। उनके पतन के लिए ब्रिटिश ही उत्तरदायी थे जिसके कारण धीरे धीरे उनके शासन के विरुद्ध आवाज उठने लगी और कुछ दिनों में खुलकर सामने आ गई। वहाबी आन्दोलन आयोजित हुआ जो उद्देश्य में धार्मिक होने के बावजूद मुसलमानों के पिछडेपन की बात करने लगा और ब्रिटिशों के भेदभाव की नीति की ओर भी इन्होंने इंगित किया। यह आन्दोलन अरब में 18वीं सदी में प्रारम्भ हुआ और भारत में इसे सैय्यद अहमद बरेलवी लाये। यह आन्दोलन विदेशी सत्ता के प्रति नफरत सिखाता था। और जैसा कि रामगोपाल ने लिखा है कि भारत में इसीलिए स्वाभाविक रूप से प्रत्येक जिले में एक संगठन तैयार हो गया जो ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह की शिक्षा ही दिया करता था।"[1] और इस कारवाई से ब्रिटिश भला कहां इस सम्प्रदाय के पक्ष में कोई कारवाई कर सकते थे।

मुस्लिम असंतोष बढता गया और इसका प्रदर्शन इन्होंने अच्छे ढंग से 1857 में किया जिसमें इन्होंने प्रमुख भूमिका अदा की। इसी कारण जब विद्रोह दबा दिया गया तो ब्रिटिशों के बदले की भावना की मार इन्हीं पर सबसे अधिक पडी। इन पर मुकदमा चलाया गया और इन्हें कत्ल किया गया जिससे खाई और बढती गई। 1864 से 1871 के बीच चार महत्त्वपूर्ण मुकदमे चलाये गये जिसमें दर्जनों मुसलमान दंडित किये गये। 1871 के मुकदमे के समय मुसलमान इतने अधिक क्रुद्ध हो गये कि उनमें से एक ने बंगाल के मुख्य न्यायाधीश जान-पैक्सटन नामन को चाकू के प्रहार से मार डाला क्योंकि वह वहाबियों को कठोर दंड सुना रहा था। और इसके थोडे ही दिनों बाद शेरअली द्वारा अंडमान द्वीप में लार्ड मेयो की हत्या कर दी गई। यह भी एक वहाबी मुसलमान बताया जाता था।

विश्वस्तता और सम्प्रदायवाद—पर जब मुसलमानों की कटुता ब्रिटिशों के विरुद्ध पराकाष्ठा को पहुंच गई तो एकाएक कुछ ऐसी शक्तियां सामने आ गईं जिन्होंने पूर्णतया पुरानी धारा और स्थिति में परिवर्तन ला दिया। अपनी पुस्तक 'द मुसलमान्स' में जो 1871 में प्रकाशित हुई सर विलियम हंटर ने यह परामर्श दिया कि मुसलमान इतने कमजोर हो गये हैं कि वे विद्रोह ही नहीं कर

1 रामगोपाल इंडियन मुस्लिम्स (1858 1947), पृ० 24।

सकते और इसलिए उचित यह होगा कि "उनसे बराबर विरोध करने के स्थान पर अब उन्हें अपनी ओर मिलाया भी जाय।" लार्ड मेयो को भी स्थिति की जानकारी हो गई थी। वैसे तो उसकी हत्या एक मुसलमान ने की पर यह वही व्यक्ति था जिसने मुस्लिम विश्वस्तता की आधारशिला अपनी कूटनीति के माध्यम से रखी।

1863 में कलकत्ता में अब्दुल लतीफ ने 'मुहम्मडन लिटरैरी सोसाइटी' की स्थापना की और ब्रिटिशों के प्रति विश्वस्तता की शिक्षा दी। उन्होंने वहाबियों का विरोध किया। ब्रिटिशों के प्रति मुस्लिम विश्वस्तता को शक्ति उनके हिन्दुओं से विरोध के कारण भी मिल जाती थी। इसे ब्रिटिश उकसाते भी थे। "उत्तरी भारत में 19वीं सदी के सातवें दशक में यह विवाद उठा कि कचहरी की भाषा उर्दू रखी जाय या हिन्दी। बंगाल में इस विवाद ने दूसरा रूप ग्रहण कर लिया। मुस्लिम नेताओं ने यह माँग की कि बंगाली भाषा को मुस्लिम छात्रों के लिए उचित बनाने के लिए इसमें संस्कृत के स्थान पर फारसी शब्दों को स्थान प्रदान किया जाय।"[1]

1871 में बंगाल सरकार की सेवा में 2,141 लोगों में से 711 हिन्दू थे और 92 मुसलमान और शेष सब यूरोपीय। यहाँ पर मुसलमानों ने ब्रिटिशों से शत्रुता मोल लेकर अपनी आर्थिक हानि ही की थी। समस्या का उत्तम हल यह था कि ब्रिटिशों से शान्तिपूर्वक ढंग से अपने सम्बन्ध ठीक किए जायँ। मुसलमान नेताओं ने इसकी अनुभूति की और 1883 में मोहमम्डन सिविल सर्विस एशोसियेशन इस उद्देश्य के लिए बनाया गया। ब्रिटिशों ने इस परिवर्तन का स्वागत किया और जुलाई 1885 में जब अमीर अली ने अधिकारियों को एक स्मृति पत्र भेंट किया तो भारत सरकार ने उनके पक्ष में एक प्रस्ताव पारित किया। बस समस्या का हल अब भी ठीक से नहीं हुआ।

नये नेताओं का आगमन हुआ जिन्होंने आंग्ल मुस्लिम मधुर सम्बन्ध का पक्ष लिया और इनमें से सर सैयद अहमद खाँ हमारे लिए विशेष महत्त्व के हैं। प्रारम्भ में एक राष्ट्रवादी और हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रेमी जो दोनों सम्प्रदायों को 'सुन्दर भारतीय दुल्हन की दो आँखें" बताते थे अब ब्रिटिशों के विश्वासपात्र हो गए। विद्रोह में उन्होंने ब्रिटिशों की सहायता की और इनाम में 200 रु० माह की वृत्ति प्राप्त की और अन्य आदर अलग से। उत्तर पश्चिम प्रान्तों के लेफ्टीनेंट गवर्नर ने उनके बारे में कहा "1857 में किसी व्यक्ति ने इतने उत्तम व्यवहार, साहस और विश्वस्तता का प्रमाण नहीं दिया जितना इन्होंने। हमारे पास शब्द नहीं हैं कि मैं उनकी भक्ति भाव का विवरण भी दे सकूँ।"

1 रामगोपाल पूर्वोद्धृत पृ० 30।

ब्रिटिश के प्रति सर सैयद के विश्वस्तता की कोई सीमा नहीं थी। उन्होंने तो यहा तक घोषणा कर दी कि विद्रोह का कारण यह था कि सेना म हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग नहीं रखे गए थे। उन्होंने बताया कि यदि हिन्दुओ क रेजीमेन्ट अलग और मुसलमानो के अलग रखे गए होते तो यह भाई चारे की भावना न पैदा होती।"[1] उसके परामर्श को सचमुच सधन्यवाद प्राप्त किया गया।

1864 म सर सैयद ने एक 'ट्रासलेशन सोसाइटी' का सगठन बनाया जिसे बाद म 'अलीगढ साइन्टिफिक सोसाइटी' का नाम दे दिया गया। इसके माध्यम से धीरे धीरे उन्होंने ब्रिटिशो के प्रति मुस्लिम विश्वस्तता को दृढ बनाया। उन्होंने दिल्ली म एक मुस्लिम स्कूल खोला जो जल्दी ही एक कालेज हो गया जिसका घोषित उद्देश्य था "ब्रिटिश ताज के योग्य मुस्लिम प्रजा को बनाना।"

इस बीच हिन्दुओ से भी उनका सम्बन्ध चलता रहा और अलीगढ कॉलेज की स्थापना और विकास मे हिन्दू राजाओ ने धन की उदार सहायता प्रदान की। उन्होंने अपने को सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के इण्डियन एशोसिएशन' से 1877 म जोडा जिसमे यह माग उठाई गई थी कि भारतीय को भी आई० सी० एस० म बैठने की अनुमति दी जाय। रामगोपाल ने लिखा है कि "जब अलीगढ मुस्लिम कालेज का जन्म हुआ उस समय भारतीय राष्ट्रवाद धीरे धीरे बगाल और महाराष्ट्र म प्रस्फुटित होने लगा था। सर सैयद की बातो से यह आशा बधती थी कि उनमे राष्ट्रवाद का एक अच्छा नेता प्राप्त हो सकता है।"[2]

पर बहुत दिन नही बीते कि सारी आशाय झूठी पड गईं और उनमे इतना गहन परिवर्तन आ गया कि जब अखिल भारतीय सम्मेलन सगठित किया गया तो उन्होंने इसके विषय मे कहा, 'बिना अस्त्र के एक असैनिक युद्ध।' 1888 म बनारस के राजा शिव प्रसाद से मिलकर इन्होंने एक 'पैट्रियाटिक एशोसिएशन' बनाया जिसका उद्देश्य काग्रेस का बिल्कुल विलोम था। उन्हे यह तीव्र भय हो गया कि कही हिन्दू मुसलमानो के आर्थिक और राजनैतिक रूप से उनके नेता न हो जाय। इस मामले मे अलीगढ मे मुस्लिम ऐंग्लो ओरियन्टल कॉलेज के प्रिंसिपल बेक ने भी उसके सदेह मे वृद्धि की। और इस तरह उसमे एक नया राष्ट्र विरोधी और हिन्दू विरोधी विचारधारा का काल सर सैयद ने प्रारम्भ किया जो 1898 म उनके मृत्यु काल तक चलता रहा। इसने मुस्लिम सम्प्रदायवाद के विकास में बडी सहायता की।

यहा स्थान पाने योग्य एक अन्य मुस्लिम नेता अमीर अली थे जिन्होंने भी

---

1 ग्राहम लाइफ ऐण्ड वर्क्स आफ सर सयद अहमद पृ० 54 55।

2 रामगोपाल पर्वोद्धत पृ० 47 48।

प्रारम्भ म "राष्ट्रीयतावादी राजनीति की ओर झुकाव दिखाया, पर बाद मे उन्होंने पूणतया मुस्लिम हितो के काय मे ही जुट गये।"[1] इस मामले मे अलीगढ के मुस्लिम कॉलेज के प्रिंसिपल बेक न भी कम महत्त्व की भूमिका नही अदा की। उसने मुसलमानो को ब्रिटिश पक्ष मे लाने के लिए कुछ नही छोडा। उसन घोषणा की कि मुसलमानो का मोक्ष ब्रिटियो के साथ मैत्री मे ही निहित है। प्रारम्भ म मुसलमानो ने उस पर विश्वास न करके उसका विरोध किया। पर जल्दी ही वह उन्ह प्रभावित करने म सफल हो गया। 1899 म ब्रैडला ने जब ससद म भारत के लिए प्रतिनिधि सस्थाओ की रचना के विषय मे एक बिल पेश किया तो बेक ने मुसलमानो को सगठित करके उनसे एक स्मृति पत्र भिजवाया कि चूकि भारत एक राष्ट्र नही है इसलिए प्रजातात्रिक सस्थाये इसक लिए उपयोगी नही होगी।

1893 मे जब मोहम्मडन डिफेंस एशोसिएशन की स्थापना सर सैयद अहमद ने की तो बेक को सचिवो म स एक सचिव का स्थान प्रदान किया गया। इसके उद्देश्यो मे से एक यह था कि यह एसे कार्यों का समथन करेगा जो भारत म ब्रिटिश शासन को शक्तिशाली करगा राजनतिक आदोलन से मुसलमानो को दूर रखेगा सरकार को शान्ति स्थापना मे सहायता करगा और मुसलमानो मे एक विश्वस्तता का भाव पैदा करेगा।

सर सय्यद और बेक एक-दूसर के पूरक थ। सर सैय्यद की तरह बेक ने भी खुलेआम काग्रेस के विरुद्ध घोषणा की कि 'मुसलमानो को उनकी मागो से कोई सहानुभूति नही है। यह मुसलमानो और ब्रिटिशो के लिए आवश्यक है कि वे एक हो जाय जिससे वे इन आन्दोलनकारियो से निबट सकें और प्रजातन्त्रीय सरकार की स्थापना के प्रयास को जो देश की आवश्यकताओ के अनुरूप नही है, रोक सकें। बेक भी मुसलमानो के पक्ष म साम्प्रदायिक कार्यों मे अपन मत्यु पयन्त 1899 तक लगा रहा।

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग—इन सभी बातो ने मुसलमानो को दो भागो म बाट दिया, एक वह जो काग्रेस का विरोध करता था और दूसरा जो इसका समथन करता था। इसम एक ओर सर सय्यद जैसे लोग थे जिन्होने 188? म म अलीगढ मोहम्मडन एजूकेशनल काग्रेस' को जन्म दिया और काग्रेस का जमकर विरोध किया। इसके विपरीत दूसरी ओर लखनऊ के नवाब अली रजा खा जसे व्यक्ति थे जिन्होने काग्रेस सभा म 1886 म उसी वष उदू म बोलत हुए घोषणा की कि, "हिन्दू या मुसलमान, पारसी या सिख, हम लोग सब अब एक हैं।'

1887 के काग्रेस सम्मेलन के प्रेसीडेन्ट बदरुद्दीन तैय्यबजी न सर सैय्यद का

1 रामगोपाल पूर्वोद्धत पृ० 49।

अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की पर सफल नहीं हुए। 1888 में सर सय्यद ने युनाइटेड इंडियन पेट्रियाटिक एसोसिएशन स्थापित करने की चेष्टा की जिसमें कांग्रेस विरोधी सभी मनुष्यों को प्रवेश दिलाया जाता था। बेक को इसका आनरेरी सेक्रेट्री बनाया गया और इस एसोसिएशन में हिन्दू अभिजातवर्गियों और जमींदारों का एक केन्द्र हो गया।

पर इसके बावजूद कांग्रेस मुसलमानों में लोकप्रिय होती गई। इसका तीसरा सम्मेलन बदरुद्दीन तैय्यबजी की अध्यक्षता में हुआ। कांग्रेस के प्रथम सम्मेलन में कम ही मुसलमानों का आगमन हुआ था। दूसरे सम्मेलन में 131 सदस्यों में से 34 मुसलमान थे। 1889 में 1889 सदस्यों में से 258 मुसलमान थे। और लखनऊ में 1899 के सम्मेलन में कुप्रचार के बावजूद यह संख्या 789 में 370 थी। पर सरकार ने मुसलमानों के सम्बन्ध में पारित प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया।

मुसलमानों में साम्प्रदायिक तत्त्वों की कारवाई सर सैय्यद और बेक के बाद भी जारी रही। बेक के जगह पर थियडोर मारिसन आया जिसने बेक से कम महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं अदा की। सरकार ने भी हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव बढ़ाने में कोई कोर-कसर बाकी न रखी। कर्जन ने इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उदाहरण के लिए बंगाल का उसका विभाजन, जो कहा गया प्रशासन की सुविधा के लिए किया जा रहा है पर इसका उद्देश्य मुस्लिम बहुल प्रान्त का निर्माण करना था और राष्ट्रवादी भावना के विकास को अवरुद्ध करना था। राष्ट्रीयता आन्दोलन के विरोध में इस प्रान्त की रचना के उपरान्त उसके अनुत्तरदायी वक्तव्यों में जिसमें मुसलमानों को राज्य द्वारा पक्ष लिया जाने वाला बच्चों का नाम दिया गया, मुसलमानों में दुराग्रह को बढ़ा दिया। और जब हिन्दुओं और कांग्रेस ने इसका विरोध किया तो मुसलमानों को कष्ट का अनुभव हुआ और इससे मुस्लिम साम्प्रदायिक शक्ति को आगे बढ़ने का अवसर मिला।

इन्हीं परिस्थितियों में मिण्टो का आगमन हुआ और उसे यह देखने में कठिनाई नहीं हुई कि ब्रिटिश हित किसमें है। 1906 में जब और सवैधानिक छूटों की योजना बन रही थी, उसी समय अलीगढ़ कालेज के थियडोर मारिसन नामक प्रिंसिपल के उत्तराधिकारी प्रिंसिपल आर्चीबोल्ड ने गुप्त रूप से मुसलमानों को गवर्नर जनरल से एक प्रतिनिधि मंडल लेकर मिलने और अलग से मुस्लिम एलेक्टोरेट की मांग करने को कहा। उसने नवाब मोहसिनुलमुल्क को लिखा, 'वाइसराय के व्यक्तिगत सचिव ने मुझे सूचित किया है कि वह मुस्लिम शिष्ट मंडल से भेंट करने को तैयार है।' इसने [illegible] गवर्नर जनरल के पास एक लिखित मांग प्रस्तुत की जानी चाहिए जिसमें यह दिया गया हो कि [illegible] यह परामर्श है कि हम अपनी [illegible] के प्रति सबसे पहले आश्वस्त

स्वशासन के क्षेत्र म सरकार के लिये गये निर्णय का स्वागत करना चाहिए । पर हमे अपन इस मत की जानकारी भी दे देनी चाहिए कि चुनाव का सिद्धान्त यदि प्रारम्भ किया गया तो इसस अल्प सख्यक मुसलमाना का अहित होगा। यह सादर परामश दिया जाना चाहिए कि ऐसी स्थिति मे मुस्लिम मत के लिए नाम करण या धम के आधार पर प्रतिनिधित्व का प्रारम्भ किया जाना चाहिए हम यह भी कहना चाहिए कि जमीदारा के ऊपर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। पर इस सब विचारो मे मुझे पष्ठिभूमि म ही रख मैं आपके लिए विवरण तयार कर सकता हू या उसे परिवद्धित कर सकता हू।"

और इस सम्बध म मौलाना आजाद ने लिखा है, "मैं उस तथ्य का जीता-जागता गवाह हू कि जन-आदोलन के फलस्वरूप जब 1906 मे कुछ सुधार स्वीकृत होने वाले थे तो भूतपूव नवाब मोहसिनुल मुल्क को तार से शिमला बुलाया गया साक्षात्कार क। परिणाम यह हुआ कि आगाखा जो युरोप जा रहे थे उन्हें अदन से ही वापस आना पडा । इसके बाद सय्यद बिलग्रामी ने एक माग-पत्र तैयार किया " इस तरह कहा तो यह जाता है कि य मांगें मुसलमानो ने रखी पर इस काय को हाथ मे लिया था अग्रेजा ने । मिण्टो ने इसे केवल स्वीकृत ही नही किया बल्कि अपनी ओर से यह कहा कि सरकार तो ये मांगें स्वय ही मानने वाली थी। वाइसराय की ओर स इस तरह की बात करना उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल नही था।

इस तरह शेष काय तो औपचारिक था। आगाखा के नेतृत्व मे एक शिष्ट मडल वायसराय से मिला । उसके समक्ष मांगें प्रस्तुत की गई जिसके उत्तर मे उसने कहा "मेरी समझ से आपकी मागो का सार कि किसी भी तरह की प्रतिनिधित्व प्रणाली म जिसम चुनाव-पद्धति को बढाने या प्रारम्भ करने का प्रस्ताव हो, उसमे मुस्लिम सम्प्रदाय को एक सम्प्रदाय माना जाये और आपकी यह माग उचित ही है कि आपके अधिकार को सख्या शक्ति के आधार पर ही न आका जाए बल्कि आपके सम्प्रदाय के राजनैतिक महत्ता और साम्राज्य सेवा को ध्यान मे रखकर किया जाए। मैं पूणतया आपके पक्ष मे हू।'

ब्रिटिश षडयन्त्र स्पष्ट है। मिण्टो ने उपरोक्त कारवाई के फलस्वरूप एक ब्रिटिश अधिकारी ने उसकी पत्नी लेडी मिण्टो को लिखा, आज एक बहुत बडी बात हो गई है यह 6 करोड 20 लाख लोगो के षडयन्त्रकारी विरोध मे सम्मिलित होने से हाथ खीचने से कम नही है'। लाड मिण्टो ने स्वय अपनी पत्नी स बातचीत के दौरान कहा कि यह दिन 'भारतीय इतिहास म एक महत्त्वपूण दिन है।"

इसके बाद लाड मिटो ने उदार सक्रेट्री आफ स्टेट मार्ले पर उसके विरोधी दृष्टिकोण के बावजूद आने वाले सुधारो म साम्प्रायदिक एलेक्टोरेट की स्थापना

के लिए कहा। मार्ले को इसे स्वीकार करना पड़ा, वैसे बाद मे वह बहुत पछताया और इस सम्बंध मे उसने मिन्टो को दिसम्बर 1909 मे लिखा भी, "अब किसी मुस्लिम विवाद म मैं आपकी बात नही मानूगा यह आपके मुसलमानो को अतिरिक्त लाभ दिये जाने के समथन म भाषण दने के कारण सभव हुआ। मैं अब अनुभव करता हू कि मेरा ही निणय सबसे उत्तम था।"[1]

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग—जब मुस्लिम अभिजातवर्गियो का शिष्ट-मडल शिमला से वापस लौटा इसके सभी सदस्य एक-एक पूर्णतया राजनीतिज्ञ हो गय। ढाका के नवाब सलीमुल्ला खा ने तुरन्त मुसलमानो के लिए एक सगठन का प्रस्ताव किया। और इस तरह 30 दिसम्बर 1906 को ये मुस्लिम नेता ढाका मे एकत्रित हुए और मुस्लिम लीग की स्थापना की।

इस दल के उद्देश्यो की तुरन्त घोषणा नही की गई जिससे यह स्पष्ट होता है कि इसके निरकुश सस्थापक इस सम्बंध म अभी कुछ समझ नहीं पा रहे थे। ये चीजे बाद मे ही सामने आइ और वह भी एक साथ नही। इस तरह से निम्नलिखित सिद्धान्त सामने आये (1) जब भी सभव हो सरकार द्वारा बनाय गय नियमो का समथन किया जाये, (2) "अपने सहधर्मियो के अखिल भारतीय" हितो की रक्षा की जाए और उसे आगे बढ़ाया जाय, (3) तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बढ़ते प्रभाव को जिसका झुकाव भारत मे ब्रिटिश शासन को गलत अथ देना और समाप्त करना है' रोका जाय (4) शिक्षाक्षेत्र म युवा मुसलमानो के लिए अच्छे जीवन का क्षेत्र तैयार किया जाए जो ऐसी एक सस्था के अभाव मे कांग्रेस म जा मिला है।" (5) ब्रिटिश के प्रति मुस्लिम विश्वस्तता को और बढ़ाया जाय, (6) मुस्लिम अधिकारो की रक्षा के लिए तत्सम्बंध म विचार मुलायम भाषा मे सरकार के सामने प्रस्तुत किय जाय, (7) कि उपरोक्त सिद्धान्त का पालन करत हुए मुसलमानो और गैर-मुसलमानो के बीच दोस्ताना भाव पैदा किया जाए। स्पष्ट है कि भेद भाव का जो बीज पहले ही बोया जा चुका था इसकी इतनी गहनता से रक्षा की गई थी कि उसे तो बढ़ना और फलीभूत होना ही था। मुस्लिम सम्प्रदायवाद को एक निश्चित आकार प्राप्त हो गया और इसम आगाखा ने बडी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

मुस्लिम लीग के सस्थापको की सबसे पहली सफलता, जिसके लिए 1906 म ही वादा कर दिया गया था, गवनमट ऑफ इडिया ऐक्ट 1909 म साम्प्रदायिक एलेक्टोरेट की व्यवस्था थी। यह ऐक्ट वैध एव सवैधानिक विकास

---

1 देखें मिण्टो लेडी (मेरी काउन्टेस आफ) इण्डिया एण्ड मार्ले, पृ० 47-48 123 दास एम० एन० पूर्वोक्त, पृ० 147 [illegible] बसो एम०आर० पृ० 5[illegible] 88 आजाद मौलाना, ए० के० इडिया विन्स फ्रीडम (कलकत्ता 1959)

का कदम था पर यह साथ ही राष्टवादियों के लिए एक आघात भी था। इसने सम्प्रदायों को विभाजित किया इसने छोटे स्तर से मुसलमानों के द्राणसारी भाव को ऊपर ला दिया और प्रगतिशील राष्ट्रवादी मुसलमानों को एक व्यक्ति के के दायरे में सीमित कर दिया। के० एम० मुंशी ने लिखा कि आगे बढ़ते प्रजा तत्र की पीठ में छुरा भोंक दिया गया है और जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, "मुसलमानों के चारों ओर एक दीवार खींच दी गई जिससे वे शेष भारत से कट गये और इस तरह सदियों से चली आ रही एकता और मिली जुली शक्ति का काम उलट दिया गया। महात्मा गांधी ने ठीक ही कहा था कि "मिण्टो-मार्ले सुधारों ने हमारा बड़ा अहित किया है।'

भारतीय राज्यों से सम्बन्ध

अपनी समरनीति में लार्ड मिण्टो ने यह भी चाहा था कि भारतीय राजाओं की एक तीसरी शक्ति खड़ी की जाए जो इण्डियन नेशनल कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के विरोध में खड़े हों। हम 1858 के बाद भारतीय राज्यों में ब्रिटिश सम्बन्धों की परीक्षा करना चाहेंगे और यह देखना चाहेंगे कि मिण्टो ने यह कार्य कैसे किया।

एच० एच० डाडवेल ने लिखा है कि '1858 के प्रारम्भ होने पर स्थिति पूर्णतया स्पष्ट थी, प्राप्त सूचनायें अधूरी थीं और तत्कालीन संधियां या तो संधि अधिकारों के आधार पर दिये गये तर्कों पर नैतिक आधार पर खरी नहीं उतरती थीं या यह बताया जाता था कि सम्बन्ध वैसे ही अंतराष्ट्रीय होने चाहिए थे जैसे स्वतन्त्र युरोपीय राज्यों में आपस में।' लेखक आगे लिखता है कि 600 छोटे बड़े राज्यों में से जिनके साथ सरकार का असली सम्बन्ध था इन स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया था।" पर 'शेष आठ के साथ कम्पनी के सम्बन्ध संधियों के आधार पर बताये गये थे। पर इन कागजों के विषय वस्तु में एकरूपता नहीं थी।[1]

एक तरह की संधियां वे थीं जो बड़ौदा मैसूर और अवध से की गई थीं। इनमें कंपनी को राज्य के वैदेशिक मामलों पर पूर्ण नियन्त्रण मिला हुआ था और साथ ही राज्य के आंतरिक मामलों में विस्तृत हस्तक्षेप का अवसर भी था। दूसरे कोटि की संधियां राजपूत राज्यों से की गई थीं जहां कंपनी को वैदेशिक मामलों में पूर्ण अधिकार प्राप्त था, यहां तक कि युद्धकाल में वहां की सारी आय को भी ले सकती थी, पर उसके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप का उसे अधिकार नहीं था, और तीसरे तरह की संधि निजाम हैदराबाद से की गई थी जहां प्रारम्भ में सम्बन्ध

---

1 कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया भाग 6, पृ० 489।

बराबरी से प्रारम्भ हुए थे, पर धीरे धीरे उसे छोटे स्तर पर ला दिया गया था। उसे वैदेशिक नीति के नियन्त्रण के बदले सैनिक रक्षा स्वीकार करनी पडी, और आवश्यकता पडने पर कपनी की सेना स सहायता का भी तयार होना पडा।

राज्यो की इस तरह की अस्पष्ट स्थिति थी जब ब्रिटिश भारत का शासन ताज के हाथो म चला गया। पर अपन असतोष के बावजूद राजाओ ने विद्रोह काल मे ब्रिटिशो की बडी सहायता की थी और इनके विषय म कहा गया था कि इन्होने 'तूफान मे उफनत पानी की धारा मोड दी थी अन्यथा ब्रिटिश उस धारा मे बह गये होते।" इसी कारण ब्रिटिशो न उनकी ओर विशेष ध्यान दिया। महारानी ने अपनी घोषणा म इसीलिए स्पष्ट किया 'हम अपन क्षेत्रीय अधिकार म वृद्धि नही चाहते। तत्कालीन समझौता म हस्तक्षेप न करने का निश्चय किया गया। पर "स्थिति की स्पष्टता' को ठीक करने का प्रयास नही किया गया, और अधिक पचीदगियो से बचा गया सभी सधियो को पहले 1858 के गवनमेट ऑफ इण्डिया ऐक्ट म और फिर महारानी की घोषणा मे स्वीकृति प्रदान की गई।

यह भी घोषणा की गई कि किसी भी राज्य के साथ राज्य हडपने के सिद्धात को लागू नही किया जायगा और न ही कोई राज्य किसी और तरह स ही छीना जायगा। महारानी की इच्छा पर राजाओ म और विश्वास पैदा करन के लिए कैनिंग ने 1860 म महत्त्वपूण राजाओ को अनेक सनदे दी जिसम उन्हे आश्वस्त किया गया कि उनके गोद लेन के अधिकार को बहाल कर दिया गया है और यह तब तक चलता रहेगा जब तक 'आपका परिवार ताज के प्रति विश्वस्त है और सधि की शर्तों और अनुदानो को मान्य किय हुए ब्रिटिशो की बात मान रहा है।" पर साथ ही राजाओ से स्पष्ट रूप से कह दिया गया कि सनदें "भारत सरकार को उस अधिकार से वचित नही करेंगी जिसके अन्तगत, स्थानीय सरकारो मे से ये गभीर दोष जिससे देश के किसी भाग मे निरकुशता और आदोलन प्रारम्भ हो जाय वह आगे बढकर उस राज्य मे शाति व्यवस्था स्थापित करेगी।' इससे स्पष्ट है कि राज्य छीनने की बात को तो त्याज्य घोषित कर दिया गया कि सम्पूण भारत म प्रजा के हित म शाति और व्यवस्था की स्थापना उन्ही का अधिकार और दायित्व है। उन्होने इस तरह अपने को एक प्रमुख शक्ति घोषित किया। वैस तो ब्रिटिशो न राजाओ से किसी भी शक्ति को वापस न लेने के लिए आश्वस्त किया पर वे यह निश्चित रूप से चाहते थे कि वे ठीक से शासन करें। इस तरह आश्चयजनक रूप से राजा ब्रिटिशो से निम्न स्तर पर रहते हुए भी साम्राज्य के एक उत्तरदायी सदस्य थे। ब्रिटिश सम्भवत उस बडे भाई की तरह थे जो अपने छोटे भाई को गलत बात पर डाट सकता था और यह जनता के हित के लिए काय करन हतु ही उन्हे करना था।

की सभावनायें समाप्त हो गयी हैं ।

हम यहा एक दूसरा उदाहरण पश कर सक्त ह । मणिपुर का राजा सूरचद्र अपने भाई के नतृत्व म एक विद्रोह के कारण राज्य से भगा दिया गया। उसका यह भाई 1890 म सेनापति था। युवराज उस समय राज्य म नही था। पर पता चला कि इस विद्रोह म उसका भी हाथ है। वह वापस आया और उसने गद्दी हथिया ली। सूरचन्द्र न ब्रिटिश से सहायता की अपील की पर उन्होने उसकी अयोग्यता के कारण उसकी सहायता करने स इनकार कर दिया। इसके स्थान पर उन्होंने युवराज को राजा मानना स्वीकार करने का कहा पर शत यह थी कि वह सेनापति को हटा दे। आसाम के कमिश्नर क्विण्टन स्थिति का अध्ययन करने के लिए गये पर सेनापति ने उसका विरोध किया और इसके कारण होन वाली लडाई म कुछ ब्रिटिश अधिकारी मार डाले गये तुरन्त इस राज्य पर आक्रमण किया गया तथा सेनापति व युवराज सेना को पकड लिया गया। उनके विरुद्ध मुकदमा चला और कानून के अनुसार उन्हें मौत की सजा दे दी गई। कुछ अन्य लोगो का इसमे हाथ पाया गया तो उन्ह भी उसी तरह से दण्डित किया गया। पर ब्रिटिश अफसरो की मृत्यु के कारण इसे आधार बनाकर राज्य का अपहरण न करने का निश्चय किया गया। परिवार से एक दूसरे बच्चे को लेकर उसे उत्तराधिकारी बना दिया गया।

इससे भी पता चलता है कि ब्रिटिश न किस तरह विद्रोह पूव के आक्रामक नीति का परित्याग कर दिया था। इसी कारण ब्रिटिश अफसरो के मारे जाने, कुशासन तथा अन्य गडबडिया के बावजूद के० वी० पुनिया के अनुसार, "अपने शासक के पापो के लिए राज्य को खतरे का सामना नही है। बल्कि अब उसे अपने इन कार्यों के लिए उत्तरदायी होने के कारण अपमान सहित पद हाथ से धोना पड रहा है।"[1]

डाडवेल ने लिखा है कि, "अपहरण की नीति के परित्याग के साथ साथ, कैंनिंग से लेकर कर्जन के शासन के अन्त तक, इन राज्यो पर नियन्त्रण कडा कर दिया गया।' रेलवे के विकास और अन्य आवागमन के साधनो की प्रगति, तारो की लाइनें बनाने, प्रेस के विकास, एक तरह के सिक्के की आवश्यकता तथा चुगी व आबकारी की नीति की एकरूपता तथा दिन प्रतिदिन ब्रिटिश प्रशासन के उठते स्तर ने मिलकर हस्तक्षेप की आवश्यकता को बढा दिया। इसके अतिरिक्त जो घटनायें कपनी के काल म जानकारी मे नही आ पाती थी आवागमन के साधना और प्रेस ने उन्ह सरकार की आखो के सामने तुरन्त ला दिया। इस कारण अब

1 पन्निया पूर्वोद्धत प० 256।

2 देखें, कम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 6, प० 494।

चुपचाप खडा रहकर तमाशा देखना सरल नही रह गया था।

इसके अतिरिक्त निरपहरण की शर्तें थी कि राजा पूर्णतया सधि की शर्तों के प्रति विश्वस्त बने रहगे और ताज के प्रति स्वामिभक्त। लार्ड कैनिंग ने 1858 म ही घोपित किया, "इग्लैंड का ताज भारत का निर्विवाद और प्रमुख शासक हो गया है।" और यह स्थिति बार-बार दुहराई जाती रहती थी। 1877 म एक सरकारी सूचना म कहा गया सप्रभुता धीरे धीरे विकास का तत्व है जिसका आकार कुछ तो विजय से बनता है कुछ सधि स और कुछ परपराओ से।" 21 अगस्त, 1891 के गजेट सूचना सख्या 1700 इ म कहा गया 'अतर्राष्ट्रीय कानून का भारत सरकार के तथा स्थानीय राजाओ के बीच कोई स्थान नही है।' लार्ड मिण्टो ने अपने पूर्व शासको के पद चिह्नो पर चलते हुए जोर देकर कहा, "केन्द्र सरकार स राज्यो का सबध सप्रभु कोटि का है।"

विद्रोह पूर्व जो हस्तक्षेप आतरिक मामलो म कम था, अब बढ गया। ब्रिटिशो को चौकस रहना पडता था कि राज्यो म शासन ठीक स चले जिसके अभाव मे वे राजा को हटा देते थे, जैसाकि बडौदा म उन्होन किया अथवा अपहरण को छोडकर कोई अन्य कदम भी उठा सकते थे। 1891 म पटियाला मे राज्य म रेलवे लाइन के निर्माण को आतरिक मामले म हस्तक्षेप नही माना गया और शासक को अनिच्छा के बावजूद एक समझौते पर हस्ताक्षर करना पडा जिसम उसने अपने राज्य म रेल लाइन आगे तक ले जाने की अनुमति दी। सच तो यह था कि इस मामले म अधिक सीमा तक स्थिति मे परिवर्तन हो गया था। पाणिक्कर ने ठीक ही कहा है कि 'सिक्के और रुपये के मामले मे, परपराओ और आर्थिक नीति के सबध मे भारतीय राज्यो को सीधे अनुगामी बनाने के मामले मे, देश निकाला का निर्णय करने म उच्च शक्ति के वैधानिक व सवैधानिक दायरे म ले लाया गया था जिसने भारतीय सप्रभु शक्तियो के विशेषाधिकार के क्षेत्र मे गभीर रूप स हस्तक्षेप शक्ति प्राप्त कर ली थी।

आतरिक मामलो म हस्तक्षेप की नीति ने और उस क्षेत्र म छोटी स छोटी घटनाओ मे रुचि ने, लार्ड कर्जन के काल म इसको एक घृणित रूप प्रदान कर दिया जिसने 1903 मे निश्चित भाषा म यह घोषणा की कि 'ताज की सप्रभुता" कही भी चुनौती योग्य नही है क्योकि इसने अपने विशेषाधिकार की सीमायें स्वय बना रखी है। कर्जन ने इन राजाओ को सरकारी नौकर की तरह स्वीकार किया और उनकी बार बार दरबार म अनुपस्थिति को एक पत्र के माध्यम से उसने सूचित करते हुए कहा कि 'यह जनता के सेवा का कार्य नही है बल्कि कर्तव्य की अवहेलना है। जिसे राजाओ ने अच्छा नही माना। इस प्रश्न पर विस्तृत विचार के बाद पाणिक्कर ने निष्कर्ष म कहा है कि इसम सदेह नही कि समझौतो की सीमा म जिसस ब्रिटिश सरकार से उनके सम्बन्ध परिभाषित होते हैं भारतीय

राजा राजनीति शास्त्र के इस सिद्धांत के आधार पर सम्प्रभुशक्ति वाले हैं।"[1] पर लार्ड कर्जन ऐसे सभी सिद्धान्तों की अवहेलना कर राजाओं को नौकरी की स्थिति में लाने के लिए प्रयत्नशील रहता था।

लार्ड वेल्जली और हेस्टिंग्स द्वारा हस्ताक्षरित सधियाँ, और बाद में उनकी ताज द्वारा स्वीकृति ने सचमुच राज्यों के वैदेशिक मामलों पर ही ब्रिटिश नियन्त्रण को स्थापित किया था। पर ब्रिटिश अपने को अधिक सभ्य मानते हुए अपना यह ब्रिटिश स्तर से कर्तव्य मानते थे कि भारतीय जनता की मुक्ति के लिए उनका हित किया जाय। और इसीलिए राज्य कार्य में हस्तक्षेप को वे एक नैतिक आधार प्रदान कर देते थे जो समय बीतने के साथ साथ वैधानिक कर्तव्य में बदल गया था जिसके विषय में आश्चर्यजनक समझते, वे कहते थे कि यह शक्ति उन्होंने मुगलों से प्राप्त की है। 1876 में मुगल शासक बहादुरशाह की मृत्यु के बाद महारानी ने कैसरे हिन्द का विरद धारण किया। लार्ड लिटन ने इसकी घोषणा के लिए एक शानदार दरबार किया और उसके भाषण के बाद प्रमुख मराठा राजाओं को रानी को नमस्कार करने के लिए पुरानी दिल्ली शैली में—शहशाह बादशाह की आवाज के बीच खड़ा होना पड़ा।

राजाओं की स्थिति में परिवर्तन सचमुच क्रान्तिकारी था। समानता की स्थिति से वे सहायक की स्थिति में ला दिये गए थे और जो शक्ति उनके पास रही थी, उसके अन्तर्गत वे "सम्राज्ञी द्वारा प्रदान किए जाने वाले कामों के लिए उसके प्रति वे जो अनुग्रह प्रकट करते थे उसके सिवा उनके पास क्या था।"

अब राजा बड़े और छोटे भी नहीं माने जाते थे और न ही महत्त्वपूर्ण, शक्तिशाली या कम शक्तिशाली में ही उनकी गिनती होती थी। ब्रिटिश दृष्टि में वे अब सभी एक तरह के थे, जो पुनः क्रांति से कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं थी। जो दरबार अब किए जाते उनमें सिंधिया और निजाम तथा ऐसे ही राजाओं के प्रति कोई विशेष व्यवहार प्रदर्शित न किया जाता। वे छोटे छोटे सामन्तों के पास बैठते और उनकी ही कोटि में उनकी गिनती होती।

सच तो यह था कि इस विकसित होने वाली व्यवस्था में जो विद्रोह के बाद सामने आई उसमें अपहरण का परित्याग तो कम कर दिया गया पर राजाओं पर ब्रिटिश नियन्त्रण बहुत शक्तिशाली हो गया। गवर्नर जनरल, पालिटिकल डिपार्टमेण्ट और रेजीडेन्ट हर क्षण राजाओं पर दृष्टि रखते थे। वैसे तो रेजीडेन्ट राजा को मैत्रीपूर्ण राय ही देता था, पर पाणिक्कर के अनुसार 'जिन्हें भारतीय राज्यों का प्रत्यक्ष अनुभव है वे यह जानते हैं कि रेजीडेन्ट की फुसफुसाहट भी राज्य

1 पाणिक्कर, के० एम० पूर्वोद्धत पृ० 88 101।

2 देखें, राबर्टस फार्टी वन इयर्स इन इंडिया भाग 2, पृ० 97।

के लिए गरजने के समान हैं और राज्य का ऐसा कोई विषय नहीं है जिस सम्बंध म परामश देने के लिए वह अधिकारित नहीं है ।"[1]

सच यह था कि ब्रिटिश राजाओ के पदों, आदर व्यक्त करने के नियमों, तथा उत्तराधिकार म प्राप्त मामलो आदि सभी म नियंत्रण का अधिकार रखते थ । उनकी राय के बिना कोई भी राज्य विदेशी पद प्राप्त नहीं कर सकता था । और न ही वह किसी को ऐसा पद दे सकता था । राजा को कितनी तोपो की सलामी मिलनी है यह भी ब्रिटिश ही तय करते थे । सरकार उन्हें बड़ौदा और मणिपुर के शासको की भांति पद स हटा भी सकती थी, उनसे सिक्के ढालने का अधिकार छीन सकती थी, जसा कि उसने बड़ौदा, मैसूर, ट्रावनकोर, अलवर व जयपुर के मसले म किया । केन्द्रीय शासन की आज्ञा का उल्लंघन एक विद्रोह माना जाता था और उसके विरुद्ध उसी तरह की कारवाई की जाती थी ।

उत्तराधिकार के मामले मे भी ताज के अधिकार अपनी की ही तरह बने रहे। "प्रत्येक उत्तराधिकारी अपने पद पर सरकार के एजेन्ट के द्वारा ही स्थापित किया जाता था । बिना इस तरह गद्दी प्राप्त किए कोई राजा नहीं माना जाता था ।" 1881 के प्रेषण म स्पष्ट रूप से कहा गया "यह ब्रिटिश सरकार का अधिकार और कत्तव्य है कि वह सहायक राज्यो के उत्तराधिकार के मसले निपटाये। प्रत्येक उत्तराधिकार ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत होना चाहिए। कोई भी उत्तराधिकार स्वीकृति के बिना जायज नहीं है ।"[3]

राजाओ के सनिक शक्ति की पुरानी नीति को भी सदद से परे नहीं रखा गया । उदाहरणाथ 1867 म जयाजी सिंधिया से "कहा गया कि वह सैनिक पुलिस को समाप्त कर दे क्योंकि उस जितनी सेना रखने का अधिकार है यह उससे अधिक है । उससे यह भी कहा गया कि वह अपनी राजधानी मे लोगो की भीड न एकत्रित करे ।"[4]

कश्मीर के गुलाब सिंह का मामला ही एक अपवाद था जहा मौखिक आश्वासन पर अंग्रेज रेजीडेन्ट की नियुक्ति नहीं की गई थी ।"[5] पर यह अपवाद भी अधिक दिनो तक नहीं चल सका । ब्रिटिश उत्तर-पश्चिम सीमा पर रूस की पहल पहल के बहाने नाथ ब्रुक ने 1873 म कश्मीर पर रेजीडेन्ट रखने के लिए जोर डाला । और 1885 म वहा सचमुच एक रेजीडेन्ट नियुक्त कर दिया गया ।

---

1 पाणिक्कर पूर्वोद्धृत पृ० 111 ।
2 डाइवेल कम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया भाग 6, पृ० 496 ।
3 पार्लियामेण्टरी पेपस, 1890 91 न० 392 पृ० 13 ।
4 देखें, थानटन, सर रिचड मीड पृ० 116 ।
5 पाणिक्कर, के० एम० गुलाबसिंह, पृ० 132 ।

पाणिक्कर ने लिखा है कि, "सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र जहा सरकार का राजनैतिक अधिकार बढ़ा है वह है भारतीय राज्यो म रहने वाली जनता को ब्रिटिश सप्रभु के अधीन बनाना।" इस अधिकार के अन्तगत ब्रिटिश सीधे इन लागो के हित के लिए उत्तरदायी हो गये और इसके लिए राजाआ को अपनी इच्छानुसार चाहे जिस दिशा मे घुमा सकते थे। उदाहरणाथ राजाओं को जीने और मरने का अधिकार भी नही था क्योंकि इस मामले मे भी एजेन्ट जो कहता वही स्वीकार किया जाता था। 1865 म जवबा के शासक को एक चोर का अग भग करने के लिए, 10 हजार रुपये का अथ-दण्ड भोगना पडा और 1892 म कलात के खा को पद त्याग करने के लिए इसलिए कहा गया कि उसने कुछ लागो को इसलिए कत्ल करवा दिया तथा उनका अग भग करवा दिया था क्योंकि उन्होने उसके खजाने से चोरी की थी।

राज्य का विदेशी हित केन्द्र सरकार के हाथ म था। और यदि विदेशी मामला मे कम परिवतन दिखाई पडता है तो वह इसलिए था क्योंकि यह मामला पूणतया ब्रिटिश नियन्त्रण म था ही।

मिण्टो के अधीन—पर मिण्टो के काल म नीति म कुछ परिवतन हुआ। वाटन लिखता है कि 1906 म कठोर नियन्त्रण की नीति म प्रथम बार भग देखा गया, "जब लाड मिण्टो ने तमाम राजाआ का भारत म षड्यन्त्र करने वाला के मामले पर विचार विमश करने के लिए बुलाया।"[1] और मिण्टो की यह मित्रतापूण सहयोग की नीति 1946 तक चलती रही। इस परिवतन के आन्तरिक कई कारण थे। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस और उसके बाहर भारत म उग्रवादी तत्त्व ने राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए शोर मचा रखा था और इसे प्राप्त करने के लिए हिंसा या अहिंसा किसी भी रास्ते को अपनाने के लिए उतारू था। और यह नीति जोर भी पकड रही थी। राष्ट्रवादी भाव जनता म भी फैल रहा था और प्रेस तत्कालीन बुराइयो की धज्जियां उडाने म पीछे नही था। भारत के बाहर भी ब्रिटिश की स्थिति अच्छी नही थी। आधुनिक औद्योगिक युग और प्रजातन्त्र का विचार भारत म प्रभाव डाल रहा था जिसके कारण सामन्तवाद और राजशाही के जीवन को खतरा पैदा हो रहा था। इसलिए इन परिस्थितियो म ब्रिटिश और राजाआ के हित म यह था कि वे एकजुट हो जाय। और इसी दिशा म लाड मिण्टो ने प्रथम कदम उठाया।

1909 म उदयपुर म लाड मिण्टो ने प्रथम निश्चित और सरकारी घोषणा इस सम्बन्ध म की। इसम उसने बताया कि, "सभी भारतीय सन्धियो को एक साथ पढने और सभी राज्यो को एक श्रेणी म रखने की नीति छोड दी गई।"

---

1 वाटन, सर विलियम द प्रिसेज आफ इण्डिया, 1934 पृ॰ 281।

लार्ड कर्जन की निरंकुश घोषणाओं जिसमें सभी के प्रति एक तरह की नीति अपनाने की घोषणा हुई थी वह इस तरह समाप्त हो गई। और 'इस सब की स्थापना का आधार केन्द्रीय सरकार और दरबार के बीच हितों की समानता थी। इसके अंतर्गत दरबार के मामलों में कम से कम हस्तक्षेप करने को कहा गया।"

ब्रिटिश ढिलाई इस सीमा तक पहुंच गई कि राजाओं को आपस में परामर्श की छूट तक दे दी गई जिससे अपनी कठिनाइयों को सरकार तक ला सकें। इसलिए पहला ही काम इन्होंने जो किया वह था पालिटिकल डिपार्टमेंट की बढ़ती शक्ति पर प्रहार। उनके कठिनाइयों की प्रदर्शन शक्ति ने ही 1921 में 'चैम्बर आफ प्रिंसेज' की नींव डलवा दी जो सरकार के परामर्शदात्री समिति के रूप में काम करती थी। पाणिक्कर के मतानुसार इसकी स्थापना से 'उस ब्रिटिश नीति को शरणागत होना पड़ा जिसके अंतर्गत उन्होंने भारतीय राजाओं को संगठित कारवाई हेतु राय करने की आज्ञा नहीं प्रदान की थी और न ही उन्हें आपसी हित मंत्रणा का अवसर ही प्रदान किया था।"[1]

आंग्ल-रूसी समझौता

लार्ड मिण्टो के काल में ब्रिटिश के मध्य एशिया के सम्बन्धों में कुछ दूरगामी घटनायें घटीं। 31 अगस्त 1907 को आंग्ल रूसी समझौता हुआ जिसके अंतर्गत तिब्बत अफगानिस्तान और फारस के मामलों में दोनों देशों के झगड़े को निबटा लिया गया। उसी का विवरण संक्षेप में अधोलिखित है।

तिब्बत—यंगहस्बैंड के आक्रमण के बाद लासा की संधि का परिचय ऊपर आ चुका है। इस पर 1904 में हस्ताक्षर हुआ, पर इस संधि पर तिब्बत पर सम्प्रभु शक्ति रखने वाले चीन का हस्ताक्षर होना शेष था। इसके लिए एक सभा पेकिंग में की गई जो अप्रैल 1906 में समाप्त हुई जिसने लासा के पूर्व हस्ताक्षरित संधि में दो शर्तें और जोड़ दीं। एक के अंतर्गत तो यह तय किया गया कि ब्रिटिश न तो तिब्बत के किसी क्षेत्र पर अधिकार करेंगे और न इसके आंतरिक मामले में हस्तक्षेप करेंगे और दूसरी शर्त में चीन ने आश्वस्त किया कि वह अन्य राज्यों से भी इसी तरह का आश्वासन प्राप्त करेगा। इन दो नयी शर्तों का संधि के नये रूप में जोड़ा जाना भारत सरकार की इच्छा के विपरीत सेक्रेट्री आफ स्टेट मार्ले के कारण संभव हुआ जो शीघ्र से शीघ्र तिब्बत के पचड़े से अपने सैनिकों को निकालना चाहता था। उसी के जोर देने पर ही भारत सरकार ने यह स्वीकार किया कि क्षतिपूर्ति की धनराशि तिब्बत के स्थान पर चीन तीन वर्ष की अवधि में दे दे। पुनः 1908 में क्षतिपूर्ति की धनराशि मिल जाने पर चीन ने जब चुम्बी की घाटी

1 पाणिक्कर रिलेशंस आफ द इण्डियन स्टेट्स पृ० 140।

खाली करने को कहा तो भारत सरकार न इतराज करते हुए कहा कि तिब्बतियो न वादा को विश्वस्तता से पूरा नही किया है, पर इसी समय सेकेट्री आफ स्टेट स चुम्बी की घाटी तुरत खाली करन का आदेश मिला जिस उन्होन खाली कर दिया। इस तरह ब्रिटिशो का तिब्बत मे आतरिक क्षेत्र मे कोई सम्बन्ध ही नही रह गया।

1907 के आग्ल रूसी समझौते न भी तिब्बत के मामले मे वही रास्ता अपनाया। समझौत के अन्तगत दोना न तिब्बत के मसले पर हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया। व लासा अपने दूत भी नही भेजेंगे यह भी तय हो गया। दोनो न तिब्बत से सम्पर्क के लिए चीन को अपना माध्यम चुना।

इन घटनाओ के बाद चीन न तिब्बत म अपनी शक्ति स्थापित कर ली। दलाई लामा को लगभग पद से हटा ही दिया गया और वहा का शासन चीनी रेजीडेन्ट के हाथ मे सौप दिया गया। पेकिंग ने 1908 की जुलाई मे दलाई लामा को बुलाया और अपनी सम्पूर्ण प्रभुसत्ता का अनुभव उसे कराया। स्थिति यह हो गई कि तिब्बत लौटत लौटते दलाई लामा न ब्रिटिशो से सहायता की गुहार मचा दी, ताशी लामा तिब्बत छोडकर 1905 06 म भारत भाग आया और यही शरण ले ली और दलाई लामा न भी यही फरवरी 1910 मे किया। लाड मिण्टो ने उसे भेंट करने का अवसर दिया। दलाई न बकार सहायता की याचना की। पर ब्रिटिश चीन और रूस को किये गये वादे स मुकरना नही चाहते थे।

मार्ले न घोषणा की कि तिब्बत पर यगहस्बेंड के आक्रमण का उद्देश्य वहा से रूसी हित को अलग करना था और अब चूकि वह काय पूरा हो चुका है, उनका उस देश मे और कोई राजनतिक हित नही है।

अफगानिस्तान—आग्ल रूसी समझौत न अफगानिस्तान मे यथास्थिति को स्वीकार कर लिया। रूस न अफगानिस्तान स सारा सबध ब्रिटिशो के माध्यम स करना स्वीकार कर लिया। ब्रिटिशा न यह स्वीकार कर लिया कि वह अफगानिस्तान की राजनतिक स्थिति म कोई परिवतन नही करेगा। दोना देशो को अफगानिस्तान मे समान रूप से व्यापारिक लाभ प्राप्त हुए। समझौते मे अफगानिस्तान से सबधित शर्तें तभी प्रयोग मे आनी था जब उस पर अमीर की भी स्वीकृति मिल जाय। पर उसने इसे अस्वीकार कर दिया। अमीर हबीबुल्लाह अपने देश के पश्चिमीकरण के चक्कर मे दश म वैसे ही अलोकप्रिय हो गया था। उसने सोचा कि यदि उन शर्तों को इस अवसर पर स्वीकार कर ले जिसके सबध म उससे राय भी नही ली गई है तो इसस लोकप्रिय राष्ट्रीय विचारा का आघात ही पहुचेगा।

फारस—पर इस समझौते मे सबसे महत्त्वपूर्ण मसला फारस का ही था जहा 1805 से ही खराब स्थिति चल रही थी। यह इसलिए था कि यहा पर पश्चिम के

प्रजातन्त्र और संवैधानिक परम्पराओं का बीजदान प्रारम्भ हो गया था। इसके अतिरिक्त और भी कारण थे। इन दोनों देशों के बीच फारस के सबंध में होने वाले समझौते ने दोनों को अनावश्यक कष्ट से बचा लिया जिनके फूट पडने की संभावना दोनों के वहां पर हितों के टकराने पर अनिवार्य थी।

वैसे तो इस समझौते ने दोनों देशों को फारस की राजनैतिक स्वतन्त्रता और अभिन्नता के प्रति आदर करने को बाध्य किया पर इस राज्य के उत्तरी भाग पर रूसी प्रभाव और दक्षिणी-पूर्वी भाग पर ब्रिटिश प्रभाव को मान्यता प्रदान कर दी गई। रूसी प्रभाव क्षेत्र दक्षिण एक सीमा तक अर्थात कसे सीरी इस्पाहान, यज्द कुरक तक रखी गई और ब्रिटिशों का प्रभाव उत्तर में बन्दर अब्बास से कर्मान होते हुए बिरजद तक रखी गई। दोनों दलों ने दूसरे के क्षेत्र में व्यापारिक या राजनैतिक लाभ प्राप्त करने से अपने को दूर रखा। संधि के समय रूस ने भारत की खाड़ी में ब्रिटिश हितों को मान्यता दी।

1907 का आंग्ल रूसी समझौता एक महत्त्वपूर्ण घटना थी क्योंकि इसने दोनों देशों को संघर्ष से विरत कर दिया। दोनों के बीच मन मुटाव का एक गंभीर स्रोत समाप्त कर दिया गया और दोनों भिन्न भिन्न अपने हितों और अधिकारों की रक्षा और दूसरे की स्वीकृति प्रदान करते हुए शांतिपूर्ण विकास कार्य में लगे रहे।

मिण्टो 1910 में भारत से पदमुक्त हुआ और इंग्लैंड पहुंचने के बाद उसने राजनैतिक जीवन में कोई भाग नहीं लिया। वह मार्च 1914 में मर गया।

21

लार्ड हार्डिन्ज (1910-1916)

1844 से 1848 के बीच भारत के गवर्नर जनरल प्रथम विस्काउण्ट हार्डिन्ज का पौत्र, चार्ल्स हार्डिंज, जो बाद मे पेनशर्स्ट का लार्ड हार्डिंज कहलाया 20 जन 1858 मे पैदा हुआ। उसका पिता द्वितीय विस्काउण्ट हार्डिंज था और उसकी मा लेडी लावीनिया विघम लूकान के तीसरे अर्ल की पुत्री थी। चार्ल्स जब 6 वर्ष का था तभी उसकी मृत्यु हो गई। हैरो और ट्रिनिटी कालेज कम्ब्रिज मे शिक्षा प्राप्त करने के बाद 1880 मे वह कूटनीतिक सेवा मे प्रविष्ट हुआ। उसने थार्लिंगटन के प्रथम लार्ड हेनरी की पुत्री और भारत मे 1872 मे 1876 के बीच गवर्नर जनरल रहने वाले लार्ड नार्थब्रुक की भतीजी विनी फ्रेड स्टुअर्ट से 1890 मे विवाह किया।

कूटनीतिक सेवा मे हार्डिंज का बडा सफल जीवन था और धीरे धीरे वह आगे बढता हुआ 1904 मे प्रीवी कौंसिल का सदस्य चुन लिया गया और फिर पीटसबर्ग मे ब्रिटिश राजदूत। 1906 मे उसे विदेश मन्त्रालय मे स्थायी अण्डर सेक्रेट्री के आकर्षक पद पर नियुक्त किया गया। उसने सम्राट एडवर्ड सप्तम से घनिष्ठ मैत्री स्थापित की और 1910 मे एस्क्विथ ने उसे भारत का वाइसराय नियुक्त किया।

आन्तरिक स्थिति

शानदार दरबार— लार्ड हार्डिन्ज के काल की सबसे प्रथम महत्त्वपूर्ण घटना दिल्ली मे आयोजित दरबार थी जिसमे सम्मिलित होने के लिए 1911 मे सम्राट जार्ज पंचम पधारे। इस दरबार के अवसर पर, धन बांटने के अतिरिक्त कुछ महत्त्वपूर्ण घोषणायें की गईं जो भारतीय लोगों के लिए विशेष महत्त्व की थी। यह घोषणा की गई कि राजधानी बदलकर कलकत्ता से दिल्ली कर दी जायेगी, बंगाल का विभाजन रद्द कर दिया जायेगा और आसाम के लिए एक अलग से कमिश्नर की नियुक्ति की जायेगी। इस बात की आलोचना की गई कि कलकत्ता

से राजधानी हटाने से वहा की महत्ता तो घटेगी ही, इस पर व्यय भी बहुत आयेगा पर राजधानी परिवर्तन के गुण और लाभ, ऐतिहासिक की दृष्टि म हिसात्मक तर्कों की तुलना म कहीं आगे थे। आवागमन के साधना की वद्धि न सरकार की राजधानी समुद्र तट पर बनाये रखना आवश्यक न रहने दिया था। इसके अतिरिक्त दिल्ली की ऐतिहासिक महत्ता थी और प्राचीनकाल से यह स्थान राजधानी बने रहने से जुडा था। इसके अतिरिक्त दिल्ली बीच मे पडता था और अर्द्ध-सघीय राज्य के प्रशासन के लिए यह एक उत्तम स्थान था। भारत सरकार के गह सदस्य सर जान जेनकिन्स ने सच ही कहा था कि "राजनीतिज्ञता का यह एक साहसी कदम होगा जिसम तमाम लोगो को सतुष्टि प्राप्ति हागी और भारतीय इतिहास म इससे एक नये युग का सूत्रपात होगा।" बगाल के विभाजन की वापसी भी कम महत्त्व की न थी। पूरे देश के लोग प्रारम्भ से ही इसके विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे और इस कदम ने राष्ट्रवादी तत्त्वो को विजय दिला दी थी। पर साथ ही इस कदम ने मुसलमानो की भावनाओ पर आघात किया था जिसके लिए अन्तत राष्ट्रीय भावना और एकता का बडी कीमत चुकानी पडी। 1911 की घोषणाओ का ही परिणाम था जो 23 दिसम्बर 1912 को दिल्ली मे प्रवेश करते समय लार्ड हार्डिन्ज पर बम फेंका गया जिससे वाइसराय घायल हो गया।

लार्ड हार्डिन्ज न भारतीय लोगो की भावना के साथ अपने को जोडते हुए दक्षिणी अफीका के प्रवासियो के विरुद्ध पारित नियमो का विरोध किया। महात्मा गाधी ने इन कानूनो के विरुद्ध सत्याग्रह किया। जनता न भी इसका विरोध किया और गवर्नर जनरल भी चुप नही बैठा। इसी के फलस्वरूप 1914 म दक्षिणी अफ्रीकी सरकार न इण्डियन रिलीफ ऐक्ट पारित किया जिसने भारतीयो को पूर्ण रूप से तो नही सतुष्ट किया पर उनकी कुछ कठिनाइयो को कम कर दिया। गाधी जी इससे बहुत प्रसन्न हुए और इसी कारण प्रथम विश्व युद्ध मे उन्होने और भारतीयो ने ब्रिटिश की महान सेवा की।

शिक्षा—हार्डिन्ज के समय म शिक्षा के क्षेत्र मे भी विकास हुआ। लार्ड कर्जन के जाने के बाद लगातार भारत म आन्दोलन ही होते रहे। इस ओर जापान के युद्ध न आत्म निर्भरता के भाव का जागरण किया कॉलेज शोर शराबे के केन्द्र हो गये, बेहतर शिक्षा की माग की गई और शिक्षा पर अधिक धन व्यय करने को कहा गया। तकनीकी और व्यापारिक शिक्षा पर जोर देने को कहा गया। इन्ही परिस्थितियो म 1910 म शिक्षा को गह विभाग से अलग कर एक शिक्षा विभाग ही बना दिया गया। लार्ड हार्डिन्ज के कौंसिल के शिक्षा सदस्य सर हरकोर्ट बटलर ने 1913 म एक प्रस्ताव प्रसारित किया जिसम भारत सरकार की उच्च शिक्षा नीति को पुन परिभाषित किया गया।

प्रस्ताव म घोषणा की गई कि चूंकि भारत सम्भवत लम्बी अवधि तक

सबद्धता वाले विश्वविद्यालयों से अपने को मुक्त नही कर सकती, इसलिए विश्व विद्यालयों का क्षेत्र नियत्रण प्रातो के अन्दर ही सीमित कर दिया जायेगा जिसका दूसरे शब्दों मे अर्थ यह था कि प्रत्येक मुख्य प्रान्त म एक विश्वविद्यालय स्थापित किया जायगा। पटना, नागपुर और रगून के लिए सबद्धीय विश्वविद्यालय और अलीगढ, ढाका और बनारस के लिए आवासीय विश्वविद्यालय खोलने के लिए आश्वासन दिया गया और वैसे तो तुरन्त युद्ध ने हस्तक्षेप कर दिया और इसकी प्रगति म बाधा पड गई पर शिक्षा पर होने वाले केन्द्र, प्रात और अन्य लोगो से व्यय म वृद्धि हुई। इस तरह इन पर 1916 17 म 614 10 लाख रु० खर्च किया गया जो 1906 07 की धनराशि से दुगुने म भी अधिक था। प्रस्ताव के पाच वर्षों के भीतर बनारस मैसूर अलीगढ और पटना म विश्वविद्यालय खोल दिये गये। स्कूल और कॉलेजो पर व्यक्तिगत और मिशनरियो द्वारा व्यय किया जाने वाला धन भी बढ गया। 1916 17 म यह राशि बढकर 1128 83 लाख रु० हो गई।

मेसोपोटामिया सबधी गडबडी

1914 म जब प्रथम विश्व युद्ध फट पडा, उस समय मेसोपोटामिया का तुर्की के साथ सघर्ष प्रारभ हुआ। इस सबध की कारवाई भारत सरकार की ओर से ला हार्डिंज ने की। पर उद्देश्य असफल हो गया। युद्ध की घटनायें बडी रुचिकर थी। इस सबध म रिपोर्ट देने के लिए एक ससदीय आयोग भी बनाया गया जिसने भारत म प्रशासकीय सुधार सबधी कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव प्रस्तुत किये। हम यहा पर इस युद्ध का सक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

एक अरबी कहावत है कि 'अल्लाह ने नरक बनाया। पर उसे जब वहा नारकीय अवगुण नही दिखे तो उसने मेसोपोटामिया, आधुनिक ईराक बना दिया और वहा मक्खिया छोड दी।" फारस की खाडी के अरब तटवर्ती क्षेत्रो म ब्रिटिश रुचि सदियो पुरानी थी। उन्होने फारस से एक व्यापारिक सधि की और धीरे धीरे फारस की खाडी म अपना प्रभाव बढाते गये। हम देख आए है कि फारस की खाडी के क्षेत्र खूखार अरब कबीलो की जातियो और उपजातियो द्वारा आच्छादित थे जिनके अपने अलग अलग नेता थे। वे तुर्की के अधीन थे और वहा फारस का हस्तक्षेप भी हो सकता था। उनकी आपसी द्वन्द्व और लूटमार की कारवाई ब्रिटिश व्यापार हितो के प्रतिकूल पडती थी जिससे फलस्वरूप उन्हे उस क्षेत्र मे शाति व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस व्यवस्था स्थायी करनी पडती थी। भारत के साम्राज्यवाद के हित म भी यहा शाति बनी रहनी आवश्यक थी। 1857 म एक ब्रिटिश कपनी ने यह प्रस्ताव किया कि भूमध्य सागरीय क्षेत्र

को फारस की खाडी के क्षेत्र म रेल से जोड दिया जाय। तुर्की साम्राज्य ने प्रस्ताव को स्वीकार तो कर लिया पर इसे प्रभावी नही बनाया जिसके फलस्वरूप यह समाप्त हो गया। यदि यह कार्यक्रम पूरा हो जाता तो स्वेज नहर से भी निकट का रास्ता भारत को प्राप्त हो जाता। पर इस योजना की असफलता के बावजूद ब्रिटिश हित इस क्षेत्र म ढीले नही किए गए। 1901 म एक अंग्रेज ने फारस के शाह से कुछ रियायतें प्राप्त की जिसमे अंततः कई वर्षों के कठोर परिश्रम के बाद वह अरबिस्तान म कभी न समाप्त होने वाले तेल के खजाने की तलाश कर सका। यह स्थान एक ब्रिटिश मित्र मुहम्मोरा के शेख के क्षेत्र मे पडता था। अरबिस्तान के तेल के क्षेत्र से पाइपो द्वारा कच्चा पेट्रोलियम पदार्थ अबादान ले जाया जाता था जो फारस की खाडी के सिरे पर दाहिने शत्तल अरब म पडता था। थोडे ही समय म अबादान एक कस्बा हो गया। यहा तेलशोधक कारखाने लग गए और आग्ल फारसी कपनी इसकी रक्षा करने लगी और इसकी महत्ता इतनी बढ गई कि ब्रिटिश एडमिरेल्टी ने भी इसमे रुचि लेनी प्रारभ कर दी और उसने 1914 मे तेल तलाश के नियत्रण अधिकार को खरीद लिया।

स्पष्ट रूप से इन सभी कारणो से इस क्षेत्र म ब्रिटिश रुचि बढ गई। पर इसी बीच एक अन्य यूरोपीय शक्ति जर्मनी वहा प्रकट हुई और यहा व्यापार प्रारभ करने के लिए और अपने औद्योगिक सामानो के बाजार के लिए इसने ब्रिटिशो की कीमत पर तुर्की को मित्र बनाना प्रारभ कर दिया। जर्मन कूटनीतिज्ञ कुस्तुनतुनिया म 1857 म प्रकट हुए। उन्होने तुर्की के मामले म रूस और ब्रिटेन म सबध खराब करने की पूरी चेष्टा की। कुवैत के शेख को भी ब्रिटिश प्रभाव से मुक्त कराने की चेष्टा हुई जिससे वह तुर्की पर निर्भर हो जाय। बहरीन द्वीप के निकट कातार प्रायद्वीप पर तुर्की अधिकार को हवा दी गई। बगदाद और टिगरिस नदी के तट पर ब्रिटिशो के व्यापार विशेषाधिकार का विरोध किया गया। इन सभी कूटनीतिक कारवाइयो का उद्देश्य यह था कि जर्मनी तुर्की के मसोपोटामिया प्रान्त म ब्रिटेन के स्थान पर प्रभाव स्थापित कर ले।

जर्मनी की कारवाइया केवल कूटनीतिक चालो तक ही सीमित नही रही। उन्होने जनता की धार्मिक कट्टरता की भावना को भी उभारने का प्रयास किया। जिससे उनके राजनैतिक और व्यापारिक हित का साधन हो सके। कैसर ने मक्का की यात्रा की और अपने को हाजी कहना प्रारभ किया। तुर्की का सुल्तान उसका भाई हो गया और यह घोषणा की गई कि कैसर ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया है। हाजी मुहम्मद गिलियानो उसने अपना नया नाम रखा और इसका रक्षक हो गया। यह कहा गया कि ब्रिटिश इस्लाम के शत्रु हैं और उनका उद्देश्य तुर्की की जमीन खोदकर मुहम्मद साहब की हड्डिया निकालकर ब्रिटिश अजायब

का निरीक्षण किया जिसके कारण यह अफवाह फैल गई कि ब्रिटिश बगदाद पर आक्रमण करना चाहते है। वैसे ब्रिटिशो ने अभी इस दिशा म सोचा भी नही था। दूसरी ओर बसरा की हानि ने तुर्की के निश्चय को कमजोर करने के स्थान पर उनमे विरोधियो के विरुद्ध उत्साह का सृजन किया और अब वे अपनी स्थिति सुधारने मे लग गये। कुर्ना से ब्रिटिश सैनिक शैबा की ओर बढे जहा पर 1,200 सैनिको के हानि के बाद अधिकार कर लिया गया। इसके बाद सर जान निक्सन को मेसोपोटामिया के विरुद्ध कारवाई का भार सौपा गया। भारत से और सेनायें आइ पर व अपने साथ खाद्य सामग्री नही लाईं। औषधियो की कमी के कारण भी आने वाले दिनो म कठिनाइया हुइ। भारतीय वाइसराय और ह्वाइटहाल से अमोरा पर अधिकार की अनुमति के लिए सम्पर्क स्थापित किया गया। अनुमति प्राप्त हो जाने पर मेजर जनरल चार्ल्स वेरा फेरस टाउनशेन्ड को 6ठे डिवीजन का नेतत्व सौप दिया गया और सेना आगे बढ चली। एक सफलता पूर्ण युद्ध के बाद अमोरा पर अधिकार कर लिया गया। निसिरिये के युद्ध मे ब्रिटिशो ने पुन 500 सैनिको की कीमत पर सफलता प्राप्त की ओर उस स्थान पर अधिकार कर लिया।

अमारा और निसिरिय पर अधिकार के बाद यही सोचा गया कि ब्रिटिश उद्देश्य पूरा हो गया है। बसरा पर अधिकार हो गया तेल शोधक कारखाना अधिकार मे लिया गया और ब्रिटिशो के लिए उचित यही था कि व मेसोपोटामिया मे सैनिक कारवाई पर रोक लगा देत। निसिरिये के युद्ध के बाद तुर्क 120 मील ऊपर की ओर चले गय थे और कुत म जुट रहे थे। इससे स्पष्ट था कि तुरन्त किसी प्रतिक्रिया की सम्भावना नही थी। इसके अतिरिक्त पूर्ति का अभाव, औषधि सुविधा मे कमी तथा सैनिको की कम सख्या से भी सावधान रहने की आवश्यकता थी। टाउनशेन्ड ने स्थिति का अदाज लगाकर ही अपनी डायरी म लिखा होगा, सामरिक बढाव के लिए सभी वस्तुओ की कमी थी और तेजी से आगे बढने का सिद्धा त आवागमन के साधन के अभाव म सम्भव ही नही था उसन आगे लिखा, 'अमोरा और निसिरिये पर अधिकार करने के बाद हम बसरा म अपनी स्थिति मजबूत करनी चाहिए थी फ्रास और गैलीपाली म मित्र राष्ट्रो की सफलता के बाद ही मसोपोटामिया पर सामरिक आक्रमण किया जाना चाहिए था।[1] पर अ तिम निणय टाउनशेन्ड के हाथ म नही था ऊपर वाला अधिकार निक्सन के हाथ म था जिसन यह घोषणा की कि कुतअल इमरा पर अधिकार आवश्यक है क्योकि यह टिगरिस और सशत्त अलहई का केन्द्र है और इस तरह अमोरा से अधिक सामरिक महत्त्व का है। भारत सरकार ने मौन

1 बार्कर ए० जे० द नेगलेक्टेड वार मेसोपोटामिया (1914 1918), पृ० 107 से उद्धृत।

पायेंगे या नही। परामर्श दिया गया कि यदि कुत से भी पीछे हटना आवश्यक हो तो कुर्ना मे सुरक्षात्मक नीति अपनाई जाय जिसमे कि तेल के क्षेत्र और पाइप लाइनें तो कम से कम सुरक्षित रखी जा सकें। चितराल के नायक ने घोषणा की कि वह कुत वापस आ गया है पर अब और पीछे नही हट सकेगा। उसने बताया, "मैं कुत की वैसे ही रक्षा करूगा जैसे मैंने चितराल की थी।'

पर टेसीफान से ब्रिटिश सैनिकों की वापसी ने विनाश ला दिया। तुर्क अपने को सगठित करने लगे। बगदाद से लगातार सैनिक सहायता पहुचने लगी और कुल मे ब्रिटिशों का रुकना समस्याप्रधान हो गया। यदि ब्रिटिशों को कुत मे रुकना था तो इसकी सुरक्षा और मजबूत की जानी थी। टाउनशेंड के पास 12,000 सैनिक थे जिसमे से 2 000 बीमार और घायल थे। इनके अतिरिक्त 3,500 गैर लड़ाकू भारतीय थे जिनके भोजन व ओषधि की उचित व्यवस्था आवश्यक थी। पर उसके पास वस्तुओं की पूर्ति का अभाव था। यदि जल्दी ही सहायता न पहुचती तो टाउनशेंड के आदमी यदि तुर्कों द्वारा मार नही डाले जाते तो भी खान के अभाव म भूखो मर जाते। अति आवश्यक समाचार भेजे गये। बसरा मे वस्तुओं की नयी पूर्ति प्रारम्भ हो गई। पर वहा से सीमा पर और उससे पीछे सामान पहुचने मे 20 दिन लगने थे। और इसके अतिरिक्त पूर्ति पक्ति को बनाये रखने के लिए पर्याप्त नावो की व्यवस्था भी नही थी। इसी बीच तुर्कों ने टाउनशेंड को कुत म पुन एक बार लडाई करने के लिए बाध्य किया। इसम 315 अंग्रेजो के सैनिक मार डाले गये। वहा तुर्कों ने भी अपने 907 सैनिक खोये। यह युद्ध 1915 के बडे दिन की पूर्व सध्या पर हुआ जिसने क्रिसमस दिन के उत्साह को फीका कर दिया। तुर्कों ने कुत से टाउनशेंड को पीछे हटाने मे असफलता के बाद इस स्थान को घेरने की व्यवस्था की और इसकी तैयारी प्रारम्भ की कि किसी भी तरह से यहा की सेना को वस्तुओं की पूर्ति न हो पाये।

स्थिति सचमुच नाजुक थी। जैसे ही बसरा मे नयी पूर्ति और सेना की व्यवस्था हो गई लेफ्टीनेंट जनरल सर फैंटल एल्मर को इसका सेनापतित्व सौंप दिया गया और 3 जनवरी 1915 को कुत पहुचने का अभियान प्रारम्भ कर दिया गया। पर वह सेना जो कुत जा रही थी उसे भयानक कठिनाइया झेलनी पडी। इसे एक-एक इच जमीन पाने के लिए लडाई करनी पडी। शेख साद, वादी, हन्ना, दुर्जैला और अत ऐसा म लडाइया हुई। एक के बाद दूसरा सेनापति असफल होता गया। निक्सन की जगह लेक को भेजा गया। ऐलमर को सफलता नहीं मिली तो उसे अपना काम गोरिंज को सौंपना पडा। पर सभी पराजित हो गये। कुत मे सैनिक सहायता पहुचाने जाने वाले ब्रिटिश सैनिको को अपार सैनिक हानि का सामना करना पडा। पर अब भी काम नही बन पाया और निराशा मे इसे छोड

कारण थे । ब्रिटिशो की असफलता के स्वाभाविक कारण थे—वदेशिक क्षेत्र, विषम जलवायु, नदियो से सटे हुए सिंचाई की नहरे जो सनिको क आगे वढन म बाधा पहुचाती थी, भमि चिह्नो का अभाव छाया का अभाव, पीने के पानी की कमी और भौगोलिक अज्ञानता। इसके अतिरिक्त बद्दू लोगो द्वारा उत्पन्न की गई कठिनाइया थी । ये लोग अरब के निवासी थ जिनके लिए ब्रिटिश और अरबी दोनो विदेशी थे और जो अपने खेतो म खाइया खोद रहे थे क्योंकि उनकी सिंचाई नहरो मे हस्तक्षेप हो रहा था । वे इ हे अपने देश म गदगी से अधिक कुछ नही मानते थे । इन परिस्थितियो म यह स्वाभाविक था कि व इसका लाभ उठाकर लूट पाट कर लाभ उठाते । मरे हुए लोगो के बूटो और कपडो को लन के लिए वे कब्रे तक खोदन को तैयार थे । इस तरह ब्रिटिशो को तुर्की के आक्रमण स ही अपनी रक्षा नही करनी थी बल्कि उन अरबो से भी जो चोरी चमारी का कोई अवसर खोने को तयार नही थे और ब्रिटिश कम्पो के पीछे हमशा लग रहत थे ।

बनावटी कारणो म भारत तथा इगलैंड के सरकारी कमचारियो के दूर दृष्टि म कमी मानी जा सकती है । भारत का सेनापति बौचम्प डफ समय स कम-स-कम दो वप पीछे था । इस तरह जहा मसोपोटामिया म तुक तार काटन वाले औजारो तथा अ य हथियारो का प्रयोग कर रह थे, उसे यही पता नही था कि ऐसी भी कोई चीज होती है । भारत की सनिक व्यवस्था केवल उत्तर पश्चिम सीमा की समस्या निबटान की क्षमता रखती थी । सनिक एसा प्रशिक्षण नही प्राप्त किय हुए थे कि वे जमकर युद्ध कर सके और न ही उनम जमनी जस आग बढे युरोपीय देश जैसा युद्ध कला का आधुनिक अनुशासन था । भारतीय सनिक तिन बन्दूको का प्रयोग कर रहे थ व भागत हुए कबीलो के लिए ही उपयोगी हो सकती थी । वे आग बढती पच्छा सना के लिए सुरक्षात्मक स्थिति नही पदा कर सकत थे और न ही व प्रति आक्रमण के योग्य थे जिस परिस्थिति के अनुसार टिगरिस मे उपस्थित युद्ध पोतो के लिए यह काम छोड दिया गया था। वैसे तो इग्लड मे सैनिको को नवीन जालयुक्त अस्त्र प्रदान किय गए थ जिसम थली म राइफल की गोलिया रखी जा सकती थी और एक कमीज, मोजे आदि भी रख कर पीठपर बाधा जा सकता था । पर ऐसा कुछ भारतीय सेना तक अभी नही पहुचा था । भारतीय सेना म मशीनी आवागमन क साधन की भी कमी था । औषधिया अभी पुराने जमाने के स्तर की ही थी । युद्ध सामग्रिया और अधिकारियो के लिए व ब्रिटेन पर निभर करत थ जो निश्चित है प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि म जब इगलड म स्वय कठिनाइ का सबब बन गया था तो यहा के लोगो की फिकर कैसे हो पाती । एस ही और भी दोष थे। यह तो शक्तिशाली किचनर न भारतीय सना म तमाम परिवतन ला दिया था अ यथा भारतीय सना न जो कुछ इस क्षेत्र म किया था उसस भी बुरा परिणाम सामन आता ।

कारण थे। ब्रिटिशो की असफलता के स्वाभाविक कारण थे—वदेशिक क्षेत्र, विषम जलवायु नदियो से सटे हुए सिचाई की नहरे जा सैनिका के आगे वढन म बाधा पहुचाती थी, भूमि चिह्ना का अभाव छाया का अभाव पीने के पानी की कमी और भौगालिक अज्ञानता। इसके अतिरिक्त बद्दू लोगो द्वारा उत्पन्न की गई कठिनाइया थी। य लोग अरब के निवासी थे जिनके लिए ब्रिटिश और अरबी दोना विदेशी थे और जा अपन खेतो मे खाइया खोद रहे थे क्योकि उनकी सिचाई नहरा मे हस्तक्षेप हो रहा था। वे इ ह अपन देश म गन्दगी से अधिक कुछ नही मानते थे। इन परिस्थितियो म यह स्वाभाविक था कि य इसका लाभ उठाकर लूट पाट कर लाभ उठाते। मरे हुए लागो के बूटा और कपडा का लन के लिए वे कब्रें तक खोदन का तैयार थे। इस तरह ब्रिटिशा को तुर्कों के आक्रमण स ही अपनी रक्षा नही करनी थी बल्कि उन अरबो से भी जा चोरी चमारी का काइ अवसर खाने को तैयार नही थे और ब्रिटिश कैम्पा क पीछे हमशा लग रहत थ।

बनावटी कारणा म भारत तथा इगलैंड के सरकारी कमचारियो के दूर दष्टि म कमी मानी जा सकती है। भारत का सेनापति बौचम्प डफ समय स कम-स-कम दो वष पीछे था। इस तरह जहा मसोपोटामिया म तुक तार काटन याल औजारो तथा अ य हथियारा का प्रयोग कर रह थे उस यही पता नही था कि ऐसी भी कोई चीज होती है। भारत की सनिक व्यवस्था कवल उत्तर पश्चिम सीमा की समस्या निबटाने की क्षमता रखती थी। सैनिक एसा प्रशिक्षण नही प्राप्त किय हुए थ कि व जमकर युद्ध कर सके और न ही उनम जमनी जस आग वढे युरोपीय दश जसा युद्ध कला का आधुनिक अनुशासन था। भारतीय सनिक जिन बन्दूको का प्रयोग कर रहे थ व भागत हुए कबीलो के लिए ही उपयोगी हो सकती थी। व आग वढती फ्ल सना के लिए सुरक्षात्मक स्थिति नही पैदा कर सकत थे और न ही वे प्रति आक्रमण के योग्य थ जिस परिस्थिति के अनुसार टिगरिस म उपस्थित युद्ध पोता के लिए यह काम छोड दिया गया था। वैस तो इगलड मे सनिका को नवीन जालयुक्त अस्त्र प्रदान किय गए थ जिसम थैली म राइफल की गालिया रखी जा सकती थी और एक कमीज, माजे आदि भी रख कर पीठपर बाधा जा सकता था। पर ऐसा कुछ भारतीय सना तक अभी नही पहुचा था। भारतीय सना म मशीनी आवागमन क साधना की भी कमी थी। औपधिया अभी पुराने जमान के स्तर की ही थी। युद्ध सामग्रिया और अधिकारियो के लिए व ब्रिटेन पर निभर करत थ जो निश्चित ही प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि मे जब इग्लड म स्वय कठिनाई का सबब बन गया था तो यहा के लोगा की फिक्र कस हो पाती। एसे ही और भी दोष थे। यह ता शक्तिशाली किचनर न भारतीय सेना म तमाम परिवतन ला दिया था अन्यथा भारतीय सेना ने जो कुछ इस क्षेत्र म किया था उसस भी बुरा परिणाम सामन आता।

पर भारतीय सेना का मुख्य दोष यह था कि इसमें प्रशासकीय और युद्ध सम्बन्धी कार्य एक ही व्यक्ति के हाथ में कर दिए गए थे। यह लार्ड किचनर के समय प्रारम्भ हुआ था। पर सभी सैन्यक्षम अधिकारी और निराजित ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने अपने सद्बुद्धि के विरुद्ध किचनर की नीति को दी थी मान्यता। के दुष्प्रभाव में की थी जिसके फलस्वरूप भारत में नागरिक सत्ता फीकी पड़ गई। इस नयी व्यवस्था के फलस्वरूप कार्यकारिणी द्वारा सरकार के निरीक्षण की प्रथा जाती रही और इसका आरक्षक महत्त्व धीरे धीरे घटता गया और सन्तोषजनक ढंग से कम होता गया।" इस कार्यवाही के कारण और मिलीटरी सम्बन्ध का महत्त्व एक व्यक्ति के हाथ में आ जाने से खतरनाक स्थिति उत्पन्न हो जायगी की ओर ध्यान नहीं दिया गया और जोर देकर यह आयोग ने बताया कि मेसोपोटामिया[1] में असफलता के कारणों में एक प्रमुख यह भी था। चैम्बरलेन ने स्वयं स्वीकार किया कि दुहरा उत्तरदायित्व उसके लिए सम्भावना से स्वयं कठिन हो गया। यह प्रमाण कीय विवरणों में ऐसा उल्लेख किया गया कि उनका लड़ाई में व्यस्त लोगों से लगभग सम्पर्क ही टूट गया। उसने कहा कि, "बम्बई में एक साधारण आदमी भी उससे अधिक जानता था कि मेसोपोटामिया में क्या हो रहा है और शिमला में इसकी जानकारी कम थी।"[2]

मेसोपोटामिया का युद्ध समाप्त हुआ। तुर्की का पराजय हो गया। पर कहानी यहीं समाप्त नहीं हुई। इसके बाद ह्वाइटहाल ने भारत से उत्तरदायित्व अपने हाथ में लिया। ब्रिटिश हथियार सफलतापूर्वक बगदाद पहुँचाए गए पर उसके पूर्व, भारत के सेक्रेटरी आफ स्टेट आस्टेन चैम्बरलेन को जिसे अनेक टेसीफोन पर असफल आक्रमण का दोषी माना जाता था त्यागपत्र देना पड़ा। भारत के गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग को इस मामले में चैम्बरलेन से अधिक दोषी पाया गया, और आयोग ने इनको आरोपित भी किया। पर उनका त्यागपत्र इसलिए स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि यह राष्ट्रहित में हानिकर था। मेसोपोटामिया की कथा तो समाप्त हो गई पर यह प्रश्न पूछा जाता रहा आखिर ब्रिटिश उस देश गए ही क्यों? क्या युद्ध कभी आवश्यक था? इसमें सन्देह नहीं कि मेसोपोटामिया की सारी योजना सुविचारित नहीं थी, जल्दी में बनाई गई थी, बिना आवश्यक तैयारी के कारवाई प्रारम्भ कर दी गई थी और इन सबका एक ही परिणाम था जिसे मेसोपोटामिया की गड़बड़' का नाम दिया जाता है। इसके बाद अंततः मेसोपोटामिया तुर्की से स्वतन्त्र हो गया। पर ईराक ने यह सहारा भी ब्रिटिश को

1 मग्नस, फिलिप: किचनर, लन्दन 1964 पृ० 211 26।

2 बार्कर, ए० जे०: पूर्वोक्त, पृ० 29।

नही बाधने दिया क्योकि उसका विश्वास था कि तुर्की के साम्राज्य का पतन अरब विद्रोह के कारण ही हुआ।

तिब्बत सम्बधी नीति मे परिवतन

हम हार्डिंज की तिब्बत नीति का सदभ देत हुए समाप्त कर सकते है। उसके काल मे तिब्बत मे कुछ और परिवतन हुए।

हार्डिंज के काल मे चीन म विद्रोह हो गया। इधर से तिब्बत म रहने वाली चीनी सेना को जब नियमित रूप से वेतन और सामान नही मिला तो इमने विद्रोह कर दिया और लासा सरकार के खजाने को लूट लिया। इसके फलस्वरूप तिब्बत सरकार न उ हे वहा से वापस कर दिया। यह अवसर था जब दलाईलामा दो वर्षो के बाद अपन देश मे पुन पहुचा और चीनी रेजीडेन्ट से प्रशासन अपने हाथ म ले लिया और उसे पूरी सुरक्षा के लिए आश्वस्त किया। चीन सरकार ने दलाई लामा के विरुद्ध कारवाई के स्थान पर उसे सारी शक्ति प्रदान करने का निणय दे दिया। 1912मे इन अफवाहा के बीच कि चीन तिब्बत पर आक्रमण करने वाला है भारत सरकार न चीन से स्पष्ट शब्दो म बता दिया कि वैसे ही वह उस क्षेत्र म चीनी सप्रभुता को स्वीकार करता है पर तिब्बत को वह चीन का एक प्रात बन जाने देना पसन्द नही करेगा। एक सम्मिलित सम्मेलन म 1913 14 म शिमला और दिल्ली मे, जिसमे भारत सरकार के विदेश सचिव को सभापति बनाया गया चीन और तिब्बत के प्रतिनिधि भी आमन्त्रित किये गय। इस प्रश्न को हल कर लिया गया और तिब्बत मे शान्ति स्थापित हो गई। दलाई लामा के हाथ मे सारी शक्ति पुन आ गई और उसने प्रथम महायुद्ध मे ब्रिटिश की सहायता की।

होम रूल आदोलन

लार्ड हार्डिंज के काल मे राष्ट्रीय आन्दोलन के नया रूप और विस्तार ग्रहण किया। होम रूल आन्दोलन, पान इस्लाम आन्दोलन, गदर पार्टी तथा आर्थिक विद्रोह आदि जितने भी आन्दोलन हुए उसकी सब की अपनी विशेषता थी—और इन सबा की पृष्ठभूमि म प्रथम विश्व युद्ध और उसका प्रभाव था।

1914 म प्रारम्भ होने वाले महायुद्ध न भारतीय राजनीति को बुरी तरह म प्रभावित करना प्रारम्भ किया। 'इस युद्ध म भारत का सम्मिलित होना केवल न तो नाममात्र का काय था और न ही एक मैत्रीभाव का प्रदशन।'[1] भारत न अपन हजारा नव-जवाना को लडन का भेजा और लडत हुए इग्लड की सहायता म

1 पॉल के० टी० पूर्वोक्त, पृ० 116।

लिए करोडो रुपय भेजे। भारतीय राजनतिक दलो ने अपना पूण समथन दिया। और यह सब बेकार नहीं किया जा रहा था। लाड हार्डिंज न जोर दिया कि भारतीय सेना को 'सहायका की तरह नही और न ही कम महत्व क मामरिक स्थाना पर लडन को भेजा जाय बल्कि युरोपीय सैनिको के समान दर्जा प्रदान कर इन्ह पश्चिमी क्षेत्र म खाइया मे लडने के लिए भेजा जाय जिस पर कब्जा किये रहन से युद्ध के परिणाम निकलन की सम्भावना थी।[1]

'फ्लैण्डस के पाले और बर्फील मदाना म भारतीय सनिका की बहादुरी तथा मैसोपोटामिया के रगिस्तान की तपती धूप म उनके शौय न विश्वव्यापी प्रशसा अजित की और भारत का राज्य सहित शान्ति सम्मलन का सदस्य बनन का सौभाग्य प्राप्त हुआ ... पश्चिम वाला स सम्पक और युद्ध सकट म साथ साथ कष्ट सहकर लडन की क्रिया न उनम समानता का भाव तो भरा ही, उनके दृष्टिकाण का विस्तत भी किया ... । विल्सन का आत्म निणय का सिद्धान्त जो शान्ति समझौत का एक प्रमुख अग बन गया और जिसक प्रभाव स युराप म कई देशा का जन्म हुआ, उसका भारत के प्रत्यक व्यक्ति क हृदय म बडा प्रभाव हुआ और वह इसका प्रबल अनुयायी हो गया।"

एक तरह से होम रूल आन्दोलन युद्ध का ही एक प्रतिफल था। युद्ध ने भारतीय बुद्धि को विशालता प्रदान की और उनम आशा महत्त्वाकाक्षा व उत्साह का जन्म देकर इस सगठन की स्थापना का सभव बना दिया। एनी बसन्ट ने घोषणा की कि भारत अपन पुत्रा के खून क साथ और अपने पुत्रिया के आसुओ के साथ सौदा नही करता कि इसके बदले उस इतनी स्वतन्त्रता और अधिकार दिये जाय। भारत एक राष्ट्र की हैसियत स अधिकार मागता है कि साम्राज्य के लोगा के बीच उसके प्रति न्याय किया जाय। भारत ने इसकी माग युद्ध से पहले की। भारत इसकी माग युद्धकाल म भी कर रहा है। भारत इसके विषय मे युद्ध के बाद भी माग जारी रखगा। पर यह माग इनाम क रूप म नही बल्कि अधिकार के रूप म होगी। इस सब ध म कोई गलत कहानी नही होनी चाहिए।'[2]

अप्रैल 1916 मे पूना मे तिलक न होम रूल आन्दोलन प्रारम्भ किया और एनी बेसेन्ट ने अगले सितम्बर म मद्रास म इसकी स्थापना कर दी। दोनो नेताआ ने एक दूसरे से मिलकर काय किया और भारत म राजनैतिक जागरण लाने मे प्रमुख भूमिका निभाई। मद्रास म यह आन्दोलन बहुत लोकप्रिय हुआ। तमाम

---

1 जकारियास रिनेसेन्ट इडिया प० 163।
2 बरतर्पा एस० सी० इडियन नेशनल मूवमेन्ट 154 55।
3 हाऊ इडिया राट फार फ्रीडम प० 580।

छात्र इसमे सम्मिलित हो गये और थियोसोफिकल लाजा न जहा भी ये थे, इसकी शाखाये खोलनी प्रारम्भ कर दी। अल्पकाल ही मे यह आन्दोलन इतना शक्ति शाली हो गया कि मद्रास सरकार को एनी बेसेन्ट को उनके दो सहायको वादिया और अरुन्डाले सहित जेल मे डाल दिया गया। तिलक से दूसरी आर 10 हजार रुपये की दो जमानतें और 20 हजार रुपये का व्यक्तिगत बा ड देने को कहा गया। पर यह आदेश बम्बई हाईकोट मे एक अपील के बाद रद्द हो गया और कुछ दिना मे बाद मद्राम सरकार न एनी बेस ट को भी मुक्त कर दिया।

जहा तक इस आन्दालन के उददेश्य का प्रश्न था हम एनी बेसेन्ट के उन लेख का हवाला दे सकत है जिसको उ होन कामनवील के प्रथम अक म इस तरह से प्रस्तुत किया राजनैतिक सुधार के क्षेत्र म हमारा उद्देश्य ग्राम कौंसिलो, जिला, म्युनिसिपल बोड प्रान्तीय एसेम्बली स होते हुए राष्ट्रीय ससद तक जिन्ह आत्म प्रशासित उपनिवेशा के लेजिस्लेटिव बाडी के शक्ति के समान ही अधिकार हो सगठन स्थापित करना है उसके अतिरिक्त साम्राज्य के आत्म प्रशासित राज्यो के प्रतिनिधि भी इम्पीरियल ससद म भेजे जाय।" दूसरे शब्दा म ब्रिटिश राष्ट्रमडल उनका उद्देश्य था जिसम भारत को अन्य राष्ट्रा के समान का दजा प्रदान किया जायेगा।

पर होम रूल आदोलन अधिक दिनो तक नही चल पाया। अगस्त 1917 म भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट माटेग्यु ने घोषणा की कि स्वशासन की चरणो मे स्थापना की जायेगी। जल्दी ही माटेग्यु भारत आय जिससे इस सबन्ध म परामश प्राप्त कर सकें आर इस सबन्ध मे शीघ्र कदम उठा सकें। चूकि इस आदालन का अधिकतर उद्देश्य पूरा हो गया था इसलिए तजी से इसका पतन प्रारम्भ हा गया। श्रीमती बेस ट को 1917 म काग्रेस का प्रेसीडेन्ट चुना गया और इस तरह यह आदोलन समाप्त हा गया।

पान इस्लाम आदोलन

पान इस्लाम आदोलन 20वी सदी के दूसरे दसक म उत्तरी भारत मे सगठित किया गया। यह आदोलन इस्लाम से जुडा था पर इसके प्रति हिन्दुओ की सहानुभूति भी थी। आदालन का आधार तो धम था पर प्रभाव मे यह राजनतिक और ब्रिटिश विरोधी भी था। इसकी प्रेरणा का स्रोत भारतीय मुसलमानो की तुर्की के प्रति सहानुभूति थी।

एक लबे अरसे से तुर्की युरोप का एक बीमार व्यक्ति बन चुका था। इसके नियत्रण मे भिन्न भिन्न युरापीय जातिया दबाव डालकर स्वतत्र हाने के प्रयास मे जुटी थी। युरोप की बडी शक्तियो न इस स्थिति स लाभ उठान की सदा चेष्टा की। इस सबका परिणाम हुआ कि एक जमाने मे शक्तिशाली कह जान

वाले तुर्की साम्राज्य का पतन प्रारंभ हो गया। तुर्की चूंकि एक मुस्लिम देश था इस कारण भारतीय मुसलमानों में इसके प्रति सहानुभूति स्वाभाविक थी।

1911-13 में तुर्की इटली के एवं बाल्कन युद्धों के काल में ब्रिटेन ने पूर्ण तटस्थता की नीति का प्रदर्शन किया जबकि भारतीय मुसलमान आशा करते थे कि ब्रिटिश तुर्कों के प्रति सहानुभूति का रुख अपनाये। ब्रिटिश प्रधानमंत्री एस्क्विथ के भाषण से तो यह लगा कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री केवल तुर्की का ही विरोधी नहीं है बल्कि इस्लाम का भी है। उसने यह भाषण नवम्बर, 1912 में दिया।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान तुर्की ने ब्रिटेन के शत्रुओं का साथ दिया। भारतीय मुसलमानों के पान इस्लाम वर्ग ने तुर्की, अरब, जर्मनी और अफगानिस्तान से अपना सम्पर्क स्थापित किया। पर केन्द्रीय शक्तियों की पराजय के बाद तुर्की के विरुद्ध कठोर व्यवहार का प्रदर्शन हुआ। इसके अतिरिक्त इस अफवाह ने भी जोर पकड़ा कि सुल्तान अब्दुल हमीद ने और बाद में अनवर पाशा ने भारत के कुछ मुसलमानों को पान इस्लाम आंदोलन को तीव्र करने को कहा। एक समय तो उन्होंने हिन्दू क्रांतिकारियों के साथ भी अपना नाता जोड़ लिया और ब्रिटिशों के विरुद्ध एकजुट हो गये। इसी के परिणामस्वरूप अप्रैल 1919 में पंजाब और बम्बई में विद्रोह हुए और 1921-22 में इससे भी गम्भीर रूप से मोपला विद्रोह सामने आया। पर यह सब जल्दी ही समाप्त हो गया जिसके फलस्वरूप पूरे देश में कुछ वर्षों के लिए अव्यवस्था और खून खराबी का दौर चालू हो गया।

भारत में देहाती मुसलमान चूंकि मुख्य रूप से स्थानीय राजनीति में ही दिलचस्पी लेते थे और उनका ध्यान उच्च शरीर हिन्दुओं के अपने विरुद्ध शोषण में ही लगा रहता था। इस कारण यह आन्दोलन अधिकतर नगरीय क्षेत्र तक ही सीमित रह गया। इस आन्दोलन में प्रभावी सदस्यों में से एक लाहौर से प्रकाशित जमींदार के संपादक जफर अली खां थे। 1912 में उन्होंने तुर्की अर्द्धचन्द्र के लिए चन्दा एकत्रित करना प्रारम्भ किया। प्राप्त धन एकत्रित कर वे स्वयं कुस्तुनतुनिया इसे वजीर को देने के लिए गये। वापसी के बाद उनके समाचार पत्र का लहजा और ब्रिटिश विरोधी हो गया। इसके कारण 1913 में प्रेस एक्ट के अन्तर्गत उनकी जमानत जप्त हो गयी। कुछ ही दिनों के बाद फिर उनकी दुबारा जमानत ही जब्त नहीं हुई बल्कि उनका प्रेस जब्त कर लिया गया। मुहम्मद अली और उनके भाई शौकत अली भी इस आन्दोलन के कमठ नेता थे।

1914 के प्रारम्भ में तुर्की का सल जनरल लाहौर के बादशाही मस्जिद के लिए एक सुन्दर गलीचा तुर्की के सुल्तान की ओर से भेंट करने आया। यह भेंट भारतीय मुसलमानों द्वारा प्रदत्त सहायता के सन्दर्भ में दी गई थी। और कुछ ही दिनों में दो तुर्की डॉक्टर भी आये।

तुर्की के 1914 म युद्ध मे प्रवेश के बाद क्रिसमस सप्ताह मे रावलपिंडी मे एक मुस्लिम शैक्षिक सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमे अबल कलाम आजाद और मुहम्मद अली सम्मिलित हुए। सम्मेलन के बाद इन लोगो न चाय पार्टियो म लाहौर के कालेजो म तथा अय स्थानो पर युवा मुस्लिम छात्रो और नागरिको के समक्ष भाषण किय। फरवरी 1915 म 15 लाहौर के छात्र तथा कुछ पेशावर के छात्र इसके परिणामस्वरूप गायब हो गये और भारतीय क्राति कारी नेताओ महेन्द्र प्रताप और बरकतुल्ला के सम्पक मे आ गये। महेन्द्र प्रताप और बरकतुल्ला दोनो जमन सहायता से स्थापित अस्थायी भारतीय सरकार के सयुक्त अध्यक्ष थे और इनका काबुल मे अड्डा था।

इन छात्रो म से कुछ को फारस मध्य एशिया और जापान भी भेजा गया। इन छात्रो म तीन और एक प्रसिद्ध सिख मिशनरी डा० मथरा सिंह ब्रिटिश के मिशन द्वारा फारस की सीमा पर पकड लिए गए। उन्हे ब्रिटिश अधिकारियो को सौप दिया गया जिन्होने उन्हे फासी पर लटका लिया। जिन दो छात्रो को फासी पर लटकाया गया उनके पास तुर्की के सुल्तान के लिए पत्र था तथा तीसरे छात्र मथरा सिंह को चीन और जापान की यात्रा पर जाना था। इन्ही छात्रो मे से किसी स ब्रिटिश को अगस्त 1916 मे एक सूचना मिली जिसे "सिल्क लेटर" षडयन्त्र का नाम दिया जाता है जो काबुल मे 1915 16 मे प्रारम्भ हुआ था।

तथाकथित 'सिल्क लेटर" षडयन्त्र सभी इस्लामिक शक्तियो—तुर्क अफगान, अरब, सीमा के कबीलो और भारत के मुसलमानो को ब्रिटिशों के विरुद्ध एक करना चाहता था। योजना यह थी कि सीमा के कबीले, क्रान्तिकारी हिन्दू और अमेरिका मे वापस आये सिख भारत मे एक दूसरे से मिलकर एक षडयन्त्र म भाग लेंगे जो चालाकी से मध्य एशिया, हेजाज, मेसोपोटामिया और भारत म एक साथ सगठित किया गया है और जब काय प्रारम्भ हो जायगा तो तमाम सहायता विभिन्न स्थानो से प्राप्त होगी।

इसी समय दो छात्रो ने जो पजाब के मुस्लिम सैनिक के लडके थे, काबुल स एक नौकर को एक सूचना के साथ अपने पिता के पास भेजा। जब पकडे जाने पर नौकर को बहुत पीटा गया तो उसने यह स्वीकार किया कि वह फारसी म लिखा एक पत्र अपने साथ लाया था। यह पत्र एक पीले सिल्क पर लिखा गया था और इस कपडे को उसके कोट के अन्दर सिल दिया गया था। 19 जुलाई 1916 को इस पत्र मे, जो महमूद हसन के पास भेजा गया था और जो सिंध का एक धार्मिक नेता था, काबुल के आन्दोलन की प्रगति का विवरण था। इसमे प्रान्तीय सरकार की रचना की चर्चा थी और ब्रिटिश के विरुद्ध 'खुदा की सेना' के सगठन की योजना।

1916 के प्रारम्भ मे अस्थायी सरकार ने तुर्किस्तान म रूमी गवनर जनरल के पास एक मिशन भेजा था और एक रूस के जार के पास भी जिसम उस से इग्लैण्ड से नाता तोडने को कहा गया था। जार न यह सूचना ब्रिटिश अधिकारियो को प्रेषित कर दी। पर बाद म बोल्शेविको ने इस प्रस्ताव का लाभ उठाकर ब्रिटिशो के पीठ म छुरा मारने की चेष्टा की।

इसम पता चलता है कि इस आन्दोलन की योजनायें कितनी गम्भीर और कितनी विस्तृत थी। महमूद हसन जिसको सिल्क पत्र सम्बोधित किया गया था, हेजाज के तुर्की सेनापति गालिब पाशा के सम्पर्क म था जिससे उसने ब्रिटिशो के विरुद्ध जेहाद छेडने की घोषणा प्राप्त कर ली थी जिसकी प्रतियां गालिब नामा के नाम स भारत म काफी सख्या म बाटी गइ। खुदा की सेना का केन्द्र मदीना म स्थापित होन वाला था और महमूद हसन उसका सेनापति होने वाला था।

पर पजाब म इस सम्बन्ध म सरकार न तुर्की पक्षीय लोगो म से दजन भर लोगो को नजरबन्द करने के अलावा विशेष कुछ नही किया। जफर अली खा को युद्ध काल तक अपने गाव की सीमा तक ही रहने का आदेश दे दिया गया। अली भाइयो को दिल्ली के पास के एक क्षेत्र के दायरे म रोक दिया गया। अपनी मुक्ति के बाद जफर अली खा ने अपनी कारवाइया फिर प्रारम्भ कर दी और 1920 म वह 5 वष के लिए जेल म डाल दिये गय। अली भाइयो और श्री गाधी को भी इन्ही परिस्थितियो म लम्बी कद की सजा दी गई। काबुल म मुस्लिम नताओ न बर्लिन स प्रोत्साहित हिन्द नताओ स सम्पर्क कर और भारत स सम्पर्क कर अपना आन्दोलन आगे बढाया पर पजाब म सिखो और हिन्दुओ का आन्दोलन दूसरे तरह का था। नताओ के कैद होने के बाद हिन्दू और मुसलमानो मे भेदभाव पुन बढने लगा।

इस आन्दोलन को करारा आघात उस समय लगा जब तुर्की गणतन्त्र ने सुल्तान का पद से हटा दिया। इसन खिलाफत का अन्त कर दिया और ओस्मान परिवार को कही का नही रखा।

गदर पार्टी

अन्य आन्दोलनो के विपरीत गदर पार्टी भारत के बाहर रहने वाले भारतीय प्रवासियो द्वारा सगठित की गई जिसमे सिखो न प्रभावपूर्ण व प्रमुख भूमिका अदा की। इसकी उत्पत्ति तथा पजाब व अन्य स्थानो मे जो इसकी भूमिका रही उसका सक्षिप्त विवरण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है।

ब्रिटिशो द्वारा पजाब के अपहरण के पूर्व, इस प्रान्त के उत्तरी और उत्तर पश्चिमी भाग मे बस्ती कम थी। पर शीघ्र ही नहरो और अन्य सिंचाई के साधनो के विकास तथा कृषि की प्रगति ने इस क्षेत्र की ओर पूर्व क्षेत्र के सिखो को आकर

बसन की प्रेरणा दी जो भारत के समद्धतम किसाना म गिन जान लगे। पर कुछ दिनो मे परिवार मे वद्धि तथा कुछ अय बाता के कारण जमीन कम होती गइ। सूदखोरी के अभिशाप न उन्हे और गरीब बना दिया। 1905 से 1910 के बीच मानसून की असफलता ने दुर्भिक्षता की स्थिति ला दी। डॉ० तारकनाथ दास ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया इन वल्ड पालिटिक्स' म यह लिखा है कि ब्रिटिशो की साम्राज्यवादी और आर्थिक शोषण की नीति ने उन्ह और गरीब बना दिया जिसके कारण वे जीविका का साधन ढूढने के लिए विदेश जान का बाध्य हो गये।[1]

प्रारम्भ म ये बगाल गये। पर बाद म य बर्मा, मलाया राज्य, हागकाग सिंगापुर, चीन और अय स्थाना को भी गये जहा य चौकीदार, पुलिस इलेक्ट्रिशियन, टैक्सी ड्राइवर आदि क रूप मे काय करते थ। 1888 म कुछ सिख सैनिको ने लदन मे महारानी विक्टोरिया की जुबली देखी और लौटते हुए कनाडा को देखा। यहा की सम्पन्नता से व बहुत प्रभावित हुए। इसके बाद स्टीमशिप कम्पनिया स्थापित हो गइ जिन्होने पजाबियो और उनम भी सिखो का यात्रा के लिए आकृष्ट किया। 1904 म जब हागकाग शघाइ आदि के सिखो को पता चला कि कनाडा व अमेरिका म पारिश्रमिक भी अधिक है और लाभ भी, तो उनमे से तमाम ने वहा जाने का निणय किया। 1914 तक 20 लाख भारतीय भारत के बाहर रह रहे और काम कर रहे थे। केवल अफ्रीका म ही 1,49 790 भारतीय थ। पूर अमेरिकन प्रायद्वीप म 1910 म भारतीय प्रवासियो की सख्या लाखो मे थी।

1906 07 के बीच अमेरिका म अधिक मजदूरी के लिए जो श्रमिक आदोलन हो रहा था, सस्ते भारतीय मजदूरो के पहुचन से उसको बडा आघात पहुचा जिसक परिणामस्वरूप अमेरिकन मजदूर उनस घणा करन लगे। 1906 म कनाडा विधायिका ने एशिया से आने वालो पर नियन्त्रण हेतु इमीग्रेशन ऐक्ट पारित किया। 1907 म ब्रिटिश कोलम्बिया म एक नियम क अन्तगत भारतीयो से मताधिकार छीन लिया गया। और 1908 म उनका नगरपालिका सम्बधी मत का अधिकार भी छीन लिया गया। बाद म बहुत अरस स कम भारतीयो म अधिकार वापस लेन के लिए नियम बनाय गये। 1906 07 म सिखो न ब्रिटिश कोलबिया के वानकवर नामक स्थान पर एक गुरुद्वारा 15 000 पौड म बनवाया। यहा म सिखो न अपनी फैक्ट्रिया स्थापित की। सत तजासिह के प्रयास म गुरुनानक माइनिंग कम्पनी की स्थापना $2\frac{1}{2}$ लाख रुपय नगाकर की गइ। हॉवर्ड हायर म 25 हजार पौड मे 250 एकड भूमि गुरुनानक कम्पनी बनान क लिए खरीदी

1 दास तारकनाथ इडिया इन वल्ड पालिटिक्स पृ० 213।

गइ। एक दूसरा गुरुद्वारा विक्टोरिया म स्थापित किया गया। इस सब के कारण यूरोपीयो म इर्ष्या की भावना पैदा हुई। अधिकारिया न इन भारतीयो पर यह प्रभाव डाला कि व ब्रिटिश हो दुरा चले जाय क्योकि उनके अनुसार उन्ह वहा अधिक लाभ रहगा। पर सच बात यह थी कि यहा जगला म भरा एक क्षेत्र था और वहा पीने के पानी का अभाव था। भारतीय जाल म नही फस जिससे अधिकारी और असन्तुष्ट हो गये।

दक्षिणी अफ्रीका म जाति भेद के विषय म विशेष परिभाषा की आवश्यकता नही है। यहा पर भारतीयो पर बड़े प्रतिबन्ध थे और उन पर कई भेदभावपूर्ण कर भी आरोपित थे। 1893 म महात्मा गाधी को इनके विरुद्ध एक आन्दोलन प्रारम्भ करना पडा जो 21 वर्ष तक चला। 1912 म जी० के० गोखले भी भारतीयो का सघर्ष देखने के लिए यहा गये।

फिजी मे भी स्थिति बेहतर नही थी। यहा भारतीयो के साथ अमानुषिक व्यवहार किया जा रहा था। चूकि व अपना परिवार नहीं ला पा रहे थे इस कारण उनका चरित्र भी गिरता जा रहा था। जी० डब्लू० बर्टन न अपनी पुस्तक फिजी टुडे म बडी हृदय विदारक कथा प्रस्तुत की है "एक भारतीय महिला अपने बीमार बच्चे को कुली लाइन म छोडकर खेत म काम करने गई। दोपहर को अवकाश म जब वह अपने बीमार बच्चे को देखने आई तो उसके पीछे-पीछे जासूसी करता हुआ यूरोपीय सार्जेण्ट आया और अधा की तरह उस बेत से पीटने लगा। भारतीय महिला अपने बच्चे सहित सार्जेण्ट के पैर पर गिरी हुई पडी थी और वह उस पर बेत स प्रहार करता ही जा रहा था।"[1]

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड म भी लगभग ऐसी ही स्थिति थी। दक्षिणी भारतीयो स भी मताया म घृणा की जाती थी।

अमेरिका महाद्वीप मे भारतीयो के कष्टो को कम करने के लिए तमाम प्रयास किय गय। पर वे सब बेकार गये। 14 मार्च 1913 को वानकोवर स भाइ बलवन्तसिंह के नेतृत्व म और फिल्लौर स सरदार नदसिंह व सरदार नारायण सिंह के नेतृत्व म एक शिष्टमडल इगलैण्ड पहुचा। पर वे वहा भी अधिकारियो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट नही कर सके। इसके बाद यह शिष्ट-मडल भारत आया। कई स्थानो पर बठक आयोजित की गइ। अमृतसर की एक बैठक म बलवन्त सिंह न अपनी कठिनाइयो का स्पष्ट ब्यौरा दिया। शिष्टमडल वाइसराय और पजाब के गवनर से शिमला म मिला। पर इस सब का कोइ परिणाम नही निकला और शिष्टमडल को निराश वापस जाना पडा।

पर शिष्टमडल के अमरिका पहुचने से पूर्व ही यह अनुभव कर लिया गया

1 बर्टन जा० डब्लू० फिजी टुडे पृ० 189।

कि इस सब कष्ट का कारण मुख्य रूप से भारत की दासता है और जब तक इसे स्वतन्त्रता नही प्राप्त होती तब तक कोई भी भारतीय विश्व के देशो म प्रतिष्ठा नही प्राप्त कर सकता। इसी कारण माच 1913 म करतार सिह सरावा, कम सिह चीमा, लाला हरदयाल, ज्वालासिह, सोहन सिह भकना, वसाखा सिह आदि न विदेशो मे बसने वालो को वाशिगटन म एक सम्मेलन मे बुलाया। इसम 200 लोग सम्मिलित हुए और उन्हान एक हिन्दी 'एसोसिएशन' की स्थापना की जिस बाद मे 'गदर पार्टी' का नाम दिया गया।

इसका मुख्य केन्द्र सनफ्रासिस्को म रखा गया। इसका मुख्य उद्देश्य घोषित किया गया भारत को शक्ति के माध्यम से स्वतन्त्र कराना। इसके पहले प्रेसीडेंट बाबा सोहन सिह भकना थे और सेक्रेट्री लाला हरदयाल। इसके कोषाध्यक्ष अम्बाला के प० काशीराम थे। सगठन सचिवा मे लुधियाना के मुशी करीम बख्श और होशियारपुर जिले के मुशीराम थ। कायकारिणी के सदस्यो मे थे—फीरोजपुर म चुहर चाक के बाबा अरुण सिह अमतसर के वसाखा सिह ददहर, जालधर के भाई करम सिह चीमा, लुधियाना के करतारसिह सराबा, फीराजपुर के निधान सिह चुग, अमृतसर के ईशा सिह मगना होशियारपुर जिल के प० जगतराम हरियाना, बरकतुल्ला और मुशी करीम बख्श। अधिक प्रवासी सिख थे इसलिए दल मे उन्ही का बहुमत था। इस दल के नेताओ और कायकारिणी के सदस्यो ने अपना सारा धन दल को समर्पित कर दिया।

अक्टूबर 1913 म हिन्दी एसोसियेशन की दूसरी सभा म यह निश्चय किया गया कि इसका एक समाचार-पत्र निकाला जाय और इस तरह 1 नवम्बर, 1913 को गदर' प्रारभ हुआ जो एक साथ हिन्दी, उर्दू गुरुमुखी और मराठी म प्रकाशित हाना था। हरदयाल इसके सपादक थे [illegible] दी ही कैद कर लिया गया पर उनके मित्रो ने उनकी जमानत [illegible]। [illegible] जमानत के आधार [illegible] उनके मित्रा ने उन्हे गायब हो जाने [illegible] जमानत का पैसा [illegible] कर दिया। इस तरह अमरिका मे [illegible] ओझल हो गय।

हरदयाल के अतिरिक्त जो अन्य [illegible] गदर क लिए [illegible] करते थे व थे करतारसिह सराबा, [illegible], [illegible] और [illegible] पथ्वीसिह। प्रेस के प्रबधक पडित [illegible] थे। पार्टी [illegible] और वस्त्र का व्यय वहन करती थी [illegible] कोई अन्य पारिश्रमिक [illegible] होना था। यह समाचारपत्र [illegible], फिजी, [illegible] न्युजीलैंड जजीवार, ईस्ट [illegible], [illegible], स्याम, बमा, [illegible] पहुचन लगा। इसी तरह [illegible] विश्व मे हर [illegible] गई।

गदर की कारवाई म सम्मिलित होन के लिए फासी द दी गई, 6 को काल पानी की सजा दी गई और 6 को पुन पकडकर जेल म डाल दिया गया और 2 पुलिस म दलाल हो गय। स्पष्ट है कि यदि जल म रहन वाले भी बाहर होते तो कितनी हिंसात्मक स्थिति पदा कर देत।

इसी बीच अक्टूबर 1914 म विदेशा म हजारा सिख और आ पहुचे जिनका पूछ-ताछ के बाद तीन भागा म बाटा गया (1) जो सचमुच खतरनाक समझे गय उन्ह जेल म डाल दिया गया, (2) व जो कम खतरनाक थ उनकी कारवाई उनक गाव तक ही सीमित कर दी गई (3) वे जिन्हे चेतावनी देकर छोड दिया गया 8 000 लोगा म से जो इस प्रान्त मे युद्ध के प्रथम दो वर्षों मे प्रविष्ट हुए लगभग 400 जेल म डाल दिय गये, 2 500 को उनके गावा स बाध दिया गया शेष को मुक्त कर दिया गया।

पर बहुत से गदर के सदस्य पूछ-ताछ के दौरान ही जो इग्रेस आर्डीनेन्स के अतगत जारी की जा रही थी, खिसक लिय और स्थानीय क्रातिकारी नेताओ स सपक स्थापित किया। करतारसिंह सराभा एन० जी० पिंगले, पडित जगतराम काशीराम पृथ्वीसिंह, जगतसिंह आर अन्य बहुत से लोग सनिक छावनियो म जाकर सेना का समथन ला कि व उचित समय पर विद्रोह करें। रावलपिंडी लाहार फीरोजपुर, लखनऊ फैजाबाद कानपुर, इलाहाबाद, और जबलपुर मे उनका यह प्रयास सफल हुआ। अक्टूबर 1914 स सितम्बर 1915 के बीच एक से एक धमाके मध्य पजाब म हुए आर फीरोजपुर मे हथियार गह पर ही अधिकार करन का प्रयास किया गया। इसी समय रासबिहारी पजाब आय और उन्होंने कारवाई का नतृत्व अपने हाथ म लिया। वह एन० जी० पिंगले के साथ आदोलन की बुद्धि के रूप मे काय करने लगे और भाई परमानद जो आय समाज कॉलेज म एक प्रोफेसर थे, वे असतुष्ट हिन्दू बुद्धिजीवियो तथा गदर पार्टी के सिखो के बीच एक कडी बन गये।

सभी काय योजनानुसार हो रह थे। रासबिहारी और पिंगले का काय-केन्द्र अमृतसर म था और वे भारतीय सैनिको को उत्तेजित करने मे लगे थे, विशेषकर उत्तरी भारत के सिखो आर राजपूतो के बीच। उन्होंने 21 फरवरी, 1915 के लिए एक सामान्य विद्रोह की योजना बनाई। पर दुभाग्य से उनकी योयना गुप्त न रह सकी। उन्होन अपना केन्द्र बदलकर लाहार म कर दिया और विद्रोह की याजना की तिथि बदलकर 19 फरवरी कर दी। पर सरकार ने सही समय पर कारवाई की। लाहौर के 4 मकानो पर छापा डाला गया, 18 लोगो को उनके कागजात योजनाओ और बमो आदि सहित पकड लिया गया, पर रास बिहारी और पिंगले बच निकले। अन्य स्थानो और कैन्टो पर सही समय पर कारवाई की गई। एनी लासन और हैवरिक इनसे सपक नही कर पाये और

पकड लिए गए। एक सप्ताह बाद पिंगले को 12वी कवलरी की लाइन मे मेरठ म पकड लिया गया। उनके पास इतने बम थे कि एक रेजीमेन्ट उडाया जा सकता था।

क्रातिकारियो के विरुद्ध वैधानिक कारवाइया प्रारम्भ की गइ जिसके फलस्वरूप निम्न प्रसिद्ध मुकदमे प्रारभ हुए, लाहौर षडयन्त्र केस, शिमला षडयन्त्र केस, बनारस षडयन्त्र केस फैजाबाद मे सार्जेण्ट हरनामसिंह पर मुकदमा दिल्ली षडयन्त्र केस बजबज मे गिरफ्तार लोगो पर मुकदमा, फीरोजपुर षडयन्त्र केस, मेरठ, बरीसाल और बर्मा के मुकदमे एव शघाई तथा सिंगापुर म चलने वाले मुकदमे।

पिंगल और परमानन्द को फासी की सजा हुई। पिंगले को फासी पर लटका दिया गया। परमानन्द की सजा वाइसराय न आजीवन कारावास मे बदल दी और बाद मे उन्हे छोड दिया गया। सक्षेप म 175 गदर पार्टी के अपराधियो को विशेष ट्रिब्युनलो के समक्ष लाया गया। इनम से 136 को मौत या मौत से कुछ कम की सजा दी गई 38 को मौत की सजा दी गई जिसम से 18 को काले पानी की सजा मे बदल दिया गया और 20 को फासी पर लटका दिया गया। 58 लोगो को काले पानी की सजा हुई और 58 को या तो काले पानी की या कुछ कम काल के लिए कद किया गया। 115 की जायदाद जब्त कर ली गई, पर अधिकतर मामलो म इस स्थानीय सरकार ने वापस कर दिया जिन्हे नजरबन्द किया गया था उन्हे सिक्युरिटी पर छोड दिया गया। और युद्ध समाप्त होते होते आधे दजन लोग ही जल म थे।

सरकार ने इस आदोलन को दबाने के लिए कई कदम उठाये। पुरानी 'बाटो और शासन करो' की नीति अपनाई गई। 'एक सिख" गदर सदस्य द्वारा षडयन्त्र और धन की हेराफेरी के लिए रामचन्द्र की जब हत्या कर दी गइ तो हिन्दुओ को दल छोडने के लिए उत्साहित किया गया और फुसलाया गया। ठीक इसी तरह से डॉ० सैय्यद हुसैन और शौकतअली न प्रान्त का दौरा करना प्रारम्भ किया और मुस्लिम लीग स्थापित कर मुसलमानो को उसम आन के लिए कहा। कुछ प्रमुख सिखो को भी एक अलग आदोलन चलाने के लिए तैयार कर लिया गया '

' इन पर आरोप भी लगाय गये कि वे मस्जिदो स होकर तस्करी का धधा कर रहे है और प्राय होने वाली हिन्दुओ की हत्या के पीछे उन्ही का हाथ है।' अमेरिका की इमीग्रेशन सर्विस और ब्रिटिश कासलेट न इस काय के लिए भारतीयो को सूचना दन के लिए चुना। पर इनम स कई जसे नगीनाराय सतराम, पाडे नानालाल, नाथूराम और गरूराम अमेरिका म तथा भारतीय सी० आइ०

डी० एक भूतपूर्व अधिकारी हॉपकिन्सन को गदर पार्टी ने मार डाला।[1]

बुरी तरह से प्रभावित पजाब के जिला म प्रमुख सिख लोगा की समितियाँ स्थापित कर दी गइ जा डिप्टी कमिश्नरा का प्रवासिया के सम्बन्ध मे छानबीन मे सहायता करते थे और उन्ह नियन्त्रित करन म भी। स्वाभाविक रूप स इसके कारण बहुत से प्रमुख सिखा की भी हत्यायें हुइ। उदाहरणाथ जून 1915 मे अमृतसर के अचारसिह को मार डाला गया। अगस्त मे अमृतसर के कपूर सिह के साथ भी यही व्यवहार किया गया। एसे अधिकतर मामला म हत्यारे पकडे गय और उन्ह दडित किया गया।

हार्डिंज 1916 म भारत से पदमुक्त हुआ। अपनी वापसी के बाद उसे गाटर का नाइट बना दिया गया। थाडे ही दिनो बाद उसे विदेश मत्रालय म पुन स्थायी अडर सेक्रेटरी नियुक्त कर दिया गया। 1920 मे उसे पेरिस म ब्रिटेन का राजदूत नियुक्त किया गया। 1922 मे उसकी डिप्लोमैटिक सर्विस का काल समाप्त हो गया। पर वह हाउस आफ लार्ड्स की बैठका मे नियमित रूप से आता रहा। अगस्त 1944 मे 86 वष की परिपक्वावस्था मे उसकी मत्यु हो गई।

"चरित्र, शक्ति और निश्चय से भरपूर, उसने अपने पीछे एक कमठ और बुद्धिमान व्यक्ति का लेखा जाखा छोडा जिसने अपने देश के हित मे कत्तव्य-परायणता के प्रति अपने का समर्पित कर दिया।"[3]

---

1 *स्पोक्समन वाकली आफ 9 फरवरी 1955* गुरुचरणसिह सहसार, गदर पार्टी दा इतिहास (जालधर 1961 पजाबी)।

2 और विस्तार क लिए दखें दवन डा० गुरुन्वसिह द रोल आफ गदर पार्टी इन नेशनल मूवमेण्ट दिल्ली 1969।

3 मरसे विस्काउण्ट द वाइसरायज आफ इंडिया प० *126*।

22

विस्काउण्ट चेम्सफोर्ड (1916-1921)

क्रीमिया के युद्ध भारत म विद्रोह और दक्षिणी अफ्रीका मे प्रतिष्ठापूर्ण ढग स काय करन वाले सनिक के रूप म, सक्ड लाड फ्रेडरिक आगस्टस के पुत्र फ्रेडरिक जान नपियर थेसीजर का जम 12 अगस्त 1868 को हुआ। उसकी मा कनी बम्बई की सना म काम करन वाल मज जनरल हीथ की पुत्री थी। उसकी शिक्षा विचेस्टर और मगडालेन कालज आक्सफड म हुई, जहा उसे अपन उत्तम पढाई के लिए फेलो आफ आल सोल्स बना दिया गया। 1894 मे उसने वकालत प्रारम्भ की और उसन उसी वष फ्रासस चारलाट्ट गस्ट स विवाह किया जो प्रथम लाड विमबोर्न की पुत्री थी। उसके पिता की मत्यु 1905 म हो गइ और वह पियर हो गया। उसन क्वीसलड क गवनर की हैसियत से सेवा की फिर निव साउथ वेल्स मे भी इसी पद पर काय किया और 1913 मे वह जी० सी० एम० जी० हो गया। वह 48 वर्ष का था जब 1916 म एस्क्विथ न उस भारत का गवनर जनरल नियुक्त किया।

जब चेम्सफोड भारत पहुचा तो उसन दखा कि लोग और सवधानिक सुधार की माग कर रह हैं।

आन्तरिक सुधार

मिण्टो मार्ले सुधारो ने भारतीयो की आकाक्षा की पूर्ति नही की। उन पर के० एम० मुशी ने विचार व्यक्त करत हुए लिखा है 'मिण्टो मार्ले सुधार नामक राजनैतिक परिवतन के द्वारा उदारवादियो को घूस प्रदान किया गया।' इसके अधीन जो लेजिस्लेटिव कौंसिल स्थापित हुइ मात्र परामश दात्री थी। इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि "वग से वग को लडा दिया गया, सम्प्रदाय को सम्प्रदाय से जिससे एक का प्रभाव दूसरा समाप्त कर दें।" जमीदारो और व्यापारियो को राजनतिक बौद्धिक वग की कीमत पर अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। आलोचना के स्थान पर चुप रहन वाला तथा विशेष बातो को ध्यान

[illegible] का पद समाप्त किया गया।[1] [illegible] और [illegible]
का विरोध किया है 'भारतीय मामलों का [illegible] हो [illegible] था
किया [illegible]। [illegible] प्रशासन का [illegible] सिद्धान्त स्वीकार
किया गया। [illegible] और [illegible]
[illegible] किया गया। [illegible] किया गया [illegible]
[illegible] किया गया। [illegible] की [illegible] में [illegible]
किया गया [illegible] प्रकाशित कर दी गई
कि नयी कौंसिल की स्थापना [illegible] भारतीय प्रथा
की शुरुआत है। भारत की कौंसिल और [illegible] की [illegible]
कौंसिल में कम से कम भारतीयों को स्थान प्रदान किया गया। पर भारतीय सदस्य
को प्रवेश कराकर [illegible] का परिचय [illegible] थी कि
उनको अधिकार अभी सिद्धान्त रूप में ही सुरक्षित है।[2] इस [illegible]
निश्चित रूप से भारतीयों द्वारा आलोचना का शिकार होना और [illegible] हुआ।

1909 के ऐक्ट में मुसलमानों को [illegible] हुई थी। पर ब्रिटिश
अधिकारी [illegible] उनकी सहानुभूति को बनाए रखने में [illegible] हुए। 1911
में बंगाल विभाजन की समाप्ति और [illegible] में मुसलमानों का [illegible] में एक
मुस्लिम विश्वविद्यालय स्थापित करने [illegible] नीतियों पर [illegible]—
इन सबने मुस्लिम सम्प्रदाय को उनका विरोधी बना दिया। ब्रिटेन से बाहर घटी
कुछ घटनाओं ने भी [illegible] मुस्लिम भावनाओं को [illegible] कर दिया। 1911-12 में
तुर्की और इटली के युद्ध में अंग्रेजों का तुर्की का विरोध और 1912 का बाल्कन
युद्ध तथा कांग्रेस की तुर्की का समर्थन की नीति ने सब मिलाकर भारतीय
मुसलमानों के दृष्टिकोण में परिवर्तन किया। मिस्र पर ब्रिटिशों का आधिपत्य
और 1907 में आंग्ल रूसी [illegible] द्वारा फारस को दो प्रभाव क्षेत्रों में
बाँटना भी भारतीय मुसलमानों में असंतोष को बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ। और
जब प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ और तुर्की ने नवम्बर 1914 में अंग्रेजों के
विरुद्ध इसमें प्रवेश कर लिया तो स्पष्टतया अंग्रेजों और भारतीय मुसलमानों के
बीच की खाई और चौड़ी हो गई।

जर्मनी भी स्थिति से लाभ उठाने में पीछे नहीं रहा। तुर्की जर्मनी की ओर से
लड़ रहा था और चूँकि भारतीय मुसलमानों की सहानुभूति ब्रिटिशों के विरुद्ध
और तुर्की के पक्ष में थी, जर्मनों ने मुसलमानों के माध्यम से भारत में मुस्लिम
राज्य को समाप्त करने की हर चेष्टा की। 1915 में जर्मनों और तुर्की ने

1 काप स्पावेज भाग 2 पृ० 213-17।
2 जकारिया रिनेसेंट इंडिया, पृ० 216।

सम्मिलित शिष्टमंडल ने काबुल का दौरा किया और भारतीय मुस्लिम नेताओं से बातचीत करके—मुहम्मद अली और उबैदुल्ला ने मिलकर भारत के अस्थायी सरकार की योजना तैयार की।

मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे राष्ट्रवादी नेताओं ने अवसर का लाभ उठा कर, हिंदू और मुसलमानों में मैत्री स्थापना करके ब्रिटिशों के विरुद्ध उन दोनों को एक साथ लड़ने के लिए तैयार किया। 1914 में रावलपिंडी में एक मुस्लिम शिक्षा सम्मेलन किया गया जिसमें मौलाना आजाद और मुहम्मद अली ने भाषण दिये। इसके बाद इन लोगों ने लाहौर के कॉलिजों में चाय पार्टियों में तथा कुछ अन्य स्थानों पर युवा और होशियार मुस्लिम लड़कों के सामने भी भाषण दिये। इस सबके परिणामस्वरूप फरवरी 1915 में 15 छात्र लाहौर से और कुछ पेशावर से भारत से गायब हो गये और उन्होंने महेन्द्र प्रताप और बरकतुल्ला से सम्बन्ध स्थापित किया जो अस्थायी भारतीय सरकार के संयुक्त प्रेसीडेंट थे। इन छात्रों ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया और वे तुर्की, चीन और अन्य स्थानों पर गये। रूसियों से सम्पर्क कर उन्हें ब्रिटिशों से अलग करने का प्रयास किया गया। यह भी योजना बनाई गई कि 'खुदा की एक सेना' बनाकर ब्रिटिशों को भारत से हटा दिया जाय।

1913 के अपने सम्मेलन में लखनऊ में मुस्लिम लीग ने अपने संविधान में परिवर्तन कर हिंदुओं और मुसलमानों को निकट संबंध स्थापित करने की अनुमति प्रदान की। मुस्लिम लीग ने भी कांग्रेस की तरह ब्रिटिश ताज के अधीन स्वशासन को अपना उद्देश्य बनाया और इसके लिए संवैधानिक विधि अपनाने की बात कही। और लखनऊ में एक बहुत बड़ी सभा में मुस्लिम लीग के नेता मजहरुलहक ने घोषणा की, 'कांग्रेस विरोधी मुसलमान अब भूतकाल की चीज होता जा रहा है और अब उसे कहीं उत्पन्न अजायबघर में ही तलाश करना पड़ेगा।'

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी अपनी कार्यवाहियां तेज कर दी। 1913 के अपने कराची सम्मेलन में कांग्रेस ने सेक्रेटरी आफ स्टेट से कौंसिल में सुधार की मांग की और यह कहा कि सेक्रेटरी आफ स्टेट का वेतन ब्रिटिश राजस्व प्रांत से प्रदान किया जाय। 1916 के सम्मेलन में कांग्रेस ने घोषणा की 'भारत को परतन्त्रता से मुक्त किया जाय और उसे बराबरी के आधार पर स्वशासित राज्य का दर्जा प्रदान किया जाए। इस साम्राज्य के अंतर्गत स्वतंत्र रूप से समान उत्तरदायित्व और अधिकार सौंपे जायं।' और इसके आगे कहा गया "भारत पर शासन दिल्ली या शिमला में किया जाना चाहिए न कि ह्वाइटहाल या डाउनिंग स्ट्रीट

से ।"[1] कांग्रेस ने मुसलमानों को भी फुसलाने की चेष्टा की।

इन सब घटनाओं और मौलाना आजाद, मोहम्मद अली, शौकत अली और हसरत मोमनी जैसे राष्ट्रवादी नेताओं को तुर्की के पक्ष में भाषण देने के कारण कैद किए जाने से एक रास्ता निकला जिसके फलस्वरूप दिसंबर 1915 में लीग और कांग्रेस दोनों ने बम्बई में अपना वार्षिक सम्मेलन किया। एम० के० गांधी और सरोजिनी नायडू जैसे कांग्रेस के नेताओं ने लीग की कारवाई में भाग लिया। लीग और कांग्रेस द्वारा समितियां इस उद्देश्य से स्थापित की गई कि सुधारों के लिए एक तरह की योजना हेतु प्रस्ताव तैयार किए जाय। योजना तैयार हुई और इस पर 1916 के कांग्रेस व लीग के संयुक्त सम्मेलन में विचार किया गया। इसके फलस्वरूप प्रसिद्ध लखनऊ पैक्ट की नींव पड़ी जिसने दोनों संगठनों के बीच निश्चित एकता के कार्य का प्रारंभ किया।

लखनऊ पैक्ट एक महत्वपूर्ण दस्तावेज था जिसने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच मैत्रीभाव पैदा करने का प्रयास किया। लीग और कांग्रेस दोनों ने अपने प्रारंभिक विचारों से हटकर एक-दूसरे के विचारों के निकट आने की चेष्टा की। इस पैक्ट में कांग्रेस ने मुसलमानों के लिए अलग से एलेक्टोरेट के सिद्धांत को स्वीकार किया और अल्पसंख्यक प्रांतों में मुस्लिम लोगों के महत्त्व को स्वीकार किया। लीग को और कई छूटें दी गई और उसने कांग्रेस के साथ संयुक्त रूप से कार्य करने की योजना को स्वीकार किया। इस संबंध में कहा गया, "भारत का परतंत्रता से मुक्त कर साम्राज्य के अधीन समानता के आधार पर स्वशासित राज्य बनाया जाय।" पैक्ट में यह कहा गया कि आगे दोनों दलों में से कोई भी ऐसे किसी प्रस्ताव बिल या बिल की किसी धारा का समर्थन नहीं करेंगे यदि यह किसी सम्प्रदाय से संबंधित होगा और इसके विपक्ष में 3/4 सदस्य होंगे।

संयुक्त सुधार की और महत्वपूर्ण बातें जिस पर समझौता हुआ वे ये थी (1) कि केन्द्रीय और प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिलों में सदस्यों की संख्या और बढ़ाई जाय जिनका नामित सदस्यों की तुलना में अनुपात 4 : 1 का होना चाहिए (2) कि केन्द्रीय और प्रांतीय कौंसिलों में भारतीय सदस्य भी होने चाहिए जिनके कम से कम आधे केन्द्रीय या प्रांतीय कौंसिलों से ही चुने जाने चाहिए (3) कि लेजिस्लेटिव कौंसिलों द्वारा पारित प्रस्ताव सरकार को मानने को बाध्य होना चाहिए। गवर्नर जनरल चाहे तो उसे अस्वीकार कर सकता है और यदि इस तरह का बिल पुनः एक साल के बाद पारित हो जाय तो उसे कानून बना दिया जाना चाहिए।

---

1 देखें सीतारमय्या बी० पी० हिस्ट्री आफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, भाग 1 पृ० 23 24।

इस तरह से दोनों दलों में एकता की स्थापना हुई और दोनों सम्प्रदायों के बीच भी। माटेंग्यु चेम्सफोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार लखनऊ पैक्ट "अति नवीन, पूर्ण और आधिकारिक प्रस्ताव था जिसे भारत के अग्रिम पंक्ति के राजनैतिक दलों ने माग पत्र की।"[1] वे दिन सचमुच भारत के लिए महत्त्वपूर्ण दिन थे जब राष्ट्रवादिता का भाव पुनः साम्प्रदायिकता के भाव पर हावी हो गया। ऐसा वातावरण भला ब्रिटिशों को प्रभावित किए बिना कैसे रह सकता था ?

और फिर लीग और कांग्रेस ही केवल राजनैतिक सुधारों की माग नहीं कर रहे थे। 1915 16 के बीच श्रीमती एनी बेसेण्ट और लोकमान्य तिलक ने होम रूल आंदोलन की स्थापना की। सी० वाई० चिन्तामणि ने लिखा है, "इस आंदोलन के अन्तर्गत एनी बेसण्ट ने पूरे देश में सगठन की स्थापना कर दी, अथाह प्रचार पर्चे बंटवाये तथा यहाँ वहाँ और हर जगह भाषण दिये जिसने आंदोलन को तेज ही प्रदान किया, प्रतिबंधित नहीं किया।" जकारिया ने लिखा है कि उनकी योजना राष्ट्रवादी उग्रपंथियों और क्रांतिकारियों के बीच होने वाले समझौते से उनका ध्यान विरत करना था, उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन ही किसी स्थिति के लिए संतोष करने की प्रेरणा देना था तथा उन्हें कांग्रेस के उदारवादियों की पंक्ति में एवं कांग्रेस के झंडे के नीचे लाकर खड़ा करना था।"[3] श्रीमती ने स्वयं कहा "मैं एक भारतीय ढोल हूँ जिसका उद्देश्य भारत के सोने वालों को जगाकर मातृभूमि की सेवा में लगाना है।" बेसेण्ट के अनुसार होमरूल आंदोलन का उद्देश्य यह था कि, "ग्राम कौंसिलों, जिलों, म्युनिस्पल बोर्डों और प्रान्तीय असम्बलियों से होते हुए राष्ट्रीय संसद तक पूर्णरूप से ऐसे सरकार की स्थापना हो जो स्वशासित उपनिवेशों के लेजिस्लेटिव सगठनों की तरह ही शक्ति रखती हो, नाम इनका चाहे जो हो, इसके अतिरिक्त इम्पीरियल संसद में भारत का सीधा प्रतिनिधित्व जिसमें साम्राज्य के स्वशासित राज्यों के अन्य प्रतिनिधि भी हों।[4] उग्रवादी तिलक ने उनका साथ दिया और इस आंदोलन का परिणाम तो यह हुआ कि कांग्रेस में उग्रवादी और उदारवादी तत्त्व एक दूसरे के निकट आये। भारतीयों के लिए होम रूल के आंदोलन ने भारतीय छात्रों में बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की जिनमें से तमाम ने इसमें भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और सरकार को इसे आगे बढ़ने से रोकने के लिए कुछ प्रयास करने पड़े। 1917 में एनी बेसेण्ट को नजरबन्द कर दिया गया

---

1 रिपोर्ट आन द इंडियन कान्स्टीच्युशनल रिफार्म्स (9 8) पृ० 159।

2 चिन्तामणि सी० वाई० इंडियन पालिटिक्स सिन्स म्युटिनी पृ 225 226।

3 जकारिया पूर्वोद्धृत पृ० 218।

4 बेसेन्ट एनी इंडिया बाउंड आर फ्री ? पृ० 164।

जिससे उसके समथक उत्तेजित हो गये। और तीन माह के बाद जब वह मुक्त की गई, भारतीया न उन्ह भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का प्रेसीडेन्ट चुनकर अनुग्रहीत किया।

प्रारम्भ के चरणा मे सरकार न भारतीया की महात्त्वाकाक्षा दबाने के लिए कुछ कठोर कानून बनाए। 1910 के 'प्रेस एक्ट' 1911 के 'सेडिशस मीटिंग्स' एक्ट' और 1913 के 'क्रिमिनल ला अमेन्डमेट एक्ट का उद्देश्य इसी दिशा मे कारवाई करना था। 1915 का डिफेंस आफ इडिया ऐक्ट सचमुच ऐसा धनघोर कदम था जिसके अन्तगत क्रातिकारी अपराधियो पर अति कठोर न्यायाधीशा द्वारा मुकदमा चलाया जाने लगा। इन न्यायाधीशा के निणय के विरुद्ध कोई अपील नही हो सकती थी। पर सरकार के भारत के स्वतन्त्रताप्रेमियो के विरुद्ध दुदमनीय व्यवहार ने उसकी शक्ति मे वद्धि ही की। सरकार न जितनी ही अधिक उन्ह सजायें दी उनकी प्रतिष्ठा म उतनी ही वद्धि हुई और जनता म उतनी ही जागरुकता मे वद्धि हुई।

विदेशा म भी भारतीयो की भूमिका कम महत्त्वपूण नही थी। जिन देशा मे ये रहते थे वहा की सरकारें इनके प्रति भेदभाव और अपमान की नीति अपना रही थी। उन्होन अनुभव किया कि उनके साथ इस व्यवहार का आधारभत कारण भारत की दासता है और जब तक यह चलता रहेगा उन्ह किसी भी देश की सरकार से प्रतिष्ठा नही प्राप्त होगी। माच 1913 मे अमेरिका मे वाशिंगटन नामक स्थान पर कुछ भारतीयो ने एक सम्मेलन किया और 'हिन्दी एशोसियशन' की स्थापना की जिसे बाद मे 'गदर पार्टी' के नाम से जाना गया। इसकी चर्चा हम पहले ही कर आये हैं।[1] बाबा सोहन सिंह भकना, लाला हरदयाल, अम्बाला के पडित कासीराम इस आदालन के प्रमुख नेता थे। नवम्बर 1913 म पार्टी ने एक समाचार पत्र भी प्रकाशित करना प्रारम्भ किया जा हिन्दी गुरमुखी, उर्दू और मराठी म छपता था। यह समाचार पत्र अर्जेंटाइना, फिजी आस्ट्रेलिया, न्यूजीलड, जजीबार पूर्वी भारत, स्याम, मलाया, बमा, चीन और जापान जल्दी ही पहुचन लगा और इसी तरह इस दल की शाखाये भी इन देशा म खुल गइ।

भारत म गदर पार्टी के सदस्या ने जो भूमिका अदा की वह यहा दुहराय जाने की आवश्यकता नही है। कोमागातामारू की कहानी, रास बिहारी, एन० जी० पिंगले और भाई परमानन्द की क्रातिकारी कारवाइया और उनकी 21 फरवरी 1915 का सामान्य विद्रोह की योजना जो दुर्भाग्य से गुप्त नही रह सकी सरकार के द्वारा कठोर बदले की भावना व कार्रवाई का आधार बन गया। ये सब इस पार्टी की देनें थी।

---

1 पनशट के लाड हार्डिन्ज वाला अध्याय देखें।

हुए। इसके कारण उनमें जनहितकारी कार्यों में रुचि उत्पन्न हुई और इसने राष्ट्रवादी आन्दोलन को उत्साहित किया।

इसके अतिरिक्त के० टी० पाल ने लिखा है कि, "युद्ध का एक प्रभाव यह भी हुआ कि भारत को दी गई शरणीय एकान्तिकता से काफी मात्रा में मुक्ति मिल गई जिसमें ब्रिटेन ने उसे 150 वर्षों से घेर रखा था।' जब भारतीयों ने ब्रिटिश सैनिकों से कंधा से कंधा मिलाकर लड़ाई की और फ्रांस में उन्हें नायकों जैसा सम्मान मिला तथा उन्हें प्रजातन्त्र का रक्षक कहा गया तो उन पर से ब्रिटिशों का जादू उतर गया और भारत वापसी पर वे कतई ब्रिटिशों की उच्चता झेलने के लिए तैयार नहीं थे। के० टी० पाल ने इस संदर्भ में लिखा है, 'यदि निष्कर्ष निकालना हो तो यह कहा जा सकता है कि इस युद्ध ने भारतीयों को पश्चिमी संस्कृति का इसकी दुखान्त सीमाओं तक समझने का अवसर प्रदान किया और इसकी साहसपूर्ण संभावनाओं ने अंततः भारत को आर राष्ट्रों की समता पर लाकर खड़ा कर दिया एवं उसके समक्ष चुनौतियाँ प्रस्तुत कर दी जिसमें वह विश्व की आशाओं के अनुरूप अपने को योग्य सिद्ध कर सके।"[1]

पर कोटमैन ने लिखा है कि यदि युद्ध न भी छिड़ता तो भारत में जो कुछ 19वीं सदी के मध्य से हुआ उसने यह निश्चित कर दिया था कि देर-सबेर यह भी उसी राजनैतिक रास्ते पर चलेगा जिस पर ब्रिटिश डामिनियम चले हैं। युद्ध ने चाल को तेज करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया।" पर यह भी युद्ध की दिशा में कम महत्त्वपूर्ण देन नहीं है।

लेखक इस संबंध में एस० आर० शर्मा के मत को भी प्रस्तुत करने के लिए क्षमा चाहेगा 'युद्ध में नैतिक मूल्यों की स्वीकृति और आत्म निर्णय के सिद्धान्त ने भारतीय जनमत को गहराई से प्रभावित किया। यदि लड़ाई इसलिए लड़ी जा रही थी कि विश्व को प्रजातन्त्र के लिए सुरक्षित कर दिया जाय तो यह आशा की जाती थी कि भारत भी स्वशासन के पथ पर आ जायेगा। यदि आत्मनिर्णय का सिद्धांत राजनैतिक दृष्टि से दबे तुर्की साम्राज्य के अरबों पर लागू किया जाना था तो इस पर जोर दिया गया कि इसे भारत पर भी लागू किया जाय।"[3]

राजनैतिक सुधारों की माँग की गई पर उत्तर में यह कहा गया कि युद्ध की समाप्ति तक भारत प्रतीक्षा करे। पर यह कठिनाई से भारतीयों को संतुष्ट कर सका। वी० चिरोल जैसे लोगों का अनुत्तरदायित्वपूर्ण भाषण भी आग लगाने वाला सिद्ध हुआ। उसने कहा था "भारत में हमारी उपस्थिति का औचित्य यह

---

1 दखें पॉल के० टी० द ब्रिटिश कनेक्शन विद इंडिया, (1927) पृ० 140।
2 को मैन जान इंडिया द रोड टू सेल्फ गवर्नमण्ट, पृ० 39 68।
3 शर्मा पूर्वोद्धृत, पृ० 354।

है कि उससे सारी दुनिया की1/5जनसंख्या को, जो विभिन्न जातियों और वर्गो में विभाजित है, शांति और सुरक्षा प्राप्त होती है। भारत में स्वशासन की स्थापना का अर्थ इसे शक्तिशाली प्रभुसत्ता में परिवर्तन करना है।"[1] इससे भारतीय युद्ध तीव्र हो गया। युद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य के एक संघ बनाने का जो प्रस्ताव आया उसमें भारतीयों को कठिनाई हुई क्योंकि उस स्थिति में तो भारत और ब्रिटिश उपनिवेशों का भी अनुगामी बन जायगा जहां के लोग भारतीयों से रंग के आधार पर घृणा करते थे। इस कारण भारत सुधारों की मांगों को लेकर और गम्भीर हो गया। आइरिश समस्या का समाधान खोजा गया था और युद्धकाल ही में 1918 में वहां सुधार किया गया था। इस कारण भारत में सुधार रोकने का कोई औचित्य नहीं था। इन्हीं परिस्थितियों में लार्ड चेम्सफोर्ड भारत आया।

माटग्यु घोषणा

गृह अधिकारियों के साथ संवैधानिक सुधारों के मसले पर चेम्सफोर्ड को तुरंत कारवाई करनी थी। और चूंकि इसकी सूचना हो गई इसलिए हर ओर से इस सुधार के सम्बन्ध में तमाम प्रस्ताव आने लगे। इन योजनाओं का विस्तृत अध्ययन जो तत्कालीन राजनैतिक जागरण का सबूत था, इस पुस्तक का सैकड़ों पृष्ठ ले लेगा इसलिए उनका संक्षिप्त परिचय ही यहां दिया जा रहा है।

उन लोगों में जिन्होंने सुधार की अनेक योजनायें प्रस्तुत की उनमें इम्पीरियल लेजिस्लेचर के 19 सदस्य भी थे जिनमें मि० जिन्ना, श्री निवासचारी और सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी भी थे जिन्होंने 1916 में एक स्मृतिपत्र में घोषणा की 'हमारी आवश्यकता केवल अच्छे सरकार की और कार्यक्षम प्रशासन की नहीं है बल्कि ऐसे सरकार की है जिसे जनता स्वीकार करे क्योंकि वह उन्हीं के प्रति उत्तरदायी है।' स्मृतिपत्र में अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी मांग की गई कि इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 150 कर दी जाय। प्रांतीय कौंसिलों को भी बढ़ाने को कहा गया और यह कहा गया कि भारत को आर्थिक क्षेत्र में स्वायत्तता प्रदान की जाय। उपरोक्त स्मृतिपत्र को अक्तूबर 1916 में प्रकाशित किया गया, जबकि उसी वर्ष दिसम्बर में कांग्रेस और लीग की एक संयुक्त योजना में सम्राट से तुरन्त एक घोषणा करने को कहा गया जिसमें यह कहा जाय कि "ब्रिटिश नीति का यह उद्देश्य और ध्येय है कि भारत में जल्दी ही स्वशासन की स्थापना की जाय।' इस योजना की कुछ विशेष बातें ऊपर बताई जा चुकी हैं। गोखले का राजनैतिक विधान" 1915 में तैयार

---

1 विरोल पूर्वोद्धत।

किया गया जिसमे प्रान्तो मे स्वायत्तता की माग की गई थी और इम्पीरियल लेजिस्लेचर म "सरकार की नीति को विचार-विमश द्वारा प्रभावित करने व सेना तथा नवसेना सम्बधी प्रश्नो को और प्रश्नो के स्तर पर लाने की माग की गई।" भारत के गवनर जनरल चेम्सफोड ने भी मई 1916 मे यह योजना प्राप्त की जो राउण्ड टेबुल ग्रुप ने तैयार की थी। इसे 1906 मे लाइनेल कर्टिस ने प्रारम्भ किया था और अब इसकी शाखायें न्युजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, कनाडा और इगलैण्ड मे स्थापित की गई।

ऐसा वातावरण या जब भारत के सक्रेट्री आफ स्टेट आस्टिन चैम्बरलेन ने भारत के लिए सुधार हेतु एक मसविदा तैयार किया। पर चैम्बरलेन प्रतिक्रियावादी था और सेण्ट वडरवन ने भूपेन्द्रनाथ बसु को लिखा, "मुझे तो डर लगता है, इस शासन स हमे अधिक आशा नही करनी चाहिए।"

इन कारवाइयो और घटनाओ के ही बीच भारत के भाग्य से, मैसोपोटामिया मे होने वाली अनथकारी घटनाओ ने पूरे ब्रिटिश राष्ट्र को कष्ट मे सराबार कर दिया। भारत सरकार द्वारा तुर्की के विरुद्ध छेडा गया पूण अभियान मेसोपोटामिया मे धरा का धरा रह गया। पूरा ब्रिटिश ध्यान अब भारतीय सरकार की ओर आकर्षित हो गया और इसके कारण मि० चैम्बरलेन की सरकार का पतन हो गया। एक ससदीय आयोग की इसके लिए नियुक्ति की गई कि वह पतन के कारणो का पता लगाये। भारत मे सरकारी ढाचे की गहराई से परीक्षा की गई। इससे भी देश म जनमत की जानकारी का अवसर सामने आया। आयोग ने अति केन्द्रित और अनुत्तरदायी भारत सरकार की भर्त्सना की जो इसकी दृष्टि म पूणतया बदल देने के योग्य थी। इसके एक सदस्य जोसिया वेजवुड ने सस्तुति दी कि भारतीयो को अपने देश म प्रशासन का एक विशेष उत्तरदायी भाग सौपा जाना चाहिए। माटेग्यु, जो बाद मे भारत के सेक्रेट्री आफ स्टेट हो गय, ने घोषणा की कि, 'भारत सरकार हमारी दृष्टि म आधुनिक उद्देश्यो के बिल्कुल योग्य नही है।"[1]

भारत म स्थिति दिन प्रतिदिन बिगडती ही जा रही थी। के० टी० पॉल ने लिखा है 'मा टेग्यु की बुद्धि न दर होने से पहले ही स्थिति को सम्भाल लिया।"[2] 12 जुलाई 1917 को माटेग्यु को भारत का सक्रेट्री आफ स्टेट का पद प्रदान किया गया और एक बार उसके पूर्वाधिकारी द्वारा बनाई गई योजना पर विचार किया गया। मसविदे म 'स्वशासन' शब्द का प्रयोग किया गया था पर दुर्भाग्य

---

1 देखें स्मिथ, डब्लू० आर० स्पीचज आफ माटेग्यु वाले, एस० डी० मदविन माल्टेग्यु।

2 पाल पूर्वोद्धृत पृ० 121 23।

से जब यह भूतपूर्व गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन के हाथों से होकर गुजरा तो 'स्वशासन' के स्थान पर 'उत्तरदायी सरकार' शब्द का प्रयोग कर दिया गया। लार्ड कर्जन ने अपनी बन्दूक इसलिए दाग दी थी जिससे वह भारत की राजनैतिक जागरूकता में धन की लूट सके। पर उसकी अज्ञानता आश्चर्यजनक थी। उसने यह नहीं समझा कि उत्तरदायी सरकार का अर्थ संसदीय सरकार होता है और इस तरह वह भी स्वशासन ही है। कर्जन का जीवन गाथाकार रोनाल्डशे लिखता है, 'फिर लार्ड कर्जन का दृष्टिकोण क्या था ? 'उत्तरदायी' शब्द का उसके द्वारा 'स्वशासन' के स्थान पर प्रयोग करने का अर्थ ही यह है कि दोनों का अर्थ एक नहीं था। इसका एक ही अर्थ रहा होगा कि यह एक संसदीय प्रणाली थी जिसे सरकार स्थापित करना चाहती थी। क्या उसने इसकी अनुभूति की ? यह दुःख की बात है कि उसने ऐसा नहीं किया।"[1]

जो भी हो, जब मसविदा तैयार हो गया तो 20 अगस्त 1917 को मांटेग्यु ने हाउस आफ कामन्स में ऐतिहासिक घोषणा की—

'ब्रिटिश सरकार की नीति, जिससे भारत सरकार भी पूर्णतया सहमत है, प्रशासन में भारतीयों को अधिक से अधिक निकट लाने की है। स्वशासकीय संस्थाओं का विकास भी हमारा उद्देश्य है जिससे ब्रिटिश शासन के अधीन भारत में धीरे धीरे उत्तरदायी सरकार स्थापित हो सके। उन्होंने यह निर्णय किया है कि इस दिशा में शीघ्र ही अति आवश्यक कदम उठाये जायें। हमारा मत है कि इस नीति में प्रगति चरणों में होगी। ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार जिनके कन्धों पर भारतीय जनता का हित और विकास आधारित है उन्हें प्रत्येक प्रगति और काल की जानकारी होनी चाहिए और उन्हें उन लोगों से दिशा प्राप्त होनी चाहिए जिन्हें उत्तरदायित्व सौंपा जाना है तथा उन्हें यह भी पता लगाना चाहिए कि किस सीमा तक उनमें विश्वास व उत्तरदायित्व का कार्य सौंपा जा सकता है।'

महत्त्व —इस घोषणा का मूल्यांकन बहुत अधिक नहीं किया जाना चाहिए। निश्चित सीमा में ही इस घोषणा में वादे किये गये जो इस तरह से थे—(1) कि भारतीयों का प्रशासन से और अधिक जोड़ा जायगा, (2) कि स्वशासन वाली संस्थाओं का धीरे धीरे विकसित किया जायेगा, (3) कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना उनका अन्तिम उद्देश्य है, (4) कि इस दिशा में आवश्यक कदम तुरन्त उठाये जायेंगे (5) कि अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति चरणों में की जायगी (6) कि ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार को ही यह निर्णय करने का अधिकार होगा कि वे इस विकास के समय और कारवाई का निर्णय करें और, (7) कि इस नीति में उत्तरदायी भारतीय

1 रोनाल्डशे लाइफ आफ कर्जन (तीन भागों में) भाग 3 पृ० 168।

नेताआ से सहायता प्राप्त होगी और वे उत्तरदायित्व को वहन करने को भी तैयार हागे।

एस० आर० शर्मा ने विचार व्यक्त किया है कि, 'इस घोषणा न भारत क सवैधानिक इतिहास के एक अध्याय को बद कर दिया और दूसरे का प्रारम्भ किया। उदबुद्ध निरकुशता मर चुकी थी भारत के स्वराज के अधिकार को मान लिया गया और निरकुशता को सवैधानिक सरकार को उत्तराधिकार सौंपना था इस तरह सभी क्या और क्यो की बात भुला दी गई और इस घोषणा का सभी राजनैतिक दलो ने स्वागत किया।"[1]

घोषणा ने बता दिया कि दुनिया किस तरह अपनी कीली पर घूम रही थी और भारतीय राजनैतिक आ दोलना का इस पर कितना प्रभाव पडा। 1908 म ही सेक्रेट्री आफ स्टेट मोर्ले ने यह घोषणा कर दी थी, "एक ससदीय व्यवस्था हमारा ग तव्य नही है जिसकी ओर एक क्षण भी हमारी दष्टि हो। मोर्ले के उत्तरधिकारी लाड क्रिव ने निश्चित रूप से भारत म स्वशासन से मुह मोड लिया। पर माटेग्यु न भारत मे 'उत्तरदायी सरकार' का वादा करते हुए कहा यही ब्रिटिशो का भी अ तिम उद्देश्य है।"

देश मे हिन्दू मुस्लिम एकता ने भी इतना महत्त्वपूर्ण परिणाम हमारे सामन ला दिया था। इसी कारण इससे विभि न भारतीय सप्रदायो को एक दूसरे के निकट आने की प्रेरणा प्राप्त हुई। वे अब क धे से क धा मिलाकर अ तिम स्वत त्रता के लिए सयुक्त लडाई की बात सोचन लगे।

उग्रवादी कम प्रोत्साहित नही हुए। उनके लिए यह उग्रवादिया की विजय थी। यह उनके लिए अपनी तलवारें तज करने तयारी करन, लडन और अन्तत उस उद्देश्य को प्राप्त करना था जिसे तिलक ने अपना 'ज मसिद्ध अधिकार' बताया था।

इस घोषणा का सबसे अधिक महत्त्व यह था कि प्रत्यक भारतीय का यह स्पष्ट रूप से पता चल गया कि भारत के लिए स्वशासन मिलना अब सम्भव हा गया है। बाद के भारतीय नेताओ न इसी घोषणा का उदाहरण दे-देकर यह कहा कि सरकार अपने वादे को पूरा नही कर रही है। इस घोषणा न उ हे नतिक उत्साह प्रदान किया और वे अपन राजनैतिक अधिकारा के लिए लडे।

भारत के इतिहास म सचमुच यह घोषणा एक महत्त्वपूण घटना थी। 20 अगस्त 1917 मे इसकी घोषणा से आधुनिक भारतीय इतिहास म एक नय युग का सूत्रपात हुआ। कुछ काल के लिए इसन भारत के गम्भीर वातावरण का हल्का कर दिया और आगे के लिए देश को गम्भीर और उद्देश्यपूण राजनतिक

1 शर्मा पूर्वोद्धत, पृ० 362।

लड़ाई के लिए तैयार किया। हर व्यक्ति भारत में चारों ओर देखने लगा, लोगों के चेहरे पर प्रसन्नता और संतोष झलकने लगा, और लोगों ने यह अनुभव किया कि अंतत भारत सफलता की चोटी पर चढ़ गया है। बस अभी और ऊंची पहाड़ियों पर चढ़कर विजय प्राप्त करनी थी जिससे भारत के स्वतंत्रता की सूर्य-किरणों का दर्शन किया जा सके।

कुछ कट्टर और प्रतिक्रियावादी लोग थे जिन्होंने भारत को इतना दिया जाना उचित नहीं समझा। ऐसे लोगों में सर रेजीनाल्ड क्रेडक एक था। उसने कहा, "लार्ड कर्जन द्वारा आवेश में जोड़े गये शब्द 'उत्तरदायी सरकार' के अतिरिक्त थी। इस घोषणा में दोष थे। उसने इच्छित दिशा की ओर आगे बढ़ने हेतु महत्त्वपूर्ण वादे पहले ही कर दिये और माटेग्यु को लार्ड चेम्सफोर्ड की सहायता सहित जांच पड़ताल का कार्य बाद में सौंपा। उसने यह भी जानने की चेष्टा नहीं की कि क्या निकट भविष्य में इस तरह के कदम उठाने की आवश्यकता भी है। इसने राजाओं और सरदारों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, यहां तक कि उनकी चर्चा भी नहीं की, कि क्या वे भी किसी योजना में सहयोगी हो सकते हैं। इसने यह भी नहीं बताया बिना शिक्षा के पूर्ण प्रसार के और जातीय व धार्मिक विरोध भावना की समाप्ति में कोई राजनैतिक प्रगति का कदम उठाना उचित नहीं होगा। माटेग्यु ने निर्णय पहले घोषित कर दिया और उसके विषय में छानबीन बाद में प्रारम्भ की। उसने ढांचा बनाना पहले प्रारम्भ कर दिया और कीमत आंकनी बाद में प्रारम्भ की।"

पर कुछ भारतीयों के हितेच्छु ऐसे भी थे जिनकी दृष्टि में घोषणा ने सकारात्मक पक्ष को संतुष्ट नहीं किया। माटेग्यु ने अधिक किया था, पर यह पर्याप्त नहीं था। इसके लिए कोई समय निर्धारित नहीं किया गया कि कब तक भारत अपने गन्तव्य पर पहुंच जायेगा। इसके लिए कोई परिमाप नहीं बनाया गया जिससे कि यह पता चल सके कि अगर सुधार के लिए स्थिति आ पहुंची है। यह भारत के लिए सचमुच अपमानजनक ही था कि ब्रिटिश उस निर्णय को लेने के अधिकारी थे कि भारत एक निश्चित तरह की सरकार बनाने के योग्य है या नहीं। भारत की आवश्यकता तुरंत स्वशासन की थी और इन परिस्थितियों में, जैसा एनी बेसेंट ने लिखा है, जो कुछ प्रदान किया गया, वह "इंग्लैंड द्वारा न तो दिए जाने योग्य था और न भारत द्वारा स्वीकार करने योग्य।"[1]

पर फिर भी घोषणा महत्त्वपूर्ण थी, और इसमें भी माटेग्यु को देश में अधिक समर्थक नहीं मिले न तो इंग्लैंड में और न भारत में।

---

1 सीतलवाड रीकलेक्शन्स एण्ड रिफ्लेक्शन्स पृ० 29 33।

1919 का गवनमेन्ट आफ इण्डिया ऐक्ट

10 नवम्बर 1917 को माटेग्यु भारत आया वाइसराय लाड चेम्सफोड से बातचीत की और कांग्रेस व लीग के उच्च नेताओ से बातचीत की तथा भारत सरकार के कुछ प्रमुख अधिकारियो से राय मशविरा किया। एक समिति बनाई गई जिसके सदस्य सर विलियम ड्युक, अल आफ डानोफर्मन, भूपेन्द्र नाथ बसु और चाल्स रावट थे। इस समिति ने वाइसराय सहित सेक्रेट्री आफ स्टेट को सहायता करके एक मसविदा तैयार कराया जिसे मोण्टफोड योजना कहा जाता है। इसी योजना के आधार पर बाद म गवनमेंट आफ इण्डिया का बिल तैयार किया गया जो 1919 मे एक ऐक्ट के रूप मे स्वीकार किया गया।

ऐक्ट की धाराओ के विवेचन से पूव यह जानना सूचना योग्य होगा कि माटेग्यु के भारत मे छानबीन की प्रगति बहुत सुविधापूण नही थी। माटेग्यु मे भारत के लिए कुछ कर गुजरने की भावना थी, जबकि जिनसे वह घिरा था, ऐसा नही चाहते थे। यहा तक कि वाइसराय लाड चेम्सफोड भी अनिच्छुक लगते थे। प्रश्नो का उत्तर वे बडे नैराश्यपूण भाव स देते थे जैसे, 'मुझे डर है ऐसा नही है," या, 'मेरी इच्छा है काश, ऐसा होता, पर मुझे डर है।" 17 दिनो तक उसके साथ काम करने के बाद 27 नवम्बर को माटेग्यु ने अपनी डायरी मे लिखा, "चेम्स फोड मेरी योजना के पक्ष मे मजबूत होता लगता है।"[1]

आमुख

ऐक्ट ने अपने आमुख मे वे सिद्धान्त प्रस्तुत किये जिसके आधार पर इस देश मे धीरे-धीरे सुधार किये जाने थे। ये सिद्धान्त लगभग 20 अगस्त 1917 की घोषणा से लेकर दुहरा दिये गये थे। आमुख के विवेचन से निम्न बातें सामन आती हैं—(1) ब्रिटिश भारत "साम्राज्य का अभिन्न अग' बना रहेगा। (2) ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य इस देश मे उत्तरदायी सरकार की स्थापना है। (3) "इस नीति को प्रभावी चरणो मे ही बनाया जा सकता है।" (4) 'प्रत्येक प्रगति का समय और तरीका ससद" द्वारा ही निश्चित हो सकेगा जिसमे (5) ससद दो तथ्यो से निर्देश ग्रहण करेगी। (अ) सेवा का जो नया अवसर लोगो को दिया जायेगा उनके सहयोग पर और(ब) "जिस सीमा तक उनम विश्वास किये जाने योग्य हो या उत्तरदायित्व सौंपा जाने योग्य हो।' और (6) स्वशासन के विकास के लिए दो चीजें आवश्यक है (अ) "भारतीयो का भारतीय प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र म बढता सहयोग" और (ब) धीरे धीरे "स्वशासी सस्थाओ का विकास।'

---

1 वाले एस० डी० वडविन माटग्यू प० 147 51।

आमुख की महत्ता यह थी कि माटेग्यु ने जिसकी पहले ही घोषणा कर रखी थी उसे अब निश्चित वैधानिक आधार प्रदान कर दिया गया। ब्रिटिश ससद की सप्रभुता भारत पर पुन हावी मान ली गई और देश को स्पष्ट शब्दो म यह बता दिया गया कि काय करने का रास्ता क्या होगा ?

आमुख म यह भी घोषित किया गया कि "यह उपयुक्त होगा कि इस दशा म महत्त्वपूण कदम अब उठाये जाय।' इसका निम्नलिखित स्वरूप था।

गृह सरकार

1916 के सम्मेलन मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस न एक प्रस्ताव पारित किया था कि 'भारत पर शासन दिल्ली और शिमला से किया जाना चाहिए, ह्वाइटहाल या डाउनिंग स्ट्रीट से नही।" या दूसरे शब्दो मे यह आवश्यक माना गया कि सेक्रेट्री आफ स्टेट और उसकी कौंसिल के निरकुश मत को पणतया भारतीय मामले म न माना जाय। इस तरह के सुधार की आवश्यकता और लोगो ने भी अनुभव की और इस एक्ट ने कुछ इस क्षेत्र मे भी किया।

इस तरह भारत के सेक्रेट्री आफ स्टेट की शक्ति कम कर दी गइ और ऐसे तमाम मामले जिसमे उसके सदभ की आवश्यकता पहले रहा करती था उस काट दिया गया। जहा अभी तक प्रत्येक कानून, चाहे वह केन्द्रीय कौंसिल म लाया गया हो या प्रातीय कौंसिल म अब केवल केन्द्रीय कौंसिल के करो सी, सावजनिक ऋण, चुगी, सनिक मामले आर वैदेशिक मामले ही उसके पास प्रेषित किये जाते थे। प्रातीय मामला म उन मसला पर उसका हस्तक्षेप समाप्त हो गया जो अधिकार केन्द्र ने प्रान्तो को सौप दिय थे। प्राता के आर्थिक मामले मे उसकी पकड कम कर दी गई और प्राता म प्रस्तुत किय जान वाले बिल फिर स ही उसके पास भेजे जाते थे। इस सबध मे अधिकतर अधिकार गवनर जनरल का सौप दिय गये। इसके अतिरिक्त उस पर ससद के प्रभावपूण नियत्रण के लिए यह तय हुआ कि अब उसका वेतन भारतीय राजस्व से नही दिया जायगा बल्कि ब्रिटेन सरकार उसे दगी।

भारत के लिए एक हाई कमिश्नर का नया पद सृजित किया गया और सेक्रेट्री आफ स्टेट के कुछ काय उसे सौंप दिय गय। हाई कमिश्नर कौंसिल म गवर्नर जनरल का एजेन्ट माना गया जिसे भारत सरकार नियुक्त करती थी और अपने खाते पर वेतन प्रदान करती थी। हाई कमिश्नर को जा काय सौप गय व अधिकतर औपचारिक थे। वसे सेक्रेट्री आफ स्टट से व्यापारिक और कुछ अन्य अधिकार भी उसे प्राप्त हो गये। इस तरह वह भारत के लिए इग्लैंड म मशीनरी और स्टोर के सामान की खरीद करता था। वह इग्लड मे भारतीय छात्रों क हितो को भी देखता था। उसका कायकाल 6 वष का होता था।

हाई कमिश्नर के पद की महत्ता यह थी कि इससे भारतीयो की प्रतिष्ठा की भावना को सतुष्ट होने का कुछ अवसर प्राप्त हुआ। पर यह ऐसा कर नही सका। इस तरह से नियुक्त होने वाला हाई कमिश्नर केवल भारतीय जनता का ही प्रतिनिधि तो था नही। यह गवनर जनरल का प्रतिनिधि था, गवनर जनरल स्वय ताज का प्रतिनिधि था। स्पष्ट है कि हाई कमिश्नर किसका प्रतिनिधित्व और हित साधन करता रहा होगा। सेक्रेट्री आफ स्टेट के अधिकारो म भारतीयो की इच्छानुसार कटौती भी नही हुई थी।

ऐक्ट ने सेक्रेट्री आफ स्टेट की कौसिल की रचना मे भी कुछ परिवतन किया। इसकी सदस्यता कम से कम 8 और अधिक से अधिक 12 कर दी गई। इसके आधे सदस्य ऐसे होने थे जो भारत म कम से कम 10 वष तक सेवा कर चुके हो। सदस्यो का वेतन जो 1907 म घटा दिया गया था उसे 1,000 पौंड वार्षिक से बढाकर 1200 पौंड कर दिया गया। उनके अधिकार भी बढा दिये गये क्योकि अब आवश्यक, गुप्त और अन्य विषयो मे विभाजित मामलो का अतर जो सेक्रेट्री आफ स्टेट व गवनर जनरल के बीच पत्र-व्यवहार म आता था, समाप्त कर दिया गया। दूसरे शब्दो म अब सभी मसले कौसिल के सामने रखे जाने लगे। सदस्यो का कायकाल 6 वष से घटाकर 5 वष कर दिया गया।

कौसिल म किये गये परिवतन इस दष्टि से महत्त्वपूण थे कि सेक्रेट्री आफ स्टेट के व्यक्तिगत नियन्त्रण के स्थान पर अब समिति के सम्मिलित भाव को आगे बढने का अवसर दिया गया।

केन्द्रीय कायकारिणी

केन्द्रीय कायकारिणी और लेजिस्लेटिव कौसिलो की रचना और काय म भी कुछ महत्त्वपूण परिवतन लाये गये। पहले कायकारिणी पर दष्टिपात करें जिसकी सख्या 6 थी इसमे भारतीयो की सख्या 1 से बढाकर 3 कर दी गई। ये सदस्य 5 वष तक के लिए होते थे और उनके पास विधि, शिक्षा, श्रम स्वास्थ्य और उद्योग जसे विभाग होते थे।

ऐक्ट मे दो विषय सूचिया था एक केन्द्रीय, दूसरी प्रान्तीय। जो विषय राष्ट्रीय महत्त्व के थ या जो एक प्रान्त से अधिक से सबधित होते थ जसे विदेश, रक्षा राजनतिक सबध, पोस्ट व टेलीग्राफ, सावजनिक ऋण आवागमन नागरिक व अपराध कानून आदि केन्द्रीय सूची म आते थे। इसके अतिरिक्त जो केवल प्रान्तीय महत्त्व के थ जसे सावजनिक स्वास्थ्य स्थानीय स्वशासन, शिक्षा औषधि प्रशासन भू राजस्व प्रशासन, जल पूर्ति, दुर्भिक्ष निवारण, शान्ति व व्यवस्था, कृषि आदि प्रान्तीय सूची म आते थ।

पर केन्द्रीय कार्यकारिणी कौंसिल म परिवतन पूरे नही हुए थे। वैसे तो भारतीयो को कार्यकारिणी के कार्यो के साथ जोडने का काय बढाया गया, उनकी सख्या बढाकर 3 कर दी गई पर उन्ह कम महत्त्वपूण विभाग सौंप गय। इन सदस्यो को लेजिस्लेचर के प्रति उत्तरदायी भी नही बनाया गया चूकि य ब्रिटिश शक्ति से अधिकार प्राप्त करते थे इसलिए इनम से अधिकतर वाइसराय की हा हुजूरी करन वाले होत थे। कोई भी अविश्वास का मत उन्ह हटा नही सकता था और चूकि य केवल अपन प्रति उत्तरदायी थे इसलिए वे केवल अपन स्वाथ के लिए काय करते थे।

दोनो विषयो का विभाजन भी सोच विचार करके नही किया गया था। इनम परस्पर व्यापकता थी और जहा भू राजस्व जैस महत्त्वपूण विषय प्रान्तो को सौंप दिय गये थे व्यापार जैसे कम महत्त्वपूण विभाग केन्द्र के पास रख दिये गय थे। इसके अतिरिक्त प्रशासकीय उद्देश्य के लिए जो विभाग प्रान्तो को सौंप गय थे आवश्यक रूप स इसे विधायिका उद्देश्य स भी नही किया गया था। इस तरह उदाहरणाथ जल आपूर्ति और स्वशासी सगठनो को, जिन्ह प्रान्त के अधीन रखा गया था इनके कानून केन्द्र से पारित होत थे प्रान्तो से नही।

मुख्य कायकारिणी शक्ति गवनर जनरल के हाथ म बनी रही। वह राज्य का अध्यक्ष था, इग्लैंड के सम्राट का प्रतिनिधि था और लगातार भारत के सेक्रेट्री आफ स्टेट के पत्र के माध्यम से सपक म रहता था। कौंसिलरो पर उसका पूरा नियन्त्रण था देश सबन्धी उसके पास विस्तत अधिकार थे। पर प्रान्तीय मामलो मे उसके अधिकारो म कटौती कर दी गई थी। उसकी नियुक्ति मे भारतीय की इच्छाओ व अभिलाषाओ का तनिक भी स्थान नही प्राप्त होता था।

पर इस सबध मे जो थोडी प्रगति की गई थी वह बहुत थी। कायकारिणी के कार्यो मे तीन भारतीयो का रखा जाना कोई छोटी सफलता नही थी और एक बार जब यह हो गया था तो अपनी प्रतिनिधित्व शक्ति बढान म बहुत कठिनाई नही थी।

केन्द्रीय विधायिका

पर और अधिक महत्त्वपूण परिवतन सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव कौंसिल से सबधित थे जिसे अब और अधिक शक्तिशाली व प्रतिनिधित्वपूण बना दिया गया था। एक सदनीय इम्पीरियल कौंसिल के स्थान पर अब द्विसदनीय विधायिका की स्थापना की गई जिसमे से एक कौंसल आफ स्टेटस और दूसरी सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली कहलाती थी।

'कौंसिल आफ स्टेट्स' जो उच्च सदन था, उसम 60 सदस्य होते थे। इनमे से 27 नामित किये जाते थे और 33 चुने जाते थे। इस तरह चुने गए तत्त्व का

बहुमत हो गया। 27 नामित होने वाले लोगो मे से 17 सरकारी और 10 गैर सरकारी होने थे। जबकि 33 चुने गए सदस्यो मे से 16 गैर मुसलमानो के प्रतिनिधि और 11 मुसलमानो के प्रतिनिधि 3 युरोपीयो के, 2 असाम्प्रदायिक तत्वो के प्रतिनिधि और 1 सिख होने थे।

कौंसिल 5 वर्ष के लिए चुनी जाती थी, इसका प्रेसीडेन्ट वाइसराय द्वारा नामित होना था और इसके सदस्य 'ऑनरेबुल' कहलाते थे। महिलायें इसकी सदस्या नही हो सकती थीं। गवर्नर जनरल सभा मे भाषण दे सकता था और वह इसकी बैठक बुला सकता था। इसे स्थगित कर सकता था और इसे समाप्त कर सकता था।

मताधिकार अत्यधिक सीमित था। उदाहरणार्थ 10 हजार रु० वार्षिक आय पर आयकर देने वाले या 750 रु० वार्षिक भू राजस्व देने वाले ही मताधिकारी होते थे। इसके अतिरिक्त उनकी योग्यतायें थी कि वे युनिवर्सिटी के सीनेटर हों, या उन्हे भारत के किसी लेजिस्लेटिव कौंसिल मे कार्य करने का पुराना अनुभव हो या उसे कोई पद प्राप्त हो। मताधिकार कितना सीमित था इसी से स्पष्ट है कि भारत की पूरी आबादी मे से कुल 17,364 लोगों को कौंसिल आफ स्टेट के लिए मताधिकार प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त हुआ।

'लेजिस्लेटिव असेम्बली' जो निम्न सदन थी, इसके सदस्यों की संख्या 145 थी। इनमे से 104 चुने जाते थे और 41 को नामित किया जाना था। 104 चुने गये सदस्यों मे से 52 सामान्य क्षेत्रों से चुने जाते थे, 30 मुस्लिमों, 2 सिखों, 9 यूरोपियनो, 7 जमीदारों और 4 व्यापारियों द्वारा चुने जाते थे। 41 नामित सदस्यों मे से 26 सरकारी और 15 गैर सरकारी लोग नामित होने थे।

एसेम्बली 3 वर्ष के लिए होती थी। इसका प्रथम प्रेसीडेन्ट गवर्नर जनरल नामित करता था जो 4 वर्ष तक कार्य करता था जिसके बाद एसेम्बली का स्वयं प्रेसीडेन्ट चुनना था। गवर्नर जनरल एसेम्बली मे भाषण दे सकता था। इसकी सभा बुला सकता था, स्थगित कर सकता था और सदन को समाप्त कर सकता था।

लेजिस्लेटिव एसेम्बली के लिए भी मताधिकार बहुत सीमित था। प्रान्त प्रान्त मे यह अलग भी था। इसके लिए जो न्यूनतम योग्यता थी उसमे था कि मतदाता के अधिकार मे या उसका अपना स्वयं का ऐसा मकान हो जिसका किराया कम-से कम 180 रु० मूल्य का हो या वह 15 रु० वार्षिक म्युनिसपालिटी का कर दे रहा हो या 50 रु० वार्षिक भू राजस्व अदा कर रहा हो। इस तरह केवल संपन्न और संपत्ति वाले लोगों को ही मताधिकार प्राप्त था, सब को नहीं। 1920 मे असेम्बली के चुनाव मे 9,09,874 से अधिक मतदाता नहीं थे।

अलग-अलग प्रान्तों में जो सीटें प्रदान की गई वह उनके तथाकथित महत्ता के आधार पर की गई जनसंख्या के आधार पर नहीं। छोटे प्रान्तों की ओर अधिक ध्यान दिया गया और अल्पसंख्यकों को भी अधिक सुविधा प्रदान की गई।

केन्द्रीय विधायिका के अधिकार

यह आशा थी कि उपरोक्त ढंग में रखी गई द्विसदनीय केन्द्रीय विधायिका को विस्तृत अधिकार प्राप्त होंगे। इसे पूरे ब्रिटिश भारत, भारतीय जनता, सरकारी कर्मचारियों चाहे वे देश में हों या विदेश में, के लिए कानून बनाने का अधिकार था। पहले से बने हुए कानूनों को यह वापस ले सकती थी या उसमें परिवर्तन कर सकती थी।

विधायिका के सदस्य विधि बनाने में नियमानुसार सहयोग दे सकते थे। वे प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थे या स्थगन का प्रस्ताव ला सकते थे। उन्हें प्रश्न पूछने का अधिकार था। भाषण का अधिकार और स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

पर विधायिका पर कुछ प्रतिबंध भी लगाए गए। कुछ मामलों में बिल प्रस्तुत करने पर गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति की आवश्यकता थी। उदाहरणार्थ (1) पूर्वकालीन किसी कानून के वापसी या परिवर्तन के संबंध में या गवर्नर जनरल के आर्डीनेन्स के संबंध में, (2) विदेश से संबंध और भारतीय राज्यों से संबंध के मामले, (3) सेना जल सेना या नभ सेना के अनुशासन या व्यवस्था के मामले (4) सार्वजनिक ऋण और राजस्व एवं, (5) धर्म धार्मिक परंपरायें और जनता की परंपरायें। इसके अतिरिक्त, यदि गवर्नर जनरल को लगे कि किसी बिल या उसके किसी भाग का 'प्रभाव ब्रिटिश भारत की सुरक्षा और शांति पर पड़ सकता है तो उसे विचार करने से रोक सकता था।"

भारतीय विधायिका भारत के संबंध में ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किसी कानून को न तो परिवर्तित कर सकती थी और न वापस ले सकती थी, और न वह ऐसा कुछ कर सकती थी जिससे कि अधिकार पर प्रभाव पड़ता हो या इंग्लैंड के अतिरिक्त विधान पर असर पड़ता हो।

यदि गवर्नर जनरल के मन पर भारतीय विधायिका कोई कानून पारित करने से इनकार करती, तो गवर्नर जनरल इसे स्वयं पारित कर सकता था। पर इस पर सम्राट की स्वीकृति आवश्यक थी। वह अध्यादेश भी जारी कर सकता था जो 6 माह तक लागू रह सकता था। इसमें वही शक्ति होती थी जो विधायिका द्वारा पारित कानून में। उसकी स्वीकृति के बिना कोई बिल एक्ट नहीं बन सकता था जिसे वह दोनों सदनों के पारित करने के बावजूद अस्वीकार कर सकता था और पुनः विचारार्थ इसे सदन के पास वापस भेज सकता था।

बजट के सबध म यह नियम था कि सरकार मागो के रूप मे धन के प्रयोग का प्रस्ताव रखेगी जिसे विधायिका विचार करके पारित करेगी। कुछ ऐसे मद थ जिन पर न तो विचार किया जा सकता था न उस पर मतदान कराया जा सकता था। पर गवनर जनरल की अनुमति से यह भी किया जा सकता था। पर ऐसे मद जिस पर विचार भी हो सकता था और मत भी लिया जा सकता था विधायिका की शक्ति सीमित थी। यदि अनुदान अस्वीकृत भी हो जाय तो भी गवनर जनरल देश की सुरक्षा और शाति के रक्षाथ इसे स्वीकार कर सकता था।

इस तरह स्पष्ट है कि केन्द्रीय विधायिका मे एसा बहुत कुछ था जो अनिश्चित था। मतदान की योग्यता अत्यधिक ऊची थी और इसके माध्यम से पूजीपति, जमीदार और अन्य बडे लोग ही चुन जा सकत थे। प्रान्तो मे जो सीटें बाटी गयी थी वे भी इच्छानुकूल नही थी। एक ही बात जिसकी ओर ध्यान दिया जाता था वह प्रान्त की महत्ता थी जो उसके ब्रिटिश ताज के प्रति स्वामिभक्ति के फीते से नापी जाती थी या फिर उस प्रा त मे व्यापारिक हितो स भी उसकी महत्ता बढ जाती थी। उदाहरणाथ बगाल को 16 सीट प्रदान की गइ, जबकि उसके आधी जनसख्या वाले बम्बई को भी 16 सीटें दी गइ। ऐसा उसकी व्यापारिक महत्ता के कारण किया गया। पजाब को जिसकी जनसख्या बिहार और उडीसा की 1/3 ही थी, उसे 12 सीटे दी गइ। बिहार और उडीसा क लिए भी उतनी ही सीटें दी गइ। इसके लिए सनिक महत्ता का नाम लिया गया। साम्प्रदायिक एलेक्टोरेट जिसकी भत्सना की गई थी उस पजाब म सिखो को भी प्रदान कर दिया गया। मद्रास मे यह गैर ब्राह्मणो को और बम्बई म यह मराठो को प्रदान किया गया।

कार्यों के मामले मे यह कहा गया कि विधायिका को विस्तत अधिकार प्रदान किए गय है पर तथ्य यह था कि य अधिकार इस सीमा तक सीमित थे कि इनका अस्तित्व बेकार था। कुछ मामलो मे बिल प्रस्तुत ही नही किया जा सकता था, जबकि दूसरो मे विचार कर सदो म इस पर रोक लगायी जा सकती थी या दोनो सदनो से पारित हो जाने पर भी बिल को अस्वीकार किया जा सकता था। गवनर जनरल के विधायिका सबधी अधिकार सचमुच ही निरकुश थे। वह ऐसा कानून पारित कर सकता था जिसे सदन न अस्वीकार कर दिया हो। वह अध्यादेश भी घोषित कर सकता था जिसम कानून की पूरी शक्ति होती थी। बजट क मामले म भी जहा कुछ अधिकार प्रदान किय गए थे वही दूसरे हाथ से इस छीना भी गया था। कुछ मदो पर विचार करना ही सभव नही था और यदि सभा उसम कटौती भी कर देती तो गवनर जनरल उसे पूरा कर सकता था। इस तरह इस एक्ट ने बजट का 60% विधायिका के नियत्रण के बाहर कर दिया

था, शेष 40% को गवर्नर जनरल स्वयं अपने अधिकार मे ले सकता था।

उच्च सदन की रचना भी इस तरह की गई थी कि निम्न सदन की सहायता के लिए की गई है बल्कि मालूम यह पडता था कि 'उसका पथ रोकती थी और सरकार के लिए एक मजबूत किले का काम करती थी।'

फिर भी यह ऐक्ट (1919) निश्चित रूप स 1909 के ऐक्ट मे एक सुधार था। द्विसदनीय विधायिका की स्थापना ने वह आधार बना दिया जिसके आधार पर भारत के भविष्य की राजनैतिक प्रगति हुई। मताधिकार म प्रगति हुई और विधायिका की शक्ति भी इतनी कम नही थी कि उसका कोई प्रभाव ही न हो। इसके कुछ सदस्य स्टॉण्डिग कमेटी पब्लिक एकाउन्ट्स व फाइनेन्स कमेटी म भी रखे गये जहा उन्हे सरकार की नीति को प्रभावित करन का अवसर मिला। चुने गए बहुमत की ओर यदि ध्यान नही भी दिया जाता तो भी ये सदस्य सरकार की नीति पर वाद विवाद कर सकत थे, उसके विरुद्ध प्रस्ताव रख और पारित कर सकते थे और प्रश्न कर सकत थे और इस तरह सरकार को चैन स बैठन से रोक सकते थे। यह कल्पना करना कठिन है कि सरकार के अधिक स-अधिक अनुत्तरदायी और ध्यान देने वाले सदस्य भी अपन को इन आलोचनाओ का शिकार होने से कैसे बचा सकते थे।

प्रातीय सरकारें

पर इस ऐक्ट की सबसे प्रमुख धारा वह थी जो प्रातीय प्रशासन से सबधित थी। एक्ट ने अपन आमुख मे घोषणा की, 'भारत के प्रातो म स्वशासी सस्थाओ के विकास के साथ-साथ यह आवश्यक है कि उन प्रान्तो को भारत सरकार द्वारा प्रातीय मसलो पर पर्याप्त स्वतत्रता प्रदान की जाए जिससे कि वह अपन उत्तरदायित्व का वहन कर सके। और इस तरह इस ऐक्ट न प्रान्तो मे जो परिवर्तन प्रस्तावित किये वे सचमुच दूरगामी थे।

कार्यकारिणी सबधी परिवर्तन या द्वितन्त्र

प्रातीय सरकारो म पहले कार्यकारिणी पक्ष का लिया जाए। इसम एक नयी पद्धति का प्रारभ किया गया जिसे हम द्वितन्त्र का नाम द सकते हैं। प्रशासकीय विषय पहले से ही दो सूचियो म विभाजित किए जा चुके थे—केंद्रीय एव प्रातीय। इसकी चर्चा हम पीछे कर आय है। पर प्रातीय सूची को भी दो भागो मे बाट दिया गया अर्थात—आरक्षित और स्थानान्तरित।

आरक्षित विषय वे थे जो अधिक महत्त्वपूर्ण समझे जाते थे, जिनका सबध प्रातीय कानून और व्यवस्था से था और जो जनता के हितो से जुडे हुए थे। ये

विषय गवनर के नियत्रण मे रखे गये थे जिससे वह अपनी कायकारिणी के नामित सदस्यो के बीच विभाजित कर देता था। ये विषय थे—पुलिस न्याय, प्रशासन, सिंचाई व नहरें पानी को एकत्रित करना और पनबिजली, नाली व्यवस्था और बाध निर्माण, भूमि विकास और कृषि, ऋण, छापेखाने एव पुस्तके प्रान्तो के साख पर धन ऋण लेना, जेल और सुधार गृह, जगल (बर्मा और बम्बई को छोडकर) श्रम झगडो का निबटारा, फक्ट्री, निरीक्षण।

स्थानान्तरित विषय वे थे जिनमे स्थानीय ज्ञान की अधिक आवश्यकता थी, जिसमे अधिक भारतीय रुचि थी और जिसमे सामाजिक सेवा की अधिक आवश्यकता थी। ये विषय भारतीय चुने गये सदस्यो म स मन्त्रिपद पाने वालो को दिए जाते थे। ये विषय थे—भारतीयो की शिक्षा, सावजनिक निर्माण जिसमे सडके पुल और म्युनिसिपल ट्रामो का निर्माण हो जाता था पर इसम सिंचाई कृषि और मछली-पालन नही आते थे स्थानीय स्वशासन जिसमे म्युनिसिपल कार्पोरेशनो और जिला बोर्डो का नियत्रण आता था, आबकारी, बर्मा व बम्बई के जगल सावजनिक स्वास्थ्य सफाई और औषधि प्रशासन—जिसमे औषधि शिक्षा अस्पताल और शरण गह आते थे, तकनीकी शिक्षा, उद्योगो का विकास और शोध।

कौंसिल मे गवनर आरक्षित विषयो को अपने नियत्रण मे रखता था जिसके लिए वह ससद के प्रति उत्तरदायी थे और इस काय को करने वाले सभी यूरोपीय थे। जबकि स्थानान्तरित विषयो में सभी भारतीयो को उत्तरदायित्व सौंपा जाता था और ये प्रान्तीय विधायिका के प्रति उत्तरदायी थे।

स्थानान्तरित विषयो के मामले मे, ऐक्ट मे यह प्रावधान था कि यदि कोई मत्री विभाग का काय देखने वाला न हो तो गवनर अस्थायी रूप से यह काय अपने ऊपर ले सकता था। उसे मन्त्रियो के बीच सयुक्त विचार विमश को प्रोत्साहन देना था और आवश्यकतानुसार वह उनके निणय को रद्द कर अपने मन की कर सकता था। और अतत यदि वह सतुष्ट हो कि स्थिति यह कदम उठाने को बाध्य कर रही है तो कौंसिल व कासिल मे सेक्रेट्री आफ स्टेट की पूर्वानुमति लेकर किसी भी स्थानान्तरित विषय का समाप्त कर सकता, स्थानान्तरित कर सकता या विलबित कर सकता था। या वह किसी स्थानान्तरित विषय को यदि प्रशासकीय दृष्टि से उपयोगी हो तो आरक्षित विषय मे ला सकता था।

इस तरह के परिवतन प्रान्तीय कायकारिणी म किये गए। इस तरह की स्थापित प्रथा को द्वितत्र कहा गया। इसका नाम इसके दो विभागो के नाते ही रखा गया—आरक्षित और स्थानान्तरित।

इस ऐक्ट ने प्रान्तीय विधायिका मे भी कुछ परिवतन किये। इसका आकार

तो बढ़ा दिया गया पर द्विसदन की कोई व्यवस्था नहीं की गई। इन्हें लेजिस्लेटिव कौंसिल का नाम दिया गया और इसकी सपूण सदस्यता प्रान्तों प्रान्त में अलग-अलग रखी गई। इस तरह सबसे छोटी कौंसिल आसाम की थी जिसकी सख्या 53 रखी गई, जबकि सबसे बडी बंगाल की थी जिसमे 140 सदस्य थे। इसके बीच मे 132 सदस्य मद्रास मे, 124 यू०पी०, 114 बम्बई म और 94 पंजाब मे थे।

प्रान्तीय कौंसिलो मे जितने सदस्य थे उनमे से 40% चुने जाते थे जिनमे से 20% से अधिक सरकारी नहीं होते थे और शेष गैर सरकारी नामित होने वाले सदस्य थे। उदाहरणार्थ मद्रास कौंसिल मे 132 सदस्यों मे से 98 चुनकर आये, 11 सरकारी थे और 23 गैर सरकारी नामित सदस्य थे। पुन पंजाब के मामले मे, 94 सदस्य मे से 71 चुनकर आये, 15 सरकारी सदस्य थे और 8 नामित गैर सरकारी सदस्य थे।

कौंसिलो मे जो चुनाव की व्यवस्था की गई वह प्रत्यक्ष थी। प्राथमिक मतदाता सदस्यो का चुनाव करते थे। पर अधिक सांपत्तिक योग्यता, साम्प्रदायिक व वर्गीय एलेक्टोरेट एव विशेष सम्प्रदायो को विशेष छूट वाली बातें यहा भी चलती रही।

इन कौंसिलो के कार्यो म भी वृद्धि की गई। इसके सदस्यो को स्वतनता पूर्वक बोलने और प्रश्न करने का अधिकार था। ये प्रस्ताव रख सकते और किसी प्रान्त से सबधित कोई बिल ला सकते थे। प्रत्येक पारित बिल पर गवनर की स्वीकृति आवश्यक होती थी और न होने पर वह कानून नहीं बन पाता था। बजट के मामलो म कुछ ऐसे मद थे जसे सरकारी कमचारियो का वेतन तथा केन्द्र को देय धनराशि आदि पर ये विचार नहीं कर सकते थे। शेष मदो मे ये मत दे सकते थे, इनपर उनके मतो की और स्वीकृति की आवश्यकता पडती थी। पर यदि वे ऐसा न भी करें तो भी गवनर उसे ठीक कर सकता था।

द्वितन्त्र की कार्यपद्धति

द्वितन्त्र कसे काय किया करता था उसका संक्षिप्त परिचय यहा जोडा जा सकता है। जैसी व्यवस्था यहा स्थापित की गई उसके अनुसार गवनर सारे प्रशासन का केन्द्र था। आरक्षित और स्थानान्तरित दोनो मामलो म वह अंतिम अधिकारी था। वही प्रान्तीय राजस्व का धन विभिन्न विभागो का बाटने का भी उत्तरदायी था। वह सप्ताह म एक बार प्रत्येक विभाग के सचिव को साक्षात्कार देता था और उसके विभाग के मामलो पर विचार विमर्श करता था। अपनी कार्यकारिणी कौंसिल मे वह नाम सस्तुत करता था और हाई कोर्ट म भी। वह चुने गये सदस्यो मे से लोगो को मन्त्री नियुक्ति के लिए चुनता था और उनको

विभाग भी बाटता था। वह इन मन्त्रियो को बर्खास्त कर सकता था और स्थानान्तरित विषयो का प्रशासन अपने हाथ मे ले सकता था। वह विधायिका के सदस्यो के विरोध के बावजूद जिसको चाहता मन्त्री बनाए रख सकता था। विभिन्न विभागो म अधिकारियो की नियुक्ति और तबादले वही करता था और वह पूरे प्रान्त मे प्रशासन का मुख्य देखभाल करने वाला था।

प्रान्तीय विधायिका पर भी गवनर का अच्छा अधिकार था। मतदाता सूचियो की तैयारी, मतदान केन्द्र बनाने का निश्चय नामित किए जाने के नाम मागना, यह सब उसी के निर्देशन म होता था और नियन्त्रण ही म चुनाव होते थे। चुनाव याचिकाए वही सुनता था और विवादास्पद मामलो के लिए छान-बीन हेतु कमिश्नरो की नियुक्ति वही करता था। विधायिका की बैठक भी बुलाता था। समय के पूव वह इन्हे समाप्त कर सकता था। इसका काल 3 वष होता था। वह इसे स्थगित कर सकता था या 1 साल के लिए इसका जीवनकाल बढा भी सकता था। कोई भी बिल उसके स्वीकृति के बिना ऐक्ट नही बन सकता था जिसे वह प्राय अस्वीकृत करता रहता था। बजट म कटौतियो को वह ठीक कर सकता था और स्टैण्डिंग कमेटी म सदस्य नियुक्ति के लिए अतिम अधिकारी था।

जहा तक कायकारिणी परिषद का प्रश्न था इसम दो से चार सदस्य तक होते थे और यह गवनर के बाद प्रान्त म दूसरी महत्त्वपूण शक्ति थी। यह कौंसिल म गवनर ही था जो आरक्षित विषयो पर प्रशासन करता था। यह ससद के प्रति उत्तरदायी था और इसम सभी युरोपीय लोग थे जिसके विषय मे हम पहले भी बता आये हैं। नामकरण के लिए आमन्त्रण मतदान केन्द्रो का निश्चय और मतदान सूचियो को तयार किया जाना गवनर के निर्देशन मे कौंसिल ही करती थी। कौंसिल के हर सदस्य किसी न किसी आरक्षित विषय का काय सभालते थे जिसम छोटे-मोटे मसले वे स्वय तय करते थे। पर विभाग के स्थायी सचिव से मतभेद की स्थिति म पूरा मसला कौंसिल के सामने लाया जाता था जहा और महत्त्वपूण मसले जैसे सावजनिक सेवाये और विधान योजनाओ पर भी विचार होता था। कौंसिल मे निणय बहुमत से किया जाता था जिसमे निर्णायक मत गवनर के पास होता था। वैसे गवनर को यह निणय न मानने का भी अधिकार था। पर वह इस अधिकार का प्रयोग कम ही करता था। कौंसिल सदस्यो को विधायिका मे आलोचना की बौछार बहुत झेलनी पडती थी, उनके बजट की मागो म या तो वे कटौती कर देते या उसे अस्वीकार कर देते। उनसे प्रश्न भी पूछे जाते थे। पर इन सदस्यो का गवनर से बडा मधुर सबध रहता था जिसकी विशेष शक्ति सदा इनकी सहायता करती थी और इस तरह वे तूफान झेल ले जाते थे। वे प्राय अपने निर्देश बदला करते थे और फिर तूफान

खड़ा हो जाता। ऐसी स्थिति म कभी-कभी अच्छे सुधार हो जाते और लोगो को प्रसन्नता होती।

पर स्थानान्तरित विषयो की कार्यप्रणाली भिन्न थी। यहा पर गवनर मन्त्रियो के माध्यम से शासन करता था। ये मत्री प्राय भारतीय होते जो गवनर द्वारा चुने जाते थे और अपने कार्यों के लिए कौंसिल के प्रति उत्तरदायी होते थे। पर वे पूणतया गवनर के नियन्त्रण म थे जो उन्हे बखास्त भी कर सकता था और रख भी सकता था चाहे उसका कितना भी विरोध क्या न हो। यदि गवनर सतुष्ट होता कि परिस्थिति को इसकी आवश्यकता है तो यह कौंसिल की और कौंसिल म सेक्रेट्री आफ स्टेट की पूर्वानुमति से जिसे हम पीछे देख आये हैं किसी या सब स्थानान्तरित विषयो का स्थानान्तरण, समाप्ति या स्थगन कर सकता था जो इस स्थिति मे आरक्षित विषय की तरह प्रशासित किया जाता।

स्थानान्तरित विषयो के मत्री कौंसिलरो से आराम म नहीं रहते थे बल्कि उनकी स्थिति और खराब थी। लेजिस्लेटिव कौंसिल म दलीय सगठन का उनको कोई समथन नही प्राप्त था जहा पर उनकी आलोचना करते और उन्हे अपमानित करते थे। गवनर उन्हें एक सीमा म ही समथन देता था और आर्थिक आपूर्ति के मामले म उनके विभाग का अय विभाग से सौतेला व्यवहार प्राप्त होता था।

विभागो का प्रशासन भी सुचारु नही था। उनके सचिव और अधिकारी गवनर से सीधे सबधित थे। स्थायी सचिवो से मतभेद होने पर मामला गवनर के पास भेजा जाता था जिसमे वह अधिकतर सचिवो का पक्ष लेता था। आरक्षित और स्थानान्तरित विषयो का विभाजन भी वैधानिक नही था क्योकि प्राय अपने विभाग के उत्तम प्रशासन के लिए उन्हे आरक्षित विभाग के सदस्य के मधुर सबधो पर आधारित होना पड़ता था और यही वे प्राप्त कर सकते थे।

प्रान्तीय विधायिकायें

प्रान्तीय विधायिकाओ, जैसा ऐक्ट ने तय कर रखा था, के बहुत सदस्य सीधे मताधिकार के आधार पर क्षेत्रो से चुन चुनकर आते थे। पर मताधिकार की योग्यता ऊची थी। अभ्यर्थियो की योग्यता भी निर्धारित थी और यह चेष्टा की जाती थी कि सरकार भक्तो का ही अधिक मात्रा म चुनाव हो।

इन्ही चुने गए सदस्यो म से स्थानान्तरित विषयो के लिए मत्री नियुक्त किए जाते थे जो सिद्धाततः उनके प्रति उत्तरदायी होते थे, पर व्यवहार मे वे गवनर द्वारा नियन्त्रित थे। उसकी अभ्यथना करते तो वे रहते अन्यथा पद से मुक्त हो जाते। गवनर उन्हें लोगो के विरोध के बावजूद भी मत्री बनाए रख सकता था। इस तरह 20वी सदी के दूसरे दशक के आरभ मे पजाब के मत्री का रेन्ट कट्रोल

बिल अस्वीकृत कर दिया गया पर फिर भी उसने स्तीफा नही दिया ।

फिर भी विधायिका के सदस्य अपने भाषण स्वातन्त्र्य का प्रयोग करते हुए प्रश्नाधिकार को हाथ म लेकर प्रस्ताव रखन के अस्त्र से प्रहार कर मन्त्रियो और कौंसिलरो का जीना हराम कर देते थे। व स्थगन प्रस्ताव भी रखते थे और उनके भूल चूक पर विचार करते थे । व आरक्षित और स्थानान्तरित विषयो के व्यय पर अलग-अलग विचार करते थे। व कटौती के लिए तथा अल्पव्यय के लिए भी प्रस्ताव रख सकते थे। पर गवर्नर कार्यकारिणी के कौंसिलरो हाई कोर्ट के न्यायाधीशो और अ य असैनिक कर्मचारियो के वतन के सबध म वे विचार करने के अधिकारी नही थे। उनके द्वारा स्वीकृत अन्य मदो पर कटौती प्रस्ताव को गवनर पूववत कर सकता था ।

इन्ही चुने गए सदस्यो म स ही स्टैंडिग कमटी और सलक्ट कमेटी के सदस्य भी चुने जाते थे। वहा पर व सरकार की नीति को प्रभावित करने का अधिक अवसर प्राप्त करते थे। पब्लिक एकाउन्ट्स कमेटी की उनकी सदस्यता, जो राजस्व आय व व्यय के मामले में एकाउन्टेन्ट जनरल के रिपोर्ट पर विचार करती थी, उन्ह यह अवसर भी प्रदान करती थी कि वे आर्थिक मामलो को भी ठीक से प्रभावित करें। इसस सावधानी से एकाउन्ट रखन की पद्धति का प्रारभ हुआ।

विधायिका सबधी काय म वे अपनी सीमाओ मे कानून का निर्माण करते थे। उनके बिलो का तीन बार वाचन होता था। तब वह गवनर क पास स्वीकृति के लिए प्रेषित किया जाना था जिसके बाद वह कानून बन जाता था। और जहा तक स्थानान्तरित विषयो पर बिलो का सबन्ध था, उस पर गवनर की स्वीकृति कम ही सकती थी।[1]

द्वितन्त्र के गुण व दोष

1 अप्रैल, 1921 को 8 प्रान्तो म द्वितन्त्र की स्थापना हुई। य प्रान्त थे—आसाम बगाल, बिहार एव मध्य प्रान्त यू० पी०, बम्बई, मद्रास एव पजाब। उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त म इस 1912 म स्थापित किया गया। द्वितन्त्र को जो सफलता प्राप्त हुई वह अलग-अलग प्रान्तो म भिन्न भिन्न थी। 1924 और 1925 के बीच बम्बई मे यह लगभग टूट सी गई और यही गति इसकी मध्य प्रान्त मे 1924 और 1926 के बीच हुई।

जिन प्रान्तो मे द्वितन्त्र था वहा सरकारी और गुप्त कागजात भी भारतीयों को उपलब्ध थे। भारतीय मन्त्री अग्रेज अधिकारियो को आदेश देते थे। स्थानान्तरित

1 देखें, अप्पादुराई, ए० डयारकी इन प्रक्टिस।

विभागो म उच्च सरकारी नौकरियो म भारतीयो के भर्ती के अवसर अधिक हो गये और भारतीय नताओ को देश म समाज सुधार का बेहतर अवसर प्राप्त हुआ। देश मे शिक्षा के विकास के लिए काफी काम किया गया।

विधायिका के क्षेत्र म भी कम काम नही हुआ। 'नये विधायका न भारतीय विधि प्रणाली म तमाम बडे परिवतना का प्रारम्भ किया। बडे बडे नागरिक व आपराधिक कानूनो का आवश्यकतानुसार पुनरीक्षण किया गया तथा व्यापार व वाणिज्य के क्षेत्र मे आधुनिक काल के उपयुक्त कानून रचे गये।" प्रातीय विधायका द्वारा स्थानीय स्वशासन को प्रजातात्रिक बनान के लिए भी बहुत कुछ किया गया जहा मताधिकार की आर्थिक शर्तें नीचे से आई गईं और चुने गए सदस्यो की सख्या बढा दी गई। गावो म पचायतो को अधिक से अधिक शक्ति प्रदान करन की चेष्टा की गई।

आर अतत बसे तो कोटमैन लिखता है 'कि 1919 के एक्ट के अधीन प्रातीय विधायिका ने जो आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र मे प्रगति क्षेत्र म सफलता प्राप्त की वह एसे सगठनो की पूव छाया मात्र थी जिन्होने दूसरी परपरा के अतगत अधिक सफलता प्राप्त करने के बाद भी इससे अधिक कुछ नही किया—एसी व्यवस्था जो 1935 के ऐक्ट के अतगत आने वाली थी।"[1] इस ऐक्ट का सबसे उत्तम गुण यह था कि इसम भारतीयो को और उच्च उत्तरदायित्वो के लिए तयार किया।

राबट ने सभवत् सच ही लिखा है कि 'द्वितन्त्र एव उत्तम सक्राति कालीन विधि थी जो कई तरीको के परीक्षण के बाद निकलकर सामने आयी'। वैसे तो यह व्यवस्था तीन वष तक ठीक चली, पर इसमे दोष भी थे।

प्रान्ता म दो तरह की विषय सूची आरक्षित एव स्थानान्तरित बनाना तकसगत, बुद्धिमत्तापूण और समय मे न आन वाला था। परिणाम यह था कि न तो मत्री कौंसिलरो के सहायता के बिना काय कर पाता और न कौंसिलर बिना मत्री के सहायता के। इसी तरह जहा कृषि को स्थानान्तरित कर दिया गया वहा सिंचाई को इससे अलग करके आरक्षित विषय मे रख दिया गया। शिक्षा को स्थानान्तरित कर दिया गया पर आश्चयजनक रूप से आग्ल भारतीयो की शिक्षा को आरक्षित विषय बना दिया गया। पुन उद्योग को भी स्थानान्तरित कर

1 कोटमन जान इडिया द रोड टु सेल्फ गवनमेण्ट पृ० 39 68।

2 राबट स ब्रिटिश इडिया, पृ० 589 90 और विस्तार के लिए देख फिलिप्स सी० एच० द इवाल्यूशन आफ इडिया एण्ड पाकिस्तान 1858 1947, पृ० 201 16, मुशी के० एम० पिलग्रिमेज टू फ्रीडम पृ० 9 14 शर्मा ज० एस० इडियाज स्ट्रगिल फार फ्रीडम पृ० 170 262 और 324 424।

दिया गया जबकि पनबिजली, फक्ट्री, खदान आरक्षित के अन्तगत रखी गई। यह आश्चयजनक है कि सेक्रेट्री आफ स्टेट, उसके सहायको, किसी ससद सदस्य को जिससे होकर यह बिल गुजरा, उनके समझ म नही आया कि सिंचाई कृषि से सबधित है और कृषि सिंचाई से और इस कारण इन दोना को अलग-अलग नियन्त्रण मे नही होना चाहिए। यह भी समझ से परे था कि उद्योग, पनबिजली पर आश्रित थे और उद्योगो का फैक्ट्रिया से अलगाव समस्यायें ही पैदा करेगा। मद्रास के एक मत्री के० ए० रेड्डी ने लिखा है, "मैं जगलात के बिना विकास मत्री था, मैं सिंचाई के बिना कृषि मत्री भी था। कृषि मत्री के रूप म हमे मद्रास एग्रीकल्चरिस्ट्स लोन के प्रशासन के सबध म कुछ नही करना था। यही स्थिति मद्रास लैंड इम्प्रूवमेंट लोन्स ऐक्ट को लेकर थी कृषि मत्री दुर्भिक्ष सहायता के मामले को छू भी नही सकता था।"

स्थानान्तरित और आरक्षित दोनो विषया मे उद्देश्य की एकरूपता के अभाव मे आगे बढना कठिन था। उदाहरणाथ जब सिख गुरुद्वारा आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तो कानून व व्यवस्था मत्री जिनका क्षेत्र आरक्षित विषय मे आता था उन्हे इस समस्या स निबटने के लिए कुछ कानूनी काय करने की आवश्यकता पडी पर वे इस ममले पर स्वय कुछ नही कर सकत थे क्याकि धार्मिक विभाग के मत्री को ही यह काय करने का अधिकार था जिसका क्षेत्र स्थानान्तरित विषय मे आता था। इसी तरह शिक्षा मत्री प्राइमरी शिक्षा को अनिवाय करन की स्थिति म नही था क्योकि उसे कानून व व्यवस्था मत्री तथा आर्थिक विभाग की इसम सहायता की आवश्यकता थी।

कभी-कभी तो इतनी अव्यवस्था हो जाती थी कि अधिकारी यह नही समझ पाते थे कि कौन सा विषय किस विभाग से जुडा है। ऐसा ही एक अनुभव यू० पी० सरकार के एक मत्री सी० वाई० चिन्तामणि ने दिया जिसके अनुसार 1921 मे कृषि विभाग न विखडित भूमि के विषय म एक छानबीन कराई जिसकी रिपोट 1922 मे तैयार हुई। पर तभी पता चला कि यह विषय तो राजस्व विभाग के अधीन है और फिर यह रिपोट उस विभाग का स्थानान्तरित कर दी गई। पर यहा भी जब दो वष परिश्रम मे गवा दिया गया तो 1924 म यह पता चला कि यह विषय तो कोआपरेटिव विभाग से सम्बधित है।

असली शक्ति सचमुच आरक्षित विभागा के ही हाथ मे थी। स्थानान्तरित विषया म देश की राष्ट्रीय और राजनीतिक जीवन से जुडे मामले कम थे। बहुत से महत्त्वपूण मसला म भारतीय मत्रियो से भी राय नही ली जाती थी जैसे कि गाधी के कैद किए जाने का मामला[1] असहयोग आदोलन के प्रति जो क्रूर रवैया

1 दास सी० आर० इण्डिया फार इण्डियन्स 1918 प० 369।

गवनर उनका पक्ष नही लेता था और फिर प्राय उ हे सफलता तब मिलती थी जब व गवनर के सामने कष्ट सहित अपना स्तीफा पेश कर देते थ।

मत्रियो की महत्त्वाकाक्षा चूकि दूसरे तरह की थी जो गवनर से मेल न खाती थी, इस कारण मत्री प्रजातन्त्र की ओर रस्सा खीच रहे थे और गवनर निरकुशतत्र की ओर। मत्री प्रशासन म राष्टीय रगरूप प्रस्तावित करना चाहते थे जबकि गवनर इसे मिटाने पर तुले थे। मध्य प्रात के केलकर ने कहा "मैं यह नही समझ सका कि किस तरह एक गवनर ने मेरी निहस्क्षेप नीति का उस समय अनुमोदन किया जब मैंने नगरपालिका समिति के प्रस्ताव को नगरपालिका कार्यालय पर एक राष्ट्रीय झडा फहरान की अनुमति दे दी और पुन उसी गवनर ने मुझसे डिप्टी कमिश्नर के उस आदेश को मानन का परामश दिया जिसमे उसने एक समिति के प्रस्ताव को कि उसके कमचारी खद्दर पहनेंग उसन फिर निलबित कर दिया था।"[1]

गवनर अपनी इच्छानुसार मत्रियो का चुनाव करता था जो उसके स्वामिभक्ति के पैमाने के आधार पर होती थी। य मत्री चुने गए सदस्यो के बहुमत का प्रतिनिधित्व भी नही करते थे। बल्कि वे इनसे घणा करत थे स्वराजी, जो सभी प्रातीय एसेम्बलियो म बहुत सख्या में थे उनके सुधारो का विरोध करत थे। काग्रेस से लेकर लीग तक के लोग भी उन्ह समथन दन को तैयार नही थे।

इन मत्रियो को दुहरे दबाव म काय करना पडता था। एक ओर तो था गवर्नर जो उसे यह पद प्राप्त करन का अवसर देता था और दूसरी ओर थी देश की वह जनता जो उनसे सुधार की आशा कर कुछ न पाने पर गाली देती थी पर जनता के हित मे कुछ करना इसलिए सरल नही था क्योकि मत्रियो को कमचारियो, अथ विभाग और गवनर से पूरा समथन नही मिल पा रहा था।

प्राय ये मत्री इसी कारण जनमत की आखो की किरकिरी हो जात थे और देशवासी अपनी महत्त्वाकाक्षाय पूरी न होते देख इन्ह भूल जाते थे। मत्री की कठिनाई यह थी कि गवर्नर जहा उन्ह नियुक्त करता था हटा भी सकता था और विरोध के बावजूद पद पर बनाए भी रख सकता था। इसलिए शक्ति की व्यक्तिगत भूख के लिए गवनर को सतुष्ट करना वे अधिक आवश्यक मानत थे, और विधायिका के सदस्यो को कम। और इस स्थिति मे मत्री कौंसिलरो से भी अधिक प्रतिक्रियावादी हो जात थे।

और फिर साम्प्रदायिक वग और विशेष आधार पर चुने लोग कौंसिल म अलग-अलग दृष्टिकोण और विरोधी विचार रखते थे। सबसे बडा दल लोकप्रिय

---

1 मसालदान इवोल्यूशन आफ प्राविंशियल आटोनामी इन इण्डिया प० 13-48 दखें, चिन्तामणि पूर्वोद्धत।

स्वराजियों का था जो न तो कोई पद चाहते थे और न सरकारी नीति का समर्थन करते थे। उनका एक ही उद्देश्य था कि संविधान को तोड़ा जाय जिससे स्थिति और अव्यवस्थित हो गई। ऐसी स्थिति में मन्त्रियों, कौंसिलरों या गवर्नर का लेशमात्र भी कार्य करना सरल न था।

1919 के संविधान की तुलना खराब ग्रहों में पैदा हुए बच्चे से की जा सकती है। 1920 के असफल मानसून ने देश को कष्ट में डाल दिया जबकि मेस्टन अवार्ड अब भी प्रांतों से धन की मांग करता रहा। इस तरह आर्थिक दुर्व्यवस्था नवीन संविधान पर कठोर आघात कर रही थी। इसी से आकर जुड़ गई जालियां वाला बाग की करुण कहानी। भारत में इसी समय खिलाफत आंदोलन भी प्रारंभ हो गया जिसका उद्देश्य यह था कि यह संविधान सफल न हो।

इसलिए इसमें आश्चर्य नहीं कि लोग इसका मजाक उड़ाते थे और इसकी भर्त्सना करते थे। सर एच० बटलर ने कहा 'भारत में तो यह गाली के शब्द के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। मैंने एक आदमी को दूसरे के विरुद्ध चिल्लाते सुना, "तुम डायारकी (जैसे यह डकी का प्रतीक हो) हो।" एक लड़के ने दूसरे लड़के से कहा, "कि मैं तुम्हें डायारकी से मारूंगा।" जब लड़के से पूछा गया कि यह डायारकी क्या है तो उसका उत्तर था, 'यह एक नये तरह का टेनिस रैकेट है।" बर्मा के एक गांव में डायारकी समूह ने मेरा स्वागत किया जिसने होमरूल का विरोध किया। पूरे गांव के लोग उत्साह से इसमें सम्मिलित हुए। पर इनमें से किसी को न तो होमरूल के विषय में जानकारी थी और न डायारकी के विषय में।" इस ऐक्ट के विषय में एल० कर्टिस ने अपना सामान्य मत देते हुए लिखा है कि, "इसके विषय में सबसे अच्छा यही कहा जा सकता है कि उस परिस्थिति का सावधानी से आकलन करने के बाद उन्हें इससे और कम खतरनाक चीज कोई नहीं प्राप्त हो पायी।"[1]

शिक्षा

चेम्सफोर्ड के काल में एक अन्य महत्वपूर्ण काम शिक्षा के क्षेत्र में हुआ। 1917 में चेम्सफोर्ड ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के अंतर्गत आने वाले सेकेंडरी उच्च और विश्वविद्यालय शिक्षा पर रिपोर्ट देने के लिए सेडलर आयोग की नियुक्ति की। पर आयोग ने केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय का ही विस्तृत अध्ययन नहीं किया बल्कि तुलनात्मक स्थिति की जानकारी के लिए और विश्वविद्यालयों का भी अध्ययन किया जिससे कलकत्ता विश्वविद्यालय के विकास के लिए एक मजबूत नीति अपनाई जा सके। 1919 में इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत

---

1 कर्टिस एल० डायारकी पृ० XXV।

हुई जो विस्तृत थी। सेकेन्डरी और उच्च शिक्षा के मामले मे इस अखिल भारतीय समर्थन प्राप्त हुआ।

आयोग ने संस्तुत किया कि (1) विश्वविद्यालय की इंटर कक्षायें सेकेन्ड्री स्कूलो को सौंप दी जाय और विश्वविद्यालय म प्रवेश इंटरमीडिएट क बाद दिया जाय। (2) इंटर के बाद डिग्री के कोर्स का काल तीन वर्ष रखा जाय। (3) सेकेन्ड्री और इंटरमीडिएट शिक्षा का नियन्त्रण अब विश्वविद्यालय क स्थान पर बोर्ड आफ सेकेन्ड्री एजूकेशन को दिया जाय। (4) सरकार का कलकत्ता विश्वविद्यालय का नियन्त्रण केन्द्र से हटाकर प्रांत सरकार के हाथ म कर देना चाहिए। (5) ढाका म विश्वविद्यालय स्थापना म शीघ्रता की जानी चाहिए और अलग-अलग कॉलेजो को पुनर्गठित किया जाना चाहिए जिससे शिक्षा कुछ स्थानो पर केंद्रित हो जाय और भविष्य स यहा विश्वविद्यालय केन्द्र भी हो सकें। (6) विश्वविद्यालय अध्ययन सदा सरकारी सेवा से अलग भांति की होनी चाहिए। (7) नारी शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए एक विशेष बोर्ड बनाया जाना चाहिए। (8) हाई स्कूल शिक्षा का माध्यम प्रांतो का वर्नाक्युलर होना चाहिए और इसके आगे शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होना चाहिए। (9) विश्वविद्यालय परीक्षा प्रणाली म पूर्ण परिवर्तन होना चाहिए। (10) व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा जैसे मेडिकल, इंजीनियरिंग, कृषि संबंधी, विधि और अध्यापन को विश्वविद्यालय को गंभीरता से लेना चाहिए।

भारत सरकार ने सभी संस्तुतियो को स्वीकार कर लिया। पर इसके लिए बने बिल के रास्ते म आर्थिक कठिनाइयो न बाधा डाली। प्रांतीय सरकारो को भी यह रिपोर्ट भेजी गई और उनसे उनका उस पर दृष्टिकोण मांगा गया और उनसे उस पर कारवाई करने को कहा गया। वैसे तो शिक्षा संबंधी सामान्य नीति को केन्द्र ने अपने हाथ म रखा, पर 1919 के एक्ट के अंतर्गत यह विभाग उन भारतीय मंत्रियो के हाथ म सौंप दिया। 1920 मे एक विश्वविद्यालय ढाका मे तथा दूसरा लखनऊ म स्थापित किया गया। इलाहाबाद म 1921 म और दिल्ली म 1922 म विश्वविद्यालय स्थापित हुए।

20वीं सदी म प्राइमरी शिक्षा के विषय म यहा कुछ लिखा जाना जरूरी है। 19वी सदी म इस दिशा म विशेष प्रगति नही हो पायी थी। अपने 5वें पंचवर्षीय रिपोर्ट म जिसम 1902 06 का काल सम्मिलित था मि० आर्चर ने लिखा कि यदि हम यह भी कल्पना कर ल कि जनसंख्या म वृद्धि नहीं हुई है तो भी "पिछले पांच वर्षों की शिक्षा की गति को देखकर तो यही लगता है कि सभी बच्चो को शिक्षित करने म अभी कई पीढ़ियां लग जायेंगी।" 1910 म गोखले ने भी इस संदर्भ म चिन्ता व्यक्त की जिन्होंने इम्पीरियल लेजिस्लेचर म यह प्रस्ताव रखा कि देश म नि शुल्क और अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा की योजना

बनाई जाय और अगले वर्ष उन्होंने एलीमेंट्री एजूकेशन बिल को प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने इस उद्देश्य के लिए होने वाले व्यय की विस्तार में व्याख्या की।

इन्हीं प्रयासों के फलस्वरूप परिणाम सामने आया जिसके फलस्वरूप शिक्षा को अब वाइसराय के कौंसिल के एक सदस्य को मुख्य विषय के रूप में सौंपा गया और फिर जब जार्ज पंचम ने भारत की यात्रा की उस समय दिल्ली दरबार में जो अनुदान घोषित किये गये उसमें प्राइमरी शिक्षा को एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। इसे 50 लाख का अनुदान मिला और इस अतिरिक्त भी धन देने के लिए आश्वस्त किया गया। पंजाब, बंगाल, बम्बई, यू० पी०, बिहार व उड़ीसा में प्राइमरी एजूकेशन एक्ट पारित किये गये जो प्रभाव में फरवरी 1918 से फरवरी 1919 के बीच सभी स्थानों पर आ गये। इसके लिए भी प्रयास किये गये कि प्रत्येक प्रांत में लड़कों के लिए प्राइमरी शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय।

भारत में प्राइमरी शिक्षा की सबसे बड़ी कठिनाई आर्थिक थी। दूसरी कठिनाई योग्य अध्यापकों का अभाव था। उदाहरणार्थ जहां यू० पी० में प्रशिक्षण विद्यालयों से प्रशिक्षार्थी केवल 1630 की संख्या में 1917 में निकले तथा नार्मल स्कूलों से 300 वहां वर्नाक्युलर स्कूलों में उनकी मांग 2400 से कम नहीं थी और एक समस्या यह थी कि ऐसे स्कूल खोले जाय और उनका पाठ्यक्रम ऐसा हो कि यह ग्रामवासियों के लिए बाद में भी काम आवे।

1919 तक शिक्षा की प्रगति की कल्पना निम्न आंकड़ों से की जा सकती है जिसका व्यय लाख रुपये में दिखाया गया है। इसमें हर स्तर की शिक्षा और इस पर हर स्रोत से होने वाले व्यय का विवरण है—

वर्ष	1881-82	1891-92	1901-02	1911 12	1918 19
विश्वविद्यालयीय					
शिक्षा—	18	33	46	87	159
सेकेंड्री—	48	99	127	209	367
प्राइमरी—	76	96	119	207	353
विशेष—	9	17	23	54	84
निर्देश व निरीक्षण—	17	22	25	48	62
भवन आदि—	9	22	23	97	142
छात्र वृत्ति—	5	7	9	13	24
अन्य—	4	8	27	72	108
पूर्ण योग—	186	304	399	787	1299

उपरोक्त आकडे म विशेष' मद का व्यय औद्योगिक, तकनीकी व्यापारिक कला और मेडिकल स्कूलो पर किया गया जबकि 'भवन' वाले मद म अपेरेटसो माडलो, अप्लायसो और कुर्सी मेज पर व्यय किया गया।

उपरोक्त आकडे इस बात के प्रमाण है कि शिक्षा पर कितना कम धन व्यय किया जाता था। सच तो यह था कि शिक्षा की व्यवस्था म बहुत स ऐसे दोष थे जिनमे सुधार की आवश्यकता थी पर जो धन के अभाव के कारण नही पूरा हो पा रहा था। एक दोष तो यह था कि बहुत कम बच्चे स्कूलो म सही शिक्षा प्राप्ति के लिए रुकते थे। स्टेचुटरी कमीशन के आतरिक शिक्षा रिपोट म 1922 के मध्य म बताया गया कि "देहाती जीवन की वतमान परिस्थितियो म और वर्नाक्युलर साहित्य की कमी के कारण एक बच्चे के लिए प्राइमरी स्कूल की शिक्षा पा लेने के बाद भी इसका अवसर नहीं है कि वह पढ लिख जाय। जो पढ लिख गए है उनके भी अनपढ हो जाने के अवसर अधिक हैं। लडकी के मामले म तो स्थिति और गम्भीर है।" इसके अतिरिक्त मैट्रीकुलेशन परीक्षा म अनुत्तीर्ण छात्रो की सख्या भी बहुत अधिक होती थी जिसस मानव शक्ति बर्बाद होती थी। विश्वविद्यालय परीक्षा सगठन केन्द्र हो गए थ और कॉलेज शिक्षण कक्षाओ के ढेर। सस्थाये किसी भी तरह की आत्म नियन्त्रण और बुद्धि विस्तार की शिक्षा नही देती थी। और न ऐसा ही कोई उचित तत्व निकल रहा था जो विश्व-विद्यालयो म उच्च शिक्षा के लिए जा सके। फिर सेकेन्डी और उच्च शिक्षा के उद्देश्यो और कार्यो म कोई प्रगति भी नही थी।

नारी शिक्षा अब भी पिछडी रही और स्त्रिया अब भी मध्य युगीन जीवन जी रही थी। ऐसी ही स्थिति मुसलमानो की थी। 1871 मे स्कूलो और कॉलिजो मे उनका प्रतिशत 14 5 था जबकि 1917 म यह 23 5 हो गया। भारत मे उनकी जनसख्या का प्रतिशत भी यही था। 1919 म कला और व्यावसायिक शिक्षा म छात्रो की कुल सख्या 66 000 थी जिसमे म मुसलमान छात्र केवल 7,345 थे अथवा ऐसा कहे कि उनकी जनसख्या तो 1/5 थी पर पढने वाले छात्र 1/9 थे।

पुन हर तरह की उच्च शिक्षा के लिए विदेशी विशेषज्ञो को बुलाना पडता था क्योकि भारत म इसकी सुविधा नही थी। भारतीय व्यवस्था दासतापूण और नकल करने वाली थी और इसे भारतीय बनाने का प्रयास नही किया गया। हाई स्कूलो म शिक्षा पूणतया साहित्यिक रही। वहा उद्योग कृषि व्यापार व वाणिज्य की शिक्षा के लिए कोई व्यवस्था नही थी। इसके अतिरिक्त भी तमाम दोष थे जिसका विवरण स्थानाभाव के कारण देना सम्भव नही है।

पर कुछ सफलतायें तो प्राप्त ही की गई। पठन के प्रति रुचि बढी और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए तमाम भारतीय छात्र ब्रिटेन गए। 1880

पूर्व विदेश जाने वाले छात्रों की संख्या 100 से अधिक कभी नहीं रही थी। पर 1921 तक इनकी संख्या बढ़कर 1450 हो गई। केवल भारत के लोग ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आतुर नहीं हुए बल्कि हिन्दू मुसलमान और ईसाइयों ने अपने-अपने सम्प्रदाय वालों को शिक्षित करने के लिए शिक्षा संस्थायें खोलीं। इससे साम्प्रदायिकता की भावना में तो अवश्य वृद्धि हुई पर साथ ही साथ तमाम शिक्षा संस्थाओं के खुलने से लाभ भी रहा।

पुनः जैसाकि सर एच० हार्नी लोवेट ने लिखा है '1864 में प्रारम्भ व्यवस्था ने कई शानदार जन-कर्मचारियों के लेखकों तथा जन प्रतिनिधियों को जन्म दिया है जो केवल अंग्रेजी भाषा से परिचित नहीं थे, अंग्रेजी आदर्शों और विधियों से भी परिचित थे। इसने सामाजिक बुराइयां भी दूर की और भारत में औद्योगिक व व्यापारिक स्रोतों का विकास किया।'[1]

तृतीय अफगान युद्ध

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान रूस ब्रिटेन के साथ लड़ा पर जैसे ही वहां महान क्रान्ति हुई, रूस के राज्य के दूर के भागों जिसमें खीव के खानात और बुखारा भी थे, ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। जब सोवियत की शक्ति स्थापित हो गई तो इन क्षेत्रों को फिर से जीतना था। यह कार्यवाई तब तक चलती रही जब तक कि फारस और अफगानिस्तान रूस और ब्रिटिश सीमा के बीच नहीं आ खड़े हुए। बोल्शेविक प्रचार द्वारा उत्तर पश्चिम सीमा पर ब्रिटिश भारत के लिए कुप्रचार किया गया। फारस को भी ब्रिटिश में तोड़ ले जाने की उनकी नीति सफल नहीं हुई। पर अफगानिस्तान को तो दूसरी ही गाथा कहना था। प्रथम विश्व युद्ध मुश्किल से समाप्त हुआ था। ब्रिटिश ने 10 लाख सैनिकों के मारे जाने और कई लाख के घायल होने के बाद सैनिक अब घर वापसी चाहते थे कि इसी समय अफगानिस्तान की घटनाओं ने 7,50 000 सैनिकों को उस ओर मुड़ने को बाध्य कर दिया। इनके साथ 4,50 000 जानवर भी भेजे गए। तीसरा अफगान युद्ध प्रारम्भ हो गया।

इस संघर्ष के कारण थे। बोल्शेविक प्रचार के अतिरिक्त एशिया के देशों में जो राष्ट्रवादिता की लहर आई हुई थी उससे अफगानिस्तान अपने को मुक्त नहीं कर सका। अफगान भी अपने को ब्रिटिश नियन्त्रण से मुक्त करना चाहते थे। ब्रिटिश व अफगानों के सम्बन्ध इस समय लार्ड रिपन और अमीर अब्दुर्रहमान खान के बीच समझौते के आधार पर चल रहे थे। इस समझौते के

1 कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया भाग 6 पृ० 356।

अन्तगत यहा का विदेश सम्बन्ध ब्रिटिश के हाथ मे था जिसके बदले मे अफगान आर्थिक सहायता प्राप्त करत थे और भारत से होकर विदेशो से हथियार मगाने की अनुमति। आन्तरिक क्षेत्र म अफगानिस्तान स्वतन्त्र था। 1880 म स्थापित यह व्यवस्था कई दशको तक चलती रही जबकि अब्दुरहमान ने स्वय और उसके उत्तराधिकारी हबीबुल्ला न जो 1901 म शासक हुआ था इस व्यवस्था पर प्रसन्नता व्यक्त नही की थी। अफगानिस्तान ने लन्दन म सेण्ट जेम्स के दरबार से सीधे कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की जो कभी पूरी नही हुई। 1916 म हबीबुल्ला न लार्ड चेम्सफोड स पूछा कि वह भी शान्ति सम्मेलन म सम्मिलित होना चाहता है पर इसका उसे कोई उत्साहवद्धक उत्तर नही प्राप्त हुआ। *1919 म उसन वाइसराय को पुन एक पत्र लिखा कि उसे वर्साय शान्ति सधि म स्वीकृति प्रदान की जाय और साथ ही उसन माग की कि, ' प्रशासन के* मामले मे हम पूण स्वाधीनता और स्वतन्त्रता प्रदान की जाय और अफगानिस्तान को धीरे धीरे स्वतन्त्र कर दिया जाय।'[1] चेम्सफोड ने इस पत्र का उत्तर भी टाल-मटोल की भाषा म दिया। पर यह अब स्पष्ट हो चला था कि समय बदल रहा है। अपने गद्दी प्राप्ति के समय ही उसने कहा था कि अफगानिस्तान का राज्य आन्तरिक और बाह्य दोनो रूपो म स्वतन्त्र होना चाहिए अर्थात सरकार के सब अधिकार यदि दुनिया के किसी स्वतन्त्र देश न हमस छीन रखे हैं तो उस अफगानिस्तान का वापस मिलना चाहिए।'[2] अफगानिस्तान अपनी स्थिति बदलन के लिए आतुर था।

प्रथम दो अफगान युद्धो म ब्रिटिशो का जो अपमान हुआ था वह अब भी प्रेरणा का स्रोत था। 1905 म रूस के ऊपर जापान की विजय न अफगानो म यह विश्वास जगाया कि वे भी इगलण्ड जैसी यूरोपीय शक्ति से लोहा ले सकते हैं। 1885 म पजदेह पर रूस का अधिकार और इगलण्ड का उसके हितो की रक्षा न कर पाना अब भी याद किया जाता था। कर्जन पर हबीबुल्ला की कूटनीति विजय 1907 म उसके द्वारा आगरा व कलकत्ता मे लार्ड मिण्टो म *शानदार स्वागत की प्राप्ति सम्राट एडवर्ड का उसे 'मारमेजेस्टी' सम्बोधित करना* आदि बहुत सी बाते थी जिसस अफगान स्वतन्त्रता को हवा मिल रही थी।

अफगानो की इच्छानुसार ब्रिटिश अग्रिम नीति कबील के क्षेत्रो म डूरण्ड लाइन तक पहुच भी नही रही थी। उत्तर पश्चिम सीमा क्षेत्र का कर्जन द्वारा प्रान्त म परिवतन कर देने मीरनशाह जो टोची की घाटी मे था वहा तथा

1 सिव सन आथर नाथ वेस्ट फ्रटियर ल न 1967 पृ० 268।
2 प्रसाद विशश्वर अवर फारेन पालिसी लीगेसी, नई दिल्ली 1965 पृ० 45 द्वारा उद्धृत।

चितराल व अन्य जगहा पर ब्रिटिश चौकी की स्थापना, उनके द्वारा खैबर राइफिल्स माहम्मद मिलीशिया, टोची स्काउटस, कुरम मिलीशिया आदि सैनिक सगठना के निर्माण आदि से अफगानो का यह सदेह मजबूत होता जा रहा था कि ब्रिटिश ठीक वसे ही उनके क्षेत्रो को अपन राज्य मे मिला लेंग जैसे रुसी लोगो न अपने ओर के क्षेत्रो को मिला लिया है।

पूणरूपेण इस्लामी आन्दोलन पान इस्लाम का भी प्रभाव अफगानिस्तान पर पडा। इसकी प्रेरणा का स्रोत था पूरे विश्व के मुस्लिमो की तुर्की के प्रति सहानुभूति जिसे यूरोप का बीमार आदमी कहा जाता था और जा अब मत्यु के दरवाजे पर खडा था। रूस और इगलैण्ड इस स्थिति से क्षेत्रीय लाभ उठाने के चक्कर म थे। तुर्की और इटली तथा 1911-13 के बाल्कन युद्ध के अवसर पर ब्रिटेन न जो तटस्थता दिखाई उसे भी मुसलमाना न पसन्द नही किया क्योकि वे ब्रिटिशा की तुर्की के सुल्तान के प्रति सहानुभूति चाहत थे। 1912 मे ब्रिटिश प्रधानमन्त्री एस्क्विथ के तुर्की के प्रति असहानुभूतिपूण भाषण ने स्थिति को और प्रभावित किया। प्रथम विश्व युद्ध मे तुर्की विरोधी पक्ष मे सम्मिलित था। इसके कारण भी ब्रिटिशो के प्रति मुसलमान नाराज थे। उनके विरुद्ध पूर मध्य पूव मे विरोधी और कटु प्रचार हुआ। जफर अली खा और अली भाइया जसे मुस्लिम नेताओ न भारत के महान नता गाधी जी की सहायता से तुर्की के समथन म खिलाफत आन्दोलन चलाया। उत्तर पश्चिम सीमा क्षेत्र और अफगानिस्तान के मुसलमान इस आन्दोलन से प्रभावित हुए और यह भी ब्रिटिशा के विराध मे गया।

एक अन्य कारण जिसस इस युद्ध को सह मिली। भारत म गदर पार्टी का सगठन था जिसके आधार इसी क्षेत्र मे थे भारत के नता राजा महेन्द्र प्रताप और बरकतुल्ला न जमना से सहानुभूति प्राप्त कर उनकी सहायता से अपनी सयुक्त अध्यक्षता म काबुल मे एक अस्थायी सरकार स्थापित की। इन दोना की मत्री का आधार दोना की ब्रिटिशा से शत्रुता थी। अक्तूबर 1915 मे जब युद्ध घोषित हो चुका था, एक तुर्की जमन शिष्टमडल काबुल आया जिसन अफगाना से ब्रिटिश सम्बन्ध समाप्त करन की राय दी। अस्थायी भारतीय सरकार न इस शिष्टमडल को हर तरह की सहायता प्रदान की। वैसे हबीबुल्ला न भारत सरकार से सम्बन्ध तोडना तो स्वीकार नही किया पर उसने उनसे समझौता किया जिसम उन लोगो न अफगान शासक का 'सप्रभु और स्वतन्त्र राज्य का अध्यक्ष माना। इस मिशन के कारण अफगानिस्तान म कुछ प्रगतिवादी और प्रभावशाली व्यक्ति उभरकर सामन आए जैसे अमीर का भाइ नसरुल्ला खा, अमीर का तीसरा लडका अमानुल्ला अमानुल्ला का भाइ उल्या हजरत, अफगान सेनापति नादिर खा। इनको मिशन न मिलीजुली एक 'वारपार्टी नामक सस्था बनाई जो तुर्की से

सहानुभूति रखते थे। मिशन चाहता था कि अमीर भी इसम सम्मिलित हो जाय। जब अमीर ने इसे नही स्वीकार किया तो यह दल गुप्त रूप स काय करन लगा।

इसी बीच मुल्लाओ का तुर्की के प्रति सहानुभूति हेतु अफगानिस्तान म प्रचार तेज होता जा रहा था। पडोसी क्षेत्रो मे भी यही स्थिति थी। रगिस्तान और दक्षिणी पूर्वी फारस पर भी इसका प्रभाव पडा। भारत के उत्तर पश्चिम सीमा पर मोहमदो का उत्साहित किया गया। विग्रह बढता गया और वातावरण बदलता व विपला होता गया। अफगानिस्तान म हलचल भरी शाति व्याप्त थी जब एकाएक 19 फरवरी, 1919 को अमीर हबीबुल्ला को जो शिकार खेलन गया हुआ था, एकाएक जलालाबाद म मार डाला गया। हबीबुल्ला का सबसे बडा लडका इनायतुल्ला खा, भाई नसरल्ला खा और सेनापति नादिर खा शिकार दल म मौजूद थे। जैस ही यह दुघटना हुई नसरल्ला ने अपने को उत्तराधिकारी अमीर घोषित किया और इनायतुल्ला खा द्वारा भी अपने को शासक मनवा लिया। स्पष्ट था कि 'वार पार्टी' ही इस घटना के पीछे थी। जलालाबाद म हबीबुल्ला के स्वामिभक्त सनिको के सेनापति को कैद कर लिया। नसरुल्ला खा को भी उनक सामने सर झुकाना पडा। उसन पद छोड दिया और हबीबुल्ला क तीसर लडके अमानुल्ला खा को जो काबुल का गवनर था, देश का शासक घोषित किया गया। सैनिको को सन्तुष्ट करन के लिए उनके वेतन म वद्धि कर दी गइ। पुरान सना-पति नादिरखा को दूर खोस्त भेज दिया गया। इन्ही परिस्थितियो म अमानुल्ला ने खुलेआम 'वार पार्टी' से सहायता मागी, उसस समझौता किया और अस्थायी भारतीय सरकार की सहायता से भारत पर आक्रमण की योजना बनाई। मोल्सवथ न लिखा है 'ऐसा लगता है कि भारत के आन्तरिक कठिनाइयो की बढी-चढी रिपोट पर वह विश्वास करता था। उसे ब्रिटिश सैनिको के वापसी की भी सूचना दी गई थी। हो सकता है उसन एक विद्रोह-ध्वस्त देश म सफलता की आशायें की हो कि वह सिंध नदी तक बढकर पशावर और डेराजात क्षेत्रो पर अधिकार कर लेगा उसके पास सनिक प्रशासनिक ज्ञान नहीं था और न योग्यता ही। वह अत्यन्त भावुक, असतुलित और अविश्वसनीय था।[1]

इधर अमानुल्ला ने युद्ध की तैयारियां प्रारम्भ की उधर अस्थायी सरकार न तिलक और गाधी जसे भारतीय नताओ से सपक स्थापित किया। पजाब म विद्रोह करान की चेष्टा की गइ। अप्रैल 1919 मे लाहौर छेहरता, गुरदासपुर और अमृतसर जसे कई स्थानो पर विद्रोह भडक भी उठे। बम्बई, दिल्ली पशावर

---

1 मोल्सवथ लेफ्टीनेंट जनरल जी॰ एन॰ अफगानिस्तान (1919) 1962 पृ॰ 23।

रेलवे पर हिमायत प्रहार किया गया। उद्देश्य यह था कि जब अफगान भारत पर आक्रमण करें, तो दण के विद्रोह व्यवस्था का भग कर दें और जिससे अफगानों की सफलता हो। 3 मई, 1919 का नये अफगान सेनापति सालेह मुहम्मद अपनी सेना के साथ आगे बढा और ब्रिटिश क्षेत्र के बाघ नामक गाव पर अधिकार कर लिया। अफगान सैनिक खबर के पश्चिमी कोने पर एकत्रित थे। लैंडीकोटल म पानी की आपूर्ति रोक दी गई। पम्पिग स्टेशन पर भारतीय कर्मचारियो को मार डाला गया। ब्रिटिश क्षेत्र के जलालाबाद म तमाम कबीले के लोग एकत्रित हुए और उन्ह राइफलें बाटी गईं। ब्रिटिशा क विरुद्ध जेहाद बोल दिया गया।

6 मई को "अफगानिस्तान ने विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी गई। तीसरा अफगान युद्ध प्रारम्भ हो गया पर यह इसके पहले के दो अफगान युद्धा से भिन्न था। 1839 और 1879 म ब्रिटिशो ने आक्रामक लडाई की थी जिससे कि उस क्षेत्र म रूसी प्रभाव न बढ सके। पर 1919 म 'रूसी योगी' पृष्ठभूमि म गायब हो गई थी। इस तरह यह लडाई सुरक्षात्मक आक्रामक दोना थी। किसी भी युद्ध मे आक्रमण रक्षा का बेहतर तरीका माना जाता है।"[1]

महत्त्वपूर्ण युद्धो म स दो तो बाघ म ही लडे गय। बाघ के प्रथम युद्ध म ब्रिटिशा को अधिक सफलता नही मिली। पर बाघ का दूसरा युद्ध उनके पक्ष म समाप्त हुआ। ब्रिटिशा के 10 सनिक मारे गए और 89 घायल हुए। अफगानो की हानि का पता नही चल पाया। सेनापति मोल्सवथ जो युद्ध मे सम्मिलित थे एक रुचिकर घटना का जिक्र करत हैं जो बाघ के दूसरे युद्ध म उन्होने देखी, मेरे निकट लेटा हुआ एक हरकारा एकाएक घायल हो गया। चोट माथे पर लगी थी। उसका हलमेट दूर जा पडा था और उसका माथा खून और मास का लोथडा मालूम पडता था। मुझे आश्चय हुआ कि वह घुटनो के बल उठा। वह काफी घायल था। हमारा बैलो का मास का भोजन 6 पौण्ड के टिना मे रहता था—और एक सेक्सन म एक टिन मिलता था जिसे एक व्यक्ति को ढोना पडता था। इस हरकारे न इसे अपने झाने के ऊपर रख छोडा था और ऊचाई पर अपने पीठ पर लादे हुए था। गाली उसके हेलमेट से होकर टिन को तोडती मास के टुकडे उसके माथे पर गिराती निकल गई थी। अपने माथे से उसन जब उसे गिरा गिराकर साफ किया तो उसका बडा मजाक हुआ और उसके तथाकथित चोट की तो बराबर चर्चा हाती रही। पर उसके सेक्शन के वे लाग उतन प्रसन्न नही हुए जिनका मास का राशन ही जाता रहा था।"[2]

---

1 मोल्सवथ लेफ्टीनेंट जनरल जी० एम० अफगानिस्तान (1919) 1962 पृ० 27।

2 वही पृ० 23।

शांति संधि

"काबुल नदी के पार दक्का मे जो लडाई हुई उसमे ब्रिटिशा के 22 सैनिक मारे गये और 157 घायल हुए और अफगाना के 200 मारे गये और 400 घायल हुए। हैंडलेपज हवाई जहाज द्वारा काबुल पर 24 मई का बमबारी हुई जिससे क्षेत्र मे चिंता व्याप्त हो गई। हरम की महिलाय इससे इतना घबडा गई कि "वे गलिया की तरफ भगी। यह अत्यधिक लज्जाजनक घटना थी जो इस राजधानी ने भोगी थी। ऐसा यहा कभी नही हुआ।"[1] अफगानो की शक्ति शीघ्र ही टूट गई और संधि के लिए बातचीत को आतुर हो गय। 8 अगस्त 1919 को शांति संधि तय हो गई। अफगाना को अपनी इच्छानुसार सब कुछ प्राप्त हो गया। ब्रिटिश शिष्टमडल जो वार्ता के लिए गया था उसन अपने प्रतिद्वंदी शिष्ट मडल से कहा जिसकी भाषा थी "जो शांति संधि हम आपको प्रदान कर रहे हैं उसमे ऐसा कुछ नही है जो आपके आन्तरिक या बाह्य मामले मे हस्तक्षेप करता हो।" इस संधि के फलस्वरूप ब्रिटिशो ने अफगान राज्य के सुरक्षा का उत्तर-दायित्व अपने पास नही रखा। अमीर को आर्थिक सहायता देनी भी बद कर दी गई। पर उसे भारत से होकर हथियार मगान की अनुमति अब भी प्राप्त थी। आपसी शिष्टमडल के आदान प्रदान की व्यवस्था हुई। कहा जाता है अफगाना से कठोर रुख अपनाकर संधि की गई। पर यह स्पष्ट है कि मोलस्वथ का यह मत सही नही है कि उस क्षेत्र मे यथास्थिति कायम कर दी गई। अफगान पक्ष का संधि सबधी नेता सरदार अली अहमद की बात सभवत सत्यता के अधिक निकट है जिसे उसन 12 अगस्त का जलालाबाद की एक सभा मे घोषित करते हुए कहा, 'अफगानिस्तान ने लडाई जीत ली है और ब्रिटिश दक्का को खाली करेंगे और जो हानि उन्होने की है उसकी क्षतिपूर्ति करेंगे।"[3] ब्रिटिशा के अधिकार मे जितने भी क्षेत्र थे, खाली कर दिए गय।

युद्ध का प्रभाव

पर ब्रिटिश उत्तर पश्चिम सीमा क्षेत्र पूर्णतया अव्यवस्थित हो गया और शांति स्थापित करने म कई वर्ष लग गय। लगभग सभी कबीला की सेना जिसे कर्जन ने सगठित किया था। इस अवसर पर ब्रिटिशा का साथ देन की जगह विरोध मे खडी हो गई। बहुत से तो प्रारंभ म ही साथ छोडकर चले गये और

1 स्विन्सन आथर पूर्वोद्धत पृ० 277।
2 प्रसाद बी० पूर्वोद्धत, पृ० 46।
3 देखें, मोलसवथ पूर्वोद्धत पृ० 93, 95।

इस तरह शक्ति का सबल होने की जगह ये एक कठिनाई युद्ध काल तक के लिए बन गये। इस तरह की बातें खबर राइफल्स के साथ हुई। मलिक दीनखाल अफरीदिया के नेता व मलिक यार मुहम्मद ने जमकर कबीलों में विद्रोह की आग भड़काई। टोची वजीरिया ने भी विद्रोह किया जिसका प्रभाव आरी वजीरिस्तान मिलीशिया पर पड़ा। दक्षिणी वजीरिस्तान मिलीशिया लोगों ने भी विरोध किया जिसके कारण ब्रिटिशों ने वाना जैसे स्थानों से सैनिकों को हटवा ही दिया। इस स्थान को खाली करते समय स्वामिभक्त सैनिकों पर आक्रमण किया गया। ऐसा वाना में ही हुआ जिसके कारण भी ब्रिटिशों को हानि पहुंची। 1921-22 के बीच ब्रिटिशों को वजीरिस्तान में शांति स्थापनार्थ महंगे आक्रमण करने पड़े। सच तो यह था कि उत्तर पश्चिम सीमा क्षेत्रों में अफगान एजेण्टों ने ब्रिटिशों के विरुद्ध इतनी आग लगा रखी थी कि 8 अगस्त की शांति का समाचार उन्हें आश्चर्य में डाल गया। कबीले के सरदारों ने अमीर से भेंट की और इतने जल्दी संधि कर लेने का बुरा माना और उन्हें लूटमार का अवसर नहीं मिला। इसका खेद व्यक्त किया पर अमीर ने यह इंगित किया कि शीघ्र ही ब्रिटिशों के विरुद्ध पुनः युद्ध की घोषणा होगी, वे उस अवसर के लिए तैयार हों।

जो कुछ सीमा पर युद्धकाल में हुआ उसमें इतना स्पष्ट हो गया कि कर्जन की सीमा नीति अपनी प्रथम परीक्षा में असफल हो गई। सर कटफ्रेजर टाइटलर जिसे सीमा पर काम करने का काफी अनुभव था और जो 1935 में अफगानिस्तान के लिए ब्रिटिश मंत्री बनाया गया, उसका कहना था कि "मुझे तो संदेह होता है कि क्या कर्जन ने पूरी सीमा समस्या के मूलभूत समस्या के विषय में गुनाधुना भी। उसकी नीति निश्चित रूप से उनके दंडात्मक आक्रमण पर रोक नहीं लगा पायी और न ही उसकी नीति से सीमा के जिलों के लोग आक्रमण से सुरक्षित हो पाये कर्जन की नीति ने कबीलों से हमारे संबंध को लेश मात्र भी नहीं बढ़ाया और यह तृतीय अफगान युद्ध के दबाव में टूट गया क्योंकि ब्रिटिशों के सीमा पार के क्षेत्रों पर से नियंत्रण अफगान सेना के आते ही समाप्त हो गया।"[1]

आंग्ल अफगान संबंधों में तृतीय अफगान युद्ध अंतिम महत्त्वपूर्ण घटना है। इसलिए यह उपयुक्त होगा कि यहां पर कुछ शब्द इन संबंधों की कहानी को पूरा करने के लिए कह लिये जायें जो भारत की स्वतंत्रता तक हमारे सामने आये। अगस्त 1919 की संधि ने अफगानिस्तान को एक नवीन स्थिति प्रदान कर दी। सच तो यह था कि यह ब्रिटिशों द्वारा राष्ट्रवादी तत्त्वों की स्पष्ट स्वीकारोक्ति थी

1 विल्सन आर्थर पूर्वोद्धत, पृ० 262 में उद्धृत।

जो प्रथम विश्व युद्ध के बाद पूरे एशिया मे उभर रही थी। ब्रिटिश ने यह जान लिया कि अब भारत की सीमाओ पर अर्थ सहायता से प्रभावित मित्र राज्या को बनाए रखना व्यावहारिक नही है। जैसे ही अमानुल्ला ने ब्रिटिश सरक्षण से मुक्ति पायी उसने युरोपीय राज्यो से मैत्री विकसित करनी प्रारभ कर दी। पुरातत्त्ववेत्ता, वैज्ञानिक और तकनीकी लोग इटली, फ्रास और जर्मनी से अफगान स्रोतो को खोजने के लिए बुलाये गए। सोवियत सघ से एक सधि की गई जिसके अतगत अमानुल्ला को हथियारो की भेंटप्राप्त हुई और कुछ लाभ भी प्रदान किये गय। बाद मे अफगानिस्तान और सोवियत सघ के बीच उर्तातगाई मे 1925 मे खटपट भी हो गई। पर शीघ्र ही शाति की स्थापना हो गई और दोनो देशो के बीच युद्ध न करने की सधि हो गई। इस काल मे वैस तो ब्रिटिशो ने अफगानो के स्वतन्त्र काय के अधिकार को स्वीकार किया, पर कभी कभी उनकी चिन्ता यह देखकर बढ जाती थी कि किस तरह सोवियत सघ ने अपने नियत्रण मे किरधिजिया, उजबेगिस्तान, ताजिकिस्तान और तुर्कमिनिस्तान मे गणतत्र की स्थापना कर दी, जबकि बुखारा के अमीर को काबुल मे शरण लेने को बाध्य होना पडा। पर उन्हान अपनी भावनाओ को शान्त रखा और अफगानो के आन्तरिक व बाह्य नीति म कोई हस्तक्षेप नही किया। अमानुल्लाह ने अफगानिस्तान का पश्चिमीकरण भी किया। पश्चिमी जीवन, पश्चिमी शिक्षा व्यवस्था और पश्चिमी ढग का प्रशासन सब का वहा स्वागत होन लगा। पर कट्टर अफगान उसके साथ इस क्षेत्र मे कदम से कदम मिलाकर चलने को तयार नही थे। अमानुल्लाह का आधुनिकीकरण का प्रयास लागा के धम म स्पष्ट हस्तक्षेप माना जाने लगा। उन्हाने इसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसे अपना देश छोडकर इटली मे शरण लेनी पडी। सेनापति नादिर खा न शासन अपने हाथ मे लिया और एक नये वश की नीव डाली। ब्रिटेन, फ्रास, जर्मनी और अन्य तमाम युरोपीय देशो ने तुरत नादिर खा को शासक स्वीकार किया और आग्ल-अफगान सीमाओ पर उसके और उसके उत्तराधिकारियो के काल मे भी शाति बनी रही। स्थिति यह थी कि जब द्वितीय विश्व युद्ध प्रारभ हुआ उस समय किसी विदेशी शक्ति के आक्रमण का विरोध अफगानिस्तान स्वय करेगा, यह मान लिया गया। 1919 की शाति सधि से जो नयी नीति उभरकर सामने आई उसे भारत के सेक्रेट्री आफ स्टेट लाड जेटलैण्ड न 1940 मे इस तरह से प्रस्तुत किया "एक शक्तिशाली, स्थायी और मैत्रीपूण अफगान प्रशासन म ब्रिटिशो की सदा रुचि रही है और आज तो और भी पहले से अधिक। और यदि हमने भूतकाल म अपने लाभ के लिए उनपर नियत्रण स्थापित किया और उनकी आर्थिक सहायता की, तो अब हमने उस लाभ का भी अनुभव कर लिया है जो हमने उनके यहा स्थायी मैत्रीपूण और स्वतत्र राज्य की स्थापना के माध्यम स

प्राप्त किया है। हम इस बात से सतुष्ट हैं कि एक स्वतंत्र सप्रभु राज्य की मैत्री का आधार अधिक शक्तिशाली होता है बनिस्वत इसके कि राज्य अशात दास भाव मे जकड दिया जाय जो स्वतंत्रता प्रेमी अफगाना के लिए कष्टकर हो। इससे दोना देशा का हित साधन होता है। भारत और अफगानिस्तान के बीच शक्तिशाली मैत्री का भाव है यह कोई भी देख सकता है। दोना दशा की भौगोलिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितिया से यह स्पष्ट है।"[1]

1 प्रसाद बी० पूर्वोक्त पृ० 48 49।

ग्रन्थ-सूची

अभ्यंकर, एम० जी० द राजपूत राइफिल्स, बम्बई, 1961।

अबो, जे० एम० इंडियन फ्रंटियर पालिसी, 1897।

अग्रवाल, आर० एन० नेशनलिस्ट मूवमेंट ऐण्ड कान्स्टीच्युशनल डेवलपमेण्ट आफ इंडिया, दिल्ली, 1967।

अहलूवालिया, एम० एम० फ्रीडम स्ट्रगल इन इंडिया, दिल्ली, 1965।

अहमद जमीलुद्दीन द इंडियन कान्स्टीच्युशनल टैंगल।

अहमद, सफी ब्रिटिश ऐग्रेसन इन अवध, मेरठ, 1969।

अहमद, जेड० ए० इंडियन फेडरेशन।

अहमद, सर सय्यद एस्से आन काजेज आफ इंडियन रिवोल्ट, अनुवाद एम०एन० लीस।

अल्डर, जी० जे० ब्रिटिश इंडियाज नार्दन फ्रण्टियर, लदन, 1967।

अलेक्जेंड्रोविक्स, सी० एच० कान्स्टीच्युशनल डेवलपमेंट आफ इंडिया, 1957।

अली, शहमत सिक्स ऐण्ड अफगान्स।

अमरनाथ, दीवान जफरनामा-ए रणजीत सिंह।

अम्बेडकर, बी० आर० इवोल्यूशन आफ प्राविन्शियल फाइनैन्स इन ब्रिटिश इंडिया।

अमीर, अब्दुर्रहमान आटोबाईग्राफी भाग 2,1900।

अमृतसर खालसा कालेज पब्लिश्ड बाई सेंटीनरी वाल्युम आफ रणजीत सिंह।

अप्पादोराई, ए० डयारकी इन प्रैक्टिस।

अथाल्ये द लाइफ आफ लोकमान्य तिलक।

अजीज, के० के० ब्रिटेन ऐण्ड मुस्लिम इंडिया, लंदन, 1963।

आनंद, सी० एल० हिस्ट्री आफ गवनमेंट आफ इंडिया।

आयर, डब्ल्यू० जी० पेंटिग्स आफ द सिक्ख्स, लन्दन, 1966।

आर्नल्ड, एडविन मार्क्विस आफ डलहौजीज ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ ब्रिटिश इंडिया, 2 भाग।

आर्थर, सर जो० लाइफ आफ लार्ड किचनर।
इल्बर्ट, सी० पी० द गवर्नमेण्ट आफ इंडिया।
इल्बर्ट, सी० पी० हिस्टारिकल इन्ट्रोडक्शन।
इन्स द सिप्वाय रिवोल्ट।
ईश्वरी प्रसाद ऐण्ड, के० एस० सूबेदार ए हिस्ट्री आफ माडर्न इंडिया।
ओसबर्न, हान, डब्ल्यू० जो० द कोर्ट ऐण्ड कैम्प आफ रणजीत सिंह, 1840।
ओ डायर, माइकेल इंडिया ऐज आई नो इट (1885-1925) लंदन, 1925।
ऑगमौगदिन ए हिस्ट्री आफ बर्मा, यु० एस० ए० 1967।
ए सिम्पोजियम रिबैलियन, 1857।
ऐडम्स, ऐंड्रयू वार्डरिंग आफ ए नेचुरलिस्ट इन इंडिया, एडिनबरा, 1867।
ऐतचिसन सी० पी० ट्रीटीज, इनगेजमेण्ट्स ऐण्ड सनदस, रेलीवेंट वाल्युम्स, कलकत्ता, 1876।
ऐतचिसन सी० एच० लार्ड लारेंस।
ऐय्यर, सर पी० एस० एस० इंडियन कन्स्टीच्युशनल प्राबलम्स।
ऐंड्रूज, सी० एफ० द राइज एण्ड ग्रोथ आफ कांग्रेस इन इंडिया कलकत्ता, 1967।
ऐंड्रूज, सी० एफ० इंडिया ऐण्ड हर नेबर्स।
ऐंड्रूज, डब्ल्यू० पी० अवर साइंटिफिक फ्रंटियर।
कोटमन द रोड टु सेल्फ गवर्नमेण्ट।
कोलचेस्टर द इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ लार्ड एलेनबरो, लंदन, 1874।
कोलब्रोक, एच० टी० लाइफ आफ एलफिंस्टन, 2 भाग।
काल्विन, ए० जान रसेल काल्विन।
कोमिंग, सर जान पालिटिकल इंडिया, दिल्ली, 1968।
काटन, सर हेनरी इंडिया ओल्ड एण्ड निव।
काटन, सर हेनरी इंडियन एण्ड होम मेमरीज।
काटन, सर हेनरी निव इंडिया इंडिया इन ट्रांजिसन।
कूपलैंड, आर० इंडिया, ए रीटेस्टामेंट।
कूपलैंड, आर० द इंडियन प्राब्लेम (1833 1935) 1945।
कोट, मेजर हेनरी हिस्ट्री आफ द सिक्ख, लाहौर 1888।
कोवेल, हर्बट हिस्ट्री ऐण्ड कान्स्टीच्युशन आफ द कोर्टस एण्ड लेजिस्लेटिव अथारटीज इन इंडिया, 1936।
क्रेडक, रेजीनाल्ड डेलीमा इन इंडिया।
कनिंघम, सर एच० एस० अर्ल आफ कैनिंग, हंटर सिरीज।
कनिंघम, जे० डी० हिस्ट्री आफ द सिक्ख, दिल्ली, 1966।

कनिंग एम० दुर्रानी।
कर्जन लार्ड नथानियल ब्रिटिश गवर्नमेंट इन इंडिया भाग 1 व 2।
कर्जन लार्ड नथानियल रशा इन सेन्ट्रल एशिया।
कर्जन लार्ड नथानियल स्पीचेज।
कस्ट राबर्ट लिंग्विस्टिक ऐंड ओरिएन्टल एसेज।
कबीर, हुमायूँ द इंडियन हेरिटेज बम्बई 1964।
कबीर हुमायूँ मुस्लिम पॉलिटिक्स ऐन्ड अदर एसेज कलकत्ता १९६९।
कन्हैयालाल तारीखे पंजाब ट्रांसलेटेड इन्टू पंजाबी बाई जे० एस० ग्रेवाल
1968।
कपूर डी० के० जुडीशियरी इन द पंजाब लाहौर १९२९।
कपूर एम० एल० कश्मीर सोल्ड ऐंड स्नैच्ड १९६९।
करम सिंह (हिस्टोरियन) लसकरण मुल्ले इतिहासिक लेख पंजाबी।
करनदिकर एम० ए० इस्लाम इन इंडियाज ट्रांजिशन टु माडर्निटी बम्बई
1968।
करुणाकरन के० पी० रिलीजन ऐंड पॉलिटिकल अवेकनिंग इन इंडिया,
कलकत्ता 1965।
करुणाकरन के० पी० माडर्न इंडियन पॉलिटिकल ट्रेडीशन।
कानूनगो, पंडित हरि फ्राम सेंटीनरी वाल्यूम आफ रणजीत सिंह।
कम्पबेल जार्ज मेमायर्स आफ माई इंडियन कैरियर 2 भाग लंदन, १९०३।
कोटमैन, जे० इंडियन रिडिल 1932।
कौशिक पी० डी० द कांग्रेस आईडियालाजी ऐन्ड प्रोग्राम बम्बई, १९६४।
केयी सर जान हिस्ट्री आफ द वार इन अफगानिस्तान 2 भाग 1874।
केयी सर जान क्रिश्चियनटी इन इंडिया 1859।
केयी सर जान ऐण्ड मलीसन हिस्ट्री आफ द इंडियन म्युटिनी, 6 भाग।
कीर, धनन्जय लोकमान्य तिलक, बम्बई 1969।
कीथ, ए० बी० ए कान्स्टीट्युशनल हिस्ट्री आफ इंडिया, इलाहाबाद, 1961।
कीथ, ए० बी० स्पीचेज ऐण्ड डाकूमेण्ट्स आन इंडियन पालिसी, भाग 1 व 2।
केलक महादेव गोबिन्द रानाडे।
केरल पुत्र वर्किंग आफ डायार्की इन इंडिया (1919 29)।
किनकेड, सी० ए० ए हिस्ट्री आफ द मराठा पीपल, दिल्ली, 1968।
किशोर, ब्रिज ताराबाई ऐण्ड हर टाइम्स, बम्बई 1963।
कोचानेक, स्टेनले ए० द कांग्रेस पार्टी आफ इंडिया 1968।
कोहली, सीताराम सन सेट आफ द सिख इम्पायर, बम्बई, 1967।
कोहली, सीताराम रणजीत सिंह (पंजाबी)।

कृष्णा, के० वी० द प्राब्लम आफ माइनारिटीज।
कुलकर्णी, वी० बी० ब्रिटिश डोमीनियन इन इंडिया ऐण्ड आफ्टर, बम्बई, 1964।
कुलकर्णी, वी० बी० ब्रिटिश स्टेटसमेन इन इंडिया, बम्बई, 1961।
कुमार, रवीन्द्र इंडिया ऐण्ड द पर्सियन गल्फ रीजन, कलकत्ता, 1965।
कुंजरु पब्लिक सर्विसेज इन इंडिया।
कानूनगो, कालिकारंजन स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री, दिल्ली, 1960।
खान आगा, एच० एच० इंडिया इन ट्रांजिसन, 1918।
खान, गुलाम हुसेन सियारुल मुतखरीन, कानपुर, 1897।
खान, मीर मुंशी, सुलतान मुहम्मद द लाइफ आफ अब्दुरहमान अमीर आफ अफगानिस्तान, 2 भाग।
खेड़ा, पी० एन० ब्रिटिश पालिसी टुवड्स सिंध, दिल्ली, 1963।
खेड़ा एस० एस० इंडियाज डिफेन्स प्राब्लम, बम्बई, 1968।
खुशवंत सिंह ए हिस्ट्री आफ द सिक्स, 2 भाग।
खुशवंत सिंह फाल आफ द किंगडम आफ पंजाब।
गंडा सिंह प्राइवेट करेस्पान्डेन्स रिलेटिंग टु द ऐंग्लो सिख वार्स (संस्करण)।
गंडा सिंह द पंजाब इन 1839 40।
गांगुली बी० एन० दादा भाई नौरोजी ऐण्ड द ड्रेन थियरी, बम्बई, 1965।
गायकवाड, बी० आर० द ऐंग्लो इंडियन्स, लंदन, 1967।
गार्डनर, अलेक्जांडर मेमायर्स आफ अलेक्जांडर गार्डनर, संस्करण, इम्पिरियल गजेटियर्स, डिस्ट्रिक्टस, गुजरानवाला जालंधर, मुल्तान।
गरेट, जी० टी० लीगसी आफ इंडिया।
गिब एच० ए० आर० मोहम्मडनिज्म ऐन हिस्टारिकल सर्वे लंदन, 1949।
गिलियट, एडवर्ड हीरोज आफ माडर्न इंडिया, दिल्ली 1971।
गोल्डबर्ग एन० एम० तिलक ऐण्ड स्ट्रगल फार इंडियन फ्रीडम, नई दिल्ली, 1966।
गार्डन, जनरल सर जान द सिक्स, 1904।
गौफ, जन० सर चार्ल्स ऐण्ड इन्स, आर्थर डी ▪ सिक्स ऐण्ड द सिख वार्स, 1897।
ग्रहम पोल, मेजर डी० ऐण्ड शिवराम बी० द प्राब्लम आफ इंडिया।
ग्रहम मेजर जी० एफ० एल० द लाइफ ऐण्ड वर्क्स आफ सर सैयद अहमद खां।
ग्राण्ट, हाप इन्सीडेन्ट्स इन द सीप्वाय म्युटिनी।
ग्रे ऐण्ड गार्नेट युरोपियन ऐडवेन्चरर्स आफ नादर्न इंडिया।
ग्रिफिन, लेपेल रणजीतसिंह, इंडियन रीप्रिंट, दिल्ली, 1967।

ग्रिफिय्स, पर्सीवल द ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इंडिया, लंदन, 1952।
गुप्ता, एच० आर० पंजाब आन द ईव आफ द फर्स्ट सिख वार, (होशियारपुर, 1956)।
गुप्ता, एच० आर० हिस्ट्री आफ द सिख्स, 3 भाग।
गुप्ता, मनोरंजन जगदीशचन्द्र बोस, बम्बई, 1964।
गुप्ता, प्रतुलचन्द्र नाना साहब ऐण्ड द राईजिंग ऐट कानपुर, लंदन, 1965।
गुप्ता, प्रतुलचन्द्र बाजीराव II ऐण्ड द ईस्ट इंडिया कंपनी, बम्बई, 1964।
गुप्ता, सुभाषचन्द्र अग्रेरियन रिलेशन्स ऐण्ड अर्ली ब्रिटिश रूल इन इंडिया, कलकत्ता, 1963।
घोष, दिलीप कुमार इंगलैण्ड एण्ड अफगानिस्तान, कलकत्ता 1960।
घोष, शंकर द वेस्टर्न इम्पैक्ट आन इंडियन पालिटिक्स, बम्बई, 1967।
घोष, शंकर द रिनेशा टु मिलीटेन्ट नेशनलिज्म इन इंडिया, बम्बई, 1969।
घोष, पी० सी० द डेवलपमेन्ट आफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, कलकत्ता, 1960।
घोष प्रेस ऐण्ड प्रेस लाज इन इंडिया।
घोषाल, यु० एन० ए हिस्ट्री आफ इंडियन पब्लिक लाइफ, लंदन, 1966।
घत्पतिराव द प्रेस इन इंडिया लंदन, 1968।
चट्टोपाध्याय गौतम अवेकनिंग इन बंगाल इन अर्ली नाइनटीन्थ सेन्चुरी, कलकत्ता, 1965।
चमनलाल द वैनिशिंग इम्पायर, नई दिल्ली, 1969।
चन्द्र, जगप्रवेश देलही, ए पालिटिकल स्टडी, दिल्ली 1969।
चटर्जी, अमिया द कान्स्टीच्युशनल डेवलपमेंट आफ इंडिया, 1937 47, कलकत्ता, 1958।
चटर्जी, अतुलचन्द्र द निव इंडिया, लंदन, 1948।
चटर्जी, बी० सी० द हार्ट आफ आर्यावर्त।
चटर्जी, ए० सी० इंडियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम, 1947।
चक्रवर्ती, अमलानंद हिन्दूज एण्ड मुस्लिम्स आफ इंडिया।
चले, जे० ऐडमिनीस्ट्रेटिव प्राब्लम आफ ब्रिटिश इंडिया।
चौधरी, एस० बी० सिविल रिवलियन इन द इंडियन म्युटिनीज, (1857 59) कलकत्ता, 1967।
चौधरी, एस० बी० थोयरीज आफ इंडियन म्युटिनी, कलकत्ता, 1966।
चावडा, बी० के० गायकवाड्स ऐण्ड द ब्रिटिश, दिल्ली, 1967।
चिन्तामणि, सी० वाई० इंडियन पोलिटिक्स सिन्स म्युटिनी।
चेस्ने, जी० एम० इंडिया अंडर एक्सपेरीमेण्ट, 1918।

चेस्ने, सर जार्ज द इण्डियन पालिटी।
चिरोल, वालेंटाइन इण्डियन अनरेस्ट।
चिरोल, वालेंटाइन इंडिया, ओल्ड एण्ड निव, लदन, 1921।
चोपड़ा गुलशनलाल द पंजाब ऐज ए सावरेन स्टेट, होशियारपुर, 1960।
चौधरी बी० एस० पी० इम्पीरियल पालिसी आफ ब्रिटिश इन इंडिया, कलकत्ता, 1968।
चौधरी, राधाकृष्ण हिस्ट्री आफ बिहार, पटना, 1958।
छाबड़ा जी० एस० सोशल ऐण्ड इकोनामिक हिस्ट्री आफ द पंजाब, 1849-1901, जालंधर, 1962।
छाबड़ा जी० एस० एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ द पंजाब, 2 भाग, जालंधर, 1968।
जगदीशराज द म्युटिनी एण्ड ब्रिटिश लैण्ड पालिसी इन नार्थ इंडिया, बम्बई, 1965।
जकारिया, एच० रिनेसेन्ट इंडिया, 1933।
जेटलैण्ड, लार्ड स्टेप्स टुवर्डस होम रूल।
झा, जगदीशचन्द्र भूमिज रिवोल्ट, दिल्ली, 1967।
टगोर, सर रवीन्द्रनाथ नेशनलिज्म, 1921।
टेलर, एम० कन्फेसंस आफ ए ठग।
टेम्पुल, सर आर० ओरियन्टल एक्सपीरियन्स।
टेम्पुल, सर आर० मेन एण्ड इवेन्टस आफ माई टाइम इन इंडिया।
टेम्पुल, सर आर० इंडिया इन 1880।
टिंकर, ह्यू फाउण्डेशंस आफ लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट इन इंडिया, पाकिस्तान एण्ड बर्मा, 1967।
टिंकर, ह्यू दी आरियण्टेशंस, 1965।
टाइटस इंडियन इस्लाम, 1930।
टोपा, आई० एन० द ग्रोथ ऐण्ड डेवलपमेण्ट आफ नेशनलिस्ट थाट आफ इंडिया, 1930।
टवायनबी, आनल्ड वन वर्ल्ड ऐण्ड इंडिया।
ट्रेवलियन, सी० एफ० आन द एजूकेशन आफ द पीपुल आफ इंडिया, 1838।
ट्रेवेलियन, जी० ओ० कम्पटीशनवाला।
ट्रेवेलियन, जी० एस० कानपुर।
ट्राटर, एल० जे० हिस्टी आफ ब्रिटिश इम्पायर इन इंडिया।
ट्राटर एल० जे० द अल आफ आक्लैण्ड, 1893।
टामस, एफ० डब्लू ब्रिटिश एजूकेशन इन इंडिया।

टाम्सन, एडवड ऐण्ड गरेट जी० टी० राइज ऐण्ड फुलफिलमेण्ट आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया, इलाहाबाद, 1962।
टाम्सन एडवड ऐण्ड गैरेट जी० टी० द मकिंग आफ द इडियन प्रिंसेज, आक्सफड युनीवर्सिटी प्रेस, 1943।
टाम्सन ई० द अदर साइड आफ द मेडल, 1925।
टाम्सन, ई० लाड मेटकाफ।
टाम्सन, ई० सी० एम० इडिया आफ टुडे 1913।
ठाकोर, बी० के० इडियन एडमिनिस्ट्रेशन टु द डान आफ रिसपासिबल गवनमेण्ट।
डेवीज द प्राब्लम आफ नाथ वेस्ट फ्रटियस, 1932।
डेयोल, जी० एस० द रोल आफ द गन्र पार्टी इन द नेशनल मूवमेण्ट, दिल्ली, 1969।
डिग्बी प्रासपरस ब्रिटिश इडिया।
डाडवेल, एच० एच० (सस्करण) द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया, भाग 5, एव 6, दिल्ली, 1964।
डोंगरकेरी, एस० आर० ममायस आफ द युनिवर्सिटीज, बबई, 1966।
डफ, जेम्स ग्राण्ट हिस्ट्री आफ द मराठाज, भाग 3, 1912।
डफरिन, मार्क्विस आफ आवा स्पीचेज डेलीवड इन इडिया।
डूरण्ड, सर एच० मरियन द फस्ट अफगान वार ऐण्ड इट्स काजेज, 2 भाग।
ताराचद हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन इडिया, भाग 1 व 2।
तेहमाकर, डी० वी० लोकमान्य तिलक।
तिलक, बी० जी० राइटिंग्स ऐण्ड स्पीचेज।
थानबन, एस० एस० द पजाव इन पीस ऐण्ड वार लदन, 1901।
थानटन हिस्ट्री आफ द ब्रिटिश इम्पायर इन इडिया, 2 भाग।
थानटन रिचड मीड।
थकवल, एडवड जोसेफ नरेटिव आफ द सेकण्ड सिख वार इन 1848 49, लदन, 1851।
देसाई ए० आर० सोशल बैक ग्राउ ड आफ इडियन नेशनलिज्म, 1948।
दिवाकर, आर० आर० महायोगी श्री आरविन्दो, बम्बई, 1967।
दुआ, आर० पी० द इम्पैक्ट आफ द रसो जापानीज (1905) वार आन इडियन पॉलिटिक्स, दिल्ली, 1966।
दास, सी० आर० इडिया फार इडियन्स, 1918।
दास, एम० एन० द इकोनामिक एण्ड सोशल डवलपमेण्ट आफ माडन इडिया, कलकत्ता, 1959।

दास, एम० एन० इंडिया ऐण्ड मार्ले ऐण्ड मिण्टो, लंदन, 1969।
दुर्गादास इंडिया फ्राम कर्जन टू नेहरू ऐण्ड आफ्टर, 1969।
दत्त आर० सी० द इकोनामिक हिस्ट्री आफ इंडिया।
दत्त, आर० सी० इंडिया इन द विक्टोरियन एज।
दत्त, आर० सी० कलकत्ता हेरिटेज आफ बंगाल, कलकत्ता 1962।
द्वारकादास काजी इंडियाज फाइट फार फ्रीडम, बम्बई, 1966।
धर्म कुमार लैंड ऐण्ड कास्ट इन साउथ इंडिया, लंदन, 1966।
धर्मपाल ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ सरजान लारेंस इन इंडिया, 1864 69, शिमला, 1952।
नालीज हेनरी द सिप्वाय म्युटिनी, कम्पाइल्ड फ्राम प्राइवेट जर्नल्स आफ जन० सर होप ग्राण्ट।
नादकर्णी, आर० वी० राइज ऐण्ड फाल आफ द मराठा इम्पायर, बम्बई, 1966।
नपियर विलियम द कान्क्वेस्ट आफ सिंध।
नारंग गोकुलचंद ट्रांसफार्मेशन आफ सिखिज्म, नई दिल्ली, 1960।
नरंग, दीवान नरसिंह दास गुलाबसिंह।
नटराजन, ऐस० ए सेंचुरी आफ सोशल रिफार्म्स इन इंडिया, 1959।
नटराजन, एस० हिस्ट्री आफ द प्रेस इन इंडिया, लंदन, 1962।
नेहरू, जवाहर लाल डिस्कवरी आफ इंडिया।
नेहरू, जवाहर लाल ऐन आटोबाइग्राफी, बम्बई, 1952।
नेहरू, जवाहर लाल इंडिया ऐण्ड द वर्ल्ड।
निथरकाट, आथर एच० द फस्ट फाइव लाइंस आफ एनी बेसेंट, लंदन 1961।
निथरकाट, आथर एच० द लास्ट फोर लाइव्स आफ एनी बेसेंट, लंदन, 1963।
निवटन ए० पी० ए हन्ड्रेड इयर्स आफ द ब्रिटिश इम्पायर, लंदन, 1967।
नामन, मुहम्मद द मुस्लिम इंडिया।
नारिस, जे० ए० द फस्ट अफगान वार (1838 42), कैम्ब्रिज, 1967।
नोविसन द निव स्पिरिट इन इंडिया।
पाल, बी० सी० मिसेज एनी बेसेंट।
पलांदे, एम० आर० ऐन इन्ट्रोडक्शन टू इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेशन।
पामर, जे० ए० बी० द म्युटिनी आउटब्रेक ऐट मेरठ इन 1857, लंदन 1966।
पांडे, बी० एन० इन्ट्रोडक्शन आफ इगलिश ला इन ट इंडिया, बम्बई 1967।
पांडे, बी० एन० राइज आफ माडन इंडिया, 1967।

पाणिक्कर, के० एम० फाउ डेशनस आफ निव इडिया ।
पाणिक्कर, के० एम० आइडियाज आफ सावरेण्टी ऐण्ड स्टेट इडियन पालिटिक्ल थाट, बम्बई, 1963 ।
पाणिक्कर, के० एम० द नेटिव स्टेटस आफ इडिया ।
पाणिक्कर, के० एम० रिलेशस आफ इडियन स्टेटस ।
पाणिक्कर, के० एम० स्टडीज इन इडियन हिस्ट्री, 1963 ।
पाणिक्कर के० एम० गुलाब सिंह ।
पाणिक्कर, के० एम० इट्रोडक्शन टू स्टडी आफ रिलेशस आफ इण्डियन स्टेटस टू गवनमेण्ट आफ इडिया ।
पाणिक्कर, के० एम० इवोल्युशन आफ ब्रिटिश पालिसी टूवडस इडियन स्टेट्स (1774 1858)
पजाब से सस रिपोटस आफ 1881, 1891, 1901
पजाबी, के० एस० सिविल सर्वेण्टस इन इडिया, बम्बई, 1965 ।
पारेख ब्रह्म समाज ।
पावते, टी० वी० मेक्स आफ माडन इडिया, दिल्ली, 1964 ।
पाटिल, आर० सी० स्पीचेज आफ बाबू सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी ।
पवार ए० जी० स्टडीज इन इडियन हिस्ट्री, कोल्हापुर, 1968 ।
पेने, सी० एच० ए शाट हिस्ट्री आफ द सिख्स ।
पियसन, हस्केथ द हीरो आफ दहली ।
पर्सीवल, स्पियर इडिया ए माडन हिस्ट्री ।
पर्सीवल, ग्रिफिथ माडन इडिया ।
पर्सीवल, ग्रिफिथ द ब्रिटिश इम्पक्ट आन इडिया ।
पोल्स डी० ग्रेहम , इडिया इन ट्राजिशन, लदन, 1932 ।
पावेल प्राइस, जे० सी० ए हिस्ट्री आफ इडिया ।
प्रधान, आर० एस० इडियाज स्ट्रगिल फार स्वराज ।
प्रसाद अम्बा द इडियन रिवोल्ट आफ 1942, देहली, 1958 ।
प्रसाद, विशेश्वर ओरीजिन आफ प्राविसियल आटोनामी ।
प्रसाद, विशेश्वर अवर फारेन पॉलिसी लीगेसी, नई दिल्ली, 1965 ।
प्रसाद बेनी हिंदू मुस्लिम क्वेश्चन, इलाहाबाद, 1947 ।
प्रसाद, विश्वनाथ द इडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस, दिल्ली, 1968 ।
प्रसाद, एस० एन० पैरामाउटसी अडर डलहौजी दिल्ली, 1964 ।
प्रिसेप, एच० टी० ओरीजिन आफ द सिख पावर इन पजाब, 1834 ।
प्रिसेप ट्रैजेक्स स ।
पुनिया, के० बी० द कान्स्टीच्युशनल हिस्ट्री आफ इडिया, दिल्ली, 1964 ।

फिलो, एम० बी० कॉन्स्टीच्यूशनल गवर्नमेंट इन इंडिया, बम्बई, 1965।
फर्कूहर, जे० एन० माडर्न रिलीजस मूवमेंट्स इन इंडिया, दिल्ली, 1967।
फिशर हिस्ट्री आफ यूरोप।
फ्रेजर, लोवट इंडिया अंडर कर्जन ऐण्ड आफ्टर।
फडनीस, उर्मिला टुवर्डस इंटीग्रेसन आफ इंडियन स्टेटस, बम्बई, 1968।
फिलिप, सी० एच० सेलेक्ट डाकूमेंटस आन द हिस्ट्री आफ इंडिया ऐण्ड पाकिस्तान।
बन्स, जे० एस० इंडियन इंटरनेशनल डिस्प्युटस, बम्बई 1962।
बेयर्ड, जे० सी० ए० प्राइवेट लेटर्स आफ डलहौजी।
बाजवा, फौजा सिंह मिलिटरी सिस्टम आफ द सिरस ड्युरिंग द पीरिएड (1799-1849)।
बक्सी, एस० आर० ब्रिटिश डिप्लोमेसी ऐण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, (1807 13), दिल्ली, 1970।
बाल्फोर, बी० लिटन्स इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेशन, 1899।
बाल चार्ल्स हिस्ट्री आफ द इंडियन म्युटिनी, 2 भाग।
बैनर्जी, ए० सी० ऐंग्लो सिख रिलेशन्स, कलकत्ता, 1949।
बनर्जी, ए० सी० द ईस्टन फन्टियस आफ ब्रिटिश इंडिया, कलकत्ता 1964।
बनर्जी, ए० सी० इंडियन कान्स्टीच्युशनल डाकूमेंटस, 3 भाग, 1946।
बैनर्जी, एस० एन० स्पीचेज ऐण्ड राइटिंग्स।
बनर्जी, एस० एन० ए नेशन इन मेकिंग।
बाकर, ए० जे० द मार्च आन देहली, लंदन, 1963।
बाकर, ए० जे० नेगलेक्टेड वार मेसोपोटामिया (1914 18) लंदन, 1969।
बाकर, ए० टी० (संस्करण) द महात्मा लेटर्स।
बाटन, सर विलियम द प्रिंसेज आफ इंडिया।
बसु, बी० डी० मेजर राइज आफ द क्रिश्चियन पावर इन इंडिया।
बसु, दुर्गादास कान्स्टीच्युशनल डाकूमेंटस, कलकत्ता, 1969।
बत्रा, एच० सी० रिलेशन्स आफ जयपुर स्टेट विद ईस्ट इंडिया कंपनी दिल्ली, 1958।
बेलफोर, लेडी बेट्टी पर्सनल ऐण्ड लिटररी लेटर्स आफ अर्ल आफ लिटन, भाग 2।
बेलफोर, लेडी बेट्टी लिटन्स इण्डियन ऐडमिनिस्ट्रेशन।
बेल, इवान्स ऐन एनेक्सेसन आफ पंजाब एण्ड महाराजा दिलीप सिंह, लंदन, 1882।
बेल, सर चार्ल्स तिब्बत पास्ट ऐण्ड प्रजेण्ट, लंदन, 1968।

बेन सर चार्ल्स द पीपुल्स आफ निब्बर, लंदन 1988।
बेनी एच० डब्लू० नार्थ वेस्ट फ्रन्टियर ऐण्ड अफगानिस्तान।
बेसेन्ट एनी बिल्डर आफ निव इण्डिया स्पीचेज ऐण्ड राइटिंग्स।
बेसेन्ट एनी इण्डिया ए नेशन 1930।
बेसेन्ट एनी इण्डिया एण्ड द इम्पायर 1914।
बेसेन्ट एनी द फ्यूचर आफ इण्डियन पॉलिटिक्स।
बेसेन्ट एनी हाउ इण्डिया राट फार फ्रीडम।
बेसेन्ट, एनी इण्डिया दैट शैल बी।
बेसेन्ट, एनी इण्डिया बाउण्ड आर फ्री, 1926।
बिसुन दयाल एस० ए कन्साइज हिस्ट्री आफ मारीशस, बम्बई, 1965।
ब्लेडेनबर्ग मेजर रॉस आफ द मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स, (संस्करण) सर डब्लू० डब्लू० हण्टर।
ब्लन्ट, डब्लू० एस० इण्डिया अंडर रिपन—ए प्राइवेट डायरी।
ब्लन्ट डब्लू० एस० आइडियाज एबाउट इण्डिया।
बोस, एम० के० कल्चर ऐण्ड सोसायटी इन इण्डिया, बम्बई, 1967।
बोस नेमाई साधन द इण्डियन नेशनल मूवमेन्ट, कलकत्ता, 1965।
बूलजर डेमेट्रियस सी० लार्ड विलियम बैंटिंक।
ब्रेलसफोर्ड, एच० एन० सब्जेक्ट इण्डिया।
ब्रोकवे ए० एफ० ए वीक इन इण्डिया।
ब्रूस, जार्ज रिट्रीट फ्राम काबुल, लंदन, 1967।
बूचन जार्ज लार्ड मिन्टो।
बुचलर एफ० डब्लू० द पालिटिकल थियरी आफ द इण्डियन म्युटिनी।
बर्क, द वर्क्स आफ बर्क्स संस्करण, 4 भाग।
बटन, लेफ्टी० कर्नल फर्स्ट ऐण्ड सेकेण्ड सिख वार्स।
भगत के०पी० डिकेड आफ इण्डो ब्रिटिश रिलेशन्स, बम्बई, 1959।
भानु, धर्म हिस्ट्री ऐण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ द नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज, आगरा, 1957।
भाटिया, बी० एम० फेमीन्स इन इण्डिया, बम्बई, 1967।
भाटिया, ओ० पी० सिंह हिस्ट्री आफ इण्डिया, 2 भाग, नई दिल्ली, 1965।
मैकडानल्ड, जे० आर० गवर्नमेंट आफ इण्डिया।
मैकडानल्ड, रम्जे द अवेकनिंग आफ इण्डिया।
मकनिकल एन० द मेकिंग आफ माडर्न इण्डिया।
मकग्रेगर, डब्लू० एल० द हिस्ट्री आफ द सिख्स, 2 भाग, लंदन, 1846
मैकलागन, माइकेल क्लीमेन्सी कैनिंग, लंदन, 1962।

महाजन, जगमोहन सरकंम्सटें सेज लीडिंग टु अनेक्सेसन आफ पंजाब (1846-49) इलाहाबाद, 1949।
महेश्वरी, एच० द फिलासफी आफ स्वामी रामतीर्थ, आगरा, 1969।
मजूमदार, ए० के० ऐडवेन्ट आफ इन्डेपेन्डेन्स, बम्बई, 1963।
मजूमदार, बी० बी० इण्डियन पॉलिटिकल एसोशियेसन्स ऐण्ड रिफार्मस आफ लेजिस्लेचर, कलकत्ता, 1965।
मजूमदार, बी० पालिटिकल थाट फ्राम राममोहन राय टू दयानन्द।
मजूमदार, बी० सी० ऐण्ड अदर्स ऐन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया, 1963।
मजूमदार, आर० सी० ग्लिम्पसेज आफ बंगाल इन द नाइनटीन्थ सेन्चुरी, कलकत्ता, 1960।
मजूमदार, आर० सी०, हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इण्डिया, 3 भाग, कलकत्ता, 1963।
मजूमदार, आर० सी० सीप्वाय म्युटिनी ऐण्ड रिवोल्ट आफ 1857, कलकत्ता, 1963।
मजूमदार, आर० सी० थ्री फेजेज आफ इण्डियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम, बम्बई, 1967।
मलकाम, जान द पालिटिकल हिस्ट्री आफ इण्डिया।
मैलकाम, जान सेन्ट्रल इण्डिया।
मैलीसन द डेसीजिव बैटल्स आफ इण्डिया, 1970।
मलीसन इण्डियन म्युटिनी आफ 1857।
मलेट, बी० लाइफ आफ लार्ड टामस जार्ज अर्ल आफ लार्ड नार्थब्रुक, 1908।
मामन, लेफ्टी० जन० सर जार्ज द इण्डियन स्टेट ऐण्ड प्रिंसेज, 1936।
मार्शमन, जे० सी० द हिस्ट्री आफ इण्डिया, 2 भाग।
मैरी, काउन्टेस आफ मिण्टो इण्डिया, मिण्टो ऐण्ड मार्ले (1905-19), 1914।
मसानी, आर० पी० ब्रिटेन इन इण्डिया।
मसानी आर० पी० दादा भाई नौरोजी।
मसन, फिलिप द मेन हू रूल्ड इण्डिया।
मैसन, चार्ल्स नैरेटिव आफ वैरियस जर्नीज इन बलूचिस्तान, अफगानिस्तान ऐण्ड द पंजाब, 3 भाग, 1842।
माथुर, जे० एस० इण्डियन वर्किंग क्लास मूवमेन्ट, इलाहाबाद, 1964।
माथुर, डी० बी० गोखले ए पॉलिटिकल बाईग्राफी, बम्बई, 1966।
माथुर, एस० बी० हिस्ट्री आफअडमान नीकोबार आईलैड्स, दिल्ली, 1968।

मार्क्स आन इण्डिया।
मेहता, अशोक 1857 द ग्रेट रिबेलियन।
मेहता, एम० एस० हेस्टिंग्स ऐण्ड इण्डियन स्टेट्स (1930)।
मेनन, वी० पी० मांटेग्यु चेम्सफोर्ड रिफार्म्स, बम्बई, 1965।
मेरसे, विस्काउण्ट द वाइसराय ऐण्ड गवर्नर जनरलस आफ इण्डिया अहमदाबाद, 1949।
मांटेग्यु, एफ० ए स्टडी आफ इण्डियन पॉलिसी इन बंगाल, दिल्ली, 1961।
मपेगर, डब्लू० एस० द हिस्ट्री आफ द सिक्स, 2 भाग, 1846।
मिल, जेम्स एण्ड विल्सन हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया, 8 भाग।
मिण्टो, काउण्ट आफ लार्ड मिण्टो इन इण्डिया।
मिश्रा, बी० बी० जुडीसियल ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ ईस्ट इण्डिया कंपनी इन बंगाल, दिल्ली, 1961।
मिश्रा, जी० एस० ब्रिटिश फारेन पालिसी ऐण्ड इण्डियन अफेयर्स, बम्बई, 1963।
मिश्रा, जे० पी० द एडमिनिस्ट्रेशन आफ इण्डिया अंडर लार्ड लैंसडाउन (1883 94), नई दिल्ली, 1975।
मिश्रा, के० पी० इण्डियाज पालिसी आफ रिकगनीशन आफ स्टेट्स एण्ड गवर्नमेंट, बम्बई, 1966।
मित्र, शिशिर कुमार रिसर्जेण्ट इण्डिया, बम्बई, 1963।
मोदी, सर एच० फिरोजशाह मेहता।
मोल्सवर्थ, जी० एन० अफगानिस्तान, 1916, लंदन, 1962।
मांटेग्यु, एडविन एस० ऐन इण्डियन डायरी।
मून, पेण्डरेल डिवाइड ऐण्ड क्विट।
मूर क्रॉफ्ट, डब्लू० एण्ड ट्रेबेक जी० ट्रेवेल्स इन हिमालयन प्राविन्सेज आफ हिंदुस्तान ऐण्ड पंजाब, पटियाला, 1970।
मोरलंड, डब्लू० एफ० एण्ड चटर्जी ए शार्ट हिस्ट्री आफ इण्डिया।
मार्ले, जे० रिक्लेक्शंस, 2 भाग।
मार्ले, जे० स्पीचेज आन इण्डिया।
मारिसन, जे० एल० लाइफ आफ लार्ड एल्गिन।
मोल्दन, ई०सी० लार्ड नार्थब्रुकस इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेशन, दिल्ली, 1968।
म्योर, रम्जे मेकिंग आफ ब्रिटिश इण्डिया।
मुजीब, एम० द इंडियन मुस्लिम्स, 1967।
मुकर्जी, हीरेन्द्र नाथ इंडियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम।

मकर्जी हरिदास विपिन चन्द्रपाल एण्ड इण्डियाज स्ट्रगल फार स्वराज, कलकत्ता, 1958।
मुकर्जी नीलमणि द रैय्यतवाडी सिस्टम इन मद्रास, कलकत्ता, 1962।
मुकर्जी, पी० इण्डियन कान्स्टीच्युशनल डाकूमेन्ट्स।
मुकर्जी, राधा कमल लैंड प्राब्लम्स इन इण्डिया।
मलिक जी० बी० लार्ड नार्थब्रुक एण्ड हिज मिशन इन इंडिया।
मुंशी, के० एम० इंडियन कान्स्टीच्युशनल डाकूमेण्ट्स, 2 भाग, बम्बई, 1967।
मुंशी, के० एम० पिलग्रिमेज टु फ्रीडम।
मरे रणजीत सिंह।
यडवर्ड्स, गिलियट हीरोज आफ माडर्न इण्डिया, ओरियन्टल पब्लिशर्स, दिल्ली, 1971।
यडवर्डस, माइकेल हाई नून आफ इम्पायर, लंदन, 1965।
यडवर्डस माइकेल ब्रिटिश इण्डिया, लंदन, 1967।
यडवर्डस, माइकेल ए हिस्ट्री आफ इण्डिया, बम्बई, 1961।
यडवर्डस, माइकेल बटल्स आफ द इण्डियन म्युटिनी, लंदन, 1963।
यडवर्डस, एच० एण्ड एच० मरिवले लाइफ आफ सर हनरी लारेन्स, लंदन, 1972।
यडवर्डस, मेजर जनरल हर्बट द लाइफ आफ हेनरी लारेन्स, 1872।
यमलरी, ऐंसली चार्ल्स ग्राण्टस ऐण्ड ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लंदन, 1962।
यरिक, टी० स्ट्रोक्स द इंगलिश यूटीलिटेरियन इन इण्डिया।
रहीम, एम० ए० लार्ड डलहौजी ऐण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ द कान्क्वेरड ऐण्ड अनेक्स्ड स्टेटस, बम्बई, 1963।
रहेजा, पी० सी० लैंड ट्रांसफार्मेशन, बम्बई, 1962।
रघुवंशी, वी० पी० एस० इण्डियन नेशनलिस्ट मूवमेन्ट ऐण्ड थाट।
रत, आर० एस० लाइफ ऐण्ड कम्पेन्स आफ, ह्यू विस्काउन्ट गाफ, 2 भाग।
रामगोपाल ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, दिल्ली, 1963।
रामगोपाल इण्डियन मुस्लिम्स, बम्बई, 1964।
रामगोपाल लोकमान्य तिलक।
रानाडे, एम० जी० राइज आफ द मराठा पावर, बम्बई, 1961।
रंगा अय्यर सी० एस० इण्डिया पीस आर वार, 1930।
रस्तोगी आर० एस० इण्डो अफगान रिलेशन्स, 1880 1900।
रैटक्लिफ एस० के० सर विलियम वेडरबर्न, लंदन, 1923।
राव, सर बेनेगल इण्डियाज कान्स्टीच्युशन इन द मेकिंग, बम्बई, 1960।

रवीन्द्रकुमार वेस्टर्न इण्डिया इन द नाइनटी य सेन्चुरी, लंदन, 1968।
राल्लिसन, एच० जी० द ब्रिटिश अचीवमेण्ट इन इण्डिया, 1948।
रे, पी० सी० लाइफ ऐण्ड टाइम्स आफ सी० आर० दास, आक्सफर्ड युनीवर्सिटी प्रेस, 1927।
रीड, सर स्टैनले द इण्डिया आई निव।
रीज रसा, इण्डिया ऐण्ड पर्सियनगल्फ, 1903।
रैले, टी० लार्ड कर्जन इन इण्डिया, 1960।
रैनोल्डस, रेजीनाल्ड द व्हाइट साहिब्स इन इन्डिया।
रिजले, हर्बट एच० द पीपुल आफ इण्डिया, दिल्ली, 1959।
राबर्टस, पी० ई० हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इन्डिया, 1958।
राबर्टस रीड, सर इयर्स आफ चेन्ज इन बंगाल एण्ड आसाम, 1966।
राबर्टसन, सी० जी० कुरम, काबुल ऐण्ड कान्धार।
राबर्टसन, ग्राण्ट इंगलैण्ड अंडर हैनोवेरियन्स।
रोलां, रोमां द लाइफ आफ रामकृष्ण, 1944।
रोनाल्डशे, लार्ड लाइफ आफ लार्ड कर्जन, 3 भाग, 1928।
राय, बी० एन० दत्ता सर एन० एन० सरकार्टस स्पीचेज ऐण्ड पम्फलेटस, कलकत्ता, 1934।
राय, एम० पी० ओरीजिन, ग्रोथ ऐण्ड सप्रेसन आफ द पिण्डारीज, नई दिल्ली, 1973।
राय, नरेशचंद्र द सिविल सर्विसेज इन इंडिया, कलकत्ता, 1960।
राय, स्मिथ विलियम नेशनलिज्म ऐण्ड रिफार्म्स इन इंडिया।
रॉब, ए० बी० द वाइसरायज ऐण्ड गवर्नर जनरल्स।
रशब्रुक विलियम्स, एल० एफ० व्हाट एबाउट इंडिया।
रसेल, सर डब्लू० माई डायरी इन इंडिया।
रंगा स्वामी सम इन्फ्लूएन्सेज दैट मेड ब्रिटिश ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम।
लाजपतराय यंग इंडिया, 1917।
लाजपतराय अनहैप्पी इंडिया।
लाजपतराय द पालिटिकल फ्युचर आफ इंडिया, 1930।
लंसडाउन स्पीचेज आफ लार्ड लैंसडाउन, 2 भाग।
लतीफ, अब्दुल द मुस्लिम प्राब्लेम इन इंडिया।
लतीफ, सयद मुहम्मद हिस्ट्री आफ द पंजाब, नई दिल्ली, 1964।
ला, ए० इंडिया अंडर लार्ड एलेनबरो।
लेटनर हिस्ट्री आफ द इनडिजनस एजूकेशन इन पंजाब सिन्स अनक्सेसन,

ली वार्नर द लाइफ आफ द मार्क्विस आफ डलहौजी।
ली वार्नर, द प्रोटेक्टेड प्रिंसेज आफ इंडिया।
ली वार्नर द नेटिव स्टेट्स आफ इंडिया, भाग 1।
लोजिन एफ० डलहौजी सर्डो लोजिन्स रिफ्लेक्सन्स, पटियाला, 1970।
लोवेट वर्ने, सर द हिस्ट्री आफ द इंडियन नेशनलिस्ट मूवमेण्ट, 1600 1919।
लोवडे ए हिस्ट्री ऐण्ड इकानामिक्स आफ इंडियन फेमीन्स।
लुडलो ब्रिटिश इंडिया, 2 भाग।
लायल, अल्फ्रेड द लाइफ आफ मार्क्विस आफ डफरिन ऐण्ड आवा।
लायल, अल्फ्रेड द ब्रिटिश डामीनियन इन इंडिया।
वाजपेयी, जे० एन० द पॉलिटिक्स मूवमेन्ट इन इंडिया।
वाजपेयी, जे० एन० द एक्स्ट्रीमिस्ट मूवमेन्ट इन इंडिया, इलाहाबाद, 1974।
वर्मा, शान्ति प्रसाद ए स्टडी इन मराठा डिप्लोमैसी, आगरा, 1956।
वाल्टर, एच० ए० द अहमदिया मूवमेन्ट, 1918।
वस्ती, एस० आर० लार्ड मिण्टो ऐण्ड द इंडियन नेशनलिस्ट मूवमेण्ट, 1964।
वेडरबर्न, विलियम बायोग्राफिकल स्केच आफ अलेन आक्टेवियन ह्यूम।
व्हीलर, एस० द अमीर अब्दुररहमान।
वोल्फ, लूसियन लाइफ आफ लार्ड रिपन।
वोलपेर्ट, एस० ए० तिलक ऐण्ड गोखले।
वुड्रफ, फिलिप्स द मेन हू रूल्ड इंडिया, द गार्जियन्स, लंदन, 1963।
वुड्रफ, फिलिप्स द मेन हू रूल्ड इंडिया, द फाउन्डर्स, लंदन, 1963।
सादिक अली द कांग्रेस आइडियालॉजी ऐण्ड प्रोग्राम।
सनवाल, बी० डी० नेपाल एण्ड द ईस्ट इंडिया कंपनी, बंबई 1965।
सप्रे, बी० जी० द ग्रोथ आफ द इंडियन कांस्टीच्युशन एण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन।
सर देसाई, जी० एस० निव हिस्ट्री आफ मराठाज।
सर देसाई, जी० एस० द मेन करेन्टस आफ मराठा हिस्ट्री।
सावरकर, बी० डी० द इण्डियन वार आफ द इन्डेपेंडेन्स 1857, नई दिल्ली, 1963।
स्कस्टर सर जार्ज ऐण्ड विन्ट इंडिया ऐण्ड डिमोक्रेसी।
स्क्रेफ्टन रिफ्लेक्शन्स आन द गवर्नमेण्ट आफ इन्दोस्तान।
सील, अनिल द इमरजेन्स आफ इंडियन नेशनलिज्म कैम्ब्रिज, 1968।
सेन्टीनरी वाल्युम आफ रणजीत सिंह खालसा कॉलेज, अमृतसर।
सेन, सुरेन्द्रनाथ एटीन फिफ्टी सेवन, दिल्ली, 1957।

सेन, सुरेन्द्रनाथ स्डीज इन इडियन हिस्ट्री।
सेन, सुरेन्द्रनाथ द ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम आफ मराठाज कलकत्ता 1925।
सेठी, आर० आर० द माइटी ऐण्ड द श्रीउड महाराजा, नई दिल्ली, 1960।
सेठी, आर० आर० लाहौर दरबार।
साहनी, टी० के० गोपाल कृष्ण गोखले।
सिंह, ब्रिगेडियर राजेन्द्र सोल्जर ऐण्ड सोल्जरिंग इन इंडिया, अम्बाला, 1959।
सिंह, गुरुमुख एन० लैंडमार्क्स इन इण्डियन कान्स्टीच्युशनल ऐण्ड नेशनल डेवलपमण्ट (1600 1919) बनारस, 1930।
सिंह, गुरुमुख एन० इंडियन स्टेट्स ऐण्ड ब्रिटिश इंडिया।
सिंह, हीरालाल प्राब्लेम्स ऐण्ड पालिटिक्स आफ द ब्रिटिश इंडिया, बम्बई, 1963।
सिंह, खुशवन्त राजा रणजीत सिंह लदन, 1962।
सिंह, एस० एन० द सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया ऐण्ड हिज कौंसिल 1858-1919, दिल्ली 1962।
सिन्हा, वी० बी० इकोनामिक हिस्ट्री आफ इंडिया, बम्बई, 1965।
सिंहल, दामोदर, पी० नेशनलिज्म इन इण्डिया ऐण्ड अदर हिस्टारिकल एसेज, दिल्ली, 1961।
सिन्हा डी० पी० एम ऐस्पेक्टस आफ ब्रिटिश सोसल ऐण्ड ऐडमिनिस्ट्रेटिव पालिसी इन इण्डिया ड्युरिंग द ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ लार्ड आकलैंण्ड, कलकत्ता 1969।
सिन्हा, डी० पी० द एजूकेशनल पालिसी आफ ईस्ट इण्डिया कपनी इन बगाल टू 1854, कलकत्ता 1964।
सिन्हा एन० के० ऐण्ड बैनर्जी ए० सी० हिस्ट्री आफ इण्डिया, कलकत्ता, 1963।
सिन्हा, एन० के० रणजीत सिंह, कलकत्ता, 1960।
सिन्हा, एन० के० राइज आफ सिख पावर।
सीतारमैय्या, पी० हिस्ट्री आफ इण्डियन नेशनल काग्रेस, 2 भाग, दिल्ली, 1969।
स्लीमैन, सर० डब्लू० एच० रैम्बुल्स ऐण्ड रिक्लेक्शन्स।
स्मिथ बोसवथ लाइफ आफ लार्ड लारेंस, 2 भाग, 1885।
स्मिथ, विन्सेन्ट ए० द आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया, लदन, 1961।
स्मिथ, डब्लू० आर० नेशनलिज्म ऐण्ड रिफार्म इन इण्डिया 1938।
स्मिथ, डब्लू० आर० स्पीचेज बाई द मार्क्विस आफ रिपन।

स्मीथ, जी कार्मिकेल ए हिस्ट्री आफ द रेनिंग फेमिली आफ लाहौर, कलकत्ता, 1847।

स्पियर, पर्सीवल इण्डियन माडर्न हिस्ट्री, 1961।

स्पियर, पर्सीवल द आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ मॉडर्न इण्डिया, लंदन, 1965।

स्टोनब्राच, लेफ्टी० कर्नल द पंजाब, बीइंग ए ब्रीफ एकाउन्ट आफ द कंट्री आफ सिक्ख, पटियाला, 1970।

स्ट्रैची, सरजान इण्डिया, इट्स ऐडमिनिस्ट्रेशन एण्ड प्रोग्रेस।

सूद, जे० पी० इण्डियन कान्स्टीच्यूशनल डेवलपमण्ट ऐण्ड नैशनल मूवमण्ट।

सूरी, लाला सोहनलाल उमदत उल तवारीख (अनु० अंग्रेजी में वाई० बी० एस० सूरी) दफ्तर 3, नई दिल्ली, 1961, दफ्तर 4, चंडीगढ़, 1972।

स्किन्सन, आयर नार्थ वेस्ट फ्रंटियर, दिल्ली, 1967।

शर्मा, डी० एस० रिनसेन्ट हिन्दुइज्म, बम्बई, 1966।

शास्त्री, शिवनाथ हिस्ट्री आफ ब्रह्म समाज।

शर्मा बणीशंकर स्वामी विवेकानंद, कलकत्ता, 1963।

शर्मा जगदीशलाल इण्डियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम, 3 भाग, (डाकूमेण्टल) दिल्ली, 1962।

शर्मा, एम० पी० लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट इन इण्डिया।

शर्मा, एस० आर० द फाउन्डिंग आफ मराठा फ्रीडम बम्बई, 1964।

शर्मा, एस० आर० स्वामी रामतीर्थ, बम्बई, 1965।

शर्मा, एस० आर० इवोल्युशन आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, इलाहाबाद, 1965।

शेरवानी, एच० के० मुहम्मद कुली कुतुबशाह कलकत्ता, 1966।

श्याम, राधे द किंगडम आफ अहमदनगर, दिल्ली, 1966।

श्री धरणी, कृष्णलाल वार विदाउट वायलेन्स, बम्बई 1962।

श्रीनिवासन, एन० डिमोक्रेटिक गवर्नमेण्ट इन इण्डिया, 1954।

श्रीप्रकाश एनी बसेण्ट बम्बई, 1962।

हुसकी, एस० ए० एच० मुस्लिम स्टेट रिलेशन्स इन इण्डिया मेरठ, 1967।

हाल, डी० जी० ई० बर्मा, लंदन, 1950।

हार्डिंज, लार्ड माई इण्डियन इयर्स, 1910 16।

हार्डिन्ज, चार्ल्स सेकंड विस्काउण्ट विस्काउन्ट हार्डिन्ज।

हसरत, विक्रमाजीत ऐंग्लो सिख रिलेशन्स।

हसरत विक्रमाजीत द पंजाब पेपर्स।

हुसैन, एस० ई० इण्डियन मुस्लिम्स, चलेंज ऐण्ड अपारचुनिटी, बम्बई, 1968।

हेस्टिंग्स, मार्विवस आफ प्राइवट जर्नल।
हेनरी, जी० ए० थ्रू द सिख वास, पटियाला, 1970।
हिल्टन, मेजर जनरल रिचर्ड द इण्डियन म्युटिनी।
हालैण्ड, डब्लू० ई० एस० द इण्डियन आउटलुक, 1927।
होम्स इण्डियन म्युटिनी।
होयलण्ड, जे० एस० गोपाल कृष्ण गोखले, हिज लाइफ ऐण्ड स्पीचेज, कलकत्ता, 1930।
हण्टर, डब्लू० डब्लू० ए हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया भाग 2।
हण्टर, डब्लू० डब्लू० लार्ड अमहर्स्ट।
हण्टर, डब्लू० डब्लू० द इण्डियन मुसलमान्स।
हण्टर, डब्लू० डब्लू० मार्विवस आफ डलहौजी, इण्डियन रीप्रिंट, देहली, 1962।
हण्टर, डब्लू० डब्लू० द रूल आफ मेयो।
हुसेन, मेहदी बहादुरशाह ऐण्ड द वार आफ 1857 इन देलही।
हुसैन, जाकिर द डायनेमिक युनीवर्सिटी, 1965।

प्रतिवेदन, शोध प्रतिकायें एवं अभिलेख

द एजूकेशन कमीशन, 1882, रिपोर्ट गवनमेण्ट आफ इण्डिया।
द रायल (इस्लिंग्टन) कमीशन आन पब्लिक सर्विस, 1917।
रौलट कमिटी रिपोर्ट, 1918।
मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट, 1918।
द डिस्आर्डस इन्क्वायरी कमेटी रिपोर्ट, 1919 20।
■ कलकत्ता युनीवर्सिटी कमीशन रिपोर्ट आफ 1919।
द इण्डियन स्टेट्स कमिटी रिपोर्ट, 1919 20।
गवनमेण्ट आफ इण्डिया, रिजोल्युशन, होम यजूकेशन, स० 1-60। फरवरी 3, 1882।
मिली प्रोसिडिंग्स आफ डिफरेन्ट डेटस।
पजाव ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट्स, डिफरेन्ट वायुम्स।
गवनमण्ट आफ इण्डिया (फाइनेन्स) रिजोल्युशन न० 3353, सितम्बर 30, 1881।
गवनमेण्ट आफ इण्डिया रिजोल्युशनस, मार्च 27, 1877, स० 1148 आफ मार्च 17, 1892, स० 353 आफ अगस्त 17, 1897।
फाइनान्सल स्टेटमेण्ट (मासी), 1967 68।

पार्लियामेण्टरी पेपस, 1890 91, स० 392 ।
डोवी, पजाब सेटिलमेण्ट मैनुअल ।
पजाब गवनमण्ट रिकाडस लुधियाना एजेन्सी ।
डिफरेन्ट डिस्ट्रिक्ट गजैटियस आफ पजाब ।
इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया ।
पजाब सेन्सस रिपोट, 1901 ।
द इण्डियन इअर बुक ।
द मिशनरी क्वाटरली, डिफरन्ट इसूज, दिल्ली ।
द माडन रिव्यु डिफरेन्ट इसूज ।
द कलकत्ता रिव्यु, डिफरेन्ट इसूज ।
इण्डियन हिस्टारिकल रिकाडस कमीशन, भाग xvii, xxii ।
द सिख रिव्यु, वैरिअस इसूज ।